२६२

संस्कृत वाङ्मय कोश

परिभाषा खण्ड
(पूर्वार्ध)

डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर

भारतीय भाषा परिषद्
कलकत्ता

संस्कृत वाङ्मय कोश

परिभाषा खण्ड
(पूर्वार्ध)

डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर

भारतीय भाषा परिषद्

संस्कृत वाङ्मय कोश

तृतीय खण्ड - परिभाषा
(पूर्वार्ध)

संपादक
डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर
प्रज्ञाभारती
अवकाश प्राप्त संस्कृत विभागाध्यक्ष, नागपुर विश्वविद्यालय

प्रकाशक
भारतीय भाषा परिषद
३६-ए, शेक्सपीयर सरणी
कलकत्ता-७०० ०१७

संपादक :
डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर
'प्रज्ञाभारती'

प्रकाशक :
भारतीय भाषा परिषद
३६-ए, शेक्सपीयर सरणी
कलकत्ता-७०० ०१७
दूरभाष : ४४९९६२

प्रथम आवृत्ति :
१००० प्रतियां
१९९२

मुखपृष्ठ :
जयंत गावली

मुद्रक :
अरविंद भालचंद्र मार्डीकर
भाग्यश्री फोटोटाइपसेटर्स एण्ड ऑफसेट प्रिन्टर्स
यू-४, 'गोकुल',
लक्ष्मीनगर, नागपुर-४४० ०२२

मुद्रण कार्य सहयोगी :
श्री रंग
कन्नन बुक बाईंडिंग वर्क्स
प्रकाश बेलूरकर
प्रतापराव देशमुख
हरिचंद मुरे
बबलू पाटील
देवीदास धर्माळे
शिवराज बैगने

मूल्य : ६०० रुपये (दोनों खण्डों का एकत्रित मूल्य)

Acc. 30234/30365

प्रकाशकीय

भारतीय भाषा परिषद, राष्ट्र की सभी प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यकारों व पाठकों में पारस्परिक सौमनस्य, समादर, सम्यक् सम्पर्क हेतु संस्थापित सेतु-संस्था है। परिषद ने देश की विभिन्न भाषाओं के श्रेष्ठ उपन्यास, कहानियां कविता के सारांश अथवा मूल रूप का सक्षम हिन्दी रूपांतर करवाकर प्रादेशिक वाङ्मय के अमोल ग्रंथ रत्नों को सुधी पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

संस्कृत सभी भारतीय भाषाओं की जननी है। अतः परिषद ने १९८० में एक परिकल्पना की कि सम्पूर्ण संस्कृत् वाङ्मय का परिदर्शन हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत हो। इस परिकल्पना को साकार किया, संस्कृत के परिनिष्ठित विद्वान डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने। इस योजना के अंतर्गत प्रथम व द्वितीय खण्ड पहले प्रकाशित हो चुके हैं। भारतीय भाषा परिषद को संस्कृत वाङ्मय कोश के तृतीय खण्ड (परिभाषा खण्ड) के प्रकाशन पर उपलब्धि व तुष्टि बोध से विलक्षण गौरव का अनुभव हो रहा है।

संस्कृत वाङ्मय कोश के - प्रथम दो खण्डों (ग्रंथकार व ग्रंथ खण्ड) का प्रकाशन व लोकार्पण १९८९ के प्रारंभ में हुआ था। संस्कृत की महनीय अपार सम्पदा का वरदान राष्ट्रभाषा हिन्दी को डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर की सप्त-वर्षीय एकलव्य-निष्ठा के द्वारा मिला। सात वर्षों तक, देववाणी संस्कृत के शीर्षस्थ विद्वान डॉ. वर्णेकर ने सर्वतोभावेँन इस कोश सम्पादन के प्रति अपने को समर्पित कर, यह अतुलनीय कृति लोक-मानस को राष्ट्रभाषा / हिन्दी के माध्यम से प्रदान की। इन दो खण्डों के प्रकाशन पर देश के प्रतिष्ठित आचार्यों ने विस्मय-भरी व आनन्दमयी मुद्रा में मुक्त कंठ से इस अवदान का अभिनंदन किया।

१९८९ की जनवरी में ही इन दो खण्डों के प्रकाशन के साथ-साथ डॉ. वर्णेकर पुनः तृतीय खण्ड- परिभाषा खण्ड - की सामग्री संकलन, संचयन व संपादन मे जुट गये। भारतीय भाषा परिषद की मूल योजना संस्कृत वाङ्मय के दिग्दर्शन को चार खण्डों में नियोजित करने की थी। ये चार खण्ड थे — ग्रंथकार, ग्रंथ, परिभाषा व सन्दर्भ। पर ग्रंथकार व ग्रंथ खण्डों में ही सन्दर्भ- सामग्री का इतनी प्रचुरता से समावेश हो गया कि सन्दर्भ खण्ड, का पृथक प्रस्तुतीकरण अनावश्यक प्रतीत हुआ। पर 'परिभाषा खण्ड' की प्रस्तुति तो अनिवार्य थी ही। डा वर्णेकर ने जनवरी १९८९ से अक्टूबर १९९१, तक अनवरत प्रतिदिन नागपुर से बाहर अनेकों प्रवास की अवधि में भी निरत रह कर, १९९१ की विजयादशमी को ''परिभाषा खण्ड'' की रचना का कार्य सम्पन्न किया।

ग्रंथकार व ग्रंथ खण्डों के सम्पादन की तुलना में परिभाषा खण्ड के प्रणयन का कार्य ही दुष्कर था। एक ही शब्द की अलग-अलग विधाओं में सर्वथा नयी परिभाषा होती है, फिर धर्म, योग, ज्ञान, मोक्ष, ईश्वर, सुख, आत्मा जैसे महत्वपूर्ण शब्दों का ''दर्शन'' जैसी एक ही विधा में विभिन्न व्याख्याकारों ने अपनी मान्यता के अनुसार भिन्न रूपों में परिभाषित किया है। वरेण्य सम्पादक ने इन उलझनों का भी समाधान किया है।

प्रस्तुत खण्ड में परिभाषाओं का धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चार पुरुषार्थ तथा एक संकीर्ण- कुल पांच शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजन किया गया है।

धर्म विभाग में वेद, वेदांग, स्मृति व टीकाओं की धर्म, यज्ञ, व्रत, आदि शब्दों की तथा भगवद्गीता की विशिष्ट परिभाषाएँ है। एक ''व्रत'' शब्द में ही बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव विभिन्न सम्प्रदायों के व्रतों की व्याख्या है। छन्दः शास्त्र तथा ज्योतिष में प्रयुक्त शब्दावली की परिभाषाएं भी इसी विभाग में है। **अर्थ विभाग** में कौटिलीय अर्थशास्त्र, शुक्रनीति व मनु-स्मृति के शब्द परिभाषित है। **काम विभाग** में नाट्य, साहित्य, संगीत, शिल्पचित्रकला में चर्चित शब्दों की परिभाषाएं है। **मोक्ष विभाग में** भारतीय दर्शन के विभिन्न पक्ष आस्तिक, नास्तिक दर्शन, शब्दावली की परिभाषाएं है।

पंचम-विभाग में दृष्टान्त वाक्य, खण्डन-मण्डनात्मक शास्त्रग्रंथों के सिद्धांत वाक्यों का चयन तथा परिभाषा है।

भारतीय भाषा परिषद की परिकल्पना को इतने विराट व सघन रूप में साकार करने की जो साधना डॉ. वर्णेकर ने की है, परिषद उसका आभार व्यक्त करने में बहु-विध अलंकारिक शब्दों का प्रयोग करके भी अपने को असमर्थ पाती है।

इतना बड़ा कार्य सम्पन्न करके डॉ. वर्णेकर सफल तरुवर की विनीत मुद्रा में कहते हैं - ''मेरे स्वामी ने भण्डार खोल रखा है, यह समस्त माल उसी का है, मै तो केवल भारवाही मज़दूर हूं।''

भारतीय भाषा परिषद का विश्वास है कि संस्कृत वाङ्मय कोश के इस परिभाषा खण्ड का विद्वत् मनीषीगणों के समाज में पूर्व प्रकाशित दो खण्डों के समान ही सम्यक् समादर होगा।

परमानंद चूडीवाल

संपादकीय निवेदन

सन् १९७९ में नागपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष पद से मैं सेवानिवृत्त हुआ। उसी वर्ष कलकत्ता की भारतीय भाषा परिषद के कार्यकर्ताओं ने 'संस्कृत वाङ्मय कोश' का प्रकाशन करने का निर्णय किया और उस के संपादन का दायित्व १९८१ में मुझ पर सौंपा।

१ अप्रैल १९८२ से संपादन कार्य का प्रारंभ हुआ। कुछ सहकारियों की सहायता से **'ग्रंथकार खण्ड'** और **'ग्रंथखण्ड'** नामक दो खंडों का संपादन सन् १९८८ में संपूर्ण हुआ। प्रथम दो खण्डों का प्रकाशन भारत सरकार के मानव संसधान विकास मन्त्रालय की आंशिक आर्थिक सहायता से हुआ।

भारत के विद्वान् एवं लोकप्रिय उपराष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा जी की अध्यक्षता में माननीय श्री. नरसिंह राव (आज के हमारे प्रधान मंत्री) एवं श्री. वसंतराव साठे (तत्कालीन ऊर्जामंत्री) इत्यादि महानुभावों के गुणग्रहणात्मक भाषणों के साथ उपराष्ट्रपतिभवन में प्रस्तुत कोश के प्रथम दो खंडों का प्रकाशन समारोह दि. ७ जनवरी १९८९ को संपन्न हुआ। भा. भा. परिषद की कोश योजना के अन्तर्गत **'परिभाषाखण्ड'**-नामक तृतीय खण्ड का प्रकाशन बाकी रहा था। दिल्ली एवं कलकत्ता में संपन्न प्रकाशन समारोह के तुरंत पश्चात् हमने इस कार्य का शुभारंभ किया।

संस्कृत वाङ्मय के अन्तर्गत प्रायः सभी शास्त्रों के महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दों का चयन और उनका हिंदी में यथोचित स्पष्टीकरण, इस प्रकार का कार्य करने की दृष्टि से सहकारी की आवश्यकता तो थी, किन्तु दुर्लभता के कारण यह संपूर्ण संपादन अथ से इति तक हमें एकाकी करना पड़ा। प्रारंभिक दो खण्डों के संपादन कार्य के कारण, अन्तःकरण में इस कार्य में कुछ विशेष रुचि प्रबल हुई थी। इसी कारण यह कार्य एकाकी करने में अपूर्व आनन्द का अनुभव प्रतिदिन मिलता रहा। १९८९ के जनवरी मास में जिस दिन से हमने इस संपादन कार्य का प्रारंभ किया उस दिन से १९९१ की विजयादशमी तक हमारे इस अनुष्ठान में (प्रवास काल में भी) खण्ड नहीं पडा। संकल्पित कार्य में इस प्रकार निर्विघ्नता प्रभुकृपा के कारण ही प्राप्त हो सकती है। अब यह कार्य समाप्त होने के कारण एक प्रकार की रिक्तता का अनुभव आ रहा है।

प्रथम दो खण्डों का मुद्रण 'भाग्यश्री' फोटो टाइपसेटर्स एन्ड ऑफ्सेटप्रिन्टर्स (लक्ष्मीनगर, नागपुर) के संचालक श्री. अरविन्द मार्डीकर ने जिस आत्मीयता और तन्मयता से किया, उसी भाव से इस तृतीय खण्ड का भी मुद्रण कार्य उन्होंने किया है। 'भाग्यश्री' मुद्रणालय जैसा उत्तम मुद्रणालय हमें मिला यह हमारा भाग्य फल हम समझते हैं। ग्राहक वर्ग ने प्रारंभिक दो खण्डों के सुन्दर एव निर्दोष मुद्रण की जिस प्रकार सर्वत्र प्रशंसा की, उसी प्रकार इस तृतीय खण्ड के भी मुद्रण की प्रशंसा अवश्य होगी।

प्रस्तुत कोश के तीनों खण्डों के शोध्य पत्रों के शोधन कार्य में हमारे परम मित्र श्री. मोहन मार्डीकर (नागपुर विश्वविद्यालय के कला विभाग के भूतपूर्व अधिष्ठाता) का जो सहयोग हमें मिला, वह सर्वथा अभिनन्दनीय है।

परिभाषा खण्ड की रूपरेषा

प्रस्तुत तृतीय खण्ड का विभाजन पांच भागों में किया है। (१) धर्म, (२) अर्थ, (३) काम, (४) मोक्ष और (५) न्यायसंग्रह। **(१) धर्मविभाग** में वेद या वेदांगों में तथा धर्मशास्त्र में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का चयन हुआ है। वैदिक शब्दावली में शतपथ, ऐतेरय आदि ब्राह्मण ग्रन्थों तथा आश्वलायन, बौधायन, कात्यायन, आपस्तंब आदि श्रौतसूत्रों, कल्पसूत्रों, गृह्यसूत्रों तथा धर्मसूत्रों एवं मनु, याज्ञवल्क्य, आदि स्मृतिग्रंथ, और मन्वर्थमुक्तावली (ले. कुल्लूकभट्ट), मिताक्षरा (ले. विज्ञानेश्वर) आदि कुछ टीका-ग्रंथो में प्रयुक्त विविध प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का चयन करने का प्रयत्न हुआ है। भारत की धर्म विषयक परिभाषा में यज्ञविधि, संकरोत्पन्न जाति, एवं विविध प्रकार के व्रत से संबंधित पारिभाषिक शब्दों का प्राधान्य है। व्रतों में बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव संप्रदायों के व्रतों का यथोचित निर्देश हुआ है।

वेदांगों के पारिभाषिक शब्दों का चयन महत्त्वपूर्ण ग्रंथों तथा उनकी टीकाओं से हुआ है। **व्याकरण** – इसमें सिद्धान्त कौमुदी (बालमनोरमा टीका), पाणिनिकृत शिक्षा, गणपाठ, धातुपाठ, पातंजल महाभाष्य, भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय तथा स्व. गुंडेराव हरकरे कृत प्रत्यय कोश, स्व. रावबहादुर नाराणय दाजीबा वाडेगावकरकृत परिभाषेन्दुशेखर का मराठी भाषान्तरात्मक भाष्य इत्यादि ग्रन्थों से शब्दों तथा उनके विवरण का चयन हुआ है। **छन्दःशास्त्र** – इसमें वृत्तरलाकर (ले. केदार भट्ट, व्याख्या – नारायणी-नारायण भट्ट कृत); पिंगल सूत्र, (मृतसंजीवनी व्याख्या – हलायुध भट्ट कृत) इन ग्रन्थों से प्रधानतया शब्दों का चयन हुआ है। **ज्योतिषशास्त्र** – इसमें बृहत्संहिता (वराहमिहिर कृत),

(व्याख्या अच्युतानंद झा), ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त (ब्रह्मगुप्त कृत), सिद्धान्तशिरोमणि (भास्कराचार्यकृत), जैसे ग्रंथों से शब्दार्थ का चयन हुआ है। **आयुर्वेद** – चार उपवेदों में से आयुर्वेद की परिभाषा का चयन धर्मविभाग में हुआ है। इस परिभाषा का चयन प्रधानतः चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता (व्याख्या- दत्तो बल्लाळ बोरकर), अष्टांगहदय (वाग्भटकृत), (व्याख्या डॉ. र. कृ. गर्दे), शाङ्र्गधर संहिता, धन्वन्तरिनिघण्टु (व्याख्या झारखंडे, ओझा), वैद्यकोष (चक्रपाणि दत्तकृत) जैसे ग्रन्थों से हुआ है।

(२) अर्थविभाग – इसमें मुख्यतः कौटिलीय अर्थशास्त्र (हिवरगावकर कृत तथा डॉ. कंगलेकृत मराठी भाषान्तर) शुक्रनीति तथा मनुस्मृति से परिभाषा का चयन हुआ है।

(३) कामविभाग – इसमें कामशास्त्र के साथ नाट्य, साहित्य, संगीत, शिल्प और चित्रकला जैसे कामपुरुषार्थ से संबंधित उपांगों से संबंधित शास्त्रों की परिभाषा का चयन विषयानुसार हुआ है। यह परिभाषा भरत नाट्यशास्त्र, दशरूपक (धनिक-धनंजयकृत), काव्यप्रकाश (मम्मटाचार्य कृत), साहित्य-दर्पण (कविराज विश्वनाथकृत), काव्यमीमांसा (राजशेखर कृत), शृंगारप्रकाश (भोजकृत), संगीतरत्नाकर (निःशंकशाङ्र्गदेवकृत), समग्र भातखंडे ग्रंथावली, जैसे ग्रंथों से संकलित की है।

(४) मोक्षविभाग – इसमें सभी आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों में उपयुक्त दार्शनिक परिभाषा का चयन हुआ है। भगवद्गीता के शांकरभाष्य में तथा प्रज्ञाचक्षु गुलाबराव महाराजकृत वेदान्तपदार्थो द्देश-दीपिका, सर्वदर्शनसंग्रह (माधवाचार्यकृत), अर्थसंग्रह (लौगाक्षीभास्करकृत), इन मौलिक ग्रंथों के साथ, जैनधर्मामृत (डॉ. उमेश मिश्र), भारतीयदर्शन (पं. बलदेव उपाध्याय) जैसे प्रबन्धों से भी सहायता ली गयी है।

इन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अतिरिक्त वैदिककोश (डॉ. सूर्यकान्त कृत), हिन्दी विश्वकोश, भारतीय संस्कृति कोश (१० भाग, पं. महादेव शास्त्री जोशी कृत) संस्कृत-हिंदी कोश (वामन शिवराम आपटे कृत), न्यायकोश (भीमाचार्य झळकीकर कृत) इत्यादि श्रेष्ठ कोशग्रन्थों से यथोचित मात्रा में शब्दों का चयन एवं अर्थों का विवरण हमने किया है।

इन सभी ग्रंथकारों, भाष्य-टीकाकारों, प्रबंधकारों एवं कोशकारों के हम सर्वथा ऋणी हैं।

(५) न्यायसंग्रह विभाग – संस्कृत शास्त्र ग्रंथों के प्रतिपाद्य विषयों के खण्डन मण्डनात्मक शास्त्रार्थों में, सिद्धान्तों के निदर्शन या दृष्टान्त के रूप में अत्यंत मार्मिक वाक्य मनीषियों द्वारा कहे गये हैं। वे सर्वत्र और सर्वदा बोधप्रद हैं। प्रस्तुत कोश के निमित्त पारिभाषिक शब्दों का संकलन करते समय जो दृष्टान्तवचन या दृष्टान्तरूप कल्पनाएँ हमें मिलती गयीं, उनका संकलन तथा स्पष्टीकरण हमने किया। साथ ही इस प्रकार का प्रयत्न 'लौकिक न्यायांजलि' के तीन भागों का संपादन करने वाले कर्नल जेकब के द्वारा संकलित तथा 'दृष्टान्तपाठ' नामक महाराष्ट्र के महानुभाव संप्रदाय के प्रमाणभूत ग्रंथ में संगृहीत दृष्टान्तस्वरूप न्यायों का एवं शांकरभाष्य, पातंजलमहाभाष्य परिभाषेन्दुशेखर जैसे ग्रंथों में कथित न्याय-स्वरूप वचनों का और सुभाषितों में ग्रंथित दृष्टान्तवचनों का भरपूर मात्रा में चयन इस विभाग में हुआ है। यहां सभी पारिभाषिक शब्दों का चयन शास्त्रात्मक प्रकरणानुसार हुआ है। जिन शब्दों का अन्तर्भाव विशिष्ट प्रकरण में नहीं हो सका तथा वर्णक्रमानुसार संपादन का कार्य समाप्त होने के बाद जो संग्राह्य शब्द हमें मिले; उनका भी संकलन, परिशिष्टों में हुआ है। इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय कोश का यह तृतीय खण्ड 'पंचमुखी' हुआ है।

.कोश संपादन का कार्य मधुकोष के निर्माण सा होता है। किसी भी कोश में कोशकार का अपना कुछ नहीं होता। होता है उसका केवल परिश्रम। महाराष्ट्र के संतशिरोमणी श्री. तुकाराम महाराज अपनी अभंग गाथा के संबंध में कहते हैं –

''फोडिले भांडार धन्याचा हा माल।
मी तव हमाल, भारवाही।।''

(भावार्थ – मेरे स्वामी ने भंडार खोल रखा है, वहीं का यह सारा माल है। मै तो केवल भारवाही मज़दूर हूं।)

प्रस्तुत कोश में पारिभाषिक शब्दों का चयन तथा विवरण करने में हमने केवल मज़दूरी की है। यह सारा माल पूर्व सूरियों का ही है।

दूसरी दृष्टि से यह काम मालाकार के समान है। मालाकार पुष्पावली को उत्पन्न नहीं करता। वह केवल विविध रंगबिरंगे पुष्पों का पुष्पोद्यानों से चयन करता है और अपनी कुशलता से सुन्दर पुष्पमाला बनाकर उपासकों को समर्पण करता है।

प्रभुकृपा से संस्कृतवाङ्मय कोश के तीन खण्डों के संपादन का कार्य अब तक हमसे हो सका। उसके गुणों से अवगुण अधिक हैं यह हम स्वयं जानते हैं। ये सारे अवगुण हमारी अल्पज्ञता, असमर्थता, और असहायता के कारण हुए हैं। संस्कृत वाङ्मय संबंधी कोशसाहित्य में इस प्रकार से ग्रंथकार, ग्रंथ तथा विविध शास्त्रोक्त पारिभाषिक

शब्दों का समेकित चयन करने का यह प्रारंभिक उद्योग है। आशा है कि आगे चलकर श्रेष्ठ विद्वज्जन इस योजना के अनुसार प्रस्तुत **कोशत्रयी** में अनुक्त और दुरुक्त का दोष दूर करते हुए बृहत्तम आकार के कोश निर्माण करेंगे। इन कोशों में उल्लिखित (और अनुल्लिखित भी) ग्रंथकार हमारी सनातन राष्ट्रीय संस्कृति के महान् उपासक थे। उनके द्वारा निर्मित सारी संस्कृत ग्रंथसंपदा हमारा राष्ट्रीय निधान है। उस ग्रंथसंपदा में प्रतिपादित विविध स्वरूप शास्त्रीय ज्ञान-विज्ञान और उसका धारण एवं वहन करने वाले शास्त्रोक्त पारिभाषिक शब्द उस राष्ट्रीय विधान के अन्तर्भूत रत्नकोश या हिरण्यकोश है। भारतीय संस्कृति की रक्षा करने के कार्य में इस 'त्रयी' की आराधना करना सर्वश्रेष्ठ कार्य है।

भारतीय भाषा परिषद इसी कार्य के लिए बद्ध परिकर है। परिषद ने अपनी इस योजना में मुझ जैसे नगण्य व्यक्ति को सहभागी किया यह मेरा अहोभाग्य है। परिषद के सभी अग्रगण्य कार्यकर्ताओं को इस निमित्त अन्तःकरणपूर्वक धन्यवाद देता हूं।

प्रभो तव कृपां विना तृणकणोऽपि न स्पन्दते
सहस्रकिरणोऽपि न क्षणशतांशमुद्योतते.।
न चेन्दुरपि राजते न खलु गीष्पतिर्भाषते
कुतो नु बत मादृशो विरचयेत कोशत्रयम्।

– श्रीधर भास्कर वर्णेकर

संस्कृत वाङ्मय कोश
तृतीय खण्ड – परिभाषा

अन्तरङ्ग दर्शन

(कुल पृष्ठसंख्या १३)

विश्व के शास्त्रीय वाङ्मय का विहंगावलोकन करने पर यही दिखाई देता है की मानव जीवन को चरितार्थ करने वाले, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए, आवश्यक ज्ञान-विज्ञान के प्रायः सभी मूलभूत ग्रंथ भारत में ही प्रथम निर्माण हुए। इस ज्ञान-विज्ञान की अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत भाषा होने के कारण यहां के सारे शास्त्रीय चर्चात्मक ग्रंथ संस्कृत भाषा में ही उपनिबद्ध हुए।

पारिभाषिक शब्द

शास्त्रकार विद्वान् अपने सविस्तर आशय को अल्पाक्षरों में संगृहीत करने हेतु पारिभाषिक शब्दों का निर्माण करते हैं। ऐसे शब्द प्रायः व्याकरण की व्युत्पत्ति के अनुसार बनाए जाते हैं। अतः अनेक पारिभाषिक शब्दों के अर्थ उनके विग्रह या लौकिक व्युत्पत्ति के द्वारा अनायास प्राप्त हो सकते हैं। उदाहरणार्थ 'अर्थान्तरन्यास' एक अर्थालंकार का वाचक शब्द है। अलंकार शास्त्र के लेखकों ने इस अलंकार का लक्षण अपने अपने शब्दों में बताया है, तथापि अर्थान्तरन्यास शब्द का विग्रह करने से उक्त लक्षण का मूलभूत आशय ध्यान में आ सकता है। अतः व्याकरण या व्युत्पत्ति शास्त्र का पर्याप्त अध्ययन करने वालों के लिए अनेक पारिभाषिक शब्द सुबोध होते हैं। उस सुबोधता के कारण वे व्यावहारिक भाषा में रूढार्थक शब्दों की भांति प्रचलित भी होते हैं। यज्ञ, धर्म, माया, पत्नी, यजमान, राग, ताल, रस, इत्यादि सैकड़ों पारिभाषिक शब्द लौकिक भाषा में रूढ हो चुके हैं।

सामान्य मनुष्य को उन शब्दों के पारिभाषिक (अर्थात् शास्त्रकारों द्वारा आरोपित) "कृत्रिम अर्थ" का ज्ञान नहीं होता। जब वह किसी शास्त्रीय ग्रंथ का अध्ययन करता है, तब उन सुपरिचित शब्दों का शास्त्रोक्त अर्थ जानकर एक आश्चर्य का अनुभव करता है।

कालप्रभाव सर्वव्यापी होता है। उसके कारण अनेक शास्त्रों का भी लोप यथाकाल क्रमशः होता है। समाज में प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन वंद होकर नवोदित शास्त्रों का अध्ययन होते लगता है। ऐसी अवस्था में पुराने शास्त्रों के पारिभाषिक शब्दों का प्रचार न रहने के कारण, वे लुप्तप्राय होते हैं। और प्रचार में रहे तो भी फूलों के सुगंध की भाँति उनका अर्थ उड़ जाने के कारण, गंधहीन पुष्पों के समान अनेक पारिभाषिक शब्द अर्थहीन होकर इधर उधर पड़े रहते हैं। उनके मूलभूत विशिष्ट अर्थों की खोज करते समय, उस लुप्तप्राय अर्थ के ज्ञान से एक विचित्र आनंद आता है।

प्राचीन काल में पाली, अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, द्राविड, इत्यादि अनेक अपभ्रंशात्मक भाषाएँ देश के विविध प्रदेशों के लोकव्यवहार में प्रचलित थीं। पाली-प्राकृत में तो बौद्ध-जैन संप्रदायों का प्रमाणभूत साहित्य भरपूर निर्माण हुआ, किन्तु उनमें 'शास्त्रीय' कहने योग्य ग्रन्थों की निर्मिति नहीं हुई। महाराष्ट्री, शौरसेनी आदि अनेक लोकभाषाओं को किसी सम्प्रदाय के प्रचार का माध्यम होने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, अतः उन सभी लोकभाषाओं में विशेष उल्लेखनीय कोई ग्रंथरचना नहीं दिखाई देती। सूक्ष्म शास्त्रीय चर्चा करने की प्रगल्भता इन लोकभाषाओं में नहीं थी। व्यवहार में विविध प्रादेशिक भाषाओं का उपयोग करने वाले शिक्षित 'शिष्ट' लोग भी अपने ज्ञातव्य या प्रतिपाद्य शास्त्रीय विषयों की चर्चा के लिए, संस्कृत शब्दों का ही प्रयोग करते थे।

लौकिक भाषाओं के क्षेत्र में एक उल्लेखनीय कन्नड ग्रंथ है "शब्ददर्पण"। १३ वीं शती में कर्नाटक के एक जैन व्याकरणाकार केशिराज ने इस ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ के ९ भागों में से प्रथम आठ भागों में व्याकरण विषय की चर्चा और अंतिम नौवें भाग में श्रेष्ठ कवियों द्वारा प्रयुक्त गूढ शब्दों का स्पष्टीकरण किया है। वह कोशग्रंथ एक प्रादेशिक भाषा में है किन्तु उसमें संचित पारिभाषिक शब्द संस्कृत शास्त्रों के है। साहित्य, व्याकरण ज्योतिष, आयुर्वेद, योग, वेदान्त आदि विविध शास्त्रीय विषयों की चर्चा वाचिक तथा लिखित स्वरूप में आज के विविध भाषाभाषी भारतीय लोग अपनी अपनी बंगला, हिन्दी, मराठी, कन्नड, तेलुगु, गुजराती आदि प्रादेशिक भाषाओं में भरपूर मात्रा में करते हैं। उनकी चर्चा का माध्यम प्रादेशिक भाषा होते हुए भी, जिस शास्त्र की चर्चा होती है, उसके सारभूत, सिद्धान्तबोधक, सभी शब्द संस्कृत होते हैं। उनके प्रमाणभूत सारे आप्तवाव्य भी संस्कृत वाङ्मय के ख्यातनाम आकर ग्रंथों से उद्धृत किए जाते हैं।

अनुवाद असंभव

भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं में अर्वाचीन कालखंड में (१९-२० वीं शती में) इस प्रकार के संस्कृत शास्त्राधिष्ठित तथा उन शास्त्रों में प्रतिष्ठित पारिभाषिक शब्दों से अनुप्राणित, अनेक ग्रंथों का प्रकाशन भूरि मात्रा में हुआ है। ऐसे ग्रंथों में अनुवादात्मक तथा विमर्शात्मक ग्रंथों का मुख्यतः अर्न्तभाव होता है। उदाहरण के लिए भारतीय साहित्य शास्त्र विषयक डॉ. सत्यव्रत सिंह कृत साहित्यदर्पण की 'शशिकला' नामक हिन्दी व्याख्या देखिए। इसमें मूल कारिकाएँ, उनकी वृत्तियाँ, उदाहरणपद्य आदि के अनुवाद तथा उनका "विमर्श" यह सारा लेखन है तो हिन्दी में, किन्तु "शशिकला' का विवेचनीय विषय साहित्यदर्पण में प्रतिपादित साहित्य शास्त्र होने के कारण, व्याख्याकार को पद पद पर साहित्य शास्त्र के मूलभूत पारिभाषिक शब्दों का प्रचुर मात्रा में उपयोग करना अनिवार्य था। इसका कारण सैद्धान्तिक विचारों का अनुवाद और विवेचन उन पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग किये बिना असम्भव होता है। अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, विभाव, अनुभाव, उपमा, दृष्टान्त, विभावना, विशेषोक्ति, इत्यादि अनेकविध साहित्यशास्त्रीय पारिभापिक संज्ञाओं की लक्षणकारिकाओं के अनुवाद और विवरण प्रस्तुत ग्रंथ में विशिष्ट स्थान पर अवश्य हुए हैं, किन्तु पारिभाषिक संज्ञाओं का प्रयोग प्रत्येक स्थान पर हिंदी स्पष्टीकरण के साथ देना ग्रंथकार के लिए असम्भव है। अतः ऐसी संस्कृत संज्ञाएँ संपूर्ण ग्रंथ में यथावत् प्रयुक्त हुई है। पारिभाषिक शब्दों के अर्थज्ञान बिना यह ग्रंथ हिन्दी के ज्ञानी विद्वान् को भी दुर्बोध होता है। इसी प्रकार पारिभाषिक संस्कृत संज्ञाओं के प्रयोग, सभी भारतीय भाषाओं के शास्त्रीय ग्रंथों में निरपवाद हुए हैं। उन सब में यही दिखाई देता है कि, पारिभाषिक संज्ञाओं का विवरण हो सकता है (वह तो मूल संस्कृत ग्रंथकारों ने ही कर रखा है) शास्त्रग्रंथों के अनुवादक अधिक स्पष्टीकरणों के साथ अनुवाद कर सकते हैं। **किन्तु मूल पारिभाषिक संस्कृत संज्ञाएँ या शब्द, संस्कृत भाषा का निजी धन होने से, उनका अनुवाद हो ही नहीं सकता।**

उदाहरण के लिए साहित्य शास्त्र का एक सामान्य पारिभाषिक शब्द 'उपमा' लीजिए। विशिष्ट अर्थालंकार बोधक इस शब्द का स्पष्टीकरण विश्वनाथ कविराज ने, "साम्यं वाच्यम् अवैधर्म्य वाक्यैक्ये उपमा द्वयोः" इस कारिका के रूप में प्रस्तुत किया। उसका अनुवाद "शशिकला' व्याख्याकार ने – 'उपमा' वह अलंकार है, जिसे उपमान और उपमेय का साम्य अथवा 'सादृश्य' कहते हैं जो कि स्पष्टतः एक वाक्य में प्रतिपादित रहा करता है और जिसमें वैधर्म्य की कोई चर्चा नही हुआ करती इन शब्दों में किया है।

इस प्रकार कारिका तथा बाद में वृत्ति का अनुवाद फिर उदाहरण - प्रत्युदाहरण आदि के अनुवाद और विमर्शात्मक शास्त्रीय चर्चा सब कुछ हिन्दी भाषा में होने के कारण पाठक को "उपमा" संज्ञा का भरपूर ज्ञान होता है। और वह "उपमा" शब्द का अपने व्यवहार में अनायास प्रयोग करने में समर्थ होता है। किन्तु इस पारिभाषिक शब्द के हिन्दी अनुवाद का प्रयोग वह कभी भी और कहीं भी नहीं कर सकता; क्यों की उसका अनुवाद हो ही नहीं सकता। इस प्रकार संस्कृत शास्त्रान्तर्गत किसी भी पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद किसी भी भारतीय भाषा में आज तक न हो सके न आगे चलकर हो सकेगे। अब तक सारे अनुवाद लौकिक संस्कृत शब्दों के ही हुए हैं। इसका कारण लौकिक व्यवहार में उपयुक्त, संस्कृत शब्दों के पर्याय प्रादेशिक भाषाओं में मिलते हैं, शास्त्रीय शब्दों के अनुवाद नहीं मिलते; क्यों कि वे हो ही नहीं सकते।

विदेशी (यूरोपीय) प्रगल्भ भाषाओं में संस्कृत शास्त्रों के कुछ पारिभाषिक शब्दों के पर्याय, वहां के उन उन शास्त्रों में मिलते है। किन्तु ऐसे शब्दों की संख्या अत्यल्प है। विदेशी अनुवादकों को भी भारतीय संस्कृत शास्त्रग्रंथों के अनुवादों में संस्कृत संज्ञाओं का यथावत् ग्रहण करना अनविार्य हुआ है।

इस सारे प्रतिपादन का तात्पर्य यही है कि संस्कृत भाषा जिन लौकिक और शास्त्रीय शब्दों से गठित हुई है, वे दोनों प्रकार के शब्द मुख्यतः पाणिनीय प्रक्रिया के अनुसार व्युत्पत्तिसिद्ध होते हैं। व्युत्पत्तिविरहित शब्दों के अन्तर्गत लोकव्यवहार में यत्र तत्र प्रचलित रूढार्थक शब्द होते हैं, जिनके पर्याय प्रादेशिक भाषाओं में मिलने के कारण संस्कृत ग्रंथों के अनुवादों में उन प्रादेशिक पर्यायों का प्रयोग होता है।, कुछ सामासिक संस्कृत शब्दों का विग्रहात्मक अनुवाद हो सकता है किन्तु उनमें सामासिक शब्द का लाघव और प्रसाद न रहने के कारण मूल सामासिक संस्कृत शब्दों का ही प्रयोग करना कुशल अनुवादक अच्छा समझते हैं।

व्युत्पत्तिसिद्ध परिभाषा

शास्त्रीय या पारिभाषिक शब्दों की निर्मिति शास्त्रकारों ने अपना व्यापक मन्तव्य अल्पाक्षरों में गठित करने के हेतु की है। वे शब्द उन्होंने संस्कृत की व्युत्पत्तिप्रक्रिया के अनुसार निर्माण किए हैं। अलंकार शास्त्रकारों की, रूपक, दृष्टान्त, अप्रस्तुतप्रशंसा अर्थान्तरन्यास, यथासंख्य, विरोधाभास, भ्रान्तिमान्, सहोक्ति, विनोक्ति, आदि अलंकार-वाचक

संज्ञाएं इसी प्रकार निर्माण हुई हैं। इस प्रकार की अन्वर्थक संज्ञाओं द्वारा अलंकार के स्वरूप की कल्पना केवल व्युत्पत्ति, विग्रह आदि व्याकरण प्रक्रिया द्वारा, विदग्ध विज्ञासु को आ सकती है। व्युत्पत्तिलभ्य आशय के अतिरिक्त विशिष्ट शास्त्रीय आशय का ज्ञान, शास्त्रग्रंथ के विवरण से हो सकता है।

इन व्युत्पत्तिसिद्ध पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त अन्यान्य शास्त्रकारों ने अपने विशिष्ट मन्तव्य को शब्दांकित करने के लिये अपने ऐसे शब्द निर्माण किये है कि उनका लौकिक व्यवहार में कहीं उपयोग न होने के कारण, तथा व्युत्पत्तिप्रक्रिया से उनका अर्थबोध न होने के कारण, शास्त्रकार के कथनानुसार ही उनका अर्थ ध्यान में लेना होता है। व्याकरणशास्त्र के टि, घु, घि, कृत्, कृत्य, गुण, वृद्धि, प्रगृह्य, अच्, हल्, सर्वनामस्थान, इत्, इत्यादि अनेक शब्द इस प्रकार के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इन्हें हम "पाणिनि के यदृच्छाशब्द" शब्द कह सकते हैं। लौकिक भाषा के यदृच्छा शब्दों का अर्थ जिस प्रकार संकेतानुसार होता है उसी प्रकार टि, घु, आदि शब्दों का अर्थ पाणिनिकृत संकेतानुसारं ही लेना पड़ता है। इनका अनुवाद कदापि नहीं हो सकता।

लौकिक शब्दों में पारिभाषिक अर्थ

पारिभाषिक शब्दों में ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं, जिनका लौकिक भाषा में सर्वत्र विशिष्ट अर्थ में प्रयोग होता है, किन्तु शास्त्रकारों ने अपना शास्त्रीय मन्तव्य व्यक्त करने के लिए अपना विशेष अर्थ उन पर थौंप दिया है। इस प्रकार का सर्व परिचित उदाहरण है **'गुण'** शब्द। लौकिक व्यवहार में शौर्य, धैर्य, चातुर्य, नैपुण्य आदि व्यक्तिगत विशेषताओं का निर्देश करने के लिए इस शब्द का सर्वत्र प्रयोग होता है, किन्तु सांख्य-योग शास्त्र के अनुसार सत्त्व, रज, तम को गुण कहा जाता है। साहित्य में वही 'गुण' शब्द, माधुर्य, ओज, प्रसाद जैसे शब्द, अर्थ या रस के वैशिष्ट्य का वाचक कहा गया है। व्याकरण में "अदेङ् गुणः" सूत्र द्वारा गुण शब्द अकार, ए, ओ स्वरों का बोध कराता है। इसी प्रकार **"धातु"** शब्द का लौकिक अर्थ लोह, ताम्र, सुवर्ण आदि हैं, किन्तु आयुर्वेद में रुधिर, मांस, मेद वीर्य, आदि का ग्रहण उस शब्द से होता है। और व्याकरण शास्त्र में "भूवादयो घातवः" सूत्र के अनुसार (धातुपाठ में परिगणित) क्रियावाचक गम्, रम्, लिख्, पठ, विद्, चुर, आदि का बोध लेना पडता है। **सन्धि** शब्द का राजनीति, नाट्य और व्याकरण शास्त्र में सर्वथा पृथक् अर्थ होता है।

इस प्रकार जिन शब्दों का शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार विशिष्ट अर्थ निर्धारित हुआ है, उसी शास्त्रीय अर्थ में, उनका, प्रयोग काव्य-रचना में करना, साहित्यिकों ने 'कष्टत्व' नामक दोष माना है। यह एक अनित्य दोष होने के कारण शास्त्रज्ञानी वक्ता और श्रोता होने पर ही कष्टत्व गुण माना जाता है। इसका तात्पर्य यही है कि **पारिभाषिक शब्दों का संबंध प्रमुखतया शास्त्रीयता से है लौकिकता के साथ नहीं।**

सभी शास्त्रकारों ने परम्परागत पारिभाषिक शब्दों में अन्तर्हित विशिष्ट आशय की चर्चा अपने अपने ग्रंथों में की है। उसमें पूर्ववर्ती शास्त्रकारों द्वारा निर्धारित आशय से अपने आशय की भिन्नता प्रतिपादित करते हुए, उन पारिभाषिक शब्दों पर प्राचीन शास्त्रकारों द्वारा आरोपित अर्थों का खण्डन करते हुए, स्वमतानुसार अर्थ, लक्षणवाक्यों में प्रतिपादित किया है। इस कारण पारिभाषिक शब्द एक ही होने पर, भी उसकी अर्थच्छटा में अन्तर दिखाई देता है। इस प्रकार का प्रसिद्ध उदाहरण है **'काव्य'** शब्द। दण्डी, भामह से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक सभी मौलिक चिन्तकों ने 'काव्य' शब्द का पारिभाषिक अर्थ अपनी अपनी धारणाओं के अनुसार पृथक्ता से खण्डन-मण्डनपूर्वक प्रतिपादित किया है। योग, धर्म, मोक्ष, ईश्वर, सुख, आत्मा, इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण शब्दों के अर्थ प्रत्येक शास्त्रकार ने अपनी अपनी धारणा के अनुसार आग्रहपूर्वक प्रतिपादन किये हैं। इसी कारण एक ही संज्ञा का प्रयोग करते हुए वे परस्पर विरोधी होते हैं। आज के लौकिक जीवन में भी यह प्रकार सर्वत्र दिखाई देता है। समाजवाद, राष्ट्रवाद, एकात्मता, हिन्दुत्व, जैसे आधुनिक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग तो सभी पक्ष करते हैं। किन्तु इन शब्दों की अर्थच्छटा के विषय में उनकी धारणा में भिन्नता होने कारण उनमें विरोधाभास प्रकट होता है।

तात्पर्य भारतीय संस्कृति के निधानभूत सभी शास्त्रग्रंथ संस्कृत भाषा में ग्रथित हुए। उनका विमर्श करने वाले भाष्य, अनुभाष्य, टीका, उपटीका, प्रकरण ग्रंथ आदि सभी वाङ्मय संस्कृत तत्वचिन्तकों ने पारिभाषिक शब्दों के आधार पर निर्माण किए। उन्होंने पुराने पारिभाषिक शब्दों के अर्थों की चर्चा की। उस चिन्तन में जहां सर्वथा नया आशय व्यक्त करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई, वहां नये पारिभाषिक शब्दों की निर्मिति की। साहित्य शास्त्र के इस प्रकार के उदाहरण में, अनेक अलंकार वाचक शब्द प्रस्तुत किए जा सकते हैं। अलंकारों की यथाक्रम बढ़ती गयी संख्या भी ऐसे पारिभाषिक शब्दों की संख्यावृद्धि का कारण ही हुई है।

परिभाषा के दो प्रकार

परिभाषा के क्षेत्र में यह दिखाई देता है कि, कुछ शब्द मूलतः लौकिक ही होते हैं, किन्तु शास्त्रकार अपनी

सुविधा के लिए उन पर अपना अभिप्रेत अर्थ आरोपित कर उन्हें विशिष्ट शास्त्र के क्षेत्र में पारिभाषिक कर देते हैं। उदा. **'गोदान'** शब्द लौकिक व्यवहार में गाय का दान इस अर्थ में प्रयुक्त होता है, किन्तु धर्मशास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्याश्रम के बाद, ''केशकर्तन विधि' यह अर्थ उस पर आरोपित किया। इसी प्रकार **'गोमुख'** (एक सुषिर वाद्य), **दिव्य** (धर्म परीक्षा) **धिषणा** (सोम रस तैयार करने का पात्र), **ध्रुवा** (अधर दिशा या नीचे की दिशा) इत्यादि अनेक शब्द इसी प्रकार से पारिभाषिक हुए हैं।

दूसरे प्रकार में ऐसे शब्द होते हैं जिनका उनके प्रतिपादक शास्त्र के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं प्रयोग नहीं होता। उदाहरणार्थ व्याकरण शास्त्रों में, टि, घु, कृत्, कृत्य, अच्, हल्, सर्वनाम प्रादि, चादि, इत्यादि अनेक शब्द ऐसे ही हैं कि जिनका लौकिक व्यवहार में कहीं भी प्रयोग नही होता। अपने शास्त्र की सुविधा के लिए पाणिनि ने स्वयं उन शब्दों की निर्मिति की और अपना विशिष्ट अर्थ उन पर आरोपित किया।

इस द्विविधता की दृष्टि से हम परिभाषा के दो प्रकार मान सकते हैं। आर्थी पारिभाषा और (२) शाब्दी पारिभाषा। उपरिनिर्दिष्ट उदाहरण में से दिव्य, धिषणा आदि **आर्थी परिभाषा** के और टि, घु, आदि **शाब्दी परिभाषा** के उदाहरण हैं।

अनेक पारिभाषिक शब्दों में व्युत्पत्ति या निरुक्ति के द्वारा अभिव्यक्त होने योग्य अर्थ नहीं होता। उनका अर्थ कृत्रिम सा सांकेतिक (अर्थात् ग्रंथकार द्वारा आरोपित) होने के कारण टीका भाष्य आदि के अभाव में वे शब्द दुर्बोध तथा दुरूह हो जाते है। इसका उदाहरण सामवेद का 'पुष्पसूत्र' नामक (गोभिल ऋषिकृत) प्राचीन ग्रंथ। इस ग्रंथ के पहले चार प्रपाठकों में नाना प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन प्रपाठकों पर किसी की भी टीका उपलब्ध न होने के कारण, उन सभी सांकेतिक स्वरूप के शब्दों का अर्थ समझना आज असंभव है। किन्तु उसी ग्रंथ के अवशिष्ट भाग पर अजातशत्रु का भाष्य होने के कारण, वहां दुर्बोधता का परिहार हुआ है। तात्पर्य यही है कि **टीका, भाष्य आदि ग्रंथों में मिलने वाले पारिभाषिक शब्दों के अर्थों का कोशरूप में चयन होना नितान्त आवश्यक है।** इन दोनों प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का स्वरूप लौकिक दृष्टि से गूढ सा ही होता है। विग्रह करने से या प्रकृतिप्रत्यय का विभाजन करने पर शास्त्रों में जिस अर्थ से उनका प्रयोग होता है वह अर्थ प्रायः प्रतीत नहीं होता। उदाहरणार्थ **केंद्रयोग** (ज्योतिष शास्त्र), **कृच्छ्रचतुर्थी** (धर्मशास्त्र), **कुम्भीपाक,** (पुराण), **कुतपकुल** (तंत्रशास्त्र),. **कूटशाला,** (शिल्पशास्त्र), **केवली,** (जैनमत) इ.। अतः ऐसे शास्त्रीय अर्थ जानने के लिए शास्त्रग्रंथों की टीकाओं का अवगाहन आवश्यक होता है। इसी दृष्टि से टीकाकारों द्वारा प्रतिपादित अर्थों का चयन कोशरूप में करने की आवश्यकता थी। प्रस्तुत कोश के चयन में यही मुख्य प्रयोजन है।

पर्यायवाचक संग्रह

प्रायः सभी विकसित भाषाओं में १) एक ही अर्थ के वाचक अनेक शब्द तथा २) एक ही शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। एकार्थबोधक अनेकशब्दता और अनेकार्थबोधक एकशब्दता यह भाषा के विकास, प्रगल्भता एवं वैभव का एक प्रमाण है। संस्कृत भाषा में यह वैशिष्ट्य अधिक मात्रा में दिखाई देता है। कृत्-तद्धित प्रत्ययों, उपसर्गों एवं समासों के द्वारा अत्यधिक अर्थ एक ही शब्द में समाविष्ट करने की संस्कृत भाषा की शक्ति अनन्यसाधारण है। व्युत्पत्ति तथा निरुक्ति के द्वारा साधित शब्द के स्वरूप का विवरण करने से, शब्द के अन्तरंग में भरा हुआ विशिष्ट वाच्यार्थ कोई भी 'वाग्योगविद्' (वैयाकरण) कोश की सहायता के बिना जान सकता है। उसी प्रकार वह अपना अभिप्रेत अर्थ सुचारु रूप से व्यक्त करने वाले शब्दों का निर्माण भी कर सकता है। शास्त्रकारों ने इसी तंत्र के अनुसार पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया है। लौकिक व्यवहार में शिष्ट वर्ग ने इसी पद्धति से लौकिक व्यवहार में उपयोगी गुणद्योतक, क्रियाद्योतक तथा गुणक्रिया-द्योतक नामों की निर्मिति की है। इस पद्धति के कारण संस्कृत ग्रंथों में एक ही पदार्थ के वाचक अनेक नाम निर्दिष्ट हुए। पद्यात्मक ग्रंथों में छन्दोरचना की सुविधा के लिए तथा गण-मात्रा का औचित्य सम्हालने के लिए, एकार्थवाचक अनेक शब्द ग्रंथों मे लिखे गये। वे शब्द एक ही पदार्थ का बोध तो करते ही हैं, किन्तु साथ ही उस पदार्थ का कुछ विशिष्ट गुण या क्रिया की ओर भी संकेत करते हैं। जैसे मित्र, रवि, भानु, खग, पूपन्, हिरण्यगर्भ, इत्यादि लोकप्रसिद्ध सूर्य के १२ नाम सूर्य के ही वाचक हैं, किन्तु व्युत्पत्ति की दृष्टि से प्रत्येक शब्द सूर्य की एक एक पृथक् विशेषता सूचित करता है। इस प्रकार के एकार्थबोधक अनेक पर्यायशब्दों का व्युत्पत्ति तथा निरुक्ति के तंत्रानुसार मनन करने पर उस वाच्य पदार्थ का बहुरंगी वैशिष्ट्य ध्यान में आ सकता है। संस्कृत के अध्येता को शास्त्रीय ग्रंथों के सम्यक् ज्ञान के लिए पर्याय शब्दों का व्युत्पत्ति-निरुक्ति सहित ज्ञान होना अत्यावश्यक है। इस ज्ञान से प्राचीन ग्रंथ की दुरूहता या दुर्बोधता लुप्त होती है। पर्यायवाचकों का अत्यल्पज्ञान रखने वाले लोग ही संस्कृत ग्रन्थों को दुर्बोध मानते हैं। इसमें दोष ग्रन्थों या ग्रन्थकारों

का नहीं है। दोष है आजकल के संस्कृत स्नातकों की अल्पज्ञता का। प्राचीन शिक्षापद्धति में पर्यायवाचकों के भरपूर ज्ञान की आवश्यकता को ध्यान में लेते हुए संस्कृत के अध्ययन का श्रीगणेश अमरकोश कंठस्थ करने से होता था। अनेकार्थवाचक एक शब्द और एकार्थबोधक अनेक शब्द, इनका इसी प्रकार चयन करके अमरसिंह ने अपना नाम लिंगानुशासनात्मक कोश निर्माण किया है। अमरकोश का सम्यक् ज्ञान रखने वाला संस्कृतस्नातक संस्कृत ग्रन्थों की दुर्बोधता का अनुभव नहीं करता।

प्रस्तुत परिभाषा कोश की पूर्णता की दृष्टि से हमने पर्यायवाचकों का चयन कुछ मात्रा में किया है। यह चयन मुख्यतः अमरसिंहकृत नामलिंगानुशासन तथा महेन्द्र भोगिक कृत धन्वन्तरि निघण्टु पर आधारित है। पुनरुक्ति दोष टालने की दृष्टि से इसमें कुछ तुल्यरूप शब्दों का निर्देश नहीं किया।

लौकिक व्यवहार में विविध शब्द एकार्थ में प्रयुक्त होते है, किन्तु वे अनेक पर्याय शब्द जाति प्रकार के बोधक होते है। विशेषतः सिंहादि पशुवाचक पर्यायशब्दों में यह वैशिष्ट्य दिखाई देता है। सिंह के पर्याय सिंह की जातियों के भी बोधक होते हैं। इसी कारण उस प्राणि की जितनी जातियाँ होती हैं, उतने पर्याय शब्द कोश में मिलते हैं। प्राय सभी पदार्थो के पर्याय शब्द उस पदार्थ का आकार रंग, रूप, वैचित्र्य रस, स्पर्श, आदि वैशिष्ट्यों का बोध कराते हैं।

कोशस्वरूप

संस्कृत के प्राचीन कोशों की नामावली प्रस्तुत वाङ्मय कोश के द्वितीय खंड के परिशिष्ट द-पृष्ठ ५५५-६० में दी गयी है। वे सारे कोशग्रन्थ प्रायः शब्दार्थ-कोश हैं। उनमें अनेक पारिभाषिक शास्त्रीय शब्दों का अन्तर्भाव यथावसर हुआ है, किन्तु उन शब्दों का वर्गीकरण शास्त्रानुसार किसी कोश में नहीं मिलता। क्वचित् अकारादिक्रम में संगृहीत शब्दों की सूची में जिज्ञासु को ज्ञातपूर्व शब्द, या शास्त्रीय ग्रंथ के वाचन में अकस्मात् उपलब्ध शब्द का अर्थ मिल सकता है। किन्तु जिस जिज्ञासु को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थो से संबंधित श्रौत-स्मार्त धर्म, आस्तिक-नास्तिक दर्शन, साहित्य, संगीत, व्याकरण, न्याय, योग, मीमांसा आदि शास्त्र, जैन, बौद्ध आदि संप्रदाय इत्यादि विषयों के शास्त्रोक्त पारिभाषिक शब्दों, (जो उसके लिए सर्वथा अज्ञात है और ग्रन्थावलोकन करने का अभ्यास न होने के कारण जिनका कहीं अन्यत्र दर्शन होने की संभावना नहीं ऐसे की शब्दों) को जानने की इच्छा पूर्ण करने वाला **सर्वशास्त्रावगाही या सर्वशास्त्रस्पर्शी कोश** प्राचीन काल में कहीं निर्माण नहीं हुआ था।

बौद्ध वाङ्मय में बौद्ध धर्म तथा दर्शन की पृथक् परिभाषा का परिचय देने वाले कुछ कोश निर्माण हुए थे जिनमें **महाव्युत्पत्ति कोश** सुप्रसिद्ध है। इसमें बौद्ध धर्म से संबंधित विशिष्ट संज्ञाओं शरीररावयवों, प्राणियों, वनस्पतियों, रोगों, तथा कुछ अवांतर विषयों के पारिभाषिक शब्दों का चयन हुआ है। ज्योतिष तथा वनस्पति शास्त्र विषयक कुछ कोशों के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

अर्वाचीन कोश ग्रन्थों में वामनाचार्य झलकीकर के **न्यायकोश** में दार्शनिक परिभाषा का उत्तम संग्रह हुआ है। उसमें एक ही शब्द के विविध शास्त्रग्रन्थों में दिए लक्षण या विवरण मूल संस्कृत अवतरणों में मिलते हैं। अतः संस्कृत पंडितों के लिए प्रस्तुत न्यायकोश की उपयुक्तता असाधारण महत्त्व रखती है। किन्तु एक ही शब्द के अनेकानेक प्रकार के विवरणों तथा लक्षणों के कारण, सामान्य जिज्ञासु संदेहाकुल सा हो जाता है। वहाँ अनेक शब्द ऐसे भी हैं, जिनका एक ही आशय अनेक प्रमाणवचनों में कहां गया है। वाक्य अनेक किन्तु उनका विवरणात्मक सारभूत अर्थ एक, इसी कारण कोश का कलेवर बढ़ा है। अनेक प्रमाणवचनों के उद्धरण देने की दृष्टि से इस पुनरुक्तता का उपयोग हो सकता है। एक ही विचार अनेक विद्वानों द्वारा अन्यान्य शब्दों, वाक्यों तथा उदाहरणों द्वारा किस प्रकार कहा जाता है, इसका भी परिचय न्यायकोश की इस पुनरुक्तता के कारण होता है। **शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्यम्** और **अभिधान-राजेद्र** ये आधुनिक कोश सर्वसमावेशकता की दृष्टि से प्रशंसनीय हैं। किन्तु इनमें शास्त्रीय संज्ञाओं का चयन लौकिक शब्दों के साथ ही हुआ है।

डॉ. सूर्यकांत के **वैदिक कोश** में वेद वाङ्मय में प्रयुक्त सभी शब्दों का चयन हुआ है। वेदों के अभ्यासकों के लिये यह कोश अत्यंत उपयुक्त है। इसमें वेदोक्त सभी शब्दों का अन्तर्भाव करने के प्रयत्न में वैदिक धर्म के "पारिभाषिक" शब्दों का भी चयन हुआ है। इस कोश में उसी प्रकार के शब्दों का चयन करने का प्रयत्न हुआ है। कोशवाङ्मय में शब्दार्थ कोश की आवश्यकता वैदिक शब्दों के गूढ अर्थो की जिज्ञासा पूर्ण करने के लिए सर्व प्रथम हुई; तब निघण्टु नामक वैदिक शब्दों का कोश निर्माण हुआ। निघण्टु के रचयिता का नाम महाभारत के अनुसार कश्यप है। निघण्टु के टीकाकार यास्काचार्य का नाम वैदिक वाङ्मय में प्रख्यात है। यास्काचार्य निघण्टु को "समाम्नाय" कहते हैं। उन्होंने शब्द से ही अर्थ का निर्वचन या निर्धारण करने का ज्ञान सर्वप्रथम प्रकट किया।

इस निरुक्तपद्धति के कारण वैदिक शब्दों के गूढ अर्थ समझना संभव हुआ। यास्काचार्य की निरुक्त नामक टीका के बिना निघण्टु का ज्ञान असम्भव होने के कारण यथावसर **निघण्टु** और **निरुक्त** शब्द एकार्थक हो गये। वैदिक शब्दार्थ कोश के अर्थ में "निरुक्त" शब्द ही सर्वत्र प्रचलित हुआ। निरुक्त एक वेदांग (निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते) अर्थात् वेदपुरुप का श्रवणेन्द्रिय माना गया। दुर्गाचार्य के मतानुसार निरुक्त, वैदिक शब्दों का अर्थबोध करने वाला अंग होने के कारण, अन्य वेदांगों एवं शास्त्रोंमें से श्रेष्ठ है।

निघण्टु के पांच अध्यायों में से तीन अध्यायों को "नैघण्टुक काण्ड" कहते हैं। इस काण्ड में एकार्थवाचक शब्दों का संग्रह है। चौथे अध्याय को "नैगमकाण्ड" कहते हैं। इस में अनेकार्थवाचक शब्दों का चयन हुआ है। पांचवें अध्याय का नाम है "दैवतकाण्ड"। इसमें अग्नि से देवपत्नी तक वैदिक देवताओं की नामावली दी है।

यास्क का "निरुक्त" निघण्टुपर आधारित है। देवराज यज्वा ने "निघण्टुनिर्वचन" नामक टीका में नैघण्टुक काण्ड का ही सविस्तर विवरण किया है। इसके बाद भास्करराय नामक प्रसिद्ध तांत्रिक ने अमरकोश की पद्धति के अनुसार निघण्टु के सारे शब्दों का पद्यात्मक चयन किया है। स्कन्दमहेश्वर (या स्कन्दस्वामी) और वररुचि नामक विद्वानों की अन्य दो टीकाएँ, निरुक्त का अध्ययन करनेवालों को उपयोगी हैं। शास्त्रग्रंथो में पारिभापिक शब्दों का अर्थ स्वयं शास्त्राकार स्पष्ट करते हैं। किंब्हुना अपने पारिभापिक शब्दों का निश्तिच अर्थ बाताना उनका ही आवश्यक कर्तव्य है क्यों कि वे शब्द उन्हीं के द्वारा उत्पन्न होते हैं। अपने शब्दों की निर्मिर्ति करते समय वे यास्क की निरुक्ति तथा पाणिनि की व्युत्पत्ति प्रक्रिया का आधार लेते हैं। शास्त्रोक्त पारिभाषिक शब्दों का शास्त्रकार द्वारा प्रतिपादित अर्थ ठीक समझने की दृष्टि से निरुक्ति और व्युत्पत्ति की प्रक्रिया अत्यंत सहायक होती है। विस्तृत अर्थ का बोध संक्षेप में करने के हेतु शास्त्रकारों ने पारिभापिक शब्द निर्माण किए हैं। प्रस्तुत कोश में उनका स्पष्टीकरण संक्षेपतः देने का प्रयास यथामति किया है। उस स्पष्टीकरण में तत्-तत् शास्त्रगत पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करना अनिवार्य था। हमने ऐसे स्थानों में उनका संक्षिप्त स्पष्टीकरण स्थान स्थान पर दिया है। इससे किंचित् मात्रा में पुनरुक्ति दोष हुआ है, परंतु उस दोष के अभाव में दुर्बोधता दोप होता। दोनों दोषो की शृंगापत्ति में हमने पुनरुक्ति दोष, सुबोधता के हेतु किया है। व्याकरण की परिभापा के स्पष्टीकरण में पुनरुक्ति का प्रमाण अधिक हुआ है। शास्त्रों में कथित अनेक पारिभापिक शब्द ऐसे होते हैं कि जिनके लौकिक तथा पारिभापिक अर्थ में अन्तर नहीं होता। ऐसे शब्द शास्त्रीय पारिभापिक होने पर भी शास्त्राकार स्वयम् उनका निर्वचन नहीं करते। जैसे व्याकरण शास्त्र में "संहिता, अवसान" जैसी संज्ञाओं का प्रतिपादन सूत्रकार ने "परः सन्निकर्पः संहिता" (१-४-१०९) तथा विरामोऽवसानम् (१-४-११०) इत्यादि सूत्रों में किया है। किन्तु उनके संबंध में वार्तिककार (कात्यायन) कहते हैं कि, संहिता और अवसान शब्द लोगों से परिचित होने से उनके विपय में निर्वचन करना अनावश्यक है। (संहिताऽवसानयोः लोकविदितत्वात् सिद्धम्)। इस वाक्य में कात्यायन मुनि ने पारिभापिक शब्दों का चयन तथा विवरण करने की मर्यादा का ज्ञापन किया है। तदनुसार लोकप्रसिद्ध पारिभाषिक शब्दों का विवरण यथासंभव टालने का प्रयत्न हुआ है। फिर भी जहां ऐसे अनावश्यक शब्दों का चयन हुआ हैं उसे क्षम्यापराध माना जाय यही प्रार्थना है।

कोश के चयन का स्वरूप

अनेक पारिभापिक शब्द ऐसे होते हैं कि उनका प्रयोग अन्यान्य मतों के प्रतिपादक ग्रंथों में होता है किन्तु उनके आशय में भिन्नता होती है। वर्णक्रमानुसार शब्द समान होने पर भी "अर्थभेदे शब्दभेदः" इस न्याय के अनुसार वे तत्वतः भिन्न होते हैं, किन्तु उनका भिन्नत्व दिखाई नहीं देता। **संस्कृत शास्त्रों में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का विशिष्ट पद्धति के अनुसार संकलन तथा उनका समुचित विवरण इतना ही उद्देश्य इस कोश के संपादन में रखा है। अतः वर्णतः समान किन्तु अर्थतः भिन्न स्वरूप के शब्दों की सभी अर्थच्छटाओं का दर्शन यहां नहीं किया गया।** उदाहरणार्थ : – बोधिचित्त या बोधिवज्र इस बौद्ध पारिभापिक शब्द का प्रयोग महायान संप्रदाय के बोधिचर्यावसार ग्रंथ में तथा वज्रयान के गुह्यसमाजतंत्र में हुआ है, किन्तु दोनों संप्रदायों के अनुसार उस शब्द के आशय में भेद है। प्रस्तुत कोश में उन शब्दों का विवरण देते समय दोनों आशय नहीं दिए, केवल एक मात्र आशय विवरण के रूप में दिया गया है। किन्तु जिस एक शब्द का प्रयोग विविध शास्त्रों में उन विशिष्ट शास्त्रों के पारिभापिक अर्थो का आविष्करण करणे हेतु किया गया है, **ऐसा शब्द, शास्त्रानुसार परिभाषा के चयन में संकलित हुआ है और उसका अर्थ शास्त्रानुसार दिया गया है।** इस अर्थ में भी मतभेदात्मक विवरण नहीं दिया गया, केवल एक विशिष्ट अर्थ ही दिया गया है। **मतभेदों का संकलन और उनका विश्लेषण इस कोश का प्रयोज़न नहीं है** यह ध्यान में रखकर ही कोश का अवगाहन किया जाय।

चयन का स्वरूप

प्रस्तुत कोश में उद्धृत व्युत्पत्तिसिद्ध शब्दों के लौकिक अर्थ होते हैं जैसे पिप्पलाद शब्द के पिप्पल खाने वाला या किसी आचार्य का नाम ये दो अर्थ होते हैं। किन्तु इस प्रकार के **सामान्य अर्थों का चयन हमने नहीं किया।** पिप्पलाद शब्द, अथर्ववेद की एक शाखा की संज्ञा के लिए वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त है, उतना ही पारिभाषिक अर्थ कोश में संगृहीत किया है। **प्रायः संपूर्ण कोश में इस नियम का पालन किया है।** प्रत्येक शब्द के अपारिभाषिक अर्थों का भी निर्देश यहां होता तो यह "पारिभाषिक शब्दार्थ कोश" नहीं होता। फिर तो उसका स्वरूप अन्य प्रसिद्ध शब्द कोशों के समान ही होता। अमरकोश में पीयूष शब्द का अमृत अर्थ दिया है, किन्तु वेदों में, सद्यःप्रसूता गौ का प्रारंभिक दूध या सोमरस के अर्थ में इसकां प्रयोग हुआ है। ऐसे विशिष्ट अर्थों का यहा चयन हुआ है। कोश में निर्दिष्ट वैदिक शब्द संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद्, कल्पसूत्र आदि वैदिक ग्रन्थों में प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु वैदिक जीवन का प्रधान अंग था यज्ञ। अतः **वैदिक कर्मकाण्ड की परिभाषा में प्रधानतया यज्ञ के संबंध में उपयुक्त प्रायः सभी शब्दों का ही चयन करने का प्रयत्न किया है।** परवर्ती संस्कृत वाङ्मय में धर्मशास्त्र और वेदान्त दर्शन में इनमें से कुछ शब्दों का प्रयोग हुआ है। अन्यत्र वे प्रायः नहीं मिलते। डॉ. सूर्यकान्त ने अपने वैदिक कोश में वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त सभी प्रकार के शब्दों (उनमें व्यक्ति तथा नदी, पर्वत, देश, स्वर्गादि परलोक आदि से संबंधित) का चयन किया है। प्रस्तुत कोश का उद्देश्य केवल "पारिभाषिक" शब्दों का एकत्र चयन करना इतना ही संकल्पित होने से शब्द का चयन और उसका प्रमुख अर्थ दिया गया है। साथ में संदर्भ का निर्देश किसी एक ग्रंथ से दियॆा गया है, सभी से नहीं।

"धर्म विभाग" के अन्तर्गत वैदिक परिभाषा में विविध प्रकार के यज्ञों के नाम निर्दिष्ट हुए हैं। उन सभी का परिचय देना संभव नहीं है। निर्दिष्ट यज्ञों की नाममात्र विशेषता यहां संक्षेप में कही है। यज्ञ के सारे प्रकारों का परिचय देना कोश का उद्देश्य नहीं है अपितु यज्ञीय परिभाषा का संकलन ही हमारा उद्देश्य है। डॉ. सूर्यकान्त द्वारा संपादित कोश में तथा भारतीय संस्कृति कोश (मराठी) में यज्ञों का कुछ अधिक मात्रा में परिचय जिज्ञासुओं को मिलेगा। श्रौतसूत्रों तथा शतपथ, ताण्ड्य, छन्दोग आदि ब्राह्मण ग्रन्थों से ही यज्ञों का वर्णन सर्वत्र लिया गया है। इस विषय में वे ही प्रमाण ग्रंथ हैं।

प्रस्तुत कोश में पारिभाषिक शब्दों के विवरण में अनेक स्थानों पर उस विशिष्ट शब्द के सामान्य अर्थ में **अन्तर्भूत विविध प्रकारों का निर्देश** उसी स्थान पर किया है। उन प्रकारवाचक शब्दों का निर्देश करते समय सम्पूर्ण शब्द में संभाव्य पुनरुक्ति टालने हेतु, एक स्थान में पूर्ण सामासिक शब्द का निर्देश होने पर बाद में समास के पूर्व पद के सामने ०चिन्ह दिया है, जो उसके उक्त पद का द्योतक है (उदा. महायज्ञ "के पांच प्रकारों का निर्देश करते समय देवयज्ञ के बाद भूत० पितृ० मनुष्य० और ब्रह्म०, इस प्रकार से निर्देश हुआ है। ऐसे स्थानों में ० के स्थान पर प्रथम सामासिक शब्द में निर्दिष्ट उत्तर पद (यज्ञ आदि) का ग्रहण करना चाहिये।

शब्दस्वरूप

सामविशेष – वैदिकी परिभाषा में अनेक शब्दों के स्पष्टीकरण में "सामविशेष" शब्द का प्रयोग किया है। विशिष्ट सामवेदी मंत्रों को दी गई संज्ञा उस शब्द से सूचित होती है, इतना ही उसका अर्थ समझना चाहिए। साममंत्रों को वह संज्ञा प्राप्त होने का कारण उन मंत्रों में उस विशिष्ट शब्द प्रयोग किया गया है। उसी विशिष्ट शब्द की संज्ञा उन सामों को ब्राह्मण ग्रंथों में दी गई है। उदा. ब्रह्मयशसं वा एतानि सामानृचा श्रोत्रियाणि ब्रह्मयशसी भवति यद्वाहिष्ठीयेन स्तुष्टुवानः "इस वचन में (तांड्यब्राह्मण १५-५-२६) यद्वाहिष्ठीय "शब्द से उस शब्दयुक्त साममंत्र का निर्देश हुआ है। इसी प्रकार रथंतर, यौधाजय, पाष्ठोह, पार्थुरश्म दिवाकीर्त्य, गौरीवीति, गौपूक्त, यौक्ताश्व, आदि सामविशेष वाचक शब्दों का अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये। वे वेदसंबंधी पारिभाषिक शब्द माने जा सकते हैं।

प्रस्तुत कोश की वैदिक पारिभाषा में अश्वमेध तथा पुरुषमेध की व्यक्तियों की सूची में उल्लिखित पशु, पक्षी आदि के नामों का चयन यथास्थान किया गया है। उनमें से कुछ पशु-पक्षी अज्ञात से है। उल्लेखित प्राणियों में प्रायः सभी ऐसे दिखाई देते है कि जिनसे मानव जीवन को पीडा होती है। उन प्राणियों के वाचक शब्दों में, अनेक शब्दों का प्रयोग लौकिक संस्कृत में नहीं दिखाई देता। अतः वे सामान्य पशु-पक्षियों के वाचक होते हुए भी पारिभाषिक से हो गए है। इसी कारण वेदों के भाष्यकारों को उनके अर्थ देने की आवश्यकता उत्पन्न हुई थी। पाश्चात्य वैदिक पंडितों ने भी उनके अर्थों के संबंध में अपने अपने मत प्रतिपादन किए हैं। उदाहरण के लिए कुछ शब्द – देखिए पर्णक, परावत, पारुष्ण, इत्यादि।

वेदमूलक परिभाषाएँ

पारिभाषिक शब्दों में कुछ शब्द ऐसे है जिनका मूल वेंदमंत्रों में मिल सकता हैं। सर्वपरिचित **'रस'**- शब्द इसका उदाहरण कहा जा सकता है। काव्य या सभी ललित कलाओं में सहृदयों को आनन्द देने की शक्ति होती है। इस काव्यानन्द (या कलानन्द) की मीमांसा करने वाले मनीषियों ने उसका स्वरूप चर्वणाजन्य आस्वादात्मक कहा है। इस अपूर्व आस्वाद की कल्पना ''ब्रह्मास्वादसहोदर'' (ब्रह्मानंद के समान) इस शब्द द्वारा दी गयी है। उपनिषदों में ब्रह्म का निर्देश ''आनंदं ब्रह्मेति व्यजनात्। रसो वै सः'' इत्यादि मन्त्रों में किया है। काव्यानंद का ब्रह्मानंद से साधर्म्य सूचित करने की दृष्टि से मन्त्रप्रयुक्त 'रस' शब्द अधिक समर्पक होने के कारण साहित्यशास्त्र की परिभाषा में उसे अपनाया गया। आस्तिक दर्शनों के पारिभाषिक शब्दों में इस प्रकार वेदमूलक शब्दों का प्रमाण अधिक मात्रा में मिलता है।

पुराण कथामूलक परिभाषा

पारिभाषिक संज्ञाओं में कुछ संज्ञाएँ ऐसी मिलती हैं जिनकी उपपत्ति शास्त्रकारों ने पौराणिक कथाओं के आधार पर दी है। उदाहरणार्थ ''नान्दी'' शब्द की उपपत्ति भावप्रकाशनकार शारदातनय ने इस प्रकार दी है –

''नन्दी वृषो वृषांकस्य जगदादौ जगत्पतेः। नृत्यतः कल्पनायोगात् जगाम किल रंगताम्।
तस्य तद्रूपसंबन्धात् पूजा नान्दीति कथ्यते ।।
(भावप्रकाशन - अधिकार ७)

अर्थात् – जगदुत्पत्ति के पूर्व शिव भगवान् की नृत्याभिलाषा पूर्ण करने के लिए नन्दी स्वयं रंगस्वरूप (रंग = नृत्य - नाट्यादि के लिए उपयुक्त समग्र सामग्री) हो गया। इस प्रकार नन्दी से संबंधित होने कारण ''पूर्वरंग'' को''नान्दी''कहते हैं। वैदिक शब्दों में से कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके प्रयोग अतिप्राचीन शास्त्रग्रंथों में विशिष्ट रूढार्थ से भिन्न अर्थ में मिलते हैं जैसे चरकसंहिता में 'उपनिषद्' शब्द का प्रयोग केवल स्थान के अर्थ में किया है। – (विस्तरेण कल्पोपनिपदि व्याख्यास्यामः च. सू.अ. ४) ऐसी अवस्था में उन शब्दों के रूढ पारिभाषिक अर्थ गौण हो जाते हैं।

धर्मशास्त्र विषयक स्मृतिग्रनथो में उल्लिखित विविध जातियों के वाचक पारिभाषिक शब्दों के स्पष्टीकरण में यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि प्रायः सभी जातियाँ वर्णसंकर के कारण उत्पन्न हुईं। उन जातियों में अनुलोम, प्रतिलोम विवाह, व्यभिचार या काममूलक बलात्कार आदि के कारण तथा वृत्तिभेद के कारण अनेक उपप्रकार माने जाते हैं। जातिवाचक शब्दों के स्पष्टीकरण में स्मृतिकारों के मतभेद यत्र तत्र दिखाई देते हैं। कुछ जातियों को एक स्मृतिकार स्पृश्य तो दूसरा अस्पृश्य कहता है। दो वर्णों के संकर में भी स्त्री और पुरुष के भेद के कारण जाति में भिन्नता आती है, जैसे वैश्य पुरुष और शूद्र स्त्री तथा शूद्र पुरुष और वैश्य स्त्री के संबंध से जाति में भिन्नता मानी गयी हैं। जातिभेद के सूचक पारिभाषिक शब्द, प्राचीन भारत में प्रचलित भिन्नजातीय विवाहों का प्रबल प्रमाण है। निम्नस्तरीय जातियों के संकर से उत्पन्न संतान की गणना प्रायः शूद्र वर्ण में की गई है जैसे मागध जाति को वैखानस स्मृति ने (१०-१३) शूद्र कहा है।

जातियों में उच्चनीचता उत्पन्न होने का कारण विवाह की वैधता और अवैधता दिखाई देती है। सूत और रथकार दोनों जातियाँ क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मण स्त्री की संतान है, किन्तु सूत की उत्पत्ति वैध विवाह से और रथकार की अवैध विवाह से होने के कारण, सूत जाति उच्च और रथकार नीच मानी जाती है। धर्मशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों में जिन अनेक जातियों के वाचक शब्दों का अन्तर्भाव हुआ है, उन शब्दों का स्पष्टीकरण अन्यान्य धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में मिलता है। जातिव्यवस्था के विकास काल में ये विशिष्ट जातिवाचक शब्द धर्मशास्त्रकारों ने निर्माण किये। सभी जातिवाचक शब्द जिन विविध जातियों का बोध कराते है, वे सभी जातियाँ संकरोत्पन्न हैं। उनमें से कई जातियाँ प्रादेशिक है। उनके भी उपासना, आचारपद्धति, संप्रदाय आदि के कारण अनेकविध उपप्रकार निर्माण होते रहे और उनके वाचक लौकिक शब्द प्रचलित हुए। ऐसे **लौकिक शब्दों का अन्तर्भाव प्रस्तुत कोश में नहीं किया। प्रायः धर्मशास्त्र विषयक संस्कृत ग्रन्थों में प्रयुक्त शब्दों का ही निर्देश यहां हुआ है।** संकर करने वाले वर्णो तथा जातियों का निर्देश सर्वत्र किया गया है।

विवाद्य अर्थ

शब्द के कृत्रिम या पारिभाषिक अर्थ में, शास्त्रकार अपनी अपनी धारणा के अनुसार प्रायः परिवर्तन करते हुए दिखाई देते है। उदाहरणार्थ ''काव्य'' शब्द का सामान्य अर्थ सर्व परिचित है। वह कव् धातु के अर्थ पर आधारित व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ है। किन्तु काव्यशास्त्र (या साहित्यशास्त्र) विषयक ग्रंथोंके लेखकों ने अपनी अपनी धारणा के

अनुसार काव्य के लक्षणस्वरूप पारिभाषिक अर्थ प्रतिपादन किए है। इतना ही नहीं अपितु उन्होंने अपने अर्थ से भिन्न अर्थ प्रतिपादित करने वाले लक्षणों का सयुक्तिक खंडन करने का भी प्रयत्न किया है। काव्य शब्द के विविध पारिभाषिक अर्थों का खण्डन करते हुए अपने अभिप्रेत अर्थ की यथार्थता स्थापन करने का अतिरेक जगन्नाथ पंडित के रसगंगाधर में दिखाई देता है। काव्यशास्त्रोक्त गुणों, अलंकारों, दोषों आदि के वाचक शब्दों के पारिभाषिक अर्थों में यह प्रवृत्ति अधिक मात्रा में दिखाई देती है।

एक ही शास्त्र की नानार्थक संज्ञाएँ

शास्त्रकारों द्वारा एक ही संज्ञा का अन्यान्य शास्त्रों में विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ निर्धारित होने के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। इस प्रकार **एक ही संज्ञा को पारिभाषिक अनेकार्थता** आने पर भी शास्त्रगत प्रकरण द्वारा उनके अर्थ उन स्थानों पर निश्चित होने से, जिज्ञासु को विशेष सन्देह होने की संभावना नहीं रहती।

इसके विपरीत, **एक ही शास्त्र में एक ही संज्ञा के अनेक अर्थ** दिए जाने से सन्देह उत्पन्न होने की संभावना बढ़ती है। "संशयोच्छेद" शास्त्र का एक प्रमुख प्रयोजन होता है। किन्तु एक ही शास्त्र में पारिभाषिक संज्ञा के अर्थ में वैविध्य होने पर यह शास्त्रप्रयोजन सिद्ध नहीं होता। नाट्यशास्त्र में इस प्रकार की संदेहास्पद पारिभाषिक संज्ञाए मिलती हैं। जैसे –

परिकर = (१) मुखसन्धि का एक प्रकार। (२) एक अर्थालंकार।
प्राप्ति = (१) मुखसन्धि का एक प्रकार। (२) नाट्य लक्षणों का एक प्रकार
विरोध = (१) प्रतिमुख सन्धि का एक अंग। २) एक अर्थालंकार।
अनुमान = १) गर्भसन्धि का एक अंग। २) एक अर्थालंकार।
त्रोटक = १) गर्भसन्धि का एक अंग। २) उपरूपकों का एक प्रकार।
सन्धि = १) निर्वहण सन्धि का एक अंग। २) अवस्था और अर्थप्रकृति के संमन्वय की संज्ञा।
अर्थापत्ति = नाट्यलक्षणों का एक प्रकार। २) एक अर्थालंकार।
हेतु = १) नाट्यलक्षणों का एक प्रकार। २) एक अर्थालंकार।
दृष्टान्त = १) नाट्यलक्षणों का एक प्रकार। २) एक नाट्यालंकार। (३) एक अर्थालंकार
युक्ति = १) मुखसन्धि का एक प्रकार। २) एक नाट्यालंकार।
रूपक = १) दृश्य काव्य। २) एक अर्थालंकार।
प्रसाद = निर्वहण सन्धिका एक अंग। २) एक गुण (शब्द, अर्थ तथा रस का।)
उद्घात्यक = १) वीथी का एक अंग। २) रूपक की प्रस्तावना एक प्रकार।
काव्य = १) उपरूपक का एक प्रकार। २) रसात्मक वाक्य।
माधुर्य = १) एक काव्य गुण। २) नायिका के २८ यौवनालंकारों में से एक।

इस प्रकार एक ही शास्त्र में एक ही संज्ञा की अनेकार्थता को सदोष मानना चाहिये।

संज्ञाओं की निरुक्ति तथा व्युत्पत्ति

पारिभाषिक शब्दों में अन्तर्भूत शास्त्रीय आशय को विवरणात्मक कारिकाओं या वृत्तियों द्वारा विशद करते हुए, यथासम्भव निरुक्ति तथा शास्त्रीय या लौकिक व्युत्पत्ति एवं विग्रहवाक्य के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न भी शास्त्रकारों ने किया है। जैसे अलंकारशास्त्र में **रूपक** = रूपारोपात् तु रूपकम्। = दृश्य काव्य को इस लिए रूपक कहा जाता है कि इस के प्रदर्शक (नटी-नट) इसमें चित्रित चरितों के रूप का, अपने मन में 'आरोप'' अर्थात् अनुसन्धान किये दिखाई देते हैं।

रसना = रसव्यक्तौ पुनर्वृत्ति रसनाख्यां परे विदुः "(व्यंजना वृत्ति को रसाभिव्यक्ति के कारण अन्य विद्वान् "रसना" कहते हैं। (अर्थात् वस्तु या अलंकार स्वरूप अर्थ को व्यंजित करने वाली शक्ति को 'व्यंजना' और रस-भाव को व्यंजित करते समय उसी शक्ति को "रसना" कहते हैं।

गर्भ = (गर्भसन्धि) "फलस्य गर्भीकरणाद् गर्भः" (साहित्यदर्पण)।

व्याघात (एक अर्थालंकार) = निष्पन्न वस्तु का विघात ही व्याघात का लक्षण है) (अलंकारसर्वस्व-विमर्शिनी)।

उत्प्रेक्षा : = उत् + प्र + ईक्षा = उत्कृष्टा प्रकृष्टा उपमानस्य ईक्षा (ज्ञानम्) उत्प्रेक्षा, अर्थात् प्रकृत (उपमेय) की उत्कृष्ट अप्रकृत (उपमान) के रूप में ईक्षा याने सम्भावनात्मक ज्ञान।

रूपक = "यदा तु विषयी विषयं रूपयति रूपवन्तं करोति तद् 'अन्वर्थाभिधानं' रूपकम् (एकावली)। (अर्थात् जब

विषयी विषय को रूपवान् करता है, तब रूपक यह अन्वर्थक संज्ञा प्राप्त होती है।)

अनुप्रास = अनु + प्र + आस = ''रसाद्यनुगतत्वेन प्रकर्षेण न्यासः (अर्थात् रसभावादिके अनुकूल, प्रकृष्ट (उत्कृष्ट प्रकार का) शब्दों का न्यास)।

ऐसे शब्दों का विवरण करने वालों ने इस प्रकार व्युत्पत्ति का विचार अवश्य किया। व्युत्पत्ति के अनुसार ही उन्होंने अपना विवरण लिखा है।

सामान्य-विशेष संबंध

पारिभाषिक शब्दों में यह विशेषता दिखाई देती है कि उनका एक अर्थ सामान्य बोधक होता है और उस सामान्य के अनेक प्रकारों के वाचक पारिभाषिक शब्द कभी कभी सामान्यवाचक शब्दों से समानता रखते हैं। किन्तु अनेक सामान्य अर्थबोधक पारिभाषिक शब्दों के विशेषार्थबोधक शब्द, सर्वथा पृथक्-स्वरूप होते हैं। जब वे तत्समान याने सामान्यर्थ वाचक के समान होते हैं, तब वे उस सामान्य पारिभाषा के प्रकार का बोध कराते हैं, किन्तु जब वे सर्वथा पृथक्स्वरूप होते हैं, तब वे किस सामान्य परिभाषा के अंगभूत हैं यह बोध नहीं होता।

तत्समान विशेषार्थबोधक पारिभाषिक शब्दों के उदाहरण हैः १) काव्य (सामान्य संज्ञा) के विशेष प्रकारों की वाचक संज्ञाएँ दृश्यकाव्य, श्रव्यकाव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, गद्यकाव्य, चम्पूकाव्य, इत्यादि।

२) वेद (सामान्यसंज्ञा) – के विशेष प्रकारों की वाचक संज्ञाएँ – ऋगवेद् यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, इत्यादि।

असमान विशेषार्थबोधक पारिभाषिक संज्ञाएँ – उदाहरण १) रूपक (सामान्य संज्ञा) विशेष संज्ञाएँ – नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, प्रहसन।

२) उपरूपक (सामान्य संज्ञा)। विशेष संज्ञाएँ – नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, रासक प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, नाट्यरासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका। सामान्य और विशेष संज्ञाओं में इस प्रकार जब किसी प्रकार की समानता नहीं होती, तब पारिभाषिक संज्ञाओं में विद्यमान सामान्य-विशेष संबंध का बोध अच्छे शास्त्री-पण्डित को भी होना कठिन होता है। **पारिभाषिक संज्ञाओं के विषय में यह दुर्बोधता एक बड़ी समस्या है।** इसकी प्रतीति सर्वत्र होती है। उदाहरण के लिए नाट्यशास्त्र की सन्धि-सन्ध्यंगवाचक संज्ञाएँ देखिये। सन्धि (या नाट्यसन्धि) :– सामान्य संज्ञा। इसके पांच प्रकारों की संज्ञाएँ हैं – मुखसन्धि, प्रतिमुखसन्धि, गर्भसन्धि, विमर्शसन्धि और निर्वहणसन्धि। पांच प्रकार की इन वाचक संज्ञाओं का निर्देश जब सन्धि संज्ञा के साथ होता है। तब तत्काल ध्यान में आ जाता है कि यह ''सन्धि'' नामक नाट्यशास्त्रीय संज्ञा का एक प्रकार है। परंतु जब इन पंचसन्धियों के ६५ प्रकारों के वाचक अंग, उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन इत्यादि ६५ पारिभाषिक शब्द पढ़ने में आते है, तब उनके नाट्यशास्त्रीय विशिष्ट अर्थ का तत्काल बोध, या स्मरण होना नाट्यशास्त्र के विशेषज्ञों के लिए भी टेढ़ी खीर है। उसी प्रकार, शाकुन्तल, वेणीसंहार जैसे नाट्यशास्त्रदृष्ट्या आदर्शभूत नाटकों का अध्ययन-अध्यापन करते समय पारिभाषिक संज्ञा में कथित सन्ध्यङ्गों के ६५ प्रकार का बोध तथा प्रकार वाचक संज्ञाओं का स्मरण अतिमार्मिक अध्येता को भी नहीं होता।

प्रस्तुत कोश में सर्वत्र ''सामान्य संज्ञा' का विवरण संक्षेपतः देते हुए, उसकी 'विशेष संज्ञाओं का चयन उसी के साथ किया है। और फिर उन विशेष संज्ञाओं का स्पष्टीकरण देते समय भी, विशेष प्रकारों की संख्या का निर्देश करते हुए संज्ञा का स्पष्टीकरण दिया है। **जहां विशेष प्रकारों की संख्या अत्यधिक है, वहां कुछ ही संज्ञाओं का स्पष्टीकरण दिया है, सभी नहीं** यह संक्षेप कोश की पृष्ठसंख्या की मर्यादा का अतिक्रमण टालने की दृष्टि से किया गया है; जैसे नाट्यशास्त्र की पांच सन्धियों की वाचक संज्ञाओं का स्पष्टीकरण करते हुए उन प्रकारों की संख्या का निर्देश किया है, किन्तु प्रत्येक प्रकारवाचक संज्ञा का स्पष्टीकरण नही दिया। यहाँ ''मुखसन्धि'' का स्पष्टीकरण देते हुए अंगों की १२ संख्या का निर्देश मिलेगा, किन्तु प्रकारवाचक सारी संज्ञाओं का स्पष्टीकरण नहीं दिया। **विशेष जिज्ञासु को अपनी इस सूक्ष्म जिज्ञासा की पूर्ति के लिए मूल शास्त्रग्रंथों का ही अवलोकन करना होगा।**

अर्थपरिवर्तन

लौकिक भाषा में अनेक शब्द ऐसे होते है जो मूलतः पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होते थे, किन्तु कुछ समय के बाद उनका पारिभापिक अर्थ लुप्त सा हो गया और सामान्य अर्थ में वे भाषा में प्रचलित हुए। उदाहरणार्थ : 'विप्र' शब्द ऋग्वेद में (१-१२९-२, २-१६२-७, ४-२६-१ इत्यादि अनेक स्थानों पर) ''अनुभूतिसम्पन्न गायक'' के विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। किन्तु बाद में यह शब्द विद्वान् ब्राह्मण का वाचक बन गया। आर्ष काव्यों के काल में यह केवल ब्राह्मण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऐसे शब्दों का प्रचलित रूढार्थ इस कोश में नहीं मिलेगा।

रूढ शब्दों के कृत्रिम अर्थ

भापा में ऐसे अनेक शब्द होते है, जिनका लौकिक व्यवहार में रूढ अर्थ सभी के परिचय का होता है, किन्तु विशिष्ट शास्त्र में सीमित अर्थ में उसका प्रयोग होता है और शास्त्रकार उसका लक्षण भी बताते है। उदा. ''ग्रंथ'' शब्द। लौकिक भापा में इसका अर्थ सर्वविदित है किन्तु छन्दःशास्त्रकार, ''दात्रिंशद्वर्णमित-अनुष्टुप् छन्दस्कःश्लोको ग्रन्थ'' (३२ अक्षरों के अनुष्टुप् छन्द के श्लोक को ग्रन्थ कहते है।) इस प्रकार का विशिष्ट अर्थ बताते है। इस कृत्रिम अर्थ के कारण छन्दःशास्त्र में यह शब्द पारिभाषिक अर्थ का वाचक हो गया। प्रस्तुत कोश में ग्रन्थ जैसे शब्दों के अकृत्रिम या लौकिक अर्थ का उल्लेख न करते हुए केवल कृत्रिम या शास्त्रोक्त पारिभाषिक अर्थों का निर्देश करने पर वल दिया है। प्रस्तुत खण्ड का **''परिभाषा खंड''** यह नामकरण इसी उद्देश्य से किया है। शब्द के ''कृत्रिम अर्थ'' प्रायः शास्त्रकारों द्वारा लक्षणकरण की प्रक्रिया में दिए जाते है। प्रदीर्घ अर्थ को अल्पाकार शब्दों में संचित करने से शास्त्र में लाघव गुण निर्माण होता है। जिस प्रकार प्रदीर्घ अर्थ का एक या अनेक वाक्यों में निर्देश होना संभव होता है, उसी प्रकार ऐसे प्रदीर्घ अर्थ को एक अल्पाकार शब्द से ज्ञापित करने की सुविधा कृत्रिमार्थ युक्त पारिभाषिक शब्दों के द्वारा शास्त्रकार को उपलब्ध होती है। इस सुविधा के कारण पारिभाषिक शब्द सूत्रवाङ्मय में प्रचिलत सूत्रों के समान ''सारवत्'' होते है। प्रस्तुत कोश में संकलित प्रायः सभी शब्द इस तथ्य के ही उदाहरण होने से यहा विशिष्ट उदाहरण देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। तथापि उदाहरण के लिए, गोमांसभक्षण (तांत्रिक), कूर्मशिला (वास्तुशास्त्र), बंधकी (धर्मशास्त्र), गुणस्थान (जैनमत), समाधि (साहित्यशास्त्र), गुण (न्यायशास्त्र या व्याकरण शास्त्र), स्थायभंजनी (संगीतशास्त्र), क्लेश (योगशास्त्र), क्रतु (वैदिक), क्रकचयोग (ज्योतिपशास्त्र), पशु (कौलतंत्र), इत्यादि शब्द विचारार्ह हैं। कुछ पारिभाषिक शब्दों के लौकिक अर्थ भी होते हैं, किन्तु इन अर्थों का शास्त्रबोध की दृष्टि से कोई उपयोग नहीं होता। उदा. स्वकालीन (पौराणिक), काकपक्ष, अश्वगंधा, काकिनी (तंत्रशास्त्र), षट्कुल इत्यादि।

पारिभाषिक अर्थज्ञान की आवश्यकता

शास्त्रों में प्रयुक्त अनेक पारिभाषिक शब्द व्यवहार में लौकिक अर्थ में रूढ हैं। सामान्य शिक्षित मनुष्य जब किसी शास्त्रीय ग्रंथ का वाचन करता है तब यदि वह शास्त्रोक्त पारिभाषिक शब्दों के विशिष्ट अर्थ से अनभिज्ञ हो तो उन शब्दों के लौकिक या केवल व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ के अनुसार शास्त्रवचन का अर्थग्रहण करता हैं। यह अर्थ शास्त्रकार की दृष्टि से अपेक्षित न होने के कारण अनुचित या प्रामादिक होगा। **'योगाद्रूढिर्बलीयसी'** (यौगिक अर्थ से शब्द का रूढ अर्थ अधिक बलवान् मानना चाहिये) **'अवयवप्रसिद्धेः समुदायप्रसिद्धिर्बलीयसी'** = शब्द के अवयवों के अर्थों का संयोग करने पर निष्पन्न होने वाले (यौगिक तथा व्युत्पत्तिसिध्द) अर्थ से संपूर्ण शब्द द्वारा कहा गया सामुदायिक रूढ अर्थ अधिक बलवान होता है) इत्यादि न्याय वचनों के अनुसार शब्दों के शास्त्रद्वारा कथित अर्थ अर्थात् पारिभाषिक अर्थ शास्त्रीय व्यवहार में अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। **''रथाधिकरणन्याय''** के अनुसार यह तथ्य अधिक स्पष्ट होगा। श्रुति में कहा है कि, ''वर्षासु रथकार आदधीत'' याने वर्षा ऋृतु में रथकार ने अग्न्याधान करना चाहिये। इस वचन मे प्रयुक्त रथकार शब्द का यौगिक अर्थ है रथ करने वाला (रथं करोति इति रथकारः)। इस विग्रह के अनुसार रथकार एक त्रैवर्णिक पुरुष होता है। किन्तु ''माहिष्यात् करण्याम् उत्पन्नः रथकारः'' (अर्थात् माहिष्य पुरुष (क्षत्रिय पुरुष द्वारा वैश्य स्त्री से उत्पन्न) और करणी (वैश्य पुरुष द्वारा शूद्र से उत्पन्न) स्त्री से उत्पन्न पुरुष को 'रथकार' कहते हैं; इस याज्ञवल्क्य स्मृति के वचनानुसार 'रथकार' शब्द का विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ होता है और शास्त्रदृष्ट्या यही अर्थ ग्राह्य है। इस विवेचन का इत्यर्थ यही है कि **शास्त्रव्यवहार में लौकिक या या यौगिक शब्दार्थ से पारिभाषिक अर्थ ही बलवत्तर होते हैं।** उनका ज्ञान निरुक्ति, व्युत्पत्ति, कोश आदि द्वारा प्रायः नहीं होता। आप्तवाक्य (अर्थात् शास्त्रवचन) के द्वारा ही उनका अर्थ ज्ञात हो सकता है। प्रस्तुत कोश में आप्तवाक्यों के आधार पर ही अर्थों का चयन करने का यथाशक्ति यथामति प्रयास हमने किया है। आशा है कि मूल संस्कृत या अनुवादित शास्त्रग्रंथों के अध्येताओं को इस कोश का साहाय्य मिलेगा।

कालबाह्य शब्द

पारिभापिक शब्दों में ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं जिन्हें विशिष्ट काल या परिस्थिति में महत्त्वपूर्ण अर्थ था, किन्तु परिस्थिति में परिवर्तन होने पर वे अर्थहीन हो गए। उदाहरणार्थ प्राचीन काल में जब बहुपत्नीकत्व को धर्मशास्त्र एवं सामाजिक जीवन में मान्यता थी, तब राजा की विविध प्रकार की रानियों का पृथक् बोध कराने वाले, **वावाता, परिवृक्ता, पालागली,** जैसे शब्दों को महत्त्वपूर्ण अर्थ था। यज्ञीय परिभाषा में भी ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं, जिनका यज्ञप्रधान धर्मजीवन में विशिष्ट महत्त्व था। उदा. वसतीवरी, वनाधिती, राष्ट्रगोप, रत्नी, आदि। वर्ण – जाति

व्यवस्था का जब अत्यंत महत्त्व माना जाता था, तब रथकार, माहिष्य, करणी, क्षत्ता, ब्रह्मबन्धु आदि जातिवाचक शब्दों के पारिभाषिक अर्थ विशेष महत्त्व रखते थे। बाद में यथाकाल वे नाममात्र रह गए। प्राचीन समाजव्यवस्था का ज्ञान देने की दृष्टि से ही उन शब्दों का आज उपयोग होता है। पारिभाषिक शब्दों के प्रस्तुत कोश में उन कालबाह्य शब्दों का संचय इसी कारण आवश्यक है।

पारिभाषिक शब्दों के अर्थ जिस प्रकार शास्त्रभेद के अनुसार बदलते है उसी प्रकार एक ही शास्त्र में कालभेद के कारण वे बदलते हैं। उदाहरणार्थ – संगीत शास्त्र में प्रयुक्त वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी स्वर प्राचीन काल में आपस के ध्वनिसंबंध पर अवलंबित माने जाते थें। परंतु ये संबंध प्राचीन ग्रंथों में श्रुतियों की परिभाषा में ही वर्णित होने के कारण, उनसे तथा स्वयं षड्ज-पंचम भाव तथा षड्ज-मध्यम भाव से मेल नहीं खाते। आज कल वादी-संवादी का अर्थ स्वर के बहुत्व अल्पत्व के आधार पर लगाया जाता है। ''प्रयोगे बहुलः स्वरः वादी राजाऽत्र गीयते। विवादी तु सदा त्याज्यः क्वचित् तानक्रियात्मकः।।'' इत्यादि परिभाषाएँ ही आजकल के वादी विवादी स्वरों को आधार हैं।

प्रादेशिक संज्ञाएँ – साहित्य शास्त्र के वैदर्भी, पांचाली, गौडी, लाटी, लाटानुप्रसि, मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री इत्यादि विविध पारिभाषिक शब्द यही सूचित करते हैं कि विशिष्ट प्रदेशों के नामों पर आधारित पारिभाषिक शब्द निर्माण होते हैं, प्रदेश की विशेषता से उनका मूलतः संबंध होता है, किन्तु बाद में वह समाप्त होता है।

अपवादात्मक चयन – प्रस्तुत कोश में केवल संस्कृत वाङ्मय में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का ही चयन मुख्यतः किया है। किन्तु अपवाद में प्रादेशिक नृत्यप्रकार, विशिष्ट वाद्यप्रकार इत्यादि के वाचक लौकिक शब्दों का भी चयन किया है। कुछ नए प्रचलित पारिभाषिक शब्द भी यत्रतत्र संकलित हुए हैं।

प्रादेशिक वाद्य – प्रस्तुत कोश में संगीत प्रकरण में अनेक प्रादेशिक वाद्यों का (उदा. गौरीकालम्, गोटुवाद्यम् इ.) नामनिर्देश हुआ है। संगीतशास्त्र विषयक ग्रन्थों में इनके नाम एकत्रित उपलब्ध नहीं होते। प्रस्तुत चयन से संगीत प्रेमी लोगों को विविध प्रादेशिक वाद्यों की कल्पना आ सकेगी। इन नामों का चयन भारतीय संस्कृति कोश (मराठी में) से किया है।

व्रतसंज्ञा – तिथियों के विशिष्ट नाम और उस निमित्त प्रचलित स्त्री-पुरुषों के व्रतों का निर्देश करने में उनकी अखिल भारतीयता की ओर ध्यान दिया है। क्वचित् प्रादेशिक व्रतों का भी उल्लेख हुआ है। जैन तथा बौध्द संप्रदायों के व्रत और उत्सवों का जहां विशिष्ट तिथियों से संबंध है, उल्लेख किया गया है। सभी व्रत सकाम होते हैं। ग्रंथों में उनके पुत्रप्राप्ति, शत्रुनाश, धनलाभ, आदि फल कहे गये हैं। प्रस्तुत कोश में व्रतकथा या फल निर्देश नहीं है।

विदेशी संज्ञाओं के प्रादेशिक पर्याय

संस्कृत भापीय शास्त्रोक्त पारिभापिक संज्ञाओं का चयन करना ही प्रस्तुत कोश का मुख्य उद्देश्य है, किन्तु इस चयन के प्रयत्न में संस्कृत शब्दों के प्रादेशिक पर्यायों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट हुआ। भारत की सभी प्रादेशिक भाषाएँ विद्या के क्षेत्र में आरंभ से संस्कृतोपजीवी रही हैं। २० वीं शताब्दी में विदेशी-अंग्रेजी भाषा तथा पाश्चात्य विद्याओं का अतिरिक्त प्रभाव बढ़ने के कारण सभी प्रादेशिक भाषाओं में अंग्रेजी परिभाषा के देशी पर्याय निर्माण करने का कार्य हुआ। नवशब्दनिर्मिति की शास्त्रीय प्रक्रिया संस्कृत में ही होने कारण, **विदेशी पारिभाषिक शब्दों के प्रादेशिक पर्याय तत्त्वतः संस्कृत शब्द ही हैं।** इनमें संस्कृत मूलकता समान है किन्तु रूपभिन्नता होने से एक ही विदेशी शब्द के प्रदेशानुसार भिन्न पर्याय उन उन प्रदेशों में प्रचलित हुए। उनमें तुल्यार्थता है किन्तु तुल्यरूपता नहीं है। उदाहरणार्थ, प्राइम मिनिस्टर को हिन्दी में प्रधानमंत्री तो मराठी में पंतप्रधान कहते हैं। सेक्रेटरीएट के लिये हिन्दी में सचिवालय और मराठी में मंत्रालय, शब्द रूढ हुआ है। नॉविल का अनुवाद हिन्दी में उपन्यास और मराठी में कादम्बरी हुआ। अन्य प्रदेशों में भी इसी प्रकार के संस्कृतमूलक नए शब्द प्रचलित होंगे। ऐसे समानार्थक किन्तु भिन्नस्वरूपी नवनिर्मित शब्दों का पृथक् कोश करना आज आवश्यक है।

इन अनूदित शब्दों के अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे हैं जो तत्वतः ''संस्कृत'' नहीं किन्तु उनमें पारिभापिक अर्थ हैं, जैसे वनस्पतियां के नाम। हमने पर्यायशब्दों के संग्रह में विशिष्ट वनस्पतिवाचक संस्कृत पर्याय देते हुए उनके हिन्दी प्रतिशब्द दिए हैं। किन्तु उन वनस्पतियों के वाचक प्रत्येक प्रादेशिक भापा - उपभाषाओं में अन्यान्य शब्द होंगे। ऐसे प्रादेशिक शब्द भी ''पारिभापिक'' कोटि के मानना उचित होगा। इस कोश में संगीत शास्त्र में निर्दिष्ट अनेक रागों, तालों, तथा नृत्यप्रकारों के नाम इसी कारण स्वीकृत किये हैं। केवल संस्कृतमूलकता के अभाव के कारण उन 'प्रादेशिक शब्दों' का चयन हम नहीं करते तो पारिभापिक शब्दावली में अपूर्णता रह जाती। धर्मशास्त्र

में वर्णसंकर से उत्पन्न जातियों के नाम भी इसी प्रकार के मिलते हैं।

प्रातिपदिक और संज्ञा – पारिभाषिक शब्दावली में शब्द की ये दो अवस्थाएँ दिखाई देती हैं। विशिष्ट अर्थ को व्यक्त करने वाले वर्णसमूह को लौकिक व्यवहार में शब्द कहते हैं। इसी शब्द को वैयाकरण "प्रातिपदिक" (अर्थवत् अधातुः अप्रत्ययः प्रातिपादिकम्– (पाणिनिसूत्र) कहते हैं। ऐसे शब्दों का प्रयोग जब विशिष्ट शास्त्रीय या सांकेतिक अर्थ व्यक्त करने के लिए होता है तब उन्हे "संज्ञा" कहते हैं। प्रायः संज्ञाएँ संस्कृत व्युत्पत्तिमूलक होती हैं, इसी कारण देशी शब्दों को पारिभाषिक संज्ञाओं की योग्यता प्रायः नहीं मिलती। किन्तु संगीत शास्त्र में विदर्भवासी पुष्पदन्त (१२ वीं शती) नामक पंडित ने तत्कालीन देशी शब्दों को शास्त्रीय संज्ञाओं की योग्यता देने का कार्य किया था। पारिभाषिक शब्दावली में इसी पद्धति से देशी शब्दों का प्रमाण कुछ मात्रा में दिखाई देता है।

प्रस्तुत कोश के संपादन में परिभाषिक शब्दों की जो विशेषताएँ हमारे ध्यान में आयी उनका सोदाहरण विवेचन यहां प्रस्तुत किया है। साथही शब्दों का चयन करने में हमारी जो दृष्टि या भूमिका रही उसका भी प्रतिपादन इस अन्तरंग दर्शन में प्रस्तुत करने का प्रयास हमने किया है। आशा है कि, भारतीय विद्याओं की रूपरेखा इन पारिभाषिक शब्दों के अध्ययन से जिज्ञासुओं को प्रतीत होगी, तथा शास्त्रीय ग्रंथों के अध्ययन में यथास्थान उन्हें इस कोश की सहायता हो सकेगी।

श्रीधर भास्कर वर्णेकर
"प्रज्ञाभारती"

संस्कृत वाङ्मय कोश

परिभाषा खण्ड

अनुक्रमणिका

(पूर्वार्ध कुल पृष्ठसंख्या ३०४)

(उत्तरार्ध कुल पृष्ठसंख्या ४५५)

पूर्वार्ध

धर्म विभाग

वर्ग-१ वैदिक कर्मकाण्ड की परिभाषा १
वर्ग-१ अ *(परिशिष्ट)* वैदिक कर्मकाण्ड की परिभाषा ३५
वर्ग-२ स्मार्त धर्मशास्त्र की परिभाषा ४६
वर्ग-२ अ *(परिशिष्ट)*. स्मार्त धर्मशास्त्र की परिभाषा ६९
वर्ग-२ आ स्मार्त धर्मशास्त्र की परिभाषा धार्मिक व्रत ८७
वर्ग-२ इ स्मार्त धर्मशास्त्र की परिभाषा धर्मशास्त्र में कथित जातिप्रकार १०७
वर्ग-३ आध्यात्मिक धर्म की परिभाषा ११२
(भगवद्गीता तथा गीता-शांकरभाष्य में प्रयुक्त)
वर्ग-४ जैन परिभाषा १२६
वर्ग-५ बौद्ध परिभाषा १३६
वर्ग-५ अ *(परिशिष्ट)* जैन-बौद्ध परिभाषा १४८
वर्ग-६ संकीर्ण साम्प्रदायिक परिभाषा १५७
वर्ग-७ ज्योतिप शास्त्र की परिभाषा १६७
अवशिष्ट धर्म परिभाषा १८५
अवशिष्ट ज्योतिप परिभाषा १९२

अर्थ विभाग

वर्ग-१ कौटिलीय अर्थशास्त्र की संकीर्ण परिभाषा १९७
वर्ग-२ कौटिलीय अर्थशास्त्र की राज्यव्यवहार परिभाषा २३५
वर्ग-३ कौटिलीय अर्थशास्त्र की आर्थिक व्यवहार परिभाषा २४७
वर्ग-४ कौटिलीय अर्थशास्त्र की युद्धविषयक परिभाषा २५३
वर्ग-५ कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित अधिकारी वर्ग २६२
वर्ग-६ कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित नर-नारी जीवन संवंधी परिभाषा २६४
वर्ग-७ *(परिशिष्ट)* कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित संकीर्ण शब्दावली २६६
वर्ग-८ (विविध ग्रंथों से संकलित) अर्थशास्त्रीय शब्दावली (संकीर्ण) २७२
वर्ग-९ कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित - रत्न/धातु अलंकार २८०
वर्ग-१० कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित - कृपिविपयक परिभाषा २८३
वर्ग-११ कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित - वनस्पतियाँ २८४
वर्ग-११ अ *(परिशिष्ट)* अमरकोश में उल्लिखित - वनस्पतियाँ २८४
वर्ग-१२ धातु और रत्न पर्यायशब्द २८९
वर्ग-१२ अ *(परिशिष्ट)* धान्यादि भोज्य पदार्थ २८९
अवशिष्ट अंश २९१
वर्ग-१३ पशु-पक्षीवर्ग पर्याय शब्द २९६
वर्ग-१४ कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित - वास्तुकर्मविपयक परिभाषा २९८
वर्ग-१५ वास्तुशास्त्र एवं गणित परिभाषा २९९

उत्तरार्ध

काम विभाग

वर्ग-१ साहित्यशास्त्र की परिभाषा ३२९
वर्ग-२ नाट्यशास्त्र की परिभाषा ३४७
वर्ग-२ अ *(परिशिष्ट)* नाट्य और नृत्यविषयक परिभाषा ३५०
वर्ग-२ आ *(परिशिष्ट)* भारतीय लोकनृत्य संज्ञाएँ ३६४
वर्ग-३ संगीत शास्त्र परिभाषा ३६७
वर्ग-३ अ *(परिशिष्ट)* संगीतशास्त्र - राग परिचय ३८०
वर्ग-३ आ *(परिशिष्ट)* संगीत शास्त्र - ताल परिचय ३९९
वर्ग-३ इ *(परिशिष्ट)* भारतीय वाद्य संज्ञाएँ ४०८
वर्ग-४ शिल्पशास्त्र परिभाषा ४१०
वर्ग-४ अ *(परिशिष्ट)* शिल्पशास्त्रीय परिभाषा ४१६
वर्ग-५ कामशास्त्र परिभाषा ४१८
वर्ग-६ आयुर्वेद परिभाषा ४२५
वर्ग-७ औषधोपयोगी वनस्पति धातु, रत्न, पशु आदि के पर्याय शब्द ४३९
वर्ग-७ अ *(परिशिष्ट)* आयुर्वेदिक वनस्पतियों की हिन्दी नामावली ४५१
अवशिष्ट आयुर्वेद परिभाषा ४५७
वर्ग-८ आयुर्वेदीय शारीर शब्द संग्रह ४५८

मोक्ष विभाग

वर्ग-१ विविध दर्शनों एवं शास्त्रों में प्रयुक्त परिभाषा ५०३
वर्ग-२ व्याकरण शास्त्र की परिभाषा ५५४
वर्ग-२ अ *(परिशिष्ट)* पाणिनीय गणपाठ ५७१
वर्ग-२ आ *(परिशिष्ट)* पाणिनीय तद्धित प्रत्यय ५७७
वर्ग-२ इ *(परिशिष्ट)* पाणिनीय कृत्प्रत्यय, प्रत्याहार और आगम ५८१
वर्ग-२ उ अवशिष्ट व्याकरण परिभाषा ५८५
वर्ग-३ छन्दःशास्त्र की परिभाषा ५८७
वर्ग-४ अवशिष्ट संकीर्ण परिभाषा ६००
वर्ग-५ योगासन परिचय ६०८
वर्ग- ५ अ परिशिष्ट योगासन चित्रावली ६१७

न्यायवचन संग्रह विभाग

प्रस्तावना ६२९
वर्ग-१ भगवद्गीता में प्रतिपादित सिद्धान्तपरक न्यायवचन ६३४
वर्ग-२ भगवद्गीता-शांकरभाष्य से उद्धृत न्यायवचन ६३७
वर्ग-३ कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रयुक्त न्यायवचन ६५४
वर्ग-४ चाणक्यसूत्र में प्रयुक्त न्यायवचन ६६०
वर्ग-५ नीतिकथाओं पर आधारित न्यायवचन ६६३
वर्ग-६ लौकिक न्यायांजलि से संगृहीत न्यायवचन ६९३
वर्ग-७ संकीर्ण लौकिक न्यायवचन ७५१
वर्ग-८ दृष्टान्तपाठ से संगृहीत दृष्टान्तस्वरूप न्याय ७७०
संदर्भ ग्रंथ सूची ७८१

कुल प्रविष्टियाँ – २०३०४

सस्कृत वाङ्मय कोश

परिभाषा खण्ड (पूर्वार्ध)

अनुक्रमणिका

धर्म विभाग

वर्ग-१ वैदिक कर्मकाण्ड की परिभाषा १
वर्ग-१ अ *(परिशिष्ट)* वैदिक कर्मकाण्ड की परिभाषा ३५
वर्ग-२ स्मार्त धर्मशास्त्र की परिभाषा ४६
वर्ग-२ अ *(परिशिष्ट)* स्मार्त धर्मशास्त्र की परिभाषा ६९
वर्ग-२ आ स्मार्त धर्मशास्त्र की परिभाषा धार्मिक व्रत ८७
वर्ग-२ इ स्मार्त धर्मशास्त्र की परिभाषा धर्मशास्त्र में कथित जातिप्रकार १०७
वर्ग-३ आध्यात्मिक धर्म की परिभाषा (भगवद्गीता तथा गीता-शांकरभाष्य में प्रयुक्त) ११२
वर्ग-४ जैन परिभाषा १२६
वर्ग-५ बौद्ध परिभाषा १३६
वर्ग-५ अ *(परिशिष्ट)* जैन-बौद्ध परिभाषा १४८
वर्ग-६ संकीर्ण साम्प्रदायिक परिभाषा १५७
वर्ग-७ ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा १६७
अवशिष्ट धर्म परिभाषा १८५
अवशिष्ट ज्योतिष परिभाषा १९२

धर्म विभाग कुल प्रविष्टियाँ – ६४७९

वर्ग - १ – वैदिक कर्मकाण्ड की परिभाषा

अकूपार (आकूपार) = सामविशेप।

अक्षदेवनसूक्त = ऋग्वेद का द्यूत निन्दा विपयक एक सूक्त (१०-३०-४)

अग्नायी = अग्नि की पत्नी (ऋ. १-२२-१२)

अंगयाग (यज्ञ) = मुख्य यज्ञ से संबंधित गौण यज्ञविधि।

अग्निवेश = कृष्ण यजुर्वेद की एक लुप्त शाखा की संज्ञा। अपर संज्ञा – कौण्डिन्य। इसका केवल गृह्यसूत्र उपलब्ध है।

अंबायज्ञ = देवी के बीजाक्षरों से युक्त मंत्रों से इस यज्ञ में हवन होता है। पुराणकथा के अनुसार अंवा की कृपा प्राप्त करने श्री विष्णु ने २७ ऋत्विजों द्वारा यह यज्ञ करवाया था। (देवी भाग. स्कं. ३)

अग्नि = प्रत्येक गृह्यकर्म में स्थंडिल पर स्थापित अग्नि के नाम भिन्न होते है। जैसे चौलकर्म में **सभ्य,** उपनयन में **समुद्भव,** गोदान में **सूर्य,** विवाह में **योजक,** वास्तुशांति में **द्विज,** वैश्वदेव में **रुक्मक।** देवों के अग्नि को **हव्यवाह** और पितरों के अग्नि को **कव्यवाह** कहते हैं। अग्नि के प्रकार = जाठराग्नि, लौकिकाग्नि, क्रव्यादग्नि (चिताग्नि),

अग्निकारिका = अग्नीध्र नामक ऋचा।

अग्निकार्य = ब्रह्मचर्याश्रम में प्रातः और सायंकाल में उपनयन की अग्नि में समिधा का हवन।

अग्निचित् = पांच प्रकार के काठक चयन तथा श्येन आदि अन्य प्रकार के चयन करने वाला यजमान। (अष्टाध्यायी - ३-२-९१)

अग्निचित्या = यज्ञ की अग्नि को प्रतिष्ठित करना।

अग्नितनु = विशिष्ट मंत्रों की संज्ञा। ये मंत्र अश्वमेध में यज्ञीय अश्व के दाहिने कान में कहे जाते हैं।

अग्निद्वयसंसर्ग = प्रथम पत्नी होते हुए दूसरी स्त्री से विवाह करने पर गृहस्थ आहिताग्नि के दो गृह्याग्नि होते थे। उन दोनों गृह्याग्नियों का संयोग करने की विधि की यह संज्ञा है।

अग्निधान = आहिताग्नि का घर।

अग्निमाठर =ऋग्वेद की बाष्कल शाखा की चार उपशाखाओं में से एक। संप्रति अनुपलब्ध।

अग्निमारुत = अग्निष्टोम याग का अंतिम शस्त्र। इसका गायन द्रुत लय में होता है। शस्त्र = यज्ञ में होता द्वारा उच्चारित मन्त्र।

अग्निमुख = विवाह, उपनयन जैसे संस्कारों में यजमान स्वयं अग्निमुख विधि करता है। ग्रहमख स्वाहाकार इत्यादि महानुष्ठानों में आचार्य ऋत्विक् अग्निमुख विधि का तंत्र सम्हालता है।

अग्निमुख = यज्ञीय अग्नि ही जिनका मुख है ऐसे देव-देवता। (शतपथब्राह्मण ७-२-२४)

अग्निमुख = ग्रहमख, शांति, संस्कार, व्रतोद्यापन आदि कर्मों में स्थंडिल पर अग्निस्थापना सहित हवनादि कर्म। इस विधि में ब्रह्मा, यम, सोम, रुद्र, ईश और शतक्रतु नाम के छह देवताओं का आवाहन होता है।

अग्निविच्छेद = आहिताग्नि का १२ दिनों से अधिक प्रवास आदि के कारण हवन कर्म न होना। बाद में गृह्यसूत्र की विधि के अनुसार यज्ञाग्नि का पुनःसंधान किया जाता है।

अग्निव्रत = फाल्गुन शु. ४ से इस व्रत का आरंभ होकर उसका एक वर्ष तक पालन किया जाता है.

अग्निष्टुत् = सोमयाग का एक विकार। इसमें त्रिवृत नामक स्तोत्रपद्धति से अग्नि का स्तवन होता है। अनुष्ठान की विधि अग्निष्टोम याग के समान है।

अग्निष्टोम = सोमयागों का 'प्रकृतियाग'। वसंत ऋतु में यह एकाह याग होता है। इसमें अग्नि की स्तुति प्रधान होती है तथा अंतिम स्तोत्र अग्निपरक है। इस का प्रारंभ दीक्षणीय इष्टि से होता है जो पूर्णिमा, अमावस्या या प्रतिपदा को करनी होती है।

अग्निष्टोम = सामवेद के "यज्ञा यज्ञा वो असय" इस ऋचा में गीत के रूप में विहित साम की संज्ञा।

अग्निसमारोप = आहिताग्नि गृहस्थाश्रमी १२ दिनों तक प्रवास के निमित्त इस विधि से अपना हवन कर्म बंद रखता है। इस विधि में अरणि या समिधा को यज्ञाग्नि में तपा कर अग्नि की स्थापना मानी जाती है। प्रवास काल में इसी अग्नि को स्पर्श करते हैं। वापिस लौटने पर उसकी आहुति देते हैं।

अग्निहोत्र = वैदिकों के सात हविर्यज्ञों में दूसरा यज्ञ

अग्निहोत्र = गृहस्थाश्रमी के इस व्रत में गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि का आधान होता है। "उद्धरणपक्ष" के अनुसार गार्हपत्य अग्नि नित्य रखा जाता है और "अजस्रपक्ष" के अनुसार तीनों अग्नि नित्य रखे जाते हैं। हवन विधि प्रातः और सायं होती है। अग्निहोत्री की पत्नी का होत्राग्नि से नित्यसंबंध होता है। अग्निहोत्र यज्ञ का मुख कहा जाता है। (शतपथ ब्रा. - १४-३-१-२९)

अग्निहोत्र = एक वैदिक व्रत जिसमें हवनीय अग्नि की नित्य स्थापना तथा उसमें हवन होता है।

अग्निहोत्र = वैतानिक अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, और सभ्याग्नि) में अग्नि को उद्दिष्ट करके सायं, प्रातः किया जाने वाला विशेष कर्म। इसमें दूध, यवागू, तण्डुल, दधि, घृत आदि द्रव्यों की आवश्यकता होती है।

अग्निहोत्र के देवता = सायंकाल में अग्नि मुख्य और प्रजापति स्विष्टकृत स्थान का अंग देवता। प्रातः सूर्य मुख्य देवता और प्रजापति अंगदेवता।

अग्निहोत्र हवणी = अग्निहोत्र के हवन की एक काष्ठ निर्मित स्रुचा जिसमें डाले हुए पवित्र जल से अन्य सभी यज्ञीय पात्रों का प्रोक्षण (सिंचन) होता है।

अग्निहोत्र हवणी = इससे अग्निहोत्र किया जाता है। इससे शकट से या इडापात्री से हवि का ग्रहण, यज्ञ के अवसर पर होता है।

अग्निहोत्रहोम = अग्निहोत्री द्वारा तीनों अग्निकुंडों में सूर्य-प्रजापति के प्रीत्यर्थ प्रातः और सायं अग्नि-प्रजापति के प्रीत्यर्थ किया गया हवन। इसमें गोरस, (अथवा चावल, घृत या दही) की आहुतियां यजमान की कामना के अनुसार दी जाती हैं।

अग्निहोत्री = अग्निहोत्र का व्रत पालन करने वाला गृहस्थाश्रमी द्विज।

अग्नीषोमप्रणयन = सोमयाग में आग्नीध्रीय मंडप में अग्नि की और हविर्धान मंडप में सोमराज की स्थापना।

अघ्न्या = अवध्य। गौ का एक विशेषण। अर्थात्, उसकी हत्या नहीं होती।

अग्न्यन्वाधान = सोमयाग में गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण-अग्नियों में "[illegible]" इस मंत्र से छह समिधाओं का आधान करना।

अग्न्याधान = अग्निहोत्र का। गौतम धर्मसूत्रोक्त ४८ संस्कारों में से एक।

अग्न्याधान = सभी यज्ञों के प्रारंभ में यह विधि होती है। इसमें विशिष्ट स्थान पर विशिष्ट व्यक्ति द्वारा अरणी और मंथा के घर्षण से यज्ञीय अग्नि की निर्मिति होने पर पूर्णाहुति तक विधि होती है। अग्न्याधान से यजमान आहिताग्नि होता है।

अग्न्याधेय = वैदिकों के सात हविर्यज्ञों में से प्रथम द्विदिवसीय यज्ञ। अन्य यज्ञों के नाम- **अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि, निरूढपशुबंध,** और **सौत्रामणि** । अग्न्याधेय का अधिकार त्रैवर्णिक और उत्कृष्टों को होता है। यह विशिष्ट नक्षत्र और ऋतु के पर्वकाल में होता है।

अग्न्युत्तारण = धातु या पाषाण आदि की मूर्ति स्थापित करते समय उसे ताम्रपात्र में रखकर दूध और जल का अभिषेक करना। इस विधि से इस मूर्ति के दोषों का निवारण होता है।

अग्न्युद्धरण = पौर्णमासी में प्रणयन के लिये गार्हपत्य अग्नि से आहवनीय और दक्षिण- अग्नि को अलग करना।

अंगिरसाम् आयनम् = एक संवत्सरसत्र का नाम।

अच्छन्दस् = वेदाध्ययन का अनधिकारी (छन्दस् = वेद)

अच्छावाक = सोमयाग में होता का सहकारी ऋत्विक्। (ऐतरेय ब्राह्मण - ६-१४/, ६-३०)। इसका दूसरा नाम है **उद्वंशीय।**

अच्छावाक = स्वच्छ उच्चारण करने वाला ऋग्वेदी ऋत्विक्। सोमयाग में यही आज्या और शस्त्र का पाठ करता है। (२) पुराणों के अनुसार भुवर्लोक की अग्निदेवता का नाम। (वायु. पु.२९-२८)

अज एकपाद् = एक अंतरिक्ष देवता। यह अग्निस्वरूप माने जाते है।

अतिग्राह्य प्रचार = सोमयाग के मध्यंदिन सवन में एक विधि।

अतिजगती = एक वैदिक छंद।

अतित्वरी तथा **अतिष्कद्वरी (या अपष्कद्वरी)** = अतित्वरी = अतिकुलटा। अतिष्कद्वरी = गर्भस्राव करने वाली कुट्टनी। ये दोनों शब्द वाजसनेयी संहिता में पुरूषमेधीय वलियों की सूची में आये हैं। (३०-१५)

अतिधृति = एक वैदिक छंद। ऋक् संहिता में केवल एक ही मंत्र इस छंद में है।

अतिरात्र = अतिरात्र नामक साममंत्र के गायन से समाप्त होने वाला, सप्त सोमसंस्था के अन्तर्गत सोमयाग। यह दिन और रात्रि में पूर्ण होता है। इस में २९ स्तोत्र और २९ शस्त्र गाये जाते हैं।

अतिशक्वरी = एक वैदिक छंद।

अतिष्कद्वरी (या अपष्कद्वरी) = देखिये अतित्वरी।

अत्यग्निष्टोम = सप्त सोमसंस्था के अंतर्गत एक सोम याग। यह अग्निष्टोम का दूसरा ऐच्छिक भाग है।

अत्यष्टि = एक वैदिक छंद।

अत्रिकुल = ऋग्वेद के मंत्रद्रष्टा अत्रि ऋषि का कुल। इसमें अत्रि, अर्चनानस, श्यावाश्व, गविष्ठिर, आविहोत्र (या अधिगु), और पूर्वातिथि इन मंत्रद्रष्टाओं की गणना होती है।

अदाभ्य = ज्योतिष्टोम के अन्तर्गत एक ग्रह, जिसका समर्पण स्वर्गदायक होता है। (तैत्ति. सं. ६-६-९-२)

अदितीष्टि = पशुओं की कामना से दर्श-इष्टि के साथ इस यज्ञ का विधान है। (मानव श्रौत सूत्र १-३-५-२९)

अद्मसद् = भोजन के अवसर पर आया हुआ अतिथि। (ऋ. १-१२४-४)

अथर्वण = अथर्ववेदी ब्राह्मणों की एक लुप्त प्राय शाखा का नाम।

अथर्वणि = अथर्ववेद में निर्दिष्ट विधियों के अनुष्ठान में कुशल वैदिक ब्राह्मण।

अथर्वन् = पौराणिक पुरोहितों के एक अर्धदैवी वंश का प्रमुख। (बृहदारण्यक उप. २-६-३)

अथर्वन् = अग्नि और सोम का उपासक पुरोहित।

अथर्ववेद = (अपरनाम = अथर्वांगिरस वेद, भृग्वंगिरस वेद, आंगिरस वेद, ब्रह्मवेद और क्षत्रवेद,) इसकी पैप्पलाद और शौनक नामक दो शाखाएँ आज उपलब्ध हैं। चरणव्यूह में ९ शाखाओं के नाम निर्दिष्ट है – (नवधा आथर्वणो वेदः)।

अथर्वांगिरस = अथर्व वेद की अपरसंज्ञा

अथर्वाण = (१) अथर्ववेद की अपरसंज्ञा। (२) अथर्ववेद की अनुष्ठान पद्धति।

अधस् = (१) सोम का पौधा (२) सोम का रस।

अधिकल्पी = कुशल अक्षक्रीडक। (माध्यं. वाजसनेय संहिता-३०-१८)

अध्रिगु = (१) देवों के यज्ञ मे शमिता (अर्थात् पशुहनन

करने वाला) देवता। (२) मानवी पशुयाग में पशुहनन की अधिष्ठात्री देवता का नाम। (ऐतरेय. प्रा. २-७) (३) आहवनीय पशु के प्रति शुभ कामना व्यक्त करनेवाले मंत्र।

अध्रिगुप्रैष = दिव्य तथा मानुप शमिताओं (यज्ञ में पशु हत्या करने वालों) को, पशु का यज्ञभूमि पर आवाहन करने हेतु प्रयुक्त मंत्र।

अधिदेवता = ग्रहयज्ञ आदि विधियों में प्रमुख देवता की दाहिनी ओर स्थापित देवता।

अधिपवण = जिन दो फलकों पर सोमलता को कूट कर यज्ञ के लिये सोमरस निकाला जाता है। उन फलकों की संज्ञा। (शतपथ प्रा.-३-९-४-१)

अधीवास = याज्ञिक अनुष्ठान में उपयुक्त उत्तरीय परिधान। (शतपथ ब्रह्मण- ५-३-५-२२)

अध्वर = हविर्यज्ञ की संज्ञा। (शतपथ ब्रा. १-१-४-७)

अध्वर = ध्वरा याने हिसा जिसमें नही होती ऐसा यज्ञ कर्म। यज्ञीय हिंसा, हिंसा नहीं मानी जाती, अतः यज्ञ को अध्वर कहा गया है।

अध्वर कल्पेष्टि = शत्रु को सोम आदि यज्ञों का फल प्राप्त न हो, इस लिये यह इष्टि त्रिकाल की जाती है। अग्नाविष्णू, सरस्वती और बृहस्पति इस इष्टि के देवता है।

अध्वर्यु = यज्ञ के होता, उद्गाता और ब्रह्मा के अतिरिक्त ऋत्विक्, जो यजुर्वेद का विशेषज्ञ होता है।

अध्वर्यु = (अध्वरं = यज्ञं याति इति) अध्वर = यज्ञ में गमन करने वाला। यज्ञविधि करने वाला प्रमुख ऋत्विक् या पुरोहित। कर्म का प्रारंभ होने के पूर्व अध्वर्यु, यजमान और ब्रह्मा की अनुज्ञा लेता है। श्रौतयाग अध्वर्यु के बिना नहीं होता।

अध्वर्युवेद = अध्वर अर्थात् यज्ञ की विधि के मंत्र मुख्यतः यजुर्वेद में कहे गये हैं, अतः उसे यह संज्ञा प्राप्त हुई।

अनादेश देवता = अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति इन चारों की संज्ञा। जिस स्मार्त कृत्य में विशिष्ट देवता का शास्त्रोक्त निर्देश नहीं होता वहां इन चारों का स्वीकार होता है।

अनुक्रमणी = वेदों की सूची के ग्रंथ। ऋग्वेद के २ ग्रंथ = शौनककृत अनुवाकानुक्रमणी (नामांतर बृहद्देवता) और कात्यायन कृत सर्वानुक्रमणी। यजुर्वेद का सर्वानुक्रमसूत्र; अथर्व वेद की बृहत्सर्वानुक्रमणी आदि प्रसिद्ध हैं। अनुक्रमणी में मंत्रों के ऋषि, छंद, देवता, आख्यान आदि की जानकारी मिलती है।

अनुक्षतृ = सारथि या द्वारपाल का अनुयायी। पुरुषमेध की वलियों की सूची में निर्दिष्ट। (तैत्तिरीय ब्रा. ३-४-९-२)

अनुबन्ध्या याग = अवभृथस्नान के बाद वशा (वन्ध्या) गौ का हवन। तन्निमित्त आमिक्षा याग होता है।

अनुमंत्रण = अर्थ की ओर ध्यान रखकर मंत्र का पाठ करना।

अनुयाज = (१) विशिष्ट वैदिक देवता। (२) यज्ञ के शेष अंग। बर्हि, नराशंस और स्विष्टकृत् निमित्त आहुति समर्पण, (३) (या अनूयाज) = गौण अर्थात् मुख्य यज्ञ का पूरक यज्ञानुष्ठान। (४) प्रधान याग के अनन्तर जिन्हें पढ़कर ब्रह्मा नामक ऋत्विक् हवन करता है, उन याज्या मंत्रों की संज्ञा।

अनुवाक = वेद के अध्यायसदृश उपभाग।

अनुवाद = ब्राह्मण ग्रंथ का भाग, जिसमें पूर्वोक्त विधि की व्याख्या मात्र होती है और जिसमें स्वतंत्र कोई विधि या निषेध नहीं होता।

अनुव्याख्यान = वैदिक मंत्रों की सूत्रात्मक व्याख्या।

अनुशासन = (१) वेदांगों का वाचक शब्द। (२) साहित्य का एक विशिष्ट शास्त्रीय अंग। (उदा. योगानुशासन, शब्दानुशासन आदि)

अनुश्रव = वैदिक परंपरा।

अनुष्टुभ् = ३२ अक्षरों का एक छंद जिसमें आठ आठ अक्षरों के चार पाद होते हैं। इस के विविध प्रकार बताये गये हैं।

अन्तरिक्ष = द्युलोक और पृथ्वी लोक का मध्यवर्ती लोक।

अन्नस्तुति = ऋग्वेद-प्रथम, मंडल के एक सूक्त (१-१८७) की संज्ञा। इसीको **'अन्नसूक्त'** भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त ४-३१-१ से ३ मंत्रों को भी **'अन्नसूक्त'** कहते हैं। पार्वण श्राद्ध में भोजन परोसते समय अन्नसूक्त कहा जाता है।

अनूचान = वेद-वेदांगों का ज्ञाता, जो अध्यापन में भी समर्थ होता है।

अनृच = (१) यज्ञोपवीत संस्कार न होने के कारण जो वेदाध्ययन का अधिकारी नहीं हो सकता। (२) ऐसा पुरुष जिसने ऋग्वेद का अध्ययन नहीं किया हो।

अन्वाख्यान = मुख्य कहानी की पूरक कहानी।

अन्वाधान = हवन विधि में अग्निस्थापना व ध्यान के पश्चात् देवताओं के विशिष्ट हविर्द्रव्य और आहुतिसंख्या का निर्देश करते हुए देवता की स्थापना।

अन्वाधान = अग्निहोत्र की अग्नि में समिधाएँ रखना।

अन्वाधान = यज्ञ में अग्नि की स्थापना (आधान) होने पर, ऋत्विग् हाथ में समिधा लेकर कर्म के देवता तथा हविर्द्रव्य आदि निर्देश करने पर, उस समिधा को यज्ञाग्नि में समर्पण करता है। इसी को अनु + आधान = अन्वाधान कहते है।

अन्वारंभ = श्रौत या स्मार्त कर्म करते समय पत्नी ने पति के हाथ को हाथ लगाना; या यजमान ने पुरोहित के हाथ को दर्भ से स्पर्श करना।

अन्वारंभण (या अन्वारंभ) = यज्ञ के समय यजमान को पुनीत संस्कार के सुफल का अधिकारी बनाने के लिये स्पर्श करना।

अन्वारंभणीया इष्टि = प्रथम ही दर्शपूर्णमास यज्ञ करने वाले के लिये आवश्यक। सरस्वती को दो आहुतियाँ देकर इसका प्रारंभ होता है। यह इष्टि एक ही बार की जाती है।

अन्वाहार्य = ऋत्विजों के भोजन के लिये बनाया गया ओदन (भात)। अन्वाहार्यदक्षिणा से यज्ञसंबंधी दोषसमूह का परिहार होता है।

अग्निहोम हवणी = इससे अग्निहोत्र किया जाता है। इसमें शकट से या इडापात्री से हवि का ग्रहण, यज्ञ के अवसर पर होता है।

अग्निहोत्रहोम = अग्निहोत्री द्वारा तीनों अग्निकुंडों में सूर्य-प्रजापति के प्रीत्यर्थ प्रातः और सायं अग्नि-प्रजापति के प्रीत्यर्थ किया गया हवन। इसमें गोरस, (अथवा चांवल, घृत या दही) की आहुतियां यजमान की कामना के अनुसार दी जाती हैं।

अग्निहोत्री = अग्निहोत्र व्रत का पालन करने वाला गृहस्थाश्रमी द्विज।

अग्नीषोमप्रणयन = सोमयाग में आग्निध्रीय मंडप में अग्नि की और हविर्धान मंडप में सोमराजा की स्थापना।

अहन्या = अवध्या। गौ का एक विशेषण। अर्थात्, उसकी हत्या नहीं होती।

अग्न्यन्वाधान = पौर्णमासी में गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण-अग्नियों में "ममाग्ने वर्चः" इस मंत्र से छह समिधाओं का आधान करना।

अग्न्याधान = अग्निहोत्र व्रत। गौतम धर्मसूत्रोक्त ४८ संस्कारों में से एक।

अग्न्याधान = सभी यज्ञों के प्रारंभ में यह विधि होती है। इसमें विशिष्ट स्थान पर विशिष्ट व्यक्ति द्वारा अरणी और मंथा के घर्षण से यज्ञीय अग्नि की निर्मिति होने पर पूर्णाहुति तक विधि होती है। अग्न्याधान से यजमान आहिताग्नि होता है।

अग्न्याधेय = वैदिकों के सात हविर्यज्ञों में से प्रथम द्विदिवसीय यज्ञ। अन्य यज्ञों के नाम- **अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि, निरूढपशुबंध,** और **सौत्रामणि** । अग्न्याधेय का अधिकार त्रैवर्णिक और उपकृष्टों को होता है। यह विशिष्ट नक्षत्र और ऋतु के पर्वकाल में होता है।

अग्न्युत्तारण = धातु या पाषाण आदि की मूर्ति स्थापित करते समय उसे ताम्रपात्र में रखकर दूध और जल का अभिषेक करना। इस विधि से इस मूर्ति के दोषों का निवारण होता है।

अग्न्युद्धरण = पौर्णमासी में प्रणयन के लिये गार्हपत्य अग्नि से आहवनीय और दक्षिण- अग्नि को अलग करना।

अंगिरसाम् आयनम् = एक संवत्सरसत्र का नाम।

अच्छन्दस् = वेदाध्ययन का अनधिकारी (छन्दस् = वेद)

अच्छावाक = सोमयाग में होता का सहकारी ऋत्विक्। (ऐतरेय ब्राह्मण - ६-१४/, ६-३०)। इसका दूसरा नाम है **उद्वंशीय।**

अच्छावाक = स्वच्छ उच्चारण करने वाला ऋग्वेदी ऋत्विक्। सोमयाग में यही आज्या और शस्त्र का पाठ करता है। (२) पुराणों के अनुसार भुवर्लोक की अग्निदेवता का नाम। (वायु. पु.२९-२८)

अज एकपाद् = एक अंतरिक्ष देवता। यह अग्निस्वरूप माने जाते है।

अतिग्राह्य प्रचार = सोमयाग के मध्यंदिन सवन में एक विधि।

अतिजगती = एक वैदिक छंद।

अतित्वरी तथा **अतिष्कद्वरी (या अपष्कद्वरी)** = अतित्वरी = अतिकुलटा। अतिष्कद्वरी = गर्भस्राव करने वाली कुट्टनी। ये दोनों शब्द वाजसनेयी संहिता में पुरूषमेधीय वलियों की सूची में आये हैं। (३०-१५)

अतिधृति = एक वैदिक छंद। ऋक् संहिता में केवल एक ही मंत्र इस छंद में है।

अतिरात्र = अतिरात्र नामक साममंत्र के गायन से समाप्त होने वाला, सप्त सोमसंस्था के अन्तर्गत सोमयाग। यह दिन और रात्रि में पूर्ण होता है। इस में २९ स्तोत्र और २९ शस्त्र गाये जाते हैं।

अतिशक्वरी = एक वैदिक छंद।

अतिष्कद्वरी (या अपष्कद्वरी) = देखिये अतित्वरी।

अत्यग्निष्टोम = सप्त सोमसंस्था के अंतर्गत एक सोम याग। यह अग्निष्टोम का दूसरा ऐच्छिक भाग है।

अत्यष्टि = एक वैदिक छंद।

अत्रिकुल = ऋग्वेद के मंत्रद्रष्टा अत्रि ऋषि का कुल। इसमें अत्रि, अर्चनानस, श्यावाश्व, गविष्ठिर, आविहोत्र (या अधिगु), और पूर्वातिथि इन मंत्रद्रष्टाओं की गणना होती है।

अदाभ्य = ज्योतिष्टोम के अन्तर्गत एक ग्रह, जिसका समर्पण स्वर्गदायक होता है। (तैत्ति. सं. ६-६-९-२)

अदितीष्टि = पशुओं की कामना से दर्श-इष्टि के साथ इस यज्ञ का विधान है। (मानव श्रौत सूत्र १-३-५-२९)

अद्मसद् = भोजन के अवसर पर आया हुआ अतिथि। (ऋ. १-१२४-४)

अथर्वण = अथर्ववेदी ब्राह्मणों की एक लुप्त प्राय शाखा का नाम।

अथर्वणि = अथर्ववेद में निर्दिष्ट विधियों के अनुष्ठान में कुशल वैदिक ब्राह्मण।

अथर्वन् = पौराणिक पुरोहितों के एक अर्धदेवी वंश का प्रमुख। (बृहदारण्यक उप. २-६-३)

अथर्वन् = अग्नि और सोम का उपासक पुरोहित।

अथर्ववेद = (अपरनाम = अथर्वांगिरस वेद, भृग्वंगिरस वेद, आंगिरस वेद, ब्रह्मवेद और क्षत्रवेद,) इसकी पैप्पलाद और शौनक नामक दो शाखाएँ आज उपलब्ध हैं। चरणव्यूह में ९ शाखाओं के नाम निर्दिष्ट है – (नवधा आथर्वणो वेदः)।

अथर्वांगिरस = अथर्व वेद की अपरसंज्ञा

अथर्वाण = (१) अथर्ववेद की अपरसंज्ञा। (२) अथर्ववेद की अनुष्ठान पद्धति।

अधस् = (१) सोम का पौधा (२) सोम का रस।

अधिकल्पी = कुशल अक्षक्रीडक। (माध्यं. वाजसनीय संहिता-३०-१८)

अधिगु = (१) देवों के यज्ञ में शमिता (अर्थात् पशुहनन

करने वाला) देवता। (२) मानवी पशुयाग में पशुहनन की अधिष्ठात्री देवता का नाम। (ऐतरेय. प्रा. २-७) (३) आहवनीय पशु के प्रति शुभ कामना व्यक्त करनेवाले मंत्र।

अध्रिगुप्रैष = दिव्य तथा मानुष शमिताओं (यज्ञ में पशु हत्या करने वालों) को, पशु का यज्ञभूमि पर आवाहन करने हेतु प्रयुक्त मंत्र।

अधिदेवता = ग्रहयज्ञ आदि विधियों में प्रमुख देवता की दाहिनी ओर स्थापित देवता।

अधिषवण = जिन दो फलकों पर सोमलता को कूट कर यज्ञ के लिये सोमरस निकाला जाता है। उन फलकों की संज्ञा। (शतपथ प्रा.-३-९-४-१)

अधीवास = याज्ञिक अनुष्ठान में उपयुक्त उत्तरीय परिधान। (शतपथ ब्राह्मण- ५-३-५-२२)

अध्वर = हविर्यज्ञ की संज्ञा। (शतपथ ब्रा. १-१-४-७)

अध्वर = ध्वरा याने हिंसा जिसमें नही होती ऐसा यज्ञ कर्म। यज्ञीय हिंसा, हिंसा नहीं मानी जाती, अतः यज्ञ को अध्वर कहा गया है।

अध्वर कल्पेष्टि = शत्रु को सोम आदि यज्ञों का फल प्राप्त न हो, इस लिये यह इष्टि त्रिकाल की जाती है। अग्नाविष्णू, सरस्वती और बृहस्पति इस इष्टि के देवता है।

अध्वर्यु = यज्ञ के होता, उद्गाता और ब्रह्मा के अतिरिक्त ऋत्विक्, जो यजुर्वेद का विशेषज्ञ होता है।

अध्वर्यु = (अध्वरं = यज्ञं याति इति) अध्वर = यज्ञ में गमन करने वाला। यज्ञविधि करने वाला प्रमुख ऋत्विक् या पुरोहित। कर्म का प्रारंभ होने के पूर्व अध्वर्यु, यजमान और ब्रह्मा की अनुज्ञा लेता है। श्रौतयाग अध्वर्यु के बिना नहीं होता।

अध्वर्युवेद = अध्वर अर्थात् यज्ञ की विधि के मंत्र मुख्यतः यजुर्वेद में कहे गये हैं, अतः उसे यह संज्ञा प्राप्त हुई।

अनादेश देवता = अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति इन चारों की संज्ञा। जिस स्मार्त कृत्य में विशिष्ट देवता का शास्त्रोक्त निर्देश नहीं होता वहां इन चारों का स्वीकार होता है।

अनुक्रमणी = वेदों की सूची के ग्रंथ। ऋग्वेद के २ ग्रंथ = शौनककृत अनुवाकानुक्रमणी (नामांतर बृहद्देवता) और कात्यायन कृत सर्वानुक्रमणी। यजुर्वेद का सर्वानुक्रमसूत्र; अथर्व वेद की बृहत्सर्वानुक्रमणी आदि प्रसिद्ध हैं। अनुक्रमणी में मंत्रों के ऋषि, छंद, देवता, आख्यान आदि की जानकारी मिलती है।

अनुक्षतृ = सारथि या द्वारपाल का अनुयायी। पुरुषमेध की बलियों की सूची में निर्दिष्ट। (तैत्तिरीय ब्रा. ३-४-९-२)

अनुबन्ध्या याग = अवभृथस्नान के बाद वशा (वन्ध्या) गौ का हवन। तन्निमित्त आमिक्षा याग होता है।

अनुमंत्रण = अर्थ की ओर ध्यान रखकर मंत्र का पाठ करना।

अनुयाज = (१) विशिष्ट वैदिक देवता। (२) यज्ञ के शेष अंग। बर्हि, नराशंस और स्विष्टकृत् निमित्त आहुति समर्पण, (३) (या अनूयाज) = गौण अर्थात् मुख्य यज्ञ का पूरक यज्ञानुष्ठान। (४) प्रधान याग के अनन्तर जिन्हें पढ़कर ब्रह्मा नामक ऋत्विक् हवन करता है, उन याज्या मंत्रों की संज्ञा।

अनुवाक = वेद के अध्यायसदृश उपभाग।

अनुवाद = ब्राह्मण ग्रंथ का भाग, जिसमें पूर्वोक्त विधि की व्याख्या मात्र होती है और जिसमें स्वतंत्र कोई विधि या निषेध नहीं होता।

अनुव्याख्यान = वैदिक मंत्रों की सूत्रात्मक व्याख्या।

अनुशासन = (१) वेदांगों का वाचक शब्द। (२) साहित्य का एक विशिष्ट शास्त्रीय अंग। (उदा. योगानुशासन, शब्दानुशासन आदि)

अनुश्रव = वैदिक परंपरा।

अनुष्टुभ् = ३२ अक्षरों का एक छंद जिसमें आठ आठ अक्षरों के चार पाद होते हैं। इस के विविध प्रकार बताये गये हैं।

अन्तरिक्ष = द्युलोक और पृथ्वी लोक का मध्यवर्ती लोक।

अन्नस्तुति = ऋग्वेद-प्रथम, मंडल के एक सूक्त (१-१८७) की संज्ञा। इसीको **'अन्नसूक्त'** भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त ४-३१-१ से ३ मंत्रों को भी **'अन्नसूक्त'** कहते हैं। पार्वण श्राद्ध में भोजन परोसते समय अन्नसूक्त कहा जाता है।

अनूचान = वेद-वेदांगों का ज्ञाता, जो अध्यापन में भी समर्थ होता है।

अनृच = (१) यज्ञोपवीत संस्कार न होने के कारण जो वेदाध्ययन का अधिकारी नहीं हो सकता। (२) ऐसा पुरुष जिसने ऋग्वेद का अध्ययन नहीं किया हो।

अन्वाख्यान = मुख्य कहानी की पूरक कहानी।

अन्वाधान = हवन विधि में अग्निस्थापना व ध्यान के पश्चात् देवताओं के विशिष्ट हविर्द्रव्य और आहुतिसंख्या का निर्देश करते हुए देवता की स्थापना।

अन्वाधान = अग्निहोत्र की अग्नि में समिधाएँ रखना।

अन्वाधान = यज्ञ में अग्नि की स्थापना (आधान) होने पर, ऋत्विग् हाथ में समिधा लेकर कर्म के देवता तथा हविर्द्रव्य आदि निर्देश करने पर, उस समिधा को यज्ञाग्नि में समर्पण करता है। इसी को अनु + आधान = अन्वाधान कहते है।

अन्वारंभ = श्रौत या स्मार्त कर्म करते समय पत्नी ने पति के हाथ को हाथ लगाना; या यजमान ने पुरोहित के हाथ को दर्भ से स्पर्श करना।

अन्वारंभण (या अन्वारंभ) = यज्ञ के समय यजमान को पुनीत संस्कार के सुफल का अधिकारी बनाने के लिये स्पर्श करना।

अन्वारंभणीया इष्टि = प्रथम ही दर्शपूर्णमास यज्ञ करने वाले के लिये आवश्यक। सरस्वती को दो आहुतियाँ देकर इसका प्रारंभ होता है। यह इष्टि एक ही बार की जाती है।

अन्वाहार्य = ऋत्विजों के भोजन के लिये बनाया गया ओदन (भात)। अन्वाहार्यदक्षिणा से यज्ञसंबंधी दोषसमूह का परिहार होता है।

अपराग्नि = दक्षिण और गार्हपत्य नामक यज्ञाग्नि।

अपराजिता = उत्तर दिशा। ऐतरेय ब्रा. (१-१४)

अपां नपात् = जलों का पुत्र। अग्नि का एक विशेषण।

अपां नपात् =विद्युतस्वरूपी अग्निदेवता। ऋग्वेद (२-३५) के एक संपूर्ण सूक्त में इस का स्तवन किया है।

अपामार्ग = एक पवित्र वनस्पति। अघाडा नामक वनस्पति। ग्रहयाग में बुधग्रह के हवन में इसीकी समिधाओं का उपयोग होता है। अभिचारात्मक क्रियाओं में इसका उपयोग होता है।

अपामार्ग होम = राजसूय यज्ञ के अन्तर्गत एक सोमयाग।

अपौरुषेय (वेद) = जो मनुष्यद्वारा निर्माण नहीं किया गया, अर्थात् ईश्वरकृत है।

अप्नस्वती = (१) खनन कर्षण योग्य उर्वर भूमि। (२) ओजस्वी वाणी।

अप्वा = एक उदररोग।

अप्सुदीक्षा = दीक्षणीय इष्टि में क्षौर, नववस्त्र परिधान, हविष्यभोजन आदि होने पर सपत्नीक यजमान अपने शरीरपर दर्भांकुरों से जलसिंचन का पवन नामक संस्कार करता है। इसी को अप्सुदीक्षा कहते हैं।

अबूलिंगमंत्र = संध्यावंदन और मंगलाभिषेक में उपयुक्त "आपो हि ष्ठा" इत्यादि ऋग्वेद (१०-९) के तीन मंत्र।

अभिक्रतु = शत्रु

अभिघार = यज्ञ में घृत की आहुति।

अभितृष्ण = ऋग्विशेष।

अभिनिधन = सामविशेष।

अभिप्रश्नी = जिज्ञासु। पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

अभिमंत्रण = संशोधनीय हविर्द्रव्य की ओर दृष्टि लगाकर मंत्र का पठन।

अभिचार यज्ञ = जादू टोने के लिये किया जाने वाला होम-हवन।

अभिवान्यवत्सा = ऐसी गौ, जिसका बछडा मर जाने पर दूध दुहते समय दूसरी गौ का बछडा उसके सामने खडा किया जाता है। (अपरसंज्ञा - निवान्यवत्सा)

अभिश्रयण = आहुति के पूर्व सोमरस में दूध का मिश्रण करना।

अभिषव = (१) यज्ञ के लिये सोमरस निचोड़ना। (२) धार्मिक कृत्यों के प्रारंभ में किया जाने वाला स्नान।

अभिषवणी = (१) यज्ञ के लिये सोम को पीसते समय प्रयुक्त जल। (२) सोम पीसने का यंत्र।

अभिष्टुत् (या अग्निष्टुत् = ब्रह्महत्यादि अपराधों के प्रायश्चित्त निमित्त सोमयाग (मनु. ११-७४ वसिष्ठ २२-७)

अभोग्घन = (अभोग् + हन्) = ऋग्वेद में मरुद्गणों का एक विशेषण, जिस का अर्थ है- जो देवताओं को भोजन के लिये हवि नहीं देते, उनका नाश करने वाले। (ये देवान् हविर्न भोजयन्ति तेषां हन्तारः (सायणाचार्य)

अभ्यातान = तैत्तिरीय संहिता के ३, ४, ५ अध्यायों के मंत्रों की संज्ञा। इन मंत्रों सहित हवन को "अभ्यातान होम' कहते हैं। यह श्रौत और स्मार्त कर्मों में मुख्य कर्मों का आनुषंगिक होम होता है।

अभ्रि = अथर्ववेद में निर्दिष्ट एक हथियार। इसका डंडा, बांस, उदुंबर या विकंकत की लकड़ी का होता था। (अथर्ववेद-४.७.५-६)

अमत्र = विशिष्ट यज्ञपात्र। जिसमें पीसने के बाद सोम रखा जाता था।

अमीव = रोग

अमृतचरु = प्रजापति आदि छह देवताओं को अर्पित आहुतियों का नाम।

अयज्ञिय = (१) यज्ञ के लिये निषिद्ध पदार्थ, (२) यज्ञ करने का अनधिकारी।

अयव = कृष्णपक्ष। (यव = शुक्लपक्ष)

अयोगू = (१) भ्रातृहीन कन्या। (२) अविनीता स्त्री। पुरुषमेध के बलियों की सूची में उल्लिखित।

अरणी = शमी वृक्ष पर ऊगे हुए अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के काष्ठ से (घर्षण द्वारा) यज्ञीय अग्नि उत्पन्न करने का एक साधन।

अरणि (णी) = यज्ञीय अग्नि उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त अश्वत्थ काष्ठ के दो फलक, जिन्हें उत्तरारणि (उपर वाली) और अधरारणि कहते हैं। दोनों अरणियों के बीच की खांच में मंथा रख कर घर्षण से अग्नि उत्पन्न करते हैं।

अरण्यानी = (१) महारण्य। (२) अरण्यरूपिणी एक वेदोक्त देवता।

अरुणकेतु चयन = काठक चयन का एक प्रकार। इसमें उत्तरवेदी के स्थान पर नदी जल, उष्ण जल और शीतजल को इष्ट माना गया है। इस चयन के अनंतर सौत्रामणि याग होता है।

अरुंधती = घावों को भरने वाली तथा गौवों का दूध बढ़ाने वाली एक वनस्पति। (अन्य नाम = शिलाची, हिरण्यवर्णा, लोमशवक्षणा।

अर्ककर्मी (या अर्क) = अर्क नामक अर्चनसाधन मंत्रों को गाने वाला।

अर्जुनी = फल्गुनी नक्षत्र की अपर संज्ञा।

अर्धाधान = (१) अग्निहोत्र का स्वीकार करते समय आधा स्मार्ताग्नि अलग रख कर, अवशिष्ट अर्ध स्मार्ताग्नि से अग्न्याधान करना। (२) संपूर्ण स्मार्ताग्नि का रूपान्तर श्रौताग्नि में करना।

अर्बुद = इन्द्र द्वारा मारा गया एक असुर।

अर्म (अर्मक) = (१) नेत्ररोग, (२) अरमणीय स्थान। पुरुषमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

अर्यमा = एक वैदिक देवता। इनकी गणना आदित्यों में की गई है। (तैत्ति. ब्रा.१-१-९-१)

अर्शस् = एक रोग का नाम।

अलज = एक विशिष्ट पक्षी। अश्वमेध में इसकी बलि दी जाती थी। (तैत्ति. सं. ५-५-११-१)

अलजि = एक प्रकार का नेत्ररोग (अथर्व वेद - ९-८-२०)

अलौकिक = वैदिक

अवदान = यज्ञ के हविर्द्रव्य में हवनयोग्यता निर्माण करने वाला संस्कार अथवा अग्नि में जिसका हवन होता है वह हविर्द्रव्य। पुरोडाश के अवदान में आज्य से उपस्तरण, अभिधार इत्यादि चार या पाच संस्कार (चतुरवदान पंचावदान) होते हैं।

अवदान = हवनयोग्य द्रव्य। (शतपथ ब्रा. १-७-२-६)

अवदानधर्म = स्रुचा को उपस्तरण (घी लगाना) करने पर उसमें दो या तीन बार हवि का अभिधार करना।

अवभृथ = चातुर्मास्य, वरुण, प्रघासपर्व, कोकिलसौत्रामणि, तथा विविध प्रकार के सोमयाग समाप्त होने पर वरुण देवता के निमित्त याग। इसके पश्चात् यजमान दम्पती ऋत्विग् जनों सहित जलाशय में जो स्नान करते हैं उसे **अवभृथ स्नान** कहते हैं।

अवभृथ = सोमयाग का अंतिम अनुष्ठान। इसमें नदीस्नान का महत्त्व होता है। यजमान अपनी मेखला का और पत्नी अपने योक्त्र का विसर्जन करते हैं। इस में उदयनीयेष्टि, अनुसंध्यायाग अमिक्षा याग, वाजिनयाग, सक्तु होम, उदवसानीया इष्टि, पूर्णाहुति संज्ञक आज्याहुति आदि विधियों का अनुष्ठान होता है।

अवभृथ = यज्ञ समाप्त होने पर तीर्थ स्थान में समंत्रक स्नान।

अविवाक्य = द्वादशाह याग के दसवें दिन का नाम। इस दिन के प्रमादों का उच्चारण तथा विवाद नहीं किया जाता।

अवेष्टि = एक प्रकार की इष्टि जो प्रात्यः राजसूय यज्ञ में राजा द्वारा होती है।

अशित्र = चावल की आहुति

अशीति = अन्न। (श. ब्रा. ८-५-२-१७)

अश्वमेध = एक महान् सोमयाग। दिग्विजयी चक्रवर्ती राजा इसका यजमान होता है। यज्ञ का अश्व श्यामकर्ण और श्वेतवर्ण होता है। अन्य पशुओं की संख्या ६ सौ से अधिक होती है। अश्व के संचार के समय उसके रक्षक चार सौ होते हैं। चैत्र पौर्णिमा से यज्ञ का प्रारंभ होता हैं। अश्व सहित अनेक पशुओं का हनन होता है। २१ यूप आवश्यक। मृत अश्व और पटरानी का मैथुन विहित (कात्यायन श्रौतसूत्र २०१६-१५-१६) यजमान की चार रानियों के साथ अनेक कन्याएँ होती हैं। अन्त में रानियों की अनुचारियों का ऋत्विजों को दान होता है।

अश्वमेधयाजी = अश्वमेध नामक यज्ञ करने वाले महाराज की सम्मानोपाधि।

अश्विनौ = ऋग्वेद में वर्णित एक युग्म देवता। विवस्वान् और सरण्यू के जुड़वे पुत्र। ऋग्वेद के ५० सूक्तों में इनकी स्तुति है। पुराणों में अश्विनौ स्वर्वैद्य = देवो कें वैद्य और अतिसुंदर कहे गये हैं।

अष्टक = ऋग्वेद के आठ विभाग। प्रत्येक विभाग में अध्याय संख्या भी आठ ही है। प्रत्येक अध्याय के वर्ग नामक विभाग होते हैं।

अष्टकर्णी = गाय का वाचक वैदिक प्रतिशब्द।

अष्टका श्राद्ध = सप्त पाकयज्ञ संस्था में अन्तर्भूत एक कर्म। यह तीन दिन चलता है।

अष्टका श्राद्ध = हेमन्त और शिशिर ऋतु की चारों कृष्णपक्षीय अष्टमीयों पर अपूप एवं शाक से विश्वदेव, प्रजापति तथा पितरों के प्रीत्यर्थ नित्य कर्म। आश्वलायन गृह्य सूत्र के अनुसार इसमें बैल के मांस का विधान हैं।

अष्ट विकृतियाँ = (वेदपठन की पद्धतियां)
जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और धन। (विकृतिवल्ली १-५)

अष्टाकपाल पुरोडाश = दर्श-पूर्णमास-याग. में पौर्णिमासी को अग्नि के लिये हवनीय द्रव्य।

अष्टि = एक वैदिक छंद।

असदध्येता = अपनी वेद शाखा छोडकर दूसरी का अध्ययन करने वाला। इसीको "शाखारंड" कहते हैं। शाखारण्ड ब्राह्मण धर्मक्रिया में निषिद्ध होता है।

असलम् = अस्त्र छोड़ते समय पढ़ा जाने वाला विशिष्ट मंत्र।

असितमृग = कश्यपों के वंश की संज्ञा। (ऐ.ब्रा. ७-२७)

असुर्या = (१) आसुरी सेना ऋ. १-१६८-७)
(२) आसुरी लोक । (ईश उप. ३)

अस्यवामीय (या अस्यवामस्य) = ऋग्वेद का एक अध्यात्म विषयक सूक्त। यह अथर्ववेद में भी मिलता है। (१.१६४)

अहि = सर्प । अहि की वेदोक्त जातियाँ – अघाश्व, अजगर, असित, कंकापर्ण, करिक्रत, कल्याषग्रीव, कसर्णीत, कुम्भीनस, तिरश्चिराजि, तैमात, दर्वि, दशोनसि, पुष्करसाद, पृदाक, लोहिताहि, शर्कोट, श्वित्र, सर्प। (वैदिककोश पृ. ३३)

अहीन याग = सोमयाग का एक प्रकार । इसका प्रारंभ पौर्णिमासे होता है । एक महीने के बाद अतिरात्र याग से समाप्ति होती है । त्रिरात्र, पंचरात्र, षडह, इसी याग के अंग है । अहीन याग में अश्वमेध और द्वादशाह प्रमुख माने जाते हैं। इस के३३ प्रकार कहे गए हैं।

अहिर्बुध्न्य = एक वैदिक देवता । रुद्र या शिव का एक नाम।

आकूपार = सामविशेष

आक्षार = सामविशेष

आगीत = अग्नि, वायु और आदित्य इन तीन देवों का निर्देशक शब्द।

आख्यान वैदिक

शुनःशेपाख्यान = राजसूय यज्ञ के समय होता इस आख्यान का प्रवचन करता है। यह ऋग्वेद प्रथम मंडल के २४ वे सूक्त से संबंधित है ।

अगस्त्य-लोपामुद्रा आख्यान = ऋग्वेद १-१७९ में कथित।

गृत्समद्-आख्यात = ऋग्वेद २-१२ में उल्लिखित.

च्यवान-भार्गव आख्यान = शतपथब्राह्मण ४-१५ में उल्लिखित ऋग्वेदीय आख्यान

त्र्यरुण-वृषजान आख्यान = ऋग्वेद ५-२ में उल्लिखित।

सोमावतरण आख्यान = ऋग्वेद ३-४३ में उल्लिखित।

अग्निजन्माख्यान = ऋग्वेद ५-११ में उल्लिखित

श्यावाश्व-आख्यान = ऋग्वेद ५-३२ में उल्लिखित ।

वसिष्ठ-विश्वामित्र-आख्यान = ऋग्वेद ३-५३/७-३३ में उल्लिखित ।

सुदास्-आख्यान = ऋग्वेद ७-१८ में उल्लिखित।

बृहस्पति जन्म-आख्यान = ऋग्वेद ६-७१ में उल्लिखित।

नहुष-आख्यान = ऋग्वेद ७-९५ में उल्लिखित।

अपाला-आख्यान = ऋग्वेद ८-९१ में उल्लिखित।

नाभानेदिष्ट-आख्यान = ऋग्वेद १०-६१, ६२ में उल्लिखित।

वृषाकपि-आख्यान = ऋग्वेद १०-८६ में उल्लिखित

ऊर्वशी-पुरूरवा आख्यान = ऋग्वेद १०-९५ में उल्लिखित ।

देवापि-शंतनु आख्यान = ऋग्वेद १०-९८ में उल्लिखित ।

सरमा-पणि आख्यान = ऋग्वेद १०-१०८ में उल्लिखित।

नचिकेता आख्यान = ऋग्वेद १०-१३५ में उल्लिखित।

दध्यङ्-आथर्वण आख्यान = एक वेदोक्त आख्यान जिसका विकास पुराणों में हुआ।

पुराण संहिता = ऋग्वेद के सुपर्ण आख्यान तथा पुरूरवा आख्यान की अथर्ववेदोक्त संज्ञा।

× × ×

आग्नीधम् = यज्ञाग्नि जलाने का स्थान अर्थात् यज्ञकुण्ड ।

आग्नीध्रः = यज्ञाग्नि प्रदीप्त करने वाला पुरोहित।

आग्नीध्रीय = सोमयागनिमित्त निर्मित मंडप, जो महावेदी की उत्तर दिशा में होता है। इसका आधा भाग महावेदी के अंदर होता है। इसकी दक्षिण दिशा में द्वार होता है।

आग्नेय = विराट् पुरुष के मुख से अग्नि और ब्राह्मण की उत्पत्ति होने से वेद में ब्राह्मण को आग्नेय, अग्नि या अग्निदेव कहा गया है।

आग्रयण इष्टि = (अन्य नाम नवयज्ञ तथा नवसस्येष्टि) = नवीन अन्न सेवन करने के पूर्व होने वाली यज्ञविधि। प्रतिपदा या पौर्णिमा इसकी तिथि है। इस में १७ सामधेनी ऋचाओं का प्रयोग होता है। अपर संज्ञा – नवान्न इष्टि।

आग्रयण = अग्निष्टोम में सोम की प्रथम आहुति ।

आग्रयणेष्टि = वैदिकों के सात हविर्यज्ञों में पांचवा यज्ञ ।

आग्रहायणी = सप्त पाक यज्ञों में से एक।

आघार = यज्ञ की अग्नि में घृत की आहुतियां डालमा ।

आघार = यज्ञ में वायव्य से आग्नेय की ओर तथा नैर्ऋत्य से ईशान्य की ओर समर्पित दो आहुतियों की संज्ञा ।

आघार = यज्ञाग्नि के किसी एक ओर से दूसरी ओर तक मंत्र सहित आज्यधारा का आहरण (डालना)। यज्ञ में यह आघार दो बार होता है।

आघाटि = एक वेदकालीन करतालसदृश वाद्य यंत्र।

आङ्गूष = स्तोत्र (निरुक्त ५-११)

आचमन = श्रौत तथा स्मार्त धार्मिक अनुष्ठानों तथा भोजन के पूर्व और पश्चात् हथेली में जल लेकर घूंट-घूंट करके पीना ।

आचारधूमग्रहण = यज्ञानुष्ठान के समय श्वास के द्वारा यज्ञाग्निका धूम ग्रहण करने की विधि।

आजिज्ञासेन्या = ऋग्विशेष।

आज्य = पिघला हुआ घी।

घृत = धनस्वरूप घी ।
(सर्पिर्विलीनमाज्यं स्याद्। घनीभूतं घृतं भवेत्)

आज्य = अजा (बकरी) के दूध का घी।
(२) गाय के दूध से निकाला घृत।
(३) घृत, तेल, दूध, दही और यावक (जौ का पदार्थ) जब आज्य के स्थान पर उपयोग में लाए जाते है तब उन्हें भी आज्य कहते है। देवों का आहार आज्य ही है (देवानामाज्यमाहारः)

आज्य और प्रउग = प्रातःकालीन (हो) सोम के हविर्मन्त्र (होतृद्वारा उच्चारित)। शस्त्र का एक प्रकार

आज्यग्रहण = एक यज्ञीय विधि।

आज्यदोह साम = एक विशिष्ट साम। इसमें तीन ही मंत्रों का समावेश होता है। (ऋग्वेद- ६-७-१/६-७-४/६-७-२)

आज्यभाग = अग्नि और सोम इन दो देवताओं का यज्ञीय आज्य (घृत) भाग होता है। अतः इन दो देवताओं को तथा उनसे संबंधित होम विधि को 'आज्यभाग'- कहते हैं।

आज्यभाग = होम के प्रारंभ में आघार विधि के बाद स्थंडिल पर उत्तर और दक्षिण की ओर अग्नि और सोम के प्रीत्यर्थ वर्तुलाकार घृताहुति। आज्यभाग्य यज्ञपुरुष के नेत्र माने जाते हैं।

आज्यशस्त्र = सोमयाग के प्रातःसवन में होता द्वारा पठित प्रथम शस्त्र।

आज्यस्तोत्र = प्रातःसवन में गायत्र साम से गाये जाने वाले चार स्तोत्र। (जैमिनीय न्यायमाला १-४-३)

आज्यस्थाली = किसी याग में आवश्यक संपूर्ण आज्य रखने की मिट्टी, चांदी या कांस्य की स्थाली। प्रायश्चित्त होम आदि कुछ विधि में आज्यस्थाली से आज्य लिया जाता है।

आज्य हविष्कयाग = अमावस्या को विष्णु तथा अग्निषोम देवता के प्रीत्यर्थ होते हैं। इसमें 'आज्य' (विशिष्ट प्रकार का घृत) प्रधान हविर्द्रव्य होता है, जो देवताओं को अत्यंत प्रिय होता है।

आडम्बर = नगारा सदृश वेदकालीन वाद्य।

आतिथ्येष्टि = विष्णु देवता के प्रीत्यर्थ नौ कपालों पर पकाये पुरोडाशों का हवन। तानूनप्त्र, आप्यायन, प्रवर्ग्य, घर्माहुति आदि विधि होने पर, ऋत्विक् विशिष्ट मंत्रों का पाठ करता है और प्रस्तोता सामगान करता है। सोमक्रय विधि में सोमवल्ली के प्रीत्यर्थ आतिथ्येष्टि होती है।

आत्रेय = यज्ञ में जिस व्यक्ति को अग्रपूजा का बहुमान

दिया जाता है। प्रायः अत्रिगोत्र के पुरुष को यह बहुमान दिया जाता है।

आथर्वण = (१) अथर्ववेद
(२) अथर्ववेद के मन्त्रों से यज्ञ की विधि करने वाला ऋत्विज्।

आथर्वणिक = अथर्ववेद का अध्ययन करने वाला।

आदित्य = एक वैदिक देवता समूह। कश्यप और अदिति के पुत्र। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार (११-६-३-८) इनकी संख्या १२ है जिनमें विष्णु सर्वश्रेष्ठ हैं। (अपरनाम साध्य)

आदित्यानाम् अयनम् = एक वर्ष में पूर्ण होने वाला सत्र।

आधिपत्यमय = एक वेदोक्त शासन की व्यवस्था।

आध्वर्यव = (१) अध्वर्युवेद (यजुर्वेद) से संबंधित। (२) अध्वर्यु नामक पुरोहित का यज्ञविधि में कर्तव्य।

आनाय्य = यज्ञ में गार्हपत्य अग्नि से ली हुई संस्कारित अग्नि। इसे दक्षिणाग्नि भी कहते हैं।

आपस्तंब शाखा = कृष्णयजुर्वेद की १५ अध्वर्यु शाखाओं के अन्तर्गत तैत्तिरीय शाखा की एक उपशाखा। इस शाखा का प्रचार आंध्र में अधिक है।

आपस्तंब गृह्यसूत्र = कृष्णयजुर्वेद के आपस्तम्ब नामक कल्पसूत्र का २७ वां (प्रश्न नामक) भाग।

आपस्तंब धर्मसूत्र = कृष्ण यजुर्वेदीय आपस्तंब कल्पसूत्र के २८ और २९ वें (प्रश्न नामक) भाग।

आपोदेवता = एक वैदिक जलमयी देवता।

आप्तोर्याम = ज्योतिष्टोम यज्ञ का अंतिम या सातवां भाग। इसकी समाप्ति में 'आप्तोर्याम' नामक सामवेद के मंत्र का उच्चारण होता है।

आप्तोर्याम = सप्त सोम संस्था के अन्तर्गत एक याग जो अतिरात्र याग के बाद में होता है। इसमें हजारों गायों की दक्षिणा दी जाती है। इसका फल है गोधन का लाभ।

आप्यायन = सोमयाग में आतिथ्येष्टि के अन्तर्गत यजमान सहित ऋत्विजों द्वारा सोमवल्ली पर किया जाने वाला एक संस्कार।

आप्यायन = (१) मंत्रोच्चार सहित कुशोदक से मंत्र के प्रत्येक वर्ण का विधिवत् प्रोक्षण। सोमयाग में सोमक्रय होने पर प्रतिदिन उस का आप्यायन अर्थात कवोष्ण जल से सिंचन होता है। (२) वारंवार जलस्पर्श करते हुए मंत्रों का पठन।

आप्री = एक सूक्त विशेष। दो भाग – नाराशंस और तनूनपात्।

आप्रीसूक्त = याज्यास्वरूप ११ या १२ ऋचाओं का समूह। ऋग्वेद में कुल १० आप्रीसूक्त हैं। जिन्हें यज्ञों में प्रयाजयाज्या, कहते हैं।

आप्रीसूक्तों में वर्णित देवता- इध्म (या सुसमिद्ध तथा समिधान अग्नि), तनूनपात् या नाराशंस, ईळ, बर्हिस, देवी द्वाराः, उषासानक्तौ, देव्यौ होतारौ (या प्रचेतसौ), सरस्वती (भारती या इळा), त्वष्टा वनस्पति (यूप), स्वाहाकृति (या विश्वेदेव)।

आमहीयव = सामविशेष। प्रजापति इसके द्रष्टा थे।

आमिक्षा = घनीभूत दही, एक यज्ञीय हविर्द्रव्य। गरम दूध में दही मिलाने पर बनने वाला पदार्थ- (आपस्तंब श्रौत सूत्र-८-२-६) इसे **पयस्या** भी कहते हैं। आमिक्षा को वस्त्र से छानने पर निकले हुए जल को **वाजिन** कहते हैं जो वाजिन् देवता का हविर्द्रव्य है।

आम्नानम् = वैदिक ग्रंथों का सस्वर पठन या अध्ययन।

आम्नाय = (१) किसी शास्त्र का आद्य ग्रंथ।
(२) वेद या ब्राह्मण ग्रंथ। (३) सम्यक् अध्ययन।

आयास्य = सामविशेष।

आयुष्कामेष्टि = रोगपीडित होने पर रोगमुक्ति के हेतु एक विशिष्ट यज्ञ। इसमें १०० कृष्णलों (सोने के छोटे टुकड़ों) का हवन होता है। (आपस्तंब श्रौत सूत्र १९-२१-१)

आयुष्यसूक्त = ऋग्वेद का एक सूक्त।

आयुष्यहोम = घृतसूक्त के मंत्रोचारण से किया गया यज्ञ।

आयुष्टोम = दीर्घायु प्राप्त करने के लिए किया जाने वाला एक यज्ञ।

आरण्यकम् = वैदिक वाङ्मय में ब्राह्मण ग्रंथों से संबंधित याज्ञिक कर्मकांड तथा ज्ञानकांड से युक्त ग्रंथरचना, जो अरण्य में निर्माण हुई और जिसका अध्ययन अरण्य में रहने वाले वानप्रस्थाश्रमी विद्वान करते थे। (अरण्येऽनूच्यमानत्वात्, अरण्ये अध्ययनात् आरण्यकम् उदाहृतम्) ये ब्राह्मण ग्रंथों के परिशिष्ट माने जाते हैं।

आर्चिक = सामवेद की ऋचाएं। छंद, आरण्यक और उत्तर नामक तीन आर्चिक ग्रंथ होते है। (२) सामवेद का विशेषण।

आर्चिक = ऋग्वेद से संबंधित। ऋग्वेद की व्याख्या करने वाला।

आर्त्विजीन = ऋत्विक् के कर्तव्य में कुशल वैदिक ब्राह्मण (अष्टाध्यायी ५-१-१७१)

आर्त्विज्य = यज्ञ में ऋत्विक् का पद तथा ऋत्विक् का कर्म।

आर्भव पवमान = अग्निष्टोम याग के तृतीय सवन का प्रथम स्तोम, जो ऋभु देवताओं से संबंधित है।

आर्षभ = एक सामविशेष

आवसस्थ = एक यज्ञीय अग्नि का नाम। यज्ञ मंडप में आहवनीय अग्नि के सामने वाले कक्ष में इस अग्नि का स्थान होता है।

आवसथ्य = (१) अग्निहोत्री की यज्ञशाला में स्थापित अग्नि। (२) यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली पांच अग्नियों में से एक। (३) आवसथ- (अर्थात अतिथिगृह) में स्थापित अग्नि।

आवसायी = सर्वत्र निवास करने वाला ब्राह्मण। (एत.ब्रा. ७-२९-२)

आवापगमन = पशु याग में हत्या के कारण पशु को होने वाले क्लेशों के कारण यजमान के पुण्य का ह्रास। (व्यास भाष्य २-१३)

आवाहन = यज्ञ या पूजा की विधि मे देवताओं को मंत्रोच्चार द्वारा निमंत्रित करना। विधि के अन्त में उनके निर्गमन की

विधि को विसर्जन कहते हैं।

आशु = एक सामविशेष

आश्वम् = एक सामविशेष

आश्वयुज = आश्विन मास का नाम।

आश्वयुजीकर्म = अश्विनी नक्षत्र पर करने योग्य सप्त पाक यज्ञों में से एक। इसमें पृषातक (देखिये) की आहुतियों का महत्त्व होता है।

आश्वलायन = ऋग्वेद की २१ शाखाओं में से एक। श्रौतसूत्र की एक शाखा।

आश्वयुक्त = साम विशेष

आश्विन (आश्वीन) = एक अश्वारोही एक दिन की दौड़ में जितनी दूरी तय कर लेता है उतना अंतर। (अथर्ववेद ६-१३१-३)

आष्ट्री = अग्निस्थान। दुष्टपक्षी के उस पर बैठने को अशुभ समझा गया है।

आश्विनशस्त्र = ऋग्वेद के अन्तर्गत अश्विनौ देवता की स्तुतिपरक अनेक ऋचाओं का समूह। अतिरात्र याग में होता ऋत्विक् इसका गायन करता है।

आसंदी = राजसूय यज्ञ में उपयुक्त, यजमान राजा का एक उच्चासन (कुर्सी के समान) जो औदुंबर काष्ठ से बनाया जाता था।

आसाद = व्रात्य के आसन का एक भाग। (अथर्व वेद १५-३-८)

आहवनीय = (१) यज्ञ में गार्हपत्य अग्नि से ली हुई अभिमंत्रित अग्नि, जो तीन अग्नियों में से एक मानी जाती है। गार्हपत्य अग्नि की पूर्वदिशा में इस का आयतन होता है। (२) आहिताग्नि की जिस अग्नि में आहुतियां डाली जाती हैं। (अन्य यज्ञीय अग्नि गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि)

आहाव = (१) जलपात्र। (२) यज्ञ में शस्त्रपठन के समय होता शोंऽ३ सावोंऽ३'' मंत्र का उच्चारण करता है। इसी की यह संज्ञा है।

इज्या = यज्ञ

इट = विशेष दूर्वा या शर।

इड = अन्न (ऐत.ब्रा. २-४-६-१५)

इडसून = एक काष्ठ फलक, जिस पर यज्ञीय पशु का स्वधिति नामक शस्त्र से अवदान (छेदन) होता है।

इडा = (१) अन्न या पुष्टि। (२) एक देवी (३) गौ (निघण्टु)। (४) मनु की पुत्री (५) अग्नि की माता। (६) पृथ्वी । (७) श्रद्धा।

इडादध = यज्ञ

इडानां संक्षारः = साम विशेष।

इडापात्री = बरने की लकड़ी की बनाई, एक अरत्नि लंबी, दो अंगुल गहरी, किनारों पर दो अंगुल परिधि वाली, बीच में संकुचित, चार अंगुल के हत्थे वाली पात्री। उसमें इडा (अन्न) को रखने के कारण यह संज्ञा प्राप्त हुई।

इडाभक्षण = सोमयाग में सोमरस का हवन होने पर अवशिष्ट सोमरस के प्राशन के बाद यह कर्म होता हैं। (इडा = अन्न या पुष्टि)

इध्मजिह्व = अग्नि।

इन = स्वामी या ईश (निरुक्त ३-११-११-२१)

इन्दु = (१) सोम। (२) उदक (निघण्टु (१-१२)। (विन्दु)

इध्म = उदुंबर, पलाश आदि पवित्र वृक्ष की एक हाथ लंबी अठारह समिधाएं

इध्मप्रोक्षण = यज्ञ की विधि निमित्त समिधाओं पर मंत्रोच्चार सहित पवित्रजल से सिंचन।

इध्मबंधनरज्जु = दर्भों की रस्सी जो इध्म (समिधा) बांधने के लिये होती है।

इन्द्र = अन्तरिक्ष स्थानीय अत्यंत ओजस्वी देवता।

इन्द्रतुरीया = राजसूय के अन्तर्गत एक इष्टि।

इन्द्रध्वजोत्सव = एक वैदिक महोत्सव जो वर्षप्रतिपदा को होता था। अपरनाम- इन्द्रमह, इन्द्रयष्टि

इन्द्रयाग = इन्द्र के प्रीत्यर्थ एक यज्ञ जो पर्जन्य की प्राप्ति के लिए होता था।

इन्द्रस्तुत् = एक याग जिसमें पंचदश सोमपद्धति से इन्द्र की स्तुति होती है।

इन्द्राग्नी = प्राण-उदान तथा प्राण-अपान वायु की आधिदैविक संज्ञा। (शत. ब्रा. २-५-२-८, ४-३-१-२२)

इन्वका, इन्वगा = मृगशीर्ष-संघगत एक नक्षत्र का नाम। (मैत्रा. सं. २-१३-२०)

इरज्यु = स्वामी या ईश (ऋ. १०-९३-३)

इरा = देखिये इडा, इला।

इरिण = भूविवर। (२) अक्षक्रीडा का स्थान (ऋ. १०-३४-१,९)

इष् = अन्न।। देखिये = इडा, इरा इला

इषीका = शूर्प, या छाज (शत. ब्रा. ११-४-१९)

इषु, इषुका = बाण

इष्ट = अग्निहोत्र, तप, सत्यपालन, वेदार्थ का पालन, आतिथ्य और वैश्वदेव इन छह व्रतों की संज्ञा। (मेदिनी कोश)

इष्ट = गृह्याग्नि व श्रौताग्नि में हवन तथा श्रौतयज्ञ की वेदी पर दान।

इष्टका = ईंट

इष्टकाकरण = सोमयाग के अन्तर्गत चयन विधि में ईंटे तयार करने की विधि। चयन की विधि संवत्सरसत्र में एक वर्ष तक होती है।

इष्टापूर्त = द्विजों का सामान्य धर्म जिसमें यज्ञ तथा परोपकारक कर्मों का अन्तर्भाव होता है। इनमें **इष्ट** वैदिक और **पूर्त** पौराणिक धर्माचार हैं।

इष्टापूर्त = यज्ञ और दान (परोपकारी कर्म)

इष्टि = यज्ञ। प्राप्ति, अभीप्सा।

इष्टिश्राद्ध = श्राद्ध के १२ प्रकारों में से एक कर्मांगभूत श्राद्ध।

इहनिधन = एक सामविशेष।

इहेड = एक सामविशेष।

ईनिधन = एक सामविशेष।

ईशावास्य = शुक्ल यजुर्वेद-४० वां अध्याय। ईशावास्य शब्द से प्रारंभित एक उपनिषद का नाम। इसकी श्लोक संख्या १८ है।

उक्थ = सामवेद की संज्ञा। उद्गाता ऋत्विक् द्वारा गेय साम (स्तोत्र)।

उक्थ पात्र = एक यज्ञीय पात्र जिसमें उक्थस्थाली से लिये गये ग्रह का हवन होता है।

उक्थयाग = एक यज्ञ। (तांड्य ब्राह्मण)

उक्थपत्रयज्ञ = एक यज्ञ (वाजसनेयी सं.)

उक्थवाहस् = उक्थ का पाठ करने वाला

उक्थस्थाली = सोमयाग में उपयुक्त मिट्टी की थाली। इससे विविध उक्थ्यग्रह लिये जाते हैं।

उक्थ्य = सप्त सोमसंस्था के अंतर्गत एक। इस याग में १५ उक्थ स्तोत्र गाये जाते हैं (इसमें अज का बलिदान होता है।)

उक्थ्यप्रचार = सोमयाग के मध्यंदिन सवन में एक विधि।

उखा = मिट्टी का एक यज्ञीय पात्र जो ऋत्विक् द्वारा निर्माण किया जाता है। दीक्षाकाल में यह पात्र यजमान के गले में बांधा जाता है।

उखासंभरण = (उखा = कुंडाकार मृत्तिकापात्र) सोमयाग के प्रारंभ में यह विधि होती है। उखापात्र की मृतिका विशिष्ट पद्धति से सिद्ध की जाती है। उखापात्र में दर्भ रखकर आहवनीय अग्नि पर वह तपाया जाता है, जिससे दर्भ जलने लगते हैं। इसी को **उख्याग्नि** कहते हैं। यह स्वयंभू अग्नि कही जाती है। इसकी स्थापना गार्हपत्यचिति में होती है।

उख्याग्नि = देखिये उखासंभरण।

उग्रंपश्या = अप्सराविशेष

उग्ररथशांति = आयु के ६० वर्ष पूर्ण होने पर एक हवन विधि। (षष्ट्यब्द-पूर्तिशांति या **मार्कण्डेय शांति**)

उत्तर वेदी = सोमयाग के निमित्त पूर्व दिशा में निर्मित पीठ का नाम।

उत्तरार्चिक = योनि ऋचा के उत्तर दल में समाविष्ट दो या एक ऋचा

उत्तानपर्णा = सपत्नीपर्दन के लिए अभिप्रेत मंत्र में उल्लिखित एक वनस्पति का नाम।

उत्सर्जन = उपाकर्म (देखिये) विधि पूर्वक प्रारंभित वेदाध्ययन के समापन की विधि। **उपाकर्म** के छह महीनों के बाद (माघ पौर्णिमा को) यह समापन विधि होती है।

उत्सेध = सामविशेष

उदचमस = जल छिड़कने या डालने के लिए एक (स्रुवाकार) पात्र।

उदञ्चन = जलपात्र।

उदयनीया इष्टि = सोमयाग के अवभृथ विधि के अन्तर्गत अवभृथ स्नान के बाद की विधि।

उदवसानीया = एक इष्टि का नाम।

उदात्त = वेदपठन का उच्चतम स्वर। (उच्चैरुदात्तः)

उदाज = संग्राम में राजा द्वारा जीता गया धन। (मैत्रा. सं. १-१-१६)

उद्गाता = सामगान करने वाला ऋत्विक्। इसके तीन सहायक- प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य।

उद्गीथ = सामवेद का गान। इसका गायक ही उद्गाता कहलाता है। पांच सामों में से एक।

उद्र = तैत्तिरीय, मैत्रायणी और वाजसनेयी संहिताओं में उल्लिखित अश्वमेघ के बलिपशुओं में से एक (प्रायः खेकडा, या जलबिलाव।

उद्वंशीय = देखिये अच्छावाक।

उन्नेता = श्रौत याग में अध्वर्यु के आदेश के अनुसार कर्म करने वाला सहकारी ऋत्विक्।

उन्नेता = यज्ञ में सोमसंबंधि कर्म करने वाला ऋत्विक्। अवभृथ स्नान विधि समाप्त होने पर यह सभी लोगों को नदी के बाहर लाता है।

उद्गीथ = प्रणव या ओंकार जो ऋग्वेद और सामवेद का सारभूत श्रेष्ठ मंत्राक्षर है।

उपगाता = उद्गाता आदि के पीछे एक साथ गान करने वाला। (शत. ब्रा. १२-२-३-२)

उपज्ञात = वैदिक साहित्य के अन्तर्गत किसी आचार्य द्वारा प्रथम उपदिष्ट शास्त्र। उदा. पाणिनि की अष्टाध्यायी।

उपद्रव = पांच भाग वाले सामों में चतुर्थ। पांच साम – प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतीहार, उपद्रव और निधन।

उपद्रष्टा = यज्ञ-विधि में ऋत्विज् और यजमान कर्म में व्यग्र होने पर सारी देखरेख करने वाला ऋत्विक्। (भगवद्गीता में परमात्मा को 'उपद्रष्टा' कहा है। १३-२२)

उपनिषद् = (उप + नि + सद्) उप = समीप। नि = नियत। सद् = बैठना। इस व्युत्पत्ति के अनुसार गुरु के समीप बैठकर प्राप्त होने वाली विद्या (अर्थात् अध्यात्म विद्या) (२) अविद्या का नाश करने वाली विद्या (३) यह वेदों का अंतिम भाग होने के कारण 'वेदान्त' कहा जाता है। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंड, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर प्रमुख उपनिषद हैं।

उपनिषद् = रहस्यात्मक अर्थ, परिव्राजक के गूढ नियम, गूढ तत्त्वों की पुस्तक,

उपपति = पुरुषमेध की बलि-पशु की नामावली में उल्लिखित।

उपब्द, उपब्दि = वाक् का एक नाम (निघण्टु १-११)

उपभृत् = अश्वत्थ काष्ठ से निर्मित एक यज्ञीय पात्र।

उपभृत् = (उप-समीपे भ्रियते-धियते) = अध्वर्यु द्वारा होम के लिये दाहिने हाथ में ली हई जुहू के समीप धारण की

हुई अश्वत्थ काष्ठ की बनी हुई वस्तु।

उपमन्थिता = तैत्ति. ब्राह्मण में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित। (उपमन्थनी = मथानी)

उपयज् होम = पशुयाग में अनुयाज के साथ होने वाला एक गौण पशुयाग, जिसमें पशु के गुदकांड के ११ भागों की आहुतियाँ दी जाती हैं।

उपयमनी = उदुंबर काष्ठ से निर्मित एक स्रुवा। इसका बिल सामान्य स्रुवा से आकार में बड़ा होता है।

उपयाज = यज्ञ के परिशिष्ट अंग।

उपलप्रक्षिणी = सोम के सवन में सहायता करने वाली स्त्री।

उपवक्ता = एक ऋत्विज्

उपवसथ = सोमयाग के आरंभ का पूर्वदिन। इस दिन उपवास और यज्ञ की दीक्षा होती है।

उपवसथ = अग्न्याध्येय नामक द्विदिवसीय हविर्यज्ञ का प्रथम दिवस।

उपवीत = वैदिकों का पावन सूत्र। (यज्ञोपवीत) जो देवक्रिया में वामस्कंध पर रखा जाता है।

उपवेद = चार वेदों की अंगभूत विद्याएँ। ऋग्वेद का उपवेद = **आयुर्वेद**; यजु. का = **धनुर्वेद**; साम. का = **गांधर्व वेद**; अथर्व. का = **अर्थशास्त्र**। इनके अतिरिक्त सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद और पुराणवेद अथर्ववेद से संबंधित उपवेद माने जाते हैं।

उपवेश = पलाश या खदिर की लकड़ी से बना एक हस्ताकार यज्ञपात्र या समिधा।

उपवेषनिरसन = सोमयाग के तृतीय सवन में एक विधि।

उपशय = ऐकादेशिन पशुयाग में १२ वें यूप का नाम। यह अन्य यूपों की दक्षिण में आडा रखा जाता है।

उपसद् = एक विशिष्ट याग, जिसमें अभिषुत सुरा का गर्त में उपस्थापित किया जाता था।

उपसद-इष्टि = सोम या अग्निष्टोम याग के अन्तर्गत आतिथ्येष्टि के बाद की विधि। इसमें अग्नि, सोम और विष्णु प्रधान देवता होते हैं। इस विधि में प्रवर्ग्य और उपसद् विधियां तीन दिनों तक प्रातः और सायं होती हैं। द्वितीय दिन में सोमयाग की महावेदी की रचना होती है।

उपसर्जनी = यज्ञीय पिष्ट को सानने के निमित्त गरम किया गया जल।

उपस्तरण = होम के समय पात्र में हविर्भाग लेने के पूर्व उसे घी लगाना।

उपस्ति = वैश्य और शूद्र जो आश्रित होते थे।

उपस्थान = (१) मंत्रोच्चार सहित देवता को नमस्कार। प्रवास को जाते समय आहिताग्नि अग्नि का उपस्थान करता है। (२) अग्निहोत्री ने नित्य हवन की विधि करने के बाद देवताओं की प्रार्थना के मंत्रों का उच्चारण। यह कर्म प्रातः या सायं अथवा दोनो समय किया जाता है। दैनंदिन उपस्थान के अतिरिक्त मास के प्रथम पक्ष में अग्निषोम का और द्वितीय पक्ष में इन्द्राग्नी का उपस्थान किया जाता है।

उपाकरण = (१) सोमयाग में अग्निषोम देवता को अज (बकरा) का समर्पण। इसमें पशु का उदर फाड़कर निकाले हुये वपा नामक मांस के भाग हवन होता है। (२) पशुयाग में हवनीय पशु को यज्ञशाला में लाकर उसके देवता का निर्देश करना। तत्पश्चात् पशु का हनन होता है। (३) संस्कार पूर्वक वेदों का अध्ययन।

उपाकर्म (श्रावणी) = वर्षा ऋतु में वेदाध्ययन के प्रारंभ की विधि। इसी को **अध्यायोपाकर्म** या **अध्यायोपाकरण** भी कहते है। श्रावण मास में हस्तनक्षत्र की तिथि को (पंचमी को) उपाकर्म विधि होती है।

उपाध्याय = वेदों के विशिष्ट भाग तथा वेदांगों का अध्यापन करने वाला वैदिक पंडित।

उपानस = अन्नपूर्ण शकट।

उपांशु = व्यक्त शब्दोच्चार न करते हुए मंत्र का उच्चारण।

उपांशुयाग = दर्शपौर्णिमास यज्ञ में पौर्णिमासी को अग्नि एवं सोम के लिये आज्य द्रव्य का हवन इसमें होता है।

उपांशुसवन ग्रावा = (उपांशु मंत्रोच्चार सहित सिद्ध किया गया सोम रस)। जिस पत्थर से सोम पीसा जाता है।

उभयमन्तरेण = वेदमंत्रों का क्रमपाठ (ऐत.आ. ३-१-३,५)

उशिज = ऋत्विज्

उस्र, उस्रा, उस्रिय, उस्रिया = ये सभी वैदिक शब्द वृष या गौ को सूचित करते हैं। (२) गोचर्म या गाय का दूध।

उषा-सूक्त = ऋग्वेद के अन्तर्गत उषा देवता की स्तुति के २० सूक्त।

उष्णिक् = एक वैदिक छंद जिसमें अक्षरसंख्या २५ होती है। (पुर उष्णिक् इसी का एक प्रकार है) (लौकिक उष्णिक्, सप्ताक्षर छंद है जिसके मधुमती, कुमारलतिका और पदलेखा नामक तीन प्रकार होते हैं।

ऊर्ज = अन्न या बल। (इष और ऊर्ज शरद् ऋतु के मास माने जाते हैं।

ऊर्दर = अन्न या अन्नकोष्ठ। (ऋ. २-१४-११)

ऊर्ध्वबृहती = एक वैदिक छंद

ऊष्मन् = श, ष, स और ह इन चार वर्णो की संज्ञा। (ऋग्वेद- प्रातिशाख्य = १०२)

ऋक् = ऋच्यते = स्तूयते अनया इति ऋक् इस व्युत्पत्ति के अनुसार स्तुतिपरक छंदोवद्ध मंत्र।

ऋग्वेद = छंदोवद्ध मंत्र को ऋक् कहते हैं अतः ऋचाओं का समूह ही ऋग्वेद कहलाता है।

ऋग्वेद = पातंजल महाभाष्य के अनुसार इसके शाखाओं की कुलसंख्या अनुसार २१। स्कन्दपुराण के अनुसार -२४। अर्वाचीन मत- २७।

ऋग्वेद = कुछ अनुपलब्ध शाखाएं- वह्वृच, पैंग्य, औद्दालकि

(या गौतम तथा आरुण), शैलालक, शतवलाक्ष, गत्र (या हास्तिक) वाष्कलिभारद्वाज, ऐतरय, महैतेरय, वासिष्ठ, सुलभ, शौनक।

ऋक्प्रातिशाख्य = वैदिक व्याकरण विषयक ग्रंथ। इसी काशिक्षाशास्त्र भी कहते है। शिक्षा नामक एक वेदांग की चर्चा प्रातिशाख्यों में होती है। अपरनाम- **पार्षद सूत्र या पारिषदसूत्र**। वैदिक छंदों का भी विवेचन प्रातिशाख्य में होता है।

ऋग्विधान = ऋग्वेद के मंत्रों का काम्य फलों की दृष्टि से विनियोग प्रतिपादन करने वाला एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ। ७५० श्लोकों के प्रस्तुत पंचाध्यायी ग्रंथ के रचयिता शौनक ऋषि माने जाते हैं।

ऋणत्रय = देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण। प्रत्येक मनुष्य के लिये ये तीन ऋणात्मक दायित्वों को निभाना अनिवार्य माना गया है।

ऋणमोक्षमुहूर्त = गुरुवार, शनिवार, मैत्र मुहूर्त, कुलिक मुहूर्त, रिक्त तिथि आदि समय। इस समय पर ऋण वापिस लौटाने वाला पुनश्च ऋणग्रस्त नहीं होता।

ऋणापनोद धेनुदान = शास्त्रोक्त तीन (या चार) ऋणों से मुक्तता देने वाले कर्तव्य (प्रजोत्पत्ति, विद्याध्ययन, यज्ञयाग और अन्न-वस्त्रदान) न होने पर धेनुदान से ऋणमुक्तता पाना।

ऋत = संसार चक्र के शाश्वत नियम। संसार में उत्पन्न प्रथम तत्त्व। प्रजापति को ऋतज कहा है। (२) **ऋत** = यज्ञ, ब्रह्म, सत्य।

ऋतपा = ऋत नामक संसार के शाश्वत नियमों के रक्षक देवता (अग्नि, वरुण आदि)

ऋतावा = ऋत का धारण करने वाले अग्नि, सोम, वरुण सविता आदि वैदिक देवता।

ऋतु = सौर वर्ष के दो मासों की अवधि। ऋग्वेद में वसंत, ग्रीष्म, और शरद-तीन ही ऋतुओं का उल्लेख है और अथर्ववेद तथा शतपथ ब्राह्मण में पांच। (शिशिर तथा हेमंत को एक ही माना है।)

ऋतुपात्र = सोमयाग में ऋतु नामक ग्रह रखने का पात्र जो अश्वत्थ या श्रीपर्णी के काष्ट से बनाया जाता है।

ऋतुयाग = (नामांतर-ऋतुग्रहयाग।) सोमयाग में १३ महीने (मलमास सहित) और षड्ऋतु के निमित्त सोम रस का हवन।

ऋत्विज् = यजमान के लिए यज्ञ में अग्न्याधान, पाकयज्ञ और अग्निष्टोम आदि कर्म करने वाला पुरोहित। (ऋतौ यजति इति ऋत्विक्)

ऋत्विज् = यज्ञ की विधि करने वाले वेदज्ञ पुरोहित। कुल संख्या १७। इनमें होता, पोता, नेष्टा, आग्नीध्र, प्रशास्ता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता और प्रस्तोता प्रमुख होते हैं। यज्ञ में पांच ऋत्विज् और पांच अग्नियां होती हैं।

ऋबीस = अग्निकुण्ड। (ऋ. १-११८-८)

ऋभु = तीन वैदिक देवताओं का समूह। इनके नाम हैं- वाज, विभ्वा और ऋभुक्षा। इन्हें सौधन्वान (सुधन्वा के पुत्र) भी कहा है।

ऋष्टि = मरुत् देवताओं का शस्त्र।

ऋषि = वेदमंत्रों के द्रष्टा। मंत्रों द्वारा देवताओं की स्तुति करने वाले तपस्वी पुरुष। अतीन्द्रिय ज्ञान संपन्न महापुरुष। रत्न कोश में ऋषि के सात प्रकार निर्दिष्ट है – ब्रह्मर्षि, देवर्षि, महर्षि, परमर्षि, कांडर्षि, श्रुतर्षि, राजर्षि। ऋग्वेद में ३५० से अधिक ऋषियों का निर्देश है।

ऋषिऋण = वह ऋण जिसकी निवृत्ति स्वाध्याय से होती है। (देखिये ऋणत्रय)

ऋषिब्राह्मण = सामवेद की प्राचीन अनुक्रमणी।

ऋषियज्ञ = पांच महायज्ञों में से एक। वेदाध्ययन (या ब्रह्मयज्ञ) का अपर नाम।

ऋषु = सूर्यकिरण। अग्नियुक्त काष्ठ।

एकधना = एक यज्ञीय कुंभाकार पात्र। प्रातःसवन के पूर्व विषम संख्या में ये पात्र भरे जाते हैं।

एकपाद = एक वैदिक छंद।

एकश्रुति = ऋचाओं का स्वरविरहित पठन। (सोमयाग में आज्यशस्त्र का पाठ एकश्रुति से होता है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित नामक त्रिस्वर का नियम त्याग कर उच्चारित मंत्रपाठ.। (इसी को कात्यायन तान कहते हैं।)

एकादशकपाल पुरोडाश याग = दर्श पूर्णमास याग में पौर्णिमासी को अग्नि तथा सोम के लिए यह याग होता है।

एकायन वेद = सभी वेदों का मूलभूत वेद।

एकायन शाखा = शुक्ल यजुर्वेद की काण्वशाखा का अपर नाम।

एकायन = (१) छांदोग्य उपनिषद् में उल्लिखित एक विद्या। (२) पांचरात्र मत का समर्थन करने वाली एक वेदसंहिता का नाम।

एकाष्टका = माघ वद्य अष्टमी। संवत्सर याग की दीक्षा इसी तिथि को होती है। प्रायः वद्य अष्टमी को एकाष्टका कहते हैं। (शतपथ ब्रा. ६-२-२-२३)

ऐकादेशिन पशुयाग = एक विशिष्ट पशुयाग जिसमें १३ यूप और ११ पशु होते हैं, जो अग्नि, सरस्वती, सोम, पूषा, बृहस्पति विश्वेदेव, इन्द्र, मरुत्, इन्द्राग्नी, सविता और वरुण इन ११ देवों पर बलि चढ़ाये जाते है।

ऐतिहासिक = वेदार्थ का प्रतिपादन करने वाला एक प्राचीन संप्रदाय (यास्काचार्य)

ऐष्टिक = अग्निष्टोम यज्ञ (जो पांच दिनों तक चलता है) जिस की एक वेदी में आनुषंगिक इष्टियों के अनुष्ठान होते हैं।

ओणि = द्यावापृथिवी (ऋ. ९-१६-१)

ओदन = भात (या पकाया हुआ चांवल।) क्षीरपाक अर्थात् दूध के साथ पका हुआ अन्न। प्रकार – दध्योदन, मुद्गोदन, तिलौदन, उदौदन, मांसौदन, घृतौदन, क्षीरौदन इत्यादि।

ओदनसव = सोमयाग का एक प्रकार। इसमें ओदन (भात)

मुख्य हविर्द्रव्य होता है।

औक्ष्णोरन्ध्रे = सामविशेष।

औणीयव = सामविशेष।

औदल = सामविशेष।

औदुम्बरी = यज्ञ मंडप में स्थापित एक स्तंभ। यह औदुंबर काष्ठ का, यजमान की उंचाई- का होता है। सामगायक ऋत्विज् इसी के पास बैठकर सामगान करते हैं।

औपासन होम = दधि, चांवल या अक्षता इन द्रव्यों से सायं एवं प्रातः किया जाने वाला होम। इसका प्रारंभ सायंकाल में और समापन प्रातःकाल में होता है। (२) गृह्याग्नि में प्रातः और सायं नित्य कर्तव्य होम।

औशन = सामविशेष।

ककर = याजुष संहिता में उल्लिखित एक अश्वमेधीय बलि पशु। (वा.सं. २०-२४)

ककुप = एक वैदिक छंद (ककुभ्)

कण्टकीकारी = कांटों में काम करने वाला। तैत्ति. ब्राह्मण ३-४-५-१ में कण्डककार शब्द से इसका निर्देश पुरुषमेध की बलियों में हुआ है।

कठाध्वर्यु = यज्ञ के अध्वर्यु का वेदशाखा के अनुसार एक भेद।

कंडिका = कृष्ण यजुर्वेदीय आपस्तंब धर्मसूत्र के पटल नामक अध्यायों के उपभाग।

कण्वकुल के सूक्त द्रष्टा ऋषि = वत्स, प्रस्कण्व, कुसादि, गोपूप्ति, अश्वसूप्ति, प्रगाथ, भर्ग, कलि, हर्यत, नीपा तिथि, सोभरि पर्वत, नारद, त्रिशोक, इरिबिठि, ब्रह्मातिथि, सद्ध्वंस, शशकर्ण, कुरुस्तुति सोभरिपुत्र और कुशिक (महाराष्ट्र ज्ञानकोश)

कण्वरथन्तर = सामविशेष जो गोसव में गाया जाता है।

कथा = दार्शनिक चर्चा। (छांन्दोग्य उप. १-८-१२)

कपाल = यज्ञीय पुरोडाश आदि पकाने का एक मृत्पात्र। एक कपाल, त्रिकपाल, पंचकपाल, अष्टकपाल, एकादशकपाल, ऊर्ध्वकपाल और अंगार कपाल इ. शब्द याजुष संहिता में प्रयुक्त हैं।

कपालोपधान = यज्ञ विधि में कपालों (मिट्टी के बरतनों) को शास्त्रोक्त क्रमानुसार रखना।

कयाशुभीय = सामविशेष।

करंब = आज्य-मिश्रित सत्तू।

करंभ = जौ मिलाकर बनाया हुआ एक हविर्द्रव्य जो दन्तहीन पूषा देवता को समर्पित होता था।

करंभपात्र = यवपिष्ट से निर्मित अंगुष्ठमात्र दीपिका। चातुर्मास्य यज्ञ के अन्तर्गत वरुणप्रघास पर्व में इन का हवन होता है।

कर्मकाण्ड = वेदों का यज्ञयाग विषयक भाग। मीमांसक मतानुसार यही वेदों का मुख्य अंग है।

चार वेदों में एक लक्ष मंत्रों में कर्मकाण्ड के ८० हजार मंत्र हैं।

कर्मदेव = कर्म से देवत्व प्राप्त करने वाले। इसका आनन्द आजानज देवों तथा जन्मना देवो के आनंद से शतगुणित कहा है - तैत्ति. उप. २-८)

कलापाध्वर्यु = कलापशाखा के मंत्रों का विशेषज्ञ अध्वर्यु।

कल्प = यज्ञविधि का निरूपण करने वाले सूत्र ग्रंथ। कल्प सूत्रों में श्रौत, धर्म और गृह्य सूत्रों का अन्तर्भाव होता है। (२) एक वेदांग।

कवि = ऋत के पालक एवं देवों के सहचर (ऋ. ७-७६-४)

कविक्रतु = कवि के समान शक्तिसंपन्न। (अग्नि, सोम, आदि का विशेषण) (ऋ. 1-1-5)

कल्पसूत्र = वेदांगों के अन्तर्गत कल्प नामक अंग का विचार करने वाले सूत्रमय ग्रंथ। तीन प्रकार = श्रौत. गृह्य. और धर्म.

कव्य = पितृदैवत्य हवि।

कव्यवाहन =कव्य का वहन करने वाला अग्नि। पितरों का अग्नि।

(हव्यावाहन – देवों के तथा **सहरक्षा** असुरों के अग्नि को कहा गया है।)

कश = याजुष संहिताओं में अश्वमेध की बलियों को सूची में उल्लिखित एक पशु।

काकबलि = वैश्वदेव यज्ञ के शेष भात का लंबाकार पिंड। यह पिंड कौवों को समर्पण किया जाता है। प्रेत की उत्तर क्रिया में भी काकबलि का समर्पण होता है।

काक्षीवत = सामविशेष

काठक = कृष्ण यजुर्वेदीय कठशाखा का नाम। (निरुक्त १०-४)

काठकचयन = इष्टका तथा चूने के ढेले का चयन। अग्निचयन का एक प्रकार। इसके सावित्र, नाचिकेत, चातुर्होत्र, वैश्वसृज और अरुणकेतु नामक पांच प्रकार हैं। पशुयाग, सोमयाग, चातुर्मास्य याग से काठकचयन का संबंध होता है। इसके समापन के लिए सौत्रामणि याग अथवा मित्रावरुण देवतात्मक आमिक्षा याग विहित है।

काठक संहिता = काश्मीरस्थ कठशाखियों की वेद संहिता। इस के पांच ग्रंथ (विभाग) और १८ हजार मंत्र हैं। पं. सातवलेकर ने १९४३ में इन्हें प्रकाशित किया।

काठकाम्नाय = यजुर्वेद की एक लुप्त शाखा। काश्मीर में इस का प्रचार था। परकीय आक्रमणों के कारण वह नष्ट हुई।

काण्डवीणा = काठक संहिता। (३४-५) में उल्लिखित नरकट के पोरों से बना हुआ एक विशिष्ट वाद्य। महाव्रतनामक महोत्सव में इसका उपयोग होता था।

काण्डर्षि = तैत्तिरीय संहिता के पांच काण्डों के द्रष्टा।

काण्डानुसमय = यज्ञविधि में देवता तथा यूपादि यज्ञीय द्रव्यों पर अंजन से परिव्यान तक के अनेक संस्कार होते हैं। उसकी दो पद्धतियां होती हैं। सभी यूपों पर प्रथम संस्कार होने पर दूसरा, तीसरा आदि संस्कार यथाक्रम करना ही 'काण्डानुसमय' कहा ज़ाता है। इसी पद्धति से देवताओं की पूजा भी होती है।

काण्व = (१) सामविशेष। (२) देवातिथि, मेघातिथि और वत्स काण्व (कण्ववंश) के प्रमुख ऋषि थे। शुक्ल यजुर्वेद की १७ शाखाओं में से एक विद्यमान शाखा। दूसरी शाखा – माध्यंदिनी।

कातीय = कल्पसूत्रों की एक शाखा का नाम।

कात्यायन = प्रातिशाख्य, अनुक्रमाणी और कल्पसूत्र से संवंधित एक प्रमुख वेदाचार्य।

कात्यायन श्रौत सूत्र = शुक्ल यजुर्वेद के श्रौत सूत्र का नाम। अध्याय संख्या- २६।

कांतारदीपदान =यज्ञ में जिस वृक्ष का उपयोग किया जाता है, उसके अवशिष्ट स्तंभ पर आश्विनी से कार्तिकी पौर्णिमा तक पितरों के उद्धारार्थ आठ दीप प्रज्वलन करना।

कापिष्ठल = कृष्ण यजुर्वेद की एक उपशाखा। कापिष्ठल-कठ संहिता उपलब्ध है।

काम्यद्रव्य = अग्निहोत्र में आवश्यक दूध, दही, घी, चांवल, यवागू (जौ) आदि हवनीय पदार्थ।

कारीरदि = उद्गीथ के संबंध में विशेष प्रकार का विचार करने वाले विद्वान।

कारीरीष्टि = पर्जन्य की वृष्टि के लिए विहित एक विशिष्ट यज्ञविधि। इस में कृष्ण वस्त्र करीरसक्तु के पिंड तथा कृष्णाजिन का विशेष महत्त्व माना है।

कारोतर = सुरा छानने की चलनी। विशिष्ट यज्ञ में इसकी आवश्यता होती है।

कालका = याजुष संहिताओं में उल्लिखित अश्वमेघ की वलियों में से एक पक्षी। (तै. ति. सं. ५-५-१५-१)।

काव = प्राजापत्य साम विशेष।

काव्य = वहिर्षद नामक पितरों के अंतर्गत एक पितृगण। अन्यनाम – संवत्सर, आज्यप, पंचाब्द। ये आज्यपान तथा सोमपान करते हैं।

काष्ठा = रथों के दौड़ की निश्चित सीमा। (देखिये- कार्श्यन्)।

कीर्शा = अश्वमेघ की वलियों में उल्लिखित। (तैति. सं. ५-५-२०-१)।

कुण्डऋणाची = अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित एक प्राणी।

कुण्डपायिनाम् अयनम् = एक संवत्सर सत्र का नाम।

कुण्डपाय्य = द्वादशाह यज्ञ का एक विकृति याग। कालावधि – एक वर्ष।

कुण्डलेष्टि = दर्श पूर्णमास याग का एक प्रकार। इसमें आज्य में रखा हुआ सुवर्णकुण्डल आयुष्यवृद्धि के हेतु धारण किया जाता है। देवता – सोम, वरुण, सरस्वती, और अग्नाविष्णु।

कुन्ताप अध्याय = ऋग्वेद के परिशिष्ट में अन्तर्भूत निगदसंग्रह। अथर्ववेद के २० वें काण्ड में भी कुन्ताप निगदो का संग्रह है। वृषाकपि नामक शस्त्र (स्तोत्र) में सूत्रकारों ने इस निगद – संग्रह का समावेश किया है।

कुम्भीनस = तैत्तिरीय संहिता में (५-५-१४-१) अश्वमेध की बलियों की सूची में उलिखित एक प्राणी।

कूर्मोलूखला = राजसूय के चयन में उपयुक्त विशिष्ट इष्टका (ईंट)।

कुलीका = वाजसनेयी संहिता (२४-२४) में अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित एक पक्षी।

कूष्माण्ड = वाजसनेयी संहिता के कूष्माण्ड मंत्रों द्वारा प्रायश्चित्त के निमित्त यह यज्ञ होता था।

कूष्माण्ड होम = प्रत्येक कर्म के आरंभ में करने योग्य एक होम। इसमें 51 समिधाओं की आहुतियां दी जाती हैं।

कृकवाकु = कुक्कुट। यजुर्वेद में अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

कृति = मरुत् देवों का शस्त्र।

कृत्या = एक यज्ञीय देवता।

कृष्ण यजुर्वेद = व्यासशिष्य वैशंम्पायन द्वारा प्रचारित वेद विभाग। इसमें मंत्र और ब्राह्मण भागों का संमिश्रण होने से यह संज्ञा निर्माण हुई। संप्रति इस की चार शाखाएं उपलब्ध है – तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक और कपिष्ठल। १०१ या ८६ शाखाओं में से इन चार के अतिरिक्त अन्य शाखाओं का लोप हो चुका है।

केश-वपनीय = राजसूय यज्ञान्तर्गत एक सोमयाग। इस याग का प्रारंभ ज्येष्ठ पौर्णिमा को होता है। राजसूय के मुख्य सोमयाग को **अभिषेचनीय** कहते हैं, जिसमें अभिषेक का विशेष महत्त्व होता है।

कोटिहोम = ग्रहबाधा, प्राकृतिक उत्पात, अकाल मृत्यु आदि का निवारण करने हेतु कोटि हवनयुक्त ग्रहयज्ञ। इसे प्रायः शिव या नृसिंह के मंदिर में करने की प्रथा है।

कोटिहोम = शतमुख, दशमुख, द्विमुख ओर एकमुख भेद से चार प्रकार होते हैं। शतमुख में प्रत्येक कुण्ड में १० होता (हवनकर्ता) होते हैं। और द्विकुण्ड में १०० होता बैठते हैं। कुण्ड गोल पद्माकार, या चतुरस्त्र होते हैं। सब मिलाकर १३१८ पाठकर्ता होते हैं। इसमें २ सौ मन हवन सामग्री लगती है।

कोश = (१) सोम रखने का बड़ा पात्र।

कोशकार = पुरुषमेध के बलियों में उल्लिखित।

कौथुम शाखा = सामवेद की एक शाखा जो गुजरात में विशेषतः प्रचलित है।

कौलीक = यजुर्वेद में अश्वमेघ की बलियों में उल्लिखित एक पक्षी।

कौल्मल बर्हिष = साम विशेष।

कौशिक = इन्द्र का एक नाम।

कौशिक सूत्र = अथर्ववेद की शौनक शाखा का एक सूत्र ग्रंथ। इसका स्वरूप गृह्यसूत्र के समान है।

कौषीतकी = ऋग्वेद-शांखायन शाखा की ४ उपशाखाओं में से एक। संप्रति अनुपलब्ध।

क्रतु = यूप की स्थापना और सोमरस का हवन जिसमें

होता है ऐसा यज्ञ। (यूप-सहितः सोमसाध्यो यज्ञः)।

क्रमपाठ = वेदपाठ करने की अष्टविध विकृतियों में से एक। – उदा. – यज्ञेन यज्ञं यज्ञमयजन्त अयजन्त देवाः देवास्तानि। (इत्यादि)।

क्रमान्तवैदिक = वेद संहिता का पाठ क्रम – विकृति के अनुसार योग्यता पूर्वक कहने वाला वेदज्ञ।

क्रवण = पूजा करने वाला या यज्ञ की बलि को मारने वाला।

क्रव्यादग्नि = शव का भक्षण करने वाला अग्नि। श्मशानाग्नि। (क्रव्य – कच्चा मांस)।

क्रीडनीया इष्टि = चातुर्मास्य याग के साकमेध नामक तृतीय पर्व में यह होती है। इसके देवता मरुत् और द्रव्य पुरोडाश होता है।

क्रौंच = साम विशेष।

क्वयि = यजुर्वेद में अश्वमेध के बलियों में उल्लिखित एक पक्षी।

क्षत्रधृति = राजसूय के अन्तर्गत श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से एक मास तक चलने वाला एक अनुष्ठान।

क्ष्विंका = तैत्तिरीय संहिता में अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित एक प्राणी।

क्षुद्रसूक्त = छोटे सूक्त या छोटे सूक्तों के रचयिता।

क्षुद्रसूक्त = ऋग्वेद के अंतिम मंडल के सूक्तों के रचयिता ऋषिओं का एक गण।

खलेवाली = बैलों को चलाने के लिए गाड़ा गया शंकु। पैर में लान से नाज निकालने के लिए यह बीच में गाड़ा जाता हैं। उसमें रज्जू से बैलों को बांधकर घुमाते हैं। एकाह याग में इसका उपयोग सवनीय पशु को बांधने के लिए होता है।

खांडिकीय = कृष्ण यजुर्वेदी तैत्तिरीय शाखा का एक भाग।

खादिर गृह्यसूत्र = सामवेदीय द्राह्यायण शाखा का गृह्यसूत्र।

खिलसूक्त = ऋग्वेद के अन्तर्गत परिशिष्टस्वरूप अंतिम सूक्तों की संज्ञा।

खिलकाण्ड = कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा के अन्तर्गत एक काण्ड।

खिलकाण्ड = अथर्ववेद के अंतिम २ कांड।

गणक = ज्योतिषी। यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों की नामावली में उल्लिखित।

गणयज्ञ = एकाह याग के अन्तर्गत इन यज्ञों में अनेक यजमान होते हैं। व्रात्यस्तोम, मरुत्स्तोम आदि गणयज्ञ के उदाहरण हैं।

गणहोम = सोमयाग के अन्तर्गत वैश्वानर देवता के प्रीत्यर्थ होम।

गणेश यज्ञ = इसमें शुक्ल यजुर्वेद के ३३ वें अध्याय के (६५ से ७२ तक) आठ मंत्रों से एक लक्ष आहुतियाँ होती हैं।

गरुडचयन = सोमयाग में गरुड की आकृति का इष्टकाओं से बनाया गया हवन-कुंड। इसे श्येन या सुपर्ण चयन भी कहते हैं। (तैत्तिरीय सूत्र)।

गर्गत्रिरात्र = सोमयाग का एक प्रकार।

गवाशिर् = दूध में मिलाया हुआ सोम। (ऋ. १-१३६-१) देखिये – यवाशिर।

गवामयन = ३६० दिनों या दस महीनों तक चलने वाला एक सत्र। ऐतरेय ब्राह्मण के १७-१८ अध्यायों में इसका विवरण दिया है। सोमयाग के तीन प्रकारों में से एक। यह सांवत्सरिक सत्र का एक विकृतियाग है। इसका आरंभ माघ कृष्णाष्टमी, या शुक्ल एकादशी को, या फाल्गुनी अथवा चैत्र पौर्णिमा को होता है। गौओं द्वारा अनुष्ठित होने से यह नाम हुआ। २४ दिनों तक इसका कर्मकाण्ड चलता है। सपत्नीक यजमानों का शिखासहित वपन होता है और मार्जालीय के दक्षिण की ओर वेदी से बाहर, घेर के बीच अनियत जाति के स्त्री-पुरुष मैथुन करते हैं।

गवालंभ = एक गो-हिंसायुक्त यज्ञ।

गविष्टि = (१) गौ की इच्छा। (२) पशुओं के निमित्त युद्ध। (अपर शब्द- गव्या)।

गातुविद् = वैदिक गाथाओं के ज्ञाता पुरुष।

गाथ = स्तोत्र। (ऋ. ८-३२-१)।

गाथपति = गाथ – वेदमंत्रों के गायकों का अधिपति। यह रुद्र देवता का विशेषण है।

गाथा = मानवी रचना, अवैदिक रचना। (ऋक् = दैवी रचना)।

नाराशंसी गाथा = दानस्तुतिपर रचना।

गाथिन् = वेदमंत्रों के गायक।

गायत्र = सामवेद का सूक्त विशेप। यह तडागोत्सर्जन-विधि में गाया जाता है।

गायत्री = (१) सात वैदिक छंदों में अग्रगण्य छंद। (गायत्री छंदसामहम् - गीता १०-३५) इसके तीन पद और प्रत्येक पद में आठ अक्षर होते हैं। अतः इसे त्रिपदा, अष्टाक्षरा और चतुर्विंशत्यक्षरा विशेषण लगाते हैं। (२) विश्वामित्र ऋपि कृत प्रसिद्ध मंत्र। (३-६२-१०)। इसी छंद के मंत्रोंद्वारा ब्राह्मण यज्ञीय अग्नि का आधान करते हैं।

गायत्री = एक मंत्रमयी वैदिक देवता। तीन स्वरूप – गायत्री, सावित्री, और सरस्वती।

गायत्री इष्टि = संवर्ग अग्नि के निमित्त अष्टकपाल पुरोडाश का हवन। इस तंत्र दर्शपूर्णमास याग के समान होता है।

गायत्री महायज्ञ = गायत्री मंत्र तथा गायत्री सहस्रनामावली से २४ लाख आहुतियां होती हैं। इसमें १, ५, ९, या २४ कुंड होते हैं। गायत्री पुरश्चरण में जपसंख्या के दशांश हवन होता है। इसमें ४५ ब्राह्मणों की आवश्यकता होती है।

गायत्री = छांदोग्य उपनिषद के अनुसार गायत्री मंत्र की विधियुक्त उपासना।

शताक्षरा गायत्री = "तत् सवितुर्वरेण्यं" (२४ अक्षर) जातवेदसे सुनवाम (४४ अक्षर) और त्र्यंबकं यजामहे (३२ अक्षर) = तीन मंत्रों की सामूहिक संज्ञा।

गार्हपत्य = वैदिक यज्ञ की तीन प्रमुख अग्नियों में से एक। (अतिथियों के लिये प्रयुक्त अग्नि **आहवनीय**, गृह्ययज्ञों में

प्रयुक्त **गार्हपत्य** और पकाने की अग्नि को **दक्षिणाग्नि** कहा जाता है।

गार्हपत्य = विवाह के समय नवदम्पती द्वारा प्रज्ज्वालित यज्ञीय अग्नि। 'गृहपतिना संयुक्तः इति गार्हपत्यः'।

गार्हपत्य = मंथन द्वारा उत्पन्न अग्नि। इसका आधान वर्तुलाकार मेखलाद्वययुक्त कुंड में होता है। आधान करने वाले को गृहपति कहते हैं। आहवनीय और दक्षिणाग्नि का उद्धरण या प्रणयन गार्हपत्य से ही होता है। अतः यह योनिस्वरूप प्रमुख यज्ञाग्नि माना जाता है। यज्ञमंडप के एक कोने में इस का आयतन (निवासस्थान या कुंड) होता है।

गार्हपत्यचिति = गार्हपत्य नामक यज्ञाग्नि के लिये बनाया गया २४ इष्टकाओं का चतुष्कोण पीठ। इसमें उखापात्र में उत्पन्न 'उख्याग्नि' की स्थापना होती है। देखिये – उखासंभरण।

गालव शाखा = ऋग्वेद-शाकल शाखा की पांच उपशाखाओं में से एक।

गूर्द = सामविशेष।

गृहप्रवेशनीय होम = विवाह से चतुर्थ दिन यह वर द्वारा होता है। अतः अपरनाम है 'चातुर्थीह्निक होम'।

गृहमेध = वेदोक्त वास्तोष्पति नाम गृहदेवता की गृह्यसूत्र में निर्दिष्ट संज्ञा। इसी देवता की उपासना के कर्मों को **गृहमेधीय** या **गृहमेध्य** कहते हैं।

गृहमेधीयेष्टि = चातुर्मास्य याग के साकमेध नामक तृतीय पर्व में सायंकाल में यह इष्टि होती है। इसमें गृहमेधी मरुत् देवता और दूध में पका हुआ चरु द्रव्य होता है।

गृह्यसंस्कार = गृह्याग्नि से संबंधित गृह्यसूत्रोक्त विशिष्ट संस्कार।

गृह्यसूत्र = गृहस्थाश्रमी गृहपति के धार्मिक कर्तव्यों का प्रतिपादन करने वाले सूत्रमय ग्रंथ। इनकी कुल संख्या – 16 (ऋग्वेद- ३; कृ. यजुर्वेद- ८; शु. यजु. १; सामवेद- ३ और अथर्ववेद- १)।

गृह्याग्नि = (अन्यनाम – औपासन, आवसथ्य, स्मार्त) विवाहोत्तर स्थापित यज्ञीय अग्नि। विवाहाग्नि का ही रूपांतर गृह्याग्नि में होता है। यह अग्नि अखंडित जलता रखना आवश्यक माना है। गृह्याग्नि में पशु और सोम का हवन नहीं होता। आहिताग्नि इसी अग्नि में गृह्यसूत्रों में विहित कर्म (औपासन होम आदि) करते हैं।

गो-आयुषी = सामविशेष।

गोघात = गौ (बैल) को मारने वाला। यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

गोत्र ऋषि = ऋग्वेद के मंडलों के द्रष्टा आठ ऋषि – - गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज, वसिष्ठ, कण्व, आंगिरस।

गोदान (या केशान्त) = महानाम्नी आदि वैदिक चार व्रतों में से एक। ब्रह्मचारी वटु के यौवनारंभ में यह संस्कार होता था।

गोपथ = अथर्ववेद से संबंधित एकमात्र ब्राह्मण ग्रंथ।

गोमृग = वृषभ की एक विशेष जाति। अश्वमेध यज्ञ की बलियों की सूची में उल्लिखित।

गोमेध = गोसंगम, गोवर्धन और गोसमर्पण इन तीन विधियों से युक्त एक विशिष्ट यज्ञ। अथर्ववेद में (१०-९-१०) दो सूक्त गोमेध विषयक हैं। हिंसायुक्त गोमेध कलियुग में निषिद्ध कहा गया हैं। (आपस्तंब श्रौतसूत्र)। गोहत्या के प्रायश्चित्त में विहित सोमयाग में एक।

गोयज्ञ = गोरक्षा के निमित्त, वेदोक्त गोसूक्त से अथवा ऋग्वेद के २८ वे सूत्र के प्रारंभिक ८ मंत्रों से सवा लक्ष आहुतियां होती है।

गोलत्तिका = यजुर्वेद में अश्वमेघ की बलियों में उल्लिखित पशु।

गोविकर्तन = यज्ञ में गौ (बैल) को काटने वाला। (शत. ब्राह्मण- ५-३-१-१०)।

गोषादी = गौ पर बैठने वाला, पक्षी, यजुर्वेद में अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित।

गोसव = सोमयाग (एकाह) का एक प्रकार। इसमें यजमान का गोरस से स्नान कराया जाता है। फल – पशु समृद्धि। यज्ञ के बाद एक वर्ष तक गो-सेवा का व्रत आवश्यक।

गोङ्गव = सामविशेष।

गौरीवीति = सामविशेष।

गौषूक्त = सामविशेष।

गोसव = एक यज्ञ।

ग्ना = देवपत्नी।

ग्रह = (१) यज्ञ में देवताओं को समर्पण करने योग्य, विशिष्ट पात्र में रखा हुआ सोमरस।

ग्रह = ज्योतिष्टोम के तीन सवनों में कुल मिलाकर २७ ग्रह होते हैं। "गृह्यते इति ग्रहः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार सोमरस को ग्रह कहते हैं और "गृह्यते अस्मिन् इति.." इस व्युत्पत्ति के अनुसार सोम रखे जाने वाले पात्र को भी ग्रह कहते हैं। ग्रह नामक पात्रों की संख्या १५ होती है।

ग्रहयज्ञ = ग्रहपीड़ा की शांति के निमित्त एक यज्ञ। तीन प्रकार – नित्य (ग्रहण के समय), नैमित्तिक (विवाहादि के समय), और काम्य। इसमें बलिदान करते हैं। ग्रहों की प्रतिमाएँ या प्रतीक स्थापित होते हैं। संस्कार निमित्त ग्रहयाग में बलिदान निषिद्ध है।

ग्रावस्तुत् = यज्ञ का एक विशिष्ट ऋत्विज।

ग्रावस्तुत् = सोमयाग के १६ ऋत्विजों में से होतृगण का चतुर्थ ऋत्विज्।

घनपाठ = वेदपठन की अष्ट विकृतियों (पद्धतियों) में से अंतिम जटिल पद्धति। घनपाठी वैदिक सर्वश्रेष्ठ वैदिक माना जाता है।

घर्म = अश्विनौ देवताओं के लिये दूध पकाने का पात्र।

घर्म = आतिथ्येष्टि में महावीरपात्र में उबाले गये गोरस और आज्य का मिश्रण। गरम घी में उबाला हुआ दूध डालकर

यह सिद्ध होता है।

घर्मशिरस् = यज्ञविधि के विशिष्ट मंत्रों की संज्ञा।

घासि = अश्वमेघ की बलि के अश्व का खाद्य। (घास- सामान्य पशुओं का खाद्य)।

घृणीवन्त = वाजसनेयी संहिता में अश्वमेघ की बलियों की नामावली में उल्लिखित एक पशु।

घृत प्रतीक, घृतपृष्ठ और घृतप्री = अग्नि के विशेषण।

घोरम् = आंगिरस वेद का विशेषण। **भेषजम्-** अथर्वण वेद का विशेषण। (इनसे अथर्वांगिरस वेद का द्विविध स्वरूप ध्यान में आता हैं।)

चतुरह याग = चार प्रकार – अत्रिचतुर्वीर, जामदग्न्य, वसिष्ठ संसर्प, और विश्वामित्र।

चंद्र = अश्वमेध में मेध्य अश्व के शरीर से निकाला हुआ हवनीय मेद।

चप्य = एक यज्ञीय पात्र।

चमकानुवाक ऋग्वेद के रुद्राध्याय का उत्तर भाग। इसमें "च मे" शब्द का सर्वत्र प्रयोग होने के कारण यह संज्ञा रूढ हुई। देखिये – नमकानुवाक।

चमस = उदुंबर की लकड़ी का बनाया एक यज्ञीय पान-पात्र या सोमरस रखने का पात्र।

चमसाध्वर्यु = यज्ञ में अध्वर्यु का एक सहायक।

चंडातक = राजसूय यज्ञ में यजमान-पत्नी के पहनने का वस्त्र, जो घुटने तक होता है। लहंगा, या साया। (अर्धोरुकं विलासिन्या वासश्चण्डातकं विदुः)।

चयन (या अग्निचयन) = सोमयाग में उत्तरवेदी पर इष्टकाओं से बनाया गया कुंड। चयन की श्येन, रथचक्र, द्रोण, कंक, सुपर्ण इत्यादि अनेक आकृतियां होती है। प्रथम सोमयाग, वाजपेय और सारस्वत सत्र में चयन नहीं होता। (सत्याषाढ श्रौत सूत्र ११-१)। चयन के पूर्व में शीर्ष, पश्चिम में पुच्छ, मध्य में आत्मा और उत्तर-दक्षिण में पक्ष होते हैं।

काठक चयन = गरुड चयन के अतिरिक्त, सावित्र, नाचिकेत, चातुर्होत्र, वैश्वसृज और अरुणकेतु नाम पाच चयनों को 'काठकचयन' कहते हैं। (तैत्तिरीय ब्राह्मण- ३-१०-१२)। काठक चयनों में इष्टका के स्थान पर कंकरों का प्रयोग होता है। इन चयनों के मंत्र-द्रष्टा का नाम कठऋषि था।

चरक = (१) पुरुप-मेध की बलियों की सूची में उल्लिखित। (२) कृष्ण यजुर्वेद की एक लुप्त शाखा।

चरक संहिता = कठ और कपिष्ठल संहिताओं की संज्ञा।

चरु = एक पांच छेदों वाला पात्र तथा उसमें पकाया जाने वाला खाद्य पदार्थ।

चर्षणि = मनुष्यों का वाचक यह वैदिक शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है। (ऋ. १-८६-५)।

चषाल = उलूखल के समान आकार वाला एक पात्र। (ऋ. १-१६२-६)।

चातुर्थाह्निक होम = विवाह के बाद चौथे दिन होने वाला गृहप्रवेशनीय होम।

चातुर्मास्य = सप्त हविर्यज्ञ संस्थाओं में से चौथा यज्ञ प्रकार।

चातुर्मास्य याग = फाल्गुनी, आषाढी और कार्तिकी पौर्णिमा को इसके तीन पर्व होने पर चौथा फाल्गुन शु. प्रतिपदा को होता है। इसी प्रकार इसकी आवृत्तियां होती रहती हैं। इनके वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेघ और शुनासीरीय नामक प्रत्येकशः पर्व होते हैं। इसके ऐष्टिक, पाशुक और सौमिक नामक तीन प्रकार होते हैं।

चातुर्होत्रचयन = इसमें ८६ इष्टकाओं की आवश्यकता होती है। यह काठक चयन का एक प्रकार है।

चारणवैद्य = अथर्ववेद की एक लुप्त शाखा। (नामान्तर- चारणविद्या)।

चाष = यजुर्वेद में अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित एक पक्षी।

चुपुडिका = कृत्तिका नक्षत्र के सात तारों में से एक।

चैत्रीयाग = गृह्यसूत्रों में उल्लिखित सात पाक यज्ञो में से एक यज्ञ।

च्यावन = एक सामविशेष।

छंदोग = छंद नामक सामवेद की ऋचाएँ तथा उनका गायक।

छन्दोम = स्तोम विशेष।

जगती = सात वैदिक छंदों में से १२ अक्षरों का एक। इसी छंद से वैश्य यज्ञीय अग्नि का आधान करते थे।

जतू = अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित एक पक्षी।

जर्तिल = वन्य तिल। यह त्याज्य हव्य माना गया है।

जलद = अथर्ववेद की एक लुप्त शाखा।

जहका = अश्वमेध की बलि के रूप में उल्लिखित एक पशु। (लोमश मार्जारी या बिलवासी शृगाली)।

जाजल = अथर्ववेद की एक लुप्त शाखा।

जातवेदाः = यज्ञ की अग्नि।

जातुकर्ण्य शाखा = ऋग्वेद बाष्कल शाखा की चार उपशाखाओं में से एक। संप्रति अनुपलब्ध।

जुहू = (हूयते अनया) जिसके द्वारा हवन किया जाता है ऐसी पलाश की लकड़ी की या पर्ण की बनाई गई, एक बाहु लंबी, हंस के समान मुंह वाली स्रुक्। अर्थात् यज्ञीय चमस, जिससे अग्नि में घृत की आहुति दी जाती है।

ज्योतिष्टोम = तृच् (तीन ऋचाओं वाला) स्तोत्र की प्रथम ऋचा को ज्योतिः कहते हैं। ज्योतिः जिसके स्तोत्र होते हैं (ज्योतिषि स्तोमाः यस्य सः) वह **'ज्योतिष्टोम'** कहा जाता है। त्रिवृत्, पंचदश, सप्तदश, एकविंश ये ही ज्योतियां होती हैं।

ज्योतिष्टोम की चार संस्थाएँ = अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी और अतिरात्र। (इन चार नामों के साममंत्रों से समाप्ति होने के कारण ये संज्ञाएं रूढ हुई।

तनूनपात् = आप्री सूक्तों के दो भेदों में से एक।

तरक्षु = सायण के अनुसार गर्दभाकार व्याघ्रविशेष। अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित पशु।

तानूनप्त्र = आतिथ्येष्टि के अंतर्गत इस विधि में ऋत्विग्गण कांस्यपात्र में रखे हुए आज्य को स्पर्श करते हुए यागानुष्ठान निर्दोष तथा एकात्मभाव से करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

तापश्चित = तीन वर्षो तक चलने वाला एक सत्र। दो प्रकार – (१) महातापश्चित – यह पांच वर्षो में होता है। (२) क्षुल्लक तापश्चित् – इसमें चार चार महीने दीक्षा, उपसद् और सुत्या होते हैं।

तुरायण = एक सत्र की संज्ञा।

तूपर = शृंगहीन यज्ञीय पशु।

तृच् = उत्तरार्चिक में एक स्वर, एक छंद और एक तात्पर्य युक्त तीन तीन ऋचाओं का सूक्त। दो ऋचाओं की जोडी की 'प्रगाथ' संज्ञा है।

तृतीय सवन = ४८ अक्षरों वाले जगतीछन्द और आदित्य देवता से संबंधित श्रौतयज्ञ की विधि।

तृतीय सवन = पुरुष की आयु के ६९ से ११६ वें वर्ष तक का ४८ वर्षो का काल। (छांदोग्य उपनिषद् के अनुसार पुरुषायुष ११६ वर्षो का माना जाता है।) (छांदोग्य ३-१६)।

तृतीयिन् = गण के मुख्य ऋत्विक् की दक्षिणा से तृतीयांश दक्षिणा का अधिकारी। उदा. – ब्रह्मगण का आग्नीध्र या होतृगण का अच्छावाक।

तैत्तिरीय = कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा। इस शाखा में संहिता, ब्राह्मण, और आरण्यक (जिस के अन्त में दो उपनिषद है।) पाये जाते हैं।

तोदायन = अथर्ववेद की एक लुप्त शाखा।

त्रि-कद्रुक = (१) साम धारण करने वाले तीन पात्र। (कद्रू- सोमरस को एकत्र रखने का पात्र)। (२) सायण के अनुसार एक विशेष यज्ञ की संज्ञा।

त्रि-णव = स्तोम।

त्रि-णिधन = सामविशेष।

त्रि-पवित्र = त्रयीविद्या (ऋक्, यजुस् और साम वेद को) जानने वाला ब्राह्मण। (अन्य शब्द – त्रि-शुक्रिय या त्रिशुक्र)।

त्रिवृत् स्तोमस्तोत्र = वह स्तोत्र जिसके तीन तृचात्मक सूक्तों में आने वाली नवीं ऋचा का तीन पर्यायों में गान होता है।

त्रि-शुक्र (या त्रिशुक्रिय) = देखिये त्रिपवित्र।

त्रि-षंयुक्ता इष्टि = त्रि-हविष्क तीन कर्मों में पहिली इष्टि की संज्ञा।

त्रिष्टुभ् = सात वैदिक छंदों में से ११ अक्षरों का एक छंद। इस के मंत्रों से राजन्य (क्षत्रिय) लोग यज्ञ में अग्नि का आधान करते थे। ऋग्वेद के सर्वाधिक मंत्र (४२५३) इस छंद में है।

त्रिसंवत्सर = तीन वर्षो तक चलने वाला एक यज्ञ सत्र।

त्रैककुभ = साम विशेष।

त्रैत = साम विशेष।

त्रैशोक = साम विशेष।

त्र्यम्बका इष्टि = चातुर्मास्य याग के साकमेध नामक तृतीय पर्व में यह होती है। इसके देवता रुद्र और चार एककपाल पुरोडाश द्रव्य होता है। सभी कार्य मौन रहकर एवं उत्तर की ओर मुख करके संपन्न होते है।

त्र्यह याग = पांच प्रकार – गर्ग, वैद, छन्दोम, अन्तर्वसु, और पराक।

त्र्याशिर = दधि, सक्तु, और पयस् का सोम के साथ मिश्रण। (देखिये – गवाशिर यवाशिर और दध्याशिर)।

त्वाष्ट्री = साम विशेष।

दक्ष-णिधन = साम विशेष।

दक्षिणा = यज्ञ में गौ की दक्षिणा सर्वोत्तम मानी जाती है अतः यह गौ का बोधक शब्द है। (कठोपनिषद)।

दक्षिणाग्नि = गार्हपत्य अग्नि से प्रज्वलित एक यज्ञीय अग्नि का नाम। यज्ञमंडप में गार्हपत्य अग्नि की आग्नेय दिशा में इसका आयतन होता है। इसे आहिताग्नि अर्धचन्द्राकार कुंड में प्रज्वलित रखते हैं और इसमें प्रायः पितृकर्म होते हैं।

दधिमंथ = एक हविर्द्रव्य।

दर्भस्तम्ब = राजसूय के चयन में उपयुक्त विशिष्ट इष्टका की संज्ञा।

दर्शपूर्णमास = वैदिकों के सात हविर्यज्ञों में तीसरा यज्ञ।

दर्श-पूर्णमास याग = दर्श अमावस्या में कर्तव्य ३ और पूर्णमास = पौर्णिमा में कर्तव्य ३ याग। इन छह यागों का निर्देश "दर्शपूर्णमासौ" इस द्विवचन से होता है। यह "प्रकृतियाग" कहा गया है। इन ६ यज्ञों में अग्नि का आधान पौर्णिमासी और अमावस्या को होता है किन्तु यागविधि प्रतिपदा के दिन संपन्न होता है। दो अवसरों पर किये जाने वाले ये छह कर्म एक ही फल देते हैं। अतः इन्हें एक ही कर्म माना गया है।

दर्शपूर्णमास = पौर्णिमा के तीन याग – (१) अष्टाकपाल पुरोडाशयाग, (२) उपांशु याग, (३) एकादशकपाल पुरोडाश याग।। अमावस्या के तीन याग = (१) अग्निप्रीत्यर्थ पुरोडाशयाग (२) इन्द्रप्रीत्यर्थ पुरोडाश (दधिद्रव्यक) याग। (३) इन्द्रप्रीत्यर्थ पयोद्रव्यक याग।

दशपेय यज्ञ = राजसूय यज्ञ के अन्तर्गत एक यज्ञ जिसमें उद्गाता सोने की कंठी पहनता है।

दशरात्र = चार प्रकार – त्रिककुप्, कौसुरुविन्द, पूर्व दशरात्र और छन्दोम दशाह।

दशापवित्र = जिस ऊनी कपड़े से सोमरस छाना जाता है, उस विशिष्ट वस्त्र की संज्ञा।

दस्यु = यज्ञ न करने वाले, देवों से घृणा करने वाले तथा तरह तरह की शपथ खाने वाले चपटी नाक वाले, वेद में उल्लिखित नीच लोग।

दाक्षायण याग = दर्शपूर्णमास यज्ञ का विकृतिभूत स्वरूप। इसमें अमावस्या और प्रतिपदा को एवं पूर्णिमा और प्रतिपदा को दो-दो याग होते हैं। दाक्षायण और दर्शपूर्णमास याग एक

ही होने से, एक को करने वाला दूसरे का अनुष्ठान नहीं करता। दर्शपूर्ण- ३० वर्षों तक और दाक्षायण १५ वर्षों तक किया जाता है।

दाक्षिणात्य होम = सोमयाग के माध्यंदिन सवन में एक विधि। यह दक्षिणांगभूत यज्ञ है। इस के बाद यज्ञ की दक्षिणा अर्पण होती है।

दात्यौह = याजुष संहिताओं में अश्वमेध बलियों के सूची में उल्लिखित (कुक्कुट या तित्तिर के समान) एक पक्षी। (दात्यूह)।

दान = यज्ञीय भोजन का विभाजन।

दान = यज्ञ में आवश्यक कर्तव्य, भूदान, गृहदान, द्रव्यदान, विद्यादान, अन्नदान, श्रमदान, वाणीदान, अर्थात् धर्मप्रवचन, इनका यज्ञ में ही अन्तर्भाव होता है।

दानस्तुतिसूक्त = ऋग्वेद ६-४७ का नाम।

दान्त = अथर्ववेद की एक लुप्त शाखा।

दार्वाघात = यजुर्वेद में अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित पक्षी (कठफोडवा)।

दार्वाहार = लकड़ी बीनने वाला। यजुर्वेद में पुरुषमेध की त्रलियों की सूची में उल्लिखित।

दार्षद्वत सत्र = तीन सारस्वत सत्रों से भिन्न प्रकार का सारस्वत सत्र (देखिये)।

दाश = मछुआ। यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

दाशस्पत्य = सामविशेष।

दाशराज्ञ = ऋग्वेद (७-३३-२,५। ७-८-३-८) और अथर्ववेद (१०-१२८-१२) में दश राजाओं के साथ सुदास् के युद्ध को "दाशराज्ञ" कहते हैं। प्रस्तुत युद्ध का विवरण देने वाले सूक्त (७-१८) में 'दाशराज्ञ' शब्द नहीं आया है।

दाश्वान् = हवि देने वाला, होम करने वाला।

दीक्षणीयेष्टि = यज्ञ की दीक्षा लेने के निमित्त इष्टि। दीक्षा लेने पर यजमान को विशिष्ट नियमों का पालन करना होता है। इस इष्टि में अग्ना-विष्णु नामक देवता के प्रीत्यर्थ पुरोडाश का हवन होता है। प्राग्वंश मंडप में आज्य संस्कार, कूष्माण्ड होम, क्षौर, नववस्त्र परिधान, तथा अप्सुदीक्षा (दर्भांकुरों से सिंचन) आदि संस्कार और सायंकाल तक मौन व्रत यजमान करता है।

दीक्षित = यज्ञ का आरंभ करने के पहले दीक्षा लेकर सिद्ध हुआ गृहस्थाश्रमी यजमान पुरुष। दीक्षित होने पर क्षत्रिय और वैश्य भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त होते हैं। (दीक्षमाण एव ब्राह्मणताम् उपैति- ऐतरेय ब्राह्मण ७-२३)।

दीवाकीर्त्य = साम विशेष।

दुरोण = गृहवाचक वैदिक शब्द।

दुर्ब्राह्मण = जिसके पिता और पितामह ने सोमयाग में सोमपान नहीं किया ऐसा जात्य ब्राह्मण मनुष्य। दौर्ब्राह्मण्य की निवृत्ति के लिए सोमयाग के चौथे दिन पशुयाग होता था।

दूर्वेष्टका = राजसूय के चयन में उपयुक्त विशिष्ट इष्टका (ईट)।

दृतिवातवतोः अयनम् = कुण्डपायिनाम् अयनम् नामक संवत्सर सत्र के उत्तरार्ध के सत्र की संज्ञा।

देवता (वैदिक) "यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेन उच्यते सा देवता" अर्थात् वेद में जिसका वचन होता है वह ऋषि कहा जाता है और ऋषि जिसका स्तवन या वर्णन करते हैं वह देवता है।

देवदर्श = अथर्ववेद की एक लुप्त शाखा। (नामान्तर- देवदर्शनी)

देवदूत = यज्ञीय अग्नि का विशेषण। शतपथ ब्राह्मण।

देविका = विशिष्ट देवताओं की संज्ञा। सोमयाग की अवभृथ विधि में इनके निमित्त हवन होता है।

देवयजन = यज्ञ के लिये यजमान द्वारा राजा से मांगी गई पवित्र भूमि। यजमान यज्ञ समारोह के निमित्त अरणी में अग्नि का समारोपण होने पर ऋत्विजों तथा अरणी और समग्र यज्ञसामग्री सहित 'देवयजन' में प्रवेश करता है।

देवयान = एक स्वर्गप्रद साम।

देवानां मुखम् = अग्नि।

दैर्घश्रवस = साम विशेष।

दैवातिथ = साम विशेष।

व्यह याग = दो दिन चलने वाले याग। आंगिरस, चैत्ररथ, कापिवन इसके तीन प्रकार हैं।

धौतान = साम विशेष।

द्राह्यायण = (१) सामवेद की एक शाखा की संज्ञा। (२) काल्पसूत्रों की एक शाखा।

द्रुपद = (१) यज्ञीय यूप। (२) लकड़ी की दीवार।

द्वन्द्व देवता = ऋग्वेद में उल्लिखित देवता युग्म। ऋग्वेद में द्यावापृथिवी, अग्नीषोम आदि १२ युग्म देवता उल्लिखित हैं। ६० सूक्त इनकी स्तुति में रचित हैं।

द्वन्द्व यज्ञ = एकाह सोमयाग का एक प्रकार। इसमें एक का अनुष्ठान करने पर दूसरे का भी अवश्य करना चाहिए। इसके राट्-विराट्, उद्भिद्-बलभिद् आदि १० प्रकार होते हैं।

द्वन्द्वसोम = एकाह याग के अन्तर्गत इस याग में एक अनुष्ठान करने पर दूसरा अवश्य करना पड़ता है। राट्-विराट्, पुनस्तोम, चतुष्टोम, उद्भिद्-बलभिद्, अपचिती, अग्निस्तोम द्वय, ऋषभ-गोसव (पक्षी- ज्योतिः) इन सात यागों की संज्ञा।

द्वादशकपाल पुरोडाश याग = इन्द्र और अग्नि देवता के प्रीत्यर्थ अमावस्या को माध्यंदिनीय एवं शांखायन शाखा के ब्राह्मणों द्वारा यह होता है।

द्वादशरात्र याग = द्वयह से एकादश रात्र तक के याग 'अहीन' और त्रयोदशरात्र से अन्य सारे 'सत्र' (या रात्रिसत्र) कहलाते हैं। द्वादशरात्र की अहीन और सत्र दोनों में गणना होती है।

द्वादशाह = गवामयन नामक संवत्सर याग के अन्तर्गत एक अहीन याग।

द्वादशाह यज्ञ = इसमें आहिताग्नि एवं अग्निष्टोमयाजी सत्रह से चौबीस तक व्यक्ति अधिकारी होते हैं। इसमें दक्षिणा नहीं

होती। इसके सत्र और अहीन नामक दो प्रकार होते हैं। अहीन याग में एक सहस्र या अधिक गौवों की दक्षिणा होती है।

द्विदैवत्य = इन्द्रवायू, मित्रावरुण, अश्विनौ इन युग्म देवताओं के प्रीत्यर्थ जिस पात्र में सोमरस रखा जाता है। यह सोमपात्र की संज्ञा है।

द्विपाद = एका वैदिक छंद।

द्वैगत = साम विशेष।

द्युदास = साम विशेष।

धनुर्याग = मल्लयुद्ध क्रीडा का प्रारंभ इस यज्ञ से होता था। क्रीडा में सहभागी होने वाले एक महान् धनुष पर प्रत्यंचा रोपण करके अपना बल प्रकट करते थे।

धवित्र = यज्ञ में अग्नि को प्रदीप्त करने के काम में उपयुक्त चमडे का पंखा।

धिषणा = (१) सोम तैयार करने का एक पात्र या नांद। (२) सोम। (३) पृथ्वी। (४) यज्ञवेदी। (५) धन की देवता।

धिष्ण्य =आग्नीध्रीय, मार्जालीय, सदस् - नामक यज्ञीय मंडपों में स्थापित मिट्टी के पीठ।

धिष्ण्योपापस्थान = प्रातःकालीन सोमसवन के अंगभूत दस विधियों में से एक।

धुंक्षा = अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित पक्षी। (श्वेत काकी) अपर नाम धुंक्ष्णा।

धृतव्रत = वैदिक देवताओं का विशेषण।

धृति = एक वैदिक छंद। केवल २ मंत्र इस छंद में हैं।

धृति होम = अश्वमेघ का अंगभूत होम, जो मेध्य अश्व के वापिस लौटने तक किया जाता है।

धृष्टि = गार्हपत्याग्नि से अंगारे उठाने के लिए प्रयुक्त चिमटा। (शत. ब्रा. १४-३-१-२२)।

ध्रुवा = विकंकत काष्ठ की बनी हुई, एक हाथ लंबी, याग की समाप्ति तक, वेदी पर रखी जाने वाली वस्तु। (स्रुव, उपभृत, जुहू, ध्रुवा आदि का मार्जन यज्ञ की एक विधि है।)

ध्रौवाज्य = यज्ञ की प्रायश्चित्त विधि तक बचा हुआ आज्य द्रव्य। प्रायश्चित्त की आहुतियों में इसकी समाप्ति की जाती है।

नक्षत्रदर्श = नक्षत्रों को देखने वाला-ज्योतिषी। यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

नदीसूक्त = ऋग्वेद का एक सूक्त (१०-७५)।

नमकानुवाक = ऋग्वेद के रुद्राध्याय का पूर्वविभाग। इस में 'नमः' शब्द का प्रचुर प्रयोग होने, से यह संज्ञा रूढ़ हुई। देखिये – चमकानुवाक।

नराशंस = नर (मनुष्य) जिनकी आशंसा करें। प्रार्थनीय देव।

नवग्रह महायज्ञ = इस में १,५,९ और १०० कुण्ड होते हैं। शुक्ल यजुर्वेद के विशिष्ट मंत्रों में दस हजार से १ करोड तक आहुतियां होती है।

नवयज्ञ = (देखिये – आग्रयण इष्टि)।

नवसस्येष्टि = देखिये – आग्रयण इष्टि)।

नाक्र = याजुष संहिताओं में अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित जलचर। (प्रायः नक्र- मगर)।

नाचिकेत = एक अग्नि चयन की संज्ञा। (कठ-उप. १-१८। २-१०)।

नाथबिन्दु = एक साम विशेष।

नानद = साम विशेष।

नामधेय = अनेक अंगों से युक्त यज्ञ के नाम का वाचक शब्द। उदा. – दर्शपूर्णमास, अग्निहोत्र, ज्योतिष्टोम इ.।

नाराशंस = आप्री सूक्तों के दो भेदों में से एक।

नाराशंसी गाथा = (१) दानस्तुति परक वैदिक मंत्र। (२) दान देने वालों की स्तुति कहने वाले वैदिक मंत्र।

नार्मेधस = साम विशेष।

निग्राभ्या = सोमयाग में सोम के क्षुल्लकाभिषव में उपयुक्त विशिष्ट जल की संज्ञा।

निधन = पांच सामों में से एक।

निधन काम = साम विशेष।

निरूढ पशुबन्ध = सप्त हविर्यज्ञ संस्थाओं में से छठा यज्ञ प्रकार। इसमें 'पशु (बकरा) संज्ञपन' यानें सांस रोककर पशु की हत्या होती है। यह उत्तरायण या दक्षिणायन के आरंभ में अनुष्ठान होता है। यह याग ज्योतिष्टोमांगभूत अग्निषोमीय पशुयाग प्रकृतिक होता है। इस में ग्यारह प्रयाज और उतने ही अनुयाज होते है। और गौ आदि पशुओं की दक्षिणा होती है।

निर्भुज् = ऋग्वेद मंत्रों का पदपाठ। (ऐत. आर. ३-१-३,५)।

निविद् = यज्ञ के अवसर पर देवता को आदरपूर्वक न्यौता (निमंत्रण) देने के लिए प्रयुक्त छोटे मंत्र।

निषेध = साम विशेष।

निष्किरीय = पुरोहितों की एक शाखा। (पंचविंश ब्रा. १२-५-१४)।

निष्केवल्य = मध्याह्नकालीन सोम के हविर्मन्त्र। (देखिये – मरुत्वतीय)

निहव = साम विशेष।

नीलंगु = अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित एक कीट।

नीलशीर्ष्णी = अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित एक पशु।

नेष्टा = (१) श्रौत यज्ञ में अध्वर्यु के साथ कर्म करने वाला ऋत्विक्। अध्वर्यु इसे कर्मविधि के आदेश देता है। (२) सोमयाग के १६ ऋत्विजों में से अध्वर्युगण का तृतीय।

नैऋति = राजसूय के चयन में उपयुक्त विशिष्ट इष्टका (ईंट)।

नैदान = वैदिक व्याख्याकारों का एक वर्ग जो व्युत्पत्ति की दृष्टि से व्याख्या करते थे।

नैष्कैवल्य = एक शस्त्र (वैदिक स्तोत्र) जो महाव्रत नामक श्रौत विधि के होम में मध्यंदिन सवन के अवसर पर गाया जाता है।

नौधस = साम विशेष।

न्यङ्कु = मृग या ऋक्ष। याजुष संहिताओं में अश्वमेध की

बलियों की सूची में उल्लिखित।

पंचजन = वेदकालीन समाज।

पंचदश = स्तोम विशेष।

पंचबिल = राजसूय यज्ञ के अन्तर्गत वैशाखी पौर्णिमा का अनुष्ठान। इसमें पांच हवियां होती हैं।

पंचवातीय = राजसूय यज्ञ के अन्तर्गत एक होम।

पंचविंश = स्तोम विशेष।

पंचांग (यज्ञ के) =देवता, हविर्द्रव्य, मंत्र, ऋत्विक् और दक्षिणा।

पंचाह याग = तीन प्रकार – देवपंचाह, पंच-शारदीय और व्रतवान्।

पंचौदन = पांच प्रकार के मिश्रित चावलों से पकाया गया भात (अथर्ववेद ४-१४-७)।

पणि = धनी होकर दान न देने वाला, देवों को हवि और पुरोहितों को दक्षिणा न देने वाला, गौओं को चुराने वाला और जलप्रवाह रोकने वाला नीच मनुष्य।

पत्नी = पति के साथ यज्ञकर्म में सहभागिनी होने वाली गृहिणी। ("पत्युर्नो यज्ञसंयोगे" अष्टध्यायी ४-१-३३)।

पत्नीसंनहन = यजमानपत्नी के बंधन के लिये बनायी हुई मुंज-घास की एक विशिष्ट रस्सी।

पत्नीसंयाज = (१) दर्श पूर्णमास यज्ञ के अंगभूत चार विशिष्ट याग, जिनमें पत्नी देवता होती है। (२) सोमयाग के तृतीय सवन में होने वाली एक विधि।

पद (या चरण) = ऋचा या श्लोक की एक पंक्ति।

पयस्या (या आमीक्षा) = गौ के गरम दूध में दधि डालने पर होने वाले दो भागों में से द्रवरूप भाग। यह एक हविर्द्रव्य होता है। (२) पयस्या = सोमयाग में मित्रावरुण देवता के प्रीत्यर्थ रात में निकाला हुआ गोरस।

परिधयः = यज्ञ के समय आहवनीय अग्नि की चारों ओर रखी गई पलाश उदुंबर आदि की बाहुमात्र समिधाएँ।

परिधि = यज्ञ के स्थंडिल की पूर्व के अतिरिक्त अन्य दिशाओं में दर्भ स्थापना।

परिधि-परिधान = यज्ञ की एक विधि।

परिप्लव = अश्वमेध के प्रसंग में जब एक वर्ष तक अश्व स्वेच्छया घूमता था तब चलने वाले आख्यानों की परंपरा।

परिविविदान = अग्रज से पूर्व विवाह करने वाला। वाजसनेयी संहिता में पुरुषमेध की बलियों की सूची में इसका उल्लेख है।

परिष्टुब्ध्येड् = साम विशेष।

परिस्तरण = यज्ञ के समय अग्नि के चारों ओर (उत्तर और पूर्व की ओर अग्र रखते हुए) दर्भ रखना।

परिसमूहन = हवन के समय यज्ञाग्नि की चारों ओर जल का मंडलाकार सिंचन।

पर्यङ्ग्य = अश्वमेध में अश्व के ललाट आदि अंगों में बांधे हुए बारह पशु। यह पशुबंधन मेध्याश्व के संपूर्ण शरीर को घेरकर बांधी हुई रस्सी से होता है।

पर्जन्ययाग (इन्द्रयाग) = इसमें ऋग्वेद के ५ वें और ७ वें मंडल के विशिष्ट मंत्रों से १ लाख साठ हजार या ३ लाख २० हजार आहुतियां ११ दिनों में दी जाती है। पर्जन्यलाभ इसका उद्देश्य होता है।

पर्जन्यसूक्त = ऋग्वेद में अत्रि द्वारा रचित सप्तम मंडल का १०२ वां सूक्त।

पर्णक = विषाक्त पर्ण को जल में रखकर मछली पकड़ने वाला। पुरुषमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

पवमान = ज्योतिष्टोम यज्ञ के अवसर पर सामगान करने वालों के स्तोत्र विशेष। तीन भेद – बहिष्पवमान, माध्यंदिन पवमान और तृतीय या आर्भव पवमान। (शतपथ- ब्राह्मण १३-२-३-१)।

पवित्र = (१) सोमरस को छानने की छन्नी, जो भेड़ के ऊन से बनती थी। (२) यज्ञ में उपयुक्त दर्भ।

पवित्रकरण = पवित्र – अनन्त गर्भ वाला, नोक वाला, कुश का बना हुआ, दो दल युक्त प्रादेशमात्र दीर्घ (प्रादेश – एक बालिश्त बंधन। यज्ञ के लिये 'पवित्र' सिद्ध करना।

पवित्रक = दो साग्र दर्भों से निर्मित पवित्रक से प्रणीता नामक पात्र में डाला हुआ जल का उत्प्लवन (उपर उछालना) पात्रप्रोक्षण, दर्वी स्रुचा का संमार्जन होता है।

पवमान मंडल = सोम का विशेषण है पवमान (पवित्र करने वाला)। ऋग्वेद के नौवें मंडल में सभी सूक्त पवमान (सोम) विषयक होने से उसे यह संज्ञा दी है।

पशुबन्ध = वह यज्ञ जिस में पशु का हवन होता था।

पशुयाग = सोमयाग के अन्तर्गत पांच (या एक मात्र) पशु के सिर इसमें काटे जाते हैं अथवा मिट्टी के सिर बनाये जाते हैं। पुशयाग के बाद उखासंभरण विधि होती है।

पशुस्तोम = गोसव में गेय "षट्त्रिंशत् स्तोम" नामक स्तोत्र का अपर नाम।

पश्वैकादशिनी = सोमयाग में अग्नि, सरस्वती, सोमा, पूषा, बृहस्पति, विश्वेदेव, इन्द्र और वरुण इन आठ देवताओं के प्रीत्यर्थ स्वीकृत ११ सवनीय पशु। इनके लिए यूपैकादशिनी (११ यूप) होती हैं। अलग अलग यूप में एक एक पशु बांधा जाता है।

पाकसंस्था = पाकयज्ञ की अपर संज्ञा।

पाकयज्ञ संस्था = गृह्यसूत्रोक्त गृहस्थाश्रमी के सात कर्म। इनमें कुछ कर्म अग्नि संबंधित नहीं होते। सात कर्म – औपासन होम, वैश्वदेव, पार्वण, अष्टका, मासिक श्राद्ध, श्रवणा और शूलगव। (गौतम धर्मसूत्र ८-१८)।

पाङ्क्त्र = खेत का चूहा। अश्वमेघ की बलियों की सूची में उल्लिखित।

पात्नीवत = ऐकादशिन पशुयाग में १३ वां यूप, जो यजमान की नाभी तक उंचा होता है।

पात्रासादन = दर्भो का परिस्तरण करने पर उसी पर यज्ञ के पात्र, समिधा, बर्हि (दूर्वा) आदि की स्थापना।

पादिन् = गण के मुख्य ऋत्विक् की दक्षिणा से चतुर्थांश दक्षिणा का अधिकारी। उदा. – होतृगण का ग्रावस्तुत् या उद्गातृगण का सुब्रह्मण्य।

पाराशर शाखा = ऋग्वेद वाष्कल शाखा की चार उपशाखाओं में से एक। संप्रति अनुपलब्ध।

पारिप्लव = अश्वमेध के समय कहे जाने वाले आख्यान जो सारस्वत्य इष्टि होने पर यज्ञावकाश के समय वर्षभर बार बार कहे जाते थे। (शत. ब्रा. १३,४,३,२-१५)।

पारूष्ण = अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित कोई पक्षी।

पार्थ = (१) राजसूय यज्ञ में प्रयुक्त १२ मंत्रों की संज्ञा। (२) कुछ साम मंत्र।

पार्थ होम = राजसूय यज्ञ के अन्तर्गत एक विधि।

पार्थुरश्म = साम विशेष।

पार्वण = सप्त पाक यज्ञ संस्थाओं में से एक यज्ञ प्रकार जो अमावस्या को नित्य किया जाता है।

पावमान = (१) अग्नि से संबद्ध मंत्र या स्तोम। (२) छानने के योग्य सोमरस।

पावमानी = ऋग्वेद के नवम मंडल के 'सोमपवमान' से संबद्ध सारी ऋचाओं की संज्ञा।

पाशुक याग = पशु सहित चातुर्मास्य याग। इसमें पशु तंत्र-प्रधान होता है।

पाशुक अनुष्ठान = सोमयाग के तृतीय सवन में शमिता द्वारा पकाये गये विविध पशु-अंगों का अध्वर्युद्वारा हवन।

पाष्ठौंह = साम विशेष।

पाष्य = सोमसवन में प्रयुक्त पाषाण। (ऋ. ९-१०१-२)।

पिंडीयाग = कारीरी इष्टि की अपर संज्ञा। (आश्व. श्रौ. सू. के अनुसार।)

पितृमेध = इसमें तीनों वर्ण अधिकारी होते है। एक ही ऋत्विक् अध्वर्यु होता है। मृत पिता आदि की अस्थियाँ वन में ले जाकर, उनके अंग बनाकर पुरुष के आकार का ढांचा शैवल, कुश आदि से ढंका जाता है। यही पितृमेघ की विधि है।

पित्व (या पिद्व) = अश्वमेघ की बलियों में से एक। (भाष्यकार के मतानुसार यह सिंह है।)

पिप्पिका = अश्वमेध की बलियों में से एक पक्षी।

पुनरभिषेक = राज्याभिषेक के पश्चात् सामर्थ्य प्राप्ति की अपेक्षा से होने वाला अभिषेक।

पुनःस्तोम = निषिद्ध प्रदेश में प्रवास करने पर एका प्रायश्चित्त स्वरूप यज्ञ। (बौधायन धर्मसूत्र १-१-२९-३०)।

पुरुषमेध = चैत्र शुक्ल दशमी को प्रारंभ होकर ४० दिनों तक चलने वाला यज्ञ। इसमें १८४ पशु होते हैं। सर्वस्व दक्षिणा होती है। ब्राह्मण आदि ४८ पुरुष यूप को बांधे जाते है और पुरुषसूक्त पाठ तथा पर्यग्निकरण के बाद वे छोड़ दिये जाते हैं। पुरुषमेघ का यजमान यज्ञ के अंत में वानप्रस्थाश्रम स्वीकारता हैं या आमरण अग्निहोत्र करता है।

पुरुषायुष = ११६ वर्षों का संपूर्ण जीवन काल। (उपनिषदों के अनुसार)।

पृदाकु = एक सर्प-विशेष। यजुष संहिताओं में अश्वमेध की बलियों की सूची में निर्दिष्ट।

पृषत = याजुष संहिताओं में अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित एक पशु। (प्रायः एक हरिणविशेष)।

पृषदाज्य = घी से मिश्रित दूध। (शत. ब्रा. २-५-२-४१)।

पृषातक = घृतमें दूध या दही मिलाकर होने वाला एक आहुतिद्रव्य।

पृषातक = दधि, मधु और आज्य का मिश्रण। (मानव गृ. सू २-३)।

पृष्ठ्यस्तोम = इसमें त्रिवृत् से त्रयस्त्रिंशतक स्तोम एक-एक एकाह में होते हैं।

पृष्ठ्य स्तोत्र = बृहत्, रथंतर, वैरूप, वैराज, शाक्वर और रैवत ये छह साम 'पृष्ठ' कहे जाते है। पृष्ठों का समूह 'पृष्ठ्य' (स्पृशति स्वर्गं लोकम् अनेन) कहा जाता है। प्रस्तुत छह स्तोत्रों को पृष्ठ्यस्तोत्र कहते हैं।

पुरोऽनुवाक्या = यज्ञ में किसी देवता को भाग लेने के लिए आमन्त्रित करने के मन्त्र। इसके बाद 'याज्या' मंत्र का पाठ होता था और उसके साथ वास्तविक बलि दी जाती थी।

पुरोरुच् = निविद मंत्रों (देखिये) की अपर संज्ञा। ये मंत्र आज्य और समा प्रउग समारोहों के अवसर पर प्रातःसवन में प्रार्थना सूक्त में प्रयुक्त होते है।

पुरोहित (या पुरोधा) = यजमान के धार्मिक कृत्यों का संचालक जो वेदमंत्रों तथा विधिविधानों का ज्ञानी होता था। वैदिक धर्मजीवन में पुरोहित अत्यंत पूज्य माने जाते थे।

पूतभृत् = पवित्र सोमरस भरने का घटाकार पात्र।

पूर्णाहुति = आज्याहुति का एक प्रकार।

पेशस्कार = (पेशस्- बेलबुटे का उत्तम परिधान) पुरुषमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

पेशितृ = पुरुषमेघ की बलियों में उल्लिखित। सायण के अनुसार ऐसा व्यक्ति जिसकी दबाई हुई शत्रुता पुनः जागृत हो सकती है।

पैंगराज = याजुष संहिताओं में अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित एक पक्षि-विशेष।

पैठीनसी = अथर्ववेद के एक श्रौतसूत्र का नाम।

पैप्पलाद = अथर्ववेद की एक विद्यमान शाखा। इसमें २० कांड हैं। (डॉ. रघुवीर द्वारा संशोधित)।

पोता = सोमयाग के १७ ऋत्विजों में से ब्रह्मगण का चतुर्थ ऋत्विज् जो ब्रह्मा (ऋत्विक्) का सहायक होता था।

पौण्डरीक यज्ञ = विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उल्लिखित एक अहीन यज्ञ।

पोतृ = यज्ञ का एक ऋत्विक् जो प्रमुखता से पवित्र सोम को छानने का और सोम की स्तुति का काम करता था।

पौरुमद्ग = साम विशेष।

पौष्कस = यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित। निषाद या शूद्र द्वारा क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न व्यक्ति। (२) साम विशेष।

प्रउग = यज्ञ में प्रातःकालीन सोम के हविर्मन्त्र। देखिये – आज्य।

प्रउगशस्त्र = प्रातःसवन के अंगभूत दस विधियों में से एक।

प्रकरितृ = यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित। सायण के अनुसार विभेदक अर्थात् प्रिय व्यक्तियों में भेद डालने वाला।

प्रकृति याग = 'दर्श-पूर्णमासौ' नामक छह याग सभी यज्ञो की "प्रकृति" (मूलाधार) माने जाते हैं। इन्ही पर आधारित फल और निमित्त के अनुसार सहस्र से अधिक इष्टियाँ श्रौत सूत्रों में कही गई हैं। अन्य सभी यागों को "विकृति याग" कहते हैं। जहां सभी अंगों का उल्लेख हो वहां "प्रकृति" होती है।

प्रक्रम = अश्वमेध के अंगभूत ४९ होम, जो मेध्य अश्व वापिस लौटने तक होते हैं।

प्र-गाथ = ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ऋषि, जिन्होंने प्रगाथ अर्थात् बृहती, ककुभ्, सतोबृहती जैसे प्रकृष्ट छंदों में मंत्र-रचना की है। (देखिए – तृच्)।

प्रगाथ बार्हत = एक वैदिक छंद।

प्रचय = वैदिक शब्द के स्वरों का एक प्रकार। (ऋक् प्रातिशाख्य- ३-११-१३,१७)।

प्रजापति यज्ञ (या ब्रह्म यज्ञ) = इसमें शुक्ल यजुर्वेद के ७ वें अध्याय से ३४ वें अध्याय तक अन्यान्य मंत्रों से १ लाख आहुतियां होती हैं।

प्रजापति = स्विष्टकृत् स्थानीय अंगदेवता।

प्रजापतिसत्र = १२ वर्षों तक चलने वाला एक महासत्र।

प्रणीता-प्रणयन = प्रणीता – चमस में लिया गया जल। उसे अपने स्थान पर स्थापन करना।

प्रणीता विमोक = सोमयाग के तृतीय सवन में एक विधि।

प्रणेजन = यज्ञ में सफाई के लिए प्रयुक्त जल। (प्रणीता- जल)।

प्रतिकर्म सोम = अग्न्याधेय सोम, पुनराधेय, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, दाक्षायण, आग्रयण, इन छह क्रतुओं की संज्ञा।

प्रतिज्ञासूत्र = शुक्ल यजुर्वेद के श्रौतसूत्र। जो सोमयाग में अध्वर्यु के साथ ऋतुपात्र से हवन करता है।

प्रतिप्रस्थाता = सोमयाग के १६ ऋत्विजों में से अध्वर्युगण का द्वितीय ऋत्विज। अध्वर्यु इसे प्रैष (आज्ञा) देकर विधि करवाता है।

प्रतिहर्ता = यज्ञ के सोलह ऋत्विजों में से एक जो उद्गाता का सहायक होता है। सोमयाग में इसे सव के बाद दक्षिणा दी जाती है। तत् पश्चात् दक्षिणादान बंद होता है।

प्रतिहर्ता = साम के पांच भागों में से प्रतिहार नामक तृतीय भाग गाने वाला ऋत्विज्।

प्रतिहार = साममंत्रों के गान में चौथे पद के आरंभ से मन्त्रोच्चारण में प्रतिहर्ता भाग लेता है। इसीका पारिभाषिक नाम है प्रतिहार। छांदोग्य उपनिषद् में अन्य चार प्रकर कहे हैं – प्रस्ताव, उद्गीथ, उपद्रव और निधन।

प्रतीहार = पांच सामों में एक।

प्रतृण्ण = ऋक्संहिता का पाठ। अन्य पाठ प्रकार – निर्भुज (पदपाठ) और उभयमन्तरेण (क्रम पाठ)। (ऐतरेय आरण्यक ३-१-३-५)।

प्रत्याश्रावण = यज्ञ के आरंभ में अध्वर्यु आग्नीध्र को कुशल निवेदन का आदेश देता है। तब वह हाथ में स्फ्य (लकड़ी की तलवार) लेकर सार्वत्रिक कुशल का निवेदन करता है। इसी निवेदन को 'प्रत्याश्रावण' कहते हैं।

प्रदान्त = अथर्ववेद की एक लुप्त शाखा।

प्रधान याग = पुत्रप्राप्ति आदि उद्दिष्ट फल को प्रदान करने वाले देवता के लिये किया गया याग विशेष। प्रधान याग को भली भांति करने वाला "स्विष्टकृत" कहलाता है। (सुष्ठु इष्टं करोति इति)। दर्शपूर्णमास याग का एक अनुष्ठान।

प्रमंहिष्ठीय = साम विशेष।

प्रयाज = यज्ञीय देवता, जिनकी संख्या ११ या १२ मानी जाती है।

प्रयाज = प्रारंभिक होम। (अनुयाज = प्रयाज के बाद के होम।)

प्रयाज = वे यज्ञ जिनके द्वारा देवताओं का प्रकृष्ट रूप से पूजन होता है। यज्ञ में पांच 'प्रयाज' अर्थात् देवताओं के प्रमुख पूजन होते हैं। प्रकर्षेण इज्यन्ते अस्मिन् – अर्थात् जिसमें प्रमुखता से पूजा होती है।

प्रयाजयाज्या = ऋग्वेद के अन्तर्गत १० आप्रीसूक्तों की अपर संज्ञा।

प्रवर = यज्ञ के प्रारंभ में कार्य संपादन के लिए अग्नि का आवाहन या आह्वान। इसमें पुरोहितों के पूर्वजों का भी नामोल्लेख होता था। अतः प्रवर का अर्थ 'आहूत पूर्वज' भी होता है।

प्रवर्ग = (अन्यनाम – महावीर या घर्म) एक मिट्टी का पात्र जिसमें प्रवर्ग्य नामक यज्ञ के निमित्त गरम दूध तप्त घी में डाला जाता है।

प्रवर्ग्य = सोमयज्ञ के पहले किया जाने वाला एक यज्ञ। इसमें गरम दूध प्रवर्ग नामक मिट्टी के पात्र में गरम घी के साथ मिलाया जाता है।

प्रवर्ग्य = प्रवृग्जन विधि (गरम घी में दूध डालना) द्वारा बना हुआ एक यज्ञीय द्रव्य। इसी को घर्म भी कहते हैं। (२) सोमयाग का एक विशिष्ट अनुष्ठान। इस अनुष्ठान को यजमानपत्नी ने देखने का निषेध है।

प्रवर्ग्योद्वासन = सोमयाग की उपसदिष्टि के अन्तर्गत तीसरे दिन प्रवर्ग की सामग्री पर विशिष्ट संस्कार। इसमें सारी सामग्री उत्तरवेदी पर चक्राकार रखी जाती है जिस पर दही और मधु का अभिषेक होने पर आग्नीध्र नामक ऋत्विक् जलकलश की

धारा मे उत्तरवेदी की तीन प्रदक्षिणाएँ करता है।

प्रशास्ता = पशुयज्ञ या सोमयज्ञ जैसे वडे यज्ञों में होता नामक ऋत्विक् का सहायक। इसका मुख्य कार्य था स्मृतियों का पाठ करना। उसे 'उपवक्तृ' तथा 'अच्छावाक' कहा है। प्रैप द्वारा अन्य ऋत्विजों को निर्देशन देना भी इसका कार्य था। (ऋ. ४-९-५)।

प्रश्नविवाक = न्यायाधीश। पुरुपमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

प्रश्निन्, अभिप्रश्निन् और प्रश्नविवाक = याजुप संहिताओं में पुरुपमेध की बलियों में उल्लिखित।

प्रश्निन् = न्यायालय में वादी। पुरुपमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

प्रसव = सोम का सवन अर्थात् रस निचोड़ना।

प्रस्तर = कुश (नामक घास) की मुष्टि।

प्रस्तरग्रहण = यज्ञ की एक विधि।

प्रस्तर = सोमयाग में श्येन, गरुड़ आदि आकृति का चयन (चिति) करने के लिये स्थापित इष्टकाओं का प्रथम स्तर। एक प्रस्तर में दो सौ इष्टकाएं होती हैं। प्रतिदिन एक एक प्रस्तर की स्थापना होती है। प्रस्तरों की संख्या पांच, सात या नौ होती है।

प्रस्ताव = पांच सामों में से एक।

प्रस्तोता = सोमयाग के १६ ऋत्विजों में से उद्गातृगण का द्वितीय ऋत्विज, जो साम का प्रस्ताव (प्रारंभ) करता है।

प्रस्तोता = प्रस्ताव नामक साम के पांच भागों का प्रथम भाग गाने वाला ऋत्विज।

प्रस्थाता = यज्ञ में अध्वर्यु का एक सहायक।

प्राग्वंश = यज्ञभूमि में स्थापित प्रथम मंडप। इसके आच्छादन के वंश (बांस) के अग्र पूर्व दिशा की ओर होने के कारण मंडप का यह नाम है। इसके पांच द्वार होते हैं।

प्राचीनावीत = देखिये यज्ञोपवीत।

प्राच्याध्वर्यु = यज्ञ के अध्वर्यु का एक प्रकार। यह देशभेद मूलक है। कठाध्वर्यु, कलापाध्वर्यु इत्यादि अध्वर्यु के भेद वेदशाखा के भेद के कारण माने जाते हैं।

प्राजापत्य प्रायश्चित्त = औपासन अग्नि का आधान करने में गलती होने पर, जितना समय उस प्रत्यवाय में बीता हो उतने समय तक यह प्रायश्चित्त होता है। बाद में अग्नि का आधान विहित है।

प्रातरनुवाक = प्रातःकाल में पक्षियों की चहचहाट होने के पहले ही यज्ञ में होता के द्वारा पढ़ा जाने वाला ऋक्समूह। (आश्व. श्रौ. सू. ४-१३१-६)।

प्रातर्दर्वि होम = चातुर्मास्य याग के साकमेघ नामक तृतीय पर्व में दूसरे दिन यह होता है। इसमें सभी क्रियाएँ मौन में की जाती है।

प्रातःसवन = प्रातःकालीन सोम-सवन की विधि। इसमें १० याज्ञिक विधियां अन्तर्भूत हैं- प्रातरनुवाक, अभिषव, पशवः, धिष्ठ्योपापस्थान, सवनीया, पुरोडाशाः, द्विदेवत्यग्रहाः, द्विदेवत्यभक्ष, ऋतुयाजाः, आज्यशस्त्र और प्रउगशस्त्र।

प्रातःसवन = २४ अक्षरों वाला गायत्री छंद और वसु-देवता से संबंधित श्रौत यज्ञ की विधि।

प्रातःसवन = पुरुप की आयु के प्रथम २४ वर्प। (छांदोग्य उपनिषद के अनुसार)।

प्रातर्दन अग्निहोत्र = प्रतर्दन ऋषि के मतानुसार भापण करते समय प्राण (श्वास) का वाणी में और भापण समाप्ति होने पर वाणी का प्राण में हवन होता है। यह अंतर्यामी अग्निहोत्र जो ज्ञानी लोग जानते हैं वे लौकिक अग्निहोत्र व्रत नहीं करते। (कौपीतकी उपनिपद २-५)।

प्रायणीय = गवामयन नामक सत्र के अन्तर्गत एकाह याग।

प्रायणीया इष्टि = सोमयाग के अन्तर्गत एक अनुष्ठान। (प्रयन्ति स्वर्गम् अनया इति प्रायणीया – जिसके द्वारा स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया जाता है ऐसी इष्टि) इसमें पांच देवता होते हैं। सोमयाग में दीक्षणीयेष्टि प्रथम होने पर दूसरे दिन पथ्यास्वस्ति, अग्नि, सोम, सविता और अदिति इन पांच देवताओं के निमित्त आज्य तथा चरु का हवन।

प्रायश्चित्त = पश्चात्ताप होने पर पापनिवृत्ति के लिए विशिष्ट अनशन हवन आदि विधि (सभी प्रकार के सामाजिक या नैतिक प्रायश्चित्तों की सूची सामविधान ब्राह्मण में है।)

प्राशित्रावदान = प्राशित्र — (ब्रह्मा का यज्ञीय भाग।) के अवदान (विभाग) का ग्रहण। दर्शपूर्ण मास याग का एक अनुष्ठान।

प्रैष = यज्ञ का अध्वर्यु नामक ऋत्विक् अन्य ऋत्विजों को उनके मंत्रपाठ विधि आदि की आज्ञा देता है। इस आज्ञापन को प्रैष कहते है। यज्ञ के निमित्त निमंत्रण।

प्रोक्षण = इध्म, वेदि और बर्हिस् का प्रोक्षण, यज्ञ की एक विधि है। प्रोक्षण = पवित्र जल से सिंचन।

प्रोक्षणी = अग्निहोत्र हवणी नामक स्रुचा में दर्भक पवित्रक के उपर से मंत्रोच्चार सहित डाला हुआ पवित्र जल। इसी से यज्ञीय पात्रों पर प्रोक्षण (सिंचन) करने पर वे यज्ञोपयोगी होते हैं।

प्लुषि = अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित एक कीटक।

फलीकरण = यज्ञीय तंडुलों को छानना अथवा शुद्ध करना।

बम्भारि = सोमरक्षक सात देवों में से एक। सात सोमरक्षक- स्वान, भ्राज, अंधारि, बम्भारि, हस्त, सुहस्त, कृशानु। (वाजसनेयी संहिता- ४-२०, ५-३२)।

बलाका = अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

बलाय = अश्वमेध की सूची में उल्लिखित एक पशु।

बर्हिस् = यज्ञ में निमंत्रित देवताओं के बैठने के लिये बिछाई हुई पवित्र घास। 'बर्हिपद्' शब्द देवता के अर्थ में रूढ है।

बहिष्पवमान = एक विशिष्ट सामगान की संज्ञा। अन्य पवमानों की संज्ञाएं है। माध्यंदिन और आर्भव (तृतीय)।

बहिष्पवमान = एक स्तोत्र, जो विशिष्ट तीन सूक्तों के गायन से सम्पन्न होता है। इसकी ऋचाएं पवमान के लिये होने से बाहर से संबद्ध होती हैं, अतः इसी को बहिष्पवमान कहते हैं। यह प्रातःसवन के अवसर पर गाया जाता है।

बह्वृच = ऋग्वेद या ऋग्वेदी ब्राह्मण।

बाष्कल = ऋग्वेद की २१ शाखाओं में से एक।

बाहर्दुक्थ = एक सामविशेष।

बार्हद्गिर = एक साम विशेष।

बिदलकारी = अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित। (टोकरी बनाने वाली।)

बृहती = ३६ मात्राओं का एक वैदिक छंद। इसके उरोबृहती पुरस्ताद्बृहती आदि अनेक भेद माने गये हैं। ऋग्वेद के सबसे कम (१८१) मंत्र इस छंद में रचित हैं।

बृहत्साम = बृहती छन्द पर बने हुए साम। (गीता में परमात्मा की विभूतियों में इसका उल्लेख हुआ है।)

बृहस्पति = एक प्रमुख वैदिक देव जो प्रज्ञा के देवता, देवों के पुरोहित और प्रार्थना के स्वामी कहे गये हैं। (अपर नाम – ब्रह्मणस्पति)

बृहस्पति सव = राजसूय यज्ञ के अन्तर्गत वाजपेय याग के वाद पुरोहित इस यज्ञ को करता है। शतपथ ब्राह्मण में इसे वाजपेय से अभिन्न कहा है। (शत.ब्रा. ५-२-१-१९)।

बृहस्पति सव = एकाह सोमयाग का एक प्रकार।

बृहस्पति स्तोम = एक एकाह यज्ञ।

बैन्द = यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित। निषाद या धीवर।

बौधायन = कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के छह शाखा-सूत्रों में से एक सूत्रग्रंथ।

बौध्यशाखा = ऋग्वेद-बाष्कल शाखा की चार उपशाखाओं में से एक। संप्रति अनुपलब्ध।

ब्रह्मवद्य (ब्रह्मोद्य या ब्रह्मवाद्य) = (१) अश्वमेध और दाशरात्र यज्ञों का एक अंग। (२) ब्रह्मविद्या विषयक समस्याओं पर विचार विमर्श। ब्राह्मण के अध्ययन के विषयों में से एक। (छांदोग्य उप. ७-१-२,४)।

ब्रह्मवद = अथर्व वेद की एक लुप्त शाखा।

ब्रह्मसामन् = एक सामविशेष।

ब्रह्मसूक्त = अथर्ववेद के अन्तर्गत एक सूक्त जो वेदान्त के ब्रह्मविचार का बीज माना जाता है। (अथर्ववेद १०-२-३)।

ब्रह्मा = सोमयाग के १६ ऋत्विजों में से ब्रह्मगण का प्रथम ऋत्विज् जो अथर्ववेद का ज्ञानी होता है। इसके तीन सहायक – आग्नीध, पोतृ और ब्राह्मणाच्छंसी। **ब्रह्मन्** (नपु.) = प्रार्थना। (२) जगत् का आदिकारण।

ब्रह्मीय = अश्वमेध में ब्रह्मा (ऋत्विज्) और होता के बीच होने वाले कूट प्रश्नोत्तर।

ब्रह्मौदन = यज्ञ के समय प्रमुख ऋत्विजों के लिए पकाया भात।

ब्राह्मणाच्छंसी = सोमयाग के १७ ऋत्विजों में से ब्रह्मगण का द्वितीय ऋत्विज जो यज्ञ में ब्रह्मा का सहायक होता है। ब्राह्मण ग्रंथों में से विशिष्ट याज्या कहता है।

ब्राह्मौदनिक = एक यज्ञीय अग्नि। यह औपासन अग्नि से अंगारे निकाल कर या मंथन से उत्पन्न किया जाता है। इसी पर **ब्रह्मौदन** (यज्ञीय भात) पकाया जाता है। ब्रह्मौदन के कुछ अंश की आहुतियाँ दी जाती हैं और शेष ब्राह्मणों को खिलाया जाता है।

भद्र = साम विशेष।

भारद्वाज = कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के छह शाखा सूत्रग्रंथों में से एक सूत्रग्रंथ।

भास = साम विशेष।

भिषज् = याजुष संहिताओं में पुरुषमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित। रोगों की चिकित्सा और उपचार करने वाला।

भूतविद्या = छांदोग्य उपनिषद् में विद्याओं की नामावली में उल्लिखित एक विद्या।

भूमिसूक्त = अथर्ववेद का एक (१२-१) सुप्रसिद्ध सूक्त। यह मार्गशीर्ष पौर्णिमा को आग्रहायण नामक विधि में गाया जाता है।

भृंगा = अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित। भ्रमर।

भोज = ऐतरेय ब्राह्मण (८-१४) के अनुसार सात्वत गण के अधिपति की संज्ञा।

मकर = अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित। मगरमच्छ।

मंडप = सोमयाग में हविर्धान, आग्नीध्रीय, मार्जालीय, सदस्, नामक मंडपों का निर्माण आहवनीय अग्नि प्रज्वलित करने पर होता है।

मंडल = ऋग्वेद संहिता का अध्यायस्वरूप विभाग। ऋग्वेद में मंडल संख्या है १०। दो विभाग – (१) **गोत्रमंडल** (विशिष्ट गोत्र, ऋषि और उनके वंशजों के अनुसार घटित विभाग)। (२) **ऋषि मंडल** (गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज, वसिष्ठ, कण्व और आंगिरस ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध विभाग)।

मण्डूकसूक्त = ऋग्वेद का मण्डूक विषयक एक सूक्त (७-१०३)।

मदन्ती = सोमयाग में आतिथ्येष्टि के बाद की विधियों में उपयुक्त तपाया गया जल। इसी जल से सभी कार्य होते हैं।

मदपती = इन्द्राविष्णु नामक युग्मदेवता का विशेषण।

मधुब्राह्मण = एक रहस्यपूर्ण सिद्धान्त। (शतपथ ब्रा. ४-१-५-१८)।

मधुमंथ = दही और शहद (मधु) का मिश्रण। यह एक हविर्द्रव्य है।

मन्त्र = यज्ञ से संबंधित वेदों का ऋचात्मक तथा गद्य भाग। विविध प्रकार – शस्त्र, स्तोत्र, आज्य, प्रउग, मरुत्वतीय, निष्केवल्य, वैश्वदेव और आग्निमारुत। (मंत्र के पाठक तथा

हविर्दान का समय, इनके भेदानुसार ये प्रकार हुये हैं।)

मन्थ = पित्र्य यज्ञ का हविर्द्रव्य जो गौ के, (जिसका अपना वछड़ा मर चुका है तथा जो दूसरी गौ के बछड़े को चाटकर दुही जाती है) दूध में सक्तु डालकर तैयार होता है।

मयु = यजुर्वेद में अश्वमेध की वलियों की सूची में उल्लिखित प्राणी। लंगूर या आरण्य मयूर।

मरुत्वतीय और निष्केवल्य = मध्याह्नकालीन होम के मंत्र (होतृद्वारा उच्चारित)। शस्त्र का एक प्रकार।

मरुत्वतीय याग = सोमयाग के माध्यंदिन सवन में एक विधि।

मरुत्स्तोम = अग्निष्टोम संस्था का एक गणयज्ञ।

मर्कट = याजुप संहिताओं में अश्वमेध की बलियों के सूची में उल्लिखित।

महर्षि = ऋग्वेद मंडल २ से ७ के द्रष्टाओं का विशेषण।

महाकौपीतकी = ऋग्वेद-शांखायन शाखा की ४ उपशाखाओं में से एक। संप्रति अनुपलब्ध।

महा-दिवाकीर्त्य = सामविशेष।

महानिरिष्ट = वडा बधिया वैल, जिसे राजसूय यज्ञ के प्रसंग में दक्षिणा वताया गया है। (तैत्ति. सं. १-८-९-१)।

महापैंग्य = आश्वलायन गृह्यसूत्र में निर्दिष्ट एक वैदिक शाखाग्रन्थ का नाम। (आश्व गृ. सू. ३-४-४)।

महावार्हत = एक वैदिक छंद।

महावृहती = वृहती (वैदिक छंद) का एक प्रकार।

महाभिषेक = बड़े राजाओं का अभिषेक जो राजसूय यज्ञ के समकक्ष माना गया है।

महामख = (मख = यज्ञ) ब्रह्मयज्ञ (अध्यापन), पितृयज्ञ (तर्पण), दैवयज्ञ (होम), भूतयज्ञ (बलिसमर्पण), नृयज्ञ या मनुष्य यज्ञ (अतिथिसत्कार)। मनुस्मृति ३-७०। इन्हें महासत्र, बलिवैश्वदेव, भी कहते हैं।

महायज्ञ (पांच प्रकार) = ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ।

महायज्ञ = (महासत्र) समाज कल्याण के हेतु किया जाने वाला यज्ञ। (समष्टिहित महायज्ञ का और व्यक्तिहित यज्ञ का प्रयोजन होता है।)

महारात्र = अर्धरात्रि के बाद और सूर्योदय के पहले का समय। (कौपीतकी ब्राह्मण २-९-११-९)।

महारुद्र याग = ९ या ११ दिनों में पर्ण होता है। इसमें ३१ अथवा ४१ विद्वान् होते हैं। २१९१३१ आहुतियाँ होती हैं।

महावीर (घर्म या प्रवर्ग्य) = घर्म (गरम घी में दूध डालकर बनाया हुआ पदार्थ) पकाने के लिए मिट्टी का बनाया गया उलूखल के आकार का यज्ञीय पात्र।

महावैश्वामित्र = सामविशेष।

महावैष्टम्भ = साम विशेष।

महाव्रत = गवामयन नामक सत्र के अंतर्गत एक एकाह याग।

महाव्रत = एक साम या स्तोत्र, जो सोमयाग के बाद एवं गवामयन के पहले गाया जाता है।

महासत्र = तीन प्रकार- शाक्त्यानाम् अयनम्, साध्यानाम् अयनम् और विश्वसृजाम् अयनम्।

महासूक्त = दशम मंडल के बड़े सूक्तों के द्रष्टा ऋषि। (छोटे सूक्तों के द्रष्टाओं को **क्षुद्रसूक्त** कहा है।)

महाहविष् = साकमेध यज्ञ की प्रमुख हवि। (शत. ब्रा.२-५-३-२०)।

महाहवि इष्टि = चातुर्मास्य याग के साकमेध नामक तृतीय पर्व में यह उत्तर वेदी पर की जाती है।

माण्डूकायन = ऋग्वेद की २१ शाखाओं में से एक।

माधुच्छन्दस = साम विशेष।

माध्यन्दिन सवन = ४४ अक्षरों वाले त्रिष्टुप् छंद और रुद्रदेवता से संवधित श्रौतयज्ञ की विधि। (२) पुरुष की आयु के २५ से ६८ वर्षों का ४४ वर्षों का काल। (छांदोग्य उपनिषद के अनुसार)।

मान्थालव (मान्थोलव) = यजुर्वेद में अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित प्राणी। (मूषक या कुक्कुट या चमगीदड़)।

मार्गार = यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित प्राणी। (संभवतः शिकारी या मछुवा)।

मार्जालीय = सोमयाग का एक विशिष्ट मंडप। यह महावेदी की दक्षिण दिशा में होता है। इसका आधा भाग महावेदी के अंदर होता है। उत्तर दिशा में इस मंडप का द्वार होता है।

मासिश्राद्ध = सप्त पाकयज्ञ संस्थाओं में से एक यज्ञ प्रकार।

मुंज = यज्ञ में उपयुक्त एक पवित्र घास।

मुद्गल शाखा = ऋग्वेद-शाकल शाखा की पांच उपशाखाओं में से एक।

मुनि-मरण = वैखानसों के वधस्थान की संज्ञा। (पंचविंश ब्राह्मण १४-४-७)।

मृगतीर्थ = सवन के उपरान्त ऋत्विजों के गमन का मार्ग (आश्व. श्रौ. सूत्र. ५-११-२)।

मृत्युंजय (या महामृत्युंजय) मन्त्र = ऋग्वेद के ७-५९-१२ (त्र्यंबकं यजामहे सुगन्धिं...) इस मंत्र की संज्ञा।

मेक्षण = लकड़ी का चम्मच जिससे यज्ञ के चरु को चलाया जाता था।

मेथि (या मेधि) = यज्ञीय यूप की अपर संज्ञा। यज्ञ के अवसर पर गौ को बांधने के लिए इस का उपयोग होता था। (अथर्ववेद ८-५-२०)।

मेध = शतपथ ब्राह्मण (३-८-४-५) में मेदस् को ही मेध कहा है। (मेदो वै मेधः) यज्ञ में मेदस् की हवि दी जाती थी। उसी कारण 'मेध' शब्द यज्ञ के अर्थ में रूढ हुआ। (उदा. अश्वमेध, पुरुषमेध इ.)।

मेधातिथि (या मेध्यातिथि) = यज्ञ के अवसर पर अतिथियों का सत्कार करने वाला। एक प्रसिद्ध मंत्रद्रष्टा का नाम।

मेषहोम तथा मेषीहोम = चातुर्मास्य याग के वरुण प्रघास

नामक द्वितीय पर्व में पूर्णिमा के दिन अध्वर्यु जौ के आटे से मेप और प्रतिप्रस्थाता मेषी बनाता है जिनका होम किया जाता है।

मैनाल = यजुर्वेद में पुरुषमेघ की बलियों में उल्लिखित। (सायण तथा महीधर के अनुसार इसका अर्थ है मछुआ)।

मैत्रायणी संहिता = (अपर नाम – आद्य यजुर्वेद) कृष्ण यजुर्वेद की चतुष्काण्डात्मक संहिता। इसमें सभी प्रकार के यज्ञों का विवेचन है।

मैधातिथ = साम विशेष।

मोदायन = अथर्ववेद की एक लुप्त शाखा।

यजुष्मती = राजसूय यज्ञ के चयन में उपयुक्त विशिष्ट इष्टका (ईंट)। इनकी संख्या ३७० होती है। इनकी स्थापना समंत्र होती है।

यजुर्वेद = याज्ञिक मंत्रों की संहिता। **यजुस्** - गद्यात्मक और पद्यात्मक यज्ञीय मंत्र।

यज्ञ = देवपूजा, सत्पुरुषों का समागम और दान इन तीन अर्थों में 'यज्ञ' (यज्+नङ्) शब्द का प्रयोग होता है।

'यज्ञ' = शब्द का लौकिक विग्रह- (१) यजनं इन्द्रादिदेवानां पूजनम् इति यज्ञः। (२) इज्यन्ते देवाः अस्मिन् इति-।। (जिस विधि में देवों का पूजन होता है।) (३) इज्यन्ते देवाः अनेन इति- जिस विधि से देवों की पूजा होती है। (४) इज्यते (पूज्यते) असौ यज्ञः- भगवान् विष्णु। (५) इज्यते- देवतोद्देशेन श्रद्धापुरस्सरं द्रव्यादि त्यज्यते अस्मिन् इति- जिस विधि में देवता प्रीत्यर्थ धन का त्याग होता है। (६) इज्यन्ते वेदाः अस्मिन्- जिसमें वेदज्ञान का दान होता है ऐसी विधि।

यज्ञ = जिस कर्म में देवता, हवनीय द्रव्य, वेदमंत्र, ऋत्विज और दक्षिणा इन पांचों का संयोग होता है। (मत्स्य पुराण १४४-४४)।

यज्ञ के तीन प्रकार = पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ, सोमयज्ञ। इनमें प्रत्येक के सात सात भेद होते है। (गौतम, धर्मसूत्र ८-१८)। यज्ञ के तीन भेद – सात्विक, राजस, और तामस। १४ वैदिक यज्ञों के प्रत्येकशः ये तीन प्रकार होते हैं।

द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ, प्राणायाम, प्रायोपवेशन आदि गीता (४-४८) में उल्लिखित विविध यज्ञ। (देखिये शांकर भाष्य - परिभाषा) सभी यज्ञों का वर्गीकरण गीता में सात्त्विक, राजस, और तामस इन तीन विभागों में किया है।

यज्ञकुण्ड = यज्ञीय अग्नि का आयतन। **प्रकार** = स्थंडिल, चतुरस्र, वृत्त, पद्म, योनि, अर्धचन्द्र, त्रिकोण, पंचकोन, पट्कोन, सप्तकोन, अष्टकोन। प्रायः १ हाथ लंबा, चौड़ा और गहरा कुंड होता है। कुंड के पास दो या तीन 'मेखलाएं' होती हैं।

यज्ञगाथा = यज्ञ के संबंध में गाये गये गीत (ऐत. ब्रा. ३-४३-५)।

यज्ञगाथा = यज्ञसमारोह में गाने योग्य वेदमंत्र।

यज्ञतनु = सोमयाग में आग्नीध्रीय मंडप में स्थापित अग्नि में दी गई ३३ आज्याहुतियाँ।

यज्ञपतिः = विष्णु।

यज्ञाग्नि के पांच भेद = गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य। इनमें प्रायः प्रथम तीन की उपासना अग्निहोत्री करते हैं।

यज्ञायज्ञीय = सामविशेप।

यज्ञायुध = यज्ञ में उपयुक्त साधन-उपकरण। (ऐतरेय ब्राह्मण ७-१९)।

यज्ञिय देश = भारत का एक विशेषण।

यज्ञिय पशुपंचक = अश्व, वृषभ, अवि, अज और पुरुप। (तैत्ति. सं. ४-२-१-१-४)। (महाभारत में संख्या ७ कही है – अज, अवि, वृषभ, अश्व, श्वान, गर्दभ और उष्ट्र।)

यज्ञोपवीत = यज्ञ के अवसर पर वाम स्कन्ध के ऊपर से ब्रह्मसूत्र को धारण करना। प्रारंभिक काल में ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) के स्थान पर वस्त्र या मृगाजिन धारण किया जाता था। (अपर संज्ञा – प्राचीनावीत।)

यज्ञेश्वर = यज्ञस्वरूप भगवान् विष्णु।

यज्वा = विधिपूर्वक यज्ञ (देवपूजा, संगतिकरण और दान) करने वाला।

यद्वाहिष्ठीय = सामविशेष।

यमसू = जुडवां बच्चे उत्पन्न करने वाली। यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

यवाग्रयण और व्रीह्याग्रयण = आग्रयण इष्टि के प्रकार।

यवाशिर = सोमरस में जौ का पिष्ट मिलाने पर होने वाला मिश्रण। (देखिये – गवाशिर)

याग = देवता के उद्देश्य से अग्नि में हविर्द्रव्य का त्याग। (देखिये – यज्ञ)।

यातुविद्या = अथर्ववेद में प्रतिपादित जादूटोना तथा इन्द्रजाल।

यूप = सोमयाग में अग्नीषोमीय पशु (बकरा) को बांध रखने के लिये स्थापित एक स्तम्भ। यह अत्यंत पवित्र माना जाता है।

यूपन् = अश्वमेध में अश्व के मांस से बननेवाला सूप जो खाने के काम में आता था। (अन्य शब्द- यूस)

योनिऋक् = तृच् की तीन और प्रगाथ की दो ऋचाओं में से प्रथम ऋचा जिसका छंद उत्तरार्चिक से लिया जाता है। उत्तरार्चिक को ही योनिग्रंथ कहते है।

योनिग्रंथ = तीन आर्चिक ग्रंथों में से उत्तरार्चिक (जिसमें तृच् और प्रगाथ का अन्तर्भाव होता है।) की संज्ञा।

यौक्ताश्व = साम विशेष।

यौधाजय = साम विशेष।

यौवराज्याभिषेक = सपात्र और सर्वमान्य ज्येष्ठ राजपुत्र के भावी राज्यारोहण की सूचना के निमित्त अभिषेक।

रजयित्री = रंगाने वाली स्त्री। यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों की सूची में इसका उल्लेख आया है।

रज्जुसर्ज = गोलाकार में बैठनेवाला सांप। यजुर्वेद में पुरुपमेध की बलियों में उल्लिखित।

रत्नहवि-इष्टि = राजसूय के अन्तर्गत एक विधि। ये १२

इष्टियाँ राजा के १२ संबंधियों के घर में होती हैं। सेनानी के घर पहली इष्टि होती है।

रत्निन् = राजसूय यज्ञ के अवसर पर 'रत्नहविष' नामक यज्ञ करने वाले राजपरिवार के व्यक्ति, जिनमें पुरोहित, राजन्य, महिषी, वावाता, परिवृक्ती, सेनानी, सूत, भागदुध (करसंग्रह करने वाला या भोजन बांटने वाला), अक्षावाप आदि लोगों का अन्तर्भाव होता है।

राक्षोघ्नसूक्त = ऋग्वेद का एक सूक्त।

राजसूय यज्ञ = अभिषिक्त क्षत्रिय ही इसका अधिकारी होता है। फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा को इसका आरंभ होता है। इसके अन्तर्गत अनेक प्रकार की इष्टियां संपन्न होती हैं जिनमें पंचवातीय, त्रिसंयुक्त, रत्नहवि, आदि प्रधान हैं। ये इष्टियां राजसंबंधित लोगों के घर में होती हैं। रथावरोहण व द्यूत भी इसमें होता हैं। इसमें कुल मिलाकर ४३९ इष्टियां, दो पशु याग, आठ सोमयाग, सात हर्विहोम होते हैं। इसका समय २१ या ३३ मास का होता है। कुल १११७० इष्टकाओं की आवश्यकता अग्निचयन के लिये होती है।

राजा = यज्ञीय सोमवल्ली का एक नाम। (रामायण १-१४-६)।

रात्रिसत्र = त्रयोदश रात्र से शत रात्र तक के सोमयागों की संज्ञा।

राज्य = शांखायन श्रौतसूत्र में उल्लिखित विविध प्रकार – साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य, माहाराज्य और आधिपत्य। (ऐत. ब्रा. ८-१२-४-५)।

राष्ट्रगोप = पुरोहित जो मंत्र-तंत्र-यज्ञ आदि आधिदैविक प्रयोगों से राष्ट्र का रक्षण करता है।

राष्ट्रभृत होम = सोमयाग के अन्तर्गत महाग्नि के पास एक रथ लाया जाता है जिसके मुख से अंतिम पांच आहुतियों का समर्पण होता है। यह रथ यजमान द्वारा अध्वर्यु को समर्पित होता है। राजसूय के अन्तर्गत एक विधि।

रुद्राध्याय = यजुर्वेद संहिताओं के रुद्रस्तुतिपरक एक अध्याय की संज्ञा।

रुरु = हरिण। अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

रेभी = वैदिक गाथा अर्थात् पद्यसमूह का एक प्रकार। अन्य प्रकार – नाराशंसी, यज्ञगाथा।

रौरव = साम विशेष।

रोहित कूलीय = साम विशेष।

लब = लवा या बटेर। यजुर्वेद में अश्वमेघ की बलियों में उल्लिखित।

लोकम्पृणा = राजसूय यज्ञ के चयन में उपयुक्त विशिष्ट इष्टका (ईंट)। इनकी संख्या दस हजार आठ सौ होती है। इनकी स्थापना अमंत्र होती है। (चयन में उपयुक्त कुल इष्टकाओं की संख्या १११७०)

लोपा = कौवा या श्मशान पक्षी। अश्वमेघ की बलियों में उल्लिखित।

लोपाश = शृगाल या लोमडी। यजुर्वेद में अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

लोमशवक्षणा = देखिये अरुंधती।

लोहिताहि = यजुर्वेद में अश्वमेध की सूची में उल्लिखित। लाल सांप।

लौकिकाग्नि = आत्म-संस्कारों के अतिरिक्त पुत्रादि के संस्कार निमित्त सीमन्तादि कर्म इस अग्नि में संपन्न होते हैं।

वन = लकड़ी से बना सोमरस का प्याला। (ऋ. १-५५-४)

वनधिति = यज्ञवेदी पर स्थापित समिधाओं का संचय।

वन-प = वन का रक्षक। पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

वनीवाहन = राजसूय यज्ञ का एक कर्म।

वप = बोनेवाला। पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

वरुणप्रघास = चातुर्मास्य याग के चार पर्वों में से एक। इस का अनुष्ठान आषाढी पौर्णिमा को होता है। इसके हवियों में वरुण के लिए प्रकृष्ट घास (एक भक्ष्य विशेष) का उपयोग होता है। इसमें यजमान-पत्नी से उसके अन्य प्रियकर के विषय में पृच्छा की जाती थी।

वरुण साम = सामविशेष

वर्ग = ऋग्वेद के आठ अष्टकों के अन्तर्गत अध्यायों का एक लघु खंड। ऋक्संहिता में वर्ग संख्या २००६ है। प्रत्येक वर्ग में सामान्यतः पांच से नौ तक ऋचाएं होती हैं।

वर्चस्या = सोमयाग के चयन की एक इष्टका (ईंट)। (ईंट का नाम मंत्र का प्रतीक है।) (अष्टाध्यायी ४-४-१२५)। इसी प्रकार तेजस्या, रेतस्या आदि इष्टका के नाम होते है।

वर्तिका = बटेर। यजुर्वेद में अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित।

वर्षाहू = वर्षा को बुलाने वाला अर्थात् मेंढक। अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित। (वर्षभू- मेंढक जो वर्षा में उत्पन्न होता है।)

वंशनर्तिन् = बांस पर नाचने वाला। पुरुषमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

वसतीवरी = सोमयज्ञ के एक दिन पहले नदी से लाकर, रात भर रखा हुआ यज्ञोपयोगी जल। (शत. ब्रा. ३-६-१-२६)। सोमवल्ली को निचोड़ते समय रस बढ़ाने के लिए इसका उपयोग होता था। सोमयाग में 'शालामुखीय' नामक अग्नि की पश्चिम दिशा में यह रखा जाता है।

वसोर्धारा होम = उदुंबर काष्ठ की प्रदीर्घ स्रुचा के द्वारा अग्निकुंड में समर्पित अखंडित घृतधारा का हवन।

वंशमंडल = ऋग्वेद में द्वितीय से सप्तम मंडल।

वाचस्तोम = अग्निष्टोम संस्थान्तर्गत एकाह याग। इसमें सभी ऋचाओं एवं सामों का शंसन और स्तवन किया जाता है।

वाजपेय = सप्त सोमसंस्थाओं में से एक यज्ञप्रकार। (वाज – घोड़ों की स्पर्धा)। इस यज्ञ का अधिकार ब्राह्मणों और क्षत्रियों को ही है। यह राजसूय से श्रेष्ठ तथा उसका प्रारंभिक

यज्ञ है। कात्यायन श्रौत सूत्र में बृहस्पतिसव से वाजपेय का अभेद कहा है। इस यज्ञ में रथ की दौड़ आवश्यक है। उसमें विजयी यज्ञकर्ता होता है।

वाजपेय यज्ञ = समय – शरद्ऋतु। इसके पहले और अंत में **बृहस्पति सत्र** होता है। वाजपेय के अनन्तर युग्म शुक्ल पक्षों में ज्योतिष्टोम होता है। इस यज्ञ के विषय में चार पक्ष हैं। सुराग्रह के लिये १७ पात्र, २२ सवनीय पशु, चार-चार घोड़ोंवाले, सोलह रथ, १७ दुंदुभियां, १७ बाण, **''आजिधावन''** (रथों की स्पर्धा), 'स्वर्गारोहण' आदि इस की विशेषताएँ हैं।

वाजप्रसवीय होम = सोमयाग के अन्तर्गत महाग्निचिति में सात प्रकार के धान्यों से हवन।

वाजिन = गौ के गरम दूध में दधि डालने पर होने वाले दो भागों में से घनरूप भाग। यह एक हविर्द्रव्य होता है। (देखिये – आमीक्षा)

वाजिन याग = सोमयाग के अवभृथ स्नान के बाद की एक विधि। (२) वाजि देवता के लिए वैश्वदेव याग का एक विशिष्ट अंगभूत याग। वाजिन (देखिये) एक हविर्द्रव्य है जिसका उपयोग इन विशिष्ट वैश्वदेव पर्वों में होता है।

वाणी = पद्यबद्ध वैदिक मंत्रसमूह। इसी को सूक्त कहते है।

वातहोम = राजसूय यज्ञ के अन्तर्गत एक विधि।

वात्सप्र = साम विशेष।

वात्स प्रोपस्थान = राजसूय यज्ञ का एक कर्म।

वात्स्यशाखा = ऋग्वेद-शाकल शाखा की पांच उपशाखाओं में से एक।

वाधूल = कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा की छह शाखाओं में से एक शाखा।

वामदेव्य = एक साम की संज्ञा। यज्ञ में गार्हपत्य अग्नि से आहवनीय अग्नि निकाला जाने के समय इस का गान होता है।

वाम्र = साम विशेष।

वारवन्तीय = सामविशेष।

वार्त्रघ्न = पूर्णमास याग के आज्यभाग। (देखिये – आज्यभाग)।

वार्धाणस (वार्धीणस) = याजुष संहिताओं में अश्वमेध की बलियों में उल्लिखति एक पशु। (प्रायः गण्डक या खड्ग अर्धात् गेण्डा)

वार्ष = साम विशेष।

वालखिल्य सूक्त = ऋग्वेद के अष्टम मंडल के अन्तर्गत ११ प्रक्षिप्त सूक्त (४९ से ५९)। इन सूक्तों के ऋषियों को भी वालखिल्य कहते है।

वासःपल्पूली = कपड़े धोने वाला। पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

वास्तुमंडल = यज्ञविधि में आलिखित एक मंडल जिसमें देवताओं का आवाहन और पूजन होता है।

वास्तोष्पति = निवास स्थान का अधिपति।

वाहस = अजगर। अश्वमेध की बलियो की सूची में उल्लिखित।

विककर = अश्वमेध की वलियों की सूची में उल्लिखित पक्षी।

विदथ = धर्मसभा (अथर्ववेद १-१३-४)। या यज्ञ समारोह।

विधर्म = साम विशेष।

विधृति कुश = जिन कुशों पर 'प्रस्तर' (कुश मुष्टि) आदि को विशेष रूप से रखा जाता है। विधृतिस्थापन – यज्ञ की एक विधि है।

विप्र = मंत्र और यज्ञ में परम निष्ठा रखने वाले। (ब्रह्मपुराण १८७-५०)।

विप्रुद् होप (विप्रुद्ढोम) = सोमयाग में ऋत्विजों द्वारा परस्पर स्पर्श करते हुए किया जाने वाला विशिष्ट कर्म।

विभिन्दुकीय = पुरोहितों का एक विशिष्ट वर्ग।

विभीतक = वहेडा। इसकी लकड़ी याज्ञिक अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए उपयुक्त होती थी। इसके बीजों से द्यूत के अक्ष बनाये जाते थे।

विमोक्तृ = जोते हुए रथ को मुक्त करने वाला। पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

विराज् = दशाक्षरी एवं चतुष्पाद वैदिक छंद की संज्ञा।

विराट् = एक वैदिक छंद जिस की अक्षरसंख्या निश्चित नहीं होती।

विलम्ब सौपर्ण = साम विशेष।

विवाहसूक्त = ऋग्वेद १०-८५ की संज्ञा। देखिये- सूर्यासूक्त।

विशाखे = २७ नक्षत्रों मैं परिगणित युग्मनक्षत्र। अतः इसका द्विवचनी निर्देश होता है।

विषुवान् दिन = गवामयन सत्र के छह महीनों का पर्वपक्ष समाप्त होने पर पहला दिन। मास में और संवत्सर में इस दिन की गणना नही होती। उसके बाद सत्र के उत्तर पक्ष का प्रारंभ होता है।

विशोविशीय = साम विशेष।

विश्वकर्मण होम = सोमयाग के माध्यंदिन सवन में एक विधि।

विश्वचर्षणी = इन्द्र का एक विशेषण।

विश्वजित् = अग्निष्टोम संस्थ एकाह सोमयाग का एक प्रकार।

विश्वज्योति = एकाह यज्ञ।

विश्वशान्ति महायज्ञ = इसमें शुक्ल यजुर्वेद के ३६ वें अध्याय के मंत्रों से सवा लक्ष आहुतियाँ ९ या १० दिनों में होती हैं।

विश्वसृजाम् अयनम् = सहस्त्र सुत्यावाला एक महासत्र।

विषुवत् = गवामयन नामक सत्र के अन्तर्गत एक एकाह याग।

विष्णुक्रम = विष्णुपाद के समान पृथ्वी पर यज्ञ समाप्त होने पर अपने पैरों को रखना। राजसूय यज्ञ का एक कर्म।

विष्णुयाग = तीन प्रकार – विष्णु, महाविष्णु और अतिविष्णु। अन्य जानकारी रुद्रयाग के समान। इसमें पुरुषसूक्त और विष्णुसहस्र नाम से हवन होता है।

विहव्यसूक्त = ऋग्वेद का एक सूक्त।

विहारभूमि = श्रौतकर्म के लिए निर्धारित एवं संस्कारित भूमि।

वीङ्क = साम विशेष।

वीणावादक = पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

वृधन्वन्त = दर्शयाग के आज्यभाग। (देखिये – आज्यभाग।)

वृषदंश = मार्जार या बिल्ली। अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित।

वेद = मंत्रसंहिता और ब्राह्मण ग्रंथ की सामूहिक संज्ञा। ब्राह्मण ग्रंथों में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों का अन्तर्भाव होता है। चार वेद – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।

वेद = दर्भमुष्टि। तैत्तिरीय ब्राह्मण में इसे प्रजापति की श्मश्रु कहा है। (३-३-९-११)।

वेदमाता = गायत्री मंत्र का अथर्ववेदोक्त एक विशेषण।

वेदाङ्ग = वेद के सहायक छह विशिष्ट शास्त्र – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दस् और ज्योतिष।

वेदि = यज्ञ-विधि के लिये सिद्ध की गई पवित्रभूमि। 'वोदिर्वै देवलोकः' ऐसा शतपथ ब्राह्मण में कहा है। (८-६-३-६)।

वेन = यज्ञ। (निघंटु ३-५)।

वैकर्त = यज्ञ में अध्वर्यु का एक गौण सहायक।

वैखानस = (१) कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के छह शाखा सूत्रग्रंथों में से एक। (२) सामविशेष।

वैतहव्य = सामविशेष।

वैतान = अथर्ववेद के एक श्रौतसूत्र का नाम।

वैतानिक अग्नि = दायकाल में स्थापित होने वाले इस अग्नि में ही श्रौत कर्म होते हैं।

वैदन्वित = साम विशेष।

वैदिक कर्म = (चार प्रकार) – शांत, घोर, पौष्टिक और आभिचारिक।

वैयश्व = साम विशेष।

वैरूप = साम विशेष।

वैश्वदेव और आग्निमारुत = संध्याकालीन होम के होतृद्वारा उच्चारित मंत्र। (शस्त्र का एक प्रकार)।

वैश्वदेव = सप्त पाक यज्ञ संस्थाओं में से दूसरा यज्ञप्रकार। इसमें 'विश्व' अर्थात् सभी देवताओं की पूजा होती है। इसी का दूसरा नाम है 'महायज्ञ'। (देखिये)

वैश्वदेव = चातुर्मास्य याग का एक पर्व। इस का अनुष्ठान फाल्गुनी पौर्णिमा को होता है।

वैश्वमनस = साम विशेष।

वैश्वसृज चयन = काठक चयन का एक प्रकार। इसमें ४२ इष्टकाओं की एक या तीन स्तरों में स्थापना होती है। यह विधि सहस्र, संवत्सर सत्र, रात्रिसत्र इत्यादि में आवश्यक माना है। (सत्याषाढ श्रौतसूत्र २३-३-२८)।

वैश्वानर इष्टि = त्रैलोक्यव्यापी वैश्वानरस्वरूप अग्नि की आराधना। यह अग्नि-चयन में होती है। (शतपथ ब्राह्मण ९-३-१३)। पुत्र जन्म के निमित्त यह होती है।

वैष्टम्भ = साम विशेष।

वैसर्जन होम = सोमयाग में अग्निष्टोमीय पशु का मुख्य अनुष्ठान होने के बाद पात्रासादन और आज्यग्रहण होता है। तत्पश्चात् ब्रह्मा (ऋत्विज) द्वारा सोमराजा का उत्थापन होने पर यह होम होता है।

व्यच्छ (या गोव्यच्छ) = गौओं को पीड़ा देने वाला। पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

व्याधित = रोगपीड़ित। पुरुषमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित – वामन, कुब्ज, खलति (गंजा), अन्ध, बधिर, मूक, पीवन (मोटा), सिध्मल, किलास (कुष्ठी), हर्यक्ष (पीली आंख वाला), पिंगलाक्ष, पीठसर्पी (विकलांग), स्राम (लंगड़ा), जागरण (निद्रानाशपीड़ित), स्वप्न (बहुत सोने वाला), अतिदीर्घ, अतिह्रस्व, अतिकृश, अतिलोमश।

व्याहृति = गायत्री मंत्र जप में प्रयुक्त भूः भुवः, स्वः, महः, ये चार मंत्रवर्ण। भूर्- (भूलोक)। भुवस्- (अन्तरिक्ष लोक)। स्वस्- (द्युलोक) और महस्- (प्रकाश लोक) की द्योतक व्याहृतियाँ है।

व्याहृति होम = आघार और चक्षुषी नाम दो दो आहुतियों के बाद होता है।

व्यूहन = यज्ञ में जुहू और उपभृत नामक पात्रों को पश्चिम में हटाने की क्रिया।

व्रतभक्षण = सोमयाग के निमित्त दीक्षाप्राप्त यजमान को, पहले दिन गौ को एक स्तन के, फिर दो-तीन-चार स्तनों के दोहन से प्राप्त दूध का आधा भाग पीना होता है। बाकी भाग यजमान पत्नी ग्रहण करती है। इसी को **''व्रतप्राशन''** भी कहते हैं।

व्रात्य = संस्कारहीन। यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

व्रात्यसूक्त = अथर्ववेद का एक सूक्त।

व्रात्यस्तोम = एकाह सोमयाग का एक प्रकार।

व्रात्यस्तोम = उपनयन संस्कारहीन पूर्वज होने के कारण यह प्रायश्चित्त स्वरूप गणयाग होता है। इससे व्रात्यों की (संस्कारहीनों की) शुद्धता होती है। अनुष्ठान लौकिक अग्नियों पर ही होता है। **व्रात्यों के चार प्रकार** – हीन (धर्माचार हीन), निंदित (निषिद्ध आचरण वाले), कनिष्ठ (जाति से भ्रष्ट), ज्येष्ठ (प्रजनन शक्तिहीन बूढ़े)।

व्यूहन = यज्ञविधि में जुहू को पूर्व में और उपभृत को पश्चिम में हटाना।

शकपूत = गोमय से पवित्र किया हुआ यज्ञ का स्थान।

शका = याजुष संहिताओं में अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित।

शक्तिसांकृति = एक साम की संज्ञा। यह यज्ञ में गाया जाता है।

शक्वरी = (स्त्री. बहुवचन) ऐसी ऋचाएँ जिन पर शाक्वर साम गाया जाता है। महानाम्नी ऋचाओं पर भी शाक्वर साम गाया जाता है।

शतगाथम् = शुनःशेप आख्यान का विशेषण।

शतरुद्रिय (शतरुद्रीय) = यजुर्वेद का एक भाग जिसमें रुद्र देवता के सैकड़ों उपाधियों का उल्लेख तथा सैकड़ों पक्षों का आराधन है।

शतरुद्रीय होम = सोमयाग के अंतर्गत इस हवन में रुई के पत्ते पर बकरी का दूध डालते हुए रुद्राध्याय का पाठ होता है।

शतर्चिन = ऋग्वेद प्रथम मंडल में विश्वामित्र-पुत्र मधुच्छन्दा ने १०० ऋचाओं की रचना की थी। अतः मधुच्छन्दा को 'शतर्चिः' उपाधि प्राप्त हुई थी। बाद में उस मंडल के सभी ऋषियों को (१०० ऋचाओं की रचना न करने पर भी।) 'छत्रिन्याय' से यह संज्ञा प्राप्त हुई।

शप्तदश = एकाह सोमयाग का एक प्रकार। इसके पांच प्रकार- अपहव्य; ऋतपेय, दूणास, वैश्यस्तोम, और तीव्रसुत्।

शमिता = यज्ञ में अध्वर्यु का एक गौण सहायक। यज्ञीय पशु का हनन करने वाला ऋत्विज्।

शवसस्पति = इन्द्र का एक नाम।

शस्त्र = यज्ञ में स्तोत्रगान समाप्त होने पर होतृ द्वारा गाये जाने वाले स्तुतिमंत्र। (स्तोत्रम् अग्रे शस्त्रात्। आश्व. श्रौ. सू. ९-५०) जिस देवता का स्तोत्र होता है, उसी का शस्त्र कहा जाता है।

शस्त्र के तीन प्रकार = (१) प्रातःकालीन आज्य और प्रउग, (२) मध्याह्नकालीन मारुत्वतीय और निष्केवल्य, (३) संध्याकालीन विश्वेदेव और आग्निमारुत। इनका उच्चारण होतृ नामक ऋत्विक् करता है।

शंकु = साम विशेष।

शंखध्म = शंख बजाने वाला। यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

शंयुवाक = "तच्छंयोरावृणीमहे" इस सुप्रसिद्ध मंत्र की संज्ञा। (इस में शंयु नामक बृहस्पति पुत्र की स्तुति है। शंयु शब्द प्रयोग के कारण यह संज्ञा आई है।

शाक्यानाम् अयनम् = छत्तीस वर्षों का एक सत्र।

शाकल = (अपर नाम – शाकलक, शाकल्य, शाकलेयक)। ऋग्वेद की २१ शाखाओं में से एक प्रमुख शाखा। इसकी पांच उपशाखाएं थी।

शाकल = साम विशेष।

शाक्वरी = एक वैदिक छंद।

शामित्र शाला = यज्ञीय पशु की हत्या करने का स्थान।

शारि = याजुष संहिताओं में अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित एक पक्षी। (प्रायः शारिका)।

शार्कर = सामविशेष

शार्ग = याजुष संहिताओं में अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित एक पक्षी। (बहुधा- वन्य चटक)।

शालामुखीय = एक यज्ञीय अग्नि।

शालीय शाखा = ऋग्वेद-शाकल शाखा की पांच उपशाखाओं में से एक। (संप्रति अनुपलब्ध)

शांखायन = ऋग्वेद की २१ प्रमुख शाखाओं में से एक। संप्रति अनुपलब्ध। इसी नाम की इस शाखा की उपशाखा भी है।

शांबव्य = ऋग्वेद-शांखायन शाखा की ४ उपशाखाओं में से एक। संप्रति अनुपलब्ध।

शांबव्यसूत्र = ऋग्वेद की कौशीतकी शाखा गृह्यसूत्र की संज्ञा। (अपर नाम – कौषीतकी सूत्र।)

शांभव = साम-विशेष।

शिवशक्ति महायज्ञ = प्रातःकाल में रुद्रयाग और मध्याह्न में शक्तियज्ञ होता है। आहुतियों की संख्या १२५०००। रुद्रयज्ञ में शुक्ल यजुर्वेद के पांचवे अध्याय से और शक्तियज्ञ में संपूर्ण दुर्गा से हवन होता है।

शुक = अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित पक्षी। (तोता)।

शुक्र-मंथिप्रचार = सोमयाग में अध्वर्यु द्वारा **शुक्र** नामक ग्रह (पात्र) में और प्रतिप्रस्थाता द्वारा **मंथि** नामक ग्रह में भरे हुए सोमरस का हवन। इस कर्म में चमसाध्वर्यु नामक गौण ऋत्विक् भी चमस में भरे हुए सोम का हवन करते है।

शुक्ल यजुर्वेद = (अपर नाम वाजसनेयी संहिता) याज्ञवल्क्य ऋषि द्वारा सूर्योपासना से प्राप्त मंत्रों की संहिता।

शुद्धाशुद्धीय = साम विशेष।

शुनासीरीय = चातुर्मास्य याग के चार पर्वों में से चौथा पर्व। इसका अनुष्ठान फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा को होता है। (शुन = वायु, और सीर = आदित्य। इन दो देवताओं के लिए शुनासीरीय पर्व होता है।)

शुल्बसूत्र = कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के कल्पसूत्र के प्रश्न नामक ३० भागों में अंतिम (३० वें) प्रश्न की संज्ञा।

शूद्र = याजुष संहिताओं में पुरुष मेघ की बलियों की सूची में उल्लिखित। (शत.ब्रा. १३-६-३-१०)।

शूलगव = सप्त पाक यज्ञ संस्था के अंतर्गत गो-द्रव्य से किया जाने वाला विशेष कर्म। यह एक बार होता है। गोद्रव्य = गो अर्थात् बैल का मांस।

शैलूष = यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित पुरुष। नट या नर्तक। सायण के अनुसार अपनी स्त्री से वेश्या वृत्ति करवाने वाला।

शैशव = साम विशेष।

शैशिरी शाखा = ऋग्वेद शाकल शाखा की पांच उपशाखाओं में से एक।

शौक्त = साम विशेष।

शौनक = अथर्ववेद की २० कांडात्मक विद्यमान शाखा। मंत्रसंख्या ६०००।

शौष्कल = शुष्क मत्स्य बेचने वाला। यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

श्यावयुग्य = रथ के वांए ओर का अश्व। (देखिये दक्षिणा प्रष्टि या दक्षिणायुग्य)।

श्यावाश्व = साम विशेष।

श्येनयाग = इस में यूप तत्वल वृक्ष का, काष्ठ इन्धन विभीदक वृक्ष का होता है। शववाहन के उपयुक्त दो काष्ठ अधिषवण फलक होते हैं और दक्षिणा की गौ काणत्व आदि दोषों से युक्त होती है। ऋत्विज् के वस्त्र और उष्णीष रक्तवर्ण होते हैं।

श्यैत = साम विशेष।

श्रवणा = सप्त पाक यज्ञ संस्थाओं में से एक यज्ञ प्रकार।

श्रद्धासूक्त = ऋग्वेद के १०-१५१ सूक्त की संज्ञा। इसकी रचयित्री श्रद्धा कामायनी नामक ऋषीका थी।

श्रवणाकर्म = सप्त पाक यज्ञ संस्था के अन्तर्गत यह बलिकर्म श्रावण की पौर्णिमा से मार्गशीर्ष पौर्णिमा तक प्रतिदिन सर्पो के लिये किया जाता है।

श्रायन्तीय = साम विशेष।

श्रोत्रिय = वेदाध्ययन से तथा अध्यात्मज्ञान से संपन्न ब्राह्मण।

श्रौत-अग्नि का आधान = वसन्त में ब्राह्मण, ग्रीष्म में राजन्य (अर्थात् क्षत्रिय) और वर्षा में वैश्य द्वारा अमावस्या में होता है। त्रैवर्णिकों को सपत्नीक यह कर्म करने का अधिकार है। वही सप्त हविर्यज्ञ संस्थाओं तथा सोम संस्थाओं का अधिकारी होता है।

श्रौतकक्ष = साम विशेष।

श्रौत यज्ञ = श्रुति (वेद) में प्रतिपादित यज्ञ, जिसमें केवल वेदोक्त मंत्रों का प्रयोग होता है। अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु और सोम ये पांच प्रधान श्रौत यज्ञ हैं।

श्रौताचमन = दर्शपूर्णमासादि श्रौत विधि का एक अंग। इस आचमन में हाथ में पवित्रक अथवा दर्भ आवश्यक है।

श्वेताश्वतर = कृष्ण यजुर्वेद की एक लुप्त शाखा। इस नाम का केवल उपनिषद उपलब्ध है।

षडह = गवामयन सत्र में अभिप्लव, पृष्ठ्य आदि पांच षडहों (छह दिनों का समूह) से तीस दिनों का एक 'सवन मास' होता है।

षडह याग = तीन प्रकार – ऋतुप्रथम, पृष्ठ्यवलम्व, तीसरे का नाम नहीं है।

षडुपसत्क यज्ञ = राजसूय के अन्तर्गत विशिष्ट याग। इसमें प्रतिदिन एक एक चिति होती है।

षोडशी = सप्त सोम संस्थाओं में से एक यज्ञप्रकार। षोडशी नामक १६ साम मंत्रों से समाप्त होने वाला सोमयाग। (सोमयाग की समाप्ति जिस साममंत्र से होती है उसी नाम से उस याग का व्यवहार होता है।)

सक्तुहोम = अवभृथ स्नान से बाद की एक विधि।

सख्य विसर्जन = सोमयाग निमित्त की हुई एकता की प्रतिज्ञा की समाप्ति।

संचाय्य = विशिष्ट सत्ररूप सोमयाग।

सत = यज्ञ का एक पात्र।

सतोबृहती = एक वैदिक छंद।

सत्र = १२ दिनों से एक वर्ष तक जिस यज्ञ में प्रतिदिन सोम का हवन होता है ऐसा दीर्घकालीन यज्ञ।

सत्र = बारह से हजार तक सुत्यावाले जो अनेक सोमयाग है उन्हें सत्र कहते है। ये रात्रिसत्र होते है। कुछ सत्रों के नामं – आदित्यानामयन, अंगिरसामयन, कुण्डपायिनामयन, दृतिवातवतोरयन, सर्पसत्र, महातापश्चित, अग्निसत्र, शाक्यानामयन, सारस्वतसत्र इत्यादि।

सदोमंडप = सोमयाग में महावेदी की प्रश्चिम दिशा में स्थापित मंडप।

सदोविशीय = सामविशेष।

सद्यःक्री = एकाह सोमयाग।

सप्तदश याग = उपहव्य, ऋतपेय, बहुसुवर्ण, वैश्यस्तोम, और तीव्रसूत् इन पांच यागों की संज्ञा।

सप्ताह याग = सात प्रकार – ज्योति, गौ, आयु, अभिजित्, विश्वजित्, सर्वजित् और सर्वस्तोम।

सफ = साम विशेष।

सभ्य = पांचवें यज्ञीय अग्नि का नाम। सभामंडप में आहवनीय अग्नि के सामने के कक्ष में इसका आयतन होता है।

सभाचर = यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित।

समन्त = साम विशेष।

सर्पसत्र = एक संवत्सरसत्र की संज्ञा।

सर्वज्योतिः = यज्ञविशेष।

सर्वतोभद्र = यज्ञविधि में आलिखित एक मंडप जिसमें देवताओं का आवाहन और पूजन होता है।

सर्वपृष्ठ = यज्ञ का एक प्रकार। निषिद्ध प्रदेश में प्रवास करने पर यह यज्ञ प्रायश्चित के लिये कहा गया है। (बौधायन धर्मसूत्र १-१-२९-३०)।

सर्ववेदस् = यज्ञ विशेष, जिसमें यजमान अपनी सारी संपत्ति पुरोहितों को दान में देता था।

सर्वमेध = यह याजुष याग ३४ दिन का होता है। इसमें १०० अग्नियां होती हैं। सत्रह अरत्नि का एक यूप होता है। पुरुषमेध जैसी दक्षिणा होती है। इसके अन्तर्गत अग्निष्टुत्, महाव्रत, वाजपेय, आप्तोर्याम, त्रिणवस्तोम, अतिरात्र, इष्टकापशु, उखासंभरण आदि होते हैं। (देखिये पुरुषमेध)।

सर्वस्वार = आसन्नमरण या मुमूर्षु व्यक्ति द्वारा यह एकाह यज्ञ होता है। यज्ञ में मृत्यु न आने पर प्रायोपवेशन या आहवनीय अग्नि में प्रवेश करके वह अपना जीवन समाप्त करता है।

सवन = (१) सोम को निचोडकर उसका रस निकालना। (२) आहुतियाँ जो दिन में तीन बार होती है। (३) यज्ञ या हविर्विशेष।

सवनमुखभक्षण = सोमयाग के तृतीय सवन में एक कृत्य।

सहरक्षा = हव्यवाहन या कव्यवाहन के समान अग्नि जो असुरों के अन्न का वहन करता है। (सहरक्षा असुराणाम्) शत. २-६-१-३०।

संचाय्य = सोमयाग का एक विशिष्ट सत्ररूप प्रकार। दूसरा

प्रकार है कुण्डपाय्य। (देखिये)।

संजय = साम विशेष।

संज्ञपन = यज्ञीय पशु का मुंह बंद कर श्वास रोक कर उसे मारना।

संपात = सूत्रविशेष की संज्ञा।

संवत्सर रात्र = गवामयन नामक गौवों द्वारा अनुष्ठित होने वाला सत्र। एक संवत्सर में साध्य होने के कारण उसे यह संज्ञा दी जाती है। (वस्तुतः ३८५ दिनों में यह सत्र किया जाता है।)

संशानानि = साम विशेष।

संस्राव होम = सोमयाग के तृतीय सवन में एक कृत्य।

संहिता = साम विशेष।

साद्यस्क्र = सद्यः अर्थात् दीक्षादिवस को ही सोम के क्रय से अभिषव तक कर्म जिनमें होते है उन्हें साद्यस्क्र कहते हैं। अनुक्री,विश्वजिच्छिल्प, श्येन और एकत्रित नामक इसके प्रकार हैं। इसमें सवनीय पशु होते हैं।

साध्यानाम् अयनम् = सौ वर्षों का एक महासत्र।

सान्नाय्य याग = अग्नि का आधान होने पर सोम द्वारा यज्ञ करने वाला इसका अधिकारी होता है। इसमें दूध और दही का उपयोग प्रमुखता से होता है। सांनाय्ययाजी दर्शपूर्णमास के छह याग करता है।

साम = गेय वैदिक मंत्र।

साम के पांच भाग = पंचदश, सप्तदश आदि स्तोम में साम के पांच भाग होते है – प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन।

सामधेनी = ग्यारह ऋचाएँ, जिनका पाठ करते हुह यज्ञीय अग्नि को प्रज्वलित किया जाता है। इन ऋचाओं के पाठ को "सामधेनीवचन" कहते है। यह एक यज्ञ की विधि है।

सारस्वत पाठ = यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता (कृष्ण यजुर्वेद) की एक पाठ-पद्धति। इसमें ७ काण्ड, ३ ब्राह्मण और दो आरण्यक हैं।

सारस्वत सत्र (अथवा यात्सत्र) = इस नाम के तीन सत्र होते हैं। इनकी दीक्षा सरस्वती-समुद्र संगम स्थान पर प्रभासक्षेत्र में होती है। यह सोमयाग का एक प्रकार हैं जो शतरात्र से अधिक काल तक चलता है।

सारस्वत्य इष्टि = अश्वमेध का अश्व जब तक सर्वत्र संचार करता है तब तक यह इष्टि प्रतिदिन त्रिकाल की जाती है।

सावित्र चयन = इसमें रथचक्राकार मंडल में नौ मंडलों की रेखाओं पर कंकर स्थापित करते है। इसी चिति पर अग्नि का प्रणयन होता है। यह काठक चयन का एक प्रकार है।

सावित्री = वैदिक गायत्री मंत्र की संज्ञा।

सावित्र्य इष्टि = अश्वमेध की अंगभूत तीन इष्टियाँ।

सांतपनेष्टि = चातुर्मास्य याग के साकमेध नामक तृतीय पर्व में मध्याह्न में यह इष्टि होती है। इसमें सांतपन मरुत् देवता और चरु द्रव्य होता है।

सांमनस्य सूक्त = अथर्ववेद के एक सूक्त की संज्ञा।

सांवर्त = साम विशेष।

सीचापू = यजुर्वेद में अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित एक पक्षी।

सीदन्तीय = साम विशेष।

सुत्यादिवस = सोम याग का पांचवा दिवस। यही प्रधान दिवस होता है.

सुत्या = सोम का अभिषव करने के क्रिया।

सुनस् = इन्द्र का एक विशेषण।

सुब्रह्मण्य = सोमयाग के १६ ऋत्विजों में से उद्‌गातृगण का चतुर्थ ऋत्विज्।

सुभद्रिका = याजुष संहिताओं में अश्वमेध के संदर्भ में उल्लिखित एक स्त्री। वाजसनेयी संहिता के भाष्यकार महीधर के मतानुसार यह ऐसी स्त्री है जिसके अनेक प्रियकर होते हैं।

सुराकार = मद्य या मदिरा बनाने वाला। यजुर्वेद में पुरुषमेघ की बलियों में उल्लिखित।

सुरूप = साम विशेष।

सुशिप्र = इन्द्र का एक विशेषण।

सूक्त = वेदों के अन्तर्गत विशिष्ट देवता की स्तुति से पूर्ण मंत्रमय ऋचाओं का समूह। ऋग्वेद में १०१७ सूक्त संगृहीत हैं।

सूक्तवाक् = "इदं द्यावा-पृथिवी" इस अनुवाक से प्रतिपाद्य मंत्रविशेष जो यज्ञ में पढ़ा जाता है।

सूत = पुरुषमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित। राजा के आठ वीरों तथा ग्यारह रत्नियों में इसकी गणना होती थी।

सूत्र = यज्ञ संबंधी नियमों का संकलन (बृह. उप. २-४-१०/४-१-६)।

सूर्ययाग = इसमें शुक्ल यजुर्वेद के अन्यान्य अध्यायों के विशिष्ट मंत्रों से १० हजार से १ करोड तक आहुतियां होती है।

सूर्यासूक्त = ऋग्वेद का १०-८५ सूक्त। अपर नाम – विवाह सूक्त।

सूरि = पुरोहित को धन देकर यज्ञ करवाने वाला यजमान।

सृजय = यजुर्वेद में अश्वमेध की बलियों की सूची में उल्लिखित एक प्राणी। (पक्षी, श्वेतसर्प, या काला भैंसा, काली मक्खी- भाष्यकारों के मतानुसार)।

सृमर = याजुष संहिताओं में अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित। (प्रायः गवय अर्थात् वनगाय)।

सेना = ऋग्वेद (१-६६-७) तथा अथर्व (८-८-७) वेद के अनुसार इस का अर्थ अस्त्र है। इस का सामान्य अर्थ प्रसिद्ध है।

सेलग = वाजसनेयी संहिता में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित। (अर्थ – प्रायः डाकू)

सैन्धुक्षित = साम विशेष।

सोम = १५ पत्रों वाली वनस्पति। शुक्ल पक्ष में एक एक दिन एक एक पत्र ऊगता है। पौर्णिमा के बाद अमावस्या तक एक एक पत्र क्रमशः झड़ते जाता है। यह मादक वनस्पति हिमालय, अर्बुद, सह्य, महेंद्र, मलय, श्रीपर्वत, देवगिरि, देवसह,

पारियात्र, विंध्य, देवसुन्दहद, तथा वितस्ता नदी की उत्तर के पर्वतों में उत्पन्न होती है। सुश्रुत ने इसके २४ प्रकार कहे हैं।

सोमक्रय = सोमयाग से लिये कुत्सगोत्री ब्राह्मण या शूद्र से सोमवल्ली को खरीदने की विधि। इस सोमराजा को सुब्रह्मण्य नामक ऋत्विक् शकट में रखकर प्राग्वंश मंडप में लाता है। मंडपद्वार पर सोमराजा को अजापुत्र की भेंट दी जाती है। आतिथ्येष्टि से सत्कार करने पर सोमराजा की स्थापना उदुंबर की आसंदी पर आहवनीय अग्नि के दक्षिण में होती है।

सोम प्रवाक = यज्ञ का संकल्प होने पर, यजमान निमंत्रक के नाते इसकी नियुक्ति करता है। तब वह ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु आदि १६ या १७ ऋत्विजों को यज्ञ के लिए निमंत्रित करता है। सोमयाग के प्रारंभ में आभ्युदयिक कर्म होने पर सबसे पहले इस ऋत्विज् का वरण होता है। सोम प्रवाक ही अन्य ऋत्विजों को एकत्रित लाता है।

सोमयज्ञ संस्था (या सोम संस्था) = अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, पोडशी, वाजपेय, अतिराज, आप्तोर्याम, (कुल ६) (गौ. ध. सू. ८-१८)। इन यज्ञों के नाम गेय सामों की संज्ञाओं के अनुसार रूढ हुए है।

सोमयाग = इसमें सोम खरीद कर उसके रस से होम किया जाता है। सोम के अभाव में पूतिक नामक लता के रस का उपयोग होता है। इसमें सोलह ऋत्विज् होते हैं। संपूर्ण विधि पांच दिनों में पूर्ण होता है। इसमें गोरूप दक्षिणा दी जाती है। इसकी समाप्ति तीन वेदों द्वारा होती है। इसको अग्निष्टोम भी कहा जाता है क्यों कि इसकी समाप्ति साम मंत्र के गान से होती है। इस याग की अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी और अतिरात्र नामक चार संस्थाएँ होती हैं। **सोमयाग के आठ प्रकार** – पवित्र, अभिषेचनीय, दशपेय, केश-वपनीय, व्युष्टिद्विरात्र, क्षत्रस्यधृति, त्रिष्टोम और अग्निष्टोम।

सोमयाजी = सोमयाग करते हुए सोमरस का प्राशन करने वाला।

सोमसाम = साम विशेष।

सौत्र = अथर्ववेद की एक लुप्त शाखा।

सौत्रामणि = सात हविर्यज्ञों में सातवा (अंतिम) यज्ञ। सोमयाग के साथ में अग्निचयन करने पर यह याग किया जाता है। यह एक पशुयाग है जिसके **स्वतंत्र और अंगभूत** नामक दो प्रकार होते है। स्वतंत्र या प्रधान में ब्राह्मण का ही अधिकार होता है और अंगभूत में क्षत्रिय वैश्य भी अधिकारी होते हैं। इसमें अज, मेष, और वृष तीन पशुओं के अवयवों का हवन होता है। कोकिल सौत्रमणि में पांच पशु होते हैं। यह यज्ञ 4 दिनों में संपन्न होता है। इसमें सुरा (मद्य) का भी प्रयोग अवश्य होता है। चरण सौत्रामणि राजसूय में अंगभूत होता है।

सौपर्ण आख्यान = एक वैदिक आख्यान जिसका निरूपण ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लिखित आख्यानविद् (ऐ. ब्रा. ३-२५-१) करते थे।

सौमिक = अग्निष्टोम यज्ञ (जो ज्योतिष्टोम की पांच संस्थाओं में से एक है) की द्वितीय वेदी। (प्रथम वेदी का नाम है ऐष्टिक)। इस वेदी पर प्रधान इष्टियों का अनुष्ठान होता है।

सौपर्ण = साम विशेष।

सौभर = साम विशेष।

सौमिक = साम विशेष।

सौमेध = साम विशेष।

सौश्रवस = साम विशेष।

सौहविष् = साम विशेष।

स्तम्बयजुस् = दर्शपूर्ण मास के प्रारंभ में यजुर्वेद के मंत्रों का पाठ करते हुए काटा गया दर्भ। स्तम्बयजुर्हरण – यज्ञ की एक विधि है।

स्तोत्र = यज्ञ में उद्गाता एवं उसके सहायक ऋत्विजों द्वारा गाए जाने वाले स्तुतिपरक मंत्र। स्तोत्रगान के एक विशेष प्रकार को **स्तोम** कहते हैं।

स्तोत्रीय = यज्ञकाल में एक ऋचात्मक साम तीन ऋचाओं में गाया जाता है। जिन तीन ऋचाओं (तृच्) में उद्गीत होता है उसे स्तोत्रीय कहते हैं। (इसमें पहली ऋचा को ''योनि'' और बाद की दो ऋचाओं को ''उत्तरा'' कहते हैं।)

स्तोम = साम मंत्रों द्वारा की जाने वाली विशेष स्तुति प्रकार के स्तोत्र।

स्तोम = त्रिवृत्, पंचदश, एकविंश, आदि विशेषण स्तोम को तव लगते हैं। जब एक तृच् की आवृत्तियाँ करके उक्त संख्या पूर्ण होती है।

स्तोमायन = चार सोम संस्थाओं (अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी और अतिरात्र) में देवताओं के लिए स्वीकृत चार पशु।

स्नात = अथर्ववेद की एक लुप्त शाखा।

स्मार्तअग्नि (या गृह्यशालाग्नि) = इसकी स्थापना विवाह संस्कार के अनन्तर चतुर्थी होम के बाद या दाय (भाइयों में संपत्ति का विभाजन) के बाद होती है। इसीके अन्य नाम हैं – गृह्य, आवसथ्य, शालाग्नि, और औपासन। इसी में सात पाक यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता है।

स्मार्तयज्ञ = स्मृतिग्रंथों में प्रतिपादित यज्ञ, जिसमें वैदिक, पौराणिक, और तांत्रिक मंत्रों का प्रयोग होता है।

स्वधा = पितरों को समर्पण करते समय स्वाहा के अलावा इस शब्द का प्रयोग होता है। उदा. – पितृभ्यः स्वधा।

स्वयमातृण्णा = राजसूय के चयन में उपयुक्त विशिष्ट इष्टका (ईंट) की संज्ञा। पकते समय अपने आप बने हुए छेदों वाली इष्टका।

स्वरसाम = ''यज्ञायज्ञा (4-8-1) की योनि में उत्पन्न स्वर नाम के चार साम होते हैं, उन्हें यह संज्ञा दी जाती है।

स्रुव = वैकंकत काष्ठ से निर्मित छोटा यज्ञीय चमस। यह स्थाली से आज्य (धृत) निकाल कर बड़े चमस (जुहू) में डालने के काम में आता है।

स्वर्गारोहण = वाजपेय यज्ञ में यजमान और उसकी पत्नी यूप के उपर रखी हुई २१ सीढ़ियों वाली सीढ़ी पर चढ़ते हैं। उस समय उनके पुत्र-पौत्रादि खारी मिट्टी के सत्रह मृतिका पुटों को यजमान की ओर फेंकते हैं। इस विधि की संज्ञा है स्वर्गारोहण।

स्वरु = यूप। यज्ञीय स्तम्भ।

स्वाध्याय = वैदिक अध्ययन।

स्वाहा = यज्ञ कुंड में आहुति का समर्पण इस शब्द के उच्चार के साथ होता हैं। जिस देवता को स्वाहाकार होता है उसके वाचक शब्द का का चतुर्थी विभक्ति में प्रयोग होता है। उदा. इन्द्राय स्वाहा।

स्वाहाकार = यज्ञ या यज्ञ की समाप्ति। (शत. ब्रा. ३-१-३-२७/१-५-३-१३)।

स्विष्टकृत् = जय, अभ्यातान, और राष्ट्रभृत् नाम के होम के पश्चात् इस विधि में प्रधान होम के सभी हविर्द्रव्यों के अंशों से आहुतियां दी जाती है जिनका अन्य आहुतियों से संसर्ग नहीं होना चाहिये। (२) प्रधान याग को अच्छे प्रकार से करने वाला ऋत्विक्। (सुष्ठु इष्टं करोति)।

हलिक्षा या हलीक्ष्ण = यजुर्वेद में अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित।

हविर्द्रव्य = यवागू, तण्डुल, दुग्ध, दधि, घृत आदि। पशुयज्ञों में मेध्य पशु के शरीर के अन्तर्गत विशिष्ट भाग भी हविर्द्रव्य होते हैं।

हविर्धान = (१) घर का वह भाग जिसमें यज्ञीय हविर्द्रव्य रखे जाते थे। (२) दो गाड़ियां जो उत्तर वेदी के पीछे रखी जाती हैं। (३) एक यज्ञ मंडप की संज्ञा। यह महावेदी की उत्तरदिशा में होता है।

हविर्यज्ञ = वैदिक धर्म में मान्यताप्राप्त यज्ञ। इनकी कुलसंख्या सात है। उनके नाम हैं – अग्न्याधेय (या अग्न्याधान), अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि, निरूढपशुबंध और सौत्रामणि। (गौ. ध. सू. ४-४४)।

हविस् = देवताओं के प्रीत्यर्थ यज्ञकुण्ड में समर्पित पदार्थ।

हव्यवाहन = अग्नि, जो देवों के हविर्भाग का वहन करता है।

हंस = यजुर्वेद में अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित।

हंससाचि = यजुर्वेद में अश्वमेध की बलियों में उल्लिखित।

हरिवर्ण = साम विशेष।

हारायण = साम विशेष।

हाविष्कृत = साम विशेष।

हस्तिप = याजुष संहिताओं में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित। हाथी पालने वाला।

हारियोजन याग = सोमयाग के तृतीय सवन में एक कृत्य।

हिरण्यकार = याजुष संहिताओं में पुरुषमेध की बलियों में उल्लिखित। स्वर्णकार।

हिरण्यकेशी = कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय शाखा की छह शाखाओं में से एक शाखा।

हिरण्मय पुरुष = अग्निचयन समय स्थापित यज्ञपुरुष की सुवर्णमयी मूर्ति।

हिरण्यवर्णा = देखिये अरुंधती।

होता = सोमयाग के १७ ऋत्विजों में से होतृगण का प्रथम ऋत्विज्। यज्ञ में ऋग्वेद के मंत्रों से देवताओं का आवाहन करने वाला ऋत्विक्। इसके तीन सहायक – मैत्रावरुण, अच्छावाक, और ग्रावस्तुत्।

होत्रक = यज्ञ के होता का सहायक (मुख्य पुरोहितों के अतिरिक्त) ऋत्विक्।

* * *

वैदिक कर्मकाण्ड की परिभाषा

(वर्ग १ अ) परिशिष्ट

अग्नि (तीन भेद) = पृथ्वीस्थ को **पवमान,** अन्तरिक्षस्थ को **पावक** और द्युलोकस्थ को **शुचि** कहते हैं।

अतिच्छन्द = २४ से ४८ अक्षरों के वैदिक छन्द।

अथर्ववेद के ९ भेद = पैप्पल, दान्त, पदान्त, स्तौत, औत, व्रह्मदायश, शौनकी, वेददर्शी और चरणविध।

अध्वर्युगण = सोमयाग के ४ ऋत्विग् गणों में से प्रथम गण। इस में अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा और उन्नेता नामक चार यजुर्वेदी ऋत्विज होते हैं।

अग्निष्टोम संस्था = अग्निष्टोम संज्ञक साम से 'संस्था' – अर्थात् समात्पि होने वाला यज्ञ।

अग्निष्टोम साम = जिस साम द्वारा अग्निष्टोम संस्था की समाप्ति होती है वह अग्निष्टोम स्तोत्र होता है।

अग्निसत्र = सहस्र सुत्या वाला एक सत्र।

अचिर निर्मथितः (अग्निः) = यज्ञ विधि के चयन काल में निर्मथन करते हुए उखा (पतीलि, डेगची) में तत्काल ग्रहण किया हुआ अग्नि। यज्ञ व्यतिरिक्त लौकिक व्यवहार के निमित्त तत्काल ग्रहण किये हुए अग्नि को यह विशेषण नहीं लगता। (जैमिनीय न्यायमाला – माधवाचार्य १-४-१०)

अतिरुद्रयाग = ९ या ११ दिनों में होता है। इसमें ६१ या ७१ विद्वान होते है और २४१०४४१ आहुतियाँ दी जाती है।

अदिति इष्टि = चातुर्मास्य याग के साकमेध नामक पर्व में यह होती हैं। इसके देवता अदिति और द्रव्य चरु होता है।

अध्यूहनम् = भस्म या कोयले से यज्ञीय अग्नि को आच्छादित करना (जैमीनीय न्यायमाला १०-१-११)।

अध्वर्यु = यज्ञ में यजुर्वेद-मंत्रों के द्वारा होम आदि अनुष्ठान करने वाला ऋत्विक्। सोमयाग में अध्वर्युगण के चार ऋत्विजों में से प्रथम। (सोमयाग में कुल १६ ऋत्विज होते हैं।)

अनीकवती इष्टि = चातुर्मास्य याग के साकमेध नामक तृतीय पर्व के प्रारंभ में प्रातःकाल यह अनुष्ठान होता है।

अभिप्लव = गवामयन नामक संवत्सर सत्र के अन्तर्गत एक अहीन याग। अन्य याग है – **पृष्ठ्य और द्वादशाह।**

अभिषव = सोम का रस निचोड़ना। तीन प्रकार – महाभिषव – चार ऋत्विजों द्वारा किया जाता है, क्षुल्लकभिषव – एक ऋत्विज के द्वारा होता है और शुष्काभिषव।

अभिषेचनीय = राजसूय के अन्तर्गत एक सोमयाग।

अर्धिन् = गण के मुख्य ऋत्विक् की दक्षिणा से आधी दक्षिणा का अधिकारी। उदा. अध्वर्यु गण का प्रतिप्रस्थाता या उद्‌गातृगण का प्रस्तोता।

अनीकवान् = यज्ञीय अग्नि की एक संज्ञा।

अनुपदसूत्र = चतुर्थ सामसूत्र की संज्ञा।

अनुयाज = यज्ञ में प्रधान आहुतियाँ देने के बाद; बर्हि, नराशंस और स्विष्टकृत् निमित्त आहुति देना।

अनुवादक = यज्ञविधि में यजमान जब प्रायश्चित्त ग्रहण करता है तब उसके पातकों का उच्चारण करने वाला ऋत्विक्।

अनूबंध्या = सोमयाग में उदयनीया इष्टि के बाद, मित्रावरुण को अर्पण की जाने वाली गाय जो वंध्या होती है।

आघवनीय = यज्ञीय सोमरस से भरा हुआ कलश।

आंगिरसी = अथर्ववेद संहिता की अपरसंज्ञा।

आपस्तम्बी = तैत्तिरीय संहिता की खांडिकेय शाखा के पांच भेदों में से एक

आमिक्षा = उष्ण दूध में दही का अंश डालने पर फटे हुए दूध का घन अंश। उसके जलांश को 'वाणिन' कहते हैं।

आमिक्षा याग =चातुर्मास्य याग के अंगभूत वैश्वदेव पर्व का विशिष्ट प्रकार जिस में 'अमिक्षा' – फटे दूध का द्रवरूप भाग हविर्द्रव्य होता है।

आवटिक = वेदों की वाजसनेयी संहिता के १७ भेदों में से एक।

आश्वयुजी = गौतम धर्मसूत्र में कथित ४८ संस्कारों में से एक। आश्विनी पौर्णिमा को रुद्र (या पशुपति) देवता के प्रीत्यर्थ स्थालीपाक (भात की दो आहुतियाँ समर्पण करना)।

आसुरायणीया = सामवेद की एक शाखा।

आहुति = यज्ञ विधि में किसी देवता के प्रीत्यर्थ हवनकुण्ड में समर्पित तंडुल, घृत, समिधा आदि पवित्र पदार्थ।

आह्वरक = यजुर्वेद के १२ प्रमुख भेदों में से एक।

इच्छासूक्त = ऋग्वेद ९-११२ क्रमांक के सूक्त की संज्ञा।

इष्टि = पशु या सोम के अतिरिक्त हविर्द्रव्य से किया जाने वाला यज्ञ।

उक्थ्य = सप्त सोम संस्थाओं में से एक यज्ञ प्रकार। उक्थ्य नामक १५ साममंत्र के गान से समाप्त होने वाला सोम यज्ञ (सोमयाग की समाप्ति जिस साममंत्र से होती है उसी नाम से उस याग का व्यवहार होता है।)

उद्‌गातृगण = सोमयाग के चार ऋत्विग् गणों में से चतुर्थ गण। इस में उद्‌गाता प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य नामक चार सामवेदी ऋत्विज् होते हैं।

उपरव = ज्योतिष्टोम यज्ञ के हविर्धानमण्डप में सोमाभिषव करने के लिए स्थापित दो फलकों के नीचे चार दिशाओं में निर्मित चार पृथक् गर्त जो अंदर से मिले हुए होते हैं। वे पास में ही होते हैं।

उपवक्ता = देखिये प्रशास्ता। पशु याग में होता का सहायक।

उपसद् इष्टि = ज्योतिष्टोम के अंगभूत एक अनुष्ठान। सब मिलाकर छह उपसद किये जाते हैं।

उपसर्जनी = यज्ञीय पिष्ट को छानने के निमत्त गरम किया गया जल।

उपांग (वेदों के) = पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र।

ऋनीष = रस निचोडने पर रहे हुए सोम के पर्व।

ऋत्विक् = यज्ञ के लिए निमंत्रित यज्ञतंत्र का ज्ञाता वैदिक पंडित। चार प्रकार – होता, अध्वर्यु उद्गाता और ब्रह्मा।

ऋत्विगपोहनीय = एकाह सोमयाग का एक प्रकार। इस के तीन प्रकार – सर्वस्तोम, छान्दोमिक और वाचस्तोम।

एकाष्टक = पूर्णिमा के बाद आठवां दिन। माघ मास की एकाष्टका तिथि पुराने वर्ष के अन्त या नए वर्ष के प्रारंभ की तिथि मानी जाती है।

एकाहयाग = सामवेद विहित सोमयाग। कात्यायन श्रौतसूत्र में इनकी संख्या ७७ बताई गई है। ऋत्विज् लाल रंग के वस्त्र और उष्णीष (पगड़ी) धारण करते हैं। दक्षिणा की गौ काणत्व आदि दोषों से युक्त होती है और दान करते समय उसे कांटे से चुभाया जाता है।

ऐष्टिक वेदी = अग्निष्टोम याग की एक वेदी जिसमें आनुषंगिक इष्टियों का अनुष्टान किया जाता है।

ओदन सव = एक विशिष्ट यज्ञ। इसमें वैश्य को दक्षिणारूप में हल-समर्पण होता है।

औखेय = तैतिरीय संहिता के दो प्रमुख भेदों मे से एक। अन्य भेद - खांडिकेय।

औत = अथर्ववेद के ९ भेदों में से एक

औद्ग्रभण होम = सोमयाग का अंगभूत एक अनुष्ठान।

औधेयी = तैतिरीय संहिता की खंडिकेय शाखा के पांच भेदों में से एक।

कठ = यजुर्वेद के १२ प्रमुख भेदों में से एक।

कपिष्ठलकठ = यजुर्वेद के १२ प्रमुख भेदों में से एक।

कल्प (पांच प्रकार) = नक्षत्रकल्प विधानकल्प, विधिविधानकल्प, संहिताकल्प और शांतिकल्प। इन पांच कल्पों के अनुसार अथर्ववेद का अध्ययन होता है।

कापाल = वाजसनेयी संहिता के १७ भेदों में से एक।

कालेयसाम = सामवेद का एक गान सूक्त। इसकी गणना ऋक्संहिता के समान दृष्ट वैदिक साहित्य में होती है।

कुन्तापसूक्त = अथर्ववेद की शौनक संहिता में २० वें कांड के अन्तर्गत १२७ वें सूक्त की संज्ञा। कुन्ताप शब्द का अर्थ = 'कुं पृथ्वीं पार्थिव विकारान् पापतापादीन् तापयन्ति दहन्ति इति'' – अर्थात् पापताप आदि पृथ्वी संबंधी दोषों का दहन करने वाला।

कूटसूक्त = (१) ऋग्वेद १,१६४ क्रमांक के सूक्त की संज्ञा।
(२) ऋग्वेद के आठवे मंडल का २९ वां सूक्त। इसमें मन्त्रों के देवताओं का निर्देश कूट शब्दों में किया है। सूक्त का विषय है विश्वेदेवों की स्तुति।

कृष्ण यजुर्वेद की प्रमुख शाखाएँ = चरक, कठ, प्राच्य कठ, कपिष्टल कठ, चारायणीय, वारायणीय, श्वेताश्वतर, औपमन्यव, मैत्रायणीय मानव, वराह, दुंदुभ, छागलेय, हरिद्रवीय, श्यायायन, श्याम, तैत्तिरीय, औखेय, खांडिकेय, आपस्तम्ब, भरद्वाज, हिरण्यकेशी, बौधायन, सत्याषाढ, आत्रेय, आलंबी, पलंग, कमल, तंडी, कलाप (या कलापी), तुंबरु, वैखानस, वाघुल, आग्निवेश्य, कौण्डिन्य, हारीत

कृष्ण यजुर्वेद संप्रति उपलब्ध चार शाखाएँ = तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ और कपिष्ठल

कृष्णविषाण = मृगशृंग का एक यज्ञीय उपकरण, सोमयाग में यजमान इसीसे खुजलाहट मिटाता है।

कौकिली = सौत्रामणि याग का एक प्रकार। निर्वासित राजा या ब्राह्मण इसका यजमान होता है।

कौथुम (या कौथुमी) = सामवेद की विद्यमान तीन शाखाओं में से एक। अन्य दो – राणायनीय और जैमिनि) इसका प्रचार गुर्जर देश में अधिक है।

क्रमजटा = ऋग्वेद के आठ स्थानों (प्रकारों) में से सक्षम स्थान।

क्रमदण्ड = ऋग्वेद के आठ स्थानों (प्रकारों) में से अष्टम अर्थात् अंतिम स्थान।

क्रमपद = ऋग्वेद के आठ स्थानों में से छठवां स्थान।

क्रमपार = ऋग्वेद के आठ स्थानो (प्रकारों) में से पंचमस्थान।

खल्व = सामवेद की राणायनीय शाखा के नौ भेदों में से एक।

खांडिकेय = तैत्तिरीय संहिता के दो प्रमुख भेदों में से एक़। इसके पांच प्रकार – आपस्तंबी, सत्याषाठी, बौधायनी, हिरण्यकेशी और औधेयी (अन्यप्रकार औखेय)

खिल = वाजसनेयी संहिता (शुक्ल यजुर्वेद) के अन्तर्गत २६ से ३५ तक अध्यायसमूह की संज्ञा।

गलन्तपद = ऋग्वेद संहिता के पद पाठ में पुनरुक्त पदों का पाठ नहीं होता। ऐसे वर्जित पदों की संज्ञा।

गांधर्ववेद = सामवेद का यह उपवेद माना जाता है। (इस नाम का कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है।

गोसूक्त = ऋग्वेद के दशम मंडल में १९ वाँ सूक्त (मथित यामायन तथा भृगु और च्यावन भी इस सूक्त के द्रष्टा माने जाते हैं।

ग्रह = होतृमंत्र का उत्तरार्ध (देखिये होतृमंत्र)। आहुति का समर्पण ग्रह के उच्चारण के साथ होता है। होतृमंत्र का जप करते समय 'ग्रह' का उच्चारण नहीं करते।

घर्म = उबलते घी में मिलाया गया अजा का दूध। इसीको वाजसनेयी संहिता में संभार कहा है। यही **यज्ञशिर** कहा गया है।

चमस = यज्ञ के लिए सोमरस रखने का एक विशिष्टपात्र। यह औदुंबर, पीपल, बड़ आदि पवित्र वृक्षों के काष्ठ से बनाया जाता था।

चमू = सोमवल्ली से रस निकालने का एक पाषाणनिर्मित पात्र।

चरक = यजुर्वेद के १२ प्रमुख भेदों में से एक।

चरक = (१) यजुर्वेद की अति प्राचीन शाखाओं की संज्ञा।
(२) कृष्ण यजुर्वेदी ब्राह्मणों में चरकों की गणना होती है।
(३) अध्ययन के लिए यत्र तत्र संचार करने वाले छात्र।
(४) वैशम्पायन के नौ शिष्य.

चरण = छन्दोबद्ध रचना की एक पंक्ति। इसीको 'पाद' भी कहते हैं। समचरण विषमचरण, अर्धसम, इत्यादि छंदों के प्रकार, चरणों की संख्या के अनुसार होते हैं। प्रायः श्लोक में चार चरण होते हैं। त्रिपाद गायत्री तथा त्रिपाद अनुष्टुभ तीन चरणों के छंद हैं।

चरणविद्य = अथर्ववेद के ९ भेदों में से एक।

चरु = देवताओं का भक्ष्य। यह चावल, यव, नीवार, जैसे पदार्थ, दूध, घी, या बकरी के दूध में पकाकर बनाया जाता है। यज्ञ में ऋत्विक् चरु पकाने का कार्य करता है।

चर्चक = ऋग्वेद के आठ स्थानों (प्रकारों) में से तृतीय स्थान।

चर्चा = तालु और ओष्ठ की सहायता से दूसरें को श्रवण योग्य ऋग्वेद का अध्ययन।

चर्चा = ऋग्वेद के आठ स्थानों (अर्थात् प्रकारों) में से प्रथम स्थान

चषाल = यज्ञीय यूप पर स्थापित एक काष्ठमय आच्छादन। चषाल आटे से भी बनाया जाता है। (शतपथ ब्राह्मण = ५-२-१-६)

चात्वाल = यज्ञ के निरुपयोगी पदार्थों कों फेंकने के लिये यज्ञमण्डप में निर्मित गढ्ढा।

चिति = ईटों के पांच स्तर रखकर की गयी विशिष्ट रचना जिस पर यज्ञ की अग्नि स्थापना, पशुओं के अवयवों का हवन आदि सोमयाग की विधियां होती हैं। चिति के अनेक प्रकारों में से केवल श्येन चिति का ही प्रचार है।

चित्रेष्टि = अग्नि, सोम, त्वष्टा, सरस्वान्, सरस्वती, सिनीवाली, और इन्द्र इन सात वैदिक देवताओं के प्रीत्यर्थ एक यज्ञविधि।

चैत्रीयाग = सात पाक यज्ञों में एक।

छन्दस् = वेद के छह अंगो में से पांचवा अंग। 'यदक्षर – परिमाणं तच्छन्दः' इस लक्षण के अनुसार वेदमंत्रों के विशिष्ट अक्षरमाण को छंदस् कहा जाता है। वेदज्ञान के लिए मंत्रों के द्रष्टा ऋषियों और देवताओं के ज्ञान के साथ छंदोज्ञान भी अत्यावश्यक माना है। सात प्रमुख वैदिक छन्द = गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुभ्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुभ् और जगती।

छंदोग = सामवेद की अपरसंज्ञा।

जटापाठ = वेदमंत्रों के पाठ की अष्ट विकृतियों में से एक।

जातवेदस-कल्प = ऋग्वेद के (१-९९) सूक्त की संज्ञा। यह सूक्त संकटहारक और कल्याणकारक माना जाता है।

जाबाल = बाजसनेयी संहिता के १७ भेदों में से एक

जैमिनीय = सामवेद की विद्यमान ३ शाखाओं में से एक। अन्य दो – कौमुथी और राणायनीय द्रविड़ ब्राह्मणों में इसका प्रचार है।

ज्येष्ठ सामिक व्रत = एक वैदिक व्रत। विशिष्ट वेदभाग का अध्ययन करने का अधिकार प्राप्त करने के लिये वैदिक छात्र इस व्रत का पालन करते थे।

ज्योतिष्टोम = त्रिवृत् पंचदश, सप्तदश, और एकविंश, इन चार स्तोमों को ''ज्योतिस्'' और ऋचाओं की आवृत्ति से संख्यावृद्धि करने को 'स्तोम' कहा है। सोमयाग को 'ज्योतिष्टोम' कहते हैं।

ताण्ड्य ब्राह्मण = सामवेद का एक ब्राह्मण। अपर संज्ञा-पंचविंश ब्राह्मण तथा महाब्राह्मण।

तामस यज्ञ = विधिहीन, अन्नदान विरहित, मन्त्रहीन, दक्षिणारहित और श्रद्धाविरहित यज्ञ (गीता १७-१३)

तुंबरु शाखा = कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा। इसको केवल व्याकरण ही उपलब्ध है।

त्रिपदागायत्री = तीन अनुष्टुभ् चरणों का वैदिक छन्द।

त्रिसुपर्ण = (१) महानारायणीयोपनिषद् के विशिष्ट मंत्रों की संज्ञा। (२) ऋग्वेद के दशम मंडल में ११४ वें सूक्त के ३४५ क्रमांक के मंत्रों की संज्ञा। वैदिक ब्राह्मणों के भोजनारंभ के समय त्रिसुपर्णमंत्रों का पाठ करने की प्रथा है।

त्रैधातवीय इष्टि = दर्श-पूर्णमास इष्टि के समान एक यज्ञविधि। इसमें तीन पुरोडाशों की एक हवि मानी जाती है।

दण्डपाठ = वेद-पाठ की आठ विकृतियों (अर्थात् पद्धतियों में से एक।

दधिग्रहपात्र = उदुंबर की लकड़ी से बनाया गया एक चतुरस्र पात्र। सोमयाग में दही (या सोम तथा आज्य) भरने के लिए इसका उपयोग होता है।

दाक्षविधि = यजमान की वैदिक कर्मों में कुशलता बढाने के लिए पौर्णिमा अमावस्या आदि तिथियों पर की जाने वाली चार या अधिक यज्ञविधियां

दाक्षायण यज्ञ = फाल्गुन पौर्णिमा से १५ वर्षो तक दर्श-पौर्णिमास इष्टि के साथ किया जाने वाला यज्ञ। यजमान की कर्मकुशलता बढ़ाना इसका प्रयोजन होने से इसे दाक्षविधि कहते हैं।

दान्त = अथर्ववेद के ९ भेदों में से एक।

दुर्गायज्ञ = दुर्गासप्तशती एवं दुर्गासहस्र नामावली के द्वारा ९ दिनों तक आहुतियां होती है। यह एक स्मार्त यज्ञ है।

देवपत्नी = विशिष्ट यज्ञीय मंत्रों की संज्ञा।

देवयज्ञ = गृहस्थधर्म के पंचयज्ञों में से एक। दैनिक वैश्वदेव विधि की अपर संज्ञा।

दोग्ध्र = महावीर पात्र के समान एक मृण्मय यज्ञीय पात्र। इसका आकार स्रुचा के समान किंतु दण्डहीन होता है।

द्यूतकर सूक्त = ऋग्वेद १०-३४ क्रमांकों के सूक्तों की संज्ञा।

द्रोणकलश = यज्ञीय वृक्ष के काष्ठ से निर्मित नौकाकार या वर्तुलाकार यज्ञ पात्र। द्रोण कलश में भरे हुए सोमरस को **शुक्र** कहते हैं।

द्वादशाह याग = सोमयाग का एक प्रकार। इसमें १२ सुत्याह (सोम का सवन और हवन करने के दिन) होते हैं। इसमें दिन १ में अतिरात्र; २-अग्निष्टोम, ३ से १० वें दिन में उक्थ्य, ११-अतिरात्र, १२ वें दिन अग्निष्टोम याग होता है।

धर्म = जैमिनि के मतानुसार यज्ञात्मक कर्म।

धाय्या = सामधेनी नामक ११ ऋचाओं में से ५ से १० क्रमांकों की ऋचाओं की संज्ञा।

ध्रुवस्थाली = यज्ञ के प्रातःसवन में ध्रुव नामक ग्रह से भरी हुई स्थाली।

ध्रुवाश्वकल्प = मानव गृह्यसूत्र में कथित सप्तपाकयज्ञों में अन्तर्भूत एक यज्ञविधि। आश्वयुजी नामक यज्ञ विधि के समान प्रस्तुत विधि उत्तम अश्वों की प्राप्ति के हेतु यह विधि होती थी। अश्वों की अभिवृद्धि के लिए नीराजना नामक एक विधि होती थी।

नक्षत्र कल्प = अथर्ववेद के अध्ययन के पांच कल्पों में से एक।

नक्षत्रेष्टि = (अपरसंज्ञा नक्षत्र सत्र या ज्योतिषाम् अयनम्) यजमान के जन्मनक्षत्र पर या वैशाखी अमावस्या के दिन इस सत्र का प्रारंभ होता है। (वैशाखी अमावस्या को चन्द्र प्रायः कृत्तिका नक्षत्र पर होता है।) इस में कुल ३७ यज्ञ होते है। प्रत्येक नक्षत्र के देवता के प्रीत्यर्थ प्रतिदिन यथाक्रम ये इष्टियाँ होती हैं।

नमक-चमक = देखिये रुद्राध्याय। नमक = शतरुद्रीय। चमक = वसोर्धारानुवाक

नाराशंसी = नायकों की प्रशंसा में कही गई वैदिक काव्यात्मक गाथाएँ।

नासदीय सूक्त = ऋग्वेद दशम मण्डल के अन्तर्गत १०-१२९ वें सूक्त की संज्ञा। इसका प्रारंभ 'नासदासीत्' शब्द से होने के कारण यह संज्ञा प्रचलित हुई। सृष्टि की उत्पत्ति का विचार इस सूक्त में सर्व प्रथम हुआ है।

निगद = (१) कृष्ण यजुर्वेद की अपर संज्ञा। (२) यज्ञविधि में यजुर्वेदीय 'होता' नामक ऋत्विक् द्वारा उच्चस्वर में उच्चारित मंत्रसमूह। (३) यजुर्वेद का गद्यमय भाग जिसका उच्चारण उच्च स्वर में होता है। विशिष्ट निगदों को 'सुब्रह्मण्या' कहते हैं।

निदानसूत्र = सामवेद के एक सूत्र की संज्ञा। इसमें सामगान के छंदों का विचार हुआ है। सायणाचार्य के मतानुसार पतंजलि इसके रचयिता हैं।

निविद = देवता के वैशिष्ट्यों का वर्णन करने वाले गद्यात्मक विशेषणों का समूह। यज्ञ विधि में होता निविदाओं का उच्चारण करता है। यह निगद का ही एक प्रकार है।

निविद्धानीय सूक्त = यज्ञ में विशिष्ट सूक्तों के पाठ में निविदाओं का समावेश होता है। तब उस सूक्त को यह संज्ञा प्राप्त होती है।

निरूढपशु याग = आहिताग्नि द्वारा इन्द्राग्नी देवता के प्रीत्यर्थ किया जाने वाला एक पशुयाग। यह याग छह महीनों के अंतर से करने का संकेत है। इसमें अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता, आग्नीध्र, मैत्रावरुण और प्रतिप्रस्थाता नामक छह ऋत्विक् पौरोहित्य करते हैं।

निर्वाण = यज्ञीय देवता के लिए विशिष्ट प्रमाण में हविर्द्रव्य लेना। प्रत्येक देवता के लिए मंत्रोचार सहित चार मुट्ठी निवाप किया जाता है।

नैर्ऋत्य याग = चतुर्दशीयुक्त पौर्णिमा को निर्ऋति तथा अनुमति नामक तामसी देवताओं के प्रीत्यर्थ याग।

पक्षहोम = आपत्काल में प्रतिपदा से चतुर्दशी तक नियतकाल से पूर्व किये जाने वाले होम।

पंचजन = (१) देव, मनुष्य, गंधर्व, सर्प और पितर (ऐतरेय ब्राह्मण – ३-११)। (२) गंधर्व, अप्सरा, देव, असुर, राक्षस, (सायण-अथर्ववेदभाष्य ४-२३-१, (३) गंधर्व, पितर, देव, असुर, राक्षस,(यास्काचार्य)

पंचमवेद = इतिहास पुराण तथा महाभारत की सम्मान उपाधिरूप संज्ञा।

पंचम वेद = इतिहास का प्रशंसापर विशेषण (छांदोग्य उपनिषद)

पंचमहायज्ञ = ब्रह्मयज्ञ (अध्यापन), पितृयज्ञ (तर्पण), देवयज्ञ (वैश्वदेव), भूतयज्ञ (बलिप्रदान) और मनुष्ययज्ञ (अतिथि सत्कार)। इन्हीकी क्रमशः अहुत, हुत, प्रहुत, ब्राह्महुत और प्रशित संज्ञा है।

पंचवेद = सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद, पुराणवेद। (गोपथ ब्राह्मण १-१-१०)

पंचशारदीय याग = पांच शरद ऋतुओं में यह याग होता है। इस में सत्रह सांड और गोवत्सरिया, मरुत देवता को समर्पण होते है।

पंचसूक्त = पुरुषसूक्त, श्रीसूक्त, पर्जन्यसूक्त, सूर्यसूक्त और देवीसूक्त।

पंचाग्नि = दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य । इन्हें **श्रौताग्नि** कहते हैं।

पंचौदन = ओदन (भात) के पांच प्रकार – क्षीरौदन, दध्योदन, मृद्गौदन, तिलोदन और घृतौदन।

पत्नीसंयाज = दर्शपूर्ण याग के अन्तर्गत एक विधि। इसमें देवों के साथ उनकी पत्नियों को भी हविर्भाग दिया जाता है।

पदपाठ = वेदों के संहितापाठ का पदविभाग। वेदमंत्रोक्त शब्दों के स्वरज्ञान में इसकी आवश्यकता मानी जाती है।

पद्धरणी = (पद् + हरणी) = एक यज्ञीय पात्र जो यज्ञ में सोमक्रय के समय चलाई गई गाय के सप्तम पद स्थान पर समर्पित घृत से भीगी हुई मिट्टी रखने के काम में आता था।

पदान्त = अथर्ववेद के नौ भेदों में से एक।

पन्नेजनी स्थली = सोमयाग के प्रातःसेवन के प्रारंभ में यजमानपत्नी जिसमें पानी भर कर लाती है उस घट की संज्ञा।

परिप्लु पात्र = दण्डहीन स्रुचा के समान एक यज्ञीय पात्र, जिसका उपयोग चमस में सोमरस भरने के लिए होता है।

परिहस्त = पुत्रप्राप्ति के लिए हाथ में मणि बांधने वाला। (अथर्ववेद- ६-८१-१)

पवमान ग्रह = देखिये पूतभृत।

पवमानेष्टि = पवमान अग्नि, पावक अग्नि और शुचि अग्नि,

इन तीन देवताओं के प्रीत्यर्थ होने वाले यज्ञ की संज्ञा।

पवित्रेष्टि = दस देवताओं के प्रीत्यर्थ आत्मशुद्धि की अपेक्षा से प्रधानयाग के साथ कुछ उपहोम करने की विधि।

पशुगायत्री = यज्ञीय पशु की हत्या के समय उसके कान में कहा जाने वाला मंत्र – "पशुपाशाय विद्महे। शिरश्छेदाय धीमहि। तन्नः पशुः प्रचोदयात्।"

पाकयज्ञ (या पाकसंस्था) = लौकिक विधि। (लौकिकानां पाकयज्ञशब्द :– आपस्तंब गृह्यसूत्र २-९) पाकयज्ञों की संख्या अनिश्चित है। उनमें मुख्य दो प्रकार – अग्निसहित और अग्नि विरहित होनी वाली विधियां। साधारणतया इसके सात प्रकार माने जाते हैं। वैखानस गृह्यसूत्र में, स्थालीपाक, अष्टका, अमाश्राद्ध, औपासन होम, श्रावणी, आग्रहायणी और चैत्री इन सात पाकयज्ञों का निर्देश किया है। (इनके अतिरिक्त सात हविर्यज्ञ और सात सोमयज्ञ होते हैं, जिन्हें हविःसंस्था और सोमसंस्था कहा जाता है।

पाकयज्ञ = (चार प्रकार) = वैश्वदेव होम, बलिगर्भ, नित्यश्राद्ध और अतिथि भोजन।

पाथिकृतीष्टि = दर्शपूर्णमासादि विहित नित्यकर्म का पालन न होने पर प्रायश्चित्तरूप यज्ञ। यह नैमित्तिक कर्म है।

पाद = देखिये चरण (छन्दशास्त्र)

पार्वण = (या स्थालीपाक) = गौतम धर्मसूत्र में कथित ४८ संस्कारों में से एक। पौर्णिमा और अमावस्या को व्रतस्थ रहकर दूसरे दिन भात की दो आहुतियाँ देना।

पारायण = संहिता का अखंडित पठन। दो प्रकार – प्रकृतिरूप और विकृतिरूप।

पाराशर्य = वेदों की वाजसनेयी शाखा के १७ भेदों में से एक।

पारिप्लव = यज्ञ समारोह में गाये जाने वाले राजस्तुतिपर आख्यानों की संज्ञा।

पारिप्लवाख्यान = अश्वमेध के सत्रकाल में सूतद्वारा यजमान राजा को प्रतिदिन एक वैदिक राजा का आख्यान सुनाया जाता है। दस आख्यानों का सत्र समाप्त होने पर उसी क्रम से एक वर्ष की अवधि में ३६ बार आवृत्तियां पूर्ण होती है। इसी आख्यान चक्र को पारिप्लवाख्यान कहते है।

पावमानी मंत्र = (१) पवमान अर्थात् यज्ञ में दशापवित्र से छाना जाने वाला सोमरस। इस पवमान से संबंधित वेद मंत्र। (२) ऋग्वेद के नवम मण्डल के सभी मंत्रों की संज्ञा।

पिण्डपितृयज्ञ = पितरों एवं देवों के प्रीत्यर्थ पिण्डदान युक्त यज्ञ। यह अमावस्या को होता है। अग्निहोत्री द्वारा गृह्याग्नि में यह यज्ञ होता है। यज्ञ करने की संभावना न होने पर मनु ने पितृतर्पण करने की सूचना दी है। (२-१२७)

पितृयज्ञ = पंच महायज्ञों में से एक। इस के दो भाग हैं, तर्पण और पिण्डदान।

पिज्वन = एक यज्ञीय पात्र। इसमें दूध रखा जाता है।

पुत्रकामेष्टि = पुत्रप्राप्ति की इच्छा से प्रेरित होकर अग्निहोत्री द्वारा, पत्नी के रजोदर्शन के छठे दिन दर्शपूर्णमास याग के तंत्रानुसार किया जाने वाला यज्ञ। इसमें अग्नि, वरुण, विष्णु, पृथ्वी, सोम और सूर्यासावित्री प्रमुख देवता होते हैं।

पुनराधान = किसी कारणवश अग्निहोत्र का व्रत खण्डित होने पर तीनों यज्ञाग्नियों की पुनः विधिपूर्वक स्थापना की विधि। इसी को **पुनराधेय** भी कहते हैं।

पुरुष नारायण = पुरुषमेध में मेध्य पुरुष की संज्ञा (शतपथ ब्राह्मण)

पुरुषसूक्त = ऋग्वेद दशममण्डल के अन्तर्गत ९० वां सूक्त। इसमें १६ ऋचाएँ है। तैत्तिरिय आरण्यक (३.१२) में १८ ऋचाओं का पुरुषसूक्त है। इसमें विश्वरूप परमात्रा का वर्णन है। पूजा, स्नान आदि विधियों में पुरुषसूक्त का पठन होता है।

पुरोडाश = तंदुल या यव के पिष्ट से समंत्रक विधिपूर्वक यज्ञहेतु बनाई हुई कूर्माकार तथा अश्वखुरप्रमाण मोटी रोटी। जितने कपालों पर (मिट्टी के पात्रों पर) पुरोडाश पकाया जाता है, तद्नुसार सप्तकपाल, अष्टकपाल, एकादशकपाल, द्वादशकपाल आदि विशेषणों सहित उसका उल्लेख होता है।

पुरोनुवाक्या = यज्ञों में समर्पण योग्य हवि का ग्रहण करते समय होता के द्वारा उच्चारणीय ऋचा।

पूतभृत = आहवनीय पात्र में सिद्ध किया हुआ सोमरस दशापवित्र द्वार छान कर इस पात्र में रखा जाता हैं। अपरसंज्ञा है 'पवमान ग्रह'।

पूर्णाहुति = प्रधान होम के अंत में अध्वर्यु द्वारा मंत्राग्नि में समर्पित अखंडित घृतधारा। पूर्णाहुति के समय यजमानपत्नी यजमान की और यजमान अध्वर्यु की दाहिनी भुजा को स्पर्श करते हैं।

पूतभृत = दशापवित्र नामक ऊनी वस्त्र से छाने हुए सोमरस से भरा हुआ यज्ञीय पात्र।

पैप्पल = अथर्ववेद के नौ भेदों में से एक।

पोता = सोमयाग करने वाला तथा सोम स्तुतिपरक याज्यानामक मंत्रों का शुद्ध पाठ करने वाला एक ऋत्विक्।

पौण्ड्रवत्स = वेदों की वाजसनेनी संहिता के १७ भेदों में से एक।

पृथिसव = राजसूय में उत्तरवेदी से संबंधित कर्मों से विरहित एक इष्टि स्वरूप याग।

पृथ्वीसूक्त = ऋग्वेद – ५-८४, और अथर्व वेद १२-१-१ क्रमांकों के सूत्रों की संज्ञा।

पृषदाज्य = आज्य (घृत) और दही का हवनयोग्य मिश्रण। (पृषदाज्यधानी = स्रुचा नामक यज्ञीय पात्र की अपर संज्ञा।

पृष्ठसाम = सोमयाग के विशिष्ट प्रकार से गाये जाने वाले साममंत्र। छह प्रकार – बृहत्, वैरूप, वैराज शाक्वर और श्वैत। इन छह पृष्ठसामों का प्रयोग होने के कारण इस सोमयाग को **'पृष्ठ्यषडह'** कहते हैं।

प्रकृति-पारायण = ऋग्वेद संहिता के मंत्रों, मन्त्रपदों का तथा पदसंयोगों का पठन।

प्रकृतियाग = सभी वैदिक यज्ञों के आधारभूत या आदर्शभूत यज्ञ (१) दर्शपूर्णमास। (२) पशुबन्ध (३) अग्निष्टोम और (४) स्थालीपाक।

प्रणव = अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा स्वरूप एक मंत्रमय वैदिक ध्वनि अर्थात् ओम्। यही मंत्रराज कहलाता है। यही ईश्वर तथा प्रत्यगात्मा (अंतरात्मा) का वाचक है।

प्रतिप्रस्थाता = सोमयाग, पशुयाग जैसे महायज्ञों में अध्वर्यु का सहायक ऋत्विज्। इसकी योग्यता अध्वर्यु के समान होती है।

प्रतिहर्ता= सोमयाग में सामतंत्रो का उपसंहार करने वाला एक उद्गाता।

प्रत्यधिदेवता= गृहयज्ञादि कर्मों में मुख्य देवता की बांयीं ओर स्थापित देवता।

प्रवरण= दर्शपूर्णमास, पशुयाग, सोमयाग आदि श्रौतयज्ञों में ऋत्विणों का वरण। इसमें प्रथम यजमान के प्रवर का निर्देश होने पर ऋत्विज के व्यावहारिक नाम का निर्देश करते हुए ऋत्विक्वरण होता है।

प्रवर्ग्य = अग्निष्टोमादि सोमयाग की एक़ विशिष्ट विधि जो दो-तीन दिनों तक दोबार होती है। इस विधि में प्रयुक्त मृत्पात्रों को भी प्रवर्ग्य कहते हैं।

प्रस्तोता = सोमयाग में साममंत्रों का प्रस्ताव (प्रारंभ) करने वाला उद्गातागण में से एक ऋत्विक्।

प्राचीनयोग्या = सामवेद की एक शाखा।

प्राच्यकठ = यजुर्वेद के १२ प्रमुख भेदों में से एक।

प्रांजलऋग्वेदविध = सामवेद की एक शाखा।

प्राणविद्या = 'प्राणो गायत्री'' (शतपथ ब्रा. ६-२-१-२४) के अनुसार गायत्री मंत्र की उपासना (गायत्री विद्या) की अपर संज्ञा।

प्रातिशाख्य = वेदों की प्रत्येक शाखा के मंत्रों का शुद्ध उच्चारण, पदाध्ययन, संधिनियमन, और स्वररक्षक का प्रतिपादन करने वाले वैदिक व्याकरणस्वरूप शास्त्रग्रंथ।

प्राशित्र = यज्ञ में हविर्भाग का समर्पण होने पर ब्रह्मा नामक ऋत्विक् को दिये जाने वाले अवाशिष्ट हवि की संज्ञा। इसका दान **प्राशित्रहरण** नामक गोकर्णाकार लघु खादिरपात्र से होता है।

प्रोक्त = वैदिक वाङ्मय का एक प्रकार। कुछ वेदशाखाओं तथा ब्राह्मण ग्रंथों का इसमें अन्तर्भाव होता है। वैदिक चरणों के संस्थापक ऋषियों तथा श्रौतसूत्रकारों द्वारा निर्मित वाङ्मय की संज्ञा।

प्रोक्षणी धानी = स्रुचासदृश यज्ञीय पात्र।

बहिष्पवमान = नौ ऋचाओं का साम। यज्ञविधि में इसका पांचों भागों सहित ऋत्विक् जन गायन करते हैं। साम के पांच भाग – प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन।

बहुधेय = वाजसनेयी संहिता के १७ भेदों में से एक।

बर्हिषद = एक पितृगण। अग्निहोत्रादि हविर्यज्ञ का व्रत पालन करने वाले गृहस्थों को यह अवस्था मरणोत्तर प्राप्त होती है। बर्हिषद 'कामरूपी' (स्वेच्छानुसार रूप ग्रहण करने वाले) माने गये हैं।

बह्वृच = (१) ऋग्वेद की अपर संज्ञा। (२) ऋग्वेद की एक शाखा जिसके भाष्यकार पतंजलि के मतानुसार २१ भेद थे। (सम्प्रति इस नाम की कोई ऋक्संहिता या ब्राह्मण नहीं है)

बृहती = सात वैदिक छंदों में से चौथा छंद। इसके प्रथमार्ध में १६ और उत्तरार्ध में २० अक्षर (कुल ३६ अक्षर होते हैं)। ३६ अक्षरों के कारण बृहती शब्द ३६ संख्या का द्योतक माना जाता है।

बृहस्पतिसव = यह एकाह सोमयाग केवल ब्राह्मणों के लिए विहित है। यह वाजपेय याग का एक भाग माना गया है।

बौधायनी = तैत्तिरीय संहिता की खांडिकेय शाखा के पांच भेदों में से एक

ब्रह्मगण = सोमयाग के ४ ऋत्विग्गणों में से द्वितीय गण। इसमें ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, आग्नीध्र और पोता नामक चार ऋत्विज होते हैं।

ब्रह्मणि हुत यज्ञ = श्राद्ध आदि ब्राह्मण भोजन सहित होने वाले श्रौत तथा स्मार्त कर्म।

ब्रह्मदायश = अथर्ववेद के ९ भेदों में से एक।

ब्रह्मयज्ञ = (१) अपनी परम्पराप्राप्त वेदशाखा का नित्य स्वाध्याय। (२) वेदवाङ्मय से संबंधित (संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, वेदांग, महाभारत इत्यादि २१ ग्रंथों के प्रथम वाक्यों का पाठ कहना। यजुर्वेदी ब्रह्मयज्ञ में प्रथम और अंतिम वाक्यों का पाठ होता है। (३) तीन बार केवल ओंकार का उच्चारण करना।

ब्रह्मयज्ञ = वेदों का अध्ययन। पांच महायज्ञों में से एक। देखिये- ऋषियज्ञ।

ब्रह्मा = यज्ञ के ऋत्विजों में श्रेष्ठ ऋत्विज्। यह चारों वेदों का ज्ञानी तथा भृगु या अंगिरस के कुल में उत्पन्न एवं वसिष्ठ गोत्री होता है।

ब्रह्मोद्य = यज्ञ समारोह में होनेवाली शास्त्रचर्चा।

ब्रह्मोद्य = धार्मिक कूट प्रश्न। अश्वमेध या दशरात्र जैसे महायज्ञों में ब्रह्मोद्य एक आवश्यक भाग होता है।

ब्राह्मण = (१) ब्रह्म = वेदमंत्रों का ज्ञान देने वाले वैदिक ग्रंथ। (नंपुसक लिंग में ही इस शब्द का अर्थ ग्रंथ होता है।) मंत्र और ब्राह्मण दोनों को वेद कहा जाता है। (२) यज्ञों के कर्मकाण्ड का निवेदन करने वाले वैदिक ग्रन्थ।

ब्राह्मण सव = सोमयाग का एक प्रकार जो केवल ब्राह्मण ही कर सकते हैं।

मंथिपात्र = सोमरस का हवन करने के लिए उपयुक्त काष्ठपात्र। अपरसंज्ञा – ग्रहपात्र।

मधुमती ऋचा = ऋग्वेद प्रथम मण्डल के ९० वें सूक्त में ६, ७, ८ क्रमांकों की तीन ऋचाओं की संज्ञा। इन ऋचाओं का प्रारंभ 'मधु' शब्द से होने के कारण उन्हें यह संज्ञा प्राप्त

हुई। मधुपर्कपूजा तथा श्राद्धविधि में इन ऋचाओं का पठन होता है।

मनुष्य देव = शास्त्र के ज्ञाता विद्यासम्पन्न पुरुष। (शतपथ ब्राह्मण २-२-२-६) (विद्वांसो हि देवाः)।

महानाम्नी = (१) सामवेद के पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक के बीच की ऋचाएँ। इनके गायन को महानाम्नी साम कहते हैं। प्रस्तुत ऋचाएं शक्वरी नामक छंद में होने के कारण उन्हें 'शाक्वरी' भी कहते हैं।

(२) ऐतरेय आरण्यक के विशिष्ट मंत्रों की संज्ञा। इनका अध्ययन प्रारंभ करते समय ब्रह्मचारी महानाम्नी नामक व्रत का पालन करता है।

महापवित्रेष्टि (या मृगारेष्टि तथा रहस्येष्टि) = अश्वमेध का एक अंगभूत होम। किसी महापातक से मुक्तता पाने के हेतु यह इष्टि होती थी। इसका सारा तंत्र दर्शपूर्णमास इष्टि के समान ही होता है।

महिषी-अश्व-सन्निवेश = अश्वमेध यज्ञ में पटरानी और मेध्याश्व के समागम की विधि।

माध्यन्दिन = (१) यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता (शुक्ल यजुर्वेद) की १५ शाखाओं में से एक प्रमुख शाखा। (२) महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों की एक शाखा की संज्ञा।

मित्रविन्देष्टि (या महावैराजी इष्टि) = राष्ट्र तथा मित्रवर्ग की अनुकूलता प्राप्त करने के हेतु इस इष्टि का विधान किया है। इसमें दस देवताओं के प्रीत्यर्थ हवन होता है। (दस देवता – अग्नि, सोम, वरुण, मित्र, इन्द्र, बृहस्पति, सविता, पूषा, सरस्वती और त्वष्टा।) इस इष्टि का तंत्र दर्शपूर्णमासेष्टि के समान होता है।

मूरदेव = दस्यु लोगों का एक वेदोक्त विशेषण। इस शब्द का अर्थ मूढदेव अर्थात जिनके देवता मूढ (जारण, मारण आदि क्षुद्र कर्म करने वाले) होते हैं।

मृगारेष्टि = देखिये महापवित्रेष्टि।

मृत्युसव = एक विशिष्ट यज्ञ। इसमें यत्रमान को व्याघ्रचर्म के पादत्राण धारण करने पड़ते है।

मैत्रायणी = कृष्ण यजुर्वेद की चरक शाखा की एक उपशाखा की संज्ञा। मैत्रायणी संहिता में १८००० मंत्र हैं। इसका अंतिम भाग ही मैत्रायणी उपनिषद् (या आरण्यक) कहा जाता है।

मैत्रावरुण = पशुयाग में मित्र और वरुण के स्तुतिस्तोत्र कहने वाला होता का सहायक ऋत्विज्। देखिये-प्रशास्ता।

मैत्रावरुण = यज्ञविधि में होता का सहायक एक ऋत्विज् होता के अर्धप्रमाण में इसे दक्षिणा दी जाती है अतः इसे "अर्धी" कहते हैं।

मैत्रावरुण पात्र= मित्र और वरुण इन द्वन्द्व देवताओं के प्रीत्यर्थ, इस यज्ञीय पात्र में सोमग्रह संचित होता है।

मोक्षोत्सव = मार्गशीर्ष शुद्ध एकादशी से दस दिन तक वेदपठन का समारोह। तमिलनाडु में अनेक मंदिरों में इस उत्सव निमित्त प्रतिदिन यजुर्वेद के ८ प्रश्नों का पाठ होता है।

यज्ञ (के पांच अंग) = (१) देवता, हविर्द्रव्य, वेदमंत्र, ऋत्विक्, और दक्षिणा। (२) शास्त्रोक्तविधि, अन्नसंतर्पण, वेदमंत्र, दक्षिणा और श्रद्धा (भगवद्गीता)

यज्ञपंचक = (गीता में कथित) = द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याय, ज्ञान। (भगवद्गीता ४-२८)

यज्ञशिर = देखिये घर्म तथा प्रवर्ग्य।

यज्ञीय पात्र तथा अन्य सामग्री = स्रुव, प्रोक्षणी (या अग्निहोत्र हवणी), स्फ्य , कपाल, शूर्प, कृष्णाजिन, शम्या, जुहू, उपभृत्, ध्रुवा, मेक्षण, वेद, प्रणीता, इडापात्र, स्थाली (मदनी, अन्वाहार्यस्थाली, उक्थ्यस्थाली, आग्रयण स्थाली, आदित्यस्थाली इत्यादि प्रकार) यूप, स्वरू, स्वधिती (छुरिका), रशना, शुल्व, उपवेश, कारोतर, कृष्णविषाण, उष्णीष, वालस्राव, दीक्षितदण्ड, व्रतस्थाली, (व्रत गाय का दूध) पद्धरणी, ऊर्णास्तुका, आसंदी, महावीर दोग्ध्र (या पिन्वन), रौहिण हवनी, उपयमन, शफौ (या परीशास), धवित्र (कृष्णजिन का पंखा), निदान, अभ्री,, विघन (हथोड़ा), पर्शु, (अश्वपर्शु, अनडुत्पर्शु), अधिषवण फलक, वसतीवरी, वायव्यपात्र, (मैत्रावरुण ग्रह या अजकाव), आश्विन ग्रह, वैश्वदेव ग्रह आदि प्रकार); ऋतुपात्र, सोमस्थाली, परिप्लुपात्र, द्रोणकलश (यज्ञीयपात्र) पूतभृत, आधवनीय, चमस, कूर्च, दर्वी, वसोर्धारा। इनके अतिरिक्त उदुंबर, पलाश, तथा अश्वत्थ वृक्षों की समिधा, व्रीहि, यव, तिल आदि धान्य।

याज्या = यज्ञाहुति के समय हवन देवता की स्तुति के वेदमंत्र। याज्या मंत्रों में देवता का निर्देश मंत्र के उत्तरार्ध में होता है। इसका उच्चारण हवि के समर्पण के क्षण में होता है।

यायजूक = बारंबार यज्ञ करने वाला या यज्ञ करना ही जिसका स्वभाव हुआ है ऐसा आहिताग्नि पुरुष

यूपसूक्त = ऋग्वेद ३-८ क्रमांक के सूक्त की संज्ञा।

योजक = विवाहविधि के होमाग्नि की संज्ञा। (देखिये समुद्भव)

रहस्येष्टि = देखिये महापवित्रेष्टि।

राजनीष्टि = नेत्रदोष का निवारण करने के हेतु यज्ञविधि। इसमें अग्नि और सूर्य प्रधान देवता होते हैं।

राणायनीय = सामवेद की विद्यमान ३ शाखाओं में से एक। (अन्य दो – कौथुमी और जैमिनि)। यह शाखा महाराष्ट्र में प्रचलित है।

रात्रिसूक्त = ऋग्वेद के १०-१२७ क्रमांक के सूक्त की संज्ञा। दुष्ट स्वप्न देखने पर इसका पाठ होता है।

राष्ट्रभृध्दोम = **(राष्ट्रभृद्-होम)** = राष्ट्र की समृद्धि के निमित्त एक विशिष्ट होम। इसके कुल १२ मंत्र हैं। प्रत्येक मंत्र में दो स्वाहाकार होते हैं।

रामयज्ञ = इसमें पुरुषसूक्त अथवा "ओम् रां रामाय नमः" इस मंत्र से एक लक्ष या एकलक्ष साठ हजार आहुतियां दी जाती हैं। एक स्मार्त यज्ञ।

रुद्रयाग = इसके तीन प्रकार – (१) रुद्र, (२) महारुद्र, (३) अतिरुद्र। इसमें रुद्रसूक्त तथा शिवसहस्र नामावली से

हवन होता है।

रुद्राध्याय = कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय (तथा अवांतर) संहिता के अन्तर्गत चतुर्थ काण्ड में नमक और चमक नामक पांचवे प्रपाठक के २२ अनुवादकों की संज्ञा। नमक में 'नमः' और चमक में 'च मे' इन शब्दों की वारंवार आवृत्ति होती है। इसी कारण उन अनुवादकों को नमक और चमक कहते हैं। (शुक्ल यजुर्वेद में भी 'रुद्राध्याय' होता है। (अपरसंज्ञा = शतरुद्रीय)

रौहिण = एक यज्ञीय पात्र। इस पर पुरोडाश तपाया जाता है।

लक्ष्मीनारायण-महायज्ञ = प्रातःकाल श्रीसूक्त और मध्याह्न में पुरुष-सूक्त से सव्वालाख आहुतियां ८, ९ या ११ दिनों तक दी जाती है।।

लक्ष्मीयज्ञ = श्रीसूक्त तथा लक्ष्मीसहस्रनाम से एक लक्ष आहुतियां ८ दिनों में दी जाती है।

लघुरुद्र (या रुद्र) याग = यह ५, ७ या ९ दिनों में संपन्न होता है। इसमें १६ या २१ विद्वान् होते हैं। आहुतियों की संख्या १९९२१ होती है।

लांगल यज्ञ = (लांगल = हल) हल चलाना प्रारंभ होने के पहले खेत में यह यज्ञ होता है।

लाट्यायन = सामवेदी राणायनी शाखा का अध्ययन करने वाले वैदिक की संज्ञा।

लौगाक्षि गृह्यसूत्र = काठक गृह्यसूत्र का अपर नाम।

वषट्कार = याज्या तथा अनुयाज्या नामक मंत्रों के अन्त में 'स्वाहा' के अर्थ में, पितरों के संबंध में 'वषट्' शब्द का सावेश उच्चारण। इस उच्चारण के साथ अध्वर्यु यज्ञ की आहुति समर्पण करता है। वषट्कार का उच्चारण दिन में ही करना चाहिये। इस मंत्र से यजमान के शत्रु पर आघात होता है।

वसतीवरी = धूप-छाया के संधिस्थान पर से लाया हुआ नदी प्रवाह का जल। वह जिस यज्ञीय पात्र में रखा जाता है उसे 'वसतीवरी' कहते है। सोमयाग के सोमसवन में इसी जल का उपयोग होता है।

वसाहोम हवनी = पशुयाग में हवनीय पशु के अवयव कुंभ में पकाने पर निर्माण हुए मांस रस की आहुति जिस स्रुचा से देते हैं उसकी संज्ञा।

वसिष्ठ यज्ञ = फाल्गुनी अमावस्या को होने वाला एक यज्ञ। इसमें दर्श और पौर्णिमासी इष्टियों के देवताओं को एक साथ आहुतियाँ दी जाती हैं।

वागम्भृणी सूक्त = ऋग्वेद दशम मण्डल के १२५ वे सूक्त की संज्ञा। इस में वाक्शक्ति के महत्त्व का वर्णन किया है।

वाजपेय = सप्त सोमसंस्था में एक महत्त्वपूर्ण सोमयाग की संज्ञा। वाज = अन्न। यज्ञमें सोमपान करने से अन्नलाभ होता है। अतः यह संज्ञा उत्पन्न हुई। तीन प्रकार – (१) आप्तवाजपेय, (२) कुरुवाजपेय और (३) संस्थावाजपेय। (शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वाजपेय और बृहस्पतिसव में अभेद माना है।)

वातरशनाः = वेदकालीन विवस्त्र या दिगम्बर मुनियों की संज्ञा। इन्हीको श्रमण परम्परा के मूल पुरुष माना जाता है।

वामदेव साम = सामवेद का एक गान सूक्त। इसकी गणना ऋक्संहिता के समान 'दृष्ट' वैदिक साहित्य में होती है।

वालखिल्य = (१) अंगुष्ठप्रमाण ६० सहस्र ऋपियों के गण की संज्ञा। (२) ऋग्वेद के आठवें मण्डल के ४९-५९ क्रमांक के ११ सूक्तों की संज्ञा।

वासुरायणीया = सामवेद की एक शाखा।

वास्तुपुरुष = वास्तु (निवासस्थान) का अधिदेवता। वेदोक्त वास्तोष्पति नामक देवता की अपर संज्ञा।

वास्तुयज्ञ = (१) नवीन भवन की निर्मिति के निमित्त होने वाले पांच यज्ञविधि। (२) भोजन के पूर्व वास्तुपुरुष के प्रीत्यर्थ नैवद्य या आहुति का प्रदान।

वास्तुशांति = (या वास्तुशमन होम) वास्तुनिर्मिति का कार्य पूर्ण होने पर वास्तुदेवता की प्रसन्नता के निमित्त एक यज्ञविधि। इसके पश्चात् गृहप्रवेश होता है।

विकृति पारायण = विकृति के आठ प्रकार – जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और धन। इन आठ पद्धतियों में धनपारायण अत्यंत जटिल होता है। धनपाठी वैदिक पंडितों की सम्मानोपाधि है। उक्त आठ वेद-विकृतियों के पारायण की संज्ञा।

विधन = राजा तथा विद्वान ब्राह्मण ने गत प्रतिष्ठा प्राप्त करने के हेतु करने योग्य एक यज्ञ। इस का अनुष्ठान अग्निष्टोम के समान होता है।

विधानकल्प = अथर्ववेद के अध्ययन के पांच कल्पों में से एक।

विधिविधान कल्प = अथर्ववेद के अध्ययन के पांच कल्पों में से एक।

विजितीष्टि = शत्रु पर विजय प्राप्त करने के निमित्त वैमृध इन्द्र, अहोमुच इंद्र और इन्द्रियवान् इन्द्र देवता के प्रीत्यर्थ एक यज्ञ।

विरजा होम = संन्यास दीक्षा के पूर्व की एक हवन विधि। इसमें समिधा, आज्य और चरु इन हवनीय द्रव्यों की प्रत्येकशः ४० आहुतियाँ होती हैं। तथा अग्निहोम के सभी काष्ठपात्र अग्नि में समर्पित होते हैं।

विश्वजित् = गवाम् अयन नामक दीर्घसत्र (जो एकवर्ष तक चलता है) का एक अंशभूत यज्ञ। इस यज्ञ में सर्वस्व की दक्षिणा दी जाती है। रघु और हर्षवर्धन द्वारा सर्वस्व दक्षिणा दी जाने का उल्लेख है (रघुवंश, हर्षचरित)

वेदशाखा (औत्तराह) = नर्मदा के उत्तरविभाग में विद्यमान ४ वेद शाखाएं – माध्यन्दिनी, सांख्यायनी, कौमुथी और शौनकी

वृष्टिसूक्त = अथर्ववेद ४-१५ क्रमांकों के सूक्तों की संज्ञा।

वेद = यज्ञ-वेदी को स्वच्छ करने के लिए दर्भमुष्टि से बनाया गया गोवत्सचरणवत् पवित्र झाडू। यज्ञीय विधि के समय यह वेद यजमान पत्नी के हाथ में दिया जाता है। (इसीको

'वेदपरिवासन' कहते हैं।

वेददर्शी = अथर्ववेद के नौ भेदों में से एक।

वेदव्रत = गौतमधर्मसूत्र के अनुसार वेदाध्ययन करने वालों के चार व्रत (१) महानाम्नी, (२) महाव्रत, (३) उपनिषद और (४) गोदान।

वेदविकृति = जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ, और धन इन आठ प्रकारों की वेदपाठ की पद्धतियों की संज्ञा। इनमें मन्त्रोक्त पदों का स्थानान्तर या अनुक्रम में परिवर्तन होने से यह संज्ञा प्राप्त हुई। मन्त्रों के पदपाठ और क्रमपाठ को 'विकृति नहीं माना जाता।

वेदशाखा दाक्षिणात्य = नर्मदा के दक्षिण विभाग में विद्यमान ४ वेदशाखाएँ – आपस्तंबी (यजुर्वेदीय); आश्वलायनी (ऋग्वेदीय) राणायनी (सामवेदीय); और पिप्पल (अथर्ववेदीय)

वेदार्थ के पांच प्रकार = अधिलोक, अधिज्योतिष, अधिविद्य, अधिप्रज और अध्यात्म (तैत्तिरीय उपनिषद के अनुसार)

वेदी = यज्ञविधि के लिये संस्कारित पवित्र भूभाग। विविध यज्ञों की वेदी का प्रमाण अलग अलग होता है।

वैधेय = वाजसनेयी संहिता के १७ भेदों में से एक।

वैनेय = वाजसनेयी संहिता के १७ भेदों में से एक।

वैमृद्धेष्टि = सोमयाग करने पर प्रत्येक पूर्णमासेष्टि के पश्चात् इन्द्र वैमृद्ध नामक देवता के प्रीत्यर्थ एक हवन।

वैश्यसव (या स्थपति सव) = वैश्यवर्णीय यजमान के द्वारा करने योग्य एक पशु याग।

व्रात्यधन = व्रात्यस्तोम में समर्पित दक्षिणा। कात्यायन के मतानुसार मगधदेश का मूर्ख मनुष्य, व्रात्यधन का अधिकारी माना गया है। (कात्यायन श्रौतसूत्र २२-४-२४)

शततृण्णा (या शतच्छिद्रा) = एक यज्ञीय स्थाली।

शतरुद्रीय होम = रुद्राध्याय के मंत्रों से हवन। (यह रुद्रानुष्ठानपद्धति के अनुसार होता है।)

शंकुवाक = यजमान के कल्याण निमित्त श्रौतयाग में कहे जाने वाले विशिष्ट मंत्र। अपर संज्ञा-निगद।

शस्त्र = (१) उदात्तादि स्वरहीन वेद मंत्र। (२) सोमयाग में सोम का यजन होने के पूर्व, हवनीय देवता की स्तुति में होता के द्वारा गाये जाने वाले मंत्रों की संज्ञा (३) यज्ञ में होता नामक ऋत्विक् द्वारा कहे जाने वाले मंत्र। आज्य, प्रउग, मरुत्वतीय, निष्केवल्य, वैश्वदेव, आग्निमारुत इत्यादि शस्त्र-नाम प्रसिद्ध हैं।

शाखारण्ड = स्वशाखा से अन्य वेदशाखा का अध्ययन करने वाला ब्राह्मण। (देखिये असदध्येता)

शाट्यायनीय = सामवेद की राणायनीय शाखा के ९ भेदों में से एक।

शांतिकल्प = अथर्ववेद के अध्ययन के पांच कल्पों में से एक।

शांतिकल्प = अथर्व परिशिष्ट का एक भाग।

शापमोचन सूक्त = अथर्ववेद के विशिष्ट सूक्त (२-७) की संज्ञा। इसमें शाप से मुक्तता मिलने की प्रार्थना है।

शामित्रशाला = यज्ञीय पशु मारने का कक्ष।

शिक्षा = वेदमंत्रों के निर्दोष उच्चारण का शास्त्र। यह प्रथम वेदांग (वेद पुरुष की नाक) माना गया है। शिक्षा के छंह अंग – वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, और संतान। प्रत्येक वेद का स्वतंत्र शिक्षा ग्रंथ होता है। शिक्षा ही संसार का प्राचीनतम भाषाविज्ञान कहा जा सकता है।

शिल्प (या देवशिल्प) = यज्ञ में गाये जाने वाले शस्त्र अर्थात स्तोत्र।

शिश्नदेव = दस्यु लोगों का एक वेदोक्त विशेषण। शिश्न = लिंग को देव मानने वाले, लिंग पूजक।

शुंक्रपात्र = बिल्वकाष्ठ से निर्मित एक यज्ञीय पात्र।

शुक्ल यजुर्वेद = (प्रमुख शाखाएँ) – जाबाल, बौधेय, काण्व, माध्यन्दिन, शापेयी, तापनीय, कपोल, परमावटिक, पराशर, वैणेय, कात्यायन, वैजवाप, इन १२ अनुपलब्ध शाखाओं के अतिरिक्त संप्रति उपलब्ध शाखाएँ – वाजसनेय और काण्व।

शूलगव = सात पाकसंस्थाओं के अन्तर्गत एक याग। इस में सात बैलों का (या अज, अथवा मेष) बलिदान होता था। रुद्र देवता के प्रीत्यर्थ यह याग किया जाता था। इस याग को ईशानबलि या चैत्री (चैत्रमास में होने के कारण) कहते हैं।

शुल्ब सूत्र = कल्पसूत्रों में अन्तर्भूत सूत्र ये शुक्ल और कृष्ण यजुर्वेद से संबंधित होते हैं। यज्ञों के विविध प्रकार के वेद कुण्ड के आकार, बनाने की प्रक्रिया, उनसे संबंधित रेखागणित आदि विषयों का प्रतिपादन शुल्ब सूत्रों में होता है।

शौनकी = अथर्ववेद के ९ भेदों में से एक।

श्मशान सूक्त = (या अंत्येष्टि सूक्त) = ऋग्वेद दशम मण्डल के १८ वें सूक्त की संज्ञा।

श्येन याग = सोमयाग का एक आभिचारिक प्रकार। इस यज्ञ की वेदी का चयन श्येन पक्षी के समान होता है। श्येनचयन को सुपर्णचयन या गरुडचयन कहते हैं।

श्रवणीय पार = ऋग्वेद के आठ स्थानों (प्रकारों) में से चतुर्थ स्थान।

श्रावक = ऋग्वेद के आठ स्थानों (प्रकारों) में से द्वितीय स्थान।

श्रीसूक्त = लक्ष्मी की स्तुति का वैदिक परिशिष्टात्मक सूक्त। चारों वेदों के श्रीसूक्त अलग अलग हैं। ऋग्वेद के पंचम मंडल का परिशिष्ट स्वरूप २५ मंत्रों वाले श्रीसूक्त का सर्वत्र प्रचार है। लक्ष्मी की उपासना में इसका विनियोग होता है।

श्रौतसूत्र = वैदिक आचारधर्म का प्रतिपादन करने वाले सूत्रबद्ध ग्रंथ। प्रत्येक वेद के श्रौतसूत्र अलग अलग होते हैं। कुल १४ श्रौतसूत्र ग्रंथों का प्रमाण्य श्रौत (अर्थात् वैदिक) कर्मकाण्ड में माना जाता है। श्रौतसूत्र का अन्तर्भाव कल्प नामक वेदांग में होता है।

श्रौताग्नि = दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य इन पंचाग्नियों की संज्ञा।

षडह याग = उत्तरायण के प्रारंभदिन से छह दिनों तक होने वाला यज्ञ। इसी षडह (छहदिन) के साथ संवत्सर सत्र (एकवर्ष तक चलने वाले यज्ञ) का प्रारंभ होता है।

षोडशि = षोडशी नामक सोमयाग में पंद्रह स्तोत्रों और शस्त्रों के अतिरिक्त गाया जाने वाला एक शस्त्र।

संज्ञपन = यज्ञीय पशु का श्वास निरोध करते हुए हत्या। संज्ञपन क्रिया शामित्रशाला में शमिताद्वारा होती है।

संज्ञानी इष्टि = समान जाति के लोगों का अन्तर्गत वैरभाव शांत होने के हेतु, अग्नि, सोम, इन्द्र, वरुण इन चार देवताओं के प्रीत्यर्थ दर्शपूर्णमास याग के समान एक यज्ञ।

संभार यजु = विशिष्ट यज्ञीय मंत्रों की संज्ञा।

संसृष्ट हवि = दधि, मधु, घृत, धाना और जल के मिश्रण से बनाया गया हविर्द्रव्य। पशुकामेष्टि में यह हवि प्रजापति को समर्पण किया जाता है।

संहिताकल्प = अथर्ववेद के अध्ययन के पांच कल्पों में से एक।

सत्याषाढी = तैत्तिरीय संहिता की खांडिकेय शाखा के पांच भेदों में से एक।

सत्र = (१) १२ से अधिक दिनों तक चलने वाली यज्ञ विधियां। (२) महापुरुषिया नामक असम प्रदेश के वैष्णव संप्रदाय का प्रार्थना घर।

सदस्य = वाजपेय यज्ञ का एक विशिष्ट ऋत्विक् जो अन्य १६ ऋत्विजों के कर्मो पर निगरानी रखता है। अन्य यज्ञों में सदस्य की योजना, वैकल्पिक होती है।

सनीहार = यज्ञसामग्री का संपादन करने वाले।

समन = ऋग्वेद में उल्लिखित एक उत्सव। (ऋ. १-४८-६। १-१२४-८)

समस्त होम = जय अभ्यतान और राष्ट्रमृद् इन तीन होमों की एक साथ विधि।

समस्य होम = प्रातर्होम और सायंहोम दोनों एक साथ सायंकाल में करना।

समिधा = यज्ञ में आहुति देने के लिए उपयुक्त पलाश, खदिर, पीपल, रुई, शमी, उदुंबर, आघाडा, दूर्वा और दर्भ के १०-१२ अंगुलिप्रमाण काष्ठखण्ड।

समिध्द्वती = देखिये सामधेनी।

समिध्यमानवती = देखिये सामधेनी।

समिष्टयजु = इष्टि, पशुयाग, और सोमयाग की समाप्ति में विशिष्ट मंत्र के साथ तीन आज्याहुतियों की संज्ञा।

समुद्भव = उपनयन विधि के होमाग्नि की संज्ञा। (देखिये योजक)

सर्पवेद = (१) गोपथ ब्राह्मण (ग्रंथ) की संज्ञा (२) गोपथ ब्राह्मण में उल्लिखित सर्पविद्या की संज्ञा।

सर्वपृष्ठेष्टि = दर्श-पूर्णमासेष्टि के समान एक यज्ञ, जिसमें रथंतर इंद्र, बार्हत इन्द्र, वैरूप, वैराज इन्द्र, शाक्वर इन्द्र और रैवत इन्द्र नामक छह देवताओं के प्रीत्यर्थ एक ही पुरोडाश से हर्विदान होता है। इन्द्रियबल तथा ऐश्वर्य की कामना से यह इष्टि की जाती है।

सर्वारिष्टशांति = काकस्पर्शादि अशुभ घटना होने पर इन्द्रादि दिक्पालों के प्रीत्यर्थ एक यज्ञविधि।

सव = जिन यज्ञों के अंत में यजमान का विशिष्ट पद्धति से अभिषेक किया जाता है ऐसे सभी प्रकार के यज्ञों की संज्ञा। सोमरस, पुरोडाश, ओदन, पशुमांस, आदि का हवन, सव में होता है।

ससर्परी = (१) ऋग्वेद (३-५३-१५) में उल्लिखित (२) गायत्री मंत्र की एक संज्ञा।

साकमेध = कार्तिक या मार्गशीर्ष पौर्णिमा के समय दो दिन यह यज्ञ होता है। इसमें अनीकवती इष्टि, सांतपन इष्टि, गृहमेधीया, पूर्णदर्व्य, क्रीडनीष्टि, महाहविषेष्टि, पितृयज्ञ, त्र्यंबक हवि, आदित्येष्टि-नामक याग होते हैं। यह यज्ञ चातुर्मास्य याग का तृतीय पर्व होता है। "साकम् एधन्ते" इति अर्थात् इस में हवियों से देवता एकसाथ बढते हैं, अतः यह संज्ञा हुई।

साकं प्रस्थायीयेष्टि = तैत्तिरीय संहिता में उल्लिखित एक यज्ञ। अमावस्या के दिन यह यज्ञ होता है। विविध उदुंबर पात्रों में (साकं) = एक साथ सान्नाय (दूध और दही एकत्रित) लेकर उनका हवन इस याग में पशुवृद्धि के उद्देश्य से होता है। इसी कारण प्रस्तुत संज्ञा हुई है।

सांग्रहणी = अश्वमेध के प्रारंभ में चित्रा नक्षत्र पर सारी जनता के सहकार्य की कामना से यह इष्टि होती है।

सांग्रहणी दृष्टि = अश्वमेध के प्रारंभ में होने वाली इष्टि। यह चित्रानक्षत्र पर जनता की अनुकूलता प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाती थी।

सात्यमुग्र = सामवेद की राणायनीय शाखा के नौ भेदों में से एक।

सात्त्विक यज्ञ = फलांकांक्षा विरहित, विधियुक्त, और कर्तव्य बुद्धि से किया हुआ यज्ञ। (गीता १७-११)

सान्नाय्य = दूध और दही के मिश्रण से बना हुआ एक हविर्द्रव्य।

साम = "सा (ऋचा) च अमश्च इति" अर्थात ऋचा और गंधारादि स्वर। वेदों में विशिष्ट साम मंत्रों की अलग अलग संज्ञा रूढ है। जैसे – **ऋग्वेद मे उल्लिखित** – वैरूप, बृहत्, रैवत, गायत्र, भद्र इत्यादि। **यजुर्वेद में उल्लिखित** – साम, रथंतर, वैखानस, वैराज्य, वामदेव्य, शाक्वर, रैवत, अभीवर्त इ. **ऐतरेय ब्राह्मण में निर्दिष्ट साम** – बौधस, रौरव, अग्निष्टोमीय इ.। गेय वैदिक मंत्र।

सामधेनी = ऋग्वेद तृतीय मण्डल के २७ वें सूक्त की १ से ११ तक ऋचाओं की संज्ञा। श्रौतयज्ञ में अग्नि प्रदीप्त करते समय होता (एक ऋत्विक्) इन का पाठ करता है। प्रत्येक ऋचा के अंत में प्रणवोच्चार होता है। इनमें ४ थी ऋचा को "**समिध्यमानवती** और ११ वीं ऋचा को "**समिद्धवती**" कहते है। ४ से ११ तक की ऋचाओं को 'धाय्या' कहते है।

सामपंचक = साम-गान के पांच भाग – प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन।

सार्वसेनी यज्ञ = दर्श-पौर्णिमासेष्टि के देवता के प्रीत्यर्थ केवल पौर्णिमा को एकत्र होने वाला यज्ञ। संतति लाभ के हेतु यह याग विहित है।

सीतायज्ञ = (सीता = एक देवता - इंद्रपत्नी) एक श्रौत याग। इसमें सीता, यजा, सामा और भूति नामक देवताओं तथा इन्द्र, मरुत्, पर्जन्य, अशनि और भग देवों को स्थालीपाक की आहुतियाँ दी जाती हैं।

सुत्यादिन = सोमयाग के पांचवें दिन की संज्ञा। इस दिन प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल में सोमसवन होता है।

सुब्रह्मण्य = यज्ञ के ऋत्विजों में से एक। यह यज्ञ के निमित्त देवों का आवाहन करता है तथा सोमक्रय होने पर सोमशकट को खींच लाता है।

सुब्रह्मण्या = देखिये निगद

सुमनानामेष्टि = दर्शपौर्णिमासेष्टि का एक प्रकार।

सुरभिमतीष्टि = दर्श-पूर्णमास इष्टि का एक विशिष्ट प्रकार। इसमें सुरभि अर्थात् सुगंधी द्रव्यों का उपयोग अधिक मात्रा में होता है।

सोममण्डल = ऋग्वेद के नवम मंडल की संज्ञा।

सोम्यास = सोमयाग से स्वर्गप्राप्ति करने वाले पितरों का गण।

सोष्यन्ती होम = पुत्रजन्म के निमित्त होम।

स्तोत्र = उदात्तादि स्वरयुक्त वेदमंत्र।

स्तौत = अथर्ववेद के ९ भेदों में से एक।

स्थंडिल = उपनयन, यज्ञ, आदि विधि के निमित्त बनाया हुआ मिट्टी का चतुरस्र पीठ। इस पर लौकिक अग्नि की स्थापना होती है।

स्थालीपाक = गृहस्थ द्वारा पर्वदिन को करने योग्य एक यज्ञ। पौर्णिमा के स्थालीपाक में अग्नि और अग्निषोम प्रधान देवता होते हैं। और दर्श (अमावस्या) के स्थालीपाक में अग्नि और इन्द्राग्नि प्रधान देवता होते हैं।

स्रुक् (या स्रुचा, स्रुची) = धृत आदि द्रव पदार्थों की आहुति देने का दर्वी के समान एक यज्ञीय काष्ठपात्र। इसका मुख चंचू के समान होता है। तीन प्रकार – जुहू, उपभृत् और ध्रुवा। इनका निर्माण क्रमशः पलाश, अश्वत्थ और विकंकत नामक वृक्षों के काष्ठ से किया जाता है।

स्वधिति = एक खड्‌गरूप यज्ञीय उपकरण। इसी शस्त्र से अज, मेष, अश्व आदि यज्ञीय पशुओं का विशसन (हनन) करते थे

स्वयंकृत = (१) स्वयं यजमान द्वारा किया हुआ होम। (२) ऋत्विक्, पुत्र, गुरू, शिष्य, बंधु, भगिनीपुत्र, लोकनेता, तथा पत्नी, कन्या द्वारा किया गया होम।

स्वर्गसत्र = १२ दिनों में १२ इष्टियाँ इस सत्र में होती हैं। इन इष्टियों के दिवश्येन और अपाघा नामक दो भाग होते हैं। प्रत्येक इष्टि के देवता अलग होते हैं। इसमें दक्षिणा के रूप में स्त्रियों के अलंकारों का समर्पण होता है।

हरिहर महायज्ञ = इसमें प्रातःकाल में विष्णुयज्ञ और मध्याह्न में रुद्रयाग होता है। यह महायज्ञ ९ अथवा ११ दिनों में होता है।

हरियोजन याग = उन्नेता नामक ऋत्विक् द्वारा सोमरसयुक्त द्रोणकलश मस्तक पर उठाकर किया गया हवन।

हिरण्यगर्भसूक्त = ऋग्वेद १०-१२१ क्रमांक के सूक्त की संज्ञा।

होत्राग्नि = देखिये श्रौताग्नि।

होतृगण = सोमयाग के चार ऋत्विक गणों में से तृतीय गण। इसमें होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक और, ग्रावस्तुत्, नामक चार ऋग्वेदी ऋत्विज होते हैं।

होतृमंत्र = विशिष्ट मंत्र-समूहों की सज्ञा। कृष्णयजुर्वेद में चतुर्होता, पंचहोता, षड्होता, (षड्-ढोता), सप्त होता, दश होता, इत्यादि संज्ञक मंत्र आते हैं। उन होतृमंत्रों में वाक्यों की संख्या पंच, सप्त इत्यादि संज्ञा के अनुरूप होती है। होतृमत्रों के उत्तरार्ध को 'ग्रह' कहते हैं।

* * *

वर्ग - २ – स्मार्त धर्मशास्त्र की परिभाषा

अकर्मकरणमंत्र = यज्ञविधि के समय जिनका किसी प्रयोजन के बिना उद्घोष होता है ऐसे वैदिक मंत्र।

अक्षतयोनि = वह कन्या जिसके साथ संभोग न हुआ हो।

अक्षता = पूजा का एक उपचार द्रव्य। महापूजा के अन्तर्गत अंगपूजा, आवरणपूजा आदि गौण पूजा के विधि अक्षतासमर्पण से ही होते हैं।

अक्षतारोपण = विवाह के अन्तर्गत एक विधि।

अक्षयनीवि = सदा के लिए दिया गया दान।

अक्षया चतुर्थी = मंगलवार की चतुर्थी तिथि।

अक्षय्य तृतीया = वैशाख शु, तृतीया। पुराणानुसार कृत या त्रेता युग का आरंभ दिन। यह एक अपिंडक श्राद्ध की तिथि है। भगवान् परशुराम की जन्मतिथि।

अक्षय्य नवमी = कार्तिक शु. नवमी। विष्णुपूजा का व्रत।

अक्षय्य फलावाप्तिव्रत = वैशाख शुद्ध तृतीया को कृत्तिका नक्षत्र होने पर एक व्रत।

अक्षरारंभ विधि = हिरण्यकेशी शाखा के ब्रह्मकर्म में पांच वर्ष के बालक को अक्षरों का परिचय देने का प्रारंभ करते समय यह विधि बताई गई है। होमविधि होने पर "ॐ नमः सिद्धम्" इन मातृकाक्षरों का लेखन सर्व प्रथम होता है।

अखंड द्वादशी = अश्विन शु. १२, अथवा मार्गशीर्ष शु. १२ तिथि का व्रत। व्रती लोग एकादशी को उपवास और द्वादशी को विष्णू पूजा करते है। (हेमाद्रिकृत व्रतखंड)।

अगम्या = समागम या संभोग के लिये निषिद्ध स्त्री। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार, शूद्र को ब्राह्मणी, ब्राह्मण को शूद्र स्त्री, गुरुपत्नी, राजपत्नी, सपत्नमाता, माता, कन्या, बहू, सास, गर्भवती, भगिनी, भ्रातृजाया, भ्रातृकन्या, भगिनीकन्या, शिष्या, शिष्यपत्नी, भगिनीपुत्रकन्या और भ्रातृपुत्रकन्या अगम्या मानी गई है। (ब्र. वै. प्रकृतिखंड २७)।

अगस्त्य-अर्ध्यदान = एक व्रत। अगस्त्य तारका का उदय सूर्य के सिंहराशि प्रवेश के २१ दिन पश्चात् होता है और सूर्य का वृषभ राशि में प्रवेश होने के ७ वें दिन उस तारका का अस्त होता है। अगस्त्योदय होने पर सात दिन तक अर्ध्यदान करने का यह व्रत १७ वर्षों तक होता है।

अगस्त्यपूजा = एक व्रत। अगस्त्य के उदय के समय (वर्षा ऋतु के अंत में) अगस्त्यमूर्ति की पूजा और किसी एक फल के भक्षण का त्याग इस व्रत में होता है।

अग्निक्रिया = और्ध्वदेहिक संस्कार। मृत के शरीर का विधिवत् दहन।

अग्निज्वाला = ऋषिजनों को पीडा देने वाले पापियों को मरणोत्तर प्राप्त होने वाला एक नरक लोक। (वायु. पु. १०१-१४८)

अग्नितीर्थ = पुराणों में उल्लिखित छह तीर्थक्षेत्र। जो यमुना, गंगा, गोदावरी, सरस्वती, साभ्रमती और कुब्जाम्रका के तीरों पर माने जाते हैं।

अग्निदग्ध = दहन से जिनकी अंत्यक्रिया हुई ऐसे पितर। अन्य प्रकार – गाडना या जलसमाधि से अंत्यक्रिया होने वालों को अनग्निदग्ध कहा जाता था।

अग्निदान = शीतनिवारण के हेतु गरीबों के लिये अखंड अग्नि की व्यवस्था मठ मंदिरों में करना। (दानचन्द्रिका)।

अग्निप्रवेश = पति की चिता पर किसी विधवा का सती होना।

अग्निप्रवेश = स्वेच्छा से देहत्याग करने की विधि। आठ प्रकार – पतंगपात, हंसपात, भृगुपात, मुसलपात, वृषपात, विमानपात, शाखापात, और सिंहपात। (शांति पर्व ३५-१७। तीर्थविवेचनकांड लक्ष्मीधर कृत)। प्रायोपवेशन, पर्वतपतन, जलप्रवेश आदि अन्य मार्गों से स्वेच्छया देहत्याग होता है।

अग्निमुख = पवित्र ब्राह्मण।

अग्निष्वात्त = एक पितृगण, जिसकी संख्या ६४ हजार मानी गई है। व्याख्या – "यान् अग्निः एव दहन् स्वदयति ते अग्निश्वात्ताः" अग्नि जिनका दहन करते हुए स्वाद लेता है। (शतपथ ब्रा. २-६-१-७)। भागवत पुराण के अनुसार दक्षिण दिशा में सोमपद नामक प्रदेश में इनका निवास होता है। (भाग. ४-१-६३)।

अग्न्युत्सव = पुरी के जगन्नाथ मंदिर में माघ पौर्णिमा को होने वाला महोत्सव। उत्कल के महाराजा महाभाव गुप्त ययाति इस उत्सव के प्रवर्तक माने जाते हैं।

अंगदेवता = स्मार्त और पुराणोक्त कर्मों में मुख्य देवताओं से संबधित गौण देवता।

अंगन्यास = संध्यादि धार्मिक विधि में विशिष्ट मंत्रों का उच्चारण करते हुए दाहिने हाथ से शरीर के अंगों को स्पर्श करना और उस अंग में मंत्रोक्त देवता का न्यास (स्थापना) करना।

अंगपूजा = पूजनीय देवता के प्रत्येक अंग का निर्देश करते हुए उस अंग की पूजा करना।

अंगयाग = मुख्य याग का एक गौण याग। इसके पांच प्रकार – समिध्, तनूनपात्, इडा, बर्हि और स्वाहाकार, इन यज्ञ संबंधित वस्तुओं के निमित्त होते है।

अंगारक चतुर्थी = मंगलवार को आने वाली संकष्ट चतुर्थी। इस तिथिव्रत में केवल रात्रि में भोजन होता है।

अंगारक चतुर्दशी = मंगलवार को आनेवाली चतुर्दशी। एक तिथिव्रत।

अंगिरस कुल = एक वैदिक ऋषिकुल अंगिरा का संबंध अथर्व वेद से है। इस के कुल में ३२ ऋषियों की गणना होती है जिन में गर्ग, मांधाता, अंबरीष, कण्व, मुद्गल, वामदेव, दीर्घतमा आदि नाम प्रसिद्ध हैं।

अंगिरसकल्प = अथर्ववेद के एक भाग की संज्ञा।

अग्नौकरण = श्राद्धविधि में ब्राह्मण के हाथ पर या पवित्र अग्नि में चरू का समर्पण।

अग्रजन्मा = अग्र अर्थात् विराट् पुरुष के मुख से उत्पन्न। यह ब्राह्मण और ब्रह्मदेव की विशिष्ट संज्ञा है। ज्येष्ठ भ्राता को भी अग्रजन्मा कहते हैं।

अग्रदानी = पतित ब्राह्मण को श्राद्धविधि में दान देने वाला।

अग्रदानी = असमी ब्राह्मण, जो प्रेतदहन के समय मंत्रपाठ करते हैं और प्रेत के निमित्त दान का स्वीकार करते हैं।

अग्रदीधिषु (षू) = (१) विवाहित स्त्री से विवाह करने वाला (त्रैवर्णिक) पुरुष। (३) बडी बहन के विवाह के पहले विवाहित हुई स्त्री।

अग्रहार = (अग्रं =ब्राह्मणभोजनं। तदर्थं हियन्ते = राजधनात् पृथक्क्रियन्ते ते अग्रहाराः क्षेत्रादयः। (मानसार)। अर्थात् ब्राह्मणों के योगक्षेम निमित्त दिये हुए भूभाग पर बसा हुआ अध्यापननिष्ठ ब्राह्मणों का ग्राम। भारत के सभी प्रदेशों में ऐसे अनेक अग्रहार थे। काश्मीर में भट्टाग्रहार संज्ञा थी। सभी अग्रहार विद्याके केन्द्रस्थान थे।

अग्रिय = विष्णुपुराण में वर्णित एक सुनहरे रंग का पातालस्थ प्रदेश (विष्णु पु. २५-२-३)।

अघमर्षण = ऋग्वेद के दशम मंडल के पापप्रक्षालन सूक्त की एक संज्ञा (ऋग्वेद = १०-१९०) संध्यावन्दन तथा स्नान विधि के समय इस सूक्त का पाठ करते है। इस सूक्त के द्रष्टा का नाम अघमर्पण था।

अघमर्पण व्रत = तीन दिनों का एक प्रायश्चित्त स्वरूप व्रत। सभी पातकों (अघ) का परिमार्जन करने हेतु दिन में तीन वार जलाशय में डूबकी लगाते हुए अघमर्षण नामक ऋग्वेद के दशम मंडल के सूक्त का पाठ तथा जागरण आदि इस व्रत में होते हैं।

अघोर = वायुपुराण (३२-२९-७६) के अनुसार ३२ वें कल्प में धारण किया हुआ महेश्वर का अवतार। यह चतुर्मुख, अष्टभुज, मुंडमालाधारी, श्मशानवासी और मरुत्त दैत्य का संहारक माना गया है। भाद्रपद कृ. 14 तिथि को अघोरा चतुर्दशी कहते हैं। अघोरपंथी लोग इस दिन विशिष्ट शिवोपासना करते हैं।

अघोर = आगमान्त शैव संप्रदाय की उपास्य सदाशिव मूर्ति के पांच मुखों में से एक।

अंगत्रय (धर्म के) = आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त।

अचलदान = (अचल = पर्वत का दान) दानचंद्रिका के अनुसार किसी चतुरस्रमंडप में दर्भों पर धान्य, लवण, गुड, हेम (सोना), तिल, कार्पास, घृत, रत्न, रजत (चांदी), और शर्करा इन दस पदार्थों की पर्वताकार स्थापना करके उनका दान पर्वकाल में या मंगल विधि में देना पुण्यप्रद कहा गया है।

अचला सप्तमी = मार्गशीर्ष शु. ७ अथवा माघ शु. ७ को यह सूर्यव्रत होता है। शिवपार्वती इस के मुख्य देवता हैं। वसिष्ठ ऋषि ने सगर राजा की इन्दुमती नामक वेश्या को इस व्रत का पालन करने कहा था।

अच्छिद्र = श्राद्ध के समय ब्राह्मण 'अच्छिद्रं भवतु" यह आशीर्वाद देते हैं जिसका यह भाव है कि श्राद्धादि कर्म दोषरहित हों। (छिद्र = दोष, न्यूनता)

अच्छोदा = बर्हिषद नामक पितरों की मानस कन्या। अमावसु नामक पितृगण के पुरुष से विवाह करने से वह योगभ्रष्ट एवं शापग्रस्त होकर मत्स्यगंधा (शंतनु की सत्यवती नामक पत्नी, व्यास ऋषि की माता) के रूप में पृथ्वी पर आयी।

अच्युत व्रत = पौष कृ. १ तिथि का एक वैष्णव व्रत।

अच्युतावास = (अच्युत = विष्णु) पीपल के वृक्ष का एक विशेषण।

अजएकपाद = एक वैदिक देवता। इसे अग्नि स्वरूप या रुद्र का एक रूप माना जाता है। (तैत्तिरीय ब्राह्मण- ३-१-२-८)

अजगरवृत्ति = स्वतः के लिये किसी प्रकार के कष्ट न करना। अनायास प्राप्त भोजन आदि विषयों का ग्रहण करना।

अजप = अनुचित ढंग से संध्योपासना करने वाला ब्राह्मण।

अजा = एक रहस्यमयी अष्टविद्याओं की देवता। इस का रूप १६ हाथ, पांव, ४ नख और १ सींग वाला माना गया है।

अजा एकादशी = श्रावण कृ. ११। पुराणकथा के अनुसार इस व्रत से हरिश्चंद्र को पूर्व ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई।

अजादान = एक व्रत जो चैत्रमास में किसी शुभ दिन दशभुजा पार्वती की चंदनरेखा की प्रतिमा की ज्वालामुखी नाम से पूजा तथा तीन दिन नक्त भोजन से किया जाता है। तीसरे दिन पांच अजाओं (बकरियों) का दान यज्ञीय आज्य के लिये ब्राह्मणों को देते हैं।

अजित = (१) चाक्षुष मन्वन्तर में क्षीरसागर के मंथन निमित्त विष्णु का एक अवतार। भाग. पु. ८-६। (२) स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषितापुत्र के रूप में विष्णु का अवतार (ब्रह्माण्ड पु. ३-३)। (३) असम, उग्रदृष्टि, सुनय, शुचिश्रवस्, केवल, विश्वरूप, सुदक्ष, मधुप, तुरीय और इन्द्रयुक्- नामक देवों का एक गण। (ब्रह्माण्ड पु. २-९-४६)।

अजिता = भवमालिनी देवी की अनुचरी देवता। (मत्स्य पु. १७९-७१)।

अजितागम = २८ आगमों में से एक शैवागम।

अजिनवासी = हिरन या बकरे का चर्म धारण करने वाला (ऋषि-मुनि) (शत. ब्राह्म- ३-९-१-१२)। मृगाजिन, व्याघ्राजिन, पवित्र माने जाते हैं। गजाजिन भगवान् शिव परिधान करते हैं। कृष्णाजिन यज्ञ में यजमान के लिए प्रशस्त माना जाता है। (ऐत. ब्रा. १-१-३)।

अट्टहास = वैवस्वत मन्वन्तर में हिमालय के अट्टहास नामक शिखर पर उत्पन्न एक शिवावतार।

अंडकटाह = भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यं इन सात लोकों की पुराणोक्त संज्ञा।

अतपस्क = तपश्चर्या की निन्दा करने वाला।

अतल = पुराणों के अनुसार सप्त पातालों में चौथा पाताल जिसमें दैत्य, राक्षस, नाग निवास करते हैं। (भाग. पु. २-५-४०)।

अतिकृच्छ् = 12 रात्रियों तक कठिन तपश्चर्या करने का व्रत।

अतिकृच्छ्र = पापक्षालन के लिये धर्मशास्त्रोक्त एक उपोषण व्रत। (मनु. ११-२१३।

अतिक्रुद्ध = तंत्रशास्त्र का एक २८ अक्षरी या ३१ अक्षरी मंत्र। यह मंत्र निन्द्य माना गया है।

अतिथिधर्म = अभ्यागत का सत्कार करने का अधिकार।

अतिदेश = एक स्थान पर कहे गये धर्माचार का अन्य किसी कार्य में प्रयोग करना; जैसे प्रकृतियाग में विहित अंगों का विकृतियाग में प्रयोग होता है।

अतिपातक = पुरुष ने माता, कन्या या स्नुषा से तथा स्त्री ने पुत्र, पिता या श्वसुर से व्यभिचार करना (विष्णुधर्मोत्तर पु. ३४-१-२)।

अतिबला = देवमूर्ति के अभिषेक में उपयुक्त एक ओषधि। (मत्स्य पु. २६७-१४)।

अतिरुद्र = ११ महारुद्रों का अनुष्ठान।

अतिवर्णाश्रमी = वर्ण और आश्रम के धर्म नियमों के बंधनों से मुक्त। उच्चकोटि का संन्यासी महात्मा।

अतिवर्तन = मनुस्मृति में (८-२९०) कथित दस क्षम्य अपराधों में से एक। उदा. किसी कारणवश स्नान-संध्यादि नित्य विधि का पालन न होना।

अतिविजया = पुनर्वसु नक्षत्र की शुक्ल एकादशी। यह उपवास व्रत है।

अतिवृद्ध मंत्र = 4 सौ से 1 हजार तक वर्ण संख्या वाला आगमोक्त मंत्र जो सभी शास्त्रों में वर्जित माना गया है।

अत्यन्तवासी = गुरुकुल में आमरण निवास करने वाला विद्यार्थी।

अदत्तदान = देने पर भी जो दान नहीं माना जाता ऐसा भय, क्रोध, शोक, आदि के कारण दिया हुआ। घूस निमित्त, लाभ की अपेक्षा से, अपात्र व्यक्ति को पात्र मानकर दिया हुआ धनादि का दान 'अदत्त' माना गया है।

अदत्तपूर्वा = वह कन्या जिसकी सगाई न हुई हो।

अदारिद्र्य षष्ठी = दारिद्र्य निवारण के हेतु षष्ठी तिथि को उपवास-पूजा का व्रत। व्रतस्थ व्यक्ति एक वर्ष तक तेल, नमक का आहार वर्जित करता है।

अदिति = (१) संस्कार विधि में उपयुक्त गाय। (२) वेदों में देवों की, अष्ट वसुओं की, माता, विष्णु-पत्नी, इत्यादि स्वरूप में अदिति का उल्लेख हुआ है।

अदुःख नवमी= भाद्रपद शु. ९ तिथि। इस तिथि का विशिष्ट व्रत ९ वर्षों तक किया जाता है। व्रत की देवता है गौरी माता।

अद्भुत शांति = बोधायन गृह्यसूत्र में कथित एक हवनात्मक विधि। कौआ घर में घुसना, सर्पदंश होना, इत्यादि प्रकार के अशुभ दर्शन होने पर यह हवन विधि होता है। इसके प्रमुख देवता इन्द्र हैं।

अद्वैत = कुबेर-पुत्रस्वरूप भगवान् शिव का अवतार।

अधमर्ण = (अधम + ऋण) कर्जदार। उत्तमर्ण = साहूकार।

अधर्म पुरुष = भागवत पुराण (३-१२/४-८) के अनुसार ब्रह्मा के पृष्ठभाग से उत्पन्न काल्पनिक पुरुष। इसके आप्त स्वजन = भार्या - मृषा। कन्या - माया। दंभ - पुत्र। दंभ और माया की मिथुनात्मक संतान = लोभ - निकृति, क्रोध - हिंसा, कलि-दुरुक्ति, मृत्यु-भीति, और निरय-यातना। इस रूपक में अधर्म का स्वरूप-लक्षण कहा गया है।

अधःशिरस् = (या अधोमुख) पुराणों के अनुसार फलज्योतिष पर उपजीविका करने वालों तथा निषिद्ध दान ग्रहण करने वालों को प्राप्त होने वाला नरक लोक। (विष्णु पु. २-६-४)।

अधिवासन = मूर्ति में देवता की प्राणप्रतिष्ठा करना।

अधिवासन = देवता मूर्ति की मंदिर आदि में पूजा के हेतु स्थापना करते समय हलदी, अक्षता, दधि, घृत, दूर्वांकुर, चंदन आदि द्रव्यों से संस्कारशुद्धि करना। इन संस्कार-द्रव्यों की संख्या २२ मानी जाती है।

अधिदैव (अधिदैवत) = किसी वस्तु की अधिष्ठात्री देवता। (पुरुषश्चाधिदैवतम्- भ. गीता)।

अधिविन्ना = वह स्त्री जिसके रहते हुए पति दूसरा विवाह करता है। मनु. ९-८०-८३)।

अधिवेदन = धर्मपत्नी के होते हुए दूसरी स्त्री के साथ प्रेमविवाह करना।

अधिवेत्ता = एक स्त्री होते हुए दूसरी से विवाह करने वाला।

अधोमुखजननशांति = बच्चे का जन्म अधोमुख होने पर यह विधि होती है। इस हवन में रुद्राध्याय और रुद्रसूक्त का पठन महत्त्वपूर्ण माना है।

अध्यावाहनिक = छह प्रकार के स्त्री धनो में एक प्रकार। वह धन जो स्त्री अपने पिता के घर से पति के घर को बिदा होते समय प्राप्त करती है। (अध्यावाहनं - पितृगृहात् पतिगृहगमनम्)।

अध्यासविधि = बहिरंग उपासना के चार प्रकारों में से एक। शिवलिंग, शालिग्राम आदि प्रतीकों में शिव, विष्णु आदि देवता को देखना (शिवगीता)।

अध्यूढा = देखिये अधिविन्ना।

अनग्नि = श्रौत और स्मार्त कर्मों से विरहित। अधार्मिक।

अनघाव्रत = मार्गशीर्ष व. ८ का एक काम्यव्रत। व्रतावधि = एक वर्ष। अनघ और अनघा नाम से स्थापित नारिकेल फल की पूजा इसमें विहित है। इसी तिथि को अनघाष्टमी कहते है।

अनघाष्टमी = मार्गशीर्ष व. ८। वासुदेव-लक्ष्मी की दर्भमय मूर्ति का पूजन करने का व्रत।

अनंगत्रयोदशी = मार्गशीर्ष शु. १३ से एक वर्ष तक

करणीय एक व्रत। इसमें वस्त्र पर कामदेव की प्रतिमा चित्रित कर उसका पूजन होता है।

अनरक-व्रत = हेमंत और शिशिर ऋतु का एक काम्य व्रत। (चतुर्वर्गचिंतामणि)।

अनवलोपन (अनवलोभन) = गर्भवती का गर्भस्राव न हो इस निमित्त दूसरे या तीसरे मास में यह संस्कार होता है।

अनंगदान व्रत = वेश्याओं का एक काम्य व्रत। रविवार को पुनर्वसु, पुष्य या हस्त नक्षत्र आने पर यह व्रत होता है। मर्यादा– १३ महीने।

अनंगव्रत = मार्गशीर्ष शु. १३ का काम्य शैव व्रत। व्रतावधि – एक वर्ष।

अनन्त-चतुर्दशी = भाद्र शु. १४। एक काम्य व्रत। अवधि – १४ वर्ष। फल – गतवैभव का लाभ। इसमें १४ गांठ के रेशमी डोरे का विशेष महत्त्व माना है। यह व्रत संप्रदाय से किया जाता है।

अनन्त-तृतीया = भाद्रपद, वैशाख या मार्गशीर्ष की शु. ४ को गौरी देवता का व्रत।

अनन्त-पंचमी = फाल्गुन शु. ५ का एक व्रत।

अनन्तफल सप्तमी = भाद्र. शु. ७ को सूर्यपूजा का व्रत। अवधि – एक वर्ष।

अनन्तव्रत = मार्गशीर्ष मास में मृगशीर्ष नक्षत्र पर करणीय एक काम्य व्रत। फल – पुत्रप्राप्ति। व्रतावधि – १ वर्ष।

अनाश्रमी = जीवन के चार आश्रमों में से किसी से भी संबंध न रखने वाला तथा किसी आश्रमधर्म का पालन न करने वाला।

अनिच्छा प्रारब्ध कर्म = प्रारब्ध कर्म का एक प्रकार। इन प्रारब्ध कर्मों के फल का भोग पाने की जीवात्मा को इच्छा नहीं होती।

अनुकल्प = धर्मशास्त्र में सभी वर्णों के लिये सजातीय (या सवर्णीय) स्त्री के साथ विवाह का सामान्य आदेश दिया है। यही "**मुख्यकल्प**" कहा जाता है। मुख्यकल्प से दूसरे प्रकार के सामान्य नियमों को 'अनुकल्प' कहते हैं। किन्तु ब्राह्मणादि चार वर्णीय, क्षत्रिय, क्षत्रियादि त्रिवर्णीय, वैश्य, द्विवर्णीय, और शूद्र सवर्णीय स्त्री से विवाह करें यह अनुकल्प (या गौणकल्प) कहा है। (२) "यवाद्याभावे गोधूमाः" (गेंहू) या "मधुआदिअभावे गुडादयः" इत्यादि-स्वरूप दूसरे प्रकार के अनुकल्पों को "**प्रतिनिधिकल्प**" कहते हैं। (वाचस्पत्यम्)।

अनुपधा = (उपधा – अधर्मजनक दोष) श्रद्धा, मनः प्रसाद इत्यादि गुण, जिनके प्रादुर्भाव से धर्माचरण करने की प्रवृत्ति होती है।

अनुपातक = चोरी, हिंसा, व्यभिचार आदि। मनुस्मृति में अनुपातकों के ३० प्रकार बताये है।

अनुप्रवचनीय = उपनयनविधि के अन्तर्गत एक होम।

अनुमति = एक यज्ञीय देवता। राजसूय यज्ञ में फाल्गुनी पौर्णिमा को इसके निमित्त इष्टि होती है।

अनुमरण = विधवा स्त्री का सती होना।

अनुयोक्ता = अध्यापक का एक प्रकार।

अनुमरण = पति का निधन अन्यदेश में होने पर, उसकी पादुका को हृदय से लगाकर साध्वी स्त्री ने अग्निप्रवेश करना। यह विधि ब्राह्मण स्त्रियों के लिये निषिद्ध माना था।

अनुमंत्रण = पूजादि धर्मकर्म करते समय अभिषेकादि विधि के अनुरूप मंत्रों का उच्चारण।

अनुवहस्कंध = पुराणों के अनुसार ग्रह और सप्तर्षि मंडल के बीच विद्यमान छठे वातस्कंध में प्रमुख स्कंध। (ब्रह्माण्ड पु. ३-५-८७)।

अनुष्ठान = धार्मिक संस्कारों या कृत्यों का प्रयोग।

अनुस्तरणी = कात्ययन श्रौतसूत्र के अनुसार प्रेत का दहन करते समय जिस गाय या बकरी के अवयव प्रेत पर रखे जाते थे उसकी संज्ञा। (२) वह गाय जिसका बलिदान अंत्येष्टि संस्कार में दिया जाता था।

अनृतव्रत = प्रतिज्ञा का पालन न करने वाला।

अनेक गोत्र = दो कुलों से संबंध रखने वाला, दत्तक पुत्र।

अनोदना सप्तमी = (ओदन = भात) चैत्र शु. ७ मी का एक व्रत। इसमें षष्ठी और सप्तमी दोनों दिन ओदन न खाते हुए केवल जल पीते हैं।

अनौरस = विवाहिता स्त्री से उत्पन्न न हुआ किन्तु पुत्र के रूप में स्वीकृत किया गया बालक।

अंतरिक्ष = पृथ्वी और स्वर्ग के बीच का स्थान जहां नक्षत्र तथा यक्ष, गंधर्वादि देव योनि संचार करते हैं। (वायुपुराण २३-१०७)।

अन्तःपट = दो व्यक्तियों (वधू-वर) के बीच में कपड़े का पड़दा।

अंतेवासी = शिक्षा ग्रहण करने के निमित्त गुरु के समीप रहने वाला विद्यार्थी।

अंत्यक्रिया (या और्ध्वदेहिक) = मरणोत्तर शरीर का दहन, करना या गाड़ना। (३ प्रकार) – मरणोत्तर क्रिया। खनन, दहन, और त्याग (अरण्य में) या नदीप्रवाह में विसर्जन।

अंत्यज = ग्राम के बाहर रहने वाली जातियों के लोग। चण्डाल, श्वपच (कुत्तों का मांस खाने वाले)। क्षत्ता (सारथि)। सूत, वैदेहिक, मागध और आयोगव, धोबी, चम्हार, नट, बुरुड, केवट, मेद, भिल्ल आदि लोक अंत्यज और अस्पृश्य माने जाते थे।

अन्त्यावसायी = अंत्यजों में भी अंत्यज माने गये हीन लोग। चाण्डाल पुरुष + निषाद स्त्री, शूद्र पुरुष + वैश्य स्त्री की संतान।

अन्त्येष्टि = मृत व्यक्ति के पुत्र आदि द्वारा उसके शरीर की अग्नि में आहुति देना अर्थात् अन्त्यक्रिया करना। (इष्टि- यज्ञ) इसमें मृतात्मा का शरीर ही हविर्द्रव्य होता है। यह कर्म श्रौत और गृह्य दोनों प्रकार का होता है।

अंधकार = पुराणों के अनुसार क्रौंचद्वीप के अन्तर्गत एक

वर्ष (प्रदेश)। (ब्रह्माण्ड पु. २-१९-७२)।

अंधकूप = एक नरक-लोक का नाम। शास्त्रविरुद्ध आचरण करने वाले, हिंसक लोग इस नरक में मरणोत्तर यातना भोगते हैं। (भागवत पु. ५-२६-१७)।

अंधतामिस्त्र = एक नरक का नाम। धर्मविरोधी आचरण करने वाले तथा परस्त्री और परधन का अपहार करने वाले पापी मरणोत्तर 'इस नरक में यातना भोगते हैं। (भाग. पु. ५-२६-९/३-३०-३३/)।

अंधिनी = भगवती ललिता के किरिचक्र के तिसरे पर्व में स्थित एक देवता।

अन्नकूट = कार्तिक शु. प्रतिपदा के दिन गोवर्धन पर्वत (मथुरा के समीप) की पूजा का उत्सव। गोवर्धन पर्वत का अपर नाम है अन्नकूट। भगवान् कृष्ण की मूर्ति के सामने विविध प्रकार के मिष्टान्न रखकर नैवेद्य समर्पण करना।

अन्नप्राश (प्राशन) = सोलह संस्कारों में से प्रायः छठे महीने में होनेवाला शिशु संस्कार जिस में बालक को विधिवत् अन्न खिलाया जाता है।

अन्नसंस्कार = देवताओं के निमित्त अन्न का समर्पण।

अन्वारोहण = पति की चिताग्नि पर पतिव्रता स्त्री द्वारा आरोहण। सती-गमन या सहगमन।

अन्वष्टका (या अन्वष्टक्य) = श्राद्ध विधि का एक प्रकार। भाद्रपद कृष्ण पक्ष में मघा नक्षत्र पर यह विधि होती है, जो पिण्ड-पितृयज्ञ के समान होती है। इस विधि में स्त्री पितरों को सुरा समर्पण करने का आदेश पारस्कर गृह्यसूत्र में (३-३) दिया है।

अन्वष्टका = पौष, माघ और फाल्गुन के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि। इस तिथि को होने वाले श्राद्ध आदि विधि को अन्वष्टक्य कहते है।

अन्वाहार्य = अमावस्या के दिन किया जाने वाला मासिक श्राद्ध। अमावस्या को मासिक पिण्डपितृयज्ञ के बाद, यह विधि होती है।

अन्वाहार्य पचन = पुराणोक्त एक विशिष्ट अग्नि का नाम। भागवत पुराण के अनुसार इस अग्नि से वृत्रासुर की उत्पत्ति हुई। (६-९-१२)।

अपकर्ष = श्राद्धादि धर्मशास्त्रोक्त कर्तव्य जिस समय पर करने का विधान स्मृतिग्रंथ में किया होता है, उसे पहले ही निपट लेना। उदा. मासिक श्राद्ध मरणोत्तर ग्यारहवे या बारहवे दिन करना।

अपज्ञात = माता-पिता से गुणदृष्ट्या हीन पुत्र।

अनुजात = पितुतुल्य गुणवान् पुत्र।

अतिजात = पिता से अधिक गुणवान पुत्र।

अपपात्रित = किसी बड़े पाप के कारण जिसे संबंधियों के साथ सामान्य पात्रों में भोजन करने नहीं दिया जाता।

अपरा एकादशी = वैशाख वद्य ११ तिथि। पुत्र-प्राप्ति के हेतु उपोषण व्रत। (पद्म पुराण उत्तर खंड, अ ५)।

अपराजिता = दुर्गादेवी, जिसकी पूजा विजयादशमी के दिन की जाती है।

अपराजिता सप्तमी = भाद्रपद शुद्ध ७ तिथि। चतुर्थी से इस व्रत का आरंभ होता हैं। व्रतावधि – एक वर्ष।

अपराध = देवता की पूजा अर्चा आदि में ३२ प्रकार के अपराध (असत्य भाषण, रोदन, कलह इ.) वराह पुराण में कहे हैं। वैष्णवों के लिये वे सभी वर्जनीय हैं।

अपराधशत व्रत = भविष्य पुराण अ. १४६ में एक सौ अपराध कहे हैं। उनके क्षालन के निमित्त, किसी सप्तमी या अष्टमी से अथवा द्वादशी या अमावस्या से इस व्रत का आरंभ होता है। व्रतावधि – एक वर्ष।

अपर्युषित = रातभर न रखा हुआ भोज्य पदार्थ।

अपविद्ध = धर्मशास्त्र में कथित १२ प्रकार के पुत्रों में से एक प्रकार का पुत्र, जिसे माता-पिता द्वारा त्याग होने पर दूसरे किसी ने गोद लिया हो। (मनु. ९-१७१)।

अपसव्य = दाहिने कंधे के ऊपर से जनेऊ को शरीर के वाम भाग पर रखना। (यज्ञोपवीत नित्य बायें कंधे के उपर से लटकता है)।

अपसव्य (प्राचीनावीत) = यज्ञोपवीत दाहिने कंधे पर रखना। श्राद्ध विधि में जनेउ अपसव्य होता है।

अपस्नान (१) स्नान किये हुए पानी में पुनः स्नान। (२) मृतक स्नान।

अपःस्पर्श = पूजा आदि धर्म कर्मों में कोई अपराध (देखिये) होने पर शुद्धिनिमित्त आंख, कान, मुख, को जलस्पर्श करना।

अपांक्त (अपांक्तेय, अपांक्त्य) = जाति से बहिष्कृत किये जाने के कारण जिस व्यक्ति को अन्य लोगों के साथ भोजन आदि व्यवहार में एक पंक्ति में बैठने का अधिकारी नहीं माना जाता। पापाचरण, रोग आदि कारण से भोजन की पंक्ति में बैठने के अयोग्य (मनु. ३-१६७)।

अपाप संक्रांति = एक काम्य व्रत जो किसी संक्रांति से प्रारंभ होता है। व्रतावधि – एक वर्ष।

अपामार्ग = एक पवित्र वनस्पति जिसका उपयोग यज्ञ, पूजा आदि कर्मों में होता है। (अघाडा – लौकिक नाम)।

अपुत्रिका = पुत्रहीन पिता की पुत्रहीन कन्या।

अपुष्पिणी = रजोदर्शन न होने वाली स्त्री, जो अभोग्य मानी गई है।

अपोशान = भोजन के पूर्व और अंत में मंत्रोच्चार सहित आचमन।

अप्रकाश = एक पुराणोक्त देवगण। यमराज इसके अधिपति हैं। (ब्रह्माण्ड ३-१-५२)।

अप्रतिष्ठ = चतुर्थ नरक का नाम। इस नरक में पडे हुए जीव नित्य भ्रमण करते हैं। (ब्रह्माण्ड पु. 4-2-150, 184)।

अभिमंत्रण = विशेष मंत्रों को पढ़कर वस्तु को संस्कारित करना।

अभिरूपपति = एक संस्कार जो परलोक में अच्छा पति प्राप्त होने के लिये किया जाता था।

अभिवादन = एक शिष्टाचार। ज्येष्ठ और श्रेष्ठ व्यक्ति से शुभ-आशीर्वाद प्राप्त करने की अपेक्षा से चरणस्पर्शयुक्त वंदन या नमन। **नित्य अभिवादन** – माता, पिता और गुरु को। **नैमित्तिक अभिवादन** – प्रवास से प्रत्यागमन, यशोलाभ आदि निमित्त ज्येष्ठ व्यक्तियों को और **काम्य अभिवादन** मंगल प्राप्ति की कामना से किया जाता है।

अभिवादनीय नाम = माता-पिता को अभिवादन करते समय पुत्र ने उच्चारणीय नाम, जो नामकरण संस्कार में रखा जाता है किन्तु व्यवहार में गुप्त रखा जाता है।

अभिश्रवण = श्राद्ध के अवसर पर बैठे हुए ब्राह्मणों द्वारा वेदमंत्रों का पाठ।

अभिषेक = पूजा विधि में देवता पर जल सिंचना।

अभिषेक के प्रकार = मूर्धाभिषेक, राज्याभिषेक, यौवराज्याभिषेक, पुष्याभिषेक, पट्टाभिषेक, पुनरभिषेक, देवाभिषेक, अमृताभिषेक। वज्रयान बौद्ध संप्रदाय में सात प्रकार के अभिषेक – उदकाभिषेक, मुकुटाभिषेक, पट्टाभिषेक, वज्रघंटाभिषेक, वज्रव्रताभिषेक, नामाभिषेक और अनुज्ञाभिषेक।

अभिषेक मंत्र = स्वर्णधर्मानुवाक, महापुरुषविद्या, पुरुषसूक्त, सामनीराजन आदि की संज्ञा। पूजा में इन मंत्रों सहित सुगंधित जल से देवतामूर्ति का अभिषेक होता है। षोडशोपचार पूजा में अभिषेक एक उपचार है।

अभीष्ट तृतीया = मार्गशीर्ष शु. ३ को करणीय एक तिथि व्रत। इसमें गौरी माँ की पूजा प्रमुख है।

अभीष्ट सप्तमी = एक तिथिव्रत। किसी भी मास की शुद्ध सप्तमी से इस व्रत का आरंभ होता है।

अभ्यंग (मांगलिक) स्नान = शरीर को सुगंधि द्रव्य तथा तेल से मर्दन करने पर उष्णोदक से स्नान। मंगल कार्य के प्रारंभ में अभ्यंग स्नान आवश्यक होता है।

अभ्युक्षण, अवोक्षण और प्रोक्षण = पवित्र जल से सिंचन। – श्राद्ध विधि में पुष्प, दर्भ आदि पर अभ्युक्षण दहिने (पलटे) हाथ से होता है। – स्थंडिल पर स्थापित अग्नि में अवोक्षण बांये (तिरछे) हाथ से होता है। और – भोजन परोसने पर प्रोक्षण तुलसीदल से होता है।

अभ्युक्षण = धर्मविधि में अभिषेक या सिंचन द्वारा संस्कार।

अभ्युत्थान = किसी के सम्मान में अपने आसन से उठना।

अभ्युपपत्ति = भाई की विधवा पत्नी का नियोगविधि द्वारा गर्भवती होना।

अंबिका = पुराणों के अनुसार रुद्रपत्नी तथा विनायक माता (भागवत ३-१२-१३)। जलाशय निर्माण के समय इस देवता की पूजा होती है। (मत्स्य पु. ५८)।

अंबिकाव्रत = आषाढ शु. १४ को उपवास और पौर्णिमा को प्रातः अंबिका की पूजा करना।

अंबिकाहृदय = एक विशिष्ट मंत्र पाठ। मद्यपान के पातक का प्रक्षालन करने हेतु इस मंत्र का जाप कहा गया है।

अंबुवाची = असम प्रदेश में प्रसिद्ध कामाख्या देवी का आषाढ शुक्लपक्ष में एक उत्सव। इसमें तीन दिनों तक कामाख्या देवी के रजोदर्शन का काल माना जाता है। चौथे दिन मंदिर का दरवाजा खोलकर देवी के रजोदर्शन का प्रतीक लाल कपडा भक्तों को समर्पण करते है।

अमुक्ताभरण सप्तमी = भाद्रपद शु. ७ तिथि। स्त्रियों का तिथिव्रत। शिवपार्वती की आराधना प्रमुख।

अमृताभिषेक = मंगल कार्य में यजमान दंपती का विशिष्ट मंत्रोच्चार सहित अभिषेचन।

अमोघाक्षी = एक देवता का नाम।

अय = पूर्वजन्म के सत्कर्म।

अयनव्रत = उत्तरायण का प्रारंभ होने के दिन का एक काम्य व्रत।

अयाचित व्रत = याचना किये बिना मिला हुआ भोजन ग्रहण करना, अन्यथा उपवासी रहना।

अरण्य = नित्य अरण्य में निवास करने वाला दसनामी संन्यासी। (मठाम्नाय)।

अरण्य द्वादशी = एक वैष्णव व्रत। चैत्र, श्रावण या मार्गशीर्ष की शुद्ध एकादशी से एक वर्ष तक व्रतावधि। इस व्रत की पारणा अरण्य में होती है।

अरण्यषष्ठी = ज्येष्ठ शु. षष्ठी का पुत्रप्राप्ति निमित्त एक काम्यव्रत। अपर नाम स्कंध षष्ठी।

अरण्यायन (अरण्ययान) = वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश।

अरुंधती व्रत = चैत्र शु. 3 को प्रारंभ होने वाला स्त्रियों का व्रत।

अर्कविवाह = तीसरा विवाह अशुभ माना गया है। अतः तीसरी स्त्री से विवाह करने के पहले अर्क (मंदार वृक्ष) से विवाह करने का विधान है।

अर्कसप्तमी = उत्तरायण के किसी शुक्ल पक्ष में रविवार की सप्तमी से प्रारंभ होने वाला सूर्योपासना का व्रत। (पद्म पुराण- ५,७५,८६-१०६)।

अर्कसंपुट सप्तमी = फाल्गुन शु. सप्तमी। एक सूर्यव्रत। कालावधि – २ वर्ष।

अर्काष्टमी = रविवार की शुद्ध अष्टमी को प्रारंभ होने वाला शिव-पार्वती उपासना का व्रत।

अर्घ्य = देव, पितर, तथा वन्दनीय अतिथि को दूर्वा, पुष्प इत्यादि विविध पवित्र द्रव्यों सहिंत एक अंजलि उदक का समर्पण। यह षोडशोपचार पूजा का चौथा उपचार है।

अर्घ्यपात्र = पत्र, वनस्पति, शंख, शुक्ति अथवा उत्तम धातु का बना हुआ पूजा का पात्र।

अर्चन (पूजा) के आठ अधिष्ठान = प्रतिमा, स्थंडिल, अग्नि, सूर्य, जल, हृदय, गौ और ब्राह्मण। इनमें प्रथम अधिष्ठान श्रेष्ठ है, उसके अभाव में अन्य अधिष्ठान यथाक्रम ग्राह्य माने हैं। (भागवत पु. १०-८४-३७)।

अर्थकर्म = कर्ता में 'अपूर्व' की निर्मिति करने वाला कर्म। उदा. अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, प्रयाज आदि। तीन प्रकार – नित्य, नैमितिक और काम्य।

अर्धकृच्छ्र = एक प्रायश्चित्त व्रत। प्रथम चार दिन एकभुक्त रहकर दो दिन संपूर्ण उपवास।

अर्धनारीश्वर = शिव और पार्वती के संयुक्त स्वरूप की मूर्ति। भारतीय शिल्पकला, तत्त्वज्ञान तथा साहित्य में इस ईश्वर स्वरूप का दर्शन होता है।

अर्धलक्ष्मीहरि = शैवों के अर्धनारीश्वर के समान वैष्णवों की उपास्य देवता।

अर्धश्रावणिक व्रत = श्रावण शु. प्रतिपदा से एकभुक्त रहना। व्रतावधि – एक मास।

अर्धिक = ब्राह्मण द्वारा संस्कारित वैश्यपुत्र। (पराशर स्मृति)।

अर्धोदय पर्व = पौष या माघ मास की अमावस्या के दिन रविवार, श्रवण नक्षत्र और व्यतीपात का योग आना। इनमें एक योग न आने पर 'महोदय पर्व' कहा जाता है। इस पुण्य पर्व पर विशिष्ट व्रत करते हैं।

अर्यमा = (१) परमात्मा की पितृस्वरूप विभूति। (गीता १०-२९)। (२) १२ आदित्यों में एक। (३) एक देवता जिसकी पूजा गृहनिर्माण के समय होती है।

अलका = आठ से दस वर्ष तक की आयुवाली कन्या।

अलक्ष्मी = अपरनाम – ज्येष्ठा। पुराणों के अनुसार देवी लक्ष्मी की ज्येष्ठ भगिनी। पौष पौर्णिमा को अलक्ष्मी-नाशक स्नान करते हैं।

अलवण तृतीया = वैशाख, भाद्रपद और माघ शु. तृतीया। इस व्रत में आहार में नमक वर्जित है।

अवकीर्णी = ब्रह्मचर्य व्रत भंग करने वाला विद्यार्थी। (मनुस्मृति - ३-१५५)।

अवकृष्ट = झाडना-बुहारना आदि क्षुद्र काम करने वाला नौकर। (मनु. ७-१२६)।

अवक्षारण = उपनयन संस्कार के अन्तर्गत एक विधि, जिस में गुरु अपनी अंजलि में भरा हुआ जल शिष्य की अंजलि में छोड़ता है।

अवटनिरोधन = २८ नरकों में एक नरक लोक का नाम। किसी को कोठडी में अकारण बंद करने वाले पापियों को यह नरक प्राप्त होता है। (भागवत पु. ५-२६-७)।

अवतार = सज्जनों का परित्राण, दुर्जनों का संहार, तथा धर्म संस्थापना इन तीन प्रयोजनों से देवता या परमात्मा का देहधारण। गीता के अनुसार युग युग में परमात्मा-अवतरण इहलोक में होता है। (गीता. ४-८.८)। सामान्य जीवों के समान अवतार कर्मवश या प्रकृतिवश नहीं होता। उसका प्रकृति पर स्वामित्व होता है। यही जीव और अवतार में भेद है। पुराणों में मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि नाम १० अवतार निश्चित किये हैं।

अवतार = विविध प्रकार – अंशावतार, पूर्णावतार, नित्यावतार, गुणावतार, विभवावतार, सत्त्वावतार, अर्चावतार, अन्तर्यामी अवतार, लीलावतार (कल्पावतार), मन्वन्तरावतार, युगावतार, आविष्टावतार, (कुल १२)।

अवतार = विविध प्रकार – गर्भावतार, पतितावतार (किसी मृतदेह में प्रवेश करना), अवरदृश्यावतार, परदृश्यावतार, उभयदृश्यावतार, (यही अवतार जीवों का उद्धार करता है।)

अवतारवाद = मानव जाति का विशिष्ट परिस्थिति में कल्याण करने के लिए साक्षात् परमात्मा मानवरूप में लोकोत्तर गुणों से संपन्न होकर प्रकट होते हैं। यह मत वैदिक-अवैदिक सभी संप्रदायों में मान्य है। अलौकिक सद्गुणों से संपन्न सत्पुरुषों को तत्समान प्राचीन विभूति का अवतार सर्वत्र मानते हैं। पुनर्जन्मवाद में जीव के तथा अवतारवाद में ईश्वर के अनेक जन्म माने जाते हैं।

अवधूत = वर्णाश्रमधर्म के बंधनों से मुक्त होकर वर्ताव करने वाला मुक्तसंग पुरुष। **चार प्रकार** – ब्रह्मावधूत, शैवावधूत, वीरावधूत, और कुलावधूत। रामानंदी और नाथपंथी साधु पुरुष। भगवान् दत्तात्रेय का एक नाम।

अवनेजन = श्राद्ध-विधि में पिंडदान करते समय दर्भों पर जलसिंचन। (मत्स्य पु. १७-४७)।

अवपात्रित = ऐसा व्यक्ति जिसको बिरादरी के लोग अपने घरके पात्र में भोजन करने के लिए अनुमति नहीं देते। (अतः उसे निजी पात्र में भोजन करना पड़ता है।

अविघ्न-चतुर्थी व्रत = फाल्गुन शुद्ध चतुर्थी से चार महीनों तक प्रत्येक शु. चतुर्थी को विशिष्ट पद्धति से श्रीगणेश की आराधना।

अविधवा नवमी = भाद्रपद वद्य नवमी। मृत सधवा स्त्री की श्राद्धविधि इस दिन होती है।

अविधेय = पुराणों के अनुसार सातवें नरक का नाम।

अवियोग द्वादशी = भाद्रपद शुद्ध द्वादशी का तिथिव्रत।

अवियोग व्रत = मार्गशीर्ष शुद्ध तृतीया का स्त्री-व्रत। व्रतावधि – एक वर्ष।

अवीचि = २८ नरकों में एक का नाम (भागवत पु. ५-२६-२८)।

अवीरा = पति-पुत्रहीन स्त्री। "(पति-पुत्रवती नारी वीरा प्रोक्ता मनीषिभिः)"।

अवरूद्धा = भोगदासी जो परिवार की ही एक घटक मानी जाती है। उपभोक्ता के निधन के बाद इसे उपजीविका पाने का अधिकार होता है।

अशरीर = सांसारिक संबंधों का त्याग करने वाला संन्यासी।

अशून्यशयन व्रत = आषाढ कृ. द्वितीया से चार महिनों तक प्रत्येक द्वितीया को लक्ष्मी-विष्णु की पूजा का व्रत। फल – पति-पत्नी का वियोग न होना।

अशोक त्रि-रात्र व्रत =ज्येष्ठ, भाद्रपद या मार्गशीर्ष शु.

त्रयोदशी से तीन रातों का स्त्री-व्रत। व्रतावधि – एक वर्ष। अशोक वृक्ष की पूजा।

अशोक द्वादशी = आश्विन शु. दशमी से व्रतारंभ। व्रतावधि – एक वर्ष।

अशोक पौर्णिमा = फाल्गुनी पौर्णिमा से पृथ्वी पूजा का व्रत। व्रतावधि – एक वर्ष।

अशोक प्रतिपदा = आश्विन शु. प्रतिपदा को अशोक वृक्ष की पूजा। एक स्त्री-व्रत।

अशोक रोहिणीव्रत = जैनों का नाक्षत्र व्रत। प्रत्येक मास में रोहिणी नक्षत्र पर उपोषण का व्रत। व्रतावधि – २ वर्ष और तीन महिने।

अशोक व्रत = भाद्रपद शु. त्रयोदशी से प्रारंभ होने वाला स्त्रियों का त्रिरात्र व्रत। अशोक वृक्ष की पूजा इस में प्रमुख है।

अशोक षष्ठी = चैत्र शु. षष्ठी का तिथिव्रत।

अशोक संक्रान्ति = अयन संक्रांति या विषुव संक्रांति को व्यतीपात योग आने पर तिलदान करने का एक व्रत।

अशोकाष्टमी व्रत = आश्विन कृ. अष्टमी या वर्ष की सभी अष्टमियों को अशोका देवी की पूजा का तथा नक्त भोजन का व्रत।

अशौच = अपवित्रता। दो प्रकार – (१) जननाशौच जो परिवार में किसी बच्चे के जन्म के निमित्त माना जाता है। (२) मरणाशौच जो परिवार के किसी व्यक्ति की मृत्यु के कारण माना जाता है।

अंशभाग (या अंशल, अंशहर) = संपत्ति का उत्तराधिकारी।

अंशमान-आगम = २८ आगमों में से एक शैवागम।

अंशावतार = षोडशकलात्मक परमात्मा के कुछ अंशों में अवतीर्ण हुआ सगुण साकार स्वरूप। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य सभी अंशावतार कहे गये हैं। विशिष्ट कार्य के लिये परमात्मा का मनुष्यादि रूपों में जन्म। भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त, मत्स्य, कूर्म आदि सभी अंशावतार कहे जाते हैं। बौद्ध मतानुसार अवलोकितेश्वर को बुद्ध का अंशावतार मानते हैं।

अश्मकुट्टक = वानप्रस्थ (मनु. ६-१७)।

अश्मंतक = विजया दशमी के दिन पूजनीय वृक्ष। (मराठी में आपटा) विजयादशमी को इस के पत्ते सोना मानकर महाराष्ट्र में बांटते हैं।

अश्मनन्दना = एक देवता का नाम।

अश्मपृष्ठ = गया क्षेत्र की एक पवित्र शिला। अपर नाम – प्रेतशिला।

अश्मा = ब्राह्मण की और्ध्वदेहिक विधि में प्रेत की चिताग्नि की प्रदक्षिणा करते समय, जिस पत्थर से जलकुंभ का छेदन करते हैं। इस अश्मा में प्रेत की आत्मा का निवास दस दिनों तक माना जाता है। इसी पर श्मशान में तिलांजलि देते है।

अश्वक्रंद = अमृत का रक्षण करने वाले देवता।

अश्वत्थ प्रदक्षिणा व्रत = इस व्रत में प्रदक्षिणा की संख्या १ लक्ष से १२ लक्ष तक होती है।

अश्वत्थमूलसिंचन व्रत = वैशाख मास का व्रत।

अश्वत्थपट व्रत = वैशाख मास का एक स्त्रीव्रत। बंगाल में विशेष प्रचलित।

अश्वत्थ-सेचन व्रत = सन्तान की वृद्धि के उद्देश्य से चैत्र से चार महीनों तक अश्वत्थ वृक्ष का प्रतिदिन मूलसिंचन करना।

अश्वत्थोद्यापन = अश्वत्थ वृक्ष १२ वर्षों का होने पर एक यज्ञात्मक विधि जिस में वृक्ष का व्रतबंध और तुलसी से विवाह होता है।

अश्वदान = गरुड पुराण के अनुसार, अश्वमेध यज्ञ करने का सामर्थ्य न रखने वाला प्रस्तुत व्रत करता है। दान का अश्व शुभ्रवर्णी होता है।

अश्वदीक्षा = एक नक्षत्र व्रत। आश्विन मास में शुक्ल पक्ष में चंद्रमा स्वाती नक्षत्र में होने पर उच्चैःश्रवा (इंद्र का अश्व) की पूजा। उसी दिन नवमी तिथि होने पर घर के घोड़े की पूजा।

अश्वव्रत = इन्द्रपूजा का व्रत। अवधि – एक वर्ष।

अश्वारूढा = एक शाक्त देवता।

अश्वमुख = पिता, पितामह, और प्रपितामह इन तीन पितरों की संज्ञा। (अन्य प्रकार – नान्दीमुख)।

अष्ट उपद्वीप = भागवत के अनुसार क्षार समुद्र में जम्बू द्वीप के आसमंत में स्वर्णप्रस्थ, आवर्तन, रमणक, मंदर, हरिण, पांचजन्य, सिंहल और लंका नामक उपद्वीप होते हैं।

अष्ट आयुध (दुर्गा देवी के) = खड्ग, शूल, गदा, चक्र, शंख, धनुर्बाण, भुशुंडी (बंदूक), और परिध।

अष्ट आवरण = (वीर शैव संप्रदाय के अनुसार) विभूति, रुद्राक्ष, मंत्र (नमः शिवाय), गुरुसेना, लिंगपूजा, जंगम का आदर, पादोदक-ग्रहण, और प्रसाद-ग्रहण।

अष्टका = मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन महीनों की वद्य अष्टमी तिथि। इनमें माघ व. अष्टमी को एकाष्टका कहते है। वही प्रमुख मानी गई है।

अष्टका = उन तीन महीनों की अष्टमियां, जिन में पितरों का तर्पण होता है, अथवा इन तीन तिथियों को होने वाले श्राद्ध का अनुष्ठान।

अष्टका यज्ञ = सात पाकयज्ञों में से एक। इसका विवरण गृह्यसूत्र में है।

अष्टगंध = गोरोचन, चंदन, देवदारु, कर्पूर, कृष्णागरु, नागरमोथा, कस्तूरी, और कुंकुम इन आठ पवित्र द्रव्यों का मिश्रण जो पूजा आदि में उपयुक्त होता है।

अष्ट गुण = ब्राह्मण के आठ गुण – भूतदया, क्षांति, अनसूया, शौच, अनायास, मांगल्य, अकार्पण्य, अस्पृहा (गौतम स्मृति)।

अष्टतारा = तांत्रिक देवताओं का गण – तारा, उग्रा, महोग्रा, वज्रा, नीला, सरस्वती, कामेश्वरी, भद्रकाली।

अष्टदान = मरणोत्तर उत्तरक्रिया में दान योग्य आठ पदार्थ – आमान्न, जलकुंभ, धेनु, वस्त्र, भूमि, शय्या, छत्री, और आसन।

अष्ट दिक्पाल = पूर्व – इंद्र, आग्नेय-अग्नि, दक्षिण-यम, नैऋत्य-निर्ऋति, पश्चिम-वरुण, वायव्य-वायु, उत्तर-कुबेर, ईशान्य-ईशान।

अष्ट दिगज = ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदन्त, सार्वभौम, सुप्रतीक।

अष्ट देहधर्म = क्षुधा, पिपासा, मल, मूत्र, शीत, उष्ण, भय, और निद्रा।

अष्ट द्रव्य (यज्ञोपयोगी) = अश्वत्थ, उदुंबर, प्लक्ष, न्यग्रोध, समिध्, तिल, पायस और आज्य।

अष्ट भैरव = शैव संप्रदाय के आठ क्रूर देवता – असितांग, संहार, रुरु, काल, क्रोध, ताम्रचूड, चंद्रचूड और महाभैरव।

अष्टम-कालिक = एक व्रती जो पूरे तीन दिन तथा चौथे दिन का प्रातःकाल होने पर आठवें काल में भोजन करता है। (मनु. ६-१९)।

अष्टमंगल = ब्राह्मण, अग्नि, गाय, सुवर्ण, घृत, सूर्य, जल और राजा। **अथवा** – सिंह, वृषभ, गज, पूर्णकुंभ, व्यजन (पंखा), ध्वज, वाद्य और दीप।

अष्टमांगल्य = गर्भाधान संस्कार के बिना गर्भवती हुई स्त्री के लिये यह संस्कार आठवें मास में होता है। संस्कार की विधि गर्भाधान के संस्कार के समान होती है।

अष्टमातृका = ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, और महालक्ष्मी। **अथवा** रौद्री, वैष्णवी, ब्राह्मी, कुमारी, वाराही, नारसिंही, चामुण्डा, माहेन्द्री। (विवाहादि मंगल विधि में इनकी पूजा होती है।)

अष्टमीव्रत = शुक्ल पक्ष में नवमी युक्त और कृष्ण पक्ष में सप्तमी युक्त अष्टमी तिथि के व्रत। इस व्रत के ३० प्रकार माने हैं।

अष्टमूर्ति = पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चंद्र और यजमान (यज्ञ करने वाला) इन आठों को शिव की मूर्ति माना गया है। अष्टमूर्ति – शिव का एक विशेषण है।

अष्टमूर्ति = पूजा के लिये आठ प्रकार की मूर्तियां प्रशस्त मानी जाती हैं। – शिलामयी, काष्ठमयी, लोहमयी, लेप्यामयी (लिंपन से निर्मित) लेख्यमयी, सैकतमयी, मनोमयी और मणिमयी।

अष्टयाम सेवा = (याम – प्रहर)। पुष्टिमार्गी वैष्णव (वल्लभ) संप्रदाय में प्रचलित आठ प्रकार की कृष्णमूर्ति की आराधना।

अष्टयोग = एक प्रायश्चित्त का प्रकार। इसमें मंदिर का जीर्णोद्धार विहित है।

अष्टयोगिनी = भगवती दुर्गा की आठ परिचारिकाएँ – मंगला, पिंगला, धन्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा और संकटा। दूसरी नामावली – मार्जनी, कर्पूरतिलका, मलयगंधिनी, कौमोदिका, भेरुंडा, माताली, गायकी, जया, (अथवा शुभाचारा)।

अष्टलक्ष्मी = गजलक्ष्मी, सामान्य लक्ष्मी, इंद्रलक्ष्मी, महालक्ष्मी, वीरलक्ष्मी, कोलापुर महालक्ष्मी, लक्ष्मी और मही।

अष्ट वसु = वैदिक तथा पौराणिक देवतागण। नाम – धर, ध्रुव, सोम, आप, अनल, अनिल, प्रत्यूष, और प्रभास।

अष्ट वसु = द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु (भागवत)।

अष्टविध विवाह = ब्राह्म (सालंकृत कन्यादान) दैव (यज्ञ में ऋत्विक् को कन्यादान), आर्ष (धन लेकर), प्राजापत्य (धर्माचरणार्थ कन्यादान), आसुर (कन्या का शुल्क लेकर दान), गांधर्व (प्रेम विवाह), राक्षस (मारपीट से कन्या का अपहरण), पैशाच (कन्या की इच्छा के विरुद्ध हठात् अपहरण)।

अष्टविनायक = मुद्गल पुराण में उल्लिखित आठ गणपति क्षेत्र – मयूरेश्वर, बल्लालेश्वर, विनायक, चिंतामणि, गिरिजात्मज, विघ्नेश्वर, गणपति, और गजमुख। इनमें पांच गणपति महाराष्ट्र के अन्तर्गत दो पुणे जिले में, दो कुलाबा और एक नगर जिले में है।

अष्टशक्ति = श्रीविष्णु की विश्व की धारणा करने वाली शक्तियां – श्री, भू, सरस्वती, प्रीति, कीर्ति, शांति, पुष्टि और तुष्टि। अन्य नामावली – दीप्ति, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा और विद्युता।

अष्टांग (धर्म के) = देवपूजा, धार्मिक ग्रंथों का पठन, दान, तप, सत्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह और निर्लोभिता। (महाभारत वन पर्व २-७५)।

अष्टांग अर्घ्य = पूजा के अर्घ्यदान में उपयुक्त, जल, दूध, कुशाग्र, दही, अक्षता, तिल, यव और सफेद राई-इन आठ द्रव्यों की संज्ञा।

अष्टादश उपपुराण = सनत्कुमार, नारसिंह, नारद, शिवधर्म, आश्चर्य, कपिल, मानव, औशनस, ब्रह्माण्ड, वरुण, कालिका, माहेश्वर, सांब, सौर, पाराशर, भागवत, देवी भागवत।

अष्टादश पुराण = ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड, और ब्रह्माण्ड।

अष्टसखा = श्रीकृष्ण के प्रिय बालमित्र।

अष्टोत्तरशत लिंग =जिस शिवलिंग पर २०८ चतुर्भुज रेखांकित होते हैं।

असच्छास्त्र = धर्मविरोधी शास्त्र।

असपिण्ड = रुधिरसंबंध न होने के कारण जो पिण्डदान से संबंधित न हो। भिन्नवंशीय व्यक्ति।

असिधारा व्रत = उग्र दुष्कर व्रतों की संज्ञा। बीच में नंगी तलवार (असि) रखकर पति-पत्नी का एक शय्या पर शयन। पंचाग्निसाधन आदि व्रतों को भी असिधारा व्रत कहते हैं।

अस्तेय व्रत = 'अनादानम् अदत्तस्य' न दिये हुए पदार्थ का स्वीकार न करना। अस्तेय प्रतिष्ठा – एक योगसिद्धि है जिसके कारण योगी को सभी रत्नों का लाभ इस व्रत से होता है। (योग सूत्र- २-३७)। सभी में यह एक मान्यताप्राप्त व्रत है। (स्तेय = चोरी)।

अस्थिसंचयन = प्रेतदहन के बाद तीसरे दिन चिता से अस्थि वाहर निकालने की विधि। यह विधि समंत्रक होती है।

अस्थिसंचयन श्राद्ध = अस्थि-संचयन मंत्रसहित विषम दिन को होता है किन्तु श्राद्ध अमंत्रक होता है। तीर्थस्थान में अस्थिविसर्जन भी श्राद्धयुक्त होता है।

अहिर्बुध्न्य स्नान = एक नाक्षत्र व्रत। पंचगव्य युक्त जलस्नान का इसमें महत्त्व है।

आकर्षणी = रेवती का अनुसरण करने वाली एक देवता। (मत्स्य पु. १७८-७२)।

आकाशमुख = एक शैव संप्रदाय। इसके अनुयायी आकाश को देखते हुए उपासना करते है।

आकाश लिंग (नभोलिंग) = चिदंबरम् तीर्थक्षेत्र का शिवलिंग।

आक्रंदिक = आक्रंद राजा (देश के पृष्ठ भाग का मित्र राजा) की ओर प्रेषित दूत। (अष्टाध्यायी ४-४-३७)।

आक्षपण = उपवास या व्रत द्वारा आत्मशुद्धि करना।

आगम = अभ्युदय और निःश्रेयस के उपायों का ज्ञान देने वाला शास्त्र (तत्त्ववैशारदी – १०७)।

आगम = सृष्टि, प्रलय, देवतार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण, षट्कर्मसाधन, षट्कर्म – शांति, वशीकरण, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन मारण, और चतुर्विध ध्यानयोग इन सात लक्षणों से युक्त ग्रंथ (वाराही तंत्र)।

आगम = दो प्रकार – (१) वैदिक, (२) अवैदिक। तीन प्रकार – शैव, वैष्णव, और शाक्त। **शैवागम के चार प्रकार** – कापालिक कालामुख, पाशुपत और शैव। **शाक्तागम के दो प्रकार** – दक्षिणाचार और वामाचार। **वैष्णवागम के दो भेद** – वैखानस और पांचरात्र।

आगम आचमन = शौचादि विधि का एक अंग।

आगमान्त शैव = एक तांत्रिक शैव संप्रदाय जो दक्षिणभारत में प्रचलित है।

आग्नेय = शिखा धारण करने वाला ब्राह्मण। मस्तक पर बढ़ने वाली शिखा (चोटी) अग्नि का चिन्ह माना गया है। शिखा त्याग करने वाला संन्यासी आग्नेय नहीं कहा जाता।

आग्नेय = कुबेर के अनुयायी गंधर्वों का एक कुल।

आग्नेयकागम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

आग्नेय कृच्छ्र = एक प्रायश्चित्त का व्रत। इस का व्रती १२ दिनों तक केवल तिल ही खाता है।

आग्नेय व्रत = किसी नवमी तिथि को यह व्रत होता है। मुख्य विधि – विन्ध्यवासिनी देवी की पूजा।

आग्नेय स्नान = जलस्नान की असमर्थता होने पर शरीर को केवल भस्म लगाना।

आग्नेयास्त्र = अग्निवर्षणात्मक अस्त्र जो भरद्वाज ने अग्निपुत्र अग्निवेश को प्रथम प्रदान किया था।

आग्नेयी = पूर्व और दक्षिण के बीच वाली दिशा जिस का अधिपति अग्नि है।

आग्रभोजनिक = भोजन समारोह में अग्रस्थान ग्रहण करने का अधिकारी पुरुष।

आग्रहायणी = सर्प भय के कारण पलंग पर सोने की विधि प्रारंभ श्रावण पौर्णिमा से होने पर उस का त्याग आग्रहायणी (मार्गशीर्ष) पौर्णिमा को होता है। इसी त्याग को आग्रहायणी विधि संज्ञा है।

आग्रहारिक = अग्रहार अर्थात् भूमिदान ग्रहण करने का अधिकारी ब्राह्मण पंडित।

आघासिक (या आंधसिक) = वैदेहिक पुरुष और शूद्र स्त्री की संतति। ये लोग पकाया अन्न बेचने का व्यवसाय करते थे। अतः प्रस्तुत संज्ञा रूढ हुई।

आचमन = धर्म विधि के प्रारंभ में तीन बार मंत्रोच्चारपूर्वक हथेली में जल लेकर प्राशन करना और यथाक्रम अष्टांगों को स्पर्श करना। (अष्टांग – आंख, कान, नाक, हृदय और मस्तक आदि) आचमन के तीन प्रकार – श्रौत, स्मार्त और आगमोक्त।

आचमनीय = देवपूजा के षोडश उपचारों में एक। मुखप्रक्षालन के लिये पवित्र जल।

आचार = (दो प्रकार) – शास्त्रीय और लौकिक।

आचार दीप = आरती उतारने का दीप।

आचार लाज = धान की खीलें जिसकी किसी महापुरुष पर सम्मान प्रदर्शित करने के लिये बौछार की जाती है।

आचार्य = (१) मंत्रों की व्याख्या करने में समर्थ विद्वान। (२) आचार का बोध देने वाला। (३) शिष्य का उपनयन होने पर उसे वेद पढ़ाने वाला। (मनु. २-१४०)।

आचार्य कुल = ब्रह्मचर्य आश्रम की अपर संज्ञा। (आपस्तंब धर्मसूत्र)।

आचार्या = आध्यात्मिक गुरुआनी।

आचार्यानी = आचार्य की धर्मपत्नी।

आजगर व्रत = अजगर के समान यदृच्छा से प्राप्त अन्न पर शरीरपोषण करना। (भागवत ५-५-३२)।

आजानज देव = जन्मना देव।

आज्ञासंक्रांति = सर्वत्र सत्ता प्राप्त करने के हेतु किया जाने वाला एक सूर्योपासना का व्रत। किसी भी संक्रांति से इस व्रत का प्रारंभ होता है।

आज्यप = आज्य (बकरी का घी) का पान करने वाला एक पितृगण। वैश्यवर्ण में इनकी पूजा विहित है।

आज्यस्तोत्र = यज्ञ में प्रातःसवन के समय गायत्रसाम सहित गाये जाने वाले "अग्न आयाहि वीतये" आनो मित्रा वरुण, "आयाहि सुषमा हिते" और इन्द्राग्नी आगतं सुतम्" इन चार स्तोत्रों की संज्ञा।

आतिथ्य (या अतिथिपूजा) = अतिथि का स्वागत। यह गृहस्थाश्रम का श्रेष्ठ धर्म माना गया है।

आतुरसंन्यास = रुग्ण तथा आसन्नमरण पुरुष का संन्यासाश्रम में प्रवेश। संकल्प, क्षौर, सावित्री प्रवेश और प्रैषोच्चार इन विधियों के बाद "संन्यस्तोऽहम" इस वाक्य का उच्चारण, आतुर संन्यासी करता है।

आत्मनिवेदन = नवविधा भक्ति में ९ वीं भक्ति जिसमें भक्त परमात्मा को अपना सर्वस्व समर्पण करता है अर्थात् अहंता और ममता का संपूर्णतया त्याग करता है। "मै नहीं तू ही" यह वृत्ति।

आत्मबांधव = मामा, मौसी, और फूफा के पुत्र।

आत्मशुद्धि के विधि = (धर्मकृत्य के प्रारंभ में आवश्यक) – भूशुद्धि, भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, अन्तर्मातृका न्यास और बहिर्मातृका न्यास।

आत्मश्राद्ध = मरणोत्तर क्रिया का अधिकारी (पुत्रादि) न होने पर स्वयं अपना श्राद्ध करना। गरुड पुराण के अनुसार यह अधिकार राजा को प्राप्त है।

आत्रेयिका = रजस्वला स्त्री।

आदित्यवार नक्तव्रत = रविवार को हस्त नक्षत्र होने पर इस व्रत का आरंभ होता है। व्रतावधि – एक वर्ष। नक्तव्रत में केवल रात्रि को भोजन विहित है। (नक्त-रात्रि)।

आदित्यवार व्रत = मार्गशीर्ष मास के प्रथम रविवार से इस व्रत का आरंभ होता है। व्रतावधि – एक वर्ष। प्रत्येक मास के सूर्य का अलग नाम है। उस नाम से सूर्य की उपासना होती है।

आदित्य व्रत = (१) आश्विन मास में। (२) रेवती नक्षत्र युक्त रविवार को चतुर्दशी तिथि आने पर, अथवा (३) मघा नक्षत्रयुक्त रविवार को अष्टमी तिथि आने पर यह व्रत होता है। व्रतावधि – एक वर्ष।

आदित्यशयन व्रत = रविवार, सप्तमी तिथि, हस्त नक्षत्र और सूर्यसंक्रांति एक साथ आने पर यह व्रत होता है। व्रत निमित्त शैय्या का दान होता है।

आदित्यशांति व्रत = हस्त नक्षत्र युक्त रविवार का व्रत।

आदित्याभिमुख व्रत = प्रातः स्नान करके सूर्योदय से सूर्यास्त तक सूर्याभिमुख खडे रहकर महाश्वेता मंत्र का जप करना।

आदिनाग (आदिशेष) = भगवान् विष्णु के शयन का नाग।

आदिपुराण = १८ उपपुराणों में अग्रगण्य पुराण।

आदिवराह या यज्ञवराह = भगवान् विष्णु के वराह-अवतार की संज्ञा।

आदिवारम् = दक्षिण भारत में प्रचलित रविवार से संबंधित विविध व्रत।

आधिदैविक = अधिष्ठातृ देव से संबंध रखने वाला।

आंदोलन व्रत = चैत्र शु. तृतीया का एक व्रत। इस व्रत में शिव-पार्वती की मूर्ति को दोले पर रखा जाता है।

आनन्तर्य व्रत = मार्गशीर्ष शु. तृतीया से प्रत्येक तृतीया का एक स्त्रीव्रत। व्रतावधि – एक वर्ष। फल – पति-पुत्रों के नित्य सान्निध्य का लाभ।

आनंद-तृतीया व्रत = वैशाख, भाद्रपद और मार्गशीर्ष की शु. तृतीया का एक ललितादेवी की उपासना का व्रत।

आनन्द-नवमी व्रत = व्रतारंभ – फाल्गुन शु. नवमी। व्रतावधि – एक वर्ष। व्रतकाल पंचमी से नवमी के चार दिन। इन चार दिनों में क्रमशः एकभुक्त, नक्त, अयाचित और उपवास पालन और देवीपूजा करते हैं।

आनंद-व्रत = चैत्रादि चार महीनों में अयाचित जलदान का व्रत। (मत्स्य पु. १००-३१-३२)।

आनंद-सफल सप्तमी = भाद्रपद शु. सप्तमी का एक सूर्यपूजा व्रत। व्रतावधि – एक वर्ष।

आपद्धर्म = आपत्काल में जीविका के लिये अन्य वर्ण या जाति के कर्म धनार्जन के लिये करना। सभी श्रेष्ठ धर्मशास्त्रकारों ने आपद्धधर्म को संमति दी है।

आपाकदान = मंकर संक्राति के दिन स्थूल-सूक्ष्म मृत्तिका पात्रों का दान।

आपोशान = भोजन के प्रारंभ में और अंत में मंत्रपूर्वक आचमन।

आप्य = चाक्षुष मन्वन्तर का एक देवगण (भागवत पु. ८-५-८)।

आप्यायन = पितृकार्य में पितरों के प्रीत्यर्थ तिल, उदक आदि का समर्पण (तर्पण)।

आभूतरज = रैवत मन्वन्तर का एक देव गण। (मत्स्य पु. ९-२०)।

आभ्युदयिक श्राद्ध = उपनयन, विवाह आदि मंगल अवसर पर विहित श्राद्ध। इसे नान्दीश्राद्ध भी कहते हैं।

आमर्दकी व्रत = द्वादशी तिथि को आंवले की वृक्षछाया में लक्ष्मी-विष्णु की पूजा का व्रत। किसी भी मास की द्वादशी से इसका प्रारंभ होता है। व्रतावधि— एक वर्ष।

आमलक स्नान = आंवले का कल्क लगाकर स्नान जो सप्तमी, नवमी, पर्वकाल तथा ग्रहण काल में निषिद्ध होता है।

आमलकी एकादशी = फाल्गुन शु. ११ को उपवास और आंवले की वृक्षछाया में विष्णु-लक्ष्मी पूजन का व्रत।

आमश्राद्ध = द्रव्य तथा ब्राह्मण का अभाव, प्रवास आदि कारणों से पार्वण श्राद्ध करने की असमर्थता के कारण आमश्राद्ध विहित है। (स्कंद पु. ७-१-२०६)। इसमें भोजन के लिये धान्य आदि देते हैं। शूद्र समाज में आमश्राद्ध ही होता है।

आमषष्ठी व्रत = ज्येष्ठ शु. षष्ठी को पिष्टमार्जार तथा षष्ठीदेवी की पूजा का व्रत। फल – संतति की दीर्घायुष्यता।

आमुष्मिक = परलोक से संबंधित।

आम्रपुष्प भक्षण = चैत्र शु. प्रतिपदा या फाल्गुनी पौर्णिमा की एक विधि।

आयुध पुरुष = शंख, चक्र, गदा, त्रिशूल आदि देवताओं के आयुधों की मानवाकृति मूर्ति।

आयुध पूजन = आश्विन मास के नवरात्रोत्सव में ९ मी

तिथि पर शस्त्रों की पूजा।

आयुध व्रत = श्रावण से चार महीने शंख, चक्र आदि आयुधों की पूजा का व्रत। इसमें आयुध ही देवता का प्रतीक माना जाता है।

आयुर्व्रत = विष्णु मूर्ति के सामने रेखांकित शिवलिंग की पूजा। (मत्स्य पु. १००-२२)।

आयुष्मत्यः = सूर्य से उत्पन्न अप्सराओं का गण।

आयुष्मंत = एक देवता गण। इनकी संख्या १४ मानी है। (ब्रह्माण्ड पु. ४-१-१२२)।

आयुष्य = जातकर्म संस्कार के अन्तर्गत एक विधि। (आश्वलायन गृह्य सूत्र)।

आयु:संक्रांति व्रत = सूर्य संक्रांति के दिन सूर्य पूजा सहित दान।

आरण्य = चाक्षुप मन्वन्तर के एक प्रजापति।

आरात्रिकम् = पूजाविधि में देवप्रतिमा के सामने दीपक या कपूरदीप घुमाना। आरती उतारना।

आरोग्यदशमी व्रत = लक्ष्मी-विष्णु पूजा का व्रत।

आरोग्यद्वितीया व्रत = पौष शु. द्वितीया से एक वर्ष तक प्रत्येक शु. द्वितीया को चन्द्रकला का पूजन।

आरोग्य प्रतिपद् व्रत = चैत्र शु. प्रतिपदा से एक वर्ष तक सूर्यपूजा का व्रत।

आरोप विधि = बहिरंग उपासना के चार प्रकारों में से एक, जिसमें उपास्य की प्रतिमा में उपास्य का अध्यारोप होता है। यही मूर्तिपूजा का रहस्य है। (शिवगीता)।

आरोग्य सप्तमी = मार्गशीर्ष शु. सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक शु. सप्तमी को सूर्यपूजा का व्रत।

आर्तव्य = बर्हिषद् नामक पितरों की अपर संज्ञा।

आर्द्राक्षतारोपण = विवाह विधि के अन्तर्गत एक वृद्धाचार स्वरूप विधि जिसमें वधू-वरों के संबंधी लोग आर्द्र अक्षता उनके मस्तक पर समर्पण करते हैं।

आर्द्रानन्दकरी तृतीया = किसी भी मास की तृतीया को पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, मृग, हस्त या मूल नक्षत्र होने पर यह पुराणोक्त व्रत किया जाता है। इस में शिव-पार्वती की पूजा होती है।

आर्य = ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जो 'दास' नहीं होते।

आर्ष विवाह = विवाह के आठ प्रकारों में से एक, जिसमें वधूपिता जामात को गाय या बैल की जोड़ी देता है। (मनु. ९-१९६)।

आर्षेयवरण = विशिष्ट वैदिक कर्म संप्रदाय का स्वीकार। गोत्र के प्रवर को आर्षेय या आर्ष कहा जाता था। अतः प्रवर द्वारा प्रवर्तित वैदिक कर्म संप्रदाय का स्वीकार ही आर्षेयवरण है।

आलेख्य सर्प पंचमी = भाद्रपद शु. पंचमी। इस तिथि को रंगावली से आलिखित नाग के चित्र की पूजा होती है।

आलोक दान = सार्वजनिक स्थानों पर दीपक लगाना।

आवरण देवता = मनुष्य के लिंग (सूक्ष्म) शरीर के षट्चक्रों में स्थित देवता। इनकी संख्या ३६० मानी जाती है।

आवाप = प्रधान होम।

आवीचि = नरक का नाम (विष्णु पुराण- २-६-४)।

आवेशक = एक यक्षगण।

आशादशमी = (आशा- दिशा)। किसी मास की शुद्ध १० तिथि से इस व्रत का प्रारंभ होता है। व्रतावधि – छह मास से दो वर्ष।

आशादित्य व्रत = आश्विन मास के प्रथम रविवार से इस व्रत का प्रारंभ होता है। व्रतावधि – एक वर्ष। व्रतफल – कुष्ठ रोग निवारण। प्रतिदिन भूमि पर गोमय से मंडल करना और उस पर सूर्य को अर्ध्य समर्पण करना इस व्रत की विधि है।

आशीर्वाद = चिरं जीव इत्यादि इष्ट अर्थ का आविष्करण। (इष्टार्थावधारकं वाक्यम्) कनिष्ठ व्यक्ति ने अभिवादन करने पर ज्येष्ठ व्यक्ति आशीर्वाद का उच्चारण करते हैं। (देखिए वरदान)।

आशौच = अपवित्रता जो विशिष्ट समय के बाद स्नान से समाप्त होती है। दो प्रकार – जननाशौर और मरणाशौच। इसकी सामान्य अवधि दस दिनों की होती है। (पारस्कर गृह्य सूत्र – ३-१०-३०) (मनु. ५-५९)।

आश्रम = मनुष्य जीवन की एक विशिष्ट अवस्था। जीवन की प्रारंभिक अवस्था से उसके चार विभागों को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यास. संज्ञाएँ थीं।

आश्रम = यातायात का त्याग कर, आश्रम में नित्य निवास करने वाला संन्यासी। दसनामी संन्यासियों का एक प्रकार। (मठाम्नाय)।

आश्रमपद = तपोवन जहां ऋषिमुनि का आश्रम होता है।

आश्रमव्रत = चैत्र शु. चतुर्थी से आरंभ कर एक वर्ष के तीन तीन मासों में एक आश्रम में क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अविरुद्ध इस चतुर्व्यूह की उपासना करना।

आश्रायणी = काश्यप वंशीय गोत्रकार ऋषिगण। (मत्स्य पु. १९८-२)।

आश्लेषाजननशांति = आश्लेषा नक्षत्र पर जन्म होने पर एक विधि जिस में सर्पप्रतिमा की पूजा प्रधान होती है।

आश्वयुजीकर्म = सात पाकयज्ञों में से एक। इसका विवरण गृह्यसूत्र में किया है।

आषाढ = ढाक की लकड़ी का दण्ड जिसे संन्यासी धारण करते हैं।

आसन = (धर्मकृत्यों में उपयुक्त)- – कौशेयासन, कंबलासन, व्याघ्रचर्मासन, कृष्णमृगचर्मासन, कुशासन, काष्ठासन।

आसुर विवाह = वधू या वधूपिता को धन देकर होने वाला विवाह। (आश्व. गृ. सू. १-६-१)।

आसुर श्राद्ध = जिस श्राद्ध में निषिद्ध विशेषतः कर्णवेधहीन ब्राह्मण को निमंत्रित किया जाता है।

आसुरी दुर्गा = एक तांत्रिक देवता, जो अथर्वण और कटुका

की कन्या मानी जाती है।

आस्तिक = ईश्वर, परलोक, वेदवाक्य, तथा धर्म परंपरा पर विश्वास रखने वाला। (इस के विपरीत होता है **नास्तिक**)।

आहवनीय = एक श्रौताग्नि जिसे आहिताग्नि द्वारा चतुष्कोण कुण्ड में रखा जाता है।

आहाव = पशुओं को पानी पिलाने के लिये कुएं के पास बनाया हुआ कुण्ड।

आहुति = ब्रह्मा के मन से उत्पन्न अप्सराओं का एक गण। (ब्रह्माण्ड पुराण ३-७-१८)।

आहार्य अग्नि = लौकिक उपासनां का पवित्र अग्नि।

आह्निक = (१) दैनंदिन नियत समय पर किये जाने वाला धार्मिक कार्य। (२) पातंजल महाभाष्य के प्रकरण की संज्ञा।

आह्निक = दिन में करने योग्य धार्मिक कृत्य। छह प्रकार – स्नान, संध्या, जप, होम, देवतापूजा, अतिथिसत्कार, और वैश्वदेव। (पाराशर स्मृति १-३९)। (ये षट्कर्म द्विजों या त्रैवर्णिकों के लिये कहे गये हैं।)

आह्निक विधि (के पंचांग) = जप, होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मण भोजन। धार्मिक ब्राह्मण इन पांच अंगों से अपनी दैनिक उपासना करता है।

इच्छाश्राद्ध = श्राद्धों के १२ प्रकारों में से एक। इसी को इष्टिश्राद्ध भी कहते हैं।

इन्द्रध्वजोत्सव = भाद्रपद शु. अष्टमी से पौर्णिमा तक उत्सव-काल। चंपक, अर्जुन, कदंब वृक्ष के प्रदीर्घ स्तंभ की पूजा प्रमुख विधि है।

इन्द्र पौर्णिमासी = भाद्रपद पौर्णिमा को उपवास तथा ३० दम्पतियों के भोजन का व्रत।

इन्द्रमह = एक प्राचीन उत्सव।

इन्द्रव्रत = साठ संवत्सर व्रतों में से एक। व्रतस्थ व्यक्ति वर्षा ऋतु में आकाश के नीचे सोता है।

इन्द्रसावर्णि = १४ वें मनु का नाम।

इष्टजात्यवाप्ति = एक व्रत जो चैत्र या कार्तिक मास से इष्ट जाति में आगामी जन्म प्राप्त होने की इच्छा से किया जाता है। (विष्णधर्मोत्तर पु. ३-२००)।

इष्टापूर्त = यज्ञ और कूप, तालाब आदि परोपकारक स्थानों की निर्मिति। यही द्विजों का सामान्य धर्म है।

इष्टिश्राद्ध = देखिये इच्छाश्राद्ध।

ईशान व्रत = पौष में पुष्य नक्षत्र युक्त पौर्णिमा का एक व्रत। व्रतावधि – पांच वर्ष। (गाय और बैल का दान होता है।)

ईश्वरगणगौरी व्रत = चैत्र शु. १ से ३ तक शिव-गौरी की पूजा का सौभाग्यदायक व्रत। (यह राजस्थान में विशेष प्रचलित है।

ईश्वर व्रत = कृष्ण १४ को शिवपूजा का व्रत।

उग्रचंडा = एक शाक्तपंथी देवता, जो अष्टादश-भुजा सिंहारूढा और नरमुंडमालाधारिणी होती है।

उग्रतारा = हिमालयवासिनी उग्र रूपिणी दुर्गादेवी का अपर नाम। कालिका और कामाख्या इसी देवी को कहते हैं।

उच्चाटन = भूत, प्रेत, पिशाच और शत्रु को स्थानभ्रष्ट करने या दूर भगाने के लिए एक तांत्रिक प्रयोग। इसमें मंत्र जप तथा सरसों का हवन होता है।

उच्छिष्ट गणेश = वामाचारी तांत्रिक संप्रदाय की एक उपास्य देवता।

उच्छिष्ट चंडाली = तांत्रिक संप्रदाय की एक प्रेतारूढ देवता।

उच्छिष्ट पिशाच यंत्र = तांत्रिक साधक अपने विरोधकों का प्रतिबंध करने के लिए अपने रक्त में गोरोचन मिलाकर यह यंत्र भूर्जपत्र पर रेखांकित करता है।

उंछवृत्ति = एक विशिष्ट तपश्चर्या, जिसमें खेती की फसल काटने पर भूमि पर पड़े हुए धान्यकणों को जमाकर उसीसे उदरनिर्वाह करना। इसी को शिलोंछवृत्ति भी कहते हैं।

उत्क्रांति धेनुदान = आसन्नमरण अवस्था में एक गाय का प्रदान। (अपर संज्ञा – मोक्ष धेनुदान)।

उत्तर कौल = देखिये पूर्व कौल।

उत्तर पूजा = विसर्जन के समय देवता की अंतिम पूजा।

उत्थान = एक धर्मशास्त्रोक्त शिशुसंस्कार, जो जन्म के बाद १२ वे दिन होता है।

उत्थापनपिण्ड = मृतशरीर की अंत्ययात्रा के निमित्त पकाया चांवल। इसीसे छह पिंडों का दान होता है। अपर नाम – उत्क्रांतिपिण्ड।)

उत्पत्ति एकादशी = कार्तिक वद्य एकादशी।

उत्सर्जन (या समापन) = कुछ समय के लिए वेदाध्ययन स्थगित करने की विधि, जो पौष या माघ पौर्णिमा को होती है। (श्रावण पौर्णिमा को उपाकर्म = वेदाध्ययन के प्रारंभ की विधि होती है।)

उत्सर्ग विधि = वापी कूप आदि जलाशयों को शुद्ध करने की एक धार्मिक विधि, जिसमें जलाशय में प्रवेशित गाय का दान होता है।

उदक शांति = ग्रहपीड़ा के निवारण हेतु एक **धर्मशास्त्रोक्त** गृह्य विधि। यह विधि तीन, पांच, सात या नौ दिनों तक की जाती है। (बौधायन गृह्य शेष सूत्र- १-४)।

उदक सप्तमी = सप्तमी के दिन एक अंजलि जल पीकर उपोषण करना।

उदककुंभ दान = अक्षय्य तृतीया को पितरों की तृप्ति निमित्त जलकुंभ का दान।

उदकुंभ श्राद्ध = इसमें आमान्न और उदकुम्भ का दान होता है।

उदय सप्तमी = मार्गशीर्ष शु. सप्तमी का एक व्रत।

उदसेविका = भैरव की पत्नी का नाम है उदसेविका। भाद्रपद शु. १३ को स्कंद पुराण के अनुसार उनके विवाह की तिथि को यह उत्सव माना गया है। वायुपुराण में ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष उत्सवकाल कहा है।

उदासीन गृहस्थ = गृहस्थाश्रमी का एक प्रकार। ऋणत्रय से मुक्त होकर भार्या, धन आदि का त्याग कर, मुमुक्षु वृत्ति से संचार करने वाला। (गरुड़ पुराण)।

उद्गीत (या प्रोद्गीत) आगम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

उद्दालक व्रत = उपनयन संस्कार की वयोमर्यादा का उल्लंघन होने के कारण प्राप्त दोष के प्रायश्चित्त स्वरूप एक व्रत। वसिष्ठ धर्मसूत्र- ११-७६,७७।

उद्यापन = व्रत की समाप्ति की विधि, जो प्रायः व्रतारंभ की तिथि पुनः आने पर होती है। व्रत की पूर्ति के लिए उद्यापन विधि आवश्यक मानी जाती है।

उद्वृषभ यज्ञ = ज्येष्ट मास की पौर्णिमा को बैलों की पूजा करना तथा उन्हें दौड़ाना। (जैमिनीय न्याय १-३-८)।

उन्मीलनी एकादशी = अहोरात्र पूर्ण होने पर भी दूसरे दिन एक घटिका तक अवशिष्ट रहने वाली एकादशी। यह एक व्रततिथि मानी जाती है।

उपनयन = (मौजीबंधन या व्रतबंध)- बालक की द्विजत्व प्राप्ति के लिए आवश्यक एक संस्कार जिसका सभी गृह्यसूत्रों ने प्रतिपादन किया है। इसी संस्कार में गायत्री मंत्र का उपदेश बटु को होता है और संस्कार होने पर ब्रह्मचारी को गुरुकुल में भेजा जाता है।

उपनिषद् व्रत = उपनयन संस्कार प्राप्त बटु का एक महाव्रत, जिसका पालन एक संवत्सर तक होता है।

उपपातक = पंच महापातकों के अतिरिक्त अनैतिक आचार एवं व्यवहार। इनकी कुल संख्या ४९ बताई गई है, जिनमें गोवध, मातृपितृत्याग, व्रतलोप, अभिचार कर्म, पाखंड शास्त्राध्ययन, शूद्रवध, नास्तिकता, स्वाध्याय त्याग, अपत्यविक्रय, महायज्ञप्रवर्तन, ऋणाशोधन, व्रात्यत्व इत्यादि का अन्तर्भाव होता है।

उपपुराण = १८ प्रमुख पुराणो के अतिरिक्त उसीप्रकार के पंचलक्षणी प्राचीन संस्कृत ग्रंथ। इनकी संख्या भी १८ मानी गई है किन्तु संप्रति यह संख्या ५१ मानी जाती है। गणेश पुराण और हेमाद्रि के मतानुसार इनकी नामावली अलग अलग है। देवी भागवत एक महत्त्वपूर्ण प्रसिद्ध उपपुराण है।

उपभूषण = देवमूर्ति के पूजोपचार में अन्तर्भूत उत्तरीय वस्त्र, पानपात्र जैसे पलंग के उपभोग साधन।

उपमाता = मौसी, मामी, चाची, फूफी, सास और ज्येष्ठ देवर की पत्नी इन छह की संज्ञा। इन संबंधित आप्त स्त्रियों का आदर मातृवत् होता है। धाय को भी उपमाता कहते हैं।

उपयोग = धार्मिक कार्यों में संपत्ति का विनियोग।

उपवास = पापकर्म से निवृत्त होकर सत्कर्म तथा सद्गुणों से जीवन बिताना। बृहदारण्यक के अनुसार ब्रह्मज्ञान के चार उपायों (यज्ञ, दान, तप, अनशन) में से एक। अनशन अथवा अल्पाहार का व्रत। पातक का एक प्रायश्चित्त।

उपसंग्रहण = गोत्र, प्रवर, नाम का उच्चारण, कानों का स्पर्श करते हुए गुरुजनों के चरणों पर नतमस्तक होना।

उपांग ललिता व्रत = आश्विन शु. ५ का व्रत। ललिता इस व्रत की उपास्य देवता है।

उपाध्याय = उपजीविका के लिये शिष्य से शुल्क लेकर वेद-वेदांगों का अध्यापन करने वाला विद्वान्। (मनु. २-१४१)।

उपाय = आत्मशुद्धि के साधन। (पांच प्रकर)- वासचर्या, जप, ध्यान, ईशस्मृति, और प्रपत्ति। (नकुलीश दर्शन)।

उपासना = आराध्य देवता के समीप भक्ति और योगसाधना से पहुंचना। मोक्षसाधना के तीन अंगों में से एक। (तीन अंग- कर्म, उपासना, ज्ञान)।

उपासना = (पांच प्रकार) – अभिगमन, उपादान, इज्या स्वाध्याय और योग (रामानुज दर्शन)।

उपासना (प्रकार) = सकाम, निष्काम, नित्य, नैमित्तिक, (पूजा, मानसपूजा, नाम-जप, ध्यान, नवविधा भक्ति, कर्मयोग, तांत्रिक अनुष्ठान इत्यादि)।

उपासनात्रय = ब्रह्मोपासना, मंत्रोपासना और प्रतिमोपासना।

उपासनात्रयी = शंसन, (वैदिक मंत्रों से स्तुति) हवन और स्तवन (लौकिक स्तोत्र द्वारा स्तुति।)

उभय एकादशी = मार्गशीर्ष शु. 11 से एक वर्ष तक प्रत्येक एकादशी को विष्णु की उपासना का व्रत। (शुक्ल एकादशी को श्रीकृष्ण की उपासना होती है।)

उभयतोमुखी धेनु = गाय की प्रसूति के समय जब वत्स का केवल मुख बाहर आता है, तब उसे यह संज्ञा प्राप्त होती है। (ऐसी धेनु पृथ्वी का प्रतीक मानी जाती है। उसकी प्रदक्षिणा में पृथ्वीप्रदक्षिणा मानी जाती है।)

उभयद्वादशी व्रत = मार्गशीर्ष व. १२ से प्रत्येक द्वादशी को विष्णु के केशव, नारायण माधव, आदि २४ स्वरूपों की वर्ष भर पूजा का व्रत।

उभय नवमी = पौष मास की नवमी से प्रत्येक नवमी को देवी की पूजा का व्रत। प्रत्येक पूजा में देवी के अन्यान्य स्वरूप में पूजा होती है।

उभय सप्तमी = पौष मास में शुद्ध और वद्य सप्तमी को सूर्यपूजा का व्रत।

उमा चतुर्थी = ज्येष्ठ शु. चतुर्थी (उमा की जन्मतिथि) को उत्तम वर तथा सौभाग्य की प्राप्ति निमित्त एक व्रत। उपवास और कुंदपुष्पों से उमादेवी की पूजा इस व्रत का स्वरूप है।

उमादि पूजा = चैत्र शु. २ को उमा, शिव और अग्नि की पूजा का व्रत।

उमा-ब्राह्मणी = (ब्राह्मणी है। श्वेत-वर्णा पार्वती का अपर नाम)। ज्येष्ठ शु. ९ को ब्राह्मणी देवी की पूजा का व्रत।

उमा-महेश्वर व्रत = भाद्रपद पौर्णिमा से प्रारंभ। व्रतावधि – १५ वर्ष। शिव-पार्वती-मूर्ति की पूजा। घृत-तैल विरहित अन्न का भोजन इसमें आवश्यक है।

उमामाहेश्वरी तिथि =अष्टमी में नवमी और नवमी में अष्टमी

तिथि का योग।

ऊर्जा =अप्सराओं के १४ गणों में से एक गण जिसकी उत्पत्ति अग्नि से मानी है। (ब्रह्माण्ड पु. ३-७-१९)।

ऊर्ध्वपुण्ड्र =ललाट पर चंदन या गोपी चंदन का ऊर्ध्व-रेखांकन। वैष्णवों के दस संप्रदायों में अलग अलग प्रकार का ऊर्ध्वपुण्ड्र रेखांकित होता है। (नासादि केशान्तम् ऊर्ध्वपुण्ड्रम्)।

उल्का नवमी = आश्विन शु. ९ । महिषासुर मर्दिनी की पूजा का व्रत। व्रतावधि – एक वर्ष।

उष्मप =पितरों का एक वर्ग। पितरों की संख्या ३१ मानी है।

ऊर्ध्वरिता =निग्रही ब्रह्मचारी जिसका वीर्यपतन नहीं होता।

ऋतुगाथ =शुद्धता पूर्वक वेदमंत्रों का गायन करने वाला वैदिक पुरुष।

ऋतज =ऋत से उत्पन्न आद्य प्रजापति।

ऋतुगमन =गर्भधारणा के योग्य काल। स्त्री का रजोदर्शन होने पर १६ दिनों की अवधि। ऋतुकाल में स्वस्त्री-संभोग।

ऋतुशांति = अशुभ समय पर प्रथम रजोदर्शन होने पर एक हवन-विधि।

ऋतुस्नान = रजोदर्शन होने पर चौथे दिन का प्रथम स्नान।

ऋत्विक् = पाकयज्ञादि वैदिक कर्मों में निपुण पुरोहित।

वृषभ = (भागवतोक्त) विष्णु का एक अवतार, जो अजनाभ वर्ष (भारत वर्ष का प्राचीन नाम) का अधिपति था। भरत (जिसके प्रभाव से इस देश का नाम भारत हुआ) इसी का श्रेष्ठ पुत्र है।

ऋषिचान्द्रायण = एक प्रायश्चित्त स्वरूप व्रत जिसमें अत्यल्प आहार होता है।

ऋषिपंचमी = भाद्रपद शु. पंचमी को स्त्रियों का एक व्रत। इसमें कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वसिष्ठ (और अरुंधती) इस सप्तर्षि गण की पूजा होती है।

एकनक्षत्र जनन शांति = पिता-पुत्र का या दो भाइयों का जन्मनक्षत्र एक ही होने पर यह विधि होती है।

एकभुक्त व्रत = केवल मध्याह्न में ही भोजन करने का चैत्र मास का व्रत।

एकभुक्त सोमवार व्रत = चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, श्रावण या मार्गशीर्ष इनमें से किसी भी मास में प्रत्येक सोमवार को केवल नक्तभोजन (सांय भोजन) करना। प्रायः श्रावण मास में यह व्रत करने की प्रथा है।

एकराट् = संपूर्ण पृथ्वी-मंडल का अधिपति जो सम्राट् से भी वरिष्ठ माना गया है। (ऐतरेय ब्रा. ८-५)।

एकलिंग = जिस शिवलिंग की पंचक्रोशी में दूसरा शिवलिंग नहीं होता ऐसा स्थान।

एकवीरा = अद्वितीय वीर परशुराम की माता रेणुका का अपर नाम।

एकाक्षरा = गाणपत्य संप्रदाय की तांत्रिक उपास्य मूर्ति।

एकादश रुद्र = १६ हाथ वाले देवता। इनके ११ नामों में एकवाक्यता नहीं है। उनमें = विरूपाक्ष, त्र्यंबक, हर, और अहिर्बुध्न्य नाम प्रसिद्ध हैं।

एकादशी नामावली = (चैत्र से फाल्गुन तक शुक्ल पक्ष की) = कामदा, मोहिनी, निर्जला, शयनी, पुत्रदा, परिवर्तिनी, पाशांकुशा, प्रबोधिनी, मोक्षदा, प्रजावर्धिनी, जया और आमलकी।

एकादशी नामावली = (चैत्र के फाल्गुन तक कृष्ण पक्ष की) = पापमोचनी, वरूथिनी, अपरा, योगिनी, कामिका, अजा, इंदिरा, रमा, फलदा, षट्तिला, विजया।

एकानंशा = कृष्ण जन्म के समय यशोदा से उत्पन्न कन्यका। इसे दुर्गा देवी का अवतार माना जाता है। (अपर नाम- एकानंगा)।

एकान्तिक (या ऐकान्तिक) धर्म = भागवत धर्म का अपरनाम। परमात्मा की कृपा बिना जीव के उद्धार का अन्य कोई उपाय नहीं, यह इस का एकान्तिक अर्थात् निरपवाद सिद्धान्त है।

एकायन = एकान्तिक या भागवत संप्रदाय का उपनिषत्-कालीन नाम।

एकोद्दिष्ट = अंत्यक्रिया से संबंधित मृतात्मा के निमित्त श्राद्ध। तीन प्रकार – एकश्राद्ध (१० वें या ११ वें दिन), नवमिश्र (प्रतिमास एक वर्ष तक), और पुराणश्राद्ध (वर्षश्राद्ध के पश्चात् वार्षिक श्राद्ध)।

एवाव्रत = आश्विन अमावस्या का एक स्त्रीव्रत।

एषणासमिति = भिक्षा के ४२ दोषों से मुक्त अन्न का मुनिद्वारा स्वीकार।

ऐकान्तिक धर्म = भागवत धर्म का अपर नाम। इसी से उत्तरकालीन वैष्णव धर्म का विकास माना जाता है।

ऐन्द्राग्न = विशाखा नक्षत्र की अपर संज्ञा। (इन्द्र और अग्नि इस नक्षत्र के देवता होते है।)

ऐन्द्रीपूजन = आषाढ शुद्ध या वद्य ९ मी को ऐन्द्री पूजा का व्रत।

ऐरिणीदान = विवाह संस्कार के अन्तर्गत एक अंतिम समारोह। इस में ऐरिणी याने वंशपात्र का दान होता है।

ऐश्वर्य तृतीया = तृतीया तिथि को ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पूजा का व्रत।

ऐश्वर्य शक्ति = निंवार्क के हंससप्रदाय की परिभाषा में भूमि और लक्ष्मी, विष्णु की ऐश्वर्यशक्ति कही हैं।

ओघद्वादशी = भाद्रपद शु. १२ को जलाशय में स्नान करने का व्रत।

ओम् = अ- विष्णु, उ- महेश्वर, म्- ब्रह्मा। अर्थात् ओम् के अन्तर्गत अ, उ, और म् अक्षर समाविष्ट हैं जो क्रमशः विष्णु, महेश और ब्रह्मा के वाचक हैं। प्रणव शब्द ओंकार का ही वाचक है।

औद्वाहिक = वर को ससुराल से प्राप्त धन। यह स्त्रीधन होता है।

औपशयिक दोष = पतिपत्नी के संबंध में दोष। इससे विवाह-विच्छेद योग्य माना जाता है।

औरस = धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र। १२ प्रकार के धर्मशास्त्रोक्त पुत्रों में श्रेष्ठ माना जाता है।

और्ध्वदेहिक = मृतात्मा के दाहसंस्कार से लेकर सपिण्डीकरण तक होनेवाले पिण्डदानादि विधि। इस मरणोत्तर क्रियाविधि में छह प्रायश्चित्त (३ प्रेतशुद्धि निमित्त और ३ कर्ता की अधिकार प्रप्तिनिमित्त) एवं तिलांजलि, पिंडदान, श्राद्ध और दान का अन्तर्भाव होता है। क्षौर वैकल्पिक होता है। तिलांजलि प्रेत की तृषा का और पिंडदान क्षुधा का शमन करने हेतु होता है। १० पिंडों के दान से आत्मा को नया शरीर प्राप्त होता है और वह स्वर्ग सुख भोगता है।

कज्जलागौरी व्रत = श्रावण वद्य तृतीया का एक स्त्रीव्रत। फल – सौभाग्यवृद्धि।।

कटपूतनः = अपवित्र प्रेतभक्षक क्षत्रिय (या उसका प्रेतात्मा) (मनु. २-७१)।

कटिसूत्र बंधन = प्रतिवर्ष जन्म नक्षत्र पर कमर में सूत्र बांधने की विधि। आंश्वलायन गृह्य सूत्र के अनुसार यह सूत्र धर्मकृत्य के समय उतार कर रखना आवश्यक है।

कटोदकम् = मृत पितरों को तर्पण के लिए देने योग्य जल।

कदली व्रत = भाद्रपद शु. १४ तिथि का एक स्त्रीव्रत। वैशाख, कार्तिक, और मार्गशीर्ष की पौर्णिमा को भी करते हैं। केले के वृक्ष की पूजा इसमें प्रधान कर्म होता है।

कन्यकुमारि = दुर्गा या दुर्गी का एक विशेषण।

कन्या = ८ वर्षों की वालिका। अष्टवर्षा भवेत् कन्या। ९ प्रकार- (१) कुमारिका (द्विवर्षा), (२) त्रिमूर्तिनी (त्रिवर्षा), (३) कल्याणी (चतुर्वर्षा), (४) रोहिणी (पंचवर्षा), (५) काली (षडवर्षा), (६) चण्डिका (सप्तवर्षा), (७) शांभवी (अष्टवर्षा), (८) दुर्गा (नववर्षा), (९) सुभद्रा (दशवर्षा)।

कपर्दिविनायक व्रत = एक काम्य व्रत जो किसी भी रविवार से चार बार किया जाता है। कपर्दी (कौडी) का दान इस व्रत में महत्त्वूर्ण माना है।

कपालक्रिया = संन्यासी के प्रेत संस्कार में उसकी खोपड़ी नारियल से फोड़ना और उस रन्ध्र में शालिग्राम की स्थापना करना।

कमलषष्ठी = मार्गशीर्ष शु. षष्ठी का एक व्रत। इसमें कमलदान का महत्त्व होता है। एक वर्ष तक प्रत्येक षष्ठी को व्रत-पालन होता है।

कमला एकादशी = अधिक-मास की कृष्ण एकादशी का व्रत। फल – मोक्षप्राप्ति।

कमलाक्षी = एक तांत्रिक देवता जो त्रिलोचना और चंद्रकला धारिणी है।

करक चतुर्थी = कार्तिक वद्य चतुर्थी का स्त्रीव्रत। गौरी – प्रधान देवता। शिव, गणेश, कार्तिकेय-गौण देवता। चन्द्रोदय होने पर अर्ध्यप्रदान। फल – सौभाग्यप्राप्ति।

करकाष्टमी = कार्तिक वद्य अष्टमी का स्त्रीव्रत। रात्रि में गौरी की पूजा और नौ कुमारिकाओं का भोजन।

करगा महोत्सव = कर्नाटक में प्रचलित चैत्र कृ. सप्तमी से त्रयोदशी तक पंचपांडवों सहित द्रौपदी की पूजा का महोत्सव।

करणमंत्र = यज्ञ विधियों का नियंत्रण करने वाले वैदिक मंत्र।

करण मुद्रा = एक हस्तमुद्रा। तर्जनी और कनिष्ठिका खडी रखते हुए मध्यमा और अनामिका को अंगुष्ठ से दबाना।

करणव्रत = माघ शुक्ल पक्ष में बवनामक करण आने पर ७ बार यह व्रत होता है। अच्युत मूर्ति की पूजा और ७ ब्राह्मणों के भोजन से पारणाविधि इसमें होती है।

करन्यास = हाथ तथा उंगलियों में देवताओं की कल्पना से स्थापना। तांत्रिक पूजा में 'न्यास' का विशेष महत्त्व होता है।

करमाला = जप की मणिमाला के अभाव में करांगुलियों के पर्वों पर अंगूठा रखकर मंत्रसंख्याकी गणना होती है। इस करमाला से जप की एक विशिष्ट पद्धति होती है।

करवीर प्रतिपद् = ज्येष्ठ शु. प्रतिपदा का एक व्रत। इसमें करवीर वृक्ष की पूजा होती है।

कराष्टमी = आश्विन वद्य अष्टमी।

करिव्रत = मत्स्य पुराण में कथित एक काम्यव्रत। देवता – ब्रह्मा। विधि – सुवर्ण के हाथियों सहित रथ का दान। फल – आगामी जन्म में राज्यलाभ।

कर्कटी व्रत = कर्क राशि में सोमवार को सूर्य प्रविष्ट होने पर यह शैव व्रत होता है। इसमें कर्कटी (ककडी) की लता का महत्त्व होता है। फल – पतिकल्याण।

कर्णवेध = एक शिशुसंस्कार। इसमें उचित समय में शिशु के कान में छिद्र किये जाते हैं। गृह्यसूत्रों में इस संस्कार का उल्लेख नहीं।

कर्ता (तीन प्रकार) = (१) लौकिक (अपने इच्छित फल के निमित्त कर्म करने वाला), (२) सिद्ध (केवल परोपकारार्थ कर्म करने वाला), (३) दैवी (अंतवाहक या सूक्ष्म) शरीर के द्वारा जो नवीन सृष्टि का निर्माण करता है।

कर्म = धार्मिक क्रिया। बीजांकुरवत् यह प्रवाह स्वरूप और अनादि तथा फलप्रद होता है। दो प्रकार – (१) बंधनकारक (पुरुषार्थ), (२) अबंधनकारक (यज्ञ) अथवा श्रौत और स्मार्त अथवा अकर्म और विकर्म (गीता)।

कर्त्राश्रित कर्म = (तीन प्रकार) – शारीरिक, वाचिक और मानसिक।

कर्म = सृष्टि निर्मिति के क्षण में निर्विकार ब्रह्मतत्त्व में उत्पन्न प्रथम स्पंदन। इसी कर्म से सृष्टि की उत्पत्ति हुई। (वेदान्ती मत)।

कर्म = तंत्र शास्त्रानुसार छह प्रकार – शान्तिकरण, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, और मारण।

कर्म = धर्मशास्त्रानुसार ३ प्रकार – (१) नित्य (सन्ध्यावन्दनादि), (२) काम्य (यज्ञादि), (३) नित्यकाम्य (एकादशी व्रतादि) – एकादशी न करने से प्रत्यवाय दोष होता है। अतः वह नित्यकर्म है और पुत्र-प्राप्ति आदि कामना से उस व्रत का पालन होने से वह काम्य भी है। **नैमित्तिक**

कर्म मीमांसक मानते हैं। (उदा. ग्रहणश्राद्ध आदि)।

कर्म = (तीन प्रकार) – कर्त्राश्रित, भोक्त्राश्रित और स्वांगाश्रित।

कर्मकाण्ड = मंत्र और ब्राह्मण नामक वेद का भाग। इसमें श्रौत यज्ञ याग आदि कर्म प्रधानतया प्रतिपादित हैं।

कर्म पंचक = नित्य, नैमित्तिक, काम्य, प्रायश्चित्त, और निषिद्ध।

कर्मसाक्षी = मानवों के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर्मों के देखने वाले नौ देवता। पांच महाभूत और सूर्य, चंद्र, काल और यम।

कर्मांग देवता = श्रौत तथा स्मार्त कर्म के आरंभ में पुण्याहवाचन विधि में कर्मानुसार जिनका आवाहन होता है। विवाह, जातकर्म, वास्तुहोम, ग्रहमख आदि विविध कर्मों के देवता भिन्न भिन्न होते है।

कलश = मिट्टी या खोखले बड़े फल या खोखले काष्ठ का बना हुआ बड़ा घड़ा। सोमकलश या द्रोणकलश प्रायः लकड़ी के बनते थे जिनका उपयोग यज्ञ में होता था।

कलश = ५० अंगुलि परिघ, १६ अंगुलि ऊंचाई और अंगुलि मुख – इस परिमाण का विशिष्ट मंगल पात्र। नौ प्रकार – क्षितींद्र, जलसंभव, पवन, अग्नि, यजमान, कोशसंभव, सोम, आदित्य और विजय। (तंत्रसार) कमलपुष्प-युक्तकलश मंदिर के शिखर पर स्थापित होता है।

कलिवर्ज्य = ११ वीं शती से पराशर आदि स्मृति ग्रंथों में वानप्रस्थाश्रम, चिरकाल ब्रह्मचर्य, नियोगविधि, यज्ञ में पशुहिंसा, मांसश्राद्ध, समुद्रपर्यटन आदि अनेक आचार कलियुग में वर्जित कहे हैं। उन्हें कलिवर्ज्य कहते हैं।

कलंदर = कल – शास्त्रीय आदेश या शिष्टाचार का भंग करने वाला वर्णसंकरजन्य पुरुष। (कलं दृणाति इति कलंदरः) (ये प्रायः बैरागी होते हैं।)

कल्प = वेदविहित धार्मिक कर्मों की यथाक्रम स्थापना। कल्पसूत्र नामक ग्रंथों में वैदिक कर्मकाण्ड का सविस्तर प्रतिपादन हुआ है। संप्रति ४० कल्पसूत्र उपलब्ध हैं।

कल्पवास = माघ मास में प्रयाग के संगम क्षेत्र में पर्णकुटी में निवास।

कल्पादि (तिथि) = चैत्र शु. १, चैत्र शु. ५, वैशाख शु. ३, कार्तिक शु. ७, मार्गशीर्ष शु. ९, माघ शु. १३, और फाल्गुन कृ. ३ इन तिथियों की संज्ञा। कल्पादि तिथि पर श्राद्धविधि प्रशस्त मानी है।

कल्पसूत्र = कल्प एक वेदांग है। उसके तीन प्रकार – श्रौत, गृह्य और धर्म। तीनों में वैदिक समाज के आचार धर्म का विवरण किया है।

कल्याण सप्तमी = रविवार की शुक्ल सप्तमी का व्रत। व्रतावधि – एक वर्ष। अपरनाम - विजया सप्तमी।

कवच = (१) भूर्जपत्र पर आलिखित मंत्र या यंत्राकृति का तावीज जो गले में या भुजा पर धारण किया जाता है। इससें दैवी आपत्तियों से रक्षण होता है। (२) शरीरावयवों के रक्षण की प्रार्थना के श्लोक। उदा. रामरक्षा स्तोत्र में अन्तर्भूत रामकवच

कव्य = पितरों के प्रीत्यर्थ वेदज्ञानी ब्राह्मणों को देने योग्य अन्न, धान्य आदि पदार्थ।

कव्यवाह = एक पितृगण। तीन प्रकार – सोमप, आज्यप और स्वकालीन।

काकतुंडी = एक तांत्रिक देवता।

काकपक्ष = प्राचीन काल में शिशु के बाल काटते समय सिर के दोनों और किंचित् बाल रखे जाते थे। उन्हें 'काकपक्ष' कहते थे।

काकमिथुन दर्शन शांति = काक मिथुन की चेष्टा आदि दिखना अशुभ माना गया है। उस निमित्तहवन पूजन आदि विधि।

काकिनी = (१) एक तांत्रिक देवता। (२) अनाहत चक्र (योगशास्त्रानुसार शरीर में हृदयस्थ चक्र) की शक्ति की संज्ञा।

काचनकुंडली = तांत्रिक पद्धति के अनुसार बनाई गोबर की मूर्ति। सिद्धि की प्राप्ति के हेतु इसकी पूजा होती है।

कांचनगौरी व्रत = भाद्रपद शु. तृतीया को गौरी की पूजा का व्रत।

कात्यायनी व्रत = श्रीकृष्ण भगवान् का पतित्व प्राप्त होने की कामना से व्रज की गोपकन्याओं ने किया हुआ एक व्रत। (भागवत स्कं. १० अ. २२)। आधुनिक काल में श्रीरामकृष्ण परमहंस तथा प्रज्ञाचक्षु श्री गुलाबराव महाराज (विदर्भवासी) इस व्रत का पालन नियमानुसार मार्गशीर्ष मास में करते थे। इस व्रत में व्रती स्त्री-वेश में रहता है।

कानीन = अविवाहित कन्या का पुत्र। उदा. (महाभारत का कर्ण)। याज्ञवल्क्य के मतानुसार यह मातामह का पुत्र माना जाता है।

कापालिक = (१) कपाल धारण करने वाले शैवों का एक प्राचीन पंथ। शिवपुराण में इन्हें "महाव्रतधर" कहा है। (२) अवैदिक शैवागमों का एक प्रकार।

कामगायत्री = कामदेव-परक गायत्री छंद का एक मंत्र।

कामचंडाली = बौद्धों की एक तांत्रिक देवता।

कामत्रयोदशी = चैत्र शुद्ध त्रयोदशी।

कामदा एकादशी = चैत्र शुद्ध एकादशी।

कामदा सप्तमी = फाल्गुन शुद्ध सप्तमी से प्रत्येक सप्तमीपर सप्ताश्व सूर्य की पूजा का व्रत। व्रतावधि – एक वर्ष।

कामदेव पूजा = चैत्र शुद्ध द्वादशी का एक पूजाव्रत, जिस में पति अपनी पत्नी का सत्कार करता है।

कामदेवव्रत = वैशाख शुद्ध १२ से प्रारंभ होने वाला एक व्रत। व्रतावधि – एक वर्ष। प्रत्येक द्वादशी को कामदेव की पूजा होती है।

कामधेनुदान = सोने की सालंकृत सवत्स-धेनु का दान।

कामधेनु व्रत = कार्तिक कृष्ण एकादशी से पांच दिनों का व्रत। विष्णुमूर्ति का गोदुग्ध से अभिषेक, द्यूतक्रीडा, और

सार्वजनिक स्थानों में दीप जलाना इस व्रत के अंग हैं।

कामरतिमंत्र = "क्लीं कामदेवाय नमः" यह अष्टाक्षर काम-मंत्र हैं और "ऱ्ही रत्यै नमः" यह पंचाक्षर रतिमंत्र है।

कामव्रत = (१) कार्तिक मास में सूर्योपासना का व्रत। (२) पौष १३ से प्रत्येक त्रयोदशी को नक्त भोजन का व्रत। (३) किसी भी सप्तमी को सूर्यपत्नी सुवर्चला की पूजा का व्रत। (४) पौष शु. पंचमी को कार्तिकेय की उपासना का व्रत।

कामषष्ठी = माघ शुद्ध षष्ठी से एक वर्ष तक कार्तिकेय की पूजा का व्रत।

कामिका एकादशी = आषाढ वद्य एकादशी। श्रीधर (विष्णु) की उपासना का व्रत विहित है। (पद्मपुराण उत्तरखंड ५४)।

कामिक आगम = २८ आगमों में से एक।

कामिका व्रत = मार्गशीर्ष कृ. २ को चांदी या सोने की विष्णुमूर्ति का दान।

कामेशी = एक तांत्रिक देवी।

कामेश्वरी = गुवाहाटी की कामाख्या देवी के पांच रूपों में से एक देवीरूप।

कामेश्वरी = तांत्रिकों की अष्टतारा देवताओं में एक देवता।

काम्य कर्म = तीन प्रकार – (१) ऐहिक फलकामना मूलक, (२) पारलौकिक० और (३) इहामुत्र०।

काम्य कर्म = पुत्रेष्टि, राज्यप्राप्ति आदि विशिष्ट कामना से किये गये यज्ञ याग या चांद्रायण व्रतादि।

काम्यदान = अपत्य, विजय, ऐश्वर्य और स्वर्ग इन चार में से किसी एक की अभिलाषा से दिया गया दान।

कायिक पाप = (तीन प्रकार) – (१) अदत्तानाम् उपादानम्, (२) अवैध हिंसा, (३) परस्त्री समागम (मनु. १२-७)।

कारणागम = २८ आगमों में से एक।

कारु = यज्ञ कर्म करने में कुशल ऋत्विज (सायण)।

कार्तवीर्य = एक तांत्रिक देवता। इस की एक हजार भुजाएँ होती हैं।

कार्तिक स्नान = आश्विन शु. ११ से कार्तिकी पौर्णिमा तक सूर्योदय से २ घटिका पूर्व नदीस्नान का व्रत अथवा कार्तिक शु. ११ से पौर्णिमा तक प्रातः स्नान का व्रत।

कालचक्र यान = बौद्धों का एक तांत्रिक संप्रदाय जो नेपाल तथा तिब्बत में था। इसमें कालचक्र नामक चतुर्मुख, त्रिकंठ, द्वादशनेत्र अद्‌भुत देवता की उपासना होती थी। सेकोद्देशटीका इस संप्रदाय का प्रमाण ग्रंथ है।

कालपुरुष दान = चतुर्थी, चतुर्दशी या भद्रा तिथि को सुवर्णमय कालपुरुष की मूर्ति के दान की विधि।

कालभैरव = अष्टभैरवों में से एक। शिव भगवान् के क्रोध से उत्पन्न काशीनिवासी देवता।

कालभैरवाष्टमी = मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी।

कालरात्रि = एक तांत्रिक देवता जिसकी स्थापना विशिष्ट यंत्राकृतिपर होती है और उपासना कार्तिकी अमावस्या को प्रशस्त मानी है। यह देवता कल्पांतकालीन तमोमयी रात्रि का प्रतीक है। कालरात्रिसंहिता नामक तंत्रशास्त्रीय ग्रंथ में कालरात्रि के ८४ भेद यंत्रों और मंत्रों सहित बताये हैं।

कालरात्रि व्रत = आश्विन शुद्ध अष्टमी का शैव व्रत। एक, तीन या सात दिनों तक उपवास।

कालामुख = एक अघोरपंथी दाक्षिणात्य शैव संप्रदाय। अपर नाम – महाव्रतधर, लगुडधर। लकुलीश दर्शन इस में प्रमाणभूत है। इ. १० से १३ शती में यह संप्रदाय कर्नाटक में प्रबल था।

कालामुख आगम = अवैदिक शैवागमों का एक भेद।

कालाष्टक = आषाढ वद्य १ से ८ तक का समय। भक्त लोग इसमें कालभैरव की उपासना करते हैं।

कालाष्टमी व्रत = आश्विन, कार्तिक या भाद्रपद वद्य अष्टमी को कालभैरव की पूजा का व्रत।

काली = (१) परमात्मा की क्रियारूप शक्ति का देवतास्वरूप। (२) महाकाली से उत्पन्न १२ देवियों में से प्रथम देवी। (बृहन्नील तंत्र ४२)। (३) दश महाविद्याओं में प्रथम।

काश्मीरागम = अवैदिक शैवागमों का एक भेद।

किरणागम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

कुक्कुट मंत्र = एक तांत्रिक मंत्र। इसकी साधना में गौरीचित्र के हाथ में चित्रित कुक्कुट की पूजा होती है।

कुक्कुटी व्रत (या वानरी व्रत) = भाद्रपद शुद्ध सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक सप्तमी को अंबिका-शिव की पूजा का व्रत। फल – संतति की अविच्छिन्नता।

कुक्कुटेश्वर = एक तांत्रिक देवता।

कुटीचक = गांव की सीमा के पास कुटिया में निवास करने वाला संन्यासी। संन्यासियों के चार प्रकारों में से प्रथम। (अन्य प्रकार – बहूदक, हंस, और परमहंस)। (२) पुत्रान्न पर अपना निर्वाह करता है या पर्णकुटी में निवास करता है।

कुतप = (कु - पाप। तप - तपाना)। पाप का निवारण करने वाले कुश, तिल, गाय, कन्यापुत्र, मध्याह्न समय, चांदी, खड्‌गपात्र और नेपाली कंबल इन आठ पदार्थों की संज्ञा।

कुंदचतुर्थी = माघ शु. चतुर्थी। इस तिथि को कुंदपुष्पों से स्त्रियां शिवपूजा करती है।

कुमार व्रत = चैत्र शु. षष्ठी तिथि को कार्तिकेय की पूजा का व्रत। इस व्रत में घृतमिश्रित ब्राह्मी के रस का सेवन होता है। फल – शास्त्रपाण्डित्य।

कुमारी = १२ वर्षों की बालिका।

कुंभपर्व = प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जयिनी इन चार तीर्थक्षेत्रों में (इन्हें कुम्भमेलातीर्थ कहते हैं।) गुरु, चंद्र और सूर्य का विशिष्ट राशियों में प्रवेश होने पर माना गया पुण्यकाल। प्रयाग का कुंभपर्व सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। प्रत्येक क्षेत्र में १२ वर्षों के अंतर से कुंभपर्व होता है। इस पर्व से समुद्र मंथन के अमृतकुंभ की कथा का संबंध माना जाता है।

कुम्भविवाह = मार्कण्डेय पुराण के अनुसार किसी कन्या की जन्मपत्रिका में वैधव्य होने पर उसका परिहार सजल कुम्भ, अश्वत्थ वृक्ष आदि के साथ प्रथम विवाह करने से होता है ऐसा कहा जाता है। इन विवाहों को कुम्भविवाह कहते है।

कुम्भीपाक = पुराणोक्त २८ नरकों में से एक (कुम्भ्यां पाक इव पाको यत्र स कुम्भीपाकः)

कुरुकुल्ला = बौद्धों की एक तांत्रिक अष्टभुजा देवता। इसके परिवार में १२ देवताएं मानी गई हैं।

कुरुविंद = कुंभकार पुरुष और कुक्कुट जातीय स्त्री की संतान। (शूद्रकमलाकर)।

कुलपति = १० हजार छात्रों के भोजन तथा अध्यापन का प्रबन्ध करने वाला श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि।

कुशग्रहणी = भाद्रपद अमावस्या का नाम। इस तिथि को कुश (दर्भ, कुतुप, बर्हि) काट कर संचित किए जाते हैं।

कूर्मचक्र = मंत्रजप, यज्ञविधि आदि में उपयुक्त एक तांत्रिक आसन, जिस पर आलिखित कूर्म के चित्र के अवयवों पर विविध व्यंजनाक्षर लिखे होते हैं।

कूर्मद्वादशी = पौष, शु. द्वादशी का एक पूजाव्रत।

कूष्माण्डदशमी = आश्विन शु. दशमी। इस तिथि की पूजा में कूष्मांड पुष्पों का उपयोग होता है।

कूष्माण्ड नवमी = कार्तिक शुद्ध नवमी। अपर नाम – युगादि तिथि। इस दिन कूष्माण्ड फल का दान तथा पिण्डरहित श्राद्धविधि होते हैं।

कूष्माण्ड व्रत = कार्तिकी पौर्णिमा को कूष्माण्डलता की पूजा का व्रत।

कूष्माण्ड सूक्त = यजुर्वेद का एक सूक्त जो तडागोत्सर्ग नामक विधि में गाया जाता है।

कूष्माण्डी व्रत = वैशाख शु. १४ को कूष्माण्ड बीज का वपन करना और आगे छह महीनों तक यथाक्रम सौभाग्यदा, सर्वकामप्रदा, पुत्रदा, धनदा, फलदा और मोक्षदा इन नामों से कूष्माण्डवल्ली की पूजा का व्रत।

कृच्छ्र = पापक्षालनार्थ दुष्कर व्रत। इस के पैतामह कृच्छ्र, वैष्णव कृच्छ्र आदि अनेक प्रकार कहे गये हैं।

कृच्छ्र चतुर्थी = माघ शु. ४ से एक वर्ष तक एकभुक्त, मार्गशीर्ष शु. ४ से एक वर्ष तक नक्तभोजन, फिर मार्ग. शु. ४ से अयाचित भोजन और चौथे वर्ष में उसी तिथि से उपवास इस प्रकार चार वर्षो तक प्रत्येक चतुर्थी का व्रत। इसमें गणेशपूजा भी होती है।

कृच्छ्र-त्रय = निषिद्ध दान का प्रतिग्रह करने से प्राप्त दोष से मुक्त होने के लिए एक प्रायश्चित्त।

कृच्छ्रसांतपन = एक प्रायश्चित्त स्वरूप व्रत। इस में गोमय भक्षण होता है। (गोमय- गोबर)

कृच्छ्रातिकृच्छ्र = घोर पाप के प्रायश्चित्त निमित्त केवल अल्पजल प्राशन, अनशन, आदि क्लेशदायक व्रत।

कृच्छ्रार्ध = छह दिनों का व्रत। दो दिन एक भुक्त, दो दिन अयाचित और दो दिन उपोषण इस व्रत का स्वरूप है।

कृत्रिम पुत्र = धर्मशास्त्रोक्त १२ प्रकार के पुत्रों में से एक।

कृषिदेवता = उर्वरा, सीता, अरदा, अनद्या, यजा, समा और भूति इ. (पारस्कर तथा गोभिल गृह्यसूत्र)।

कृष्णचतुर्दशी = फाल्गुन वद्य १४ को १४ शिव नामों के जप का स्त्रीव्रत।

कृष्ण चतुर्दशी जनन शांति = कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि के छह भागों में से प्रथम भाग के अतिरिक्त भाग में जन्म होना अनिष्ट माना जाता है। उस कारण होम-हवन की विधि।

कृष्णदोलोत्सव = चैत्र शुद्ध एकादशी को लक्ष्मी सहित कृष्ण की मूर्ति को झुलाना।

कृष्ण द्वादशी = आश्विन वद्य १२ को उपोषण और वासुदेव पूजा का व्रत। (देखिये वासुदेव द्वादशी)।

कृष्णव्रत = (१) विशिष्ट तिथि को कृष्णमंदिर में कंदब तथा वट की छाया में कृष्ण मंत्र का जप। प्रयोजन – पुत्रप्राप्ति। (२) मार्गशीर्ष वद्य षष्ठी से प्रत्येक वद्य षष्ठी को सूर्य-पूजा का व्रत। व्रतावधि – एक वर्ष।

कृष्णाष्टमी व्रत = मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी से एक वर्ष तक प्रत्येक कृष्णाष्टमी को शिवपूजा का व्रत।

कृसर (या कृसरान्न) = तिल मिश्रित भात।

केदार-गौरी व्रत = कार्तिकी अमावस्या का एक दाक्षिणात्य व्रत। इसमें गौरी और केदार का पूजन विहित है।

केदार दर्शन = चैत्र कृ. ११ को केदारनाथ की मानसपूजा का व्रत।

कोकिला व्रत = आषाढ़ अधिक मास होने पर यह व्रत आषाढ पौर्णिमा से श्रावण पौर्णिमा तक सौभाग्य प्राप्ति के उद्देश्य से स्त्रियां करती हैं। इसमें कोकिला स्वरूप गौरी माँ की पूजा होती है।

कोजागरी पौर्णिमा = आश्विनी पौर्णिमा का नाम। इन्द्र और लक्ष्मी की पूजा तथा दीपोत्सव का व्रत।

कोटि संवत्सर व्रत = भाद्रपद शु. तृतीया को पार्वती प्रतिमा की पूजा का व्रत। इसे लक्षेश्वरी व्रत भी कहते हैं। व्रतावधि – चार वर्ष।

कौमार सप्तमी = भाद्रपद शुद्ध सप्तमी का एक जैन व्रत।

कौमारी = सप्त मातृकाओं में से एक।

कौमारिकी = आषाढ़ शुक्ल षष्ठी तिथि।

कौमुदी द्वादशी व्रत = एक व्रत, जिसमें गायन, वादन, नृत्य का विशेष महत्त्व होता है।

कौमुदी महोत्सव = आश्विनी पौर्णिमा का एक प्राचीन लोकोत्सव। अन्यनाम – कौमदी जागर या दीपदानजागर।

कौल = श्री कुल (योनि) की पूजा करने वाले तांत्रिक लोग। दो प्रमुख भेद – पूर्व कौल और उत्तर कौल।

कौल संप्रदाय = प्रमुख भेद – पूर्व कौल और उत्तर

कौल। अवांतर भेद – रोमकूप, वृषणोत्थ, वह्नि, कौलसद्भाव, पदोत्तिष्ठ, महत्कौल, सिद्धामृतकौल और मत्स्योदर कौल।

कौलेश भैरवी = एक तांत्रिक देवता।

कौशिकी = एक शाक्त या तांत्रिक देवता।

क्रियमाण कर्म = ऐसा कर्म जो परिस्थिति के अनुसार जीवात्मा को करना पड़ता है।

क्रूरवश्यकर कालानल यंत्र = एक तांत्रिक यंत्र जिसका प्रयोग क्रूर स्वामी को वश में लाने के हेतु सेवकद्वारा होता है। यह यंत्र भूर्ज पत्र पर गोरोचना से खींचा जाता है।

क्रोधशमन जामदग्न्य यंत्र = क्रुद्ध स्वजन का क्रोध शांत करने के लिए एक तांत्रिक उपचार। यह यंत्र ताड़पत्र पर गोरोचन से आलिखित होता है।

गंगा सप्तमी = वैशाख शुद्ध सप्तमी का एक महोत्सव। यह वाराणसी में मुख्यतः होता है।

गजपर्व = कार्तिकी पौर्णिमा से तीन दिनों का उत्सव। दक्षिण भारत में यह लोकप्रिय है। हाथी की मृण्मय मूर्ति की पूजा इसमें होती है।

गजलक्ष्मी = अष्ट महालक्ष्मियों में एक देवता। दो हाथियों के बीच बैठी लक्ष्मी की मूर्ति या प्रतिमा इस का प्रतीक है।

गण = शिव, विष्णु आदि देवताओं के अनुचर देवताओं के समूह जिन का **शिवगण, विष्णुगण** जैसे शब्दों से पुराणों में उल्लेख होता है।

गणगौरी = राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश में प्रचलित गौरी माँ की पूजा का एक व्रतोत्सव। फाल्गुनी पौर्णिमा (होलिकोत्सव) से चैत्र शु. ३ तक (१८ दिन) स्त्रियाँ यह उत्सव करती हैं।

गणदेवता = १२ आदित्य, १० विश्वेदेव, ८ वसु, ६३ तुषित, ६४ आभास्वर, ४९ अनिल, २२० महाराजीक, १२ साध्य, और ११ रुद्र इन समूहयुक्त देवतओं की संज्ञा।

गणयाजी = बौधायन धर्मसूत्र में वर्णित गणहोम (यही गण याग माना जाता है।) करने वाला वैदिक ब्राह्मण। गणयाग दूसरे किसी के लिए करना अप्रशस्त माना है। ऐसे गणयाजी मनु के मतानुसार श्राद्ध के निमंत्रण के अनधिकारी माने गए हैं।

गणेश चतुर्थी = भाद्रपद शुद्ध चतुर्थी तिथि। अन्यनाम – वरद चतुर्थी, शिवा चतुर्थी। गणेशोपासना की प्रमुख तिथि।

गणेशपूजा व्रत = श्रावण शुद्ध १० से श्रावण वद्य १० तक (एक पखवाडा) गणेशपूजा का व्रत।

गया क्षेत्र (तीन) = मातृगया (सिद्धपुर – गुजरात), पितृगया (बिहार), शिवगया (वाराणसी)।

गर्भरक्षाकर यंत्र = यह यंत्र भूर्जपत्र पर हाथी के मदस्राव से आलिखित होता है। गर्भरक्षा के हेतु गर्भवती स्त्री इसका तावीज धारण करती है।

गर्भस्थिरीकरण विधि = जिस स्त्री में गर्भपात का दोष होता है उसका गर्भ स्थिर रहने के निमित्त एक शास्त्रोक्त विधि। इसमें सुवर्ण के विशिष्ट यज्ञोपवीत का दान होता है।

गर्भाधान (या गर्भालंबन) = विवाहोत्तर प्रथम ऋतुस्नात स्त्री पांचवे दिन से सोलहवे दिन तक गर्भ या स्त्री का विशिष्ट धार्मिक संस्कार। इसमें अश्वगंधा या दूर्वा का रस पत्नी के दाहिने नासारन्ध्र में पति डालता है।

गाणपत्य लिंग = गणपति का एक (शिवलिंग के समान) प्रतीक जो पाषाण, जम्बूफल, नींबूफल, दाडिमफल या कुम्हड़े के आकार का होता है।

गांधर्व विवाह = विवाह के धर्मशास्त्रोक्त आठ प्रकारों में से एक। प्रबल कामवासना के कारण विवाहपूर्व संभोग के कारण होने वाला विवाह। उदा. दुष्यन्त-शकुन्तला-विवाह। (मनुस्मृति ३-३२) (मैथुन्यः कामसंभवः)। दो प्रकार– (१) मिश्र (असमान वर्णों का) (२) शुद्ध (समान वर्णों का)।

गायत्री (त्रि रूपा) = (१) पूर्वाह्ने गायत्री, (२) मध्याह्ने सावित्री, (३) सायाह्ने सरस्वती।

गिरि = गिरिवन में गीता का अध्ययन करते हुए निवास करने वाला दसनामी संन्यासी (मठाम्नाय)।

गिरिमह = एक प्राचीन उत्सव। (भगवती सूत्र में उल्लिखित)।

गुणकर्म = कर्ता में संस्कार निर्माण करने वाला कर्म। दो भेद – प्रतिपत्ति कर्म (उपयुक्त संस्कारक) और उपयोक्ष्यमाण संस्कारक। अथवा – स्वतंत्र गुणकर्म और यज्ञांग गुणकर्म।

गुणकर्म (चार प्रकार) – (१) उत्पत्ति। (अग्न्याधान)। (२) आप्ति (स्वाध्याय)। (३) विकृति (व्रीहि आदि का अवहनन) और संस्कृति (व्रीहि-प्रोक्षण)। गुणकर्म क्र. ३ और ४ - यज्ञांग भूत होते हैं। पहले २ स्वतंत्र गुणकर्म माने हैं।

गुरु = गर्भाधान, पुंसवन, आदि संस्कार विधि करने वाला (अर्थात् पिता, और पुरोहित) तथा अन्नदान से पोषण करने वाला विप्र (मनुस्मृति २-१४२)।

गुरु = आचार्य, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, राजा, मामा, श्वशुर, रक्षणकर्ता, मातामह, पितामह, ज्येष्ठ वर्णीय और चाचा इन ११को गुरु माना जाता है। (देवल स्मृति)।

गुरुकुल = विद्यादान करने वाला विद्वानों का आश्रम जहां उपनयन विधि के उपरांत, ब्रह्मचारी छात्र विद्याध्ययन के निमित्त निवास करते थे। यह नगरों से दूर होता था।

गुरु पौर्णिमा = आषाढ़ी पौर्णिमा। अपर नाम – व्यास पौर्णिमा।

गुह्यक = यक्षों का एक प्रकार जो निधि संरक्षण करता है।

गुह्यलिंग = हरिश्चन्द्र, आम्रातक, जलेश्वर, श्रीपर्वतेश्वर, महालय, कृमिचंडेश्वर, केदार और महाभैरव इन आठ शिवलिंगों की संज्ञा।

गुह्यवाणी = तांत्रिक गुह्यसाधना का विवेचन करने वाली प्रतीकात्मक भाषा।

गुह्यषोढा = एक विशिष्ट देवी जो (षोढा) अर्थात् छह कलाओं से युक्त मानी जाती है। छह कलाएँ – परात्, परतारा, परातीतरूपा, काली, कला, परातीता और पूर्णा। गुह्यषोढान्यास नामक उपनिषद् में इसकी तांत्रिक पूजा का निवेदन किया है।

गुह्यसाधना = साधक के अतिरिक्त अन्य किसी को जिसका

पता नहीं होता ऐसी तांत्रिक साधना। इसमें मैथुन क्रिया का विशेष महत्त्व होता है।

गृहस्थ = गरुड़ पुराण के अनुसार **दो प्रकार** – उदासीन और साधक। वैखानस गृह्यसूत्र के अनुसार **चार प्रकार** – वार्तावृत्ति, शालीनवृत्ति, यायावर, और घोराचारिक।

गृहस्थवृत्ति = (वृत्ति – उपजीविका के मार्ग)। **सात प्रकार** – ऋत (शिल और उंछ), अमृत (अयाचित), भृत (भिक्षान्न), प्रभृत (कृषीवलकर्म), सत्य + अनृत (वाणिज्य), श्ववृत्ति (सेवावृत्ति), (मनुस्मृति ४-५, ६)।

गृह्यसूत्र = वैदिकों के सोलह संस्कार तथा अन्य विधि निषेधों का विवरण करने वाले सूत्रमय ग्रंथ। कल्पसूत्रों के प्रकारों में से एक में सात पाकयज्ञों की विधियां गृह्यसूत्रों में कही हैं।

गेयचक्र = ललिता देवी के चक्रों में से एक। इस चक्र में कीर्ति आदि देवताओं की गणना होती है।

गोकुलाष्टमी = श्रावण कृष्ण अष्टमी। श्रीकृष्ण अवतार की जन्मतिथि।

गोत्र = विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप और अगस्त्य इन आठ ऋषियों के वंशज (बौधायन धर्मसूत्र)। इन ऋषियों को गोत्रकार गोत्रकृत्, वृद्ध, स्थविर या वंश्य कहते हैं। गोत्र का संबंध विद्यागुरु से होता था।

गोत्रव्रत = श्रावण वद्य ४ थी का एक स्त्रीव्रत। इसमें सवत्स धेनु की पूजा का महत्त्व है।

गोत्रावयव = विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ और कश्यप इन आठ गोत्रकारों के अतिरिक्त अन्य ऋषियों की संतान।

गो-त्रिरात्रिव्रत = भाद्रपद शु. १३ से तीन रात्रियों तक यह व्रत होता है। गोमाता इस व्रत की प्रमुख देवता है।

गोदान विधि = ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त होने पर छात्र का विधिपूर्वक केशवपन। १६ संस्कारों में इसकी गणना होती है।

गोपद-त्रिरात्रि = भाद्रपद शु. तृतीया या चतुर्थी का एक गोपूजा का व्रत।

गोपद्मव्रत = चातुर्मास्य का व्रत, आषाढ शु. १०, ११ पौर्णिमा या जन्माष्टमी से इसका प्रारंभ होता है। व्रतावधि – पांच वर्ष। ३३ गोपद्माकृतियों की पूजा इसमें होती है।

गोपाल द्वादशाक्षरी.मंत्र = "श्रीं ऱ्हीं क्लीं कृष्णाय गोविंदाय स्वाहा" – इस मंत्र की संज्ञा।

गोपाल मंत्र = 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' इस दशाक्षरी मंत्र की संज्ञा।

गोपाष्टमी = कार्तिक शुद्ध अष्टमी। यह गोमाता के पूजन का दिन है।

गोपीचंदन = एक विशिष्ट शुभ्रवर्ण मृत्तिका की संज्ञा। यह मृत्तिका वैष्णव संप्रदाय में गंगाजल सी पापहारिणी मानी जाती है। इसे विष्णुचंदन भी कहते हैं।

गोप्रसव शांति = अनिष्ट तिथि या नक्षत्र आदि पर जन्म हुए बालक के हितार्थ यह विधि होती है। इस विधि में अर्भक का जन्म गोमाता से माना जाता है। गाय के द्वारा बच्चे का अवघ्राण अशुभ निवारक माना जाता है।

गोमयादि सप्तमी = चैत्र शुद्ध सप्तमी। इस तिथि से एक वर्ष तक सूर्योपासना का व्रत होता है।

गोमुख = जैन दैवतशास्त्र में कथित एक यक्ष। यह आदिनाथ तीर्थंकर का सेवक कहा गया है।

गोमुख प्रसव शांति = अपत्य जन्म के समय होने वाली एक विधि।

गोमूत्रकृच्छ्र = एक प्रायश्चित्त व्रत। इसमें गाय के गोबर द्वारा निकले हुए गेहूं के कण गोमूत्र के साथ खाते हैं।

गोलोक = पद्म तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित एक दिव्य लोक। यहां के निवासी ही वृन्दावन में गोप-गोपी के रूप में अवतीर्ण हुए थे। (ब्र. वै. ६-६३-६९)।

गोवत्स द्वादशी = आश्विन वद्य द्वादशी। गोपूजा-प्रधान स्त्रीव्रत। इस तिथि को सवत्स गाय की चित्राकृति की पूजा होती है।

गोविंद द्वादशी = फाल्गुन शुद्ध द्वादशी। इस तिथि से एक वर्ष तक गोसेवा का व्रत होता है।

गोविंद शयन = आषाढ शु. एकादशी से चार महीनों का व्रत। इन चार महीनों में अन्य मंगल कार्य नहीं किये जाते।

गोष्ठाष्टमी = कार्तिक शुद्ध अष्टमी। देखिये गोपाष्टमी।

गोष्ठीश्राद्ध = तीर्थक्षेत्र में किया गया श्राद्ध।

गोशांति = घर के गाय बैलों में रोग उत्पन्न होने पर यह विधि होती है।

गौरी = आठ वर्षों की बालिका।

गौरी चतुर्थी = माघ शुक्ल चतुर्थी का स्त्रीव्रत।

गौरी तृतीया = चैत्र शुद्ध, भाद्रपद शुद्ध या माघ शुद्ध तृतीया का स्त्री व्रत। दक्षिण भारत में इस का विशेष प्रचार है।

गौरी विवाह = चैत्र शु. ३, ४ या ५ को शिव और गौरी की मृण्मय मूर्तियों का विवाह

गौरीहर पूजा = विवाह मुहूर्त के पहले नववधू यह पूजाविधि करती है। महाराष्ट्र में यह प्रथा ब्राह्मण समाज में प्रचलित है।

ग्रहण व्रत = दिन के पूर्वार्ध में, जन्मनक्षत्र पर या जन्मराशि पर सूर्यग्रहण होने पर यह व्रत किया जाता है।

ग्रामयाजक = विविध जातियों के लोगों के धर्मकार्य करने वाला अब्राह्मण पुरोहित।

ग्रहण श्राद्ध = सूर्य या चंद्र के ग्रहण काल में विहित श्राद्धकर्म। (आशौच काल में भी यह श्राद्ध होता है।)

घटस्फोट = विवाह संबंध का विच्छेद करने की विधि। इसमें दर्भों पर घट फोडं कर विवाह विच्छेद की घोषणा होती है।

घृतदान = आश्विन मास का एक विशेष धर्मकृत्य।

घोराचारिक गृहस्थ = याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह न करने वाला, मार्गशीर्ष और ज्येष्ठ मास में असिधारा व्रत पालन करने वाला, एवं उच्छवृत्ति से उपजीविका करने वाला कठोरव्रती

गृहस्थाश्रमी।

चक्रपूजा = तंत्रमार्ग में वीरभावयुक्त साधकों के लिए विहित एक विशिष्ट पद्धति की सामूहिक पूजा। इसमें भैरव और भैरवी माने गए साधक चक्राकार बैठक कर मद्यपान करते हैं। **चक्र के प्रकार** – राजचक्र, महाचक्र, देवचक्र, वीरचक्र, वह्मचक्र, भैरवचक्र, इत्यादि। साधक खी कामना के अनुसार चक्रपूजा में भिन्नता होती है।

चंड नायिका = माँ दुर्गा की अष्ट शक्तियों में से एक।

चंड मातंगिनी = एक तांत्रिक देवता जो कृष्ण वस्त्र और वीणा धारण करती है।

चंडा = माँ दुर्गा की अष्टशक्तियों में से एक। यह गौरवर्ण तथा षोडशभुजा कही गयी है।

चंडिका (या चंडी) = माँ दुर्गा की अष्टशक्तियों में से एक। यह एक मातृदेवता भी मानी गई है।

चण्डीमंत्र = "ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस नवाक्षर मंत्र की संज्ञा।

चण्डेश = भगवान शिव का अंशस्वरूप एक गण। दक्षिण भारत में शिवमंदिर के रक्षक के रूप में इस की मूर्ति स्थापित होती है। (पेरिय पुराण में इसे आदिदास कहा. है।)

चण्डेशानुग्रह मूर्ति = शिवमूर्ति का एक प्रकार जो दाक्षिणात्य शैव मंदिरों में दिखाई देता है।

चतुरायुध क्षेत्र = **शंखक्षेत्र** – जगन्नाथपुरी, **चक्रक्षेत्र** – भुवनेश्वर, **गदाक्षेत्र** – जयपुर (कलकत्ता) **पद्मक्षेत्र** – मैत्रावन (कलकत्ता)।

चतुर्थी कर्म = विवाह संस्कार के बाद चौथी रात को वधू-वर के समागम की विधि। काठक, शांखायन, आपस्तंभ, आदि गृह्यसूत्रों में इसका प्रतिपादन हुआ है।

चतुर्मेध = अश्वमेध, पुरुपमेध, सर्वमेध और पितृमेध करने वाला, या इन चार यज्ञों के कर्मकाण्ड का ज्ञाता वैदिक पंडित। यह एक सम्मानोपाधि है।

चतुर्विध पुरुषार्थ = धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष। (यां पुरुषार्थ चतुष्टय) (पुरुषार्थत्रय – धर्म, अर्थ, काम) मोक्ष को परमपुरुषार्थ कहते हैं।

चतुर्विध मित्र = औरस, कृतसंबंध, वंशक्रमागत, आपद्रक्षक। (कामंदकीय नीतिसार – ४-७४)।

चतुर्व्यूह = (१) वासुदेव (परमात्मा), संकर्षण (जीवात्मा), प्रद्युम्न (मन), अनिरुद्ध (अहंकार), इन चार भगवत्स्वरूपों का समूह। इनमें संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, विष्णु के अवतार माने जाते हैं।

उपव्यूह = वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार व्यूहों में प्रत्येक व्यूह से तीन व्यूहों की उत्पत्ति मानी जाती है। इन १२ व्यूहों को उपव्यूह कहते हैं। उपव्यूह – वासुदेव से केशव, नारायण, माधव। संकर्षण से – गोविंद, विष्णु, मधुसूदन। प्रद्युम्न से – त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर। अनिरुद्ध से – हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर। (१२ राशियों में संक्रामित सूर्य के १२ रूपों के ये उपव्यूह प्रतिनिधि माने जाते हैं।

चतुष्पाद धर्म = (१) तप, यज्ञ, दान, वैराग्य। (२) अहिंसा, सत्य, अस्तेय और आनृण्य। (३) कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग।

चतुःसंप्रदाय = रामानुज (विशिष्टाद्वैत मत), मध्वाचार्य (द्वैत मत), विष्णुस्वामी (विशुद्धाद्वैत.), और निम्बार्क (द्वैताद्वैत मत) इन चार वैष्णव सम्प्रदायों की संज्ञा।

चर्चिका = बालसंरक्षक एक देवता। अपरसंज्ञा – जात-मातृ देवता। जन्म के छठे दिन इस मार्जारमुखी देवता की पूजा होती थी।

चाण्डाल = तीन प्रकार – **(१) जन्म चाण्डाल** – ब्राह्मण स्त्री और शूद्र पुरुष की संतान, सगोत्र या अविवाहित स्त्री की संतति, संन्यास के बाद. गृहस्थाश्रम स्वीकृत करने वाले की संतति। **(२) कर्म चाण्डाल** – अधम कृत्य करने वाला। **(३) ग्राम चाण्डाल** – धोबी, चमार, नट, बुरुड आदि १६ जातियों के लोग।

चातुर्मास्य = आषाढ शु. एकादशी (शयनी एकादशी) से कार्तिक शु. एकादशी (प्रबोधिनी एकादशी) तक अथवा आषाढी पौर्णिमा (व्यास पूजा दिन) से कार्तिकी पौर्णिमा (त्रिपुरी पौर्णिमा) तक का चार महीनों का काल।

चांद्रायण प्रायश्चित्त =श्रेष्ठ अतिथि के पूर्व भोजन करने के दोष का परिहार करने निमित्त धर्मशास्त्रकारों ने इसे आवश्यक माना है।

चामुंडा = सप्तमातृकाओं में से एक उग्र देवता।

चिंचिनीशक्ति = तांत्रिक त्रिकोण (त्रिकोणरूपा योनि या भग) के इच्छा, ज्ञान और क्रिया नामक तीन कोणों के मध्य में संदन करने वाली दिव्य शक्ति। (त्रिकोण एक प्रतीकात्मक आकृति विविध संप्रदायोंने मानी है।)

चूडाकर्म =(अपर संज्ञा चूडाकरण, या चौल) **धर्मशास्त्र** में कथित १६ संस्कारों में से एक। इसमें बाल्यावस्था में बालक की चोटी के अतिरिक्त बाल काटे जाते हैं। यह संस्कार उत्तरायण में दिन के समय होता है।

चैत्ययज्ञ = देवता की कृपा से इष्ट कामना की सिद्धि का संकल्प पूर्ण करने की याचना पूर्ण होने पर किया जाने वाला यज्ञ या बलिकर्म।

छिन्नमस्ता = दश महाविद्याओं में से एक। छिन्नमस्ता याने मस्तकरहित देवी। इसी देवी ने निशुंभ नामक दैत्य का वध किया। कामना सिद्धि के लिए छिन्नमस्तायंत्र की पूजा होती है।

छुरिका बन्धन = नारदकृत ज्योतिर्निबन्ध में कथित एक क्षत्रिय संस्कार की विधि। शस्त्रविद्या का अध्ययन पूर्ण होने पर मंगलमुहूर्त पर क्षत्रिय युवा की कमर को खड्ग बांधने का यह संस्कार राजस्थानी क्षत्रियों में १९ वीं शती तक प्रचलित था। (लौकिक संज्ञा – खरग बंधाई)।

जंगम = लिंगायत संप्रदाय के गुरु। चललिंग की उपासना

के कारण यह संज्ञा प्राप्त हुई। **चार प्रकार** – (१) गुरुस्थल (विवाहित), (२) विरक्त (ब्रह्मचारी)। (३) पट्टाधिकारी, (४) चारमूर्ति। **पांच उपपंथ** – एकोरामाराध्य, पंडिताराध्य, मरुलाराध्य, रेवणाराध्य, विश्वाराध्य।

जननशांति = अशुभ नक्षत्र, तिथि या योग पर जन्म होने पर संभाव्य अरिष्ट की शांति के निमित्त एक धार्मिक विधि।

जनभार शांति = महामरी जैसे उपद्रवों का प्रशमन करने हेतु दैवी उपचारात्मक एक विधि। इस में रुद्रपूजा, रुद्रसूक्त पाठ आदि का विशेष महत्त्व होता है।

जयंती मंत्र = "जयंती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी। दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽ स्तुते।।" नवचण्डीविधान में इस मंत्र का जप होता है।

जयाभिषेक = युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय होने वाला राज्याभिषेक। इस का फल युद्ध में अपमृत्यु का निवारण माना जाता है।

जयावतीसिद्धि = एक तांत्रिक साधना। इसमें आषाढ, श्रावण और भाद्रपद की रात्रि में नित्य सरोवर में बैठकर जप साधना होती है।

जातकर्म = नवजात पुत्र का नालच्छेदन होने के पूर्व एक संस्कार। यह संस्कार शिशु का मुखावलोकन करने हेतु पिता द्वारा होता है। इस संस्कार के अंतर्गत मेधाजनन, आयुष्य, नालच्छेदन आदि कर्म होते हैं।

जातवेदसी = एक तांत्रिक देवता।

जारकर्म = विवाहित स्त्री या पुरुष ने अन्य पुरुष या स्त्री से कामुक संबंध रखना। धर्मशास्त्र के अनुसार यह एक दण्ड्य अपराध है।

जीवच्छ्राद्ध (जीवत् + श्राद्ध) = श्राद्धविधि करने योग्य वंशज या संबंधी न होने पर, आसन्नमरण अवस्था में स्वतः किया हुआ श्राद्ध। पलाशकाष्ठ की प्रतिमा का दहन होने पर यह श्राद्धविधि की जाती है।

ज्येष्ठ साम = मूर्तिपूजा तथा श्राद्धविधि के समय गेय साम।

ज्वरदेव = श्रीमद्भागवत, हरिवंश, वनदुर्गोपनिषद तथा आगम ग्रंथों में उल्लिखित एक रोगकारक देवता।

ज्वालामुखी = भगवान् शिव द्वारा निर्मित एक मातृदेवता। ज्वालामुखी का मंदिर कांगडा में बियास नदी के तीर पर विराजमान है जो ५१ शक्ति पीठों में से एक (सती माँ का जिह्वास्थान) माना जाता है।

डाकिनी = (१) एक तांत्रिक देवता। (२) वज्रयानी बौद्ध, तांत्रिक योगसाधना से ज्ञानसंपन्न योगिनी को डाकिनी कहते हैं। लाकिनी, शाकिनी, राकिनी, हाकिनी इसी के प्रकार माने जाते है।

* * *

(वर्ग - २ अ) – स्मार्त धर्म की परिभाषा

(परिशिष्ट)

अग्निपानीय = एक दिव्य। इसमे अपराधी व्यक्ति को प्रथम अग्नि में डालकर तुरंत पानी में डुबाया जाता था। शरीर पर कोई अपाय न होने पर अपराधी निरपराध माना जाता था। इसी दिव्य को 'श्यामशवल' भी कहते हैं।

अतिवाहिक = शरीरत्याग होने पर मृतात्मा को प्राप्त होने वाला सूक्ष्म (अतीन्द्रिय) शरीर। इसी देह से जीव इहलोक का त्याग करता है। दस दिनों के पश्चात् उसे अंगुष्ठमात्र प्रेतशरीर प्राप्त होता है। प्रेतशरीर के प्रीत्यर्थ होने वाले श्राद्धों को **प्रेतश्राद्ध** कहते हैं। पिण्डदान से इस अवस्था से प्रेतअवस्था में तथा मासिक एकोद्दिष्ट और सपिण्डीकरण श्राद्धों से पितृ-अवस्था में मृतात्मा का संक्रमण होता है।

अध्यग्नि = विवाह के समय अग्नि के समक्ष स्त्री को दिया गया धन। (कात्यायन स्मृति) मनुस्मृति में इस के छह प्रकार कहे हैं (मनु. ९-१९४)

अनुसमय = इष्टदेवता की विधियुक्त पूजा होने पर अन्य देवताओं की उसी प्रकार पूजा करना। दो प्रकार = (१) काण्डानुसमय और (२) पदार्थानुसमय। इष्ट देवता की पूजा के पश्चात् प्रत्येक अवान्तर देवता की पूजा को काण्डानुसमय और इष्टदेवता और अन्य देवताओं की एकसाथ पूजा को पदार्थानुसमय कहते हैं।

अन्वयदान = अपनी धनसंपत्ति पुत्र-पौत्र आदि उत्तराधिकारी दायादों के समर्पण करना।

अन्वारोहण (या अनुसरण) = पति की चिता में पत्नी का आत्मदहन।

अप्राकृतजन्म = तांत्रिकों की निर्वाणदीक्षा की अपर संज्ञा।

अम्बुघट श्राद्ध = मृतात्मा के प्रीत्यर्थ प्रतिदिन अन्न तथा जल का दान।

अरणिधर्म = पति की अनुमति से परपुरुष द्वारा संतति प्राप्त करने की एक प्राचीन प्रथा। संततिलाभ होने पर पुनः अपने पति के साथ स्त्री गृहस्थधर्म का पालन करती थी।

अरण्यचतुष्टय = दण्डकारण्य, स्वकारण्य, नैमिषारण्य और धर्मारण्य।

अर्घ्य = षोडशोपचार पूजा में एक उपचार। अर्घ्य के जल में दही, अक्षता, कुशाग्र, दूध, मधु (शहद), यव और सफेद राई का समावेश होता है।

अर्च्चा = देवप्रतिमाकी पूजा। पांचरात्र मतानुसार छह प्रकार – कर्मार्चा, उत्सवार्चा, बलार्चा, तौर्यार्चा (संगीतपूजा), स्नपनार्चा और शयनार्चा

अर्च्चावतार = पांचरात्र क्रिया विधिद्वारा शोधित और स्थापित पाषाणादि की देवमूर्ति

अवघ्राण = ज्येष्ठ व्यक्तिद्वारा शुभकामना व्यक्त करने के लिए कनिष्ठ व्यक्ति का मस्तक सूंघना। यह एक शिष्टाचार था।

अविन्घकलश = विवाह, देवप्रतिष्ठा आदि मंगल समारोहों में स्थापित मंडप में पूजित एक श्वेत मंगल घट।

अष्टलोक = ब्रह्मलोक, पितृलोक, सोमलोक, इन्द्रलोक, गंधर्व लोक, राक्षस लोक, यक्षलोक, पिशाचलोक। मरणोत्तर जीवात्मा को अपने कर्म के अनुसार इनमें से उचित लोक प्राप्त होता है।

अष्टका = मार्गशीर्ष, पौष, माघ, और फाल्गुन इन चार महीनों की वद्य अष्टमी को करने योग्य पितृश्राद्धविधि। स्त्री पूर्वजों के निमित्त होने वालू इसी विधि को **अन्वष्टका** कहते हैं।

अष्टावरण = लिंगायत संप्रदाय की साधना का संस्कार। आठ प्रकार – गुरुलिंग (तीन प्रकार भावलिंग, प्राणलिंग और इष्टलिंग)। जंगम (तीन प्रकार के साधु - स्थिर, चर और पर)। पादोदक, प्रसाद, (गुरु का उच्छिष्ट), विभूति, रुद्राक्ष और मंत्र

आचार्य दीक्षा = तांत्रिकों की निर्वाण दीक्षा की अपर संज्ञा।

आदिपुराण = व्यासकृत १८ प्रमुख पुराणों की संज्ञा। इनमें अंतिम श्रीमद्भागवत को, दशलक्षणी होने के कारण, **महापुराण** कहते हैं।

आपत्संन्यास = जीवन की संभावना समाप्त होने के अवसर पर ली जाने वाली संन्यासदीक्षा।

आरूढ पतित = संन्यासाश्रमी होने पर पुनश्च गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाला।

आवाहनी मुद्रा = पंचमुद्राओं में से एक। दोनों हाथ पुष्पांजलि से पूर्ण से होना।

आशिस् (आशीर्वचन) = जेष्ठ व्यक्ति द्वारा कनिष्ठ के मंगल की कामना का उच्चारण। ('वर' शब्द इस अर्थ का वाचक है किन्तु उसमें मंगल कामना की सिद्धि अध्याहत है।

उग्ररथशांति = जीवन के ६० वर्ष पूर्ण होने पर यह विधि होती है। इसमें प्रमुख देवता मार्कंडेय ऋषि, (जो भगवान शिव के वरदान से अमर हुए हैं।) होते हैं।

उत्तर पूजा = मुख्य पूजा विधि के बाद होने वाली पंचोपचारयुक्त पूजा।

उद्धव सम्प्रदाय = देखिये स्वामिनारायण।

उद्यापन = व्रतसमाप्ति के निमित्त पूजा, जप, होम, इत्यादि विधियों की संज्ञा।

उद्गमस्वत्ववाद = पिता के मृत्यु के बाद ही पुत्रादि दायादों का उसकी संपत्ती पर अधिकार होता है। यह दायभाग का एक सिद्धान्त है। मिताक्षरा के अनुसार जन्म के साथ ही पुत्र का पितृधन पर अधिकार होता है।

उपवास = (१) यज्ञ का संकल्प होने पर यजमान ने गार्हपत्य अग्नि के समीप (उप) वास करना। (२) अन्न

सेवन न करना।

उपवास = (अनशन) के प्रकार – विशिष्ट अन्न का ही सेवन करना या न करना, एक भुक्त, अयाचित्त, नक्तभोजन, हविष्यान्न का भोजन

उपहार = पाशुपत मतानुसार हसित, गीत, नृत्य, हुडुक्कार, नमस्कार और जप इन छह प्रकारों के नियमों की संज्ञा।

ऋष्यादिन्यास = न्यासविधि का एक प्रकार। मंत्र के ऋषि, देवता, छंद, बीज और कीलक इन तत्त्वों का मस्तक, मुख, हृदय, आदि शरीरस्थानों पर संकल्पद्वारा न्यास याने स्थापना।

एकजटा = एक तांत्रिकी देवता। देखिये महाचीनतारा।

एकोद्दिष्ट श्राद्ध = एक मात्र मृत व्यक्ति के प्रेतत्व की निवृत्ति के लिए गृह्यसूत्रों मे कथित एक श्राद्ध प्रकार।

एकोद्दिष्ट श्राद्ध = मृत्यु के पश्चात् एक वर्ष तक होने वाले सोलह श्राद्धों की संज्ञा। अंत में 'सपिण्डीकरण' नामक श्राद्ध होता है जिससे आत्मा की प्रेतावस्था से मुक्ति होती है।

करपात्री = भिक्षान्न का स्वीकार कर(हाथ)रूप पात्र में "भोजन" करने वाला एक संप्रदाय।

करुणा = लिंगायतों के लिंगधारणविधि की संज्ञा।

कलंज = विपलिप्त शस्त्र से मारे गये पशु का मांस।

कलादीक्षा = आगमोक्त १२ दीक्षाओं में से एक।

कलिवर्ज्य = वैदिक धर्मशास्त्र में पूर्व प्रचलित कुछ प्रथाओं को (११ वीं शती से) निषिद्ध माना गया जिन्हें कलिवर्ज्य कहा है। समुद्रपर्यटन, भिन्नजातीय विवाह, सपिंड तथा सगोत्र विवाह, नियोगक्रिया, सोमविक्रय इत्यादि कलिवर्ज्य हैं।

कल्याणमण्डप = दाक्षिणात्य मंदिरों में विवाहोत्सव निमित्त निर्मित विशिष्ट भवन।

कव्य = श्राद्ध विधि में पितृस्थानीय ब्राह्मणों को देने योग्य खाद्य पदार्थ। देवस्थानीय ब्राह्मणों के खाद्य पदार्थों को **द्रव्य** कहते हैं।

कृच्छ्र प्रायश्चित्त के प्रकार = पादकृच्छ्र, प्राजापत्य, अतिकृच्छ्र, मासोपवास, यावक, ताप्तकृछ, शीतकृछ, सांतपन, वज्रकृच्छ, तुलापुरुष, इत्यादि। (विष्णुस्मृति)।

कृष्णद्रव्य = चोरी, द्यूत आदि कुकर्मों से प्राप्त धन।

केशवकीर्त्यादिन्यास = भगवान विष्णु की केशव, नारायण, माधव आदि २४ मूर्तियों की, शक्तिसहित शरीरावयव में संकल्पद्वारा स्थापना। यह न्यासविधि वैष्णवों में प्रचलित है।

कोदण्डराम = भंडासुर से लड़ते समय ललितादेवी द्वारा निर्मित श्रीराम की संज्ञा।

कोशपान = धर्मशास्त्र में कथित अपराधी की परीक्षा का एक दिव्य नामक विशिष्ट उपचार। न्यायाधीश द्वारा इसका प्रयोग होता है।

कौतुकबंध (कौतुकसूत्र) = विवाह के समय वधू के बाएँ और वर के दाहिने हाथ में बांधा जाने वाला एक सूत्रबंधन।

कौल = शाक्त मतानुयायी। दो प्रकार = **पूर्वकौल** = (मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन इन पंच मकारों का योगमार्गानुकूल लाक्षणिक अर्थ मानने वाले) और

उत्तर कौल = पंच मकारों का वाच्यार्थ मानने वाले दुराचारी।

क्रीतदास = दास के आठ प्रकारों में से एक। धन देकर खरीदा गया मनुष्य।

क्षण = श्राद्धविधि के निमित्त पुरोहित को दिया जाने वाला दर्भखंड।

क्षेत्रज = पति के शरींरदोष के कारण पुत्रोत्पति असंभव होने पर अन्य योग्य पुरुष द्वारा उत्पादित अपत्य। (धृतराष्ट्र, पण्डु, विदुर तथा पांच पांडव क्षेत्रज थे)।

क्षेत्रज संतति = नियोग विधि से उत्पन्न संतति। यह संतति स्त्री के मूल पंति की ही मानी जाती है। पांडव 'क्षेत्रज' होने पर भी पंडु के ही पुत्र माने जाते थे।

क्षेत्रसंन्यास = एक ही तीर्थक्षेत्र में आमरण निवास करने का व्रत। (देखिये दिग्व्रत)।

गृहजदास = दास के आठ प्रकारों में से एक। दासी से उत्पन्न पुत्र।

गोचर्म भूमि = जितनी भूमि पर सौ गाय, तथा सौ बैल बैठ सकते हैं, उतनी भूमि। गोचर्मभूमि का दान देना और लेना प्रशस्त माना गया है। इसी को **'महीदान'** भी कहते हैं।

चटश्राद्ध = श्राद्धविधि के जानकार ब्राह्मण दुर्लभ होने पर ब्राह्मण के आसन पर चट (दर्भ) रखकर वचन-प्रतिवचन युक्त श्राद्धविधि।

चर्या = पाशुपत मतानुसार प्रधान विधि की संज्ञा (विधि = धर्म-अर्थ साधक व्यापार)। **दो प्रकार** – (१) व्रतचर्या और (२) द्वारचर्या।

द्वारचर्या के छह प्रकार – क्राथन (निद्रा का अभिनय), स्पंदन (शरीरावयावों का कंपन), मंदन (दुर्बल, लंगड़े, के समान चलना), शृंगारण (स्त्री को देखकर कामुक चेष्टा करना), अवितत्करण (लोकनिंदित कर्म करना), अवितद्भाषण (अनर्गल तथा अनर्थक भाषण)

चर्यापद (या चर्यागीति) = तांत्रिक उपासना में गाने योग्य गीत।

जननशांति (जन्मशांति) = दिनक्षय, व्यतीपात, व्याघात, विष्टि, वैधृति, शूल, गण्ड, अतिगंड, परिघ, यमघंट, कालदण्ड, मृत्ययोग, दग्धयोग इत्यादि अशुभ योगों पर जन्म होने पर यह विधि आवश्यक मानी है।

जन्मस्वत्ववाद = जन्म के साथ ही पुत्र को पिता की या कुल की सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त होता है। याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार विज्ञानेश्वर ने अपनी मिताक्षरा नामक टीका में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

जप = जिव्हा तथा ओष्ठ की हलचल न करते हुए मंत्र के शब्द और अर्थ का चिंतन। जपसंख्या का संकल्प किया जाता है। जपयज्ञ अन्य सभी यज्ञों से श्रेष्ठ है ऐसा गीता का

अभिप्राय है। (यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि) जपसंख्या की गणना होती है। नामस्मरण के संख्या की गणना नहीं होती।

जयपत्र = (१) परदेश गमन करते समय गर्भवती पत्नी को दिया गया गर्भधारणा का प्रमाणपत्र। यह प्रथा बंगाल में थी। (२) पराभूत गायक द्वारा विजयी गायक को दिया गया शरणपत्र। (३) राजपंडित को शास्त्रार्थ में पराभूत करने पर राजसभा से प्राप्त प्रमाणपत्र।

जालंधर = एक शैव पंथ।

ज्ञानदीक्षा = आगमोक्त १२ दीक्षाओं में श्रेष्ठदीक्षा।

तत्त्वन्यास = तांत्रिक विष्णुपूजा में म से क तक (मादि-कान्त) बीजमंत्रों के उच्चारण सहित शरीर के अवयवों को स्पर्श करना। इस प्रकार शरीर में देवताओं की स्थापना होने से शरीर में दिव्यता का संचार माना जाता है।

तपस् = क्षुधा, पिपासा, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों के आघातों को निर्विकार वृत्ति से सहन करना। पातकों का निवारण तथा शुद्ध ज्ञान के उदय का तप ही श्रेष्ठसाधन माना गया है। भगवद्‌गीता में शारीर, वाङ्मय और मानस-तीन प्रकार का तप कहा है। इनके भी सात्त्विक, राजस और तामस प्रकार कहे गये हैं।

तप्तमाषक = आरोपी को अपना निरपराधित्व सिद्ध करने के लिए धर्मशास्त्र में कथित दिव्य का एक प्रकार। अति उष्ण तेल या घी में रखी गयी सोने की अंगूठी को खुले हाथ से बाहर निकालना।

तर्पण = देव, ऋषि, पितर आदि की तृप्ति के लिये 'सूत्रनिष्पीडनोदक' (गीले वस्त्र से निचोडा हुआ जल) यथाविधि समर्पण करना (देखिये आप्यायन)

तांत्रिक दीक्षा के ११ प्रकार = कला, एकतत्त्व, त्रितत्त्व, पंचतत्त्व, नवतत्त्व,, छत्तीस तत्त्व, पद, मंत्र, वर्ण, भुवन और केवल भुवन।

तीर्थपंचक = पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गया, गंगा, और प्रभास।

तीर्थश्राद्ध = तीर्थक्षेत्र में यात्रा के प्रारंभ तथा यात्रा समाप्ति के बाद वृद्धिश्राद्ध।

तुलादान = दाता के वजन का सुवर्ण या रजत (तथा अन्य दान योग्य धान्य, तिल, गुड, नमक, घृत, आदि पदार्थो) का सत्पात्र लोगों को समर्पण। यह कायिक दान माना गया है।

तुलादिव्य = दिव्य विधि के पांच प्रकारों में से एक। इस में अपराधी को तराजू के एक पात्र में बिठाकर उस की माटी-पत्थरों से तुला की जाती है। समभार होने पर अपराधी को उतार कर पुनः तुला पात्र में बिठाया जाता है। पात्र नीचे गया तो वह अपराधी, समान रहा तो अल्पदोषी और उपर गया तो व निरपराधी माना जाता है।

त्रिक प्रसवशांति = तीन कन्याओं के बाद पुत्र या तीन पुत्रों के बाद कन्या का जन्म, अशुभ माना जाता है। उस निमित्त यह एक अरिष्टनिवारक विधि होती है।

त्रिदण्डी संन्यास = एक गौण संन्यास। एकत्र बांधे हुए तीन दण्ड धारण करना आवश्यक। शिखा, सूत्र और कच्छ का त्याग अनावश्यक। यथाकाल गृहस्थाश्रम का पुनः स्वीकार इस संन्यास का स्वरूप माना गया है।

त्रिमधुर = घृत, मधु और शर्करा।

त्रिपुण्ड्र = शैवपंथी लोगों के भाल पर आलिखित मध्यबिंदुसहित तीन भस्मरेखा (या चन्दनरेखा)। ये तीन पुण्ड्र या चिह्न ओंकार, वेदत्रयी, अग्नित्रयी, शक्तित्रयी, लोकत्रयी, त्रिसवन आदि का प्रतीक माने जाते हैं।

त्रिपुर भैरवी = एक रक्तवर्ण तांत्रिक देवता।

त्रिपुर सुन्दरी = एक तांत्रिक देवता। इसके उग्र और सौम्य स्वरूप कहे गये हैं। श्रीचक्र के प्रतीकद्वारा इसकी उपासना करने की पद्धति है।

त्रिपिण्ड श्राद्ध = तीर्थक्षेत्र में होने वाला श्राद्ध। इसमें पितरों की सद्‌गति के हेतु, यवपिण्ड (या धर्मपिण्ड), व्रीहिपिण्ड और तिलपिण्ड का पूजन और दान होता है।

त्रिपुरा = ब्राह्मी, रौद्री और वैष्णवी शक्तियों से घटित एक तांत्रिक देवता। दुर्गा, कात्यायनी, ललिता, काली, गौरी, श्रीविद्या, त्रिपुरसुंदरी, त्रिपुरभैरवी आदि इसी की संज्ञाएं हैं। त्रिपुरातापिनी उपनिषद इसी देवता की उपासना का निवेदन करता है।

त्रिरात्र व्रत = विवाहविधि के बाद नव दम्पती ने एकशय्या पर व्रतस्थ वृत्तिसे तीन रात्र शयन करना।

त्रिवेणी = गंगा, यमुना और सरस्वती इन तीन नदियों का संगमस्थान जो 'प्रयागराज' कहलाता है।

त्रैलोक्यमोहन गणेश = शक्तिसहित गणेशमूर्ति का एक तांत्रिक प्रकार।

त्रैलोक्य सम्मोहन = अष्टभुज विष्णुमूर्ति का एक प्रकार।

त्रैलोक्य मोहना या त्रैलोक्य मोहिनी = एक शाक्त देवता।

त्रैलोक्य स्तंभनी = एक शाक्त देवता।

त्र्यायुष = भस्म की अपर संज्ञा।

त्वरिता = (या अक्षरादेवी) = एक तांत्रिक देवता। मयूरपिच्छ और गुंजामाला इसके आभरण हैं।

त्वष्टा = एक वैदिक देवता। इन्द्र का वज्र, तिलोत्तमा अप्सरा, त्रिपुरासुर युद्ध में उपयुक्त शिव का रथ, इत्यादि के निर्माता। विश्वकर्मा इसीका पुत्र कहा गया है।

दक्षिणकाली = बंगाल में उपास्य काली देवी की संज्ञा।

दत्तक पुत्र = धर्मशास्त्र के १२ प्रकार के पुत्रों में से एक। पुत्र। पुत्रहीन व्यक्ति को माता-पिता के द्वारा विधिपूर्वक दिया गया पुत्र। (दत्तक विधान कन्या का भी होता है।) सबसे योग्य दत्तक पुत्र भतीजा माना है। कन्यापुत्र या भगिनीपुत्र निषिद्ध। उपनीत दत्तक उभयगोत्री होता है। लड़की का भी दत्तकविधि शास्त्र संमत है।

दर्शश्राद्ध (या पार्वण श्राद्ध) = दर्श = अमावस्या के दिन, पितृत्रयी, मातृत्रयी, मातामहत्रयी, मातामहीत्रयी; के निमित्त

श्राद्धविधि।

दशपेय याग = सोमयाग का एक प्रकार। इसमें दस ब्राह्मणों के दस गुट क्रमशः एक साथ लकड़ी के चमस से सोमपान करते हैं। अतः 'दशपेय' संज्ञा रूढ हुई।

दर्शजननशांति = दर्श = चन्द्र-सूर्य की युति। सूर्य-चंद्र एक दूसरे का दर्शन लेते हैं। अतः अमावस्या को 'दर्श' कहते हैं। यह श्राद्ध के लिए प्रशस्त तिथि होती हैं। अतः इस तिथि पर अपत्य का जन्म अरिष्टकारक माना जाता है। इस निमित्त आवश्यक मानी गई एक शांति विधि।

दशविध दान = और्ध्वदेहिक क्रिया में गाय, भूमि, तिल, सुवर्ण, आज्य, वस्त्र, धान्य, गुड, रौप्य और लवण (नमक) इन दस पदार्थों का दान उचित माना है। (लवण का दान देवों को वर्ज्य किंतु पितरों को प्रिय माना जाता है।)

दाय = (१) श्रम का पुरस्कार। (२) उत्तराधिकार में प्राप्त पैतृक धन। सम्पत्ति के न्याय्य स्वामी से पुत्र, कन्या, भ्राता, आदि संबंधों के कारण.अन्य व्यक्ति के स्वामित्व की स्थापना।

दायभाग = धनस्वामी के मरणोत्तर पैतृक धन का विभाजन करने की धर्मशास्त्रोक्त पद्धति। इस पद्धति में स्त्री को भी विभाग प्राप्त होता है।

दायाद = धर्मशास्त्रोक्त १२ पुत्रों में से औरस, क्षेत्रज, दत्त, कृत्रिम, गूढ, अपविद्ध इन छह पुत्रों की संज्ञा। पिता के मरणोपरान्त दायाद ही उसकी सम्पत्ति का स्वामी हो सकता है। अन्य छह अदायाद माने हैं।

दासकूट = कीर्तन (भक्तिसंगीत) के निमित्त यत्र तत्र प्रवास करने वाले हरिदासों का समूह।

दासमार्ग = तांत्रिकों की सहज-दीक्षा की अपर संज्ञा। यही सामान्य तांत्रिक दीक्षा है। (देखिये-सहजदीक्षा)

दासीदान = पांच सें अधिक और चालीस से कम आयु की स्त्री का ब्राह्मण को उपभोगार्थ समर्पण करने की एक विधि। पर्वकालों में या स्थिर नक्षत्र युक्त बुधवार को यह दानविधि होती थी।

दांस्यभक्ति = किसी मंदिर में निष्काम बुद्धि से निरलस सेवा करना। भक्ति के नौ प्रकारों में से सातवीं भक्ति। हनुमानजी इस भक्ति-प्रकार के आदर्श हैं।

दिग्व्रत = अपने निवास-ग्राम की सीमा का उल्लंघन न करना। (इसी व्रत को क्षेत्रसंन्यास भी कहते हैं।

दिधिषु = भाई के दाहसंस्कार के समय उसकी पत्नी के पति का स्थान ग्रहण करने वाला। (ऋ. १०-१८-१८) तैत्ति आरण्यक- ६-१-३)

दिव्य पंचक = दिव्य = सत्य-असत्य के प्रमाण के अभाव में की जाने वाली सत्त्वपरीक्षा। पांच प्रकार – तुलादिव्य, अग्निदिव्य, जलदिव्य, विषदिव्य और कोषदिव्य।

दीक्षा = दो प्रकार – (१) समय दीक्षा, (२) निर्वाण दीक्षा। (तंत्रशास्त्र)

दीक्षा = वीरशैव मतानुसार तीन प्रकार – वेधात्मिकी, मन्त्रात्मिकी और क्रियात्मिकी।

दीक्षा = ज्ञानदान और कर्मक्षय करने वाला एक संस्कार। यह संस्कार गुरु के द्वारा ही होता है। दो प्रकार – लोकधर्मी और शिवधर्मी। लोकधर्मी दीक्षा को भोगोपाय और शिवधर्मी को मोक्षोपाय माना जाता है। **तांत्रिक दीक्षा के प्रकार** – अलौकिक, दैवी, चाक्षुषी, मानसी, स्पर्शवती, श्रौती, निर्वाणपद, सकल, अघोरेश्वरी, सामान्या, आचार्य, शिव, योग इत्यादि।

दीधिषू = छोटी वहन का विवाह पहले संपन्न होने के कारण अविवाहित बड़ी बहन को यह संज्ञा प्राप्त होती है।

दीपदान जागर = आश्विनी पौर्णिमा का एक प्राचीन लोकोत्सव। अन्यनाम कौमुदीजागर या कौमुदीमहोत्सव।

दुर्मरण श्राद्ध = विष, शस्त्र, हिंस्र पशु आदि कारणों से मृत व्यक्ति का या महापातकी का श्राद्ध। यह विधि आश्विन कृष्ण १४ को होती है।

दुष्ट (या दूषित) अन्न के प्रकार = आमदुष्ट स्थानदुष्ट, कालदुष्ट, परिग्रहदुष्ट, संसर्गदुष्ट, क्रियादुष्ट और निमित्तदुष्ट।

देवऋषि = भूतबाधा निवारण के मंत्रतंत्रों का जानकार।

देवऋषि = वैद्य, ज्योतिषी तथा मांत्रिक के नाते गांव की सेवा करने वाला सज्जन। (इसी को भगत कहते हैं।)

देवता वैकृतशांति = देवतामूर्ति में किसी प्रकार की विकृति दिखाई देने पर यह शांतिविधि होती है।

दैधिषव्य = (१) विधवा का पुत्र। (तैत्तिरीय सं. ६-१) (२) बडी बहन से पहले विवाहिता छोटी बहन का पुत्र (दिधिषू का पुत्र)

दैवविवाह = यज्ञविधि में यजमान द्वारा ऋत्विक् को कन्या समर्पण करने की प्रथा। धर्मशास्त्रोक्त विवाह के आठ प्रकारों में इसकी गणना होती है।

दोलारोरण = नवजात अर्भक को १२ वें दिन या किसी सुमुहूर्त पर झूले में सुलाने का एक गौण संस्कार।

दौहित्रश्राद्ध (या मातामहश्राद्ध) = आश्विन शुद्ध प्रतिपदा को माता के मृत पिता के प्रीत्यर्थ श्राद्ध।

द्वारचर्या = देखिये चर्या।

धनुर्बाणविधि = पुंसवन संस्कार के समय एक बाण गर्भिणी के मस्तक पर तोडकर, तीन ग्रंथियों से युक्त धनुष्य की प्रत्यंचा से गर्भिणी को बांधने की विधि। (कौशिक सूत्र ३५-१-४/१२.१५)

धनुर्वेदोपनयन = धनुर्विद्या के अध्ययन का प्रारंभ इस विधि से होता था। इसमें धनुर्दान की विधि मुख्य थी।

धर्म = (१) 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' (जैमिनिसूत्र १-१-२) = अर्थात् आज्ञापक वाणी (याने वेदवचन या आप्तवचन) के द्वारा आदिष्ट विधि और निषेध। (२) समाज की धारणा करने वाले सिद्धान्त (यःस्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।) (३) यतोऽभ्युदय-निःश्रेयंसासिद्धिःस धर्मः। (वैशेषिक सूत्र

१-१-२) जिसके द्वारा ऐहिक और पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति निश्चित होती है वही धर्म है।

धर्मगाथा (धर्मकथा) = पौराणिक दैवतों की कथा। सामान्य जनता को तत्त्वबोध करना ही इसका प्रयोजन होता है।

धर्मरात्र = भूतान के अधिपति की संज्ञा। राज्य के प्रमुख मंत्री या सचिव को **देवरात्र** कहते हैं।

धर्मशास्त्र के आधार = वेद, वेदांग, मीमांसा, स्मृति, पुराण और न्यायशास्त्र।

धर्मशालादान = प्रवासियों के लिए स्वतंत्र भवन बनाना या अपने आवास का कुछ अंश खाली रखना।

धान्यधेनुदान = वराहपुराण में उल्लिखित एक व्रत। अयन संक्रांति या कार्तिकी पौर्णिमा को चांवल से निर्मित गाय और वछड़े की प्रतिमा वनाकर दान देना।

धान्यशैल दान = मेरु, मंदार, गंधमादन और सुपार्श्व इन पुराणोक्त पर्वतों की आकृतियाँ, चांवल, गेंहू, तिल, उड़द, इन धान्यों से करके, उनका दान देने की विधि।

ध्वजनाथ पंथ = नाथ-संप्रदाय का एक उपपंथ।

नक्षत्र गंडान्त शान्ति= रेवती-आश्विनी, आश्लेषा-मघा, एवं ज्येष्ठा-मूल, इन नक्षत्रों के संधिकाल में जन्म पाये अर्भक के कल्याणार्थ ११ वें दिन या ६ महीनों के उपरान्त विहित कृत्य।

नग्न प्रच्छादन श्राद्ध = और्ध्वदेहिक विधियों में प्रथम दिन होने वाला श्राद्ध। इससे मृतात्मा की प्रेतत्वनिवृत्ति होती है। मृतात्मा के प्रवासोपयोगी आमान्न, तैल, घृत, पादत्राण, छाता, सोना, चांदी आदि पदार्थों का दान इसमें होता है। यह अमंत्रक होता है।

नवचण्डी = नौ दिनों तक (विशेषतः आश्विन मास की नवरात्रि में) सप्तशती ग्रंथ का पारायण। इस प्रकार, शतचण्डी, सहस्रचण्डी, लक्षचण्डी, चामक चण्डीपाठ होते हैं। इस अनुष्ठान में कुमारी-पूजा होती है।

नवमिश्रश्राद्ध = एकोदिष्ट श्राद्ध का एक प्रकार (मासिक श्राद्ध)।

नवश्राद्ध = एकोदिष्ट (देखिये) श्राद्ध का एक प्रकार जो ९ वें या ११ वें दिन होता है। अपर संज्ञा-विपम श्राद्ध।

नान्दीश्राद्ध = पुत्रजन्म, उपनयन, विवाह, इत्यादि शुभ अवसरों पर होने वाला श्राद्ध (अपर नाम- वृद्धिश्राद्ध तथा आभ्युदयिक श्राद्ध) – नान्दीमुख नामक पितरों की तृप्ति के हेतु मंगल समारोहों में यह श्राद्ध होता है।

नारायणबलि (या नारायण नागबलि) = दुरवस्था, अपघात, आत्महत्या आदि के कारण मृत व्यक्ति की प्रेतत्वनिवृत्ति के लिये शुद्ध एकादशी को की जानेवाली विशिष्ट श्राद्धविधियां।

नित्यकर्म = पंच महायज्ञादि दैनंदिन धर्मशास्त्रोक्त कर्म। इनके करने से चित्तशुध्दि फल मिलता है किन्तु न करने से **'प्रत्यवाय'** नामक दोप लगता है।

नित्ययज्ञ = देखिये (पंच) महायज्ञ

नित्ययज्ञ पंचक = स्नान, दान, तप, होम और तर्पण।

नित्यश्राद्ध = प्रतिदिन एक ब्राह्मण को अन्नदान।

नित्या = एक शाक्त देवताओं का समूह (नित्यास्तु षोडश)। महात्रिपुरसुंदर, कामेश्वरी, भगमालिनी, क्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महाविद्या, ईश्वरी, दूती, त्वरिता, कुलसुंदरी, नीलपताका, विजया, सर्वमंगला, ज्वालामालिनिका, और चित्रा।

नियम पंचक (भिक्षु के लिये) = अक्रोध, गुरु-शुश्रूषा, शौच, मिताहार और नित्य स्वाध्याय।

नियोग = (१) पुत्रहीन स्त्री को अपने कनिष्ठ देवर या अन्य योग्य पुरुष द्वारा तीन अपत्य प्राप्त करने की एक प्राचीन विधि। (२) मृत भ्राता की पुत्रहीन पत्नी को पुत्रलाभ के निमित्त देवर की योजना।

निरंजनी संप्रदाय = सिक्खों का एक संप्रदाय। इसके संस्थापक हंदल नाम जाट साधु होने के कारण इसे हंदली संप्रदाय भी कहते हैं। निरंजन नाम से ईश्वर का निर्देश करने के कारण निरंजनी कहते हैं।

निर्बीज दीक्षा = तांत्रिकों की दीक्षा का एक प्रकार। सामान्य असमर्थ लोगों को यह दीक्षा दी जाती है। गुरु को ही परमेश्वर मान कर शिष्य इस दीक्षा में साधना करता है।

निर्वाण दीक्षा = तांत्रिकों की द्विविध दीक्षा में दूसरी दीक्षा (प्रथम दीक्षा को समयदीक्षा या दासमार्ग कहते हैं।) इस दीक्षा से शिष्य में भगवद्धर्म की अभिव्यक्ति होती है। दो प्रकार – (१) सबीज (अपर संज्ञा - पुत्रक दीक्षा, आचार्य दीक्षा या अप्राकृत जन्म); (२) निर्बीज दीक्षा

निवीत = गले में यज्ञोपवीत को माला के समान धारण करना। ऋषितर्पण निवीत से होता है। (देवतर्पण सव्य से और पितृतर्पण अपसव्य से होता है।

निवृतिधर्म = ज्ञान - वैराग्यनिष्ठ मोक्षपरक धर्म।

निष्क्रमण = १६ संस्कारों में से छठा संस्कार। चार मास होने पर शिशु का निष्क्रमण संस्कार (अर्थात् देवदर्शन निमित्त घर से बाहर निकलना) होता है।

नीराजनाविधि = आश्विन शुक्ल पक्ष में विजययात्रा के समय हाथी, घोड़े आदि की आरती उतारने की विधि।

नैमित्तिक कर्म = उपनयन, विवाहसंस्कार आदि कर्म जो विशिष्ट निमित्त से किये जाते हैं।

नैवेद्य = देवपूजा के १६ उपचारों में से एक। इसमें पांच प्रकार (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय, और चूष्य) के भोग का देवता को विधिपूर्वक समर्पण होता है।

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य = आमरण अविवाहित रहकर गुरुगृह में विद्याध्ययन करने का व्रत।

न्यास = शरीर के अंगप्रत्यांगों पर विशिष्ट देवताओं की संकल्पद्वारा स्थापना। विविध प्रकार – देवतान्यास, मंत्रन्यास, मातृका न्यास, तत्त्वन्यास, करन्यास, पंचांग/षडंग-न्यास, व्यापकन्यास, ऋष्यादिन्यास।

पक्ष = गोत्र के विभाग गण और गण के विभाग पक्ष होते हैं।

पतित = संकटकाल न होते हुए भी स्वधर्म का त्याग कर परधर्म का स्वीकार करने वाला

पतितसावित्रिक = उपनयन संस्कार की धर्मशास्त्रोक्त कालमर्यादा का उल्लंघन होने के कारण जिसे गायत्री मंत्र की दीक्षा नहीं मिली ऐसा त्रैवर्णिक व्यक्ति। पतितसावित्रिक लोग समाज में बहिष्कृत माने जाते थे।

पतिव्रता = काया, वाचा, मन से पति की निष्ठापूर्वक साथ-संगत करने वाली। पति को देवता मान कर दासीसमान, वेश्यासमान, मातासमान और मित्रसमान उसकी साथसंगत करनेवाली और उसके धर्मव्रतों में सहचारिणी आदर्श गृहिणी। (पद्मपुराण सृतिखंड ४५-५७)

परमधर्म = यज्ञ, सदाचार, दम (इंद्रिय संयम) अहिंसा, दान, स्वाध्याय, (वेदशास्त्राध्ययन) शास्त्रोक्त कर्मानुष्ठान इनसे भी योग साधना के द्वारा आत्मदर्शन (या आत्मप्रतीति) श्रेष्ठतम धर्म है।) (याज्ञावल्क्य स्मृति- (१-८)

परापूजा = देखिये मानसपूजा।

परावृज = कुमारी का पुत्र।

परिक्रीत दास = विशिष्ट कालावधि के लिए सेवाकार्य में नियुक्त। उदा. सरकारी नौकर।

परिदायी (परिदाता) = ज्येष्ठ कन्या के विवाह के पूर्व छोटी कन्या का विवाह करने वाला पिता।

परिवित्त (या परिवित्ति) = छोटाभाई या छोटी बहन का विवाह पहले होने के कारण बड़े भाई या बड़ी बहन को प्राप्त संज्ञा।

परिवेदन = अव्यंग बड़े भाई या बहन के पहले छोटे भाई या बहन का विवाह होना

परिवेदिनी = देखिये अग्रेदीधिपू।

परिव्राजक (परिव्राट्) = सर्वसंग-परित्याग-पूर्वक संन्यास ग्रहण कर अखंड प्रवास करने वाला मुमुक्षु। इसे यज्ञ का अधिकार नहीं होता।

परिषद् = व्रतपालन तथा मंत्र आदि की साधना करने वाले सज्जनों का समुदाय। (मनु. १२-११४/३-११७)

परिषद् = चार वेदों के चार ज्ञाता, तीन आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ) के श्रेष्ठ तीन और धर्मशास्त्र के विशेषज्ञ तीन ऐसे दस सज्जनों की समिति। इसीको "दशावर" कहते हैं।

पर्यंकशौच = संन्यास ग्रहण की एक विधि। इसमें संन्यास ग्रहण करने वाले व्यक्ति को पर्यंक (पलंग) पर बिठाकर मिट्टी से उसके अवयव निर्मल किये जाते हैं।

पर्व = चातुर्मास्य के उत्सवदिन।

पर्याधातृ = बड़े भाई के पूर्व अग्न्याधान करने वाला छोटा भाई। (देखिये पर्याहित)

पर्याहित = छोटे भाई के पूर्व अग्न्याधान करने वाला बडा भाई। (देखिये पर्याधातृ)

पवित्रक = दर्भ, सुवर्ण, रजत, तथा ताम्र की पवित्र अंगूठी जो धर्मकृत्य के समय तर्जनी या अनामिका में धारण की जाती है। दर्भ-पवित्रक ब्राह्मणों के लिए विहित है। कर्म समाप्ति के बाद उसका विसर्जन होता है।

पशुगायत्री = "पशुपाशाय विद्महे। शिरश्छेदाय धीमहि। तन्नः पशुः प्रचोदयात्" इस मंत्र की संज्ञा।

पंक्तिपावन = श्राद्धभोजन एक निंद्य कर्म माना गया है। श्राद्धभोजी ब्राह्मणों की पंक्ति को अपनी उपस्थिति से पावन करने वाला मूर्धन्य विद्वान् एवं शीलसंपन्न ब्राह्मण। पंक्तिपावन एक सम्मानसूचक उपाधि है।

पंचकमरण शान्ति = धनिष्ठा, शततारका, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, और रेवती इन अंतिम पांच यमनक्षत्रों को 'पंचक' कहते हैं। इस पंचक काल में मृत्यु अनिष्टकारक माना जाता है। अतः अनिष्ट परिहार के हेतु शांतिविधि में पांच दर्भ-प्रतिमाओं के सहित मृत शरीर का दहन होता है।

पंचकाल = पांचरात्र मतानुसार परमात्मा की उपासना के पांच काल (१) अभिगमन (जप, ध्यान और अर्चन के द्वारा ईश्वर के संमुख जाना) (२) उपादान (पूजा के लिए फल-पुष्प आदि द्रव्यों का ग्रहण करना) (३) इज्या (ईश्वर की पूजा) (४) (आगम ग्रंथों का अध्ययन और प्रवचन), (५) योग (अष्टांग योग की साधना)।

पंचकृष्ण = महाराष्ट्र के महानुभाव नामक वैष्णव संप्रदाय में (१) भगवान श्रीकृष्ण (२) दत्तात्रेय प्रभु, (३) गुंडम राऊळ, (४) चांगदेव राऊळ और (५) चक्रधरस्वामी (जो प्रस्तुत संप्रदाय के संस्थापक (ई. १२ वीं शती) थे। इन पांचों का 'पंचकृष्ण' संज्ञा से उल्लेख होता है।

पंचकलि = (१) मिथ्याभाषण, उन्माद, काम, हिंसादिदोष और वैर (भागवत १-१७-३९) (देखिये कलिचतुष्टय)

पंचकषाय = शमी, उदुंबर, अश्वत्थ, वट और पलाश। (यज्ञ में इन पांच वृक्षों की समिधाओं का उपयोग होता है।)

पंचगंगा = प्रधानतया गंगा, यमुना, सरस्वती, किरणा, और धूतपापा इन पांच नदियों की संज्ञा। उनके अतिरिक्त इस पंचक में कृष्णा, गोदावरी, कावेरी, आदि अन्य पवित्र नदियों की भी गणना की जाती है।

पंचगंध = कस्तूरी, चंदन, कपूर, अगरु और मलयागरुचन्दन। ये सभी कार्यों में शुभ माने जाते हैं।

पंचगव्य = रक्त, श्वेत, कांचन, कृष्ण और नील वर्णों की पांच गायों के गोमूत्र, गोमय, दुग्ध, दधि और घृत इन पांच द्रव्यों का विधियुक्त मेलन।

पंचगव्य = गोमूत्र, गोमय (गोबर), दूध, दही और घृत (अर्थात् गाय के दूध का)। धार्मिक कार्यों में शुद्धि के लिये पंचगव्य आवश्यक माना है।

पंचगव्य स्नान = अभक्ष्यभक्षण आदि दोषों को प्रायश्चित्तों का एक प्रकार।

पंचतपा = वानप्रस्थाश्रमी जो पंचाग्निसाधना करता है। (भागवत ४-२६-६)

पंचतीर्थ = देवतीर्थ, ऋपितीर्थ, पितृतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ और अग्नितीर्थ। पवित्र ब्राह्मण के दाहिने हाथ के विशिष्ट स्थानों में इनका अस्तित्व माना जाता है।

पंचदक्षिणा = अतिथि को नेत्र, मन, मधुरवाणी, अनुगमन और सेवा इन पांचों का प्रदान। अर्थात् अतिथि को प्रेम से देखना, मधुर बोलना, प्रवास में साथ देना, और उसकी आवश्यक सेवा करना। इसीको महाभारत में '**पंचदक्षिणा यज्ञ**' माना हैं। (अनुशासन पर्व ७-६)

पंचप्रेत = शाक्त मत में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव इन पांचों की संज्ञा। श्रीविद्या भगवती इन पर विराजमान होती है।

पंचब्रह्म = शैव मतानुसार सृष्टि के आरंभ में उत्पन्न सद्योजात, अघोर, वामदेव, तत्पुरुप और ईशान इन पांचों की संज्ञा।

पंचम = शैव मतानुसार ईशानमूर्ति नामक शिवमूर्ति से उत्पन्न गणेश्वर नामक पंचमुखी देवतासे उत्पन्न मखारि, कलारि, पुरारि, स्मरारि और वेदारि नामक पांच महापुरुष। (इन्हीसे भक्त, जंगम, शीलवंत, वजिंग और पंचमशाली नामक पांच **उपपंचमों** की उत्पत्ति मानी जाती है।

पंचम **पुरुषार्थ** = ज्ञानोत्तर भक्ति। (अन्य चार – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)

पंच-महापातक = ब्रह्महत्या, सुरापान, चौर्य, गुरुपत्नीगमन और इन चार पातकों को करने वाले पातकियों से संसर्ग।

पंचमुद्रा = आवाहनी, स्थापनी, सन्निधापिनी, संबोधनी और संमुखी। हाथों की विशिष्ट स्थिति द्वारा मुद्रा कि जाती है।

पंचमुख शिव = पूर्व-महादेव, दक्षिण-भैरव, पश्चिम-नन्दिवक्त्र, उत्तर- उमावक्त्र। ऊर्ध्व- सदाशिव। इस प्रकार पांच दिशाओं में पंचमुखी शिवलिंग में सद्योज्ञान वामदेव, अघोर, तत्पुरुप और ईशान- संज्ञक शिवमुख होते हैं।

पंचयज्ञ = अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग और सोमयाग।

पंच लांगलक = भूमि का दान देते समय उसके साथ पांच हल समर्पण करना।

पंचव्रीहि (या धान्य) = तिल, उड़द, मूंग, श्यामाक (संवि) और शाली। ये सर्व आरिष्टां के नाशक माने हैं।

पंचसखा (या शाखा) = उत्कल प्रदेश का एक वैष्णव संप्रदाय। इस संप्रदाय से तांत्रिक और बौद्ध संप्रदायों का समन्वय हुआ है। चैतन्य महाप्रभु से प्रेरणा पाने वाले वलरामदास, जगन्नाथदास, अच्युतानन्ददास, यशोवन्तदास और अनन्तदास इन पांच सत्पुरुषों ने इस संप्रदाय का प्रवर्तन किया। संप्रदाय के ग्रंथ उड़िया भाषा में रचे हैं।

पंचसूना = चूल्हा, चक्की, झाड़, ओखली और जलकुंभ। इन पांच के कारण घर में जीवहत्या होती है। (सूना = कसाईखाना)। पंचमहायज्ञों से इन पांच हत्यास्थानों के कारण प्राप्त पंचसूना दोष के मुक्तता होती है। मनु ३-६८-६९

पंचहत्या = ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, गोहंत्या, राजहत्या और स्त्रीहत्या ये अक्षम्य अपराध हैं।

पंचांग (विवाह के) = वाग्दान, प्रदान, वरण (सर्वानुमति), पाणिपीडन (या पाणीग्रहण) और सप्तपदी।

पंचाग्निसाधन = ग्रीष्म ऋतु में चारों दिशाओं में जलते हुए अग्निकुंडों के बीच में बैठकर सूर्यबिंब को देखने की कठोर तपस्या।

पंचाचार = (लिंगायत मतानुसार) **सदाचार, गणाचार, नित्याचार** (लिंगपूजा ध्यान, व्रत आदि) **शिवाचार** (लिंगधारक का आदर), **लिंगाचार** (शरीर पर धारण किये लिंग की नित्य पूजा)

पंचाचार्य = लिंगायत संप्रदाय के पांच प्रमुख आचार्य (१) रेणुकाराध्य, (२) मरुळाराध्य, एकोराम, पंडिताराध्य और विश्वाराध्य इन पंचाचार्यो के मठ, मठपति, स्थावर, गणाचार्य और देशिक नामक पांच उपाचार्य होते हैं।

पंचामृत = नरियल, आम, केला, (या कटहल) इन तीन फलों के रस का मधु और शक्कर से मिश्रण। (बौधायन गृहसूत्र)

पंचामृत =गाय का दूध, दही, घृत, मधु और शक्कर। पूजा में इन्हीं से देवता का पंचामृतस्नान होता है।

पंचोपचार = पूजा में उपयुक्त पांच द्रव्य – गंध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य। (देखिये षोडशोपचार)

पाखण्ड = पा = (त्रयी धर्म) का खण्ड = खण्डन करने वाला, अर्थात् वैदिक मत विरोधी। इसी को "नग्न" (वेद का आवरण न होने वाला) कहा गया है। चार्वाक, वर्धमान, महावीर, गौतम, कापालिक, पाशुपत, पांचरात्र इत्यादि के मतों को वैदिक मतानुयायी पाखण्डी कहते हैं।

पातक = विहित कर्म का त्याग और निषिद्ध कर्म का आचरण। (कात्यायन के अनुसार पांच प्रकार) - पातक, अतिपातक, उपपातक, प्रासंगिक, महापातक। (अन्यत्र उल्लिखित प्रकार) – प्रकीर्ण, अपांक्तेय, ज्ञातिभ्रंशकर, मलिनीकरण।

पाथेय श्राद्ध = प्रेतत्वनिवृत्ति के निमित्त अमंत्रक विधि।

पापकर्म = अहितबुद्धि या असद्भावना से किया हुआ कर्म जो परिणामतः दुःखदायक होता है।

पारणा = उपवास व्रत समाप्ति के बाद विधिपूर्वक अन्नसेवन। यह भी उपवास व्रत का अंग माना जाता है।

पारायण = विशिष्ट पर्वकाल में रामायण, गीता, सप्तशती आदि पवित्र ग्रंथों का व्रताचार सहित नियमित पठन। ज्ञानेश्वरी, रामचरितमानस, गुरुचरित्र आदि प्राकृत ग्रंथों का भी पारायण श्रद्धालु लोक करते हैं।

पार्वण श्राद्ध = श्राद्ध के दो प्रकारों में से एक। यह वेदोक्त पिण्डपितृयज्ञ का एक पर्याय अनाहिताग्नि लोगों के लिए कहा गया है। अन्य प्रकार - **एकोद्दिष्ट श्राद्ध** – यह एकमात्र मृतव्यक्ति के प्रेतत्व की निवृत्ति के लिए होता है।

पार्वण श्राद्ध = पिता, पितामह और प्रपितामह इन तीन मृत

पूर्वजों के प्रीत्यर्थ श्राद्ध। प्रातिसांवत्सरिक, महालय आदि इसके अनेक प्रकार कहे गये हैं।

पार्वण श्राद्ध = (देखिये दर्शश्राद्ध)

पार्षद देवता = पंचायतन के शिव, विष्णु, देवी, गणेश और सूर्य इन पांच प्रमुख देवताओं के अनुयायी गौण देवता।

पिण्डदान = श्राद्धविधि में प्रेत तथा पितरों के प्रीत्यर्थ सत्तू या भात का पिण्ड विधिपूर्वक समर्पण करना। औरस, या दत्तक पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र यथाक्रम पिण्डदान के अधिकारी माने गये हैं। इन सभी के अभाव में विधवा पत्नी को अधिकार होता है।

पिता = जन्मदाता के अतिरिक्त कन्यादाता, अन्नदाता, ज्ञानदाता, अभयदाता, मंत्रदाता, ज्येष्ठ भ्राता और उपनेता (उपनयन करने वाला।) (ब्रह्मवैवर्त पुराण श्रीकृष्णजन्मखंड - ३५)

पितापुत्रीय = एक संस्कारविशेष जिसमें पिता अन्तिम अवस्था में अपनी सभी शक्तियों को पुत्र में स्थापित करता है। (कौषीतकी उप. २-१५)

पितृगण = काव्य, संवत्सर, आज्यप, सोमप, पंचाब्द।

पितृचतुष्टय = अग्निष्वात्त (पूर्वदिशा में) बर्हिषद (दक्षिण में), आज्यप (पश्चिम में), सोमप (उत्तर में। अन्य ७ प्रकार – (१) मूर्तपितृगण – हविष्मत (या काव्य), सुस्वधा (उपभूत), आज्यप और सोमप (सुकाल) (२) **अमूर्त पितृगण** = वैराज, अग्निष्वात्त और बर्हिषद। महाभारत के अनुसार ५ पितृगण – अग्निष्वात्त, फेनप, उष्मप, सुधावान् और बर्हिषद।

पितृलोक सप्तक = सत्य, विरजस, सोमपथ, मरीचिगर्भ, कामग, मानस और सनातन।

पितृतर्पण = पितरों की तृप्ति के निमित्त कुशतिलयुक्त जल का मंत्रपूर्वक समर्पण। इसी प्रकार ब्रह्मयज्ञ की आह्निक विधि में देव और ऋषि गणों का तर्पण श्रेयस्कर माना है।

पित्र्यकर्म = (तीन प्रकार) = दैव, पार्वण और एकोद्दिष्ट। पितरों के निमित्त धर्मशास्त्र में विहित कर्म।

पीठशक्ति = जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा और मंगला इन नौ देवताओं की संज्ञा।

पीताम्बरा = एक शाक्त देवता। इसी को शांभवी महाविद्या कहते हैं।

पुण्यकर्म = हितबुद्धि या सद्भावना से किया हुआ कर्म जो परिणामतः सुखदायक होता है।

पुण्याहवाचन = प्रत्येक धार्मिक कार्य के प्रारंभ में यजमान पुरोहित से प्रार्थना करता है कि 'मह्यं....पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु''। इस प्रार्थना का प्रत्युत्तर ''अस्तु पुण्याहम्' इस वचन से देते है। इस प्रार्थना एवं प्रत्त्युत्तर की विधि की संज्ञा। पुण्याहवाचन के बाद प्रत्यक्ष धार्मिक कर्म का प्रारंभ होता है।

पुत्र = वाच्यार्थ (१) पितरों को पवित्र करने वाला। (पुत्नामक नरक से माता-पिताका त्राण (रक्षण) करने वाला)। मनुस्मृति में कथित १२ प्रकार के पुत्र – औरस, क्षेत्रज (परपुरुष द्वारा उत्पादित), दत्तक, कृत्रिम, गूढ (जिसका पिता अज्ञात है।) अपविद्ध (माता-पिता द्वारा परित्याग होने पर स्वीकृत), कानीन (कुमारिका का पुत्र) सहोढ (गर्भिणी से विवाह होने पर जन्म पाया हुआ), क्रीत, पौनर्भव (परित्यक्ता या विधवा स्त्री का पुनर्विवाह से उत्पन्न), स्वयंदत्त (माता-पिता द्वारा अकारण त्याग होने पर दूसरे व्यक्ति का पितृत्व स्वीकार करने वाला), पारशव (उच्चवर्णीय पुरुष का नीचवर्णीय स्त्री से उत्पन्न)। धर्मशास्त्र के अनुसार मृतव्यक्ति की सम्पत्ति के तीन उत्तराधिकारी – पुत्र, पौत्र और प्रप्रौत्र

पुत्रिका = भ्रातृहीन कन्या। पुत्रिका से विवाह निषिद्ध माना गया है। जिस लड़की का पिता अज्ञात होता है ऐसी लड़की भी पुत्रिका कही गई है।

पुनरुपनयन = अपनी कुलपरंपरा की वेदसंहिता से अन्य वेदसंहिता का (विशेषतः अथर्ववेद का) विधिपूर्वक अध्ययन करने के लिए तथा विशिष्ट पापाचार के प्रायश्चित्त के लिए पुनः उपनयन संस्कार करना।

पुनर्भू = पुनर्विवाहिता विधवा स्त्री। इसके सात प्रकार माने गये हैं – वाग्दत्ता, मनोदत्ता, कृतकौतुकमंगला, उदकस्पर्शिता, पाणिगृहीतिका, अग्निपरिगता और जातप्रसवा।

पुरश्चरण (पुरश्चर्या, पुरक्रिया) = मंत्रसिद्धि के हेतु किसी मंत्र का विशिष्ट संख्या में (मंत्राक्षर संख्या के सहस्रगुना या लक्षगुणा) जप करना। पुरश्चरण के पांच अंग – जप, होम, तर्पण, अभिषेक, और ब्राह्मणभोजन। (इन अंगों का प्रमाण जपसंख्या से यथाक्रम दशांश माना गया है)।

पुराण = परंपरा के अनुसार वेदव्यास विरचित वेदानुकूल कथात्मक पंचलक्षणी ग्रंथ। इनकी संख्या १८ निश्चित है। इनके शैव, वैष्णव और ब्राह्म तीन भेद माने जाते हैं। शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश और शक्ति इन देवताओं की भक्ति का प्रचार पुराणों का प्रयोजन है। हिंदुसमाज में आज मुख्यतः पुराणोक्त व्रतादि का प्रभाव अधिक है।

पुराण के दशलक्षण = सर्ग, विसर्ग (जीवसृष्टि), वृत्ति (जीवों के निर्वाह की सामग्री), रक्षा (परमेश्वर का अवतारकार्य), अन्तर (मन्वन्तर), वंश, वंशानुचरित, संस्था (विविध प्रलय), हेतु' (जीववर्णन), अपाश्रय (सर्वसाक्षी परमात्मा)। (सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षाऽन्तराणि च। वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः।। (श्रीमद्भागवत १२-७-९)

पुराणश्राद्ध = एकोद्दिष्ट श्राद्ध का एक प्रकार। वार्षिक श्राद्ध।

पुरुषार्थ = धर्म का साध्य (अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करने के लिये यथोचित प्रयत्न।

पुरुषार्थ = मनुष्य की जिसके प्रति प्रीति या इच्छा होती है ऐसा विषय (जैमिनि सूत्र ४-१-१-२)

पुरुषार्थ = धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष इन जीवन के चार उद्देश्यों की संज्ञा। पुरुष (जीव) का अर्थ (प्रयोजन या उद्देश्य)

पुरुषोत्तम क्षेत्र = जगन्नाथपुरी की अपर संज्ञा।

पुरोहित = अध्ययन और अध्यापन में जीवन व्यतीत करने वाला ब्राह्मणवर्ग

पुष्याभिषेक = चंद्र-पुष्य योग पर होने वाला राजा का अभिषेक। इसी योग पर इन्द्र ने वृत्रासुर पर विजय प्राप्त की थी।

पुंड्र = भाल प्रदेश पर भस्म या चंदन के चिह्न निकालने की साम्प्रदायिक पद्धति। इसमें त्रिपुण्ड्र, उर्ध्वपुण्ड्र इत्यादि प्रकार होते हैं।

पुंसवन = प्रथम गर्भधारणा होने पर दूसरे से आठवें महीने तक पुत्ररूप अपत्य के जन्म के उद्देश्य से धर्मशास्त्र में कथित एक संस्कार जो वालक (बालिका नहीं) की उत्पत्ति के उद्देश्य से किया जाता है।

पैतृकप्रसाद = पिता ने प्रसन्न होकर किसी पुत्र को दिया हुआ धन। परिवार की सामायिक सम्पत्ति के साथ इसका विभाजन नहीं होता।

पैत्रिक दास = दास के सात प्रकारों में से एक। पितृपरंपरा से प्राप्त दास का पुत्र।

पैशाच विवाह = मद्यपान से प्रमत्त अवस्था में पड़ी हुई या मूर्छित अवस्था में पड़ी हुई कुमारिका पर बलात्कार के बाद होने वाला विवाह। शास्त्रोक्त विवाह प्रकारों में से अंतिम प्रकार का एक निंद्य विवाह।

पोष्यवर्ग = जिनका पोषण गृहस्थाश्रमी ने अवश्य करना चाहिये ऐसे लोग – माता, पिता, गुरु, भार्या, प्रजा (संतति), दीन, अतिथि, अभ्यागत (मेहमान) और अग्नि।

पौष्टिक कर्म = कल्याण तथा अभिवृद्धि के हेतु होने वाले धार्मिक कर्म।

प्रतिकूल दोष = वाङ्‌निश्चय होने पर विवाह तिथि के पूर्व दोनों परिवारों में से किसी व्यक्ति की मृत्यु होना। इस दोष के शमनार्थ शांतिविधि होती है।

प्रतिग्रह = दान का स्वीकार। प्रत्येक दान का प्रतिग्रह विशिष्ट पद्धति से होता है। उदाहरणार्थ = घोडे का कान पकड कर और गाय की पूंछ पकड़कर प्रतिग्रह होता है।

प्रजापति क्षेत्र = तीर्थराज प्रयाग की अपर संज्ञा। प्रजापति के प्र + याग = प्रकृष्ट यज्ञ के कारण यह संज्ञा प्राप्त हुई।

प्रतिनिधिकल्प = देखिये अनुकल्प।

प्रतिरूपचर्या = (१) स्वजातीय कर्तव्यों का पालन। (२) जाति के प्रति आवश्यक कर्तव्य।

प्रतिसृष्टि = ब्रह्मा के द्वारा आदिसृष्टि की निर्मिति होने पर उसके रुद्र, विराट्, मनु, दक्ष, मरीचि आदि मानस पुत्रों ने जो पृथक् पृथक् प्रकार की सृष्टियां निर्माण की उन्हें प्रतिसृष्टि कहते हैं। विश्वामित्र भी प्रतिसृष्टि के विधाता माने जाते हैं।

प्रत्यवरोहण = श्रावण पौर्णिमा से सर्पभयं के कारण पलंग पर सोने का प्रारंभ होता है और मार्गशीर्ष पौर्णिमा (आग्रहायणी को पलंग का त्याग करते हैं। इसी को प्रत्यावरोहण विधि कहते हैं।

प्रत्यवाय = नित्य औपासन होम आदि कर्म न करने पर उत्पन्न होने वाला दोष। इस दोष का परिमार्जन प्रायश्चित्त से होता है।

प्रत्याम्नाय = कई पातकों के शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त सामान्य व्यक्ति के लिए दुष्कर होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिये धर्मशास्त्र द्वारा कथित सुकर प्रायश्चित्तों की संज्ञा।

प्रयाग तीर्थ = (१) प्रयागराज (गंगा- यमुना- सरस्वती संगम) (२) देवप्रयाग (अलकनंदा + भागीरथी) (३) रुद्र० (अलंकनंदा + मंदाकिनी)। (४) कर्ण० (अलकनंदा + पिंडरगंगा)। (५) नन्द० (अलकनंदा + नन्दा) (६) विष्णु० (अलकनन्दा + विष्णुगंगा)। (७) सूर्य० (अलस तरंगिणी + मंदाकिनी। (८) इन्द्रप्रयाग (भागीरथी + व्यासगंगा)। (९) सोमप्रयाग (सोमनन्दी + मंदाकिनी) (१०) भास्कर प्रयाग (११) हरिप्रयाग (हरिगंगा + भागीरथी। (१२) गुप्तप्रयाग (नीलगंगा+भागीरथी) (१३) श्यामप्रयाग (श्यामगंगा + भागीरथी) (१४) केशवप्रयाग (अलकनंदा + सरस्वती)।

प्रवर = गोत्र वैदिक **विद्यासंप्रदाय''** का द्योतक होता है। उसी प्रकार प्रवर वैदिक **कर्मसंप्रदाय** का द्योतक होता है। गोत्रनाम के साथ प्रवर (१, २, ३ या ५) नाम का भी निर्देश होता है। प्रवरों की कुलसंख्या ४९ मानी जाती है। प्रवर वैदिक शाखाओं के प्रमुख थे। गोत्रसंस्थापक ऋषि के पूर्वजों को भी प्रवर कहते हैं। क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में पुरोहित के प्रवर का उल्लेख होता है।

प्रवृत्ति धर्म = विधि-निषेधात्मक त्रिवर्गनिष्ठ आचारधर्म।

प्रव्रज्या = घर छोड़ कर तत्त्वदर्शन के लिए जाना (बृह. उप. ४-५-२)।

प्राचीनावीति = बांएँ कंधे पर यज्ञोपवीत धारण करना। पितृकार्यों में प्राचीनावीति होती है। देवकार्यों में **यज्ञोपवीति** (दाहिने कंधे पर यज्ञोपवीत धारण) होती है।

प्राणप्रतिष्ठा = उपास्य देवमूर्ति या देवलिंग में देवत्व की स्थापना करने की मंत्र-तंत्रात्मक विधि। (प्राणप्रतिष्ठा के बिना देवमूर्ति केवल एक कलात्मक पुतला मानी जाती है।

प्राणाग्निहोत्र = भोजन का प्रारंभ करते समय पंच प्राणों तथा ब्रह्म के प्रीत्यर्थ घृतयुक्त ओदन के अल्प मात्र ग्रास, दन्तस्पर्श न होते हुए ग्रहण करना। इसीको **''प्राणाहुति''** कहते हैं।

प्रायोपवेशन = अन्नत्याग। (देखिये उपोषण)

प्रारब्ध कर्म = पूर्वजन्मों मे किये हुए कर्मों में से इस जन्म में फलोन्मुख हुआ कर्म। दो प्रकार – स्वेच्छाप्रारब्ध और अनिच्छाप्रारब्ध।

प्रेतकल्प = प्रेत का उद्धार करने वाली धार्मिक विधियां।

प्रेतशरीर = देखिये अतिवाहिक।

प्रेतशिला = गयाक्षेत्र की एक पवित्र शिला जिस पर पिण्डदान करने पर प्रेतावस्था में से जीवात्मा पितृलोक को जाता है।

प्रेतश्राद्ध = देखिये अतिवाहिक।

फलश्रुति = पूजा, व्रत, पारायण आदि पुण्यकर्मों से प्राप्त होने वाले फललाभ का ग्रंथोक्त वर्णन। सभी काम्य कर्मविषयक ग्रंथों में फलश्रुति होती है। फलश्रुति का श्रवण कर्मविधि का आवश्यक अंग है।

बगलामुखी = शाक्तों की एक उपास्य देवता। महाविद्या का एक स्वरूप।

बटुकभैरव = शिव का एक स्वरूप। इसका वाहन कुत्ता है।

बंधकी = पाँच पुत्र को जन्म देने वाली स्त्री। (महाभारत आदि. १२३ के अनुसार पुत्रों की संख्या तीन उचित है। चौथे पुत्र को जन्म देने वाली **स्वैरिणी** होती है।)

बंधमोक्षण यंत्र = कारागृह आदि में बद्ध व्यक्ति की मुक्तता के लिए भूर्जपत्र पर केशर से आलिखित विशिष्ट मंत्रयुक्त आकृति।

बंधुविद्वेषण यंत्र = भाइयों में कलह निर्माण करने हेतु श्मशान में प्राप्त वस्त्र पर आलिखित एक विशिष्ट आकृति।

बलिहरण = पंचमहायज्ञों में से भूतयज्ञ की अपर संज्ञा। यह एक नित्यकर्म है।

बीजमंत्र = अं, यं, रं, लं, ऱ्हां, ह्रीं, हूं, इत्यादि एकवर्णात्मक मंत्र। ऐं-वेदों का बीज मंत्र माना जाता है। चारों वेदों के प्रारंभस्वरों सें यह बीजमंत्राक्षर निर्माण हुआ है।

ब्रह्मकपाल = हिमालय में अलकनंदा नदी के अन्तर्गत एक महाशिला। इस पर श्राद्ध करने पर फिर श्राद्ध की आवश्यकता नहीं होती।

ब्रह्मज्य (या ब्रह्मज्येय) = ब्राह्मण को बाधा पहुंचाना। यह एक भयंकर अपराध माना है।

ब्राह्मपुराण = व्यास विरचित १८ पुराणों में अग्नि और ब्रह्मवैवर्त पुराणों को ब्राह्म मानते हैं। ब्रह्मवैवर्त में सूर्य देवता का माहात्म्य प्रतिपादन किया है।

ब्रह्मबन्धु = राजसेवक, शूद्र स्त्री का पति, पशुहिंसक, अपात्र उपाध्याय इनकी निन्दा की द्योतक संज्ञा।

ब्रह्मबन्धु = अयोग्य पुरोहित (छान्दोम्य उप. ६-१-१)।

ब्रह्मयज्ञ = स्वाध्याय। वेदाध्ययन।

ब्रह्मर्षि = ब्रह्मा, वसिष्ठ, भृगु, अत्रि, दक्ष, कश्यप आंगिरस तथा वालखिल्य इन ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मकुलोत्पन्न, जीवन्मुक्त महापुरुषों की संज्ञा। अपर संज्ञा - परमर्षि।

ब्रह्मवर्चस् = ब्राह्मण को स्वाध्याय के द्वारा प्राप्त होने वाला तेज या सामर्थ्य।

ब्रह्मवादिनी = अविवाहित अवस्था में अध्यात्म विद्या के अध्ययन तथा अध्यापन में संपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाली विदुषी। विवाहित होकर इस प्रकार का कार्य करने वाली विदुषी को **'सद्योवधू'** कहा है।

ब्रह्मसंप्रदाय = मध्वाचार्यद्वारा स्थापित द्वैतवादी वैष्णव संप्रदाय की संज्ञा।

ब्रह्मसूत्र = शिल्पकार द्वारा निर्मित शिवलिंग (जिसे मानुषलिंग कहते हैं) पर प्रकट होने वाली रेषा। दैविक तथा आर्षक शिवलिंग पर ब्रह्मसूत्र नहीं होता।

ब्राह्मण = चार वर्णों में अग्रगण्य वर्ण की संज्ञा। ज्ञानोपासना और सच्छील आचार इस वर्ण के लोगों की विशेषता मानी जाती है। महाभारत के अनुसार **प्रकार** - ब्रह्मसम, देवसम, शूद्रसम, चाण्डालसम, क्षत्रसम, वैश्यसम। अत्रिस्मृति के अनुसार प्रकार - देवब्राह्मण, मुनिब्राह्मण, शूद्रब्राह्मण, निषादब्राह्मण, पशुब्राह्मण, म्लेच्छब्राह्मण, चाण्डालबाह्मण इत्यादि।

भक्तदास = दास के सप्त प्रकारों में से एक। पेट पालने के लिए किसी की सेवा करने वाला।

भागवत धर्म = भगवान् द्वारा उपदिष्ट और भगवत्भक्तों द्वारा आचरित कृष्णोपासना परक वैष्णवधर्म। पांचरात्र संप्रदाय से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है।

भुवनेश्वरी शांति = (१) अशुभ समय पर रजोदर्शन के निमित्त की जाती है। (२) गर्भाधान संस्कार के पूर्व अरिष्ट निवारण के निमित्त यह विधि होती है।

भूतबलि = वैश्वदेव हवन समाप्त होने पर अवशिष्ट चरु (भात) का गृहदेवता, वास्तुदेवता, पितर, यम आदि अन्य देवताओं को समर्पण।

भूतशुद्ध = (१) यं (बीजाक्षर) सहित पृथ्वी, जल आदि महाभूतों का ध्यान जो धर्मकृत्य के आरंभ में आवश्यक होता है। (२) धार्मिक कर्म के प्रारंभ में शरीरस्थ पंचमहाभूतों की शुद्धि के निमित्त एक आवश्यक कर्म।

भृताध्यापन = शुल्क लेकर विद्या का अध्यापन करना; यह ४९ उपपातकों में से एक माना गया है।

भोक्ताश्रित कर्म = (तीन प्रकार) = संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण।

भ्रूणहत्या = एक पातक जो ऋतुकाल में स्वस्त्री समागम न करने वाले को लगता है।

मंगलसूत्र = महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में प्रचलित विवाहित स्त्रियों का एक महत्त्वपूर्ण अलंकार।

मंगलाष्टक = विवाह तथा व्रतबंध के उत्सव में दीक्षा के समय पुरोहितों द्वारा गाये जाने वाले शार्दूलविक्रीडित छंद में रचित आठ श्लोक। श्लोकों के अंत में "कुर्यात् सदा मंगलम्" यह वाक्य होता है। मंगलाष्टक गायन की प्रथा महाराष्ट्र में प्रचलित है।

मठ = शंकराचार्य द्वारा स्थापित धार्मिक केंद्र। शारदा (पश्चिम में, गोवर्धन (पूर्व में), ज्योतिर्मठ (उत्तर में), शृंगेरी (दक्षिण में), सुमेरु (ऊर्ध्व दिशामें), आत्माम्नाय (अधर दिशा में)।

मण्डल = चतुष्कोण या वर्तुल के अन्तर्गत आरेखित स्वस्तिक पद्म आदि प्रकार की देवता प्रतीकात्मक आकृती। **१२ प्रकार** - विमल, विजय, भद्र, विमान, शुभद, शिव, वर्धमान, दैव, लताक्ष, कामदायक, रुचक. स्वस्तिक।

मत्तमयूर = ९ वीं शताब्दी में मध्यभारत में स्थापित एक शैव सम्प्रदाय की संज्ञा। इस मत में **विद्यापाद** (पशु, पाश

और पति इन तीन प्रमुख तत्त्वों का सम्यग् ज्ञान) (२) **क्रियापाद** (सम्प्रदाय की सांगदीक्षा), (३) **योगपाद** = (जयध्यान अदि यौगिक साधना और (४) **चर्यापाद** = (विधि और निषेध का पालन) इन चार पादों में धर्म का प्रतिपादन किया गया है। इस पंथ की अपर संज्ञा थी **सिद्धान्त मत** । पंथ के आचार्यों को **सैद्धान्तिक** कहते थे।

मंत्र = (१) वेदों का संहिता स्वरूप भाग जिनके मनन से यज्ञ, देव, तथा आत्मा का ज्ञान होता है ऐसे पवित्र 'तथा सामर्थ्यशाली अक्षर या शब्द। (मकारो मननं प्राहुः त्रकारस्त्राण उच्यते)।

मंत्रों के प्रकार = वैदिक, तांत्रिक, शावर, (या पैशाचिक), बीजमंत्र, मूलमंत्र, मालामंत्र, पुरुषमंत्र (अन्त में वषट् या फट् होने वाले मंत्र), स्त्रीमंत्र (अन्त में वौषट् या स्वाहा होनेवाले मंत्र) नपुंसक मंत्र (अन्त में पुं या नमः शब्द होने वाले मंत्र) शापित, स्वतःसिद्ध, सिद्ध.

मंत्रेश्वर = विशिष्ट देवता का वर्ग, जिसका संबंध सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान इन पांच शिवस्वरूपों से होता है।

मधुधेनुदान = दश धेनुदानों में से एक। इस विधि में मधु कुम्भों को ही गाय और बछड़ा माना जाता है।

मधुपर्क = (१) विशिष्ट अतिथि के सत्कारार्थ दही में घृत या मधु मिश्रित कर बनाया गया एक मधुर पदार्थ। (२) मधु, घी, जल और सत्तू का मिश्रण।

मधुपर्क के प्रकार = (१) ब्राह्म- दही + मधु का मिश्रण (२) ऐन्द्र- दूध में पकाये चांवल, (३) सौम्य- घृत + मधु का मिश्रण, (४) पौष्ण- धृत + मंथ का मिश्रण, (५) मौसल- सुरा + आज्य का मिश्रण, (६) वारुण - जल + घृत का मिश्रण, (७) श्रवण- घृत + तैल का मिश्रण); (८) पारिव्राजक - तैल + ओदन का पिण्ड।

मधुपर्कपूजा = ऋत्विज, स्नातक, राजा, आचार्य, श्वशुर, चाचा, मामा, तथा विवाहार्थ आया हुआ वर इत्यादि आदरणीय व्यक्तियों की मधुपर्क (देखिये) सहित विशिष्ट पूजा। "नामांसो मधुपर्को भवति" इस वचन के अनुसार मधुपर्क पूजा समांस होती थी।

मधुरत्रय = घृत, गुड़ और माक्षिक (शहद)

मनुष्यऋण = प्रत्येक व्यक्ति का एक अनिवार्य कर्तव्य। अन्नदान और वस्त्रदान से इस ऋण से मुक्ति होती है। (शतपथ ब्रा. १-७-२ २-१-६)

मनुष्ययज्ञ (या अतिथियज्ञ) = पंच महायज्ञों में से एक। अतिथि का सत्कार ही प्रस्तुत यज्ञ है।

महादान = सुवर्ण, हाथी, तिल, दास-दासी, रथादि वाहन, भूमि, गृह, भार्या और कपिला गाय इन का दान। महादान देने वाला पुण्य का और लेने वाला पापका धनी माना जाता है।

महानुभाव संप्रदाय = १३ वीं शती में विदर्भ (महाराष्ट्र) में चक्रधर स्वामी द्वारा स्थापित एक वैष्णव संप्रदाय। अवांतर संज्ञाएँ - महात्मा पंथ, अच्युत पंथ, जयकृष्णी पंथ, भटमार्ग, परमार्ग।

महान्यास = न्यास विधि में प्रत्येक अवयव पर पांच मंत्रों का स्पर्शपूर्वक न्यास करना।

महापुरुष = वेदपारंगत ब्राह्मण का पिशाच।

महापुरुष विद्या = 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष' इत्यादि १६ पौराणिक श्लोकों की संज्ञा। इसका विनियोग देवपूजा में अभिषेक के प्रीत्यर्थ होता है।

महापुरुष संप्रदाय = शंकरदेव द्वारा असम प्रदेश में संस्थापित एक वैष्णव सम्प्रदाय की संज्ञा (अपरसंज्ञा-महापुरुषिया)

महाप्रस्थान = प्रवास मार्ग में ही मृत्यु पाने की अपेक्षा से निवास स्थान से प्रयाण।

महामख (मख = यज्ञ) = मातृ-पितृसेवा, पातिव्रत्य, सर्वत्र समभाव, मित्र का अद्रोह और विष्णुभक्ति। (पद्म पु., सृष्टिखंड ७-१३) इन्हें 'पंच महामख' कहा है।

महायंत्र प्रवर्तन = महायंत्रों का निर्माण। ४९ उपपातकों में यह एक है।

महालय श्राद्ध = भाद्रपद कृष्णपक्ष (पितृपक्ष) में सभी पूर्वजों के निमित्त होने वाला श्राद्ध।

महाशांति = राजा की विजययात्रा के निमित्त आयोजित एक मंगलविधि।

महाशाल = अध्ययन, न्यायदान मंत्रित्व आदि कर्म करने वाला ब्राह्मण वर्ग

महाश्वेतामंत्र = "ह्रीं क्रीं सः" इस मंत्र की संज्ञा।

महैकोद्दिष्ट श्राद्ध = मरणोत्तर ११ वें दिन प्रेत को उत्तम गति की प्राप्ति के निमित्त होता है।

माघ्यावर्ष (या मघावर्ष) = भाद्रपद वद्य त्रयोदशी को चंद्र मघा नक्षत्र में होने पर किया जाने वाला श्राद्ध। अन्य मतानुसार भाद्रपद वद्य सप्तमी, अष्टमी या नवमी को यह विधि होती है।

मानसपूजा = वाह्य षोडशोपचारी पूजा में होने वाली विधियों केवल मानसिक संकल्प से भगवान को समर्पण करना। यह सगुण ध्यान का ही एक प्रकार है। श्रीशंकराचार्य इसी को परा पूजा कहते हैं।

मानुषलिंग = शिल्पकार द्वारा निर्मित शिवलिंग। दस प्रकार – सार्वदेशिक, सर्वसम, वर्धमान, शैवाधिक, स्वस्तिक, त्रैराशिक, अध्य, नगर, द्रविड और वेसर।

मार्कण्डेय शांति = आयु के ६० वर्ष पूर्ण होने पर एक हवनविधि। देखिये "उग्ररथ शांति"।

मालामंत्र = माला की सहायता से जिसका जप होता है ऐसा मंत्र।

मासिक निवृत्ति = मृतव्यक्ति के निमित्त प्रथम वर्षश्राद्ध के पूर्व १२ मासिक तथा ऊन मासिक, त्रैपक्षिक, ऊन षाण्मासिक, ऊनाब्दिक इस प्रकार १६ श्राद्ध होते हैं। किसी कारणवश यह संभव नहीं हो तो सभी मासिक श्राद्ध एक ही दिन में पूर्ण

करते हैं। यही मासिक निवृत्ति कहलाती है। १६ श्राद्ध होने तक परिवार में मंगलकार्य निषिद्ध माना गया हैं। कुछ लोग ११ वें दिन सभी मासिक श्राद्ध करते हैं। इसे 'मासिक निवृत्ति' कहते हैं।

मासिक श्राद्ध = प्रत्येक महीने में किया जाने वाला श्राद्ध कर्म।

मिताक्षरा = कुल की संपत्ति पर वारिसों का अधिकार स्थापन करने की एक पद्धति। भारत के अधिकतर प्रदेशों में (बंगाल और असम प्रदेश के अतिरिक्त) यह पद्धति प्रमाण मानी जाती है। मिताक्षरा संप्रदाय की द्राविड, महाराष्ट्र, मिथिला, काशी और पंजाब प्रदेशों में पृथक् पांच शाखाएं थीं।

मिश्रकर्म = सत् और असत् भावना से किया गया कर्म। इसका फल सुख-दुःखमिश्रित होता हैं।

मुख्यकल्प = प्रत्येक वर्ण के लोग अपनी सजातीय वधू से विवाह करें इस प्रकार के आदेश। (पैठीनसी स्मृति)

मुंडशावक = ब्राह्मण यति का एक प्रकार (बौद्ध ग्रंथों में उल्लिखित)।

मूलजनन शांति = मूलनक्षत्र पर अपत्य का जन्म अशुभ माना है। अतः तन्निमित्त गोमुख प्रसव शांति के बाद यह शांतिविधि होती है। लौकिक शांतिविधि १०८ कुओं के जल से माता-पिता के स्नान के रूप में होती है।

मूलमंत्र = ऐसा मंत्र जिसमें अक्षरसंख्या दस तक होती है।

मूलविद्या = एक तांत्रिक देवता की संज्ञा।

मृत्युदण्ड = दण्ड के पांच प्रकारों में से अंतिम दण्ड। बौद्ध जातकों में उल्लिखित प्रकार – (१) शंखमुण्डिका (सिर की चमडी सहित मुण्डन, (२) राहुमुख – (कान तक मुंह फाडना), (३) ज्योतिमल्लिका (तेल में भिगोए कपड़े से लपेट कर जलाना); (४) एरकवर्तिका – शरीर की चमड़ी छील कर जमीन पर घसीटना, (५) ऐणेयक (हाथ-पाव में कीले ठोक कर जलाना) (६) खारापतच्छिका (शरीर चीर कर उसमें नमक भरना)।

मेधाजनन = जातकर्म संस्कार का प्रथम कर्म। इसमें पिता शिशु के कान में व्याहृति (ॐ भूर्भुवः स्वः (इत्यादि) का उच्चारण करता है। इससे शिशु की मेधाशक्ति बढ़ती है। उपनयन के बाद भी यह संस्कार होता है जिसमें पलाशवृक्ष की शाखा का पूजन मेधासावित्री के प्रीत्यर्थ होता है।

मोक्षधेनुदान = आसन्नमरण अवस्था में गो-प्रदान। देखिये उत्क्रांति-धेनुदान।

म्लेच्छ = संस्कृत शब्दों का अपभ्रंशात्मक उच्चारण करने वाला परकीय व्यक्ति। बर्वर, गुरुंड, शक, खस, यवन, पल्लव, रोमन, कामरु, चीन इत्यादि म्लेच्छ जातियों का उल्लेख पुराणों में मिलता है।

यज्ञोपवीति = देवकार्य करतं समय दाहिने कंधे पर यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करना।

यतिकर्म चतुष्क = ध्यान, शुचिता, भिक्षा, एकान्तवास। (स्कंद पु. ४१-२०)

यमल जननशांति = पत्नी, दासी, गाय तथा घोड़ी को जुड़वे अपत्य होना अनिष्ट माना है। इस निमित्त शांतिविधि करते हैं।

यामदेवता = स्वायंभुव मनु और शतरूपा के पौत्र और पौत्री (जो पति-पत्नी हुए) के १२ पुत्रों की संज्ञा।

यायावर = देखिये परिव्राजक।

यायावर गृहस्थ = ब्राह्मण वर्ण के षट्कर्म (अध्यापन-अध्ययन आदि) करते हुए पौरोहित्य और आतिथ्य (नृयज्ञ) करने वाला गृहस्थाश्रमी (वैखानस गृह्यसूत्र)

युगदेवता = कृतयुग में ब्रह्मा, त्रेता युग में यज्ञ, द्वापर युग में विष्णु और कलि युग में शिव। (विष्णु पुराण ६-२-१९)

युगधर्म = कृतयुग में तप, त्रेतायुग में आत्मज्ञान, द्वापरयुग में यज्ञ और कलियुग में दान श्रेष्ठ धर्म माना है।

यूपाधिवास = अश्वत्थोद्यापन व्रत में अश्वत्थ के पास यूप स्थापन कर उस पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश की स्थापना तथा पूजा करना।

योगिनी = शाक्त संप्रदाय की देवता। इनकी कुलसंख्या ६४ मानी गई है। इन्हें आवरण देवता भी कहते हैं।

रक्षापर्व या रक्षाबन्धन = श्रावण पौर्णिमा को रक्षासूत्र बांधने की विधि। यह एक अखिल भारतीय त्यौहार है। (भारत सरकार ने इसे 'संस्कृत दिन' निश्चित किया है।

रथयात्रा = (१) आषाढ शुद्ध द्वितीया को पुरी में भगवान् जगन्नाथ की रथयात्रा। (२) मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष मे दुर्गा की रथयात्रा। (३) आषाढ शुद्ध द्वितीया को वृन्दावन में श्रीकृष्ण की शोभायात्रा।

रथसप्तमी = माघशुद्ध सप्तमी। सूर्यपूजा की तिथि।

रसिक सम्प्रदाय = एक रामभक्तिपर वैष्णव संप्रदाय। इसमें दो वर्ग हैं। रसिक और रुक्षरसिक।

रसिकानन्द सम्प्रदाय = बालकृष्ण की उपासना करने वाला एक वैष्णव संप्रदाय।

रसेश्वर संप्रदाय = एक शैव संप्रदाय। इसमें रसेश्वर अर्थात् पारद (पारा) सेवन का विशेष महत्त्व माना जाता है।

राक्षसविवाह = अष्टविध विवाह प्रकारों में से सातवा प्रकार। आक्रोश करती हुई वधू को तथा उसके संबंधियों को मारपीट कर उसका अपहरण करना।

राजराजेश्वरी = दशमहाविद्या नामक शक्तिस्वरूप देवताओं में विश्वचालिका चौथी शक्ति की संज्ञा।

राज्ञीस्नापन = चैत्रवद्य अष्टमी को भूमि के शुद्धीकरण की विधि। काश्मीर में यह प्रथा है। (चैत्र वद्य पंचमी से अष्टमी तक काश्मीर में भूमि रजस्वला मानी जाती है। अतः अष्टमी को स्त्रिया उसका शुद्धीकरण करती हैं।

रुद्रगण = (१) भूत, वेताल, उच्छष्य, प्रेतपूतन, कुभांड और यातुधान नामक भीषण देवता। इनकी उत्पत्ति रुद्र के कान से मानी जाती है। (२) अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, कपाली,

वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यंबक और अपराजित इन ११ वैदिक देवताओं की संज्ञा। अन्त्यकर्म में इनके प्रीत्यर्थ श्राद्ध होता है। उसे 'रुद्रगण श्राद्ध' कहते हैं।

(५-६) **रुद्रगण श्राद्ध और वसुगण श्राद्ध** = ११ रुद्र और ८ वसु देवताओं के प्रीत्यर्थ यह होता है। (वसु, रुद्र और आदित्यों को मृतों के देवता माना जाता है।)

रुद्रगायत्री = "महाकालाय विद्महे। श्मशानवासिने धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्" इस मंत्र की संज्ञा

रुद्रगायत्री = "तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्" इस मंत्र की संज्ञा। इसी मंत्र से रुद्र देवता की पूजा अर्चा होती है।

रुद्रसम्प्रदाय = विष्णुस्वामी द्वारा स्थापित शुद्धाद्वैतवादी (मायारहित ब्रह्म को जगत्कारण मानने वाला) वैष्णव संप्रदाय। वल्लभाचार्य इस संप्रदाय के अनुयायी थे। उनके प्रभाव के कारण इस संप्रदाय को 'वल्लभ संप्रदाय' कहने लगे।

रूपसंयोग = देव प्रतिमा में उट्टंकित आसन, वाहन, आयुध, वस्त्र और अलंकार।

रहमू = अविवाहिता या विधवा गर्भवती।

लक्ष्मी के आठ स्वरूप = धनलक्ष्मी, धान्यलक्ष्मी, धैर्यलक्ष्मी, शौर्यलक्ष्मी, विद्यालक्ष्मी, कीर्तिलक्ष्मी, विजयलक्ष्मी, राज्यलक्ष्मी

लिंग = वीरशैव मतानुसार तीन प्रकार – भावलिंग, प्राणलिंग, इष्टलिंग।

लिंगतोभद्र = तांत्रिक पूजा में उपयुक्त एक विशिष्ट मण्डलाकृति।

लिंगायत = दक्षिण महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में रहने वाले शैवलोग। अपरसंज्ञा- लिंगवत, लिंगांगी, वीरशैव, शिवशरण, विविध प्रकार – संलग्न, अर्ध, सामान्य, विशेष., निराभारी भक्त, माहेश्वर। ये लोग देहपर शिवलिंग धारण करते हैं।

लेपभाज = एक पितृगण की संज्ञा। श्राद्ध में पिंडदान करते समय हाथ पर चिपके हुए अन्नकण खाने वाले पितृगण।

लोकपक्ति = लोगों को विद्याद्वारा संस्कारित करना। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ब्राह्मण के सात कर्तव्यों में से एक।

लोष्ठचिति = (या श्मशानचयन) = मृत शरीर का दहन करने पर पैर, कटि, मस्तक, जंघा इत्यादि स्थानों की अस्थियां जमा करने पर होनेवाली विधि।

लोहाभिसार = (या लोहाभिसारिक) = आश्विन शुद्ध प्रतिपदा से अष्टमी तक दुर्गापूजा, तथा शस्त्रास्त्रपूजनयुक्त होमविधि। युद्धविजय के हेतु राजा या सेनापतिद्वारा यह विधि होती थी।

वरा दक्षिणा = यज्ञ में दक्षिणानिमित्त गाय का दान।

वर्धमान = अष्टमांगलिक चिह्नों में से एक। मिट्टी की दो थालियां एक दूसरे पर रखकर होने वाले ३ संपुटों को वर्धमान कहते हैं। विवाहमंडप तथा सूतिकागृह में इस की स्थापना होती है।

वर्धापन = जन्मदिन निमित्त एक हवनात्मक विधि। इसमें सप्त चिरंजीव तथा मार्कण्डेय की पूजा भी होती है।

वर्षसप्तक = पुराणों के अनुसार ७ देशविभाग। भारतवर्ष, किंपुरुषवर्ष, हरिवर्ष, रम्यक०, उत्तर०, हिरण्मय० और उत्तरकुरु०।

वहतु = विवाहित कन्या का माता-पिता के घर से पति के घर जाने का समारोह (बारात)।

वाक्पारुष्य = निंदाव्यंजक, कठोर या अश्लील शब्दों से किसीका तिरस्कार करना। धर्मशास्त्र के अनुसार यह दण्ड्य अपराध माना जाता है। **तीन प्रकार** – निष्ठुर, अश्लील और तीव्र।

वानप्रस्थ = गृहस्थाश्रमी जीवन में शरीर वली-पलित युक्त होने पर स्वीकारयोग्य तृतीय आश्रम। चार आश्रमों में से गृहस्थ और संन्यास आश्रम के बीच का आश्रम। तपश्चर्या और आत्मचिन्तन इस आश्रम के प्रमुख कर्तव्य होते हैं। दो प्रकार – पचमानक (कंदमूल आदि पकाकर खाने वाले) और (२) अन्य। विविध प्रकार – वैखानस, वालखिल्य, पत्राहार, सलिलाहार, फेनप, क्षीरप, धूमप, मरीचिप, गात्रशय्य, शिलोञ्छवृत्ति।

वारकरी = महाराष्ट्र में संतज्ञानेश्वर के द्वारा प्रवर्तित वैष्णव संप्रदाय। इसके प्रमुख चार उपसंप्रदाय (१) चैतन्य संप्रदाय (२) स्वरूप संप्रदाय (इसके दो भेद- रामानुजी और रामानन्दी) (३) आनन्द संप्रदाय। (४) प्रकाशसंप्रदाय। इन उपसंप्रदायों के मंत्र अलग अलग होते हैं।

वार्तावृत्ति गृहस्थ = कृषि, गोरक्ष्य या वाणिज्य से उपजीविका करने वाला गृहस्थाश्रमी।

वार्धुष्य = निषिद्ध ब्याज पर उपजीविका। यह एक उपपातक माना गया है।

वार्धीणस = वह बकरा जिसके कान पानी पीते समय जल को स्पर्श करते हैं। श्राद्धान्न में इसका मांस प्रशस्त माना जाता है।

वि-जामाता = (१) अपने वैगुण्य के कारण मूल्य देकर पत्नी को खरीदने वाला जामाता। (२) निश्चित मूल्य से अल्प मूल्य देकर पत्नी को प्राप्त करने वाला।

वि-जामाता = आसुरविवाह (कन्या का मूल्य देकर विवाह) संबंध से बना हुआ जामाता। यह संज्ञा हीनत्वद्योतक है।

विद्यारंभ (या अक्षरारंभ) = बालकों को अक्षरज्ञान देने का प्रारंभिक संस्कार। यह संस्कार उपनयन के पूर्व होता है।

विधिवचन = "अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः।" (स्वर्ग की कामना करने वाला अग्निहोत्र होम करे) इत्यादि प्रकार के ब्राह्मण ग्रंथ के वचन। इसमें कर्म की प्रेरणा होती है।

विनायक = (१) दुष्ट पिशाचों का गण। इसमें शाल, कटंकट, मित, सम्मित, कूष्मांड, और राजपुत्र नामक छह विनायक माने जाते हैं। धर्मशास्त्र में कार्यों की निर्विघ्न सिद्धि इन की पूजा से विधि बताई है। (२) अंबिकापुत्र। इसे विघ्नेश्वर, भूतनाथ, हस्तिमुख (गजानन) कहते हैं। महाराष्ट्र में 'अष्टविनायक' और काशीक्षेत्र में '५६ विनायक प्रसिद्ध हैं।

विवाहकृत्य = अष्टविध विवाहों में ब्राह्मविवाह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इस में प्रमुख ११ कृत्य है – वाङ्निश्चय,

सीमान्तपूजन, मधुपर्क (दही और मधु एकत्र करना), परस्पर निरीक्षण, कन्यादान, अक्षतारोपण, विवाहहोम, गृहप्रवेशनीय होम, ऐरिणीदान, गृहप्रवेश और आशीर्वचन

विभूतिवेलायी = लिंगायत संप्रदाय में प्रचलित अन्तिम संस्कार। आसन्नमरण अवस्थामें यह संस्कार होता है।

विमलदान = भगवान् के प्रीत्यर्थ, निष्काम तथा धर्मयुक्त अंतःकरण से दिया गया दान। नित्य, नैमित्तिक और काम्य इन तीन प्रकारके दानों से यह सर्वश्रेष्ठ दान माना गया है।

विषदिव्य = दिव्यविधि के पांच प्रकारों में से एक। शूद्र अपराधी की सत्त्वपरीक्षा उसे विशिष्ट मात्रा में विष देकर की जाती थी। विष का प्रभाव ५ सौ तालियाँ बजाने तक न हुआ तो वह निर्दोष माना जाता था।

विषनाडी जननशांति = विषघटिका तथा क्रूर ग्रहयुक्त लग्न पर जन्म होने पर यह शांतिविधि जननाशौच के बाद होती है।

विष्टर = अग्रयुक्त दर्भों का आसन।

वीरशैव = कर्नाटक में उत्पन्न एक मध्ययुगीन शैव संप्रदाय। रामय्या अल्लमप्रभु बसवेश्वर इसके प्रवर्तक माने जाते हैं। यह संप्रदाय शक्तिविशिष्ट शिवाद्वैत मत को ग्राह्य मानता है। (तीन प्रकार) – सामान्य वीरशैव, विशेष वीरशैव और निराभारी वीरशैव।

वीरसाधना = रात में श्मशान में शव के पास बैठकर की जाने वाली तांत्रिक साधना।

वृद्धिश्राद्ध (या नान्दी श्राद्ध) = उपनयन, विवाह आदि मंगलकार्यों के प्रारंभ में पितरों के प्रीत्यर्थ होने वाली श्राद्धविधि।

वृषली = विवाह के पूर्व पिता के घर में रजोदर्शन होने वाली ब्राह्मण कन्या। ''**वृषलीपति**'' को ब्राह्मण 'अश्राद्धेय' और अपांक्तेय'' (अर्थात् श्राद्धभोजन तथा पंक्तिभोजन के लिये अपात्र) कहा गया है।

वृषोत्सर्ग = गो, प्रजा की वृद्धि के लिए सांड को छोड़ देना यह एक धार्मिक आचार है। (२) मृतात्मा की प्रेतावस्था से मुक्तता करने हेतु उसके नाम सांड तथा वत्सतरी का उत्सर्ग।

व्रजमण्डल = उत्तर प्रदेश में मथुरा के आसपास के प्रदेश की संज्ञा।

वैखानस = (१) वानप्रस्थाश्रमी लोग। (२) एक प्राचीन वैष्णव संप्रदाय (दक्षिण भारत में यह संप्रदाय प्रचलित है। (३) कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा। (४) संन्यास आश्रम की अपर संज्ञा (वैखानस को यज्ञ करने का अधिकार नहीं होता।

व्रतदुधा = व्रत के लिए दूध देनेवाली गौ या व्रत के निमित्त जिसका दोहन होता है ऐसी गौ।

व्रतपरिभाषा = प्रायश्चित्त, कर्तव्य, ऐच्छिक, काम्य, नित्य, नैमित्तिक, इत्यादि विविध प्रकार के व्रतों के सामान्य नियम।

व्यंतर देवता = प्रमुख देवताओं के सेवकगण तथा शत्रु आदि गौण देवता।

शक्ति = देखिये तांत्रिकों के षट् कर्म।

शतचण्डी = इसमें पांच दिनों तक प्रतिदिन वृद्धिक्रम से दुर्गापाठ होता है। इसके लिए समय का नियम नहीं होता

शरणविधि = असम के महापुरुषिया संप्रदाय की दीक्षा लेने की विधि।

शांकर मठ = चारस्थान = शृंगेरी, द्वारका, जगन्नाथपुरी और बदरिकाश्रम।

शाकाष्टका = फाल्गुन कृष्ण अष्टमी। इस तिथि को पितृश्राद्ध तथा आठ सागों का दान होता है।

शांति = दुष्ट नक्षत्र, तिथि, अपशकुन आदि कारणों से सूचित संभाव्य देवी-अरिष्ट का निवारण करने के निमित्त किया जाने वाला शास्त्रोक्त कृत्य। वैष्णवी, रौद्री, वारुणी, पार्थिवी, वायवी आदि विविध प्रकार की शांतियां ध धर्मशास्त्रकारों ने बताई हैं।

शान्तिक और पौष्टिक कर्म = ये गृह्याग्नि में या लौकिकाग्नि में सम्पन्न होने वाले स्मार्त कर्म है।

शान्तिमन्त्र = ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।। बृहदारण्यकोपनिषद् के प्रस्तुत मंत्र की संज्ञा।

शाबर मंत्र = तांत्रिक साधकों के प्रभावी मंत्र। ये मंत्र निरर्थक होते हैं।

शारदोत्सव = शरद् नवरात्रि-महोत्सव का अपर नाम। (कालिकापुराण में उल्लिखित शारदोत्सव का स्वरूप होलिकोत्सव के समान बीभत्स था

शालीनवृत्ति गृहस्थ = पाकयज्ञ, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुबंध, सोमयाग, इत्यादि यज्ञ करने वाला आहिताग्नि, गृहस्थाश्रमी। (वैखानस गृह्यसूत्र)

* * * *

शिक्षा विषयक (गुरुकुल से संबंधित) परिभाषा

अधीष्ट = उपनयन करने वाला गुरु।

अध्यापक = शिष्य जिसके पास जाकर पढता है ऐसा गुरु। अध्यापक के प्रकार = (१) आख्याता, (२) प्रवचनीय, (३) प्रवक्ता, (४) अनूचान, (५) अधीष्ट (६) मासाध्यापक, (७) दारुणाध्यापक (८) घोराध्यापक, (९) काष्ठाध्यापक, (१०) परमाध्यापक, (११) स्वाध्यापक (१२) भृशाध्यापक। (पाणीनीय अष्टाध्यायी)

अध्याय = ग्रंथ का एक खंड। इस प्रकार के ग्रंथ के विषयानुसार विभागों को, सर्ग, (महाकाव्य में) वर्ग, परिच्छेद, उद्घात, अंक, (नाटक में), संग्रह, उच्छ्वास (गद्यकाव्य में), परिवर्त, पटल, कांड, पर्व, आनन, स्थान, प्रकरण, उल्लास, आह्निक, इत्यादि विविध नाम संस्कृत ग्रंथों में मिलते हैं।

अनध्याय = परंपरा के अनुसार प्रतिपदा, अष्टमी, चतुर्दशी, पौर्णिमा और अमावस्या, महानवमी (आश्विन शु. ९), अक्षय्यतृतीया, रथसप्तमी, दक्षिण-उत्तर, अयन के दिन, और सोपपदा तिथि को अध्ययन का निषेध अनुसार माना है। इन

तिथियों को अध्ययन करने से अनिष्ट होता है। ये तिथियां नित्य अनध्याय की मानी गई हैं।

अनध्याय = (४ प्रकार) – नित्य, नैमित्तिक, तात्कालिक, और आकालिक।

अनूचान = अध्यापक का एक प्रकार। वेद के शिक्षा, कल्प आदि अंगों का अध्यापन या अध्ययन करने वाला विद्वान् (बौधायन गृह्यसूत्र १-४)

अयुताध्यापक = अच्छा अध्यापक।

आख्याता = अध्यापक का एक प्रकार। छात्रों के अध्येय विषय का नियमपूर्वक अध्यापन करने वाला। (अष्टाध्यायी १-४-२९)

काष्ठाध्यापक = अध्यापक का एक प्रकार।

घोराध्यापक = अष्टाध्यायी में उल्लिखित अध्यापक का एक प्रकार।

खंडिकोपाध्याय = व्याकरण महाभाष्य में उल्लिखित अध्यापक का एक प्रकार

दारुणाध्यापक = अष्टाध्यायी में उल्लिखित अध्यापक का एक प्रकार

परमाध्यापक = अध्यापक का एक प्रकार। प्रमुखतम अध्यापक (प्राचार्य)

प्रवचनीय = स्वाध्याय के विषयों का गुरु। (अष्टाध्यायी ३-४-६८)। अध्यापक का एक प्रकार।

प्रवक्ता = अध्यापक का एक प्रकार। वैदिक विषयों का वेदानुकूल प्रवचन करने वाला

भृशाध्यापक = विषय कंठस्थ करवाने वाला अध्यापक। अध्यापक का एक प्रकार।

मासाध्यापक = अध्यापक का एक प्रकार। मासिक शुल्क से अध्यापन करने वाला या दो-चार निश्चित महिनों तक. अध्यापन करने वाला।

मौख = गुरु-शिष्यों का संबंध (कौटिलीय अर्थशास्त्र)

समावर्तक = गुरुकुल का अध्ययन तथा ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति का एक धार्मिक संस्कार।

स्वाध्यापक = अध्यापक का एक प्रकार।

× × ×

शिलोंछवृत्ति = त्यागी एवं विद्वान ब्राह्मणों की उपजीविका पद्धति। शिल = खेत में पडे हुए कणिश और उंछ = खेत में पड़े हुए धान्यकण। शिल और उंछ पर ही अपना उदरभरण करने का व्रत।

शिवभागवत = एक शिवोपासक प्राचीन संप्रदाय।

शिवलिंग (विविध प्रकार) = **ज्योतिर्लिंग (इनकी संख्या १२ है) स्वयंभू लिंग, मानुषलिंग (इसके दस प्रकार** – सार्वदेशिक, सर्वसम, वर्धमान, शैवाधिक, स्वस्तिक, त्रैराशिक, अध्य, नागर, द्रविड, और वेसर)। **मुखलिंग** प्रकार – एकमुखी, त्रिमुखी, चतुर्मुखी और पंचमुखी)।

भूतलिंग = दक्षिणभारत में पृथ्वी आदि पंच महाभूतों के पांच लिंग प्रसिद्ध हैं। **अष्टोत्तरशत** तथा **सहस्त्रलिंग** (इस पर १०८ या १००० चतुष्कोण रेखाकृति होती है)। **धारालिंग** (५ से २८ तक धारारेखायुक्त)। इन प्रकारों के अतिरिक्त ब्रह्मलिंग, (कमलाकार लिंग), अग्निलिंग (द्विशिखराकार), इन्द्रलिंग (छत्राकार), यमलिंग (त्रिपादयुक्त), निर्ऋतिलिंग (खड्गसमान)।

शिवानुभव मण्डप = वीर शैव संप्रदाय की एक प्राचीन सांस्कृतिक संस्था। शिवशरण नामक संप्रदाय के अनुयायी इस में धार्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विषयों का विवेचन करते थे।

शिवावतार = कालभैरव, शरभ, यज्ञेश्वर, महाकाल, एकादश रुद्र, हनुमान् नर्तकनट, अवधूतेश्वर, वृषेश इ. (शिवपुराण)।

शिष्टाचार = दान, सत्य, तप, अलोभ, विद्या, यजन, पूजन और इन्द्रियदमन इन आठ गुणों से युक्त आचार। (चार प्रकार) = गुरुशुश्रूषा, सत्यवाणी, अक्रोध और दान।

शैव = शिव के उपासक संप्रदाय। **चार प्रकार** – शैव, पाशुपत, कालामुख (या कालदमन), और कापालिक। इनके अतिरिक्त नायन्मार (तामिलनाडु के शैव), वीरशैव (कर्नाटक के शैव) और काश्मीरी शैव इत्यादि शैवों के भेद हैं।

श्राद्ध = पितरों के प्रीत्यर्थ श्रद्धायुक्त होकर यथाविधि सत्पात्र ब्राह्मणों को अन्नादि का दान। पिण्डपितृयज्ञ, महापितृयज्ञ, अष्टका, इत्यादि वैदिक शब्द श्राद्धवाचक ही हैं।

श्राद्ध के चार प्रकार = पार्वण, एकोदिष्ट, नांदी और सपिण्डीकरण। इनके अतिरिक्त हिरण्यश्राद्ध, आमश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध।

श्राद्ध = (या कर्मांग श्राद्ध) के प्रकार – (१) गोष्ठश्राद्ध (गोधन की समृद्धि के लिए), (२) अश्वश्राद्ध (अश्वों की समृद्धि के लिए), (३) यात्राश्राद्ध (प्रवास की निर्विन्घता के लिए) (४) शुचिश्राद्ध (आत्मशुद्धि के लिए)

श्राद्ध = (११ प्रकार) = विषम (या नव), नग्नप्रच्छादन, पाथेय, अस्थिसंचयन. रुद्रगण, वसु, द्वितीय पाथेय. उदकुंभ, महैकोद्दिष्ट, सपिंडी, षोडश मासिक, यह विधियां प्रायः अमंत्रक होती हैं।

श्राद्धसंपात = माता और पिता का एक ही मृत्युदिन। इस अवस्था में प्रथम पिता और बाद में माता का श्राद्ध होता है। अनेक आप्तों की एक ही मृत्युतिथि।

श्रावणी = प्रदीर्घ अनध्याय के बाद पुनः वेदाध्यायन का प्रारंभ करने की सामुदायिक विधि। अपर संज्ञा – उपाकर्म या उपाकरण। चारों वेदों की श्रावणी की तिथियां अलग अलग होती हैं। श्रावणी पौर्णिमा इनमें प्रमुख तिथि है।

श्रीचक्र = (या श्रीविद्या) = इस तांत्रिक चक्र पर होती है त्रिपुरसुंदरी देवी की पूजा। श्रीचक्र की आकृति का स्वरूप – चार ऊर्ध्वशीर्ष त्रिकोण, पांच अधःशीर्ष त्रिकोण, इनमें ९ त्रिकोण तथा कुल मिलाकर ४३ त्रिकोण, उनके बाहर अष्टदल

और फिर षोडशदल, फिर त्रिवलय, अंत में त्रिरेखांकित चतुष्कोण इनके केंद्रस्थान में बिंदुस्वरूप शिव होता है। श्रीचक्र के अन्तर्गत दस चक्रों का अन्तर्भाव होता है। (१) बिन्दु (या सर्वानन्दनमय चक्र) (२) त्रिकोणचक्र (या सर्वसिद्धिप्रद चक्र, (३) अष्टार (सर्वरोगहर.), (४) अन्तर्दशार (या सर्वरक्षाकर.) (५) वहिर्दशपर (या सर्वार्थसाधक), (६) चतुर्दशार (सर्वसौभाग्य दायक) (७) अष्टदल (या सर्वसंक्षोभण), (८) षोडशदल (या सर्वाशापरिपूरक), (९) त्रिवलय (या मेखलात्रय), (१०) भूपुर (या त्रैलोक्यमोहन)। श्रीचक्र की आकृति में २४ संधियां (दो रेखाओं का संगम) और २८ मर्म (तीन रेखाओं का संगम) होते हैं।

श्रीयंत्र = ललिता (या आद्या, नित्या, तथा त्रिपुरसुन्दरी) नामक तांत्रिक देवता का प्रतीकात्मक चिह्न। तांत्रिकसाधना में श्रीयंत्र की उपासना का विशेष महत्त्व माना जाता है।

श्रीविद्या = शाक्त सम्प्रदाय की उपास्य देवता। इसीका पंचकामेश्वरी, त्रिपुरसुंदरी, ललिता, नित्या, षोडशिका, इत्यादि नामों से निर्देश होता है।

श्रीशांति = व्रतबंध, विवाह आदि के समय पुत्र या कन्या की माता रजस्वला होने पर यह शांतिविधि होती है। इसमें श्रीदेवी की पूजा तथा श्रीसूक्त के मंत्रों से पायस का हवन होता है।

श्रीसंप्रदाय = रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैती वैष्णव संप्रदाय। रामानंद ने इस मत का विशेष प्रचार करने के कारण इसे रामानंदी संप्रदाय भी कहते हैं।

श्वशुरक = विवाह संबंध के कारण हुए स्वजन।

षट्कर्म = (ब्राह्मण के) – अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह। **वैश्य के** = अध्ययन, यजन, दान, कृषि, गोरक्षण और वाणिज्य।

हठयोगी के = धौती, नेती, बस्ती त्राटक, नौली और कपालभाती। **तांत्रिकों के** = शांति, वशीकरण, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन, मारण। (तांत्रिक षट्कर्मों में पद्मिनी, शंखिनी, डाकिनी इत्यादि प्रकारों की स्त्री को **'शक्ति'** कहते हैं।

षड्ब्राह्मण = मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, वसिष्ठ और क्रतु इन छह ब्रह्मर्षियों की संज्ञा।

षोडशोपचार = पूजा की विधि में देवता को समर्पण करने योग्य सोलह उपचार – आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, अनुलेपन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य नमस्कार, प्रदक्षिणा और मंत्रपुष्प।

सकलमत संप्रदाय = माणिक प्रभु नामक सत्पुरुष द्वारा १९ वीं शती में स्थापित एक समन्वयवादी दत्तोपासक संप्रदाय।

सकुल्य = चौथी पीढ़ी से छठी पीढ़ी तक के पूर्वज और चौथी पीढ़ी से छठी पीढ़ी तक के वंशज। सपिण्डों के अभाव में सकुल्यों को धन का अधिकार प्राप्त होता है।

सत्यविनायक = सत्यनारायण पूजा के समान विनायक गणेश की पूजा का आधुनिक व्रत। वैशाखी पौर्णिमा, भाद्रपद शुद्ध चतुर्थी सोमवार या शुक्रवार को यह पूजा होती है।

सद्योवधू =, देखिए ब्रह्मवादिनी।

सद्यःशौच = आशौच से केवल एक स्नान से मुक्त होने वाले ब्रह्मवेत्ता, श्रोत्रिय, राजा, वैद्य, नापित, शिल्पी, कारीगर, और दास-दासी।

सनातन धर्म = (१) शास्त्रोक्त आचार विचारों में अपरिवर्तनवादी धर्ममत। प्रमाणभूत धर्मग्रन्थों के वचनों को वाच्यार्थ में ग्राह्य मानने वाला धर्ममत। (२) वैदिक धर्म की अपरसंज्ञा।

सचैल स्नान = अत्यंत अपवित्र वस्तु का स्पर्श होने पर धारण किये सभी वस्त्रों सहित स्नान।

सपिण्ड = पितृवंश के तीन पूर्वज तथा भिन्न कुल की स्त्रियों द्वारा संबंधित रिश्तेवाले (भांजा, फुफेरा भाई, मौसेरा भाई, ममेरा भाई (आदि) आप्त जन।

सपिंड = श्राद्ध में पिण्डदान करने योग्य आप्त-स्वजन। पितृवंश में सात पीढ़ीयों तक और मातृवंश में पांच पीढीयों तक स्त्री-पुरुष सपिंड होते है। सपिण्डों का विवाह धर्मशास्त्र में निषिद्ध माना गया है। **पिण्ड** –श्राद्धविधि में मृतात्मा के प्रीत्यर्थ अर्पित होने वाले भात के गोलक (२) यज्ञों में हवन होने वाले पशुमांस के खण्ड।)

सपिण्डीकरण = मृतात्मा की प्रेतावस्था में प्राप्त यातनाओं से मुक्ति के लिए गृह्यसूत्रों में विहित श्राद्ध।

सपिण्डीकरण = पुरुष अपने जीवितकाल में अपने तीन पूर्वजों (पिता, पितामह और प्रपितामह) को श्राद्धविधि में पिण्डदान करता है। उसके मरणोपरान्त उसका पुत्र, पिता तथा तीन पूर्वजों के पृथक् पिंड कर, उन चार पिण्डों का एक पिण्ड बनाता है। इसमें उसके पिता का 'सपिण्डीकरण' होता है। (२) मृतात्माका प्रेतत्व समाप्त होकर उसे पितृलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होने के हेतु करने योग्य श्राद्ध। मृत्यु के पश्चात् १२ वें या ४२ वें दिन, अथवा चौथे, छठे या ग्यारहवे मास में अथवा वर्षसमाप्ति होने पर यह श्राद्धविधि होती है।

सपिण्डीकरण श्राद्ध = मरणोत्तर प्रथम वर्ष में होने वाले एकोष्टि नामक १६ श्राद्धों के अंत में होने वाला श्राद्ध। इससे मृतात्मा की प्रेतावस्था से मुक्ति होती है।

सपिण्डी श्राद्ध = यह १२ वें दिन प्रेतत्वनिवृत्ति तथा पितृलोक की प्राप्तिनिमित्त होता है।

सप्तमातृका = भगवान् शिव द्वारा अंधकासुरसंहार में सहाय्य करने के लिए निर्मित देवता। इन मातृकाओं ने अंधकासुर का रुधिर भूमि पर गिरने के पहले ही पी लिया था जिसके कारण अंधकासुर के रक्त बिंदुओं से राक्षस निर्माण होना बंद हुआ था। सप्तमातृकाओं के नाम = (१) श्री, लक्ष्मी, धृति, मेघा, श्रद्धा, विद्या और सरस्वती। (२) देवीभागवत के अनुसार सप्तमातृका = ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, और चामुण्डा। (दे.भा. स्कंध १२)

सप्रतिबंध दाय = पिता, पितामह और प्रपितामह की सम्पत्ति

के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति से प्राप्त सम्पत्ति। इसका सामायिक सम्पत्ति के साथ विभाजन नहीं हो सकता।

समानोदक = एक व्यक्ति को उदकदान (तर्पण में) करने वाले तथा उससे उदकदान लेने वाले संबंधी। इनमें सात पूर्वजों और सात वंशजों एवं चौदह पीढ़ियों की व्यक्तियों की गणना होती है। 'सकुल्य' उत्तराधिकारी के अभाव में समानोदक उत्तराधिकारी होता है।

सर्वतोभद्र = तांत्रिक पूजा में उपयुक्त एक विशिष्ट मण्डलाकृति।

सहस्रचन्द्रदर्शन शांति = आयु के ८० वर्ष आठ महीनों में मनुष्य को सहस्रवार पौर्णिमा के चंद्रमा का दर्शन होता है। अतः उतनी आयु पूर्ण होने पर यह शांतिविधि होती है। सहस्रचंद्रदर्शन होने पर मनुष्य का शरीर '**ब्रह्मशरीर**' माना जाता है।

संकर = दो विभिन्न पदार्थों का संमिश्रण। दो प्रकार – (१) **वर्ण-संकर** – (ब्राह्मण आदि चार वर्णों में भिन्नवर्णियों के विवाह होना (२) **वृत्तिसंकर** – एक वर्ण के व्यक्ति ने अन्य वर्ण का व्यवसाय करना; यथा ब्राह्मण ने दुकानदारी या शूद्र ने धर्मोपदेश करना।

संकल्प = श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त धर्मकर्म का प्रारंभ करते समय इष्ट देवता, कुलदेवता, देश, काल, विशेष कर्म, आदि का निर्देश। प्रत्येक धार्मिक कर्म में संकल्प होता ही है।

सन्ध्योपासना = सूर्यबिम्ब में स्थित आदित्य देवता की ध्यानात्मक उपासना का नित्य कर्म। प्रातः सूर्योदय के पूर्व और सायं सूर्यास्त के पूर्व यह उपासना होनी चाहिये। इसमें आचमन, प्राणायाम, अर्घ्य, गायत्रीजप और उपस्थान (स्तुतियुक्त प्रार्थना) प्रमुख कर्म होते हैं।

संन्यास = (१) काम्य कर्मो का न्यास (त्याग) (भगवद्गीता १८-२)। (२) जीवन की चतुर्थ अवस्था में सर्व संग परित्याग करना। दो प्रकार (१) विविदिषा संन्यास और (२) आतुरसंन्यास

संन्यासी (चार प्रकार) = कुटीचक (विहित कर्म करने वाला), बहूदक (विहित कर्म और शास्त्राभ्यास करने वाला), हंस (केवल शास्त्राभ्यास करने वाला) और परमहंस (ब्रह्मसाक्षात्कारी)

संबंधम् = केरलीय हिंदु समाज में प्रचलित वैदिक संस्कारविरहित विवाह।

संबोधनी मुद्रा = हाथों की मुठ्ठी में अंगूठे दबाना।

संमुखी मुद्रा = दोनों मुठ्ठियां ऊर्ध्व-मुख करना।

संस्कार = दो प्रकार - समंत्रक और अमंत्रक। कन्या के नामकरण, अन्नप्राशन और चौल संस्कार अमंत्रक कहे गये हैं।

सात्वत = (या पांचरात्र) = कृष्णोपासक एक प्राचीन वैष्णव संप्रदाय। सभी वैष्णव संप्रदायों का यही मूल माना जाता है।

यजन (तीन प्रकार)

सात्त्विक यजन =. देवों की उपासाना **राजस यजन** = यक्ष-राक्षसों की उपासना, **तामस यजन** = भूतप्रेतों की उपासना (भगवद्गीता (१७-४)

साधक गृहस्थ = गृहस्थाश्रमी का एक प्रकार जो केवल कुटुंब पोषण में ही निरत रहता है। (गरुड पुराण)

साध संप्रदाय = उत्तर प्रदेश का एक शैव सम्प्रदाय।

साध्वी (विविध प्रकार) = प्रव्रजिता, श्रमणी (बौद्ध), क्षपणिका (जैन), तापसी, भिक्षुकी, मुंडा आदि।

सान्निधापिनी मुद्रा = हाथों की मुठ्ठी बांधकर अंगूठा उपर उठाना।

सामयाचारिक धर्म = रूढिस्वरूप धार्मिक आचार। धर्मसूत्रों में सर्वप्रथम इसका प्रतिपादन हुआ।

साहस = स्वामी के समक्ष उसके धनधान्य आदि का अपहरण (मनु. ८-३-३३२) अप्रत्यक्ष अपहरण को 'स्तेय' कहा है।

सिद्ध = विश्व की आंतरिक एवं बाह्य शक्तियों का नियन्त्रण करने में समर्थ महापुरुष। इनकी संख्या ८४ मानी जाती है। तीन प्रकार = शैव, बौद्ध, और नाथ.।

सिद्धपीठ = तांत्रिक सम्प्रदायों के उपासना केन्द्र। श्रीहट्ट (सिल्हट), पूर्णगिरि (पुणे), श्रीशैल (जालंधर), अर्बुद (अबू), पर्वत, कामाख्या, ओडियान इत्यादि सिद्धपीठ प्रसिद्ध हैं।

सिद्धिविनायक = दाहिनी ओर सूंड वाली गणेश की प्रतिमा।

सीमन्तोन्नयन = गर्भवती का एक संस्कार। इसमें सीमंत (केशपाश) का उन्नयन होता है।

सोमसूत्री प्रदक्षिणा = शिवलिंग की प्रदक्षिणा। इस प्रदक्षिणा में '**सोमसूत्र**' (शिवलिंग पर अभिषिक्त जल प्रणाली) का उल्लंघन नहीं होता, अतः यह प्रदक्षिणा अपूर्ण होती है।

सौम्यतीर्थ = अंगुलियों का मूलस्थान। (इसी स्थान में स्रुवाधारण करते हुए यज्ञ की आहुतियाँ देना श्रेयस्कर माना है।)

स्थापनीमुद्रा = पंचमुद्राओं में से एक। करांजलि उल्टी करना।

स्नातक = ब्रह्मचर्याश्रम में अध्ययन समाप्त होने पर यथाशास्त्र स्नानविधि के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश होने तक छात्र को स्नातक कहते हैं। तीन प्रकार – **विद्यास्नातक** – अल्पावधि में वेदाध्ययन समाप्त होने पर समावर्तन करने वाला छात्र)। (२) **व्रतस्नातक** (वेदाध्ययन समाप्त होने के पूर्व समावर्तन करने वाला छात्र)। (३) **विद्याव्रतस्नातक** (संपूर्ण ब्रह्मचर्यावस्था में संपूर्ण वेदाध्ययन करने वाला)।

स्नान – प्रकार - अभ्यंगस्नान (तैलमर्दनपूर्वक उष्णोदक स्नान), मानसस्नान (केवल परमात्मा का ध्यान करना), मंत्रस्नान (केवल विशिष्ट मंत्रों का उच्चारण करना), कापिल स्नान (आर्द्रवस्त्र से शरीर पोंछना), मृत्तिकास्नान, – (गौ की पादधूली शरीरपर लगाना), वायव्यस्नान और भस्मस्नान। जलस्नान करने में असमर्थ लोगों के लिए शास्त्र में मानसस्नान आदि गौणस्नान कहे हैं।

स्मार्त कर्म = स्मृतिग्रंथों द्वारा वर्ण, आश्रम, जाति, अधिकार, आदि भेदों के अनुसार प्रतिपादित कर्म।

स्मार्ताचमन = संध्यावंदनादि नित्य धार्मिक विधि का एक अंग।

स्त्रीधन = माता, पिता, भ्राता आदि आप्त-जनों द्वारा स्त्री को समर्पित क्षेत्र, गृह, अलंकार आदि धन। इस पर स्त्री का

ही संपूर्ण अधिकार होता है। स्त्रीधन पर उत्तराधिकार कन्या का होता है। स्त्रीधन पर व्यभिचारिणी का अधिकार नहीं होता।

स्त्रीधन के छह प्रकार = अध्यग्नि, अध्यवहनिक, भर्तृदान, भर्तृदत्त, पितृदत्त और मातृदत्त।

स्वयंवर = एक प्राचीन विवाहप्रकार। इसमें कन्या अपने इच्छित पुरुष से विवाह करने का निर्णय लेती है। (सीता स्वयंवर, रुक्मिणीस्वयंवर आदि पुराणों में प्रसिद्ध हैं)

स्वस्तिमंत्र = स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूपा विश्ववेदाः
स्वस्तिनस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः।
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।। (ऋ.१-८-९-६)

गौतम ऋषि का यह स्वस्तिमंत्र सभी मंगलकृत्यों में कहा जाता है।

स्वस्तिवाचन = मंगलकार्य में व्राह्मणों से मंत्रसहित आशीर्वाद ग्रहण करने की विधि।

स्वाध्याय = (१) वेदपाठ की वारंवार आवृत्ति। (२) मोक्षशास्त्र का अध्ययन। (३) अर्थज्ञान सहित गुरुमंत्र या वेदमंत्र का जप।

स्वामिनारायण = विशिष्टाद्वैती कृष्णोपासक आधुनिक वैष्णव संप्रदाय की संज्ञा। अपर नाम – उद्धव संप्रदाय।

स्वैरिणी = तीन पुत्रों के बाद चौथे पुत्र को जन्म देने वाली स्त्री (महाभारत आदिपव – १२३-७७)

हविषान्न = व्रत, उपवास आदि में खाने योग्य धान्य फलादि पदार्थ।

हस्ततीर्थ (या करतीर्थ) = (१) दैवतीर्थ (कनिष्ठिका का अग्रभाग)। (२) कायतीर्थ = कनिष्ठिका और अनामिका का मूलभाग)। (३) पितृतीर्थ (अंगुष्ठ और अन्य ४ उंगलियों का मध्यभाग)। (४) ब्राह्मतीर्थ (अंगुष्ठ का मूलस्थान)।

हव्य = श्राद्ध में देवस्थानीय ब्राह्मणों को देने योग्य खाद्यान्न।

हंस = चातुवर्ण्य की व्यवस्था होने के पूर्व यही एक मात्र वर्ण था।

हंस संप्रदाय (निंबार्क संप्रदाय) = द्वैताद्वैतवादी या भेदाभेदवादी एक वैष्णव संप्रदाय। निंबार्काचार्य इसके संस्थापक थे। हरिव्यास द्वारा इसका प्रचार होने के कारण इसे **हरिव्यासी** संप्रदाय भी कहते हैं।

हिरण्यश्राद्ध = आपत्काल में यथाशास्त्र श्राद्ध करना असंभव होने पर भोज्यान्न के चौगुना मूल्य दाम देकर किया जाने वाला श्राद्ध।

हेरंब = पंचमुखी तथा सिंहाधिरूढ श्रीगणेश का तांत्रिक रूप।

★ ★ ★

(वर्ग - २ आ) – धार्मिक व्रत की परिभाषा

(परिशिष्ट)

अक्षयनिधि व्रत = अक्षय दशमी नामक (श्रावण शु. १० तथा भाद्र. शु. और कृ. १० पवित्र तिथि का एक जैन व्रत। व्रतावधि – पांच या दस वर्ष।

अक्षयफल दशमी व्रत = एक जैन तिथिव्रत। व्रतदिन – श्रावण शु. दशमी। व्रतावधि – १० वर्ष। फल – संतान की प्राप्ति।

अपूर्व व्रत = भाद्रपद की प्रतिपदा में करणीय एक जैन व्रत।

अमावास्याव्रत = शैवों का एक तिथिव्रत।

अमावास्या पयोव्रत = वैष्णवों का तिथि व्रत। अमावास्या को केवल दूध पीना।

अष्टाह्निक पर्व = एक जैन संप्रदायी पूजा का व्रत। आषाढ, कार्तिक और फाल्गुन मासों में शु. अष्टमी से पौर्णिमा तक यह व्रत होता है। इसमें नंदीश्वर – प्रतिमा की पूजा को विशेष महत्त्व होने से इसे "नन्दीश्वर पर्व" भी कहते हैं।

आकाश पंचमी = भाद्रपद शु. पंचमी का एक जैन व्रत। व्रतावधि – पांच वर्षों तक।

आचाम्ल व्रत = जैन श्रावकों का एक व्रत। अष्टमी आदि पर्व तिथियों को निर्जल उपोषण करने में असमर्थ होने पर यह व्रत किया जाता है। व्रती रूक्ष और नीरस अन्न का सेवन करते हैं।

आचारवर्धन व्रत = एक जैन व्रत। व्रतावधि – ११९ दिवस। इस अवधि में १०० उपवास और ५० पारणाएँ होती हैं। व्रत का आरंभ किसी भी दिन से होता है।

आदिनाथ जयंती व्रत = प्रथम तीर्थंकर वृषभ देव को फाल्गुन व. एकादशी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई और उसी दिन उन्होंने प्रथम प्रवचन दिया था। इस निमित्त उपवास व्रत।

अनन्त चतुर्दशी = एक जैन संप्रदायी व्रत। अवधि – भाद्र. शु. ११ से १५ तक।

आयंबिल = केवल ओदन का भोजन आयंबिल वर्द्धमाण एक जैनों का व्रत है।

ऋषि पंचमी = आषाढ शु. पंचमी का एक जैन व्रत। ६५ उपोषण होने पर व्रत का उद्यापन होता है।

एकावली व्रत = एक जैन व्रत। श्रावण शु. प्रतिपदा से एक वर्ष की अवधि में (प्रतिमास ७ इस प्रकार ८४ उपवास और ८४ पारणा का व्रत।) २४ उपवास व पारणा वाला व्रत 'लघु एकावली' कहा जाता है।

एकाशन = एक जैन व्रत। थाली में एक बार परोसा गया ही अन्न खाना।

एगल विहार पडिमा = जैन तपोव्रत। इस में एकांतवास आवश्यक होता है।

ऐसोदश व्रत = ६५० दिनों का एक जैन व्रत, जिसमें ५५० उपवास और १०० पारणाएं होती है।

ऐसोनव व्रत = एक जैनव्रत, जिसमें ४०५ उपवास और ८० पारणाएं होती है।

करमचूर व्रत = एक जैन व्रत। इसमें दो वर्ष आठ महीनों की अवधि में ६४ दिनों की मर्यादा में जप किया जाता है।

कर्मक्षय व्रत = एक जैन व्रत। यह ७४ महीनों में पूर्ण होता है। व्रती को १४८ उपवास और पारणा करना आवश्यक है।

कर्मचूरव्रत = एक जैन व्रत जो किसी भी मास की अष्टमी से प्रारंभ होता है और २ वर्ष आठ महीनों तक जिसका पालन होता है।

कर्मनिर्जराव्रत = एक जैनव्रत जो आषाढ शु १४ या भाद्रपद शु ११ से चार दिनों तक होता है। फल – स्वर्गप्राप्ति।

कलिचतुर्दशी = जैनव्रत। आषाढ शु १४ से प्रत्येक चतुर्दशी को चार वर्षों तक उपोषण का व्रत।

कल्पवास = माघ मास में मकर संक्रांति से कुंभ संक्रांति तक प्रयाग संगम के क्षेत्र में व्रतयुक्त निवास करना।

कल्याणक व्रत = फाल्गुनी पौर्णिमा के दिन चंद्रमा प्रायः उत्तरा नक्षत्र में प्रवेश करता है। इस निमित्त शिवाराधना का व्रत तामिलनाडू में इसे 'पंगुनी उत्तिरम' कहते हैं। उसी प्रदेश में यह व्रत होता है।

कल्याणकव्रत = एक जैन व्रत। इसके दो प्रकार – (१) लघुव्रत जो ५ दिनों में संपूर्ण होता है। (२) मध्यमव्रत जो १३ दिनों में पूर्ण होता है।

कवलचांद्रायण = एक जैन व्रत। अमावस्या से पौणिमा तक प्रतिदिन एक एक ग्रास का आहार बढाना और कृष्ण पक्ष में उसी प्रकार कम करना।

कवलाहार = जैन मुनि का एक बाह्य तप। प्रतिदिन मुनि ने ३२ और साध्वी ने २८ कवल भक्षण करना। (एक कवल = पचास पके चांवल) छह प्रकार – नोकर्माहार, कर्माहार, कवलाहार, लेह्याहार, ओजाहार और मानसाहार।

कांचनपुरीव्रत = शुक्ल तृतीया। कृष्ण एकादशी अष्टम् पूर्णिमा, अमावस्या तथा संक्रांति के दिन सुवर्णनगरी में स्थापित लक्ष्मीनारायण की मूर्ति का समर्पण।

कृष्णपंचमी व्रत = ज्येष्ठ कृ. ५ को उपोषण का एक जैनव्रत।

कोकिला पंचमी = एक जैन व्रत। आषाढ वद्य पंचमी से कार्तिक वद्य पंचमी को। पांच वर्षों तक यह व्रत होता है।

गरुड पंचमी = श्रावण शुद्ध पंचमी का एक जैनव्रत। व्रतावधि ५ वर्ष।

गोचरणव्रत = २१ दिन तक गौ की अखण्ड सेवा में रहना। गाय जो क्रिया (बैठना, उठना, चलना) करती है तदनुसार क्रिया व्रती ने करना।

गोपाष्टमी = कार्तिक शुद्ध अष्टमी। गोपूजन व्रत की तिथि।

गोमूत्र यावक = गोमूत्र में से यव के दाने चुन कर, गोमूत्र में पकाकर उसीका आहार करने का व्रत। व्रतावधि एक सप्ताह, पक्ष या मास। इसी व्रत का दसूरा प्रकार – गोमय से चुने हुए यावक कण पानी में पकाकर खाना। इसको 'यावक व्रत' कहते हैं।

चतुर्मूर्ति व्रत = चैत्रशुद्ध प्रतिपदा से एक वर्ष तक वासुदेव, संकर्षण, रुद्र और अनिरुद्ध इन चार दैवतों की क्रमशः तीन-तीन मासों तक उपासना का व्रत। अपर संज्ञा – सर्वाप्तिव्रत।

चतुर्थी व्रत = गणेश चतुर्थी, गौरीचतुर्थी, नागचतुर्थी, कुण्डचतुर्थी, बहुला, अंगारकी, संकष्ट, शिवा, विनायकी, शांता, सुखा, इत्यादि कुल २५ चतुर्थी व्रत माने जाते हैं। तृतीयायुक्त चतुर्थी व्रत उपवास आदि के लिए महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

चतुर्युग व्रत = प्रत्येक मास के प्रारंभिक चार दिनों में कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन चार युगों की पूजा तथा केवल दुग्धाहार करना। व्रतावधि – एक वर्ष।

चंडिका नवमी = वैशाख मास की दोनों नवमी तिथियों का व्रत। इस में रक्तवस्त्र धारण कर चंडिका की पूजा होती है।

चंद्रकल्याणक = एक जैनव्रत जो २५ दिनों में पूर्ण होता है।

चन्दनषष्ठी व्रत = भाद्रपद कृष्ण षष्ठी का एक जैन व्रत।

चन्द्रनक्षत्रव्रत = चैत्र पोर्णिमा की तिथि सोमवार को आने पर यह व्रत होता है।

चंद्ररोहिणी शयन व्रत = पौर्णिमा को सोमवार या रोहिणी नक्षत्र होने पर यह व्रत होता है। इसके व्रती पुरुष गोमूत्र प्राशन तथा हविष्यान्न का भक्षण करते हैं। व्रतावधि – एक वर्ष। अंत में चन्द्र-रोहिणी की सुवर्ण प्रतिमा का दान। फल – चन्द्रलोक की प्राप्ति।

चन्द्रव्रत = प्रकार (१) प्रत्येक अमावस्या को कमल पर स्थापित सूर्यचन्द्र की मूर्तियों का पूजन। (२) मार्गशीर्ष पौणिमा से प्रत्येक पौर्णिमा को उपवास तथा चन्द्र देवता की पूजा। व्रतावधि – एक वर्ष। (३) प्रत्येक पौर्णिमा को नक्त भोजन। व्रतावधि – १५ वर्ष। (४) चान्द्रायणव्रत और सुवर्णमयी चन्द्रमूर्ति का दान।

चन्द्रशांति = सोमवार को चित्रा नक्षत्र होने पर यह व्रत होता है।

चन्द्रषष्ठी = भाद्रपद वद्य षष्ठी का एक स्त्रीव्रत।

चंपकचतुर्दशी = ज्येष्ठ शुद्ध चतुर्दशी को भगवान् शिव की चम्पक पुष्पों से पूजा का व्रत।

चम्पकद्वादशी = ज्येष्ठ शुद्ध द्वादशी को चम्पक पुष्पों से गोविन्दपूजन का व्रत।

चरित्रशुद्धिव्रत = एक जैन व्रत। इसमें १०४२ उपवास छह वर्षों में पूर्ण होते हैं। एक दिन उपवास और दूसरे दिन पारणा इस क्रम से यह व्रत २०८४ दिनों में पूर्ण होता है।

चातुर्मास्यव्रत = श्रावणमास में शाकान्न, भाद्रपद में दही, आश्विन में दूध और कार्तिक में द्विदलधान्य का सेवन न करना। आषाढ शुद्ध द्वादशी को इस व्रत का प्रारंभ और कार्तिक शुद्ध द्वादशी को समाप्ति होती है। सभी वर्ण और संप्रदायों के लिए यह व्रत विहित है।

चांद्रव्रत = मार्गशीर्ष शु. प्रतिपदा को मूल नक्षत्र होने पर चंद्रमा की मूर्ति का पूजाव्रत। इस पूजा में चंद्रमा के अवयवों पर नक्षत्रों का न्यास करते हैं।

चांद्रायणव्रत = दो प्रकार – (१) **यवमध्य** और (२) पिपीलिका मध्य। यवमध्य चांद्रायण में शुक्ल प्रतिपदा से पौर्णिमा तक प्रतिदिन एक एक कवल ग्रास बढ़ाना और कृष्ण प्रतिपदा से अमावस्या तक एक एक कवल ग्रास क्रमशः घटाया जाता है। **पिपीलिकामध्य** चांद्रायण में कृष्ण प्रतिपदा से इसी प्रकार अन्न ग्रहण होता है। इनके अतिरिक्त यतिचांद्रायण, शिशुचान्द्रायण इत्यादि इस प्रायश्चित्तात्मक व्रत के प्रकार माने जाते हैं। महापातकों का प्रायश्चित्त चांद्रायण व्रत से किया जाता है। व्रतावधि – एक वर्ष।

चित्रभानुव्रत = शुद्ध सप्तमी से इसका आरंभ किसी भी मास से होता है। इसमें सूर्यदेवता को घृताभिषेक होता है।

जनार्दनपूजा = मार्गशीर्ष शु. द्वादशी का विष्णुपूजा का एक व्रत।

जयंती सप्तमी = माघ शुद्ध सप्तमी। इस तिथि से सूर्यपूजा के व्रत का प्रारंभ होता है। व्रतावधि – एक वर्ष।

जयंती व्रत = श्रावण कृष्ण अष्टमी का एक व्रत। यशोदासहित बालकृष्ण की पूजा इस व्रत में होती है।

जयपौर्णिमासी = पौर्णिमा को नक्षत्र सहित चंद्रमा के चित्र की पूजा का व्रत।

जयापार्वतीव्रत = आषाढ शुद्ध त्रयोदशी से कृष्ण तृतीया तक (पांच दिन) व्रत। २० वर्षों तक यह व्रत होता है। शिव-पार्वती की उपासना और स्वादहीन भोजन इस व्रत की विशेषता है।

जयाव्रत = कार्तिक शुद्ध पंचमी का एक व्रत।

जयावाह्नि = आश्विन कृष्ण प्रतिपदा से कार्तिक पौर्णिमा तक नित्य विष्णुपूजा का व्रत।

जलकृच्छ्रव्रत (उदक कृच्छ्र, वरुणकृच्छ्र) = कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को उपवास और जल में खड़ा रहकर वरुणमंत्र का जप। व्रतावधि – एक वर्ष।

जलदिव्य = दिव्य के पांच प्रकारों में से एक। अपराधी को विशिष्ट समय तक जलधारा में डुबो कर उसके निरपराधित्व की परीक्षा इसमें होती है। वैश्य अपराधी की परीक्षा जलदिव्य से होती थी।

जलधेनुदान = जेष्ठ शुक्ल एकादशी का एक व्रत। इसमें उत्तम धातु की सवत्स गोमूर्ति का दान होता है।

जलशयन व्रत = वैशाखी पौर्णिमा को जल में स्थापित विष्णुमूर्ति की पूजा का व्रत।

जाति त्रिरात्रिव्रत = ज्येष्ठ शुद्ध त्रयोदशी से तीन रात्रि तक उपोषण और लक्ष्मी- सरस्वती-पार्वती की पूजन इसमें होता है।

जानकी व्रत = फाल्गुन वद्य अष्टमी (सीताजी की जन्मतिथि) (या नवमी) का एक व्रत।

जिताष्टमी = अश्विन वद्य अष्टमी। इस तिथि को पुत्रप्राप्ति हेतु बंगाली स्त्रियां व्रतपालन करती है।

जिनगुण संपत्ति व्रत =एक जैन व्रत। इसमें ६३ उपवास होते हैं। दो प्रकार – बृहद्व्रत और लघुव्रत। लघुव्रत में ३६ उपवास या ६३ एकभुक्त व्रत होते है।

जिनपूजा-पुरन्दर व्रत = किसी भी मास की शुद्ध प्रतिपदा से अष्टमी तक उपोषण का जैनव्रत।

जिनपूजा विधान व्रत = एक जैनव्रत।

जिनमुखावलोकन व्रत = भाद्रपद कृ. प्रतिपदा से आश्विन कृ. प्रतिपदा तक प्रतिदिन प्रातः सर्वप्रथम जिनेन्द्र मूर्ति का दर्शन करने का व्रत।

जिनरात्रि व्रत = फाल्गुन वद्य प्रतिपदा से चतुर्दशी तक का व्रत। इस व्रत में एक दिन उपोषण, दूसरे दिन पारणा, प्रत्येक प्रहर को जिनमूर्ति का दर्शन और रात में जागरण होता है। व्रतावधि -- ९ या १४ वर्ष।

जीवत्पुत्रिका व्रत = आश्विन वद्य अष्टमी का एक स्त्रीव्रत। उत्तर प्रदेश में यह प्रचलित है।

ज्येष्ठाकल्प =ज्येष्ठा नामक देवता (अपर नाम – अलक्ष्मी, निर्ऋति, विघ्नपार्षदा, कुंभी, हस्तिमुखा) की उपासना के लिए एक हवन विधी।

ज्येष्ठ गौरी = अपर संज्ञा धान्यलक्ष्मी। भाद्रपद शुक्लपक्ष में इसकी पूजा होती है।

ज्येष्ठा गौरी व्रत = एक स्त्री व्रत। भाद्रपद शुक्ल पक्ष में अनुराधा नक्षत्र पर आवाहन, ज्येष्ठा नक्षत्र पर पूजन और मूल नक्षत्र पर ज्येष्ठा गौरी का विसर्जन होता है। महाराष्ट्र में चैत्रशुद्ध प्रतिपदा से अक्षय्य तृतीया तक भी गौरीपूजा का व्रतोत्सव होता है।

ज्येष्ठानक्षत्र जननशांति = ज्येष्ठा नक्षत्र के दस भाग में से किसी भाग में अपत्य का जन्म, किसी आप्त की मृत्यु का कारण होती है। अतः इन्द्र पूजा प्रधान यह शांतिविधि होती है।

ज्येष्ठजिन व्रत = ज्येष्ठ शुद्ध प्रतिपदा से एक मास का व्रत। आदिनाथ तीर्थंकर की उपासना इसका प्रमुख अंग है। व्रतावधि – २४ वर्षों तक।

ज्वरशांति = शांति कमलाकर ग्रंथ में उल्लिखित ज्वरादि दोषों की शांति की एक विधि।

ज्वरहर व्रत = अष्टमी, एकादशी, द्वादशी या चतुर्दशी को ज्वर पीड़ा के प्रशमनार्थ यह व्रत कहा गया है।

ज्ञानावाप्ति व्रत = चैत्र पौर्णिमा से एक मास तक नृसिंह भगवान् की उपासना का व्रत।

तप्तकृच्छ्रा = महापातक का एक प्रायश्चित्त। इसमें तप्त लोहस्तंभ को आलिंगन करना पडता था।

तप्तकृच्छ्रा (या तप्त महाकृच्छर) = पातकों के प्रायश्चित्त निमित्त १२, २१ या ४ दिनों का कठोर व्रत। इसमें उष्ण, जल, दूध, घी का सीमित सेवन किया जाता है।

तप्तमुद्रा = आश्विन या कार्तिक मास की शुद्ध एकादशी को शंख, चक्र आदि भगवान विष्णु के आयुधों की धातुमुद्रा को तपाकर उनके चिन्ह हाथों पर अंकित करना। वैष्णव संप्रदाय में यह पद्धति है।

तर्पणव्रत = ज्वरपीड़ित मनुष्य द्वारा ज्वरपीड़ा के निवारणार्थ १०८ बार (या अधिक बार मृत व्यक्ति की तृप्ति के लिए तिलोदक का यथाविधि समर्पण।

तारक द्वादशी = सूर्यादि ग्रहों की उपासना का एक व्रत। मार्गशीर्ष शुद्ध द्वादशी से इसका प्रारंभ होता है। व्रतावधि – एक वर्ष।

ताल नवमी (या तालोपहार नवमी) व्रत = भाद्रपद शु. नवमी का एक स्त्रीव्रत। इस में दुर्गापूजा तथा तालवृक्ष के पत्र का महत्त्व होता है।

तिथि युगल व्रत = प्रत्येक मास में शुद्ध और वद्य, सप्तमी, अष्टमी, द्वादशी और चतुर्दशी तथा पौर्णिमा और अमावस्या को उपोषण का व्रत।

तिथीश पूजन व्रत = प्रत्येक तिथि का एक विशिष्ट स्वामी माना जाता है। तिथि पर उसके स्वामी का पूजन करने का व्रत।

तिलक व्रत = चैत्र शु. प्रतिपदा को विष्णुचित्र की पूजा करने का व्रत। पूजा के अंत में चन्दन लगाते हैं। अतः यह तिलक व्रत कहलाता है।

तिंदुकाष्टमी = ज्येष्ठ वद्य अष्टमी का विष्णु पूजा का एक व्रत। इसमें कमल, धतूरा तथा शतपत्र-पुष्पों से प्रत्येक चार महीनों में विष्णुपूजा होती है। व्रतावधि – एक वर्ष।

तिल चतुर्थी = माघ शुक्ला चतुर्थी।

तिलदाही व्रत = पौष वद्य एकादशी का व्रत। तिलमिश्रित गोबरी का हवन इसमें होता है।

तिलपूर्ण कांस्यपात्रदान = माघ पौर्णिमा अमृतसिद्धि योग, चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण, संक्रांति या युगादि तिथि को यह विधि होती है।

तिल द्वादशी = माघ वद्य द्वादशी को श्रवण नक्षत्र का योग।

तिष्य (या पुष्य) व्रत = उत्तरायण में शुक्लपक्ष के पुष्य नक्षत्र पर कुबेर-पूजा का व्रत। एक वर्ष तक प्रतिमास पुष्य नक्षत्र पर यह पूजा होती है।

तुरग सप्तमी = चैत्र शुद्ध सप्तमी का एक व्रत। इसका उद्यापन तुरग - (घोड़ा) के दान से होता है।

तुलसी व्रत = कार्तिक शुद्ध नवमी से एकादशी तक तीन दिन का व्रत। अंत में तुलसी-विष्णु विवाह विधि होती है।

तुलापुरुष कृच्छ्र = एक उपोषणात्मक सप्ताह व्रत।

तेज:संक्राति व्रत = प्रत्येक मास की सूर्य-संक्रान्ति का एक व्रत। इसमें सूर्य की पूजा प्रमुख होती है। व्रतावधि – १ वर्ष।

तौरायणिक = तुरायण नामक सत्र का यजमान। चैत्र या वैशाख शुद्ध पंचमी को **तुरायण** सत्र का प्रारंभ होता है। यह याग, पौर्णिमासेष्टि की प्रकृति और द्वादशाह याग की

विकृति, माना जाता है।

त्रिगति सप्तमी = फाल्गुन शुद्ध सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक सप्तमी को सूर्यपूजा का व्रत। इस व्रत में सूर्य के चार नाम होते है – **हेंली** – फाल्गुन शु. ७। **हंस** – फाल्गुन से ज्येष्ठ तक। **मार्तण्ड** – आषाढ से आश्विन तक। **भास्कर** – कार्तिक से माघ तक।

त्रितयप्रदान सप्तमी = हस्तनक्षत्र युक्त माघ शुद्ध सप्तमी से प्रत्येक मास की सप्तमी को सूर्यपूजा का व्रत। व्रतावधि – एक वर्ष।

त्रिपुरज्वलन व्रत = कार्तिकी पौर्णिमा से आरंभ होने वाला शिवोपासना का व्रत। एक वर्ष तक प्रत्येक पौर्णिमा को शिव के संमुख ७५० दीपज्योतियां प्रज्वलित करना तथा दीपपात्रों का दान करना इस व्रत में आवश्यक है।

त्रिपुरसूदन व्रत = उत्तरानक्षत्रयुक्त रविवार को सूर्यपूजा का व्रत।

त्रिपुरी पौर्णिमा = कार्तिकी पौर्णिमा। भगवान् शिव के त्रिपुरविजय निमित्त दीपप्रज्वालन का उत्सव।

त्रिरात्रतुलसी व्रत = कार्तिक शुद्ध नवमी से तीन दिनों तक लक्ष्मीनारायण मूर्ति की तुलसी तरु की छाया में पूजा।

त्रिमुख शुद्धि व्रत = अन्नग्रहण करने के पूर्व दरवाजे में खड़ा सत्पात्र अतिथि की प्रतीक्षा करना। अतिथि के अन्नग्रहण होने पर ही स्वयः भोजन करना।

त्रिमूर्ति व्रत = ज्येष्ठ शुद्ध तृतीया को प्रतिवर्ष सूर्य-चन्द्र, और वायु के स्वरूप में विष्णुपूजा का व्रत। व्रतावधि – तीन वर्ष।

त्रिरात्र व्रत = उपनयन संस्कार के बाद तीन रात तक ब्रह्मचारी के लिए विहित एक कठोर व्रत।

त्रिलोचनाष्टमी = ज्येष्ठ वद्य अष्टमी को शिवपूजा का व्रत।

त्रिविक्रम व्रत = किसी भी मास की शुद्ध तृतीया से लक्ष्मी और त्रिविक्रमस्वरूप विष्णु की पूजा का व्रत। व्रतावधि – ३ या १२ वर्ष। (२) मार्गशीर्ष शुद्ध नवमी से तीन दिन उपवास। यह त्रिरात्र व्रत १०० बार किया जाता है।

त्रिशूल दान = उदरशूल की व्यथा का निवारण करने हेतु कृष्ण पक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी को शिवपूजा तथा त्रिशूल का दान इसमें होता है।

त्रुटित वल्लीदान = संक्रांति के पर्व पर तिलचूर्ण और गुड के मिश्रण की पंचमुष्ठी का दान। (वंशवल्ली त्रुटित न होने के हेतु यह दान होता है।)

त्र्यंबक व्रत = प्रत्येक मास की वद्य चतुर्दशी का एक शिवव्रत।

दधिसंक्रांतिव्रत = मकर संक्रांति से प्रत्येक मास की संक्रांति के दिन लक्ष्मी-नारायण मूर्ति का दही से स्नान करना।

दमनकारोपण व्रत = चैत्रशुद्ध प्रतिपदा से पौर्णिमा तक विविध देवताओं को दमनक (दवणा) नामक वनस्पति समर्पण करना।

दम्पतीपूजन = चैत्र, वैशाख, श्रावण, कार्तिक, मार्गशीर्ष और माघ इन मासों में युगादितिथि, मन्वादितिथि, संक्रान्ति, व्यतीपात, और वैधृति योग पर या द्वादशी तिथि पर लक्ष्मी-नारायण की पूजा का एक व्रत।

दशफलव्रत = श्रावण वद्य अष्टमी से दस दिनों का एक स्त्रीव्रत। गोपाल कृष्ण की तुलसी दलों से पूजा इसमें प्रमुख है। व्रतावधि १० वर्ष।

दशहराव्रत = ज्येष्ठमास की शुद्ध दशमी तिथि, दश पापहरा (दस पापों का हरण करनेवाली) मानी गई है। इसी तिथि को गंगा का पृथ्वी पर अवतरण हुआ था। ज्येष्ठ शुद्ध प्रतिपदा से शुद्ध दशमी तक यह गंगास्नानात्मक व्रत होता है। इस व्रत की मुख्य देवता गंगा और शिव, विष्णु आदि गौण देवता माने जाते है।

दशादित्य व्रत = वैशाख, मार्गशीर्ष या माघ मास की शुद्ध दशमी अथवा रविवार की दशमी को इस व्रत का आरंभ होता है। सूर्यपूजात्मक इस व्रत से दशविध दुर्दशाओं का नाश होता है। इस व्रत में दुर्दशा देवी की दस प्रतिमाओं का पूजन और विसर्जन होता है।

दिवाकर व्रत = हस्तनक्षत्र युक्त रविवार से इस व्रत का प्रारंभ होता है। सात रविवारों को द्वादश दल कमल में स्थापित सूर्य बिंबों की पूजा इसमें होती है।

दीपदान व्रत = कार्तिक मास में शिवमंदिर में एक लक्ष या दो लक्ष दीप जलाना। प्रतिदिन ११ दीप जलाकर भी यह व्रत होता है।

दुर्गाव्रत = श्रावण शुद्ध अष्टमी से प्रारंभ होने वाला एक मासिक व्रतं। व्रतावधि एक वर्ष।

दूर्वा-गणपतिव्रत = श्रावण शु. चतुर्थी से माघ शुद्ध चतुर्थी तक की अवधि में रविवार को आने वाली किसी शुद्ध चतुर्थी से इसका प्रारंभ होता है। व्रतावधि छह महीने या तीन वर्ष।

दूर्वात्रिरात्रि व्रत = भाद्रपद शुद्ध त्रयोदशी से पौर्णिमा तक एक पूजाव्रत।

दूर्वालक्ष व्रत = दूर्वागणपति की पूजा का व्रत। **पौष मास के अतिरिक्त अन्य किसी भी मास में इस व्रत का प्रारंभ होता है।**

देवमूर्ति व्रत = चैत्रशुद्ध प्रतिपदा से चार दिनों में शिव, अग्नि, विरूपाक्ष और वायु इन चार देवताओं की पूजा का व्रत। प्रत्येक मास में चार दिन इसी क्रम से पूजा करना। व्रतावधि एक वर्ष।

देवव्रत = चतुर्दशी तिथि को मघानक्षत्र में गुरु ग्रह आने पर महेश्वर की पूजा का व्रत।

देवीरथयात्रा = पंचमी, सप्तमी, नवमी, एकादशी, वद्य तृतीया, इन तिथियों अथवा सोमवार या मंगलवार को राजा ने करने योग्य एक काम्य व्रत। इसमें मंदिराकार रथ में देवी की शोभा यात्रा निकालते हैं।

देवीव्रत = कार्तिकमास में उपोषण सहित देवीपूजा और तिलहोम करने का व्रत।

देव्यांदोलन = चैत्रशुद्ध तृतीया को झूले में उमा-महेश्वर मूर्ति की आराधना।

दोलोत्सव = चैत्र शुद्ध तृतीया से वैशाख शुद्ध तृतीया तक

शिव-पार्वती आदि देवताओं की दोले = (झूला) में बिठाकर आराधना। अयोध्या, मथुरा आदि वैष्णव तीर्थक्षेत्रों में यह प्रसिद्ध महोत्सव होता है।

द्वात्रिंशी व्रत = वैशाख, मार्गशीर्ष या माघ मास की पौर्णिमा से ३२ वी पौर्णिमा तक शिवगौरी की उपासना का व्रत।

द्विदल व्रत = कार्तिक मास में मूंग, चना, उड़द आदि द्विदल धान्यों का आहार वर्जित करना।

धरणीव्रत = कार्तिक शुद्ध एकादशी को विष्णुपूजा का व्रत।

धर्मघटदान = वैशाख मास में सुगंधि जल युक्त घट का आमान्नसहित दान का व्रत। व्रतावधि-चार षर्ष।

धर्मप्राप्तिव्रत = आषाढ वद्य प्रतिपदा से एक महिने तक धर्मस्वरूप विष्णु की पूजा का व्रत।

धर्मत्रय व्रत = मार्गशीर्ष शुद्ध या वद्य दशमी से धर्मस्वरूप विष्णु की पूजा का व्रत।

धर्ममूलव्रत = पुत्रप्राप्ति के उद्देश्य से रविवार की शुद्ध सप्तमी या गुरुवार की शुद्ध दशमी को इस व्रत का प्रारंभ होता हैं।

धर्मव्रत = मार्गशीर्ष शुद्ध दशमी से एक वर्षतक यह व्रत होता है। उपोपण और हवन इस व्रतनिमित्त होते है।

धनद कृच्छ = एक प्रायश्चित्तरूप व्रत। केवल एक मुष्टि अन्न का सेवन।

धनव्रत = फाल्गुन शुद्ध १३ या मार्गशीर्ष शुद्ध एकादशी से एक वर्ष तक कुबेर की उपासना।

धनसंक्रान्तिव्रत = संक्रांति दिन से एक वर्ष तक सूर्य की उपासना।

धनावाप्तिव्रत = श्रावण वद्य प्रतिपदा से एक वर्ष या महिने तक विष्णु, संकर्षण आदि देवताओं की उपासना

धात्रीव्रत = शुद्ध या वद्य एकादशी को आंवले के कल्क से स्नान।

धामव्रत (धामत्रिरात्रिव्रत) = फाल्गुनी पौर्णिमा को धाम याने गृह का दान देने का व्रत।

धारणपारणव्रत = आषाढ शुद्ध एकादशी से कार्तिक शुद्ध एका दशी तक एक दिन उपोषण और दूसरे दिन पारणा (भोजन) इस क्रम से चातुर्मास्य में विष्णुभक्ति का व्रत करना।

नक्तव्रत (या दिवारात्रि व्रत) = केवल नक्त समय में भोजन करना।

नक्षत्रविधिव्रत = प्रत्येक नक्षत्र को देवी पार्वती के अवयव का प्रतीक मानकर, प्रत्येक नक्षत्र प्रारंभ के दिन विशिष्ट अवयव की पूजा का व्रत। नक्षत्र दिन पर उपवास और दूसरे दिन पारणा इस व्रत में होती है।

नदीत्रिरात्रव्रत = आषाढ मास में नदी में महापूर आने पर यह व्रत होता है।

नदीव्रत = चैत्र शुक्लपक्ष से एक वर्ष तक प्रतिमास एक सप्ताह सिंधू, भागीरथी, आदि सात नदियों की पूजा का व्रत।

नन्द = माघ शुद्ध षष्ठी का आने वाले रविवार की संज्ञा। इस दिन नन्दादि विधि नामक सूर्योपासना की विधि होती है।

नन्दाव्रत = श्रावण मास की ३, ४, ५ ६, ८, ९, ११ तथा पौर्णिमा इन तिथियों को पार्वती की उपासना का व्रत।

नरसिंहव्रत = अष्टमी तिथि को शत्रुनाश के निमित्त राजपुरुष ने करने का नरसिंह पूजा का व्रत।

नवनीत धेनुदान = कार्तिकी अमावस्या को वत्ससहित नवनीत की (माखन की) गोप्रतिमा की पूजा और दान का व्रत।

नवरात्रि व्रत = आश्विन शुद्ध प्रतिपदा से नवमी तिथि तक अष्टभुजा देवी या नवार्ण यंत्र की उपासना का व्रत। नक्त भोजन, कुमारी पूजन, सप्तशती पारायण, इ. इस व्रत में होते हैं।

नवव्यूहार्चन = आश्विनी या फाल्गुनी एकादशी को विष्णुव्यूह (= वासुदेव, संकर्षण, नारायण और वासन) तथा अष्ट दिक्पालायुधों के चित्रों की पूजा का व्रत।

नवान्न भक्षण = मार्गशीर्ष मास में सूर्य का वृश्चिक राशि में प्रवेश होते समय, तथा रेवती, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, रोहिणी, मृग, उत्तरा इन नक्षत्रों पर समारोह पूर्व नवीन धान्य का सेवन करना।

नागदष्टोद्धरणव्रण = भाद्रपद शुद्ध पंचमी से प्रत्येक पंचमी को पंच फणधर-नाग-प्रतिमा की पूजा।

नागव्रत = कार्तिक शुद्ध पंचमी को नागमूर्ति की पूजा का व्रत।

निकुंभपूजा = आश्विनी पौर्णिमा को पिशाच्चबाधा से रक्षण के हेतु निकुंभनामक पिशाच नियंत्रक देवता की पूजा की विधि। इस में किचड़ फेंकना तथा अश्लिल बोलना विहित है।

निशाभार्गव व्रत = चैत्र, श्रावण या भाद्रपद मास के प्रथम शुक्रवार को इस व्रत का प्रारंभ होता है। व्रतावधि = एक या पांच वर्ष। इसमें रात्रि के समय लक्ष्मी-नारायण की पूजा होती है।

नीलज्येष्ठा व्रत = श्रावण मास में ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त अष्टमी एवं रविवार को सूर्यपूजा का व्रत।

पंचधान्य = यव, गोधूम, मुद्ग, तिल और तण्डुल। इनके लक्ष कणों से शिवपूजा का व्रत वैशाख, श्रावण, कार्तिक या माघ मास में होता है। इसे पंचधान्य लक्षपूजा व्रत कहते हैं।

पंचभूत व्रत = चैत्र शुद्ध पंचमी को पंचमहाभूत स्वरूपी विष्णु की पूजा का व्रत।

पंचमहापापनाशन व्रत = श्रावण शुद्ध द्वादशी और श्रावण पौर्णिमा को भगवान कृष्ण की बारह रूपों में उपासना करने का व्रत।

पंचमूर्तिव्रत = चैत्र शुध्द पंचमी से एक वर्ष तक प्रत्येक पंचमी को शंख, चक्र, गदा, पद्म और पृथ्वी की चंदनाकृति की पूजा का व्रत।

पक्षप्रदोष = कार्तिक शुद्ध त्रयोदशी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध और वद्य त्रयोदशी को शिवोपासना का व्रत।

पत्रकृच्छ्र = तीन दिनों के उपोषण की पारणा पलाश, औदुंबर, कमल और बिल्व वृक्षों के पत्तो का कषाय पीकर करने का व्रत! देखिए पर्णकृच्छ्र।

पराक = एक कठोर प्रायश्चित्त व्रत।

पयोव्रत = दिन में केवल एक समय दूध पीकर रहने का व्रत।

पयोव्रत = फाल्गुन शुद्ध प्रतिपदा से द्वादशी तक या प्रत्येक अमावस्या को केवल दूध पीकर विष्णु की आराधना करना।

पर्णकृच्छ व्रत = ५ से ७ दिनों तक उपोषण की पारणा औदुंबर, कमल, विल्व या पालाश इन में से किसी एक वृक्ष के पत्तों का कषाय पीकर करना। देखिए पत्रकृच्छ्र।

पर्वरात्री = **महारात्री** (फाल्गुन वद्य ११), **दिव्य रात्री** (शुक्रवार-ज्येष्ठ शु. १० सहित ११), **भावरात्री** (मंगलवार, अमावस्या को संक्रांति और ग्रहण), **सिद्धरात्री** (चैत्र अष्टमी को संक्रांति), **कालरात्री** (अमावस्या युक्त नरकचतुर्दशी), **मोहरात्री** (कृष्ण जन्माष्टमी), **क्रोधरात्री** (चैत्र शुद्ध ९), **घोररात्री** (मार्गशीर्ष कृष्ण ८), **वीररात्री** (मंगलवार, चतुर्दशी, कुलनक्षत्र से युक्त)। तंत्रशास्त्र के अनुसार इन पर्वरात्रियों में देवीपूजा विशेष फलप्रद होती है।

पर्वोत्सव = देखिए पुरुषोत्तम व्रत।

पवित्रारोपण व्रत = प्रतिपदा से पौर्णिमा तक प्रत्येक तिथि को विशिष्ट देवता को पवित्र (जनेऊ) समर्पण करने का एक व्रत।

पादकृच्छ व्रत = चार दिनों में क्रमशः एकभुक्त, नक्तभोजन, अयाचित भोजन और उपोषण करना।

पादोदकस्नान = उत्तराषाढा नक्षत्र पर उपवास और श्रवण नक्षत्र के दिन भगवान् विष्णु के चरणों पर अभिषेक करने की एक विधि।

पादोनकृच्छ = एक प्रायश्चित्त। इनमें नौ दिनों में तीन तीन दिनों तक एक भोजन, अयाचित भोजन और उपोषण होता है।

पापमोचन व्रत = अन्नग्रहण न करते हुए १२ दिनों तक बिल्ववृक्ष की छाया में रहने का व्रत।

पापसंक्रान्तिव्रत = किसी भी संक्रांति से प्रतिमास संक्रान्ति के दिन तिलपूर्ण कुम्भ का दान तथा सूर्य की उपासना का व्रत।

पारायण व्रत = श्रावण या भाद्रपद पौर्णिमा से साढ़े चार महीनों तक वेद सूक्तों का संहिता क्रम आदि विकृतियों सहित पठन।

पालीव्रत = भाद्रपद शुद्ध व चतुर्दशी को वरुण मूर्ति या वारुण यंत्र की पूजा का स्त्रीव्रत।

पाशुपतव्रत = महाभारत (शांतिपर्व) में उल्लिखित एक तांत्रिक व्रत।

पाशुपत व्रत = शुद्ध या वद्य द्वादशी से चार दिनों तक क्रमशः एकभुक्त, अयाचित, नक्तभोजन उपोषण के व्रत होने पर चौथे दिन बैल की धातुमूर्ति का दान

पितृपक्ष = भाद्रपद कृष्णपक्ष की संज्ञा। (इस पक्ष में पितृनिधन की तिथि पर श्राद्धविधि महत्त्वपूर्ण मानी गई है)

पितृव्रत = पितरों को संतुष्ट करने के निमित्त प्रत्येक अमावस्या को केवल दुग्धप्राशन करना। व्रतावधि एक वर्ष।

पिपीलिकामध्य चांद्रायण = चांद्रायण व्रत का एक प्रकार। पौर्णिमा तिथि से तिथि की संख्या के अनुसार किसी भक्ष्य पदार्थ के ग्रास खाये जाते हैं। अमावस्या के मध्य दिन को निराहार रह कर फिर शुक्ल पक्ष की तिथि की संख्या के ग्रास प्रतिदिन एक बार ग्रहण करते हैं।

पिशाचमोचन व्रत = मार्गशीर्ष शुद्ध चतुर्दशी या मंगलवार की चैत्रशुद्ध चतुर्दशी को यह व्रत होता है। (काशी में पिशाचमोचन तीर्थ में इस तिथि को शिवपूजा तथा गंगास्नान होता है)।

पुष्यक व्रत = माघ शुद्ध त्रयोदशी से एक वर्ष तक नित्य कृष्णपूजा का स्त्री व्रत।

पुत्रकाम व्रत = (या पुत्रकाम्यव्रत) = भाद्रपद या ज्येष्ठ पौर्णिमा को दो प्रकार से यह व्रत पुत्रप्राप्ति की कामना से होता है। प्रथम व्रत तीन दिनों का है। द्वितीय व्रत प्रत्येक पौर्णिमा को एक वर्ष तक होता है।

पुत्रद-आदित्यवार = रोहिणी या हस्त नक्षत्र से युक्त आदित्यवार। इस दिन व्रतस्थ होकर महाश्वेतामंत्र का जप करते हैं।

पुत्रद रविवार = जिस रविवार को रोहिणी या हस्त नक्षत्र होता है उस दिन की संज्ञा। इस दिन पुत्रप्राप्ति की इच्छा रखने वाला व्यक्ति सूर्योपासना का व्रत करता है। उसे **पुत्रदविधि** कहते हैं।

पुत्रप्राप्तिव्रत = वैशाख शुद्ध षष्ठी को स्कन्द की उपासना का अथवा श्रावण पौर्णिमा को दुर्गापूजा का विशिष्ट व्रत।

पुत्रीयव्रत = भाद्रपद या आश्विन वद्य अष्टमी से एक वर्ष तक प्रत्येक (शुद्ध और वद्य) अष्टमी को बालकृष्ण की पूजा का व्रत।

पुत्रीयानन्तव्रत = मार्गशीर्ष मास में अश्विनी, कृत्तिका आदि मासों के नाम वाले नक्षत्रों के दिन विष्णुपूजा का व्रत। इसी प्रकार मासनाम से संबंधित नक्षत्र के दिनों पर विष्णु के विशिष्ट अवयवों की पूजा और अंत में अनन्त के नामजप से व्रतसमाप्ति होती है।

पुरुषोत्तम व्रत = जगन्नाथ पुरी में १२ पर्वोत्सिवों की यात्राओं में सहभागी होना। (१२ **पर्वोत्सव** = स्नान, गुंडिचा, हरिशयन, दक्षिणायन, पार्श्वपरिवर्तन, उत्थापनैक-द्वादशी, प्रावरणोत्सव, पुष्याभिषेक, उत्तरायण, दोलायात्रा, दमनकचतुर्दशी और अक्षय्यतृतीया।)

पुंसवन व्रत= एक पुराणोक्त व्रत। मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष से कार्तिकी अमावस्या तक, प्रतिमास, पुत्रप्राप्ति के उद्देश्य से लक्ष्मी-नारायण की पूजा और हवन का व्रत।

प्रकृतिपुरुष व्रत = चैत्रशुद्ध प्रतिपदा से एक वर्ष तक पुरुषसूक्त से अग्निपूजा और द्वितीया को लक्ष्मीनारायण की पूजा का व्रत।

प्रजापति व्रत = शाखायन ब्राह्मण के अनुसार दैनन्दिन जीवन में पालने के विधि निषेध

प्रतिमाव्रत = कार्तिक शुद्ध चतुर्दशी से एक वर्ष तक शिव-पार्वती की पिष्टप्रतिमा की पूजा तथा हवन का व्रत।

(प्रतिमाएँ तंदुल के पिष्ट की होती है।

प्रायश्चित्त = पापाचरण निमित्त स्वयमेव दण्डन करना ही प्रायश्चित्त है। प्रकार – कृच्छर प्रायश्चित्त चान्द्रायण, विष्णुस्मरण, प्रत्यान्माय।

प्रायोपवेशन = कर्म-संन्यासपूर्वक आमरण अन्नत्याग का व्रत।

प्रीतिव्रत = आषाढ से चार मास तक तेल उबटन आदि अभ्यंजन को वर्ज्य करना।

फलत्यागव्रत = मार्गशीर्ष शुद्ध तृतीया, अष्टमी, द्वादशी या चतुर्दशी से एक वर्ष तक सभी प्रकार के फलों का त्याग तथा शिव सेवा का व्रत।

फलयुग्मदान = मकरसंक्रांति के दिन नारियल की १२, जोड़ियों का दान।

फलव्रत = चातुर्मास्य की अवधि में कटहल कृष्मांड आदि महाफलों का आहार में त्याग।

फलहारिणी पूजा = ज्येष्ठ वद्य १४ की कालीपूजा (यह संज्ञा बंगाल में रूढ है)

फलाहार हरिप्रियव्रत = वसंत ऋतु में तथा शरद ऋतु में विशिष्ट तिथि से तीन महिने चतुर्मूर्ति अराधना का व्रत।

फाल्गुनोत्सव = फाल्गुन शुद्ध नवमी से पौर्णिमा तक या फाल्गुनी पौर्णिमा से वद्य पंचमी तक होने वाला एक लोकोत्सव। इसे वसंतोत्सव, हुताशनी महोत्सव या दोलायात्रा भी कहते हैं। इस उत्सव में अश्लीलता तथा अस्पृश्यता निषिद्ध नहीं होती।

बस्त त्रिरात्र व्रत = (बस्त = बकरी) चैत्र मास में तीन दिन श्वेत कमलों से सूर्य की पूजा और समाप्ति के दिन पांच बकरियों का दान।

बहुला व्रत = भाद्रपद वद्य चतुर्थी। इस तिथि को गाय और सिंह की वालुकामयी प्रतिमा के पूजन का व्रत स्त्रियां करती हैं।

बालेन्दुव्रत = चैत्रशुद्ध द्वितीया से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध द्वितीया को चंद्रकला के चित्र की पूजा का व्रत।

बिल्व त्रिरात्रिव्रत = ज्येष्ठ शुद्ध त्रयोदशी से पूर्णिमा तक तीन दिन बिल्ववृक्ष और उमामहेश्वर की उपासना का स्त्रीव्रत। व्रतावधि-एकवर्ष।

बिल्ववर्ति = अपने हाथों से काते हुए सूत से बनाई हुई तर्जनीप्रमाण दीपक की वर्ति (बात)। बिल्ववर्तिव्रत में इस प्रकार की १ लक्ष वर्तिकाओं से शिवजी की आरती होती है।

बुध-बृहस्पतिव्रत = श्रावणमास में बुधवार और गुरुवार को बुध तथा वृहस्पति के चित्र की पूजा का व्रत।

बुधव्रत = बुद्ध ग्रह विशाखा नक्षत्र में आने पर बुध की पूजा तथा नक्तभोजन का व्रत।

बुद्धवाप्तिव्रत = चैत्र वद्य प्रतिपदा से वैशाखी पौर्णिमा तक नरसिंह पूजा का व्रत। इसमें प्रतिदिन सरसों का होम होता है।

बृहद्गौरी व्रत = भाद्रपद कृष्ण तृतीया को बृहतीनामक एक लता तथा चन्द्रमा की पूजा का स्त्रीव्रत।

बृहद्यावक व्रत = गोमय में प्राप्त यव का पिष्ट गोमूत्र में पकाकर खाना। व्रतावधि १२, २४ या ३६ वर्ष।

बृहत्तपोव्रत = मार्गशीर्ष शुद्ध प्रतिपदा से एक वर्ष तक शिवोपासना का व्रत।

ब्रह्मचर्य = (ब्रह्म) वेदों के अध्ययन हेतु आचरणीय व्रत। जीवन के चार आश्रमों में प्रथम आश्रम की संज्ञा। दो प्रकार – नैष्ठिक और उपकुर्वाण

ब्रह्म सावित्रीव्रत = भाद्रपद शुद्ध त्रयोदशी से पौर्णिमा तक सवित्री और ब्रह्मा की आराधना का व्रत।

ब्रह्मोत्सव = चैत्र वद्य द्वितीया से एकादशी तक व्रजमण्डल में होने वाला एक महोत्सव। रामानुज सम्प्रदाय में यह सर्वप्रमुख महोत्सव माना जाता है।

ब्राह्मी प्रतिपद्लाभव्रत = चैत्रशुद्ध प्रतिपदा को ब्रह्मा की मूर्ति के साथ वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र, पुराण, आदि के ग्रन्थों की पूजा का व्रत। व्रतावधि- बारा वर्ष

भद्र = भाद्रपद शुद्ध षष्ठी के रविवार की संज्ञा। इस योग पर सूर्यपूजा का भद्रव्रत होता है।

भद्रचतुष्टय (या भद्रोपवास व्रत) = (१) त्रिपुष्कर या त्रिपुष्य – फाल्गुन शुद्ध द्वितीया से तीन महीनों तक व्रतचर्या व्रत (२) त्रिपुष्यक – ज्येष्ठ शुद्ध द्वितीया से तीन महीनों तक व्रतचर्या। (३) त्रिरात्र – भाद्रपद शुद्ध द्वितीया से तीन महीनों तक व्रतचर्या। (४) **विष्णुपद** – मार्गशीर्ष शुद्ध प्रतिपदा से तीन महीनों तक व्रतचर्या।

भद्रप्राप्तिव्रत = चैत्रशुद्ध द्वादशी को उपोषण तथा लक्ष्मी नारायण की प्रतिमा का पूजन।

भद्रा प्रवृत्ति = ज्योतिष के पंचांग में ११ करणों में से एक योग की संज्ञा है भद्रा। पंचांग में भद्रा का प्रारंभ (प्रवृत्ति) और समाप्ति (निवृत्ति) का काल दिया जाता है। भद्रा प्रवृत्ति में किसी कार्य का प्रारंभ निषिद्ध माना है। प्रत्येक मास में आठ भद्राएँ आती हैं। उनके नाम (रत्नकोश के अनुसार) हंसी, नन्दिनी, त्रिशिरा, सुमुखी, करालिका, वैकृति, रौद्रमुखी, चतुर्मुखी।

भद्राव्रत = कार्तिक शुद्ध तृतीया से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध तृतीया को गोमूत्र प्राशन तथा सत्तू के नक्तभोजन का व्रत।

भरणी उत्सव = फाल्गुन मास में भरणी नक्षत्र के दिन केरल में यह उत्सव काली मंदिरों में होता है। उत्सव में स्त्री-पुरुष अश्लील गीतों का (भरणीपाट्टु) का गायन करते है।

भवानीव्रत = प्रत्येक मास की शुद्ध तृतीया, अथवा पौर्णिमा-अमावस्या को भवानी की उपासना का व्रत।

भानुव्रत = किसी मास की सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक सप्तमी को एकभुक्त रहने का व्रत।

भीमद्वादशी (या कल्याणिनी) = भगवान् वासुदेव ने भीम को प्रथम बताया हुआ एक व्रत। माघ शुद्ध दशमी से द्वादशी तक विष्णुभक्ति का व्रत।

भीष्मपंचक व्रत = कार्तिक शुद्ध एकादशी से पौर्णिमा तक

भगवान् विष्णु की उपासना का व्रत। भीष्माचार्य ने इन पांच दिनों में युधिष्ठिर को धर्मोपदेश दिया था। उसके स्मरणार्थ यह व्रत होता है।

भूतमाता महोत्सव = वैशाख कृष्ण प्रतिपदा से अमावस्या तक देवी के मंदिर में यह लोकोत्सव होता था। इसका स्वरूप अभद्र था।

भृगुव्रत = मार्गशीर्ष वद्य द्वादशी से प्रत्येक वद्य द्वादशी को एक वर्ष तक भृगुनामक १२ देवताओं की पूजा का व्रत।

भैरव जयंती व्रत = कार्तिक वद्य अष्टमी (कालाष्टमी) को कालभैरव की उपासना का व्रत।

भोगावाप्तिव्रत = ज्येष्ठ प्रतिपदा से तीन दिनों तक विष्णुपुजा का व्रत।

भौमव्रत = वैशाख या मार्गशीर्ष मास के किसी भी मंगलवार (भौमवार) से एक वर्ष तक मंगलग्रह की पूजा का व्रत।

मंगलव्रत = चैत्र, श्रावण, आश्विन, या माघ मास की वद्य अष्टमी से आगामी शुद्ध अष्टमी तक (१५ दिन) देवी की उपासना तथा उपवास का व्रत।

मंगलागौरी = विवाह के उपरांत शिव-गणपति सहित गौरी की पूजा का स्त्रीव्रत। व्रतावधि पांच वर्ष।

मदनद्वादशी = चैत्रशुद्ध द्वादशी से एक वर्ष तक व्रतस्थ रहकर रति-मदन की आराधना होती है।

मदनमहोत्सव = चैत्र शुद्ध त्रयोदशी को भस्मीभूत मदन के पुनर्जन्म की तिथि होने के कारण उसकी प्रतिमा की पूजा का समारोह।

मंदारसप्तमी = माघ शुद्ध सप्तमी को आठ ब्राह्मणों को मंदार पुष्प समर्पण करने का व्रत। यह व्रत पंचमी से ही प्रारंभ होता है।

मधुसूदनपूजा = वैशाख शुद्ध द्वादशी को गुरु और मंगल सिंह राशि में, सूर्य मेष राशि में, तथा हस्त नक्षत्र और व्यतीपात होने पर विष्णुपूजा का व्रत।

मधूकपूजा = फाल्गुन शुद्ध तृतीया को उपवास और चतुर्थी को मधूक वृक्ष पर उमा भगवती की पंचोपचारों से पूजा का व्रत।

मनोरथ संक्रांति = मकरसंक्रान्ति से एक वर्ष तक सूर्यप्रतिमा की पूजा का व्रत।

मरीच सप्तमी = चैत्र शुद्ध सप्तमी को सूर्यपूजा और मरीचभक्षण (मरीच = मीरा के दाने) करने का व्रत।

मरुद्व्रत = चैत्रशुद्ध सप्तमी को ७ × ७ = ४९ दीपज्योतियाँ जलाकर मरुद्गणों की आराधना का एक व्रत।

मर्कटी व्रत = देखिये कुक्कुटी व्रत।

महत्तमव्रत = भाद्रपद शुद्ध प्रतिपदा को त्रिनेत्र तथा पंचमुख शिव भगवान् की उपासना का व्रत।

महानन्दा = माघ मास की नवमी तिथि की संज्ञा। पुण्यकृत्यों के लिये यह तिथि प्रशस्त मानी जाती है।

महानिशा = आश्विनी अमावस्या। बंगाल में इस तिथि को काली की पूजा होती है। अन्यत्र लक्ष्मीपूजंन होता है।

महासांतपन = एक कठोर प्रायश्चित्त व्रत। इसमें सात दिन तक क्रमशः गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी और दर्भोदक का आहार लेकर अंतिम दिन उपोषण होता है।

महाव्रत = (१) महानाम्नी व्रत के समान ब्रह्मचारी का एक व्रत। व्रतावधि-एकवर्ष। (२) सोमयाग के अन्तर्गत एक विशिष्ट विधि (३) कार्तिक पौर्णिमा या अमावस्या को उपोषण का व्रत। व्रतावधि १६ वर्ष।

महाव्रत (या गौरीतप) = मार्गशीर्ष अमावस्या का स्त्रीव्रत। व्रतावधि १६ वर्ष। मध्यारात्रि में मंदिर में जाकर शिव-पार्वती की पूजा इस में आवश्यक है।

महिषघ्नीव्रत = आषाढ शुद्ध अष्टमी को दुर्गा देवी की आराधना का व्रत।

महिषी दान = कार्तिकी एकादशी, संक्रान्ति, ग्रहण, जैसे मुहूर्त पर विद्वान् ब्राह्मण को भैस का दान देने का व्रत।

महेश्वर कृच्छ = एक प्रायश्चित्त व्रत। इसमें भिक्षान्न सेवन तथा गोमूत्र प्राशन होता है।

महोत्सव व्रत = चैत्र शुद्ध चतुर्दशी को शिवोपासना का व्रत। इसमें शिव की रथयात्रा होती है।

महोदधि अमावस्या = मार्गशीर्ष वद्य चतुर्दशी से युक्त अमावस्या। इस तिथि को महोदधि में स्नान होता है।

महाराज व्रत = शुद्ध या वद्य चतुर्दशी आर्द्रा, पूर्वा भाद्रपदा या उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र से युक्त होने पर शिव-पार्वती की उपासना का व्रत।

महाशिवरात्रि = प्रत्येक वद्य चतुर्दशी (त्रयोदशीयुक्त एवं मध्यरात्र्व्यापिनी) तिथि को शिवरात्रि कहा जाता है। माघ वद्य चतुर्दशी को महाशिवरात्रि संज्ञा है। इस तिथि को सर्वत्र शिवोपासना तथा उपोषण का व्रत होता है।

मातृकाव्रत = चैत्रशुद्ध नवमी को भैरव तथा ६४ योगिनियों की पूजा का व्रत।

मातृव्रत = आंश्विन मास में नवमी को मातृदेवता की पूजा का व्रत।

माधुकरी वृत्ति = भिक्षान्न पर उपजीविका करना। ब्रह्मचारी का यह एक व्रत है।

मासव्रत = मार्गशीर्ष से एक वर्ष तक प्रत्येक मास में नमक, घी, तिल आदि एक-एक पदार्थ का दान करने का व्रत।

मासशिवरात्रि = माघ वद्य चतुर्दशी से १२ वर्षो तक प्रत्येक वद्य चतुर्दशी को शिवलिंग की उपासना का व्रत।

मासर्क्षपौर्णिमासी व्रत = कार्तिकी पौर्णिमा से एक वर्ष तक यह व्रत होता है। इसमें कार्तिक मास में कृत्तिका रोहिणी नक्षत्र में, मार्गशीर्ष में मृगशीर्ष और आर्द्रा नक्षत्र में इस क्रम से प्रत्येक मास के नाम से युक्त ऋक्ष याने नक्षत्र में पौर्णिमा चन्दरा होने पर चन्द्र प्रतिमा की पूजा का व्रत होता है।

मासोपवास व्रत = आश्विन शुद्ध एकादशी (या अन्य मत

से आषाढ, श्रावण, भाद्रपद की (एकादशी) से एक मास तक उपवास. और विष्णु की आराधना का व्रत।

मैत्रकृच्छ्र = सांतपन प्रायश्चित्त का एक प्रकार।

मोदनव्रत = चैत्रशुद्ध सप्तमी को सूर्यपूजा का व्रत।

मोहिनी एकादशी = वैशाख शुद्ध एकादशी। इस तिथि को उपवास और विष्णुपूजा का व्रत होता है।

मौनी अमावस्या = माघ मास की अमावस्या। इस तिथि को माघस्नान की समाप्ति मौनपूर्वक त्रिवेणीसंगम (प्रयाग) में स्नान से होती है।

मुक्ताभरण व्रत = भाद्रपद शुद्ध सप्तमी को शिव-पार्वती की उपासना का व्रत। इसमें मोतियों से आसन को अलंकृत करते हैं।

मूलगौरीव्रत = चैत्र शुद्ध तृतीया शिव-गौरी के विवाह की तिथि मानी जाती है। अतः इस तिथि से एक वर्ष तक शिव-गौरी की उपासना प्रीत्यर्थ प्रत्येक शुद्ध तृतीया को अलग अलग मिष्टान्न का सेवन करते हैं।

मृगशीर्षव्रत = श्रावणवद्य प्रतिपदा को यह व्रत होता है। इस में मिट्टी के मृगशीर्ष की पूजा होती है।

यज्ञकृच्छ्र = एक प्रायश्चित्तात्मक विधि।

यतिसांतपन = एक प्रायश्चित्त व्रत। तीन दिन पंचगव्य और चौथे दिन कुशोदक पीकर प्रायोपवेशन इसका स्वरुप है।

यतिचांद्रायण = एक प्रायश्चित्त व्रत। एक महीनाभर हविष्य पदार्थ के केवल आठ ही ग्रास मध्याह्न में खाना।

यमतर्पण = आश्विन कृष्ण चतुर्दशी को पिता जीवित होते हुए भी उसके निमित्त तर्पण।

यमव्रत = कार्तिक वद्य १४ यमराज के निमित्त तर्पण।

यवमध्यचान्द्रायण = एक व्रत। अमावस्या से पौर्णिमा तक एक एक ग्रास बढाकर और पौर्णिमा से अमावस्या तक एक एक ग्रास घटाकर भोजन करना। यव की पत्ती का आकार दोनं ओर छोटा और मध्य में बडा होता है। इस कारण व्रत को 'यवमध्य' कहा है।

यावकव्रत = देखिए गोमूत्र यावक।

युगादिव्रत = चार युगादि तिथियों को क्रमशः लक्ष्मी-नारायण, शिवपार्वती, पितृगण, और सावित्री-व्रह्मा की उपासना का व्रत।

युगावतार व्रत = भाद्रपद वद्य त्रयोदशी द्वापरयुग के प्रारंभ की तिथि है। इस तिथि को विष्णु प्रतिमा की उपासना होती है।

रंभाजयंती = ज्येष्ठ शुद्ध द्वितीया। राजस्थान में यह उत्सव होता है।

रंभाचिरात्रिव्रत = (रंभा = कदली) ज्येष्ठ शुद्ध त्रयोदशी से तीन दिन तक रंभावृक्ष की आराधना तथा उमा-शंकर और कृष्ण-रुक्मिणी की पूजा का व्रत।

रटन्ती पूजा = (१) माघ वद्य चतुर्दशी को रटन्ती नामक देवी की पूजा। यह पूजा बंगाल में प्रचलित है। (२) माघवद्य चतुर्दशी को यमराज को १४ नामोंसे तर्पण देना।

रथोत्सव = आषाढ शुद्ध द्वितीया को पुष्यनक्षत्र होने पर कृष्ण, बलराम और सुभद्रा के प्रीत्यर्थ एक सामाजिक उत्सव।

रविनारायण व्रत = एकादशी के रविवार को सूर्योपासना का व्रत। यह उडीसा में प्रचलित है।

रसकल्याणिनी = माघशुद्ध तृतीया को ललिता देवी की उपासना का व्रत। इसमें प्रत्येक मास में दूध, घी, शक्कर, दही आदि एक एक पदार्थ भोजन में वर्ज्य होता है।

राज्यव्रत = ज्येष्ठ शुद्ध तृतीया से प्रत्येक शुद्ध तृतीया को प्राप्त मध्याह्न और सायं वायू, सूर्य, और चंद्र की पूजा का व्रत। व्रतावधि १, ३, ५ या १२ वर्ष।

राशिव्रत = कार्तिकी पौर्णिमा से एक वर्ष तक प्रत्येक पौर्णिमा को विशिष्ट प्रकार का दान देने का व्रत।

रुद्रलक्षवर्तिव्रत = वैशाख, श्रावण, कार्तिक यां माघ में से किसी एक मास में गाय के घी की एक लक्ष दीपज्योतियों से रुद्र की अर्चना का व्रत।

रुद्रव्रत = (१) ज्येष्ठ मास में शुद्ध और वद्य पक्ष की षष्ठी या चतुर्दशी से चार दिन तक सायंकाल में पंचाग्नि साधन का व्रत। (२) एक वर्ष तक एकभुक्त व्रत। (३) शुद्ध तृतीया से एक वर्ष तंक यव और गोमूत्र का सायंकाल सेवन करना।

रूपसंक्रांतिव्रत = संक्रांति के दिन सूर्यपूजा तथा गोदान का व्रत।

रूपसत्र = फाल्गुन वद्य अष्टमी और मूलनक्षत्र के योगपर इस व्रत का आरंभ होता है। चैत्र पौर्णिमा तक विष्णुपूजा का व्रत।

रूपावाप्ति व्रत = (१) फाल्गुन वद्य प्रतिपदा से चैत्र पौर्णिमा तक शेषशायी विष्णु की आराधना का व्रत। (२) किसी भी पंचमी को दशविश्वदेवों की पूजा का व्रत।

रोटक व्रत = (रोटक = मोटी रोटी) = श्रावण शुद्ध प्रतिपदा को सोमवार होने पर या श्रावण शुक्लपक्ष के प्रथम सोमवार को शिव की उपासना का व्रत। इसमें पांच रोटक नैवेद्य में आवश्यक माने है।

रोहिणीचन्द्रशयनव्रत = सोमवार, पौर्णिमा और रोहिणीनक्षत्र का योग होने पर विष्णुपूजा तथा रोहिणी-चंद्र की मूर्ति सहित शय्या का दान।

रोहिणीव्रत = पंचांग में जिस दिन रोहिणी नक्षत्र का निर्देश होगा उस दिन रोहिणी की मूर्ति की पूजा का व्रत। (रोहिणी श्रीकृष्ण का जन्मनक्षत्र होने के कारण उस का विशेष महत्त्व माना जाता है।

रोहिणीस्नान = रोहिणी नक्षत्र के दिन चावल की राशि पर स्नान तथा रोहिणी और प्रजापति की पूजा का व्रत।

लक्षनमस्कार व्रत = आषाढ शुद्ध एकादशी से कार्तिक पौर्णिमा तक विष्णु भगवान् को एक लक्ष नमस्कार करने का व्रत।

लक्षपद्मव्रत = किसी भी मास के शुक्ल पक्ष में गुरु-शुक्र का अस्त न हो ऐसे दिन लक्ष संख्या पूरी होने तक सूर्यसहित विष्णु की पूजा का व्रत। अंत में सुवर्णपद्म का दान होता है।

लक्षपूजा = किसी भी मास की वद्य चतुर्दशी से विविध प्रकार के पुष्प प्रत्येकशः एक लक्ष (या सब मिलाकर एक लक्ष) शिव-पार्वती या लक्ष्मीनारायण को मंत्रोच्चार सहित समर्पण करना।

लक्षप्रदक्षिणा व्रत = आषाढ शुद्ध एकादशी से कार्तिक शुद्ध एकादशी तक अग्नि, गाय, ब्राह्मण, औदुम्बर, अश्वत्थ, पीपल, तुलसी, हनुमान, विष्णु आदि को प्रत्येकशः एक लक्ष प्रदक्षिणा का व्रत।

लक्षवर्तिव्रत = वैशाख, कार्तिक या माघ मास की पौर्णिमा को समाप्ति होने की दृष्टि से तीन मास पूर्व इस व्रत का प्रारंभ होता है। प्रतिदिन भरपूर दीपक जलाकर एकलक्ष दीपकों की संख्या समाप्ति के दिन पूर्ण करते है।

लक्षेश्वरीव्रत = देखिए कोटिसंवत्सरव्रत

लक्ष्मीनारायणव्रत = कार्तिक या फाल्गुन मास की पौर्णिमा से एक वर्ष तक प्रत्येक पौर्णिमा को व्रतस्थ होकर लक्ष्मी-नारायण के विविध स्वरूप में पूजा का व्रत।

लक्ष्मीपूजन व्रत = (१) आश्विनी अमावस्या को दीपावली महोत्सव के अन्तर्गत लक्ष्मी पूजन का व्रत संपूर्ण भारत में होता है। (२) चैत्र शुद्ध पंचमी को लक्ष्मी का मृत्यू लोक में आगमन हुआ। उस निमित्त लक्ष्मीपूजन होता है।

लक्ष्मीप्रदव्रत = कार्तिक वद्य सप्तमी से दशमी तक दूध, बिल्वपत्र और कमल तन्तु का सेवन तथा केशव की पूजा का व्रत।

लक्ष्मीव्रत = (१) प्रत्येक पंचमी को उपवास और लक्ष्मी की पूजा। (२) चैत्रशुद्ध तृतीया से एक वर्ष तक प्रतिमास तीन दिन व्रतस्थ होकर लक्ष्मी की आराधना। (३) मार्गशीर्ष मास के प्रत्येक गुरुवार को लक्ष्मी नारायण की पूजा।

लवणदान = मार्गशीर्ष पौर्णिमा को मृगशीर्ष नक्षत्र होने पर नमक का दान करने का व्रत।

लवणसंक्रान्तिव्रत = प्रत्येक मास की संक्रान्ति को सूर्य की पूजा सहित नमक का दान देने का व्रत।

लक्षणार्द्राव्रत = भाद्रपद वद्य अष्टमी को आर्द्रा नक्षत्र होने पर उमा महेश्वर की उपासना का यह व्रत होता है।

लाजाव्रत = आश्विनी पौर्णिमा को ब्राह्मण को लाजा का प्रसाद समर्पण करने का व्रत।

लिंगव्रत = कार्तिकशुद्ध चतुर्दशी से प्रत्येक चतुर्दशी को विविध पदार्थों के शिवलिंग बनाकर उनकी पूजा का व्रत। व्रतावधि एक वर्ष।

लिंगार्चन व्रत = कार्तिक शुद्ध त्रयोदशी को शनिवार होने पर शिवलिंग की प्रदोषपूजा का व्रत।

वंञ्जुलिव्रत = आठ महाद्वादशीयों में से एक। यह एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक या अधिक समय अर्थात् संपूर्ण अहोरात्र तक होती है। इसमें प्रथम दिन उपोषण और दूसरे दिन नारायण पूजा तथा पारणा होती है।

वज्रकृच्छ्र = प्रायश्चित्त का एक प्रकार। इसमें एक दिन गोमूत्र में पकाया यव खाकर रहते है।

वटसावित्रीव्रत = ज्येष्ठशुद्ध त्रयोदशी से पौर्णिमा तक यह त्रिरात्रव्रत स्त्रियां करती हैं। इसमें पौर्णिमा को पति के दीर्घायु के हेतु वटवृक्ष का पूजन होता है।

वरुणव्रत = (१) भाद्रपद शुद्ध प्रतिपदा से पौर्णिमा तक वरुणपूजा का व्रत। (२) रातभर जल में खड़े रहकर दूसरे दिन गोप्रदान करना।

वर्णव्रत = चैत्रशुद्ध प्रतिपदा से चार महीनों तक वासुदेव, संकर्षण, प्रदुम्न और अनिरुद्ध इस चतुर्मूर्ति की पूजा तथा चार वर्णों के लोगो को उनके उद्योग के अनुकूल साधनों का दान देने का व्रत।

वर्षपर्वत व्रत = वर्ष = व्रत प्रदेश को सीमांकित करने वाले पर्वतों की संज्ञा। – हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, चैत्र, कर्णी और शृंगी, इन सात वर्षपर्वतों का निर्देश प्राचीन ग्रंथों में होता है। चैत्रशुद्ध नवमी को वर्षपर्वतों की पूजा का व्रत होता है जिसे **'वर्षव्रत'** कहते हैं।

वसुव्रत = चैत्रशुद्ध अष्टमी से पौर्णिमा तक उपवास का व्रत। इस व्रत में अष्ट वसु नामक देवों की पूजा होती है। (अष्टवसु = द्रोण, ध्रुव, प्राण, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु। (श्रीमद् भागवत के अनुसार)

वह्नि महोत्सव = कार्तिक शुद्ध पक्ष की षष्ठी को मंगलवार होने पर कार्तिकस्वामी की पूजा का व्रत।

वह्निव्रत = चैत्र अमावस्या से एक वर्ष तक प्रत्येक अमावस्या को अग्निपूजा तथा तिलहोम का व्रत।

वरलक्ष्मीव्रत = श्रावण शुद्ध पक्ष के अंतिम शुक्रवार को वरलक्ष्मी की आराधना का व्रत। दक्षिण भारत में आषाढ शुक्ल पक्ष के अंतिम शुक्रवार को यह व्रत होता है।

वरव्रत = सात दिन उपवास और अंत में घृतपूर्ण पात्र का दान।

वाणिज्य लाभ व्रत = मूल तथा पूर्वाषाढा नक्षत्र के दिन व्यापारी ने करने योग्य एक व्रत। इसमें विष्णु, वरुण और चंद्र देवताओं के प्रीत्यर्थ हवन और पूजन होता है।

वायव्यकृच्छ्र = एक प्रायश्चित्त व्रत। एक हाथ की अंजलि में जितना अन्न समाये, उतने ही अन्न का सेवन करना।

वायुव्रत = ज्येष्ठ शुद्ध चतुर्दशी से प्रत्येक चतुर्दशी को वायुपूजा और उपोषण का व्रत।

वारलक्ष्मीव्रत = श्रावण शुद्ध चतुर्दशी या पौर्णिमा को या उस अवधि में आने वाले शुक्रवार को लक्ष्मी की पूजा का व्रत।

वारिव्रत = चैत्र, ज्येष्ठ आश्विन, पौष (या माघ) इन चार महीनों में अयाचित आहार का सेवन करना।

विद्यावाप्तिव्रत = माघ शुद्ध प्रतिपदा से एक मास तक हयग्रीव की उपासना का व्रत।

विद्याव्रत = चैत्रशुद्ध प्रतिपदा से एक वर्ष (या १२ वर्षों तक) प्रतिपदा को चौदह विद्याओं की पूजा का व्रत।

विधिपूजा = विधि (याने ब्रह्मा) की गुरुवार की पौष शुद्ध

द्वितीया को या माघी अमावस्या को पूजा का व्रत।

विनायक व्रत = फाल्गुन शुद्ध चतुर्थी से चार मास तक प्रत्येक शुद्ध चतुर्थी को नक्त भोजन का व्रत (नक्त = सायंकाल)

विरूपाक्षव्रत = पौष शुद्ध चतुर्दशी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध चतुर्दशी को शिवपूजा का व्रत।

विश्वरूप व्रत = अष्टमी या चतुर्दशी के दिन शनिवार और रेवतीनक्षत्र होने पर शिव की उपासना का व्रत।

विश्वव्रत = (१) प्रत्येक दशमी को एकभुक्त रहने का व्रत। (२) प्रत्येक एकादशी को विश्वेदेवों की पूजा का व्रत।

विष्णु त्रिमूर्तिव्रत = ज्येष्ठशुद्ध त्रयोदशी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध त्रयोदशी को वायु- चन्द्र, सूर्य स्वरूप विष्णु की प्रातः मध्याह्न और सायंकाल पूजा का व्रत।

विष्णु त्रिरात्र व्रत = कार्तिक शु. नवमी का एक व्रत।

विष्णुदेवकी व्रत = कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध प्रतिपदा को व्रतस्थ होकर विष्णुपूजा करने का व्रत।

विष्णुदोलोत्सव = चैत्रशुद्ध पंचमी को विष्णु की आराधना का व्रत।

विष्णुपंचक = कार्तिक मास के अंतिम पांच दिनों को विष्णुपंचक कहते हैं। इन पांच दिनों में उपवास तथा राधा-दामोदर की आराधना होती है।

विष्णुपदव्रत = आषाढ में पूर्वाषाढा नक्षत्र पर इस व्रत का प्रारंभ होता है। बाद में श्रावण-उत्तराषाढा, भाद्रपद-पूर्वाषाढा, फाल्गुन में पूर्वा फाल्गुनी और चैत्र में उत्तराफाल्गुनी इन योगों पर विष्णु के त्रिचरणों की आराधना होती है।

विष्णुलक्ष नमस्कारव्रत = आषाढ शुद्ध एकादशी से कार्तिकी पौर्णिमा तक प्रतिदिन नियत संख्या मे विष्णु के प्रीत्यर्थ योगिक नमस्कारों की एक लक्ष संख्या पूर्ण करना। इसी प्रकार आषाढ से कार्तिक तक की अवधि में "अनन्तमव्ययं विष्णुं लक्ष्मीनारायणं हरिम्। जगदीश नमामि त्वां प्रदक्षिण पदे पदे।" इस मंत्र के साथ एक लक्ष प्रदक्षिणा का व्रत भी होता है।

विष्णुलक्षवर्तिव्रत = कार्तिक, माघ, या वैशाख मास की एकादशी से एक वर्ष तक की अवधि में प्रतिदिन नियत संख्या में बत्तियां जलाकर एक लक्ष संख्या पूरी करने का व्रत। दक्षिण भारत में इसका प्रचार है।

विष्णुव्रत = (१) विष्णुदेवकी व्रत, (२) विष्णुदोलोत्सव, (३) विष्णुपंचकव्रत, (४)-विष्णुपदव्रत, (५) विष्णुप्राप्तिद्वादशी, (६) विष्णुयाग, (७) विष्णुलक्षनमस्कारव्रत, (८) विष्णुलक्ष प्रदक्षिणाव्रत, (९) विष्णुलक्षवर्तिव्रत, (१०) विष्णुशंकरव्रत, (११) विष्णुशयनव्रत (१२) विष्णुशृंखलव्रत, (१३) विष्णुसप्तमी।

विष्णुशंकरव्रत = भाद्रपद या आश्विन मास में मृगशीर्ष, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा और ज्येष्ठा इनमें से किसी एक नक्षत्र का योग होने पर विष्णु और शंकर की प्रतिमा की पूजा का व्रत।

विष्णु शयनव्रत = आषाढशुद्ध एकादशी (शयनी एकादशी) से त्रयोदशी तक विष्णु के शयनारंभ निमित्त आराधना का व्रत।

विष्णुशृंखल = एकादशी, द्वादशी और श्रवण नक्षत्र इन तीनों का योग होने पर विष्णुपूजा का व्रत।

वीरव्रत = किसी नवमी तिथि से एक वर्ष तक शिव या पार्वती की उपासना का व्रत।

वृंताकत्याग व्रत = भरणी या मघा नक्षत्र की रात्रि से वृन्ताकफल (बैंगन) का त्याग करने का व्रत। यह व्रत ३ या ६ महीने या, एक वर्ष तक या आमरण भी होता है।

वृषभव्रत = (१) शुक्ल अष्टमी को अलंकृत बैल का दान। (२) ज्येष्ठ अमावस्या को बैलों का तथा काष्ठमयी बैल की प्रतिमा की, धर्मप्रतीक के स्वरूप में पूजा का व्रत।

वृषव्रत = कार्तिकी पौर्णिमा को अथवा रेवती नक्षत्र युक्त पौर्णिमा को वृषोत्सर्ग (सांड समर्पण करना)।

वेदव्रत = (१) महानाम्नी, महाव्रत, उपनिषद्व्रत और गोदान। ब्रह्मचारी के इन चार व्रतों की संज्ञा।

वैतरणीव्रत = मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी से एक वर्ष तक तीन चातुर्मास्यों में यह व्रत पूर्ण होता है। अंत में गोप्रदान होता है। वैतरणी अर्थात् यमलोक की भयंकर नदी को लांघने की शक्ति देने वाला व्रत।

वैनायक व्रत = प्रत्येक चतुर्थी तिथि को नक्तभोजन तथा गणेश की आराधना।

वैशाखी = वैशाख शुद्ध प्रतिपदा। इस तिथि को उत्तर भारत में आनंदोत्सव मनाया जाता है। वैशाखी पौर्णिमा को दान धर्म करने का व्रत

वैष्णवव्रत = आषाढ के प्रारंभ से चार मास तक प्रातःस्नान का व्रत।

व्रत = पाशुपत मतानुसार – भस्मस्नान, भस्मशयन, उपहार, जप और प्रदक्षिणा।

व्रतचर्या = पाशुपतमतानुसार प्रधान विधि के दो प्रकारों में से एक। इसमें अनुस्नान, भैक्ष्य, उच्छिष्टभोजन, निर्माल्यसेवन, लिंगधारण, इत्यादि गुणभूत विधियों का अन्तर्भाव होता है।

व्याहतिव्रत = चैत्रशुद्ध प्रतिपदा से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध प्रतिपदा से छह दिनों तक क्रमशः गोमूत्र, गोमय, दुग्ध, दधि, घृत और कुश मिश्रित जल का सेवन तथा सातवें दिन अनशन का व्रत।

शंकरार्कव्रत = रविवार की अष्टमी को शिव के दक्षिणनेत्र की अर्थात् सूर्य की प्रतिमा के पूजन का व्रत।

शक्रव्रत = आश्विनी पौर्णिमा को उपवास तथा सपरिवार इंद्र की पूजा का व्रत। व्रतावधि एक वर्ष।

शतभिषक्स्नान = धनिष्ठा नक्षत्र के दिन व्रतस्थ व्यक्ति को १०० जलपात्रों में शंख मौक्तिक सहित रखे हुए जल से स्नान तथा चंद्र शतभिषक्-नक्षत्र आदि की पूजा का व्रत।

शत्रुनाशकव्रत = कृत्तिका या भरणीनक्षत्र के दिंन वासुदेव

की पूजा तथा ब्राह्मणों को आयुध दान।

शनिप्रदोष व्रत = त्रयोदशी और शनिवार का योग होने पर शिवपूजा का यह व्रत प्रारंभ होकर १२ मास या वर्ष तक होता है।

शर्वोपासव्रत = प्रत्येक मास की दोनों अष्टमी और चतुर्दशी तिथियों को उपवास और शिवोपासना का व्रत।

शाक्वरी व्रत = विद्याध्ययन के अंत में महानाम्नी (देखिये) नामक साममंत्रों का पारायण करने का व्रत। महानाम्नी ऋचाएँ शक्वर छंद में होने के कारण उन्हें 'शाक्वरी' कहते हैं।

शांतिव्रत = कार्तिक शुद्ध पंचमी से एक वर्ष तक नृसिंह या शेषशायी विष्णु भगवान् की पूजा का व्रत। इस में खट्टे पदार्थ वर्जित होते है।

शांभरायणीव्रत = कृत्तिका, मृगा शीर्ष, पुष्य इत्यादि मास नाम के सूचक नक्षत्र पर १२ मासों में शांभरायणी नामक देवी की रौप्य प्रतिमा सहित अच्युत भगवान की पूजा का व्रत। व्रतावधि ७ वर्ष।

शांबरी = पौष शुद्ध नवमी। देखिये ध्वजनवमी।

शिवनक्तभोजन = प्रत्येक कृष्ण अष्टमी एवं चतुर्दशी को नक्तभोजन और शिवपूजा का व्रत।

शिवनक्षत्र व्रत (या शैवनक्षत्रव्रत) = फाल्गुन शुक्ल पक्ष में हस्त नक्षत्र के दिन शिवप्रतिमा के अवयवों पर २७ नक्षत्रों की धारणा करते हुए आराधना तथा तैल-लवणवर्जित नक्त भोजन का व्रत।

शिवपवित्र व्रत = आषाढी और कार्तिकी पौर्णिमा को शिवाराधना का व्रत।

शिवरथव्रत = हेमंत ऋतु में चांवल के पिष्टमय लिंग की ४ बैलों के रथ में शोभायात्रा।

शिवरात्रि = देखिये महाशिवरात्रि।

शिवशयनव्रत = आषाढी पौर्णिमा को शिवभगवान् शयन करते हैं। उस निमित्त उत्सव मनाना।

शिशुचान्द्रायण = चान्द्रायण व्रत या प्रायश्चित्त का एक सुकर प्रकार।

शीतलाव्रत = श्रावण शुद्ध या वद्य सप्तमी को शीतलादेवी की पूजा और कुमारिका भोजन का व्रत।

शीलव्रत = प्रत्येक तृतीया को अग्निपक्व अन्न का सेवन न करने का व्रत।

शीलावाप्तिव्रत = मार्गशीर्ष पौर्णिमा से एक मास तक वराहमूर्ति की पूजा का व्रत।

शुक्रव्रत = शुक्रवार को ज्येष्ठा नक्षत्र होने पर नक्त भोजन। इस योग पर सात बार शुक्रव्रत होता है।

शूद्रकृच्छ् = एक प्रायश्चित्त, जो शूद्र का उच्छिष्ट भक्षण करने पर किया जाता है।

शुद्धिव्रत = शरद ऋतु के अंतिम पांच दिनों में उपवास और विष्णुपूजा का व्रत।

शूलप्रदान व्रत = प्रत्येक अमावस्या को उपवास और पिष्टशूल का दान।

शैलव्रत = चैत्रशुद्ध प्रतिपदा से सात दिनों तक क्रमशः महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र इन सात कुलपर्वतों की (अथवा किसी एक पवित्र पर्वत की) पूजा करने का व्रत।

शौर्यव्रत = आश्विन शुद्ध सप्तमी से नवमी तक उपवास तथा दुर्गादेवी की उपासना का व्रत।

श्यामशबल = एक दिव्य। देखिये अग्निपानीय।

श्रावणिकाव्रत = मार्गशीर्ष शुद्ध अष्टमी और चतुर्दशी को ब्राह्मण और कुमारिकाओं को भोजन देने का व्रत।

श्रीप्राप्तिव्रत = वैशाख वद्य प्रतिपदा से एक वर्ष तक लक्ष्मीनारायण की पूजा का व्रत।

श्रीव्रत = (१) चैत्रशुद्ध तृतीया से पंचमी तक लक्ष्मी की उपासना का व्रत। इसमें श्री सूक्त के मंत्रों से कमल तथा बिल्वपत्रों का हवन होता है। (२) श्री-अक्षर की लक्ष्मी के नामोच्चारण सहित पूजा तथा श्रीमंत्र के जाप का व्रत। व्रतावधि सोलह वर्ष।

षण्मूर्तिव्रत = चैत्र शुद्ध षष्ठी से प्रत्येक षष्ठी तिथि को नक्त भोजन और प्रत्येक ऋतु में मधुर अम्ल आदि एक एक रस को वर्ज्य करने का व्रत।

षष्ठीव्रत = षष्ठी तिथि को मंगलवार होने पर सूर्यपूजा का व्रत। जैन षष्ठी व्रत में छह वर्षों तक श्रावण शुद्ध षष्ठी को उपवास होता है।

संकटहर गणपति व्रत = माघ वद्य चतुर्थी को गणेश उपासना का व्रत।

संपत् शनिवार = श्रावण मास का शनिवार। इस दिन एकभुक्त होकर हनुमान तथा लक्ष्मीनृसिंह की उपासना की जाती हैं। फल- सम्पत्ति का लाभ।

सभादीपदान = श्रावण शुद्ध पौर्णिमा को ब्राह्मणों के उपाकर्म में दीप का दान।

सत्कुलावाप्तिव्रत = मार्गशीर्ष शुद्ध प्रतिपदा से तीन तीन द्रव्यों से विष्णु भगवान की पूजा का व्रत। उत्तम कुल में जन्म पाने की कामना से यह व्रत होता है।

सत्यनारायण व्रत = बंगाल एवं महाराष्ट्र में प्रचलित एक लोकप्रिय विष्णुपूजाव्रत।।

सप्तर्षिव्रत = चैत्र शुक्ल पक्ष में सात दिन क्रमशः मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य पुलह, क्रतु और वसिष्ठ इन सप्तर्षियों की क्रमशः एकेक दिन पूजा का व्रत।

सप्तलोकव्रत = शुद्ध सप्तमी को भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य इन सप्त लोकों की पूजा का व्रत। अपरसंज्ञा सप्तमी लोकव्रत।

सप्त सप्तमी व्रत = इसका प्रारंभ उत्तरायण के शुक्लपक्ष में रविवार को पुंक्षत्र होने पर होता है। सात शुद्ध सप्तमी तिथियों तक पंचमी से सप्तमी तक व्रतचर्या होती है।

सप्तसागर व्रत = चैत्रशुद्ध प्रतिपदा से सात दिनों तक, सुप्रभा, कांचनाक्षा, विशाला, मानसोद्भवा, मेघनादा, सुवेणु, विमलोदका नामक सात देवताओं की क्रमशः पूजा का व्रत। व्रतावधि-एक वर्ष।

समुद्रव्रत = वर्ष प्रतिपदा से सात दिनों तक सात समुद्रों की एकैक्कशः विधियुक्त पूजा का व्रत।

सरस्वतीपूजन = आश्विन मास के नवरात्रोत्सव में मूल नक्षत्र पर आवाहन, पूर्वाषाढा नक्षत्र पर स्थापना, उत्तराषाढा पर पूजा और श्रवण नक्षत्र पर विसर्जन।

सर्वकामव्रत = (1) मार्गशीर्ष शुद्ध एकादशी से एक वर्ष तक चंद्र, मंगल, सूर्य आदि ११ देवताओं की पूजा का व्रत। (2) माघ वद्य चतुर्थी को पितृपूजा का व्रत।

सर्वकामावाप्तिव्रत = कृत्तिका नक्षत्र युक्त कार्तिकी एकादशी से एक वर्ष तक प्रत्येक पौर्णिमा को कृष्णोपासना का व्रत।

सर्वप्रायश्चित्त = जीवन भर में सहेतुक या अहेतुक किये हुए पातकों का निवेदन वेदज्ञानी विद्वानों के समक्ष करना और उनके द्वारा वताया गया प्रायश्चित्त लेना, पापमुक्तता का अभिवचन उनसे पाना यह इस धार्मिक विधि का स्वरूप है।

सर्वफलत्याग = किसी भी मास की शुद्ध ३, ८, १२ या १४ तिथि से एक वर्ष तक पायस अन्न से ब्राह्मण भोजन करने का एक व्रत। व्रतावधि में व्रतस्थ व्यक्ति विशिष्ट धान्य, फल आदि का सेवन नहीं करता।

सर्वव्रत = शनिवार को शुद्ध त्रयोदशी होने पर शिवपूजा तथा उपवास का व्रत।

सर्वाप्तिव्रत = देखिये चतुर्मूर्तिव्रत।

सर्वार्तिहरव्रत = फाल्गुन शुद्ध चतुर्दशी को उपवासी रहते हुए संपूर्ण दिन सूर्याभिमुख खड़े रहना। पौर्णिमा को व्रत की पारणा होती है।

सर्षपव्रतसप्तमी = सात सप्तमी तिथियों को क्रमशः एक से सात सर्षप (सरसों) के दाने पंचगव्य में डालकर निगलने का व्रत।

सागरव्रत = वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस चतुर्व्यह को चार सागरों का प्रतीक मानकर, उनके प्रीत्यर्थ चार जलपूर्ण पात्रों की पूजा का व्रत। चातुर्मास्य के चार महीने यह व्रत होता है।

सांतपन = एक कठोर प्रायश्चित्त व्रत। इसका कालावधि दो दिनों का होता है। महासांतपन, अतिसांतपन आदि इसके प्रकार होते हैं।

सारस्वत व्रत = (१) वर्ष प्रतिपदा से सात दिनों तक, सुप्रभा, कांचनाक्षी, विशाला, मानसी, त्रिनादा सुवेणु और विमलोदका इन सात नाम रूपों से सरस्वती (गायत्री, सावित्री) देवता की आराधना का व्रत। (२) फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदा से सप्तमी तक भी यह व्रत होता है।

सार्वभौमव्रत = कार्तिक शुद्ध दशमी से एक वर्ष तक प्रतिमास शुद्ध दशमी को विविध पुष्पों से दिशाओं के पूजन का व्रत। साम्राज्य प्राप्ति के हेतु यह व्रत राजा को करना चाहिये।

सीताव्रत = चतुर्थी को एकभुक्त रहने का व्रत।

सीमोल्लंघन = आश्विन शुद्ध दशमी को ग्रामसीमा का उल्लंघन।

सुकुल-त्रिरात्रिव्रत = मार्गशीर्ष मास में तीन दिनों को स्पर्श करने वाली तिथि को त्रिविक्रम की पूजा का व्रत। इसमें त्रिमधुर, त्रिलोह, त्रिवर्ण पुष्प का उपयोग होता है।

सुखव्रत = (१) किसी भी कृष्ण सप्तमी को उपवास और अष्टमी को नक्त भोजन। (२) किसी भी शुद्ध चतुर्थी को मंगलवार होने पर मंगल ग्रह की पूजा का व्रत। (३) किसी भी अष्टमी को ऋषिपूजा का व्रत (४) वर्ष के अंतिम दिन गोदान का व्रत।

सुगतिपौर्णिमासीकल्प = फाल्गुनी पौर्णिमा को लक्ष्मी-केशव मूर्ति की पूजा नक्त भोजन (तैल-लवण वर्जित) और नास्तिक पाखण्डियों से अभाषण का व्रत।

सुरचान्द्रायण = एक प्रायश्चित्त व्रत। इसमें संपूर्ण मास में मात्र २४० कवल (कौर अथवा निवाला अन्न) ग्रहण किया जाता है।

सुवर्णकृच्छ्र = एक प्रायश्चित्त। इसमें विशिष्ट संख्या में सुवर्ण मुद्राओं का दान होता है।

सुवर्णगौरीव्रत = हरितालिका या ज्येष्ठा-गौरी व्रत के समान एक स्त्रीव्रत। भाद्रपद शुद्ध तृतीया को गौरी-गणपति की पूजा इस व्रत में होती है।

सुव्रत = चैत्र शुद्ध अष्टमी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध अष्टमी को अष्ट वसुओं का पूजन इस व्रत में होता है।

सुवसंतक = वसंत ऋतु का गीत-नृत्यमय आनन्दोत्सव।

सोमयानव्रत = गोरसपान का एकव्रत। प्रथम सप्ताह में चारों स्तनों से निकाला हुआ बाद में प्रत्येक सप्ताह में तीन, दो और एक स्तन से निकला हुआ गोरस पीकर निर्वाह करना तथा अंत तीन दिन उपोषण करना इस व्रत का स्वरूप है।

सोमव्रत = सोमवार को शुद्ध द्वितीया, अष्टमी, नवमी, अमावस्या, वैशाखी पौर्णिमा, माघ शुद्ध सप्तमी होने पर अन्यान्य प्रकार से शिवोपासना के व्रत।

सौख्यव्रत = माघ मास की अष्टमी, एकादशी या चतुर्दशी को एकभुक्त रहने का व्रत।

सौभाग्यव्रत = (१) फाल्गुन तृतीया से एक वर्ष तक प्रत्येक तृतीया को लवणवर्जित भोजन करना। (२) चैत्र पंचमी को चन्द्रपूजा। (३) कार्तिक पौर्णिमा को सभी नक्षत्रों सहित नक्षत्रेश चंद्र की पूजा।

सौभाग्यशयनव्रत = चैत्र शुद्ध तृतीया से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध तृतीया को शिव-गौरी की उपासना का व्रत।

सौभाग्यसंक्रान्तिव्रत = अयन, विषुव, संक्रान्ति, व्यतीपात योग और संक्राति के दिन सूर्योपासना का स्त्रीव्रत। व्रतावधि एक वर्ष।

सौभाग्यसुन्दरीव्रत = मार्गशीर्ष या माघ वद्य तृतीया से एक वर्ष तक प्रत्येक वद्य तृतीया को गौरीपूजा का व्रत।

सौभाग्यावाप्तिव्रत = माघ वद्य प्रतिपदा से एक मास तक श्रीकृष्ण की उपासना का व्रत।

सौम्यकृच्छ्र = एक प्रायश्चित्तात्मक व्रत। इसमें छह दिनों तक एकमात्र विशिष्ट पदार्थ का मित आहार होता है।

सौरव्रत =प्रत्येक शुद्ध सप्तमी को सूर्यपूजा और उपवास। व्रतावधि एक वर्ष।

स्त्रीपुत्रकामावाप्तिव्रत = कार्तिक मास में एकभुक्त रहकर सूर्योपासना का व्रत।

स्नेहव्रत = आषाढ से आश्विन तक चार महीने, स्नान के समय तेल न लगाना और केवल दुग्ध घृत का आहार करना।

स्वर्णगौरीव्रत = श्रावण शुद्ध तृतीया को गौरीशंकर की आराधना का स्त्रीव्रत। व्रतावधि एक, आठ या सोलह वर्ष।

स्वस्तिकव्रत = आषाढ शुद्ध एकादशी से एक, तीन या चार मासों तक विष्णु मंदिर में १०८ (या सहस्र, दशसहस्र) रंगबिरंगे स्वस्तिक चिह्नों की लक्ष्मी-नारायण की धारणा से, पूजा का व्रत।

हरकालीव्रत = माघ शुद्ध तृतीया से एक वर्ष प्रत्येक शुद्ध तृतीया को काली की उपासना का स्त्रीव्रत।

हरिक्रीडायनव्रत = कार्तिक या वैशाखी मास की शुद्ध द्वादशी को रत्नजड़ित नृसिंहमूर्ति की पूजा का व्रत।

हरिकालीव्रत = भाद्रपद शुद्ध तृतीया को सात धान्यों के अंकुरों में स्थापित काली की पूजा का व्रत।

हरितालिकाव्रत = भाद्रपद शुद्ध तृतीया को शिव-पार्वती की सौभाग्य प्राप्ति हेतु पूजा का स्त्री व्रत। इसमें शिवलिंग और पार्वतीमूर्ति वालुका से बनाई जाती है।

हरिव्रत = पौर्णिमा और अमावस्या को जय नाम से विष्णुमूर्ति की पूजा का व्रत।

हरिपंचक व्रत = मार्गशीर्ष शुद्ध एकादशी से पौर्णिमा तक एकभुक्त रहकर विष्णु की आराधना का व्रत।

हरगौरीव्रत = हस्त नक्षत्र में सूर्य का प्रवेश होने पर १४ दिनों तक हर, गौरी, हेरंब दैवतों की आराधना का व्रत। व्रतावधि १४. वर्ष।

हर-त्रिरात्रिव्रत = बिल्ववृक्ष की छाया में तीन दिन तक उपवासी रहकर एक लक्ष शिवमंत्रों का जय।

हिमपूजा = पौर्णिमा की रात में चन्द्र की विष्णु के वामनेत्र की भावना से पूजा का व्रत। इसमें हिमयुक्त पदार्थों का उपयोग प्रशस्त माना है। हिम (बर्फ) के अभाव में "हिम" शब्द का प्रयोग करते हुए भोग्य पदार्थों का दान होता है।

* * *

* * *

व्रत-तिथि

इस शब्दावली में विशिष्ट व्रतों से संबंधित तिथियों के नामों का संकलन किया गया है। यह संकलन चैत्रादि मासों के अनुक्रम से किया है। पंचांगों में इन व्रतों का निर्देश तिथि के साथ मिलता है।

पौरुष प्रतिपद् = चैत्र शुद्ध प्रतिपदासे एक वर्ष तक प्रतिमास दोनों प्रतिपदाओं को विष्णुपूजा और पुरुषसूक्त-पठन का व्रत।

बलिप्रतिपदा = कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा। विक्रम संवत् का वर्षारंभ दिन। अपर संज्ञा – द्यूत प्रतिपदा। (इसी तिथि को पार्वती ने शिव को द्यूत में पराभूत किया था।)

बलिप्रतिपदा = **कार्तिक** शु. प्रतिपदा। बलिपूजा, गोवर्धन पूजा आदि विधियां इस दिन होती हैं।

बलिप्रतिपदा = कार्तिक शुध्द प्रतिपदा। यह विक्रम संवत्सर का प्रारंभ दिन है।

धन्य प्रतिपदाव्रत = **मार्गशीर्ष** शुक्ल प्रतिपदा से आठ महीनों तक प्रत्येक प्रतिपदा को विष्णु पूजा तथा हवन इस व्रत में होता है

विद्याप्रतिपद् = किसी भी प्रतिपदा को विष्णु-लक्ष्मी, सरस्वती, चंद्र इनकी पूजा का एक व्रत।

वैश्वानर प्रतिपदा = एक व्रत।

× × ×

यम द्वितीया = **कार्तिक** शुद्ध द्वितीया। इस तिथि को बहन के हाथ का भोजन प्रशस्त माना है। (यमराज ने अपनी भगिनी यमुना के घर इस तिथि को भोजन किया था।

यमद्वितीया = **कार्तिक** शुद्ध द्वितीया। अपरनाम – भ्रातृद्वितीया (भाई दूज) बहन अपने भाई का आदरातिथ्य इस दिन करती है और भाई उसे भेंट समर्पण करता है।

पुष्पद्वितीया व्रत = **कार्तिक** शुद्ध द्वितीया से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध द्वितीया को अश्विनीकुमारों की आराधना का व्रत।

मनोरथ द्वितीया = सभी शुद्ध द्वितीया तिथियों की संज्ञा। वासुदेव की पूजा और चंद्रकला को अर्ध्यदान इस निमित्त करते हैं।

× × ×

मनोरथ तृतीया = **चैत्र** शुद्ध तृतीया की संज्ञा। इस तिथि से एक वर्ष तक २० भुजाओं वाली गौरी की पूजा होती है।

अनन्त तृतीया = **वैशाख**, भाद्रपद और मार्गशीर्ष मास की शु. तृतीया।

रंभातृतीया = **ज्येष्ठ शुद्ध** तृतीया, या मार्गशीर्ष शुद्ध तृतीया से एक वर्ष तक अन्यान्य रूपों में देवी की उपासना का व्रत।

सुकृततृतीया व्रत = हस्तनक्षत्र युक्त **श्रावण** शुद्ध तृतीय को लक्ष्मी नारायण की उपासना का व्रत।

बलितृतीया = **भाद्रपद** शुद्ध तृतीया को उमा-महेश्वर की उपासना का स्त्रीव्रत। उड़ीसा में इस व्रत का प्रचार है।

सिन्दूर तृतीया = आश्विन शुद्ध तृतीया। इस तिथि को स्त्रियां मांग भरती हैं।

महातृतीया = माघशुद्ध तृतीया। इस तिथि को उमा-महेश्वर की पूजा का व्रत होता है। व्रतावधि-चार वर्ष।

हरतृतीया = माघ शुद्ध तृतीया। इस तिथि का उमा-महेश्वर की पूजा का व्रत होता है। व्रतावधि- चार वर्ष।

सौभाग्यतृतीया व्रत = फाल्गुन शुद्ध तृतीया से एक वर्ष तक लक्ष्मी-नारायण या शिवपार्वती की आराधना का एक व्रत। इस में चार-चार मासों में आहार में परिवर्तन होता है।

फलतृतीया = किसी तृतीया तिथि से एक वर्ष तक फलाहार का त्याग और उद्यापन में फलों के दान का व्रत।

व्रतराज तृतीया = शुद्ध तृतीया तिथि को दो वस्त्रों पर आलिखित उमा और शिव की प्रतिमाओं की पूजा का व्रत।

× × ×

सुखचतुर्थी = वैशाख, भाद्रपद, पौष तथा माघ मास की शुद्ध चतुर्थी को मंगलवार होने पर गणेशपूजा का व्रत।

महाचतुर्थी = भाद्रपद शुद्ध चतुर्थी को रविवार या मंगलवार आने पर यह संज्ञा प्राप्त होती है।

वरद चतुर्थी = भाद्रपद शुद्ध चतुर्थी की संज्ञा। (गणेश चतुर्थी)।

विनायक चतुर्थी = भाद्रपद शुद्ध चतुर्थी की संज्ञा। इस तिथि से दो वर्षों तक तिलभक्षण और तिलदान का व्रत होता है।

शिवा चतुर्थी =भाद्रपद शुद्ध चतुर्थी की संज्ञा।

रथोत्सव चतुर्थी = आश्विन शुद्ध चतुर्थी। रथारूढ देवी की शोभायात्रा।

नक्तचतुर्थी = मार्गशीर्ष शुद्ध चतुर्थी (गणेश चतुर्थी) को नक्त समय (नक्षत्र दर्शन होने पर या सूर्यास्त पूर्व दो घटिका में भोजन करना।

वरचतुर्थी = मार्गशीर्ष शुद्ध चतुर्थी से एक मास तक गणेशपूजा तथा एकभुक्त, अयाचित और उपोषण का व्रत। व्रतावधि = चार वर्ष।

तिलचतुर्थी = (या उमा चतुर्थी) **कुंदचतुर्थी = माघ** शुद्ध चतुर्थी। इस दिन कुंद पुष्पों से गौरी की पूजा होती है।

वक्रतुण्ड चतुर्थी = माघ मास की चंद्रोदयव्यापिनी वद्य चतुर्थी की संज्ञा। इसमें सायंकाल गणेश पूजा तथा चंद्रपूजा का व्रत होता है।

वरदचतुर्थी = माघ, भाद्रपद एवं **मार्गशीर्ष** मास की शुद्ध चतुर्थियों की संज्ञा। इस तिथि को वरद = गणेश की पूजा का व्रत होता है।

शांता चतुर्थी = माघ शुद्ध चतुर्थी। इस तिथि को शांताचतुर्थी नामक गणेश मूर्ति की उपासना का व्रत होता है।

मनोरथ चतुर्थी = फाल्गुन शुद्ध चतुर्थी की संज्ञा। इस तिथि से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध चतुर्थी को गणेश प्रतिमा की पूजा का व्रत होता है।

संकष्ट (या संकष्टी) चतुर्थी = प्रत्येक मास की वद्य चतुर्थी की संज्ञा। मंगलवार की संकष्ट चतुर्थी को अंगारकी चतुर्थी कहते हैं।(अंगारक = मंगलग्रह)। श्रावण की संकष्टी चतुर्थी को गणेश-उपासना के व्रत का प्रारंभ होता है। व्रतावधि-एक वर्ष, २१ वर्ष या आमरण।

यमचतुर्थी = चतुर्थी को शनिवार और भरणी नक्षत्र का योग होने पर यमराज की पूजा का व्रत।

विनायकी चतुर्थी = प्रत्येक मास की शुद्ध चतुर्थी की संज्ञा। तृतीया युक्त तिथि को उपासना का व्रत होता है।

× × ×

हयपंचमी = चैत्रशुद्ध पंचमी। (समुद्र मंथन में इसी तिथि को उच्चैःश्रवा नामक हय (अश्व) प्रकट हुआ)।

निर्जर पंचमी = आषाढ शुद्ध पंचमी से कार्तिक वद्य पंचमी तक प्रत्येक पंचमी तिथि को उपोषण करने का जैनव्रत।

विद्युत् पंचमी = आषाढ शु. पंचमी। इस तिथि को आकाश में बिजली का चमकना आगामी वर्षा की दृष्टि से अच्छा माना जाता है।

नागपंचमी = श्रावण शुद्ध पंचमी। इस दिन पंचमुखी नागराज के चित्र की पूजा सर्वत्र होती है।

सर्पविषापह-पंचमी (या नागपंचमी) = श्रावण शुद्ध पंचमी। इस दिन सर्पप्रतिमा या सर्प की पूजा होती है। अपरसंज्ञा – सर्पभय – पंचमी।

दष्टोद्धारपंचमी = किसी आप्त को सर्पदंश से मृत्यु आने पर यह व्रत किया जाता है। भाद्रपद शुद्ध पंचमी से एक वर्ष तक नागप्रतिमा की पूजा का यह व्रत होता है।

ऋषिपंचमी = भाद्रपद शुद्ध पंचमी। सप्तर्षिपूजा का स्त्री व्रत।

ललिता पंचमी = आश्विन शु. ५

शांतिपंचमी = आश्विन शुद्ध पंचमी या कार्तिक शुद्ध शुद्ध पंचमी। इस तिथि से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध पंचमी को नागपूजा का व्रत।

लाभपंचमी = कार्तिक शुद्ध पंचमी की संज्ञा। यह संज्ञा गुजरात में प्रचलित है।

श्रीपंचमी = मार्गशीर्ष शु. ५। स्कन्द-देवसेना विवाह की तिथि। इसी तिथि को साक्षात् श्रीदेवी स्कन्द के आश्रय में आई थीं।

श्रीपंचमी = (१) मार्गशीर्ष शुद्ध पंचमी को लक्ष्मी प्रतिमा की पूजा का व्रत। (२) माघ शुद्ध पंचमी – इसी को 'वसंतपंचमी' कहते है।

वसंत पंचमी (या श्रीपंचमी) = माघ शुद्ध पंचमी। इसी दिन के। वसंतऋतु का प्रारंभ माना जाता है। नवान्नेष्टि, रति-मदन पूजा, सरस्वती और लक्ष्मी की पूजा (उनके जन्मदिन निमित्त) वसंतपंचमी को होती है।

रंगपंचमी = फाल्गुन वद्य पंचमी। महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान तथा उत्तरप्रदेश में यह एक रंगक्रीडा का महोत्सव है।

× × ×

लोटण षष्ठी = श्रावण षष्ठी का एक व्रत। बंगाल में पुत्रों की दीर्घायु के निमित्त यह व्रत होता है। इसमें लोटण याने

लड्डू का नैवद्य देवी को समर्पण करते हैं।

वर्णषष्ठी = श्रावण शुद्ध षष्ठी को शिव-पूजा का व्रत। व्रतावधि - पांच वर्ष।

चंद्रषष्ठी = **भाद्रपद** वद्य षष्ठी की संज्ञा। उपोषण तथा चंद्रपूजा का व्रत।

सूर्यषष्ठी = भाद्रपद शुद्ध षष्ठी की संज्ञा।

प्रतिहारषष्ठी = **(कार्तिक)** शुद्ध षष्ठी की सायंकाल सूर्यपूजा का एक व्रत।

महाषष्ठी = **कार्तिक** शुद्ध षष्ठी, मंगलवार और वृश्चिक राशिस्थ सूर्य इस योग की संज्ञा।

चम्पाषष्ठी = **(१) मार्गशीर्ष** शुद्ध षष्ठी। (२) भाद्रपद शुद्ध षष्ठी को मंगलवार, विशाखा नक्षत्र तथा वैधृति योग ३० वर्ष में एक बार आता है। इसे चम्पाषष्ठी योग कहते हैं।

स्कन्दषष्ठी = **मार्गशीर्ष** शु. षष्ठी। शिवपुत्र स्कन्द की जन्मतिथि। तारकासुर वध की तिथि।

प्रावरणषष्ठी = **मार्गशीर्ष** शुद्ध षष्ठी को शीतबाधा के निवारणार्थ ऊनी वस्त्रों के दान का व्रत।

दारिद्र्यहरषष्ठी = **माघ** शुद्ध षष्ठी के प्रारंभ से प्रत्येक मास की शुद्ध षष्ठी को स्कन्दपूजन तथा नक्तभोजन का व्रत।

मंदारषष्ठी = **माघ** शुद्ध षष्ठी को मंदार नामक देववृक्ष की पूजा का व्रत।

विशोका षष्ठी = **माघ**शुद्ध षष्ठी और सप्तमी को सूर्यप्रतीकात्मक रक्तकमल की पूजा का व्रत। एक वर्ष तक यह व्रत शुद्ध षष्ठी-सप्तमी को होता है।

व्योमषष्ठी = षष्ठी तिथि को आकाशस्थ सूर्य की पूजा का व्रत।

सुदर्शनषष्ठी = विजयप्राप्ति के निमित्त क्षत्रियों ने करने योग्य एक व्रत। षष्ठी तिथि को भगवान् विष्णु के आयुधों की पूजा इसमें होती है।

× × ×

कमलसप्तमी = **चैत्र** शुद्ध सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक शु. सप्तमी को एक एक नाम से सूर्य की आराधना का व्रत।

जह्नुसप्तमी = **वैशाख** शुद्ध सप्तमी। (इसी तिथि को जह्नुराजा ने भागीरथी नदी को अपने दाहिने कान से मुक्त किया था।)

शर्करा सप्तमी = **वैशाख** शुद्ध सप्तमी। शक्कर में सूर्य प्रतिमा की स्थापना और पूजा का व्रत।

शर्करासप्तमी = **वैशाख** शुद्ध सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध सप्तमी को शक्कर की सूर्य प्रतिमा का पूजन करने का व्रत।

निंबसप्तमी = **वैशाख** शुद्ध सप्तमी से एक वर्ष तक सूर्योपासना तथा नीम के पत्ते खाने का व्रत।

फलसप्तमी = **भाद्रपद** शुद्ध सप्तमी से एक वर्ष तक प्रतिमास सूर्य भगवान की अन्यान्य नामों से उपासना का व्रत।

सन्तानसप्तमी = **भाद्रपद** शुद्ध सप्तमी को सन्तान की प्राप्ति तथा कल्याण के निमित्त शिव-पार्वती की उपासना का व्रत।

सरस्वती शयन सप्तमी = **आश्विन** शुद्ध सप्तमी से नवमी तक सरस्वती की उपासना के निमित्त अनध्याय होता है।

शुकसप्तमी = **आश्विन** शुद्ध सप्तमी। एक वर्ष तक सूर्योपासना का व्रत।

शुभ सप्तमी =आश्विन शुद्ध सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध सप्तमी को कपिला गौ की पूजा तथा तिलदान का व्रत।

शाकसप्तमी = **कार्तिक** शुद्ध सप्तमी। इस तिथि को उपवास तथा सूर्य पूजा का व्रत होता है।

नन्दा सप्तमी = **मार्गशीर्ष** शुद्ध सप्तमी को सूर्योपासना का व्रत।

भद्रासप्तमी = **मार्गशीर्ष** शुद्ध सप्तमी को सूर्योपासना का व्रत। चतुर्थी व्रत के उपोषणों का प्रारंभ से होता है।

मित्र सप्तमी = **मार्गशीर्ष** शुद्ध सप्तमी। इस दिन सूर्योपासना तथा गंगा की जन्मतिथि के कारण गंगाजल से शिवलिंग का अभिषेक किया जाता है।

फलसप्तमी = **मार्गशीर्ष** शुद्ध सप्तमी। सूर्यपूजा का व्रत।

रक्तसप्तमी = **मार्गशीर्ष** वद्य सप्तमी को रक्तकमलों से सूर्यपूजा का व्रत।

विष्णुसप्तमी = **मार्गशीर्ष** शुद्ध सप्तमी। इस दिन रक्तचन्दन और रक्तवर्ण पुष्पों से विष्णु की पूजा होती है।

सितसप्तमी = **मार्गशीर्ष** शुद्ध सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध सप्तमी को सूर्यपूजा का व्रत।

मार्तण्डसप्तमी = **पौष** शुद्ध सप्तमी। इस तिथि से एक वर्ष तक सूर्योपासना का व्रत होता है।

विधानसप्तमी = **मास** शुद्ध सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध सप्तमी को सूर्यपूजा तथा रुई के फूल, गोमय, जल, फल आदि एक एक पदार्थ पर निर्वाह करने का व्रत।

विशेष सप्तमी = **माघशुद्ध** सप्तमी को सूर्यपूजा का व्रत।

विशेष सप्तमी= **माघ** शुद्ध सप्तमी। सूर्यपूजा का व्रत। व्रतावधि-एक वर्ष।

मंदारसप्तमी = **माघ** शुद्ध सप्तमी। एक वर्ष तक सूर्य पूजा का व्रत।

सर्वाप्तिसप्तमी = **माघ** वद्य सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक मास की वद्य सप्तमी को अन्यान्य नामों से सूर्य की उपासना का व्रत।

महासप्तमी = **माघ** शुद्ध सप्तमी। इस तिथि को सूर्यपूजा का व्रत होता है। अन्य संज्ञाएँ – **रथसप्तमी, जयंतसप्तमी, अचला० भास्करसप्तमी**। महासप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध सप्तमी को सूर्यपूजा का व्रत प्रारंभ होता है।

पुत्रसप्तमी = **(१) माघ** शुद्ध सप्तमी से प्रत्येक (शुद्ध और वद्य) सप्तमी को सूर्यपूजा का व्रत। व्रतावधि – एक वर्ष **(२) भाद्रपद** शुद्ध या वद्य सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक सप्तमी को विष्णुपूजा का व्रत।

पुरश्चरण सप्तमी = **माघ** शुद्ध सप्तमी, रविवार तथा मकर

राशिस्थित सूर्य-ऐसें सुयोग पर सूर्य की मूर्तिपूजा का व्रत। एक वर्ष तक प्रत्येक सप्तमी को यह व्रत होता है।

विजया सप्तमी = (१) माघशुद्ध सप्तमी (२) रविवार युक्त सप्तमी। इस दिन सूर्यपूजा का व्रत होता है। (३) सात सप्तमी तिथियों को क्रमशः उपवास का व्रत।

विजया (यज्ञ) सप्तमी = माघ शुद्ध सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध सप्तमी को सूर्यपूजा का व्रत।

कल्याणसप्तमी = शुद्ध सप्तमी को रविवार होने पर सूर्यपूजा का व्रत। व्रतावधि १३ मास।

जयदा सप्तमी = रविवार की शुद्धसप्तमी।

जया सप्तमी = रोहिणी, आश्लेषा, मघा या हस्त नक्षत्रों में से कोई एक नक्षत्र जिस सप्तमी में होता है अथवा जिस सप्तमी को पांच ग्रहों की 'युति' होती है, वह सप्तमी। ऐसी सप्तमी से सूर्यपूजा का व्रत आरंभ करते हैं। व्रतावधि एक वर्ष।

धान्यसप्तमी = किसी भी मास की शुद्ध सप्तमी को धान्य, लवण, पात्र आदि का दान।

भानु सप्तमी = माघ शुद्ध सप्तमी। अपर संज्ञा – रथसप्तमी।

महाजया सप्तमी = जिस सप्तमी को सूर्य का किसी राशि में प्रवेश नही होता ऐसी सप्तमी। इस योग पर पितृपूजा तथा सूर्यपूजा करते है।

महाफलसप्तमी = सप्तमी, रविवार और रेवती नक्षत्र. इस योग की संज्ञा। इस योग पर अशोक वृक्ष की कलियों से दुर्गा की पूजा होती है।

मांगल्य सप्तमी = सप्तमी के दिन। लक्ष्मी-नारायण की उपासना का व्रत।

मुक्तिद्वार सप्तमी = हस्त या पुष्य नक्षत्र युक्त सप्तमी से पड्रसों में से केवल एक रस का सेवन करने का व्रत। व्रतावधि एक वर्ष।

यज्ञ सप्तमी = संक्रांतियुक्त सप्तमी से एक वर्ष तक प्रत्येक सप्तमी को सूर्य की उपासना का व्रत।

वराटिका सप्तमी = सप्तमी के दिन सूर्यपूजा और तीन वराटिकायों (कौड़ी) के मूल्य में मिलने वाला अन्न सेवन करना।

विजया सप्तमी = देखिये कल्याणसप्तमी

× × ×

अशोकाष्टमी = चैत्र कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि।

सन्तानाष्टमी = चैत्र कृष्ण अष्टमी से एक वर्ष तक प्रत्येक वद्य अष्टमी को देवकी-कृष्ण की उपासना का व्रत।

शीतलाष्टमी = चैत्र वद्य अष्टमी को चेचक की पीड़ा निवारण करने के लिये शीतला देवी की उपासना का व्रत।

पुष्पाष्टमी = श्रावण शुद्ध अष्टमी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध अष्टमी को अन्यान्य पुष्पों से शिव की पूजा करना।

रोहिणी अष्टमी = श्रावण वद्य अष्टमी (यह कृष्ण जन्म की तिथि होने के कारण 'जयंती' कहलाती है।) को रोहिणी नक्षत्र होने पर उपोषण और कृष्णपूजा का व्रत।

दूर्वाष्टमी = भाद्रपद शुद्ध अष्टमी। दूर्वा की पूजा का व्रत।

दूर्वाष्टमी = भाद्रपद शुद्ध अष्टमी का दूर्वाविषयक एक व्रत। प्रायः अपत्यहीन स्त्रिया यह व्रत करती है।

राधाष्टमी = भाद्रपद की शुद्ध और वद्य अष्टमियां। इस तिथि को राधाकृष्ण की पूजा का व्रत होता है।

महाष्टमी = आश्विन शुद्ध अष्टमी। इस तिथि पर भद्रकाली की उपासना होती है।

दांपत्याष्टमी = कार्तिक वद्य अष्टमी से शिव-पार्वती की दर्भमूर्ति का पूजन इस तिथि का व्रत है। व्रतावधि- एक वर्ष

प्रथमाष्टमी = मार्गशीर्ष वद्य अष्टमी को ज्येष्ठ पुत्र का अभीष्टचिन्तन एवं सत्कार करना। यह प्रथा उत्कल में प्रचलित है।

महेश्वराष्टमी = मार्गशीर्ष शुद्ध अष्टमी। इस तिथि से एक वर्ष तक शिवलिंग की उपासना का व्रत होता है।

रुक्मिणी अष्टमी = मार्गशीर्ष वद्य अष्टमी से सात वर्षों तक मिट्टी की गृह-प्रतिमा का दान करने का व्रत। इस गृहप्रतिमा के अंदर कृष्ण भगवान के परिवार की रुक्मिणी आदि व्यक्तियों की मूर्तियाँ रखी जाती हैं।

शिवकृष्णाष्टमी = मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी से एक वर्ष तक प्रत्येक कृष्णाष्टमी को शिवलिंग की आराधना का व्रत।

भीष्माष्टमी = माघ शुद्ध अष्टमी को भीष्माचार्य ने देहत्याग किया था। अतः इस तिथि को उनके नाम से श्राद्ध तथा तर्पण करते हैं।

लक्ष्मी-सीताष्टमी = फाल्गुन शुद्ध अष्टमी को सीतास्वरूप लक्ष्मी की पूजा का व्रत।

बुधाष्टमी = शुक्लपक्ष की अष्टमी को बुधवार होने पर बुध ग्रह की प्रतिमा का पूजन करने का व्रत।

महाभद्राष्टमी = बुधवार की **पौष** शुद्ध अष्टमी की संज्ञा। इस योग पर शिवपूजा का व्रत होता है।

कालाष्टमी = कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि।

रामनवमी = चैत्र शुद्ध नवमी। रामजन्म के इस दिन प्रभु राम की उपासना सर्वत्र होती है।

× × ×

भद्रकाली = (१) चैत्र शुद्ध नवमी की संज्ञा। (२) आश्विन शुद्ध नवमी को भद्रकाली की पूजा का व्रत।

सीतानवमी = वैशाख शुद्ध नवमी। सीता की प्राप्ति इसी तिथि को राजा जनक को हुई थी। बंगाल में यह संज्ञा प्रचलित है।

नकुलनवमी = श्रावण शुद्ध नवमी का एक गुजराती व्रत

नन्दानवमी = भाद्रपद मास की शुद्ध और वद्य नवमीयों कीसंज्ञा। इस तिथि को शिव-दुर्गा पूजन तथा नन्दामंत्र का जप करते हैं।

अविधवा नवमी = भाद्रपद वद्य नवमी। मृत सुवासिनी के निमित्त इस दिन श्राद्ध होता है।

महानवमी (या दुर्गानवमी)=आश्विन शुद्ध नवमी की संज्ञा। इस तिथि से प्रत्येक शुद्ध नवमी को दुर्गा की आराधना होती है।

नामनवमी = आश्विन शुद्ध नवमी से एक वर्ष तक प्रत्येक नवमी को दुर्गा मां की अन्यान्य नामों से आराधना का व्रत।

प्रदीप्तनवमी = आश्विन शुद्ध नवमी से महिषासुरमर्दिनी तथा शिवभगवान् की उपासना का व्रत। इसमें व्रती, एक हाथ लंबा तृण का दण्ड जितने समय तक जलता है उतने ही समय में भोजन करता है।

रथनवमी = आश्विन = शुद्ध नवमी को दुर्गा की पूजा तथा शोभायात्रा का व्रत।

नन्दिनी = मार्गशीर्ष शुद्ध नवमी की संज्ञा।

रूप नवमी = मार्गशीर्ष की नवमी से फाल्गुन नवमी तक चण्डिका की उपासना तथा उपोषण और विविध प्राणियों की पिष्टप्रतिमा के दान का व्रत।

ध्वजनवमी = पौष शुध्द नवमी। अपर नाम शांबरी।

महानन्दा = माघ शुध्द नवमी की संज्ञा। इस तिथि से एक वर्ष तक प्रत्येक शुध्द नवमी को देवी की आराधना होती है।

वर नवमीव्रत = नवमी के दिन अग्निस्पर्श हुए अन्न को न खाने का व्रत।

× × ×

विजया दशमी = आश्विन शुद्ध दशमी। इसी दिन प्रभु रामचंद्रने रावण पर विजय पाई थी।

राज्यप्राप्तिदशमी = कार्तिक शुद्ध दशमी को दस विश्वेदेवों की पूजा का व्रत।

पदार्थ दशमी = मार्गशीर्ष शुद्ध दशमी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध दशमी को दश दिशाओं तथा उनके दिक्पालों की पूजा का व्रत।

× × ×

वरूथिनी एकादशी = चैत्र वद्य एकादशी।

भीम एकादशी = ज्येष्ठ शुद्ध एकादशी को भीम (पांडव) उपोषण करता था। अतः गुजरात में इस तिथि को उपोषण का व्रत होता है।

निर्जला एकादशी (या भीमसेनी एकादशी)। **= ज्येष्ठ** शुद्ध एकादशी की संज्ञा। इस तिथि को उपवास व्रत करने वाले जल भी सेवन नहीं करते। व्यास ऋषि के आदेशानुसार भीमसेन ने यह व्रत किया था, अतः इस तिथि को भीमसेनी एकादशी भी कहते हैं।

शयनी एकादशी (या महाएकादशी) = आषाढ शुद्ध एकादशी। इस तिथि को 'विष्णु शयनोत्सव' नामक व्रतविधि होती है। इस तिथि से देवों के रात्रिकाल का प्रारंभ होता है, अतः उनके शयन का प्रारंभ होता है। कार्तिकी एकादशी को देवता जागृत होते हैं अतः उसे प्रबोधिनी एकादशी कहते हैं।

पुत्रदा एकादशी = श्रावण शुद्ध एकादशी तथा पौषशुद्ध एकादशी की संज्ञा। इस तिथि को पुत्रप्राप्ति की कामना से विष्णु-पूजा का व्रत होता है।

ध्वजा एकादशी .= भाद्रपद शुद्ध एकादशी। राजस्थान में इस तिथि को मंदिरों पर नये ध्वज आरोपित होते हैं।

परिवर्तिनी एकादशी = भाद्रपद शुद्ध एकादशी। शयनी एकादशी के बाद इस तिथि को विष्णु भगवान् अपनी करवट बदलते हैं। उस निमित्त विष्णुपूजा का व्रत होता है।

रमा एकादशी = आश्विन वद्य एकादशी।

प्रबोधिनी एकादशी = कार्तिक शुद्ध एकादशी। इस तिथि को चातुर्मास्य में निद्रित भगवान् विष्णु प्रबुद्ध होते है। अपर संज्ञा – **देवोत्थान एकादशी।** इस दिन मंदिरों में प्रबोधोत्सव और परिवार में तुलसी विवाह का समारोह होता है।

मोक्षदा एकादशी = मार्गशीर्ष शुद्ध एकादशी। गीता जयंती इसी तिथि को भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता का उपदेश किया था।

सफला एकादशी = मार्गशीर्ष वद्य एकादशी।

षट्तिला एकादशी = पौष कृष्ण या माघ शुद्ध एकादशी को चंद्र के मृगशीर्ष नक्षत्र में होने पर तिलमर्दन, तिलमिश्रित जलस्नान, तिलहोम, तिलदान, तिलमिश्रित जल से पितृतर्पण और तिलभक्षण ऐसे तिलयुक्त षट्कर्म करने का व्रत।

जया एकादशी = माघ शुद्ध एकादशी।

विजया एकादशी = माघ वद्य एकादशी।

पापनाशिनी (या मोचनी) एकादशी = फाल्गुन वद्य एकादशी, गुरु-पुष्य योग युक्त एकादशी, या सूर्य कुंभ (या मीन) राशि में होते हुए एकादशी की संज्ञा। पापनाशिनी द्वादशी को परशुराम की उपासना का व्रत होता है।

देवोत्थान एकादशी = देखिये प्रबोधिनी एकादशी।

महाएकादशी = आषाढी एवं कार्तिकी शुद्ध एकादशी।

भीमसेनी एकादशी = देखिये निर्जला एकादशी।

भागवत एकादशी = जिस पक्ष में दो एकादशी तिथियाँ आती हैं, तब दूसरी को भागवत कहते है। (देखिये-स्मार्त एकादशी)

स्मार्त एकादशी = एकादशी के दो भेदों में से एक। कभी कभी दो एकादशी तिथियां होती हैं, तब पहली स्मार्त और दूसरी भागवत मानी जाती है।

× × ×

भद्रद्वादशी व्रत = चैत्र शुद्ध द्वादशी से एक वर्ष तक प्रत्येक द्वादशी को विष्णुपूजा का व्रत। एकादशी को उपोषण।

जामदग्न्य द्वादशी = वैशाख शुद्ध द्वादशी

राघवद्वादशी = ज्येष्ठ शुद्ध द्वादशी। राम-लक्ष्मण की पूजा इस तिथि को होती है।

रोहिणीद्वादशी = श्रावण वद्य द्वादशी से एक वर्ष तक जलाशय के पास चंद्र-रोहिणी की प्रतिमा का पूजन करने का व्रत।

महाद्वादशी = भाद्रपद शुद्ध द्वादशी, श्रवण नक्षत्र और बुधवार इनका योग।

वामन-द्वादशी = भाद्रपद शुद्ध द्वादशी। वामनावतार की तिथि। इस दिन वामन मूर्ति की पूजा होती है।

विजया द्वादशी = (१) बुधवार की **भाद्रपद** वद्य एकादशी या द्वादशी को श्रवण नक्षत्र का होना। (२) फाल्गुन शुद्ध एकादशी या द्वादशी पुष्यनक्षत्र से युक्त होना। विष्णुपूजा का व्रत।

श्रवणद्वादशी = **भाद्रपद** शुद्ध द्वादशी को श्रवण नक्षत्र का योग होने पर उपवास तथा विष्णुपूजा का व्रत। (२) एक जैन स्त्री-व्रत। १२ वर्षों तक भगवान वासुपूज्य की पूजा इसमें होती है।

श्रावणद्वादशी = श्रावण नक्षत्र युक्त **भाद्रपद** शुद्ध द्वादशी।

गोवत्सद्वादशी = **आश्विन** वद्य द्वादशी। (लौकिक संज्ञा- वसुबारस)

पद्मनाभ द्वादशी = **आश्विन** शुद्ध द्वादशी। इस तिथि को पद्मनाभस्वरूपी विष्णु की उपासना का व्रत होता है।

वासुदेव द्वादशी = **आश्विन** वद्य द्वादशी को उपोषण और वासुदेवपूजा का व्रत। (अपरनाम – कृष्णद्वादशी)

वासुदेव द्वादशी = **आश्विन** शुद्ध द्वादशी को वासुदेव स्वरूप श्रीकृष्ण की पूजा का व्रत।

विशोका द्वादशी = **आश्विन** शुद्ध दशमी से द्वादशी तक उपोषण तथा 'विशोका नामक लक्ष्मीमूर्ति की पूजा का व्रत। व्रतावधि एक वर्ष। आश्विन शुद्ध दशमी को 'विशोका कहते है। (यही विजया दशमी कहलाती हैं)।

नीराजना द्वादशी = **कार्तिक** शुद्धद्वादशी। इस तिथि से पांच दिन तक देवता, माता-पिता, हाथी, घोड़ा, गाय आदि की आरती उतारना इस व्रत का स्वरूप है।

योगेश्वर द्वादशी = **कार्तिक** शुद्ध द्वादशी को विष्णुपूजा का व्रत (अपर संज्ञा – धरणी व्रत)

नामद्वादशी = **मार्गशीर्ष** शुद्ध द्वादशी से एक वर्ष तक केशव, नारायण, माधव इन संध्या वन्दन के नामों का उच्चारण करते हुए विष्णु की उपासना का व्रत।

मत्स्यद्वादशी = **मार्गशीर्ष** शुद्ध द्वादशी। इस तिथि को मत्स्यावतार की पूजा होती है।

मल्लद्वादशी = मार्गशीर्ष शुद्ध द्वादशी। इस तिथि को कृष्ण पूजा का व्रत होता है। अपरसंज्ञा - अरण्य द्वादशी।

राज्यद्वादशी = मार्गशीर्ष की शुद्ध दशमी से द्वादशी तक उपोषण और विष्णुपूजा का तथा वद्य दशमी से द्वादशी तक देवीपूजा का व्रत।

व्यंजनद्वादशी = मार्गशीर्ष शुद्ध द्वादशी को विष्णु की उपासना का व्रत।

शुभद्वादशी = मार्गशीर्ष शुद्ध प्रतिपदा से द्वादशी तक एकभुक्त, उपवास दान आदि व्रत।

सुनामद्वादशी = मार्गशीर्ष शुद्ध एकादशी से एक वर्ष तक प्रतिमास शुद्ध एकादशी को सूर्य तथा विष्णु की पूजा का व्रत।

ब्रह्मद्वादशी = पौष शुद्ध द्वादशी को ज्येष्ठा नक्षत्र होने पर इस विष्णुपूजात्मक व्रत का प्रारंभ होता है। व्रतावधि एक वर्ष।

महाफलद्वादशी = एक तिथि व्रत। पौष वद्य एकादशी विशाखा नक्षत्र से युक्त होने पर इस व्रत का आरंभ होता है। द्वादशी को विष्णुपूजा होने पर संमाप्ति। कालावधि - एक वर्ष।

सुजन्मद्वादशी = पौष शुद्ध द्वादशी को ज्येष्ठा नक्षत्र होने पर उपवास तथा देवपूजा का व्रत। प्रत्येक मास की शुद्ध द्वादशी को इसमें विशिष्ट भोजन तथा विशिष्ट पदार्थ का दान होता है।

सुरूपद्वादशी = पौष मास में पुष्य नक्षत्र युक्त तिथि से वद्य द्वादशी तक विष्णु की आराधना का व्रत। फल - सुरूप प्राप्ति।

वराहद्वादशी = माघ शुद्ध द्वादशी। इस दिन वराह पूजा का व्रत होता है।

जयाद्वादशी = पुष्य नक्षत्रयुक्त फाल्गुन शुद्ध द्वादशी।

नरसिंहद्वादशी = फाल्गुन वद्य द्वादशी को नरसिंह की काष्ठप्रतिमा की पूजा और दान का व्रत।

मनोरथद्वादशी = फाल्गुन शुद्ध द्वादशी की संज्ञा। इस तिथि से एक वर्ष तक विष्णुपूजा का व्रत प्रत्येक शुद्ध द्वादशी को होता है। एकादशी को उपोषण।

षट्तिलाद्वादशी = श्रवण नक्षत्र युक्त फाल्गुन वद्य द्वादशी। इस तिथि को तिलदान, तिलहोम तिलभक्षण आदि तिलयुक्त छह कर्म होते हैं।

सुगतिद्वादशी = फाल्गुन शुद्ध एकादशी से एक वर्ष तक कृष्ण, केशव और विष्णु इन नामों का चार चार मासों तक १०८ बार जप करने का व्रत।

पुष्यद्वादशी = पुष्य नक्षत्र, गुरुचंद्र की युति, कुम्भराशि स्थित रवि - ऐसे (दुर्घट) योग पर विष्णुपूजा का व्रत।

विभूतिद्वादशीव्रत = चैत्र-वैशाख, आषाढ-श्रावण, कार्तिक-मार्गशीर्ष इनमें से किसी शुद्ध द्वादशी से एक वर्ष तक प्रत्येक शुद्ध द्वादशी को क्रमशः मत्स्यादि दशावतार तथा दत्तात्रेय और व्यास इन १२ अवतारों की उपासना का व्रत।

भाग्यऋक्षद्वादशी = पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र (अपर संज्ञा भाग्य अर्थात भगदेवतायुक्त) पर द्वादशी। इस योग पर हरि-हर की पूजा का व्रत होता है।

विष्णुप्राप्तिद्वादशी = एकादशी और द्वादशी दोनों तिथियों को उपोषण का व्रत।

× × ×

धनत्रयोदशी = आश्विन वद्य त्रयोदशी। धन्वन्तरि का जन्मदिन।

नरसिंह त्रयोदशी = किसी भी मास में गुरुवार को आने वाली त्रयोदशी। इस तिथि को नरसिंह भगवान की उपासना होती है।

सर्वमंगल त्रयोदशी = प्रत्येक मास की शुद्ध त्रयोदशी को एकभुक्त रहकर कृष्ण, बलराम और मंगला (दुर्गा) देवी की उपासना का व्रत।

दमनचतुर्दशी = चैत्र या श्रावण शुद्ध चतुर्दशी का एक व्रत। इसमें एकवीरा और भैरव की पूजा का महत्व होता है।

पिशाच चतुर्दशी = चैत्र वद्य चतुर्दशी की संज्ञा। इस दिन

नदी में या रास्तों पर पिशाचों के प्रीत्यर्थ बलिसमर्पण होता है।

मदनचतुर्दशी = (या मदनभंजी) चैत्र शुद्ध चतुर्दशी। इस तिथि को मदन की आराधना होती है।

नरसिंह चतुर्दशी = वैशाख शुक्ल चतुर्दशी की संज्ञा। नरसिंह अवतार की तिथि।

नरक चतुर्दशी = आश्विन वद्य चतुर्दशी। पुराणों के अनुसार इसी तिथि को भगवान कृष्ण ने १६ सहस्र कन्यकाओं की मुक्ति के लिये नरकासुर का वध किया था। इस तिथि को सूर्योदय के पूर्व स्नान तथा संध्याकाल में दीपावली प्रज्वालन होता है।

प्रेतचतुर्दशी = कार्तिक वद्य चतुर्दशी। शस्त्राघात से मृत व्यक्ति के प्रीत्यर्थः इस तिथि को मशाल जलाई जाती है।

वैकुण्ठ चतुर्दशी = कार्तिक शुद्ध चतुर्दशी। विष्णुपूजा का व्रत।

महाशिवरात्रि = माघ वद्य चतुर्दशी। इस तिथि को शिव भगवान की उपासना होती है।

पाषाण चतुर्दशी = शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को सूर्य वृश्चिक राशि में आने पर गौरी पूजा का यह व्रत होता है।

प्रौष्ठपदी = भाद्रपद पौर्णिमा की संज्ञा। इस तिथि को प्रपितामह के तीन पूर्वजों के निमित्त श्राद्धविधि होती है।

द्यूतपौर्णिमा = आश्विनी पौर्णिमा को धर्मशास्त्र में द्यूतक्रीडा का आदेश किया है। अतः उस तिथि की अपर संज्ञा।

त्रिपुरी पौर्णिमा = कार्तिकी पौर्णिमा की अपर संज्ञा। भगवान शिव ने इसी दिन त्रिपुरासुर का नाश किया था।

नवान्न पौर्णिमा = शरद ऋतु की पौर्णिमा। इस तिथि को नवान्न भक्षण की विधि होती है।

मनोरथपौर्णिमा = कार्तिक पौर्णिमा से एक वर्ष तक प्रत्येक पौर्णिमा को चन्द्रबिंब की पूजा तथा नक्तभोजन का व्रत। (चंद्रबिंब नमक का बनाया जाता है।)

नरक पौर्णिमा = मार्गशीर्ष पौर्णिमा से एक वर्ष तक विष्णुपूजा का व्रत।

शाकम्भरी पौर्णिमा = पौष मास की पौर्णिमा। महाराष्ट्र में शाकम्भरी देवी को इस तिथि को ६० सागों का नैवेद्य होता है।

व्रतद्वयी पौर्णिमा = फाल्गुनी पौर्णिमा को सूर्योदय के समय आदित्य और चन्द्रोदय के समय चन्द्रमा की पूजा का व्रत।

महामाघी = गुरु तथा पूर्ण चंद्र का मघा नक्षत्र में योग होने वाली पौर्णिमा तिथि।

पंचघट पूर्णिमा = अखंडित पांच महिनों की पौर्णिमाओं को देवी पूजा तथा दुग्ध, दधि, घृत, मधु, शर्करा इन पांचों द्रव्यों से पूर्ण घटों का दान करने का व्रत।

महापूर्णिमा = जिस नक्षत्र नाम से मास का नामकरण हुआ है, उस नक्षत्र पर उस मास का पूर्णचन्द्र गुरु से युक्त होने पर यह संज्ञा होती है। महापूर्णिमा से एक वर्ष तक प्रत्येक पौर्णिमा को विष्णुपूजा का व्रत होता है।

अनुमति = शुक्ल चतुर्दशीयुक्त पौर्णिमा, जिसमें चंद्रमा एक कला से हीन होता है। (कलाहीने सानुमतिः - अमरकोश)

सर्वपित्री अमावस्या = भाद्रपद अमावस्या। पितृश्राद्ध की तिथि।

महानिशा = आश्विनी अमावस्या की संज्ञा। यह संज्ञा बंगाल में रूढ है।

सोमवती = सोमवार की अमावस्या का विशेषण। सोमवार, मंगलवार, बृहस्पतिवार की, एवं अनुराधा, विशाखा, स्वाती नक्षत्र की अमावस्या पवित्र तिथि मानी जाती है।

नकुल अमावस्या = पौष अमावस्या की संज्ञा। इस तिथि को पितरों को खीर अर्पण करते हैं।

खर्विका = वद्य चतुर्दशी से संमिश्र अमावस्या। (अपर संज्ञा - गताध्वा)

सिनीवाली = चंद्रदर्शन युक्त अमावस्या। (२) अमावस्या युक्त चतुर्दशी।

सोमवतीव्रत = सोमवार की अमावस्या। सोमवती के दिन विष्णुपूजा के व्रत में उपयुक्त फल मिष्टान्नादि पदार्थों की संख्या १०८ होती है।

★ ★ ★

(वर्ग - २ इ) – धर्मशास्त्र में कथित जातिप्रकार (परिशिष्ट)

अधर्मसंतति = मागध, सैरन्ध्र, चांडाल, गोलक, आदि भिन्न जातियों की तथा व्यभिचार, वेश्यागमन, विधवासंभोग आदि कारणों से उत्पन्न संतति।

अनन्तरजा (संतति) = क्षत्रिय स्त्री से ब्राह्मण द्वारा और वैश्य स्त्री से क्षत्रिय द्वारा उत्पन्न सन्तान। (मनु. १०-४२)।

अनवक्षत्रिय = ब्राह्मण पु. + वैश्य स्त्री, अथवा क्षत्रिय पु. + वैश्य स्त्री के उत्पन्न अंबष्ठ नामक जाति की पौराणिक संज्ञा।

अनार्य जातियाँ = शक, शबर, यवन, पल्लव, बर्बर, आदि। महाभारत शान्ति ६५-१३।

अनिरवसित = शूद्र समाज के अन्तर्गत एक वर्ग। इस वर्ग के द्वारा उपयुक्त पात्रों की शुद्धि होती है। दूसरे **निरवसित** शूद्रों के द्वारा उपयुक्त पात्र सर्वथा त्याज्य माने जाते थे।

अनुलोम जाति = उच्चवर्णीय पुरुष और निकृष्ट वर्णीय स्त्री के संबंध से उत्पन्न जाति। याज्ञवल्क्य स्मृति में छह जातियाँ अनुलोम कही हैं। – मूर्धावसिक्त, अंबष्ठ, निषाद, माहिष्य, उग्र और करण। मनुस्मृति में इनके उपनयनादि संकारों को मान्यता दी है किंतु प्रतिलोम जातियों को नहीं दी। (मनु. १०-४१)।

अंतराल वर्ग = इसमें अनेक जातियों की गणना होती है। दक्षिण भारत में यह क्षत्रियोत्पन्न किंतु क्षत्रियों से निकृष्ट और शूद्रों से उच्च मानां जाता है। इनके संस्कार अमंत्रक होते हैं।

अन्त्यज = रजक, चर्मकार, नट, बुरुड, कैवर्त, (मच्छीमार), मेद, भिल्ल, इन जातियों का समाज।

अंत्यज (दूसरा वर्ग) = चाण्डाल, श्वपच (कुत्ते का मांस खाने वाला), क्षत्ता, सूत, वैदेहक, मागध एवं आयोगव इन सात जातियों के समाज। गाय का मांस खाने वाली सभी जातियाँ अन्त्यज कही गई हैं। (व्यास स्मृति १-१२-१३)।

अन्त्यावसायी = (१) चाण्डाल पुरुष एवं निषाद स्त्री की संतान जो अस्पृश्य और स्मशानवासी होती थी। (मनु ४-७९)। (२) शूद्र पुरुष एवं वैश्य नारी की संतान। (वसिष्ठ धर्मसूत्र १८-३)।

अन्ध्र = वैदेहक पिता और कार्वावर माता की संतान जो वनवासी होती थी। (मनु.)

अपसद् = अनुलोम विवाह संबंध से उत्पन्न संतति। ब्राह्मण से ३, क्षत्रिय से २, और वैश्य से एक, कुल मिलाकर अपसद के छह प्रकार होते है। (मनुस्मृति १०-१०)।

अभिषिक्त = ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिय स्त्री के विवाहबाह्य संबंध से उत्पन्न एक संकर जाति।

अंबट्टन = ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री के समागम से उत्पन्न एक दाक्षिणात्य जाति। मनुस्मृति में उल्लिखित अंबष्ठ जाति से संबंधित। ये विवाह में पौरोहित्य करते है।

अंबलवासी = केरल की एक अंतराल जाति जो क्षत्रिय से निकृष्ट मानी जाती है। चाक्यार, नंबियार आदि जातियों की अंबलवासी समाज में गणना होती है।

अंबष्ठ = (१) ब्राह्मण की वैश्य स्त्री में उत्पन्न संतान। (नारद स्मृति ५-१०७)। (२) क्षत्रिय की वैश्य स्त्री के उत्पन्न संतान। (गौतम स्मृति-टीका हरदत्त कृत)। पुराण में इन्हें अनव क्षत्रिय कहा है।

अवरीट = विवाहित स्त्री की सजातीय परपुरुष से उत्पन्न सन्तान। यह शूद्र मानी जाती थी।

अवावट = किसी भी विवाहित स्त्री का सवर्ण पुरुष से व्यभिचार करने से उत्पन्न पुत्र। यह शूद्र माना जाता है।

अवीर (या अविर) = क्षत्रिय पुरुष और वैश्य विवाहित स्त्री के व्यभिचार से उत्पन्न संतान।

अयोगव = वैश्य स्त्री और शूद्र पुरुष के समागम से उत्पन्न संतान।

आघासिक = वैदेहक पुरुष एवं शूद्र नारी की सन्तान। (पका हुआ भोजन बेचने वाला) (अन्य नाम आन्धसिक)।

आपीत = ब्राह्मण एवं दौष्यंती की संतान।

आभीर = ब्राह्मण पुरुष और अंबष्ठ स्त्री की संतान। (मनु. १०-१५) एक प्राचीन बलाढ्य राजवंश।

आयोगव = (१) शूद्र पुरुष और वैश्य स्त्री की संतान। (याज्ञवल्क्य १-९४)। (२) वैश्य पुरुष और क्षत्रिय स्त्री की संतान। (बौधायन धर्मसूत्र १-९-७)। यज्ञीय वस्तु एकत्रित करने का अधिकार इस जाति को था।

आवर्तक = भृज्जकण्ठ एवं ब्राह्मण नारी की सन्तान।

आश्विक = क्षत्रिय पुरुष और वैश्य स्त्री की गुप्त प्रेम से उत्पन्न संतान। वृत्ति – घोड़ों का व्यापार।

आहिण्डिक = निषाद पुरुष और वैदेही नारी की संतान अर्थात् यह दोहरी प्रतिलोम जाति है। इसे चर्मकार का कार्य करने के कारण 'कारावर' कहा है।

उग्र = (१) क्षत्रिय पुरुष और शूद्र नारी की संतान। (मनु. १०-९)। (२) ब्राह्मण पुरुष और शूद्र नारी की संतान। (उशना ४१)। (३) वैश्य और शूद्रा की संतान। (गौतम ४-१४)। (सह्याद्रिखंड एवं शूद्र कमलाकर में उग्र को 'राजपूत' कहा गया है।

उद्बन्धक = (१) सूनिक एवं क्षत्रिया की संतान। (उशना १५)। (२) खनक एवं क्षत्रिया की संतान। (वैखानस १०-१५)।

उपक्रुष्ट = बढ़ई की वृत्ति करने वाला वैश्य। आश्व- श्रौ. सू. भाष्य २-१।

कटकार = शूद्र स्त्री का वैश्य पुरुष से चौर्यसंभोग के कारण उत्पन्न पुत्र (उशना स्मृति)।

कटधानक = आवर्तक पुरुष और ब्राह्मणी की संतान।

करण = (१) वैश्य की शूद्र स्त्री से उत्पन्न संतान। (२) क्षत्रिय की वैश्य स्त्री से उत्पन्न संतान।

करणी (या कर्णी) = वैश्य पुरुष की शूद्र स्त्री से उत्पन्न कन्या।

कायव्य = क्षत्रिय पुरुष और निषादी स्त्री का पुत्र।

कारावर = निषाद पुरुष और वैदेही स्त्री की संतति। व्यवसाय – चर्मकार। देखिये – आहिण्डिक।

कारुष = व्रात्य वैश्य और उसी के समान स्त्री की सन्तान (नामान्तर – सुधन्वाचार्य, विजन्मन्, मैत्र एवं सात्वत)।

किरात = शूद्र की स्थिति में आया हुआ क्षत्रिय (मनु. १०-४३-४४)।

कुकुन्द = मागध एवं शूद्र नारी की सन्तान।

कुक्कुट = (१) शूद्र एवं निषाद स्त्री की संतान। (मनु. १०-१८)। (२) उग्र और निषाद स्त्री की संतान। (कौटिल्य ३-७)। (वृत्ति – राजा के लिए कुक्कुट युद्ध का प्रबन्ध करना)।

कुण्ड = विवाहित ब्राह्मण स्त्री के अन्य ब्राह्मण पुरुष से व्यभिचार से उत्पन्न संतति। (मनु, स्मृति ३-१७४)।

कुम्भकार = ब्राह्मण और वैश्य नारी के गुप्त प्रेम से उत्पन्न संतान।

कुरुविन्द = कुम्भकार पुरुष और कुक्कुट स्त्री की संतान।

कुलश्रेष्ठ = कायस्थ समाज की १२ उपजातियों में से एक।

कुशीलव = (१) अंबष्ठ पुरुष और वैदेहक नारी की सन्तान (बौधायन)। कौटिल्य ने इसे वैण कहा है। (२) वैदेहक पुरुष और अंबष्ठ स्त्री की संतान। (कौटिल्य ३-७)।

कृत = वैश्य पुरुष और ब्राह्मण स्त्री की संतति।

कैवर्त = निषाद और आयोगव की संतान। (नामान्तर – मार्गव और दाश)। (वृत्ति- नौका चलाना)।

क्षत्ता = (१) शूद्र पिता और क्षत्रिय माता की संतान। अपरनाम – रथकार, द्वारपाल, निषाद)।

क्षत्रबन्धु (राजन्यबन्धु) = संस्कारहीन नाम मात्र क्षत्रिय।

खनक = आयोगव पुरुष और क्षत्रिय स्त्री की संतान। (वैखानस. १०-१५)। वृत्ति – खुदाई का काम।

खश = (१) ब्राह्मणों से संपर्क न रहने के कारण संस्कारहीन हुए क्षत्रिय वर्ण के लोग। (२) नेपाल की एक वीर जाति का नाम।

गणक = देवल पुरुष और वैश्य स्त्री की संतान। गणक फलज्योतिषी होते थे।

गुहक = श्वपच पुरुष और ब्राह्मण स्त्री की संतान।

गोज = क्षत्रिय स्त्री-पुरुष के गुप्त प्रेम के कारण उत्पन्न संतान।

गोलक = ब्राह्मण विधवा का ब्राह्मण के संबंध से उत्पन्न अपत्य। (मृते भर्तरि गोलकः। (अमर कोश)।

घोलिक = व्याध पुरुष और गारुड स्त्री की संतान।

चक्री = (१) शूद्र पुरुष एवं वैश्य स्त्री की संतान। (उशना २२-२३)। (२) वैश्य पुरुष और ब्राह्मणी की संतान। (वैखानस ११-१३)। वृत्ति – तिल या तैल का व्यापार।

चर्मकार = (१) शूद्र एवं क्षत्रिय स्त्री की संतान। (२) वैदेहक एवं ब्राह्मण स्त्री की संतान। (३) आयोगव और ब्राह्मण स्त्री की संतान। (सात अंत्यजों में से एक जाति)।

चाक्रिक = शूद्र पुरुष एवं वैश्य नारी की संतान। (वैखानस १०-१४)। देखिये – चक्री)

चाण्डाल = स्मृति के अनुसार – (१) ब्राह्मण स्त्री और शूद्र पुरुष की संतान। (२) सगोत्र तथा सप्रवर विवाह से उत्पन्न संतति। (३) अविवाहित कन्या की संतति। (४) संन्यासोत्तर – गृहस्थाश्रमी की संतति। ये लोग **'जन्मचाण्डाल'** कहे जाते थे। (यमस्मृति)

चाण्डाल = कर्मचाण्डाल – (१) आह्वयक (दौंडी पीटने वाला), (२) देवलक (पुजारी की नौकरी करने वाला), (३) नाक्षत्र (भविष्य का धंदा करने वाला), (४) ग्रामयाजक और (५) श्मशानजीवी पाशुपत। ये पांच प्रकार के ब्राह्मण 'कर्मचांडाल' कहे जाते थे। (जन्मचाण्डाल – देखिये)।

चूञ्चु = ब्राह्मण एवं वैदेहक नारी की सन्तान। (कुल्लूक भट्ट)।

चूचुक = वैश्य पुरुष एवं शूद्र स्त्री की संतान।

जटीलक = ब्राह्मण यति का एक प्रकार। (बौद्ध ग्रंथों में उल्लिखित)।

जात्यपकर्ष = उच्चवर्णीय पुरुष का नीच वर्णीय स्त्री से उत्पन्न पुत्र पांच, छह या सात पीढियों तक उसी नीचवर्णीय स्त्री से विवाह करे तो उच्चवर्णीय का जात्यपकर्ष होता है। जात्यपकर्ष के कारण ब्राह्मण परिवार का क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र वर्ण में प्रवेश होता है।

जात्युत्कर्ष = उच्चवर्णीय पुरुष की नीच वर्णीय स्त्री से उत्पन्न कन्या (निषादी, अंबष्ठा, आदि) का विवाह उच्चवर्णीय पुरुष से होने पर उस वंश में उच्चवर्णीयों से ही विवाह करने की परंपरा पांच छह या सात पीढियों तक अखंडित रही तो अंतिम पीढी में जात्युत्कर्ष होता है।

ज्योतिर्लिंग = सौराष्ट्र में सोमनाथ। श्रीशैल - मल्लिकार्जुन। उज्जयिनी- महाकाल। ओंकारमांधाता- ममलेश्वर। परली- बैजनाथ। डाकिनी- भीमशंकर। सेतुबंध- रामेश्वर। द्वारुकावन- नागेश। इन १२ शिवलिंगों को ज्योतिर्लिंग माना गया है।

ताम्र (या ताम्रोपजीवी) = ब्राह्मण स्त्री एवं आयोगव की सन्तान। (वैखानस स्मृति १०-१५)।

दुर्भर = आयोगव पुरुष और धिग्वण स्त्री की संतान।

दौष्यन्त = क्षत्रिय पुरुष और शूद्र नारी की सन्तान।

द्रविड (या करण) = शूद्र की अवस्था को प्राप्त हुआ क्षत्रिय। (मनु. १०-४३, ४४)।

धिग्वण = ब्राह्मण पुरुष और आयोगव स्त्री की सन्तान। (वृत्ति – चमड़े का व्यवसाय)।

धीवर = वैश्य पुरुष एवं क्षत्रिय नारी की संतान।

नर्तक = वैश्य नारी एवं रंजक की संतान। (उशना १९) (शैलुक्ष, नट और नर्तक भिन्न जातियाँ मानी गई हैं। उनकी

वृत्तियाँ भी अलग अलग होती हैं।)

नापित = (१) ब्राह्मण पुरुष और वैश्य नारी की संतान (वैखानस १०-१२)। (२) अंबष्ठ पुरुष और क्षत्रिय नारी की संतान। (वैखानस १०-१५)। वृत्ति – बाल बनाना।

निरवसित = शूद्रों का एक प्रकार – जिनका झूठा पात्र किसी भी संस्कार से शुद्ध नहीं होता।

निषाद = (१). चार वर्णों के अतिरिक्त जाति के लोग। (निरुक्त-औपमन्यव टीका)। (२) ब्राह्मण पुरुष एवं शूद्र स्त्री की संतान। (याज्ञवल्क्य १-९१)। (३) ग्रामसीमा पर रहनेवाला।

नैगम = एक ही नगर के नागरिकों का समुदाय।

पह्लव = शूद्रों की स्थिति को प्राप्त हुआ क्षत्रिय। (मनु. १०-४३, ४४)।

पाण्डुसोपाक = चाण्डाल पुरुष और वैदेहक नारी की संतान। यह बुरुड ही है।

पिंगल = ब्राह्मण पुरुष और आयोगव नारी की संतान।

पुलिन्द = वैश्य पुरुष और क्षत्रिय नारी की अवैध संतान। (वैखानस १०-१४)।

पुल्कस (या पौल्कस, पुक्कस) = निषाद पुरुष और शूद्र नारी की संतान।

पूग = विविध जातियों के उन लोगों का दल जो कोई स्थिर व्यवसाय नहीं करते थे और कामलम्पट तथा धनलोलुप रहते थे। (काशिका)।

पौष्टिक = ब्राह्मण और निषादी की संतान।

प्लव = चाण्डाल एवं अन्ध्र नारी सी संतान।

बन्धुल = मैत्रेयक और जांघिका स्त्री की संतान।

ब्रह्मक्षत्रिय = जन्मतः ब्राह्मण और कर्मतः क्षत्रिय लोग।

ब्रह्मबन्धु = संस्कारहीन नाममात्र ब्राह्मण।

ब्राह्मण के प्रकार = **(१) देव ब्राह्मण** (संपूर्ण ब्राह्मण धर्म का पालन करने वाला)। **(२) मुनि ब्राह्मण** (वन में तपश्चर्या करने वाला)। **(३) द्विज ब्राम्हण** (तत्वज्ञान के अध्ययन में निमग्न रहने वाला)। **(४) क्षत्र ब्राह्मण** (युद्ध में भाग लेने वाला)। **(५) वैश्य ब्राह्मण**। **(६) शूद्र ब्राह्मण** (दुकानदारी करने वाला)। **(७) निषाद ब्राह्मण** (चोरी, मांसाहार आदि करने वाला दुराचारी)। **(८) पशु ब्राह्मण** (केवल यज्ञोपवीत धारण करने वाला ज्ञानहीन)। **(९) म्लेच्छ ब्राह्मण** (अत्याचार करने वाला)। **(१०) चाण्डाल ब्राह्मण** (अत्रिस्मृति ३७३-३८३)। इनके अतिरिक्त **(१) नातिब्राह्मण** (ब्राह्मण कर्म न करने वाला)। **(२) अनूचान** (ज्ञान संपन्न अग्निहोत्री)। **(३) भ्रूण** (यज्ञ के प्रसाद पर जीविका निभाने वाला)। **(४) ऋषिकल्प** (वैदिक एवं लौकिक ज्ञान से संपन्न तथा संयमशील)। **(५) ऋषि** (वरदान या शाप देने में समर्थ)। **(६) मुनि** (सोना और मिट्टी समान मानने वाला श्रेष्ठ ब्राह्मण)।

भस्मांकुर = भ्रष्ट शैव संन्यासी एवं शूद्र वेश्या की संतान।

भिषक् = ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिय कन्या के प्रेम संभोग से उत्पन्न सन्तान। वृत्ति – ज्योतिष, वैद्यक, शल्यकर्म।

भूप = वैश्य पुरुष एवं क्षत्रिय नारी की संतान।

भूर्जकण्टक = व्रात्य ब्राह्मण और ब्राह्मणी की संतान। (अपरनाम – आवन्त्य या वाटधान)

भृज्जकण्ठ = वैश्य पुरुष और ब्राह्मण नारी की संतान। (देखिये अंबष्ठ)।

भोज = वैश्य पुरुष और क्षत्रिय स्त्री की संतान।

मणिकार = (१) क्षत्रिय पुरुष और वैश्य नारी के गुप्त संभोग से उत्पन्न संतान। (उशना ३९-४०)। (२) वैश्य पुरुष और वैश्य स्त्री के गुप्त संभोग से उत्पन्न संतान। (सूत संहिता)।

मत्स्यबन्धक = तक्षक (बढ़ई) और क्षत्रिय नारी की सन्तान। (उशना ४४)।

मद्गु = (१) ब्राह्मण पुरुष एवं बन्दी नारी की संतान (कुल्लूक भट्ट)। (२) क्षत्रिय पुरुष और वैश्य नारी की संतान। (वैखानस १०-१२)।

मन्यु = वैश्य पुरुष और क्षत्रिय स्त्री की संतान।

महापात्र = उत्कल के ब्राह्मणों का एक वर्ग जो प्रायः पौरोहित्य करता था।

मागध = (१) वैश्य पुरुष एवं क्षत्रिय नारी की संतान। (मनु. १०-११,१७)। (२) वैश्य पुरुष एवं ब्राह्मणी की संतान। (गौतम ४-१६)। (३) शूद्र पुरुष और क्षत्रिय नारी की संतान। (बौधायन १-९-७)।

माणविक = शूद्र स्त्री-पुरुष के गुप्त संभोग से उत्पन्न संतान।

मातंग = देखिये चाण्डाल।

माथुर = कायस्थ समाज की एक उपजाति।

माहिष्य = क्षत्रिय पुरुष और वैश्य नारी की संतान। (देखिये – अंबल)।

माहिष्य = क्षत्रिय पति और शूद्र स्त्री का पुत्र।

महिष्या = क्षत्रिय पुरुष की वैश्य स्त्री से उत्पन्न कन्या।

मूर्धावसिक्त = ब्राह्मण पुरुष एवं क्षत्रिय जाति की संतान। यह सर्वोत्तम अनुलोम विवाह माना गया है। इनकी अवैध सन्तान को केवल **अभिषिक्त** कहते है।

मेद = वैदेहक पुरुष एवं निषाद नारी की संतान। (मनु. १०-३६)।

मैत्रेयक = वैदहक पुरुष एवं आयोगव नारी की संतान। (मनु. १०-२३)।

म्लेच्छ = वैश्य पुरुष और ब्राह्मणी के गुप्तसंभोग से उत्पन्न संतान।

यवन = (१) शूद्र पुरुष और क्षत्रिय नारी की संतान। (गौतम ४-१७)। (२) शूद्र अवस्था में प्राप्त क्षत्रिय। (मनु. १०-४३, ४४)।

रजक (धोबी) = पुल्कस (या वैदेहक) पुरुष एवं ब्राह्मणी की संतान। (वैखानस १०-१५)। (२) पुल्कस और वैश्य

स्त्री की संतान। (उशना १८)।

रंजक = शूद्र पुरुष और क्षत्रिय स्त्री के गुप्त संभोग से उत्पन्न संतान।

रथकार = वैश्य पुरुष और शूद्र नारी के विवाह से उत्पन्न जाति। विविध स्मृतियों में इसकी उत्पत्ति के विषय में मतभेद है।

रामक = वैश्य पुरुष एवं ब्राह्मण नारी की संतान। (देखिये – वैदेहक)।

रोमिक = मल्ल जातीय पुरुष और आवर्तक स्त्री की संतान।

वन्दी (या बन्दी) = वैश्य पुरुष एवं क्षत्रिय नारी की सन्तान। वृत्ति – स्तुतिपाठक।

वाल्मीकि = कायस्थ समाज की बारह उपजातियों में से एक की संज्ञा।

विप्र = (दस प्रकार) – द्राविड, तैलंग, कर्नाट, मध्यदेशग और गुर्जर (ये पंच द्रविड) तथा सारस्वत, कान्यकुब्ज, उत्कल, मैथिल और गौड़।

विश् = कृषि, वाणिज्य, कारीगरी इत्यादि द्वारा उपजीविका करने वाले अर्थात् वैश्य।

वेण (या वैण) = (१) वैदेहक पुरुष और अंबष्ठ नारी की संतान। (मनु. १०-१९)। (२) अंबष्ठ पुरुष एवं वैदेहक नारी की संतान। (कौटिल्य ३-७)।

वेणुक = (१) सूत एवं ब्राह्मणी की संतान। (उशना ४)। (२) मद्गु एवं ब्राह्मणी की संतान। (वैखानस १०-१५)। (३) नापित एवं ब्राह्मणी की संतान। (सूत संहिता)।

वेलव = शूद्र पुरुष एवं क्षत्रिय नारी की संतान। (सूत संहिता)।

वैदेहक = (१) वैश्य पुरुष और ब्राह्मण नारी की संतान। (मनु. १०-११,१३,१७)। (२) शूद्र पुरुष और क्षत्रिय नारी की संतान। (गौतम ४-१५)। (३) शूद्र पुरुष और वैश्य नारी की संतान। (उशना २०)।

व्रात = विविध जातियों के श्रमजीवी लोगों का समूह जिनका कोई निश्चित व्यवसाय नहीं होता था। (पातंजल महाभाष्य)।

व्रात्य = गायत्री (या सावित्री) मंत्र के जाप को त्यागने वाला ब्राह्मण या क्षत्रिय। व्रात्यस्तोम नामक यज्ञ से उनका शुद्धीकरण होता है।

शालाक्य (शाकल्य) = मालाकार और कायस्थ नारी की संतान।

शालिक = देखिये मागध।

शूद्र = दो प्रकार – (१) अनिरवसित – जिनका झूठा पात्र मांजने पर पवित्र होता है। (२) निरवसित –जिनके द्वारा उपयुक्त पात्र किसी संस्कार से शुद्ध नहीं होता।

शूलिक = (१) ब्राह्मण पुरुष एवं शूद्र नारी की संतान। (उशना ४२)। (२) क्षत्रिय पुरुष और शूद्र नारी के गुप्तसंभोग से उत्पन्न संतान। वृत्ति – दण्डितों को सूली पर चढ़ाना।

श्वपच (या श्वपाक) = (१) उग्र पुरुष और क्षत्ता स्त्री की संतान। (कौटिल्य ३-७)। (२) क्षत्ता पुरुष और उग्र नारी की संतान। (मनु. १०-५१)।

सिन्दोलक (स्पन्दालिक) = शूद्र एवं मागध नारी की संतान।

सुवर्ण (या सवर्ण) = ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिय स्त्री की वैध संतान। इनके कर्म-संस्कार अथर्व वेद के अनुसार विहित हैं।

सूचक = वैश्य पुरुष और शूद्र नारी की संतान।

सूचिक (या सौचिक तथा सूची) = वैदेहक पुरुष और क्षत्रिय नारी की संतान। अपर नाम – तुन्नवाय (अर्थात् दर्जी)।

सूनिक (या सौनिक) = आयोगव पुरुष और क्षत्रिय नारी की संतान। ब्रह्म पुराण में इसे पशुमारक कहा है। (आज कल कसाई या खाटिक कहे जाते हैं।)

सैरिन्ध्र = दस्यु पुरुष और आयोगव स्त्री की संतान। (द्रौपदी और दमयन्ती ने 'सैरन्ध्री' का किया हुआ काम प्रसिद्ध है)।

सौधन्वन = देखिये रथकार।

* * * *

जातिप्रकार (परिशिष्ट)

अप्रयत शूद्र = शूद्र वर्ण में समाविष्ट न हुई चाण्डाल, पौल्कस आदि जातियाँ।

गौड ब्राह्मण = (पांच प्रकार) = सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड, उत्कल और मैथिल। इन्हें "पंच गौड" कहते हैं।

देशस्थ = पंचद्राविड ब्राह्मण समाज के अन्तर्गत महाराष्ट्र के देशविभाग में रहने वाले ब्राह्मण। ये शाकल शाखीय ऋग्वेदी तथा माध्यंदिन और काण्व शाखीय यजुर्वेदी होते हैं। (**कोंकणस्थ** और **कऱ्हाडे** नामक अन्य दो ब्राह्मणों के प्रकार प्रदेशभेदानुसार महाराष्ट्र में रहते हैं।

दैवज्ञ ब्राह्मण = महाराष्ट्र के सुवर्णकारों की संज्ञा।

द्राविड ब्राह्मण (पंच द्राविड) = गुर्जर, महाराष्ट्रीय, कर्नाटक, तैलंग और केवलद्रविड (अर्थात तमिल और मल्याली)

नामशूद्र = शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री की संतान। वंगाल, असम प्रदेश में चाण्डालों के लिये यह संज्ञा प्रचलित हैं। इन्हें 'नामशूद्र ब्राह्मण' भी कहते है।

पंच गौड = विंध्य की उत्तर में रहने वाले – सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड, उत्कल और मैथिल शाखाओं के ब्राह्मण।

पंचजन = (१) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पांच समाजों की संज्ञा।

पारशव = ब्राह्मण पुरुष और शूद्र स्त्री की संतान। मनु याज्ञवल्क्य आदि के मतानुसार यह निषाद का अपर नाम है। (मनु. ९-१७८)

प्रतिलोम प्रजा = निकृष्ट वर्णीय पुरुष द्वारा उच्च वर्णीय स्त्री से उत्पन्न संतान। प्रारंभ मे केवल छह प्रतिलोम (तथा अनुलोम) जातियां थीं।

मूर्धावसिक्त = क्षत्रिय पुरुष और वैश्य स्त्री की सन्तान। मूर्धावसिक्त को राज्याभिषेक का अधिकार होता है।

रथकार = ब्राह्मण स्त्री और क्षत्रिय पुरुष के विवाहबाह्य संबंध से उत्पन्न एक प्रतिलोम जाति।

रोमिक = मल्ल पुरुष और आवर्तक स्त्री की संतान।

वृषल = मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मणों से संपर्क छूटने तथा धार्मिक क्रिया-कर्म का लोप होने के कारण शूद्रवत् हुआँ क्षत्रिय वर्ग। पौंड्रक, औंड्र, द्रविड, कांबोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद, खश, इन जातियों के लोग वृषल माने जाते थे।

व्रात्य = (१) धार्मिक दीक्षाहीन पुरुष का पुत्र। (२) उपनयन संस्कार हीन। (३) क्षत्रिय की अनौरस संतान (४) शूद्र पुरुष और क्षत्रिय स्त्री की संतान।

शुनिक (या सौनिक) = आयोगव पुरुष और क्षत्रिय स्त्री की संतान। पशुहत्या ही इनका उद्योग होता है।

संकर जाति = चार वर्णों में भिन्नवर्णीयों के विवाह या अनैतिक संबंधों के कारण उत्पन्न जातियां।

स्मृति ग्रंथों मेंउल्लिखित कुछ संकर जातियों की नामावली

प्राचीन संकर जातियाँ = निषाद, पारशव, करण, रथकार, भृज्जकंठ, अंबष्ठ, पुल्कस, मागध, वैदेहक, आवन्त्य, सूत, वेणुक, चर्मकार, चाण्डाल, श्वपच, आयोगव, ताम्रोपजीवी, सूनिक, उद्‌बंधक, पुक्कस, रजक, नर्तक, चर्मोपजीवी, सूचिक, मूर्धावसिक्त, नृप, गूढजातक, उग्र, सूचक, तक्षक, मत्स्यबंधक, कंटकार, कालवच, पुलिंद, रजक, चक्री, भिषक्, कुम्भकार, निषाद, मणिकार, शूलिक, कटकार इत्यादि। स्मृतिग्रंथों में लगभग सौ संकर जातियों के नामोल्लेख वर्णसंकर के निर्देश सहित मिलते हैं।

सारस्वत = गोवा तथा कोंकण विभाग की एक ब्राह्मण उपजाति।

सूत = (१) क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मण स्त्री की संतान। (२) राजा का एक प्रमुख सहकारी। इनकी अवैध संतान को 'रथकार' कहते हैं।

* * *

वर्ग - ३

आध्यात्मिक धर्म की परिभाषा

(श्रीमद्भगवद्गीता में प्रयुक्त)

भगवद्गीता की परिभाषा

श्रीमद्भगवद्गीता में अनेक शब्दों का विशिष्ट पारिभाषिक अर्थों में प्रयोग हुआ है। जिन शब्दों के स्पष्टीकरण की आवश्यकता भगवान् व्यासजी को प्रतीत हुई उनका स्पष्टीकरण स्वयं उन्होंने दिया है। भगवद्गीता के ऐसे पारिभाषिक शब्दों का गीतोक्त स्पष्टीकरण सहित चयन यहां किया है। **यहां शब्द अध्याय-श्लोक के क्रम से संचित किये हैं (अकारादिक्रम से नहीं)।**

स्थितप्रज्ञ = सभी कामनाओं का त्यागी, आत्मस्वरूप में तुष्ट, दुःखों में अनुद्विग्न, सुखों में निस्पृह, राग, भय और क्रोध से दूर, सर्वत्र स्नेहरहित, शुभअशुभ का अभिनन्दन या द्वेष न करने वाला, इन्द्रियों को विषयों से परावृत्त करने वाला, परतत्त्व का द्रष्टा, योगयुक्त, परमात्मनिष्ठ, इन्द्रियों को वश में रखने वाला (२-५५-६८)

ब्राह्मी स्थिति = निस्पृह, निर्मम, निरहंकार अवस्था। (२-७२)

द्विविधा निष्ठा = (३-३) दो प्रकार की अवस्था। १) सांख्य, २) योग। अर्थात् ज्ञानयोग और कर्मयोग।

असक्त = ज्ञानेन्द्रियों का मन से संयम करते हुए कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करने वाला। (३-६)

मिथ्याचार = कर्मेन्द्रियों का संयम करते हुए मन से विषयों का स्मरण करने वाला (३-६)

बुद्धिमान् = (३-१८) जो कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देख पाता है उसी को कृत्स्नकर्मकृत् (समस्त कर्म करने वाला) योगी कहते है।

पण्डित = (३-१९) जिसके सारे कर्म कामना और संकल्पों से वर्जित होते हैं, तथा जिसका कर्म ज्ञानाग्नि से दग्ध होता है।

नित्यसंन्यासी = (५-३) जो किसी का द्वेष नहीं करता और किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं रखता।

योगारूढ = (५-४) शमप्रधान, इन्द्रियार्थ (शब्दादिविषय) और कर्म में निरासक्त, सर्वसंकल्पों का त्याग करनेवाला।

युक्त = (५-८) वह योगी जो ज्ञान-विज्ञान से तृप्त, विजितेन्द्रिय तथा सोना और मिट्टी का ढेला समान मानता है।

युक्त = पाप से अलिप्त (५-१०) जो अपने कर्म ईश्वर को समर्पित करते हुए निःसंग वृत्ति से करता है।

युक्त = (योगी) (५-२३) जो शरीर त्याग से पूर्व काम और क्रोध से उत्पन्न आवेग को सहन कर सकता है। (वही सुखी होता है)।

योगी = (५-२४) जो अन्तरात्मा में सुख पाता है, वहीं क्रीडा करता है, और अन्तरात्मा के ज्योति को देखता है। (वही ब्रह्मरूप होकर ब्रह्मनिर्वाण पाता है।)

मुक्त = (५-२८) मन, बुद्धि को नित्य संयत रखने वाला इच्छा, भय, क्रोध से विरहित, संन्यासी तथा योगी (६-१)- कर्मफल का आश्रय न लेते हुए अपना कर्तव्य कर्म करता हैं।

युक्त = (६-१८) जब साधक का चित्त संयमित होकर, आत्मा में स्थिर होता है और जब वह सभी कामनाओं के प्रति निःस्पृह होता है।

योग = (६-२०-२३) जब अतीन्द्रिय आत्यन्तिक सुख का अनुभव प्राप्त होता है, आत्यन्तिक लाभ का अनुभव होता है, जिस में स्थिर होने पर महान् दुःख से विचलित नहीं होता, दुःखसंयोग का ऐसा वियोग ही योग कहलाता है।

परमयोगी = (६-२९-३२) सभी भूतमात्रों में आत्मा को और आत्मा में सभी भूतमात्रों को देखने वाला। सर्वभूतस्थ परमात्मा से एकत्व प्राप्त कर उसकी भक्ति करने वाला। सर्वत्र सुख-दुःख का आत्मौपम्य बुद्धि से अनुभव पाने वाला।

युक्ततम = (६-४७) जो श्रद्धायुक्त होकर तथा अपना अन्तःकरण परमात्मा से एकरूप कर उसकी भक्ति करता है।

अपरा प्रकृति = (आठ प्रकार) (७-४) = भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार।

परा प्रकृति = जीवतत्त्व। (७-५)

ब्रह्म = परम अक्षर। जो अक्षर (कभी नष्ट न होने वाला) और परम अर्थात् ओंकार से भी परतत्त्व (८-३)

अध्यात्म = (८-३) परब्रह्म की प्रत्येक देह में अन्तरात्मता। इसी को स्वभाव कहा गया है।

अधियज्ञ = (८-४) 'यज्ञो वै विष्णुः' इस श्रुति वचन के अनुसार यज्ञाभिमानिनी देवता विष्णु का अधिष्ठाता।

अधिदैवत = (८-४) पुरुष अर्थात् 'पूर्णम् अनेन सर्वम् इति पुरुषः'- इस निरुक्ति के अनुसार सर्वव्यापी और 'पुरि शयनात् पुरुषः' इस निरुक्ति के अनुसार शरीररूपी पुर में वास्तव्य करने वाला।

अधिभूत =(८-४) क्षरभाव अर्थात् उत्पन्न हुई प्रत्येक वस्तु।

ओम् = (८-१३) एकाक्षर ब्रह्म।

अहोरात्रविद् = (८-१७) सहस्र युगपर्यंत ब्रह्मा (प्रजापति) का दिन तथा रात्रि का ज्ञान रखने वाले।

अव्यक्तअक्षर = (८-२०) हिरण्यगर्भसंज्ञक अव्यक्त से भी पर, जो ब्रह्मादि संपूर्ण भूतमात्र का नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता। इसी को परमगति कहते हैं।

परमधाम = (८-२१) जिस परमभाव को प्राप्त होने पर जीव फिर संसार में नहीं फंसते।

परः पुरुषः = (८-२२) जिसके अन्तर्गत समस्त भूतमात्र हैं और जिससे यह सारा (कार्यस्वरूप विश्व) व्याप्त हुआ है।

अनावृत्ति काल = (८-२३, २४) जिस काल में योगी का प्रयाण होने पर पुनर्जन्म नहीं होता। (अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्ल पक्ष तथा उत्तरायण के छह मास)। इसी को '**शुक्लगति**' कहा है। (८-२३,२४) (२६)

आवृत्तिकाल = (८-२५, २६)- जिस काल में योगी का प्रयाण होने पर पुनर्जन्म होता है। (धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन)। इसी को ''**कृष्णगति**'' कहा है। (८-२५,२६)

राजविद्या, राजगुह्य= (९-२) विज्ञान (अनुभव) सहित ज्ञान, जिसकी प्राप्ति से संसार रूप अशुभ से मुक्तता होती है।

युक्ततम = (१२-२) परम श्रद्धायुक्त होकर परमात्मा में मन विलीन करते हुए युक्त (निरंतर तत्पर) होकर जो उपासना करते हैं।

भक्त = (मद्भक्त = भगवद्भक्त) (१२-१३) भूतमात्र का द्वेष न करने वाला, मित्रता से सभी के साथ व्यवहार करने वाला, करुण, निर्मम, निरहंकार, सुखदुःख समान मानने वाला, क्षमावान्, सतत संतुष्ट, सतत योगी, स्वसंयमी, दृढनिश्चयी, परमात्मा में मन बुद्धि को समर्पित करने वाला, जिससे लोगों को उद्वेग नहीं होता, लोग जिससे उद्विग्न नहीं होते, हर्ष, अमर्ष-भय-उद्वेग से मुक्त, अपेक्षाहीन, शुचि, दक्ष, उदासीन (निःपक्षपाती) व्यथाहीन, सकाम कर्मों का त्याग करने वाला, हर्ष, शोक और इच्छा न करने वाला, शुभ-अशुभ का परित्यागी, शत्रु-मित्र, मान-अपमान, शीत-उष्ण और सुख-दुःख को समान मानने वाला, आसक्तिरहित, निन्दा-स्तुति को समान मानने वाला, मौनी(वाक्संयमी), हर किसी में संतुष्ट, अनिकेत, स्थिरमति। इन ३० गुणों या लक्षणों से युक्त भक्त भगवान् को प्रिय होता है।

क्षेत्र = (१३-१)मानव शरीर।

क्षेत्रज्ञ = (१३-१,२) शरीर को संपूर्णतः जानने वाला। परमात्मा।

ज्ञान = (१३-२) क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञान अर्थात् शरीर और शरीरस्थ ज्ञाता का ज्ञान।

क्षेत्रविकार = (कुल ३१ तत्त्व) (१३-५,६)- पंचमहाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त, पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन पांच इन्द्रियविषय (शब्दस्पर्शादि), इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संघात (देहेन्द्रियरूप समुदाय) में व्यक्त अन्तःकरण की वृत्ति, चेतना, धृति। कुल ३१ तत्त्व **क्षेत्र के विकार** होते है।

तमस् = (१३-८) प्रकृति संभव गुण जो अज्ञान से उत्पन्न, मोहकारक, तथा प्रमाद, आलस्य और निद्रा से जीव को बद्ध करता है।

ज्ञान = (कुल २० लक्षण) (१३-७)। अमानित्व, अदंभित्व, अहिंसा, क्षान्ति, आर्जव, आचार्योपासन, शौच, स्थैर्य, शरीरनिग्रह, शब्दादिविषयों का वैराग्य, अहंकाराभाव, जन्म-मृत्यु- जरा-व्याधि में दुःख दोष देखना, विषयों में अप्रीति. पुत्रदारादि में अनासक्ति, इष्ट, अनिष्ट के प्रति समचित्तता, अनन्य भगवद्भक्ति, पवित्र क्षेत्रवास, असंस्कृत लोगों के समुदाय की अप्रीति, अध्यात्म ज्ञान में नित्य व्यग्रता, तत्त्वज्ञान के प्रयोजन का आलोचन।

ज्ञेय = (१३-१२)- अनादि, परब्रह्म।

प्रकृति = (१३-२०) कार्य (शरीर) करण (मन, बुद्धि, अहंकार और १० इन्द्रियाँ), के कर्तृत्व (उत्पादकर्त्वे) का हेतु।

पुरुष = (१३-२०) सुख/दुःखों के भोक्तृत्व का हेतु।

परमात्मा = (१३, २२) देहस्थ पुरुष।

उपद्रष्टा = (१३,२२) देहस्थ पुरुष।

अनुमन्ता = (१३-२२) देहस्थ पुरुष, क्षेत्रज्ञ।

भर्त्ता = (१३-२२)- देहस्थ पुरुष।

भोक्ता = (१३-२२) देहस्थ पुरुष।

महेश्वर = (१३-२२) देहस्थ पुरुष।

गुणातीत = (१३-२२,२६) प्रकाश (सत्त्वकार्य), प्रवृत्ति (रजोगुण का कार्य), मोह (तमोगुण का कार्य), इस प्रवृत्ति और निवृत्ति की चिंता न करने वाला, उदासीनव्रत्, गुणों से अविचलित, समसुखदुःख, समलोष्टाश्मकांचन, प्रिय-अप्रिय, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, मित्र-शत्रु समान मानने वाला, सर्वारिंभपरित्यागी, अव्यभिचारी भक्ति से युक्त।

गुण = (१४-५)सत्त्व, रजस् और तमस् जो प्रकृतिसंभव (प्रकृति से उत्पन्न) होते हैं।

सत्त्व = (१४-६) वह प्रकृतिसंभव गुण जो निर्मलता के कारण प्रकाशक तथा अनामय (निरुपद्रव) है (१४-६) तथा जो सुख और ज्ञान के संग से पुरुष को बद्ध करता है।

रजस् = (१४-७) प्रकृति संभव गुण, जो रागात्मक, जो तृष्णा और आसक्ति को उत्पन्न करता है और जो आत्मा को कर्म की आसक्ति से बद्ध करता है।

युक्ततमः = (१२-२) परम श्रद्धायुक्त होकर परमात्मा में विलीन होते हुए नित्ययुक्त (निरंतर तत्पर) होकर जो उपासना करते है।

क्षर पुरुष = (१५-१६) संपूर्ण भूतमात्र।

अक्षर पुरुष = (१५-१६)- कूटस्थ (माया आदि अनेक प्रकार से स्थित।

उत्तम पुरुष = (पुरुषोत्तम) (१५-१७)- परमात्मा ईश्वर जो त्रैलोक्य में आविष्ट होकर उसका भरण करता है। जो क्षर पुरुष से परे तथा अक्षर पुरुष से उत्तम है।

दैवी सम्पद् = (१६-१३) अभय, सत्त्वसंशुद्धि, ज्ञानयोग में निष्ठा, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, आर्जव, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग (संन्यास), शान्ति, अपैशुन्य , परदोष प्रकट न करना, तेजः, क्षमा, धृति, शौच, अद्रोह, नातिमानिता। कुल २१ गुण।

आसुरी सम्पद् -(१६-४) = दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, पारुष्य, अज्ञान। (कुल ६ लक्षण)।

नरकद्वार (या तमोद्वार) = (१६-२१,२२) काम, क्रोध, लोभ।

सात्त्विक आहार (१७-८) = रसयुक्त, स्नेहयुक्त, स्थिर (देह में चिरकाल स्थिर रहनेवाला), हृदय को प्रिय।

राजस आहांर (१७-९) = कडवा, खट्टा, लवणयुक्त,

अतिउष्ण, तीक्ष्ण रूखा, दाहकारक, चिन्ता और रोग उत्पन्न करने वाला।

तामस आहार (१७-१०) = यातयाम (मन्दपक्व), रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, पर्युषित (बासा) उच्छिष्ट, अमेध्य (यज्ञ के लिये अयोग्य। (६ लक्षण)

सात्त्विक यज्ञ (१७-११) = फल की इच्छा न रखते हुए विधिपूर्वक कर्तव्य बुद्धि से किया हुआ यज्ञ।

राजस यज्ञ (१७-१२) = फल के उद्देश्य से और दम्भ व्यक्त करने के लिये किया जाने वाला।

तामस यज्ञ (१७-१३) = विधिहीन, अन्नदानरहित, मन्त्रहीन, दक्षिणारहित, तथा श्रद्धाविरहित। (५ लक्षण)

शारीरतप (१७-१४) = देव, ब्राह्मण, गुरु और प्राज्ञ लोगों का पूजन, शौच, आर्जव, ब्रह्मचर्य, अहिंसा।

वाङ्मय तप (१७-१५) = वह भाषण जो अनुद्वेगकर, सत्य, प्रिय, और हितकर होता है तथा स्वाध्याय का अभ्यास।

मानस तप (१७-१६) = मन की स्वच्छता या प्रसन्नता सौम्यता, मौन, मनोनिग्रह, भावसंशुद्धि (निष्कपटता)।

सात्त्विक तप (१७-१७) = वह कायिक, वाचिक और मानसिक तप जो परम श्रद्धा से एवं फलाभिलाषाविरहित वृत्ति से किया जाता है।

राजस तप (१७-१८) = जब शारीर, वाङ्मय एवं मानस तप, सत्कार, मान पूजा के हेतु से तथा दम्भ से किया जाता है।

तामस तप (१७-१९) = जो शारीर वाङ्मय और मानस तप अविवेक से, दूसरों को पीडा देने के लिये स्वयं को पीड़ा देते हुए किया जाता है।

सात्त्विक दान (१७-२०) = जो दान कर्तव्यबुद्धि से उपकार न करने वाले को या प्रत्युपकार करने की शक्ति न रखने वाले, सत्पात्र व्यक्ति को, पवित्र देश और काल में दिया जाता है।

राजस दान (१७-२१) = प्रत्युपकार करने के या पाने के, या दानधर्म का फल पाने के उद्देश्य से जो खेदपूर्वक दिया जाता है।

तामस दान (१७-२२) = जो अयोग्य देश और काल में अपात्र व्यक्तियों को सत्कारवचनरहित अवज्ञा से दिया जाता है।

ॐतत् सत् (१७-२३) = ब्रह्म का त्रिविध नामनिर्देश।

सत् (१७-२६, २७) = सद्भाव साधुभाव, प्रशस्त कर्म। (यज्ञ, तप और दान मे स्थित ईश्वरार्थ कर्म।

असत् (१७-२८) = अश्रद्धापूर्वक यज्ञ, दान, तप, कर्म, जिसका फल इह तथा पर लोक में नहीं के बराबर होता है।

संन्यास = (१८-२) काम्य कर्मों का परित्याग।

त्याग (१८-२ = नित्य, नैमित्तिक आदि सभी कर्मों के फलों का त्याग।

तामस संन्यास (१८-७) = नियत कर्मों का मोह से परित्याग।

राजस त्याग (१८-८) = जब कर्म का त्याग शरीरक्लेश के कारण दुःख की भावना से होता है।

सात्त्विक त्याग (१८-९) = आसक्ति और फल की इच्छा का त्याग करते हुए जब नियत कर्म किया जाता है, और आसक्ति और फल की इच्छा का भी त्याग होता है।

त्यागी (१८-११) = जो कर्म के फल का त्याग करता है।

कर्मचोदना (१८-१८) = ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता(ये तीन प्रकार)

कर्मसंग्रह (१८-१८) = करण, कर्म, कर्ता (तीन प्रकार)

सात्त्विक ज्ञान (१८-२०) = जिससे सारे भूतमात्र में एक अविनाशी तत्त्व का विभक्तता में अविभक्त एक अखंड) तत्व का दर्शन होता है।

राजस ज्ञान (१८-२१) = जिस ज्ञान के कारण भूतमात्र में अनेक भिन्न भिन्न स्वरूपों का पृथक्ता से भान होता है।

तामस ज्ञान (१८-२२) = जिस ज्ञान के कारण देहादि एक मात्र वस्तु में सर्वस्व की ही प्रतीति होती है। (अर्थात् वही एकमात्र उपाय है अन्य सब झूठ ऐसी धारणा होती है) तथा जो तत्त्वविरहित एवं अल्पमात्र होता है।

सात्त्विक कर्म (१८-२३) = जो कर्म अनासक्ति से एवं राग-द्वेष हीन वृत्तिसे फल की इच्छा के बिना किया जाता है।

राजस कर्म (१८-२४) = जो फल की इच्छा से अहंकारपूर्वक अतिकष्ट से किया जाता है।

तामस कर्म (१८-२५) = जो कर्म अन्तिम परिणाम, शक्ति क्षय तथा अर्थक्षय, हिंसा, और पौरुष का विचार किये बिना किया जाता है।

सात्त्विक कर्ता (१८-२६) = जो मुक्तसंग, अहंकार विरहित, धृति और उत्साह से युक्त, तथा सिद्धि या असिद्धि के विषय में निर्विकार होता है।

राजस कर्ता (१८-२७) = जो रागी (आसक्तियुक्त) कर्मफल की इच्छा रखने वाला, परधन का लोभी, हिंसक, बाह्य-अन्तर शुचित्वहीन, तथा हर्ष और शोक का अनुभव करता है।

तामस कर्ता (१८-२८) = अयुक्त (चंचल चित्त वाला), प्राकृत (संस्कारहीन), स्तब्ध (घमंडी), शठ (कपटी), नैष्कृतिक (दूसरों की जीविका नष्ट करने वाला), आलसी, विषादी और दीर्घसूत्री।

सात्त्विकी बुद्धि (१८-३०) = जिससे प्रवृत्ति, निवृत्ति, कार्य, अकार्य, भय, अभय, बन्ध, मोक्ष इन द्वन्द्वों का सम्यक् ज्ञान होता है।

राजसी बुद्धि (१८-३१) = जिससे धर्म और अधर्म, कार्य और अकार्य का निर्णययुक्त ज्ञान नही हो पाता।

तामसी बुद्धि (१८-३२) = जिसके कारण मनुष्य को धर्म का अधर्म, एवं अन्य सभी विषयों का उलटा ज्ञान होता है।

सात्त्विकी धृति (१८-३३) = जिस अव्यभिचारिणी (अर्थात् सदा समाधियुक्त) धृति के द्वारा मन, प्राण, तथा इन्द्रियों की क्रियाओं का योग से धारण होता है।

राजसी धृति (१८-३४) = जिस के द्वारा मनुष्य धर्म और काम के विषयों को प्रसंगानुसार फल की आकांक्षा से धारण करता है।

तामसी धृति (१८-३५) = जिसके कारण दुष्ट बुद्धि का मनुष्य निद्रा, भय, शोक, विषाद, मद इन दोषों का त्याग नहीं करता।

सुख (१८-३६) = जिसमें (अभ्यास) परिचय के कारण मनुष्य रममाण होता है और दुःख के उपशमन का अनुभव पाता है।

सात्त्विक सुख (१८-३७) = जो आरंभ में विषवत् होता है किन्तु परिणामतः अमृततुल्य होता है।

राजस सुख (१८-३८) = जो विषय और इन्द्रिय के संयोग से उत्पन्न होता है, प्रारंभ में अमृततुल्य होने पर भी जिसका परिणाम विषवत् होता है।

तामस सुख (१८-३९) = जो आरंभ में और अंत में जीव को मोहित करता है ऐसा निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न होने वाला अनुभव।

ब्रह्मकर्म (१८-४२) = शम, दम, तप, शौच, क्षमा, आर्जव ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य (वेदों पर विश्वास) इनका स्वाभाविक आचरण।

क्षत्रकर्म (१८-४३) = शौर्य, तेज, धृति, (उत्साह) दक्षता, युद्ध से पलायन न करना, दान, ईश्वरभाव (प्रभुशक्ति), इनका स्वाभाविक आचरण।

वैश्यकर्म (१८-४४)=कृपि, पशुपालन और वाणिज्य स्वभावतः करना।

शूद्रकर्म (१८-४४)=परिचर्या (अर्थात् अन्य तीन वर्णों के कर्मों में सहाय देना।

× × ×

भगवद्गीता-शांकरभाष्य में उल्लिखित

आध्यात्मिक परिभाषा

प्रास्ताविक

भगवद्गीता एक विश्वमान्य ग्रंथ है। इसमें प्रयुक्त अनेक शब्दों में मार्मिक अर्थ भरा हुआ है जिसका आकलन केवल अनुवाद मात्र सें नहीं होता। स्वयं गीताकार ने ही अपने अनेक शब्दों का विवरण यत्र तत्र किया है। संस्कृत के अनेक दार्शनिक आचार्यो ने अपनी धारणा के अनुसार गीता के अर्थगर्भ शब्दों का मार्मिक विवरण अपने भाष्यग्रंथों में किया है। सभी प्रमुख भाष्य ग्रंथों में कथित गीता-शब्दों के अर्थो का संकलन एक आवश्यक कार्य है जो अभी तक नहीं हुआ है। जगद्गुरु श्री शंकराचार्यजी का भाष्यगीता उपलब्ध भाष्यों में अनेक दृष्टि से अग्रगण्य है। प्रस्तुत संकलन में जिस श्लोक के शब्द का आचार्यजी ने स्पष्टीकरण दिया है उस श्लोक का अध्याय निर्देश सहित क्रमांक दिया है। पहला क्रमांक अध्याय का और दूसरा श्लोक का सूचक है। कई शब्दों के अनेक अर्थ संदर्भ के अनुसार भाष्य में मिलते हैं वे प्रायः सभी यहां एकत्र आये हैं। उनका तौलनिक अध्ययन उद्बोधक होगा। अतिप्रसिद्ध तथा अप्रस्तुत शब्दों का चयन यहां नहीं किया है। अनेक स्वनामधन्य आचार्यों के भाष्य तथा उन पर लिखे उपभाष्य ग्रंथों में प्राप्य इस प्रकार के विवरणात्मक अर्थों का एक स्वतंत्र कोश निर्माण हो सकता है। संस्कृत वाङ्मय कोश के प्रस्तुत तृतीय खंड में विविध महत्त्वपूर्ण विविध शास्त्रग्रंथों में प्रयुक्त परिभाषात्मक शब्दों का चयन करने की संकल्पना होने के कारण गीता के अन्य भाष्यों का ही शब्दसंग्रह नहीं किया गया। व्यवहार में धर्म, ज्ञान, योग, भक्त, ईश्वर, सत्य, आत्मा, माया आदि अनेक शब्दों का प्रयोग होता है किन्तु उस प्रकार के सुरूढ शब्दों में कितनी विलक्षण अर्थच्छटा होती है, इसकी कल्पना हमारे इस चयन से सहज आ सकेगी।

इसमें क्रियापदों के अर्थों का चयन नहीं है। जो संस्कृत शब्द उल्लिखित हैं उनके केवल प्रातिपदिक रूपों का ही निर्देश यहां है। मूलतः बहुवचनी शब्द भी एकवचन में निर्दिष्ट हैं। मूल भाष्य की वाक्यरचना के हिंदी अनुवाद में आवश्यकता के अनुसार सुविधा के लिए लेशमात्र परिवर्तन लिये किया है किन्तु उसके कारण मूल अर्थ में भेद न होने की यथाशक्ति दक्षता ली है।

अक्षरः = (१) संसार रूपी वृक्ष का बीज (१५-१८) (२) संसार बीजों की अनन्तता के कारण जो नष्ट नहीं होता (न क्षरति), और अनेक माया प्रकारों से नित्य, रहता है। १५-१६ (३) जो परमार्थतः सत् और असत् के पार है (११-३७)।

अक्षर पुरुष = क्षरसंज्ञक पुरुष की उत्पत्ति का बीज, अनेक संसारी जंतुओं के काम कर्म आदि संस्कारों का आश्रय, (१५-१६)

अकुशल =, काम्य कार्य (१८-१७)।

अकृतबुद्धि = जो देहादि के व्यतिरिक्त आत्मा का अस्तित्व मानता है किन्तु उस आत्मा को ही केवल कर्ता मानता है (१८-१६)

अक्रोध = दूसरों के द्वारा निंदा या आघात होने पर उत्पन्न हुए क्रोध का उपशमन करना। (१६-२)

अक्रोध और क्षमा में भेद यही है कि निंदा और आघात होने पर अन्तःकरण में किसी प्रकार विकार उत्पन्न न होना क्षमा होती है किन्तु उस अवस्था में उत्पन्न विक्रिया का प्रशमन अक्रोध होता है। (१६-३)

अग्निषोमौ = भोक्ता वैश्वानर को अग्नि और भोज्य अन्न को सोम संज्ञा है। ये दोनों मिलकर अग्निषोमौ कहलाते हैं। (यह सारा संसार 'अग्निषोमौ' ही है यह ज्ञान होने पर अन्नदोष नहीं होता (१५-१४)

अचापलम् = किसी प्रयोजन के बिना वाणी, हाथ, पाव आदि से कोई क्रिया न करना (१६-२)

अज्ञ = देह को आत्मा समझने वाला, मै कर्ता हूँ यह निश्चित बुद्धि रखने वाला लौकिक तथा वैदिक कर्मों में अधिकारी। ३-७

अज्ञान = संसार की प्रवृत्ति का कारण। १३-११

अद्रोह = दूसरे की हत्या करने की इच्छा का अभाव। (१६-३)

अधर्म = विवेक विज्ञान की हानि जिसका कारण होता है।

ऐसा (आचार) (१ भू-)

अधिदैवत = पुरुष की एक संज्ञा (८-४)।

अधिभूत = उत्पन्न होने वाली प्रत्येक वस्तु (८-४)।

अधियज्ञ = सर्वयज्ञाभिमानी देवता विष्णु की एक संज्ञा (८-४)

अध्यात्म = (१) परब्रह्म का प्रत्येक देहमात्र में जो प्रत्यगात्मा या अंतरात्मा स्वरूप है उसे 'स्व-भाव' या अध्यात्म कहते हैं।(८-१)।

(२) आत्मा और अनात्मा का विवेक जिसका विषय होता है (११-२)

(३) परमात्मा के स्वरूप की आलोचना (१५-५)

(४) वह तत्त्व जो शरीर को आश्रय बना कर, जो अन्तरात्म भाव से उसमें रहता है, और परिणाम में जो परमार्थ ब्रह्म ही है (जिसे स्वभाव भी कहते है)

अनन्यभक्ति = ज्ञान जिसका लक्षण और आत्मा जिसका विषय है (८-२)।

अनन्ययोग = (१) विश्वरूप देवता के अतिरिक्त जिसका अन्य कोई आलंबन या आधार नहीं ऐसा योग- (१२-६)

(२) भगवान वासुदेव के परे कोई नहीं अतः वही हमारा गंतव्य है, ऐसी निश्चित और अविचल बुद्धि रहना (१३-१०)

अनित्य = जिसका आदि और अन्त होने के कारण केवल उनके मध्यम काल में जिसका अस्तित्व होता है (५-२२)।

अनुबन्ध = पश्चात् होने वाली वस्तु (१८-२५)

अनुमन्ता = कार्य के व्यापार में स्वयं प्रवृत्त न होते हुए भी प्रवृत्त व्यक्ति के समान उस कार्य में जो अनुकूल दिखाई देता है (१३-२२)

अन्न = भोज्य, भक्ष्य, चोष्य, लेह्य इन चार प्रकारों के भक्षणीय पदार्थ (१५-१४)

अपरा प्रकृति = यह संसारबन्धनस्वरूप होती है। इससे भिन्न क्षेत्रज्ञलक्षणा एवं प्राणधारण की निमित्त प्रकृति को परा प्रकृति कहते हैं।

अभिष्वंग = (१) पुत्रादि के प्रति आत्मभावना स्वरूप, विशेष आसक्ति- (१३-९)।

(२) अपना प्रियतम व्यक्ति सुखी या दुःखी होने पर मै ही सुखी या दुःखी हूँ अथवा उसके जीने मरने पर मै ही जीवित या मृत हूँ ऐसी ममता(१३-९)

अभिनव = ऐसा नित्य वर्धमान पदार्थ जिसमें अवयव आने के कारण उपचय स्वरूप वृद्धि होते रहती है (२-२२)

अभ्यसूयक = सन्मार्ग से चलने वालों के गुणों को सहन न करने वाला। (१६-१८)

अभ्यास = (१) एकमात्र परमात्मा में समान अनुभूति की ऐसी आवृत्ति, जिसमें तदतिरिक्त अनुभूति से विघ्न नहीं होता, ऐसी अखण्डित अनुभूति। (८-८)

(२) किसी एक चित्तभूमि पर समान अनुभव की आवृत्ति होना (६-३५)

अभ्यासयोग = चित्त को अन्य विषयों से आकर्षित कर एक ही आलम्बन (आधार) पर पुनः पुनः स्थापन करते रहना (१२-९)

अमृत = देवयज्ञ (होम) होने पर अवशिष्ट रहा हुआ अन्न।

अयशः = अधर्माचरण के कारण होने वाली अकीर्ति- (१०-५)।

अलस = अपने कर्तव्य में भी प्रवृत्ति न होना जिसका स्वभाव है (१८-२८)

अलोलुप्त्व = विषय पास में होते हुह भी इन्द्रियों में विक्रिया का अभाव (१६-२)

असंग = पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा से बाहर होना (१५-३)

असत् = (१) उत्पत्ति के पहले और विनाश के पश्चात् जो उपलब्ध नहीं होता (२-१६)

(२) जिस में 'नास्ति' (नहीं है) यह बुद्धि होती है (११-३७)

(३) जो भगवत्प्राप्ति के साधन से बाह्य, और अश्रद्धा से किये जाते है ऐसे यज्ञ दान आदि कर्म (१७-२८)।

असम्मोह = उपस्थित विषयों में विवेक पूर्वक प्रवृत्ति

अविद्या = (१) जिसमें क्रिया, कारक और फल में भेद होते हुए भी जो सब कर्म करवाती है। (२-६९)

(२) यह मेरा कर्म है, मै इस कर्म का कर्ता हूँ, अमुक फल की प्राप्ति के लिए मैं यह कर्म करूंगा यह धारणा, जो अनादि काल से जीवों में प्रवृत्त हुई है (१८-५)।

(३) विषय और विषयी (विषयों का स्वामी) इनमें विवेक का अभाव (१४-६)। मै सुखी हूँ इस अनुभूति का विषय जो सुख, उससे असंबंधित आत्मा का संबंध जोड़ना। (१४-६)

(४) तमोगुण के प्रभाव में होने वाला अनुभव (१३-२)

(५) पुरुष का प्रकृति में स्थित होना (१३-२०)

अविद्वान् = (१) देह इन्द्रियां आदि में आत्मबुद्धि रखने वाला (अर्थात उन्हीं को आत्मा मानने वाला), (१३-२)।

(२) राग-द्वेष आदि विकारों से प्रेरित होकर धर्म-अधर्म का आचरण करने वाला (१३-२)।

(३) मैं कर्ता हूँ, अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म मेरे कर्तव्य हैं इस प्रकार का अनुभव करने वाला (२-२१)

अव्यक्त = (१) अहकार का प्रवर्तक मूल कारण।

(२) प्रजापति की स्वापावस्था (८-१८)।

(३) बुद्धितत्त्व का ईश्वरशक्ति स्वरूप कारण (१३-५)।

(४) जिसका इन्द्रियों से ज्ञान नहीं हो सकता। (९-४)।

अव्यय = (१) जिसमें (उपचय) वृद्धि और (अपचय) न्हास नहीं होता (२-१७)।

(२) जन्मादि छह भावविकारों से विरहित (७-१३)।

(३) जिसमें स्वरूपतः वा धर्मतः व्यय नहीं होता (१८-२०)।

अव्यवसायी = जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से उत्पन्न विवेक बुद्धि से हीन होता है। (२-४१)

अहंकार = (१) कार्य और करणों के संघातरूप शरीर में आत्मभाव की प्रतीति (३-२७)।

(२) अहंकार वासना से युक्त अव्यक्त कारण भी अहंकार कहलाता है। (७-४)

(३) मन का कारण (७-४)।

(४) जो महाभूतों का कारण और अहंप्रत्यय (मैं हूं) स्वरूप है (१३-५)।

(५) (आत्मा में अध्यारोपित) विद्यमान और अविद्यमान गुणों से युक्त आत्मा को ही जिसके कारण निज स्वरूप माना जाता है (१६-१८)।

(६) देह इन्द्रियां आदि में अहंभाव (१८-५३)।

अहंकार-विमूढात्मा = कार्य-करण स्वरूप शरीर के धर्मों से युक्त, कार्य-कारण को ही स्वरूप मानने वाला, अविद्या के कारण आत्मा में कर्म मानने वाला (३-२७)।

अहिंसक = (१) किसी के प्रतिकूल आचरण न करने वाला (६-३२)। (२) सारे प्राणिमात्र के हित में (अनुकूलता में) ही निरत रहने वाला (५-३३)।

अहिंसन = दूसरे की हत्या करने की इच्छा का अभाव।

अहिंसा = (१) प्राणियों को पीड़ा न देना (१०-५), (१३-७)। (२) प्राणियों को पीडावर्जित करना (१६-२)।

आचार्य = मोक्ष प्राप्ति की साधना का उपदेश करने वाला (१३-७)

आत्मा = (१) नित्य, अविक्रिय, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अपरिच्छेद्य (२-१८)। (२) अहंप्रत्यय का विषय (२-१९)। (३) छह भाव विकारों से रहित (२-२२)। (४) कर्म रहित (४-१८)। (५) कार्य-करणों के संघात से बाह्य (४-२१)। (६) निर्व्यापार (४-३२)। (७) जन्मवृद्धि आदि विकारों से रहित होने के कारण निष्क्रिय (५ प्र.)। (८) समाधि (योग) द्वारा परिशुद्ध हुआ अन्तःकरण (६-२०)। (९) चैतन्य ज्योतिः स्वरूप (६-२०)।

आत्मज्ञान = जिस ज्ञान का विषय आत्मा होता है। (२-६९)।

आत्मवान् = अप्रमत्त (किसी प्रकार का प्रमाद न करने वाला) (२-४५)।

आत्मवित् = जिसका मिथ्याज्ञान निवृत्त हो चुका है ऐसा पुरुष (५ प्र.)। (२) निष्क्रिय आत्मा को आत्मस्वरूप में जानने वाला (५ प्र.)

आत्मविनिग्रह = स्वभावतः सर्वत्र संचार करने वाले देह इन्द्रियादि को सन्मार्ग में ही निरुद्ध करना (१३-७)

आत्महा = पुनः पुनः देहधारण करके उसका नाश करने वाला (१३-२८)।

आश्चर्य = पहले कभी न देखा हुआ जब अकस्मात् दिखाई देता है तब उसे आश्चर्य कहते है (२-२९)।

आश्रय = जिसका आधार लेकर पुरुषार्थों के साधन की इच्छा की जाती है (४-२०)

आसक्तिनिमित्त = पुत्रभार्या, गृहधन आदि (१८-४९)

आसंग = प्राप्त विषय के प्रति मन की प्रीति जम जाना (१४-७)

आसुर = (१) कामोपभोग ही परम पुरुषार्थ है इस प्रकार की निश्चित धारणा वाला। (१६-११)। (२) अशुचि, अनाचारी, मायावी और अनृतवादी (१६-७)।

आस्तिक्य = आगमोक्त विचारों पर श्रद्धायुक्तता (१८-४३)।

आसुरभाव = हिंसा, असत्यता आदि (७-१५)।

इच्छा = सुख का हेतु जिसका विषय होता है। (७-२७)

इन्द्रिय = आत्मा की उपलब्धि के द्वार (५-१३)।

ईश्वर = सर्वज्ञ और द्विविध (परा-अपरा) प्रकृति के द्वारा जगत् का कारण। (७-६)। (२) सर्वात्मा एवं सर्व भूतमात्र का सुहृद् (११-३६)। (३) सर्व यौगैश्वर्य, सर्व ज्ञानशक्ति से युक्त तथा सत्त्वोपाधियुक्त (१२ प्र.) (४) निरतिशय ज्ञान. ऐश्वर्य, बल आदि शक्तिमान् (१०-१५)। (५) सर्वज्ञ परमगुरु (१३-१६)। (६) सर्वात्मत्व और स्वतंत्रत्व के कारण पुरुष को ईश्वर कहते हैं (१३-२२)। (७) क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ संज्ञक द्विविध प्रकृति की शक्तियों से सम्पन्न (१४-३)। (८) धर्म और अधर्म की अपेक्षा के अनुसार इस जगत् का शासनकर्ता (१६-८)।

ईश्वरत्व = द्विविध प्रकृति से युक्तता (१३-१९)।

ईश्वरभक्त = यह सारा दृश्य संसार भगवान वासुदेव ही है (तद् व्यतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं) इ. विचार से जिसकी बुद्धि भर गई हो। (१३-१८)। (२) अपनी संपूर्ण आत्मबुद्धि जिसने ईश्वर में समर्पित की है (१३-१८)।

ईश्वरभाव = जिन पर शासन करना हो उनके प्रति अपनी प्रभुशक्ति प्रकट करना (१८-४३)।

उपकारी = प्रत्युपकार की अपेक्षा न रखने वाला (५-२९)।

उपद्रष्टा = शरीर इन्द्रियों के व्यापारों से असंबंधित किंतु व्यापारयुक्त कार्यकारणों को समीपता से देखने वाला (१३-२२)।

ऐश्वरं जन्म = मायारूप और अप्राकृत प्रकृति से असंबंधित आविर्भाव (९-४)।

ऐश्वरं बलं = ऐसा बल जो काम राग आदि विकारों से रहित तथा जगत् की धाराणा के लिए पृथ्वी में प्रविष्ट होने से भारी पृथ्वी नीचे नहीं गिरती और विदीर्ण नहीं होती।

ऐश्वरं रूपम् = ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य तथा तेज से सम्पन्न (११-२)।

ऐश्वरं विश्वरूपम् = समस्त जगत् का आद्य आत्मस्वरूप (१२ प्र.)।

ओंकार = परब्रह्म का वाचक, मन्द तथा मध्यम बुद्धि के लोगों को परब्रह्म का ज्ञान होने के हेतु प्रतिमावत् या प्रतीकवत् जिसे कहा गया है (८-११)। (२) ब्रह्म का नाम (८-१३)। जिसकी उपासना से कालान्तर में मुक्ति फल प्राप्त होता है (८-११)

करुणा = दुःखितों पर दया (१२-१३)।

कर्म = (१) जिसमें अनेक अनर्थों का संभव होता है

और परम्परा से जिसके द्वारा श्रेयःप्राप्तिरूपी फल अनिश्चित होता है। (३ भू.)। (२) ऋत्विक् और यजमान का वह यज्ञ व्यापार जिसके द्वारा अपूर्व की उत्पत्ति होती है (३-१४)। (३) जगत् चक्र को चालना देने का हेतु (३-१४)। (४) शरीर और इन्द्रियों द्वारा जिसकी निष्पत्ति होती है (४-१८)। (५) जिसका प्रयोजन दृष्ट या अदृष्ट होता है, शास्त्रोक्त विधि तथा प्रतिषेध द्वारा जिसका बोध होता है तथा शरीर, वाणी तथा मन के द्वारा जो निष्पन्न होता है (४-२१)। (६) ध्यान योग का बहिरंग (६ प्र.)। (७) अधिकार संपन्न गृहस्थ को जिसका आचरण करना पड़ता है (६ प्र.) (८) देवता की प्रसन्नता संपादन करने हेतु चरु-पुरोडाश आदि द्रव्यों का परित्याग (या समर्पण) यज्ञ कहा जाता है। इस यज्ञ का कर्म शब्द से निर्देश होता है (३-८)। (९) धर्म और अधर्म या पुण्य और पाप जिसका स्वरूप है (१५-२) (१०) कर्म के दो प्रकार (१) धर्म्य अर्थात् शास्त्रीय (२) और अधर्म्य अर्थात् शास्त्रबाह्य (१८-१५)। (११) लोकस्थिति का निमित्त (३-२४)।

कर्मकाण्ड = श्रुति तथा स्मृति में कथित कर्म (२-११)।

कर्मबन्ध = धर्म और अधर्म नामक बन्ध (२-३९)।

कर्मसंग = दृष्ट और अदृष्ट फल देने वाले कर्मों में तत्परता (१४-७)।

कर्मकौशल (कर्मसु कौशल) = चित्त ईश्वरार्पित होने के कारण स्वधर्म स्वरूप कर्मों का आचरण करते हुए सिद्धि या असिद्धि के संबंध में समत्व (या तटस्थ) बुद्धि रहना (२-५०)। (यही गीतोक्त योग का लक्षण है)।

कवि = क्रान्तदर्शी (१०-३७)।

कर्मयोग = (१) कर्म में प्रवृत्ति (६-२)। (२) निःसंगवृत्ति से सुख-दुःखादि द्वन्द्व सहते हुए ईश्वर की आराधना के निमित्त स्वधर्माचरण (इसी को समाधियोग भी कहते हैं) (२-३९)। (३) फलनिरपेक्ष एवं ईश्वरार्पण बुद्धि से जिसका पालन होता है वह है वैदिक कर्मयोग (५-६) (यही ज्ञानयोग का साधन होने के कारण औपचारिकता से योग या संन्यास कहा जाता है। (५-६)। (४) ध्यानयोग का बहिरंग (६-३)।

कर्मप्रकार = शास्त्रीय, अशास्त्रीय, नित्य, नैमित्तिक, काम्य, प्रतिषिद्ध (५-१३) (२-२१)। श्रौत, स्मार्त, पुराणोक्त, संचित, क्रियमाण, आरब्धफल, अनारब्धफल, वर्णकर्म, आश्रमकर्म, ज्ञानपूर्व, ज्ञानोत्तर, सकाम, निष्काम, न्याय्य, अन्याय्य।

गुणसंख्यान = कापिलशास्त्र या सांख्यदर्शन।

काम = (१) समीप न होने वाले (दूरस्थ) विषयों की तृष्णा (तीव्र अभिलाषा) (७-११)।

(२) इन्द्रिय के संपर्क में आये हुए सुखदायक इष्ट विषय का श्रवण या स्मरण होते ही निर्माण होने वाली तद्विषयक तृष्णा (५-२३)।

(३) सत्त्वादि गुणों की आसक्ति (१३-२१)।

(४) श्रौत स्मार्त कर्मों का फल (१२-१२)।

कामोद्भव वेग = अन्तःकरण का वह प्रक्षोभ जिसमें रोमांच, प्रसन्न नेत्र, मुख आदि चिन्ह व्यक्त होते हैं (५-२३)।

कामी = अन्तवत् साधन से उद्योग करने वाला (७-२३)।

कार्य = कारण का विपरिणाम (१३-२०)।

कालानल = प्रलय के समय सभी लोकों का दहन करने वाली अग्नि (११-२५)।

कुशल = नित्य कर्म (१८-१०)।

कूट = (१) जिसके अंतर्गत दोष होते हुए भी गुण मात्र दिखाई देते है ऐसी वस्तु (३-१२)। (२) माया, व्याकृत आदि शब्दों से जिसका उल्लेख होता है। इस प्रकार के कूट के अध्यक्षरूप में रहने वाला (उसे देखनेवाला) **कूटस्थ** कहलाता है। (१२-३)। (२) माया, वंचना, वक्रता, कुटिलता।

कृतान्त (वेदान्त) = जिसमें कृत (कर्म) की समाप्ति होती है ऐसा शास्त्र (१८-१३)।

कृष्ण = भक्तजनों के पापादि दोषों का कर्षण करने वाला। यह शब्द कृष् धातु से सिद्ध हुआ है। (६-३४)

कैवल्य = सभी करणों से वियोग (१३-२)।

कौशल = स्वभावतः बन्धनकारक कर्मों का समत्व बुद्धि से निवारण (२-५०)।

क्रियाविशेष = भोग और ऐश्वर्य के साधनभूत कर्म (२-४३)।

क्रोध = (१) अपने प्रतिकूल तथा दुःखजनक विषयों का दर्शन या श्रवण होते ही उनके प्रति उत्पन्न होने वाला द्वेष (५-२३) (२) किसी कारण कामविकार प्रतिहत (रुद्ध) होने से उत्पन्न विकार (२-६२)।

क्रोधोद्भव वेग = जिसमें गात्रों का प्रकम्प, पसीना, होंठ चबाना, लाल आखें इत्यादि चिन्ह व्यक्त होते हैं।

क्षत्रिय = '(१) जगत् का पालन करने वाले (४-१)। (२) ऐसे लोग जिन में सत्त्वगुण न्यून और रजोगुण प्रधान होता है (४-१३)

क्षमा = निंदा या ताड़न होने पर भी चित्त की अविकृतता (४-१०)।

क्षान्ति = दूसरे ने अपना अपराध करने पर भी अविक्रियता (१३-७)।

क्षेत्र = (१) शरीर की एक संज्ञा (१३-१)।

क्षतत्राणात् क्षयात्, क्षरणात् क्षेत्रवद् वा अस्मिन् कर्मफलनिर्वृत्तेः शरीर क्षेत्रम् (१३-१)।

क्षेत्रज्ञ = ब्रह्मा से घास के तिनके तक के अनेक क्षेत्र (शरीर) रूप उपाधि में प्रविभक्त चैतन्यस्वरूप परमात्मा (१३-२)।

(२) अविक्रिय, आकाशवत् सर्वव्यापी, अमूर्त आत्मा, ईश्वर (१३-२)।

(३) अविद्या, कामना, कर्म और उपाधि के स्वरूप का अनुवर्तन करने वाला (१४-३)।

क्षेत्रधर्म = इच्छा, द्वेष, सुख दुःख आदि (५-१९)।

गुणविकार = राग द्वेष मोह आदि (७-१३)।

चेतना = देह-इन्द्रियों द्वारा नित्य अभिव्यक्त होने वाली बुद्धिवृत्ति या अन्तःकरणों की वृत्ति (१०-२२)। जिसमें आत्मचैतन्य का आभास होता है (१३-६) (जैसे तप्त लोहपिंड में अग्नि का)

चैतन्याभास = देह, इन्द्रिय मन और बुद्धि (१३-२२)।

जनार्दन = (१) जिससे जन अभ्युदय निःश्रेयस रूप पुरुषार्थ रूप प्रयोजन की याचना करते हैं (१०-१८)। (२) देवों के प्रतिकूल असुर जनों को जो नरकादि स्थानों में भेजता है। (१०-१८)।

जीवात्मा = ब्रह्म जो बुद्धि, मन, इन्द्रियां आदि उपाधियों से युक्त तथा सर्व उपाधि के धर्मों का जिस पर अध्यास होता है। (४-२५)

ज्ञान = (१) शास्त्र के तथा आचार्य के द्वारा प्राप्त आत्मा (बुद्धि मन आदि आध्यात्मिक विषयों) का अवबोध (३-४१) (४-१०) (१६-१)।
(२) कर्म में अकर्म का दर्शन (४-१९)।
(३) आत्मा और ईश्वर का एकत्व जिसका लक्षण है (४-२१)।
(४) ज्ञान के दो प्रकार, स्वाभाविक और औपदेशिक (उपदेश के द्वारा प्राप्त) (१३-१)।
(५) सम्यक्ज्ञान = क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ जिसका विषय होते हैं। (१३-२)।
(६) जन्म आदि में दुःखदोष देखना (ज्ञान का हेतु होने से ज्ञान कहलाता है (१३-८)।
(७) अनन्ययोग से भक्ति (१३-१०)।
(८) अन्तःकरण स्वरूप क्षेत्र का धर्म (१४-६)।
(९) बुद्धि की वृत्ति (१०-३०) (धृति भी बुद्धि की एक विशिष्ट वृत्ति है)।
(१०) ज्ञान जिस विषय का होता है वह तदाकार होता है (१८-५०)।
(११) शास्त्रोक्त पदार्थों का परिचय। (इसीका स्वानुभव पाना ही विज्ञान' है। (८-६)

ज्ञाननिष्ठा = (१) शास्त्र और आचार्य के द्वारा उत्पन्न, क्षेत्रज्ञ और परमात्मा के एकत्व के ज्ञान के स्वानुभवाधिष्ठित निश्चय के रूप में स्थिर रहना। इसी अवस्था को।'चतुर्थी भक्ति' (ज्ञानी की भक्ति) कहते है। (१८-५१)। (२) प्रत्यगात्मस्वरूप विषय का सतत प्रत्यय पाने की इन्द्रियों की उत्कट प्रवृत्ति (अभिनिवेश)। (१८-५५)

ज्ञानफल = ज्ञेय जब ज्ञात होता है तब उसे ज्ञानफल कहते हैं। (१३-१७) (अज्ञान-संमोह का नाश और आत्मस्मृति का लाभ यही ज्ञानफल है (१८-७३)।

ज्ञानयोग = (१) नैष्कर्म्य जिसका स्वरूप है (३-४)। (२) कर्मयोग जिसका उपाय है (अर्थात् कर्मयोग के द्वारा जिस की प्राप्ति होती है। (३-४)

ज्ञानयोगनिष्ठा = निष्क्रिय आत्मा के स्वरूप में स्थिर रहना (५ प्र.)।

ज्ञानाग्नि = जिनका फल नहीं मिला, जो ज्ञानोत्पत्ति के पूर्व किए गए, ज्ञानप्रगति के साथ किए जाने वाले, अनेक पूर्वजन्मों में किए गए इत्यादि सभी प्रकार के कर्मों को नष्ट (भस्मसात्) करने के कारण ज्ञान पर अग्नि का आरोप होता है (४-३७)।

ज्ञानी = (१) अपना कोई प्रयोजन न होने के कारण कर्मों तथा उनके फलों के प्रति आसक्ति न रखने वाला (४-१९)। (२) निष्क्रिय ब्रह्म का आत्मरूप में दर्शन पाने वाला (४-२२)। (३) एक (अविभक्त) आत्मा के साक्षात्कार से सम्पन्न। (१३-२७)।

ज्ञेय = सर्व क्षेत्र। ज्ञाता = क्षेत्रज्ञ। (१३-२)।

तत्त्व = ब्रह्म की यथात्मता। तत् सर्वनाम अर्थात् सर्वस्वरूप ब्रह्म का नाम है, अतः तत् का भाव तत्त्व याने ब्रह्म का स्वभाव (२-१६)।

तत्त्वज्ञान = मोक्ष अर्थात् जन्म-मरण स्वरूप संसार से उपरति (या मुक्ति) (१३-११)।

तत्त्वदर्शी = ब्रह्म अर्थात ज्ञेय का यथार्थ रूप देखना जिनका स्वभाव है (२-१६)।

तत्त्वविद् = आत्मा के यथार्थ रूप को जानने वाला (५-८)।

तप = (१) परमात्मविषयक ज्ञान (४-१०)। (२) इन्द्रिय संयमपूर्वक शरीर का पीडन (शरीर को सुखाना) (१०-५)।

तात = (१) तनोति आत्मानं पुत्ररूपेण इति पिता तात उच्यते। अर्थात् पिता अपने को पुत्ररूप से तानता है इस कारण पिता को तात (तन् धातु) कहते हैं। (२) पिता और पुत्र में अभेद होने के कारण पुत्र भी 'तात' कहा जाता है। शिष्य और पुत्र में अभेद के कारण प्रियशिष्य को भी तात कहते हैं (६-४०)

तुष्ट = बाह्य लाभ की अपेक्षा न रखने वाला। (२-५५)।

तृष्णा = अप्राप्त वस्तु की अभिलाषा (१४-७)।

तेज = प्रगल्भता (१८-४४) (ढीठपन)।

त्यागी = कर्म की तथा उसके फल की आसक्ति का त्याग करते हुए नित्यकर्मों का आचरण करने वाला (१०-१०)।

तामस-राजस-त्यागी = शरीर-क्लेश के भय से कर्म का त्याग करने वाला (१८-३)।

त्रैवर्णिक = जिन्हें शास्त्रोक्त आचार करने का अधिकार (जन्म के कारण) प्राप्त हुआ है (३-३)।

दम = बाह्य इन्द्रियों का उपशमन- (१६-१) [१०-४]।

दर्प = (१) धन, (श्रेष्ठ) स्वजन इत्यादि कारणों से अंतकरण में उत्पन्न उत्सेक (उद्दामता, मस्ती) (१६-४)। (२) अन्तःकरण का एक दोष, जिसके कारण मनुष्य धर्म का भी अतिक्रमण करता है (१६-१८)। (३) हर्ष होने पर धर्म के अतिक्रमण करने में कारणीभूत मनोविकार (१८-५३)

दम्भ = धर्मध्वजित्व (अपनी धार्मिकता की ख्याति करना) (१६-४)।

दम्भित्व = स्वधर्म का प्रकटीकरण करने की प्रवृत्ति। (१३-७)।

दाक्ष्य = सहसा उपस्थित हुए कार्य में व्यामोहित न होते हुए प्रवृत्त होने का गुण (१८-४५)

दान = (१) यथाशक्ति (अपने अन्न धनादि का) संविभाजन। (१०-५) (१६-१)। (२) देय वस्तु के प्रति मुक्तहस्तता (१८-४४)।

दीन = फल की तृष्णा से (कर्म में) प्रवृत्त होने वाले (२-४९)।

दुःख = (१) इन्द्रियों की विषयों के संबध में तृष्णा। (दुःखों का कारण होने से तृष्णा को ही दुःख कहते हैं।) (२-६७)। (२) काम (विकार) का कार्य (३-३९)। (३) प्रतिकूलात्मक (१३-६)। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख अविद्या मूलक होते हैं (५-२२)।

दुर्बल = इन्द्रियों पर विजय न पाने वाले (२-४)।

दृश्य = पांचभौतिक सृष्टियों से बुद्धि तक सारी प्रकृति का कार्य (३-४२)।

दृढव्रत = निश्चित विज्ञान सम्पन्न (७-२८)।

देहभृत् = देह में आत्मा का अभिमान रखने वाला (१८-११)।

दैवं कारणम् = नेत्रादि इन्द्रियों पर अनुग्रह करने वाले आदित्यादि (देवता) (१८-१४)।

दैवी प्रकृति = शम, दम, दया, श्रद्धा आदि जिसके स्वरूप-लक्षण हैं (२-१३)।

द्रव्ययज्ञ = सत्पात्रों में द्रव्य का विनियोग [४.२८]।

द्वन्द्व = जो पदार्थ परस्पर विरोधी एवं सुख दुःख के कारण होते हैं (२-४५)।

द्वन्द्वातीत = शीत उष्ण आदि के आघात होते हुए भी चित्त में विषण्णता न रखने वाला (४-२३)।

द्वेष = दुःखदायक विषय का प्रथम अनुभव पाने पर बाद में उसी प्रकार का विषय प्राप्त होने पर उत्पन्न भावना (१३-६)।

धर्म = (१) जगत् की स्थिति का कारण तथा प्राणियों के अभ्युदय- निश्रेयस का साक्षात् हेतु (१ भू.) (२) वर्णाश्रम जिसके लक्षण हैं और जो अभ्युदय निःश्रेयस का साधन है (४-७)। (३) शास्त्र के आदेशानुसार विहित कर्तव्य (१८-३१) (४) इन्द्रियों का संयम, शम, दम, दया, अहिंसा आदि जिसके लक्षण हैं (९-१४)।

धृति = (१) देह इन्द्रियादि के थक जाने पर उस थकावट को रोक लगाने वाली अन्तःकरण की विशिष्ट वृत्ति जिसके कारण इन्द्रियां और देह उत्साहित होकर कार्य में नहीं थकते [१६-३]। (२) जिस वृत्ति के कारण थके हुए देह और इन्द्रियों की धारणा होती है। (१३-६)। (३) उत्साहित मनुष्य को किसी भी अवस्था में जिसके कारण थकावट नहीं आती (१८-४४).

ध्रुव = अव्यभिचारी (विचलित न होने वाला) (२-२७)।

ध्यान = (१) मन को वश करते हुए उसीकी सहायता से हृदय से ऊपर जाने वाली नाडी से ऊर्ध्व गमन (८-१२)। (२) चित्त को हृदयकमल में एकाग्र करने पर ऊर्ध्वगामिनी नाडी से क्रमशः भूमिजय करते हुए प्राण को भ्रूमध्य में स्थिर करना (८-१०)। (३) मन को हृदयकमल में सुस्थिर करना (८-१२)। (४) श्रोत्रादि ज्ञानेंद्रियों को उनके निजी विषयों से परावृत्त कर मन में स्थिर करना, फिर मन को प्रत्यक् चैतन्य (अंतरात्मा) में लीन करते हुए जो चिन्तन होता है उसे ध्यान कहते हैं (१३-२३)। (५) तैलधारा के समान संतत (अखंडित) अनुभूति (१३-२४)।

ध्यानयोग = जो सम्यक् दर्शन का अन्तरंग है (६-१)।

ध्यानयोगपर = ध्यान = आत्मस्वरूप का चिन्तन और योग = आत्मविषय में चित्त का एकाग्रीकरण। (१८-५२) (ऐसे साधक के लिए मंत्र जप आदि कर्तव्य आवश्यक नहीं होते)।

नातिमानिता = अपने को अत्यंत पूज्य मानने की भावना का अभाव (१६-३)।

नाश = पुनर्जन्म में पहले से हीन जन्म की प्राप्ति (६-४०)।

नित्य = विपरिणाम नामक विकार से रहित (२-२१)।

नित्यतृप्त = विषयों की आकांक्षा न रखने वाला (४-२०)।

नियतकर्म = जो जिस कर्म का अधिकारी है उसका वह कर्म, जिसका कोई फल नहीं कहा गया। (३, ८)

निरहंकार = विद्या प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति के निमित्त स्वतः के प्रति विशेष संभावना न होना (२-७१)।

निराश्रय = दृष्ट और अदृष्ट फल के निमित्त किसी साधना का आश्रय न लेने वाला (४-२३)।

निर्मम = देह या जीवन के विषय में भी जिसे ममता नहीं होती (१८-५३) (ऐसा पुरुष ही शांत होता है)। (२) शरीर की धारणा के निमित्त स्वीकृत पदार्थों में भी यह मेरा है इस प्रकार का अभिनिवेश न रखने वाला (२-७१)।

निर्वैर = अपने पर अत्यंत अपकार करने प्रवृत्त हुए लोगों के प्रति भी शत्रुत्व की भावना न रखने वाला (११-५५)।

निवृत्तिधर्म = ज्ञान और वैराग्य जिसके लक्षण है (१ भू.)।

निष्कर्मा = निष्क्रिय ब्रह्म को ही आत्मस्वरूप में जानने वाला (१८-४९)।

निःस्पृह = शरीर को जीवित रखने की भी स्पृहा (इच्छा) न रखने वाला। (२-७१)

नैष्कर्म्य = ज्ञानयोग द्वारा निष्क्रिय आत्मा के स्वरूप में स्थिरता (३-४) इसी को नैष्कर्म्यसिद्धि कहा है (३-४)। यह अवस्था ज्ञानरहित कर्म के परित्याग मात्र से प्राप्त नहीं होती।

पण्डित = पण्डा अर्थात् आत्मविषय बुद्धि जिन्हें प्राप्त हुई है। (२-११)।

परम् = व्यतिरिक्त तथा विलक्षण (७-१३)।

परमात्मतत्त्व = अद्वैत, चैतन्यमात्र, एकरसमय, अज, अजर, अमर, अभय, अनन्त - (इत्यादि विशेषणों का विशेष्य)

(१८-५५)।

परमात्मा = (१) अक्षर ब्रह्म (३-१५), (२) बुद्धि का द्रष्टा (३-४३), (३) चित्तसमर्पण करने का विषय (८-८), (४) भक्तों पर अनुग्रह करने वाला (९-२९), (५) केवल द्रष्टा (दृशिमात्रस्वरूप) तथा विक्रियारहित (९-१०), (६) ज्ञान, बल, वीर्य आदि विशिष्ट धर्मों से युक्त (१०-९), (७) निर्गुण होने के कारण व्यय रहित (१३-३१)। (८) वेदान्त के अर्थ का प्रवर्तक (१५-१५) (वेदान्तकृत्, वेदविद), (९) अपनी चैतन्यमयी बलशक्ति से प्रवेश कर केवल सता मात्र से त्रैलोक्य का धारण करने वाला (१५-१७), (१०) अविद्या के कारण माने हुए देह इन्द्रियां मन आदि आत्मस्वरूपों से परतम। (१५-१७), (११) सभी भूत मात्रों का (समष्टिरूप) आत्मा (१५-१७)।

परमार्थदर्शी = वाणी, मन, शरीर की चेष्टाओं का त्याग करने वाला, आयासरहित, प्रसन्नचित्त, सभी आत्मबाह्य प्रयोजनों से निवृत्त (१३-५) (ऐसा मनुष्य ही वास्तव सुख में रहता है)।

परमार्थयोग = कर्मयोग के पालन से उत्पन्न फल (२-५३)।

परमार्थ संन्यास = (१) सर्व कर्म और उनके फल का त्याग जिसका स्वरूप है (६-२)। (२) निवृत्ति जिसका लक्षण है (६-२)।

परमार्थ संन्यासी = (१) अग्निहोत्र (श्रौतकर्म) और क्रिया (स्मार्तकर्म) न करने वाला (निरग्निः अक्रियः) (६ भू.)। (२) श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास और योगशास्त्र में कथित संन्यासित्व तथा योगित्व से युक्त (६ प्र.)।

परमेश्वर = (१) नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वभूतमात्र का आत्मा, निर्गुण, संसाररूपी दोष के बीज के प्रदाह का कारण (७-१२) महाभूतों से अत्यंत विलक्षण (१३-२७)।

पाप = सर्व धर्म तथा अधर्म संज्ञक बन्धन जिसका रूप है (१८-६६)।

पुण्यकर्म = जिससे सत्त्वशुद्धि (या चित्तशुद्धि) होती है (७-२८)।

पुराण = जिसमें वृद्धि स्वरूप विकार नहीं होता (परमात्मा का एक विशेषण) (२-२१)।

पुरुष = (१) पुर (शरीर) में शयन करने वाला (अर्थात् जीवात्मा) तथा पूर्ण (८-२२)। (२) आदित्य के अन्तर्गत हिरण्यगर्भ, सभी प्राणियों पर अनुग्रह करने वाला (८-४)। (३) पूर्णम् अनेन सर्वम् = जिस से यह सारा ओतप्रोत है। (४-७), (४) क्षेत्रज्ञ, भोक्ता, जीव ये जिसके अन्य पर्याय हैं (१३-२०)।

पैशुन = एक के पास दूसरे के छिद्र (दोष) प्रकट करना (१६-२)।

प्रकृति = (१) सत्त्व, रज और तम इन त्रिगुणों की साम्यावस्था (३.२७), (२) पूर्व जन्म में किए हुए धर्म-अधर्म आदि के संस्कारों की वर्तमान जन्म में अभिव्यक्ति (३-३३), (३) जिसके वश में सारा जगत् होता है और जिससे मोहित होने के कारण मैं वासुदेव (परमात्मा) हूं यह मनुष्य नहीं पहचानता (४-६), (४) सूक्ष्म महाभूत, अहंकार, बुद्धि और अव्यक्त इन पांच प्रकारों में अपरा प्रकृति विभक्त होती है। (१३-५, प्र.) (५) जीव का मूल स्वरूप, क्षेत्रज्ञ ईश्वरात्मिका परा प्रकृति कहलाती है। (३ प्र.), (६) ईश्वर की मायाशक्ति (७) जन्मान्तरों में अर्जित विशेष संस्कारों के कारण बना हुआ मनुष्य का स्वभाव (७-२०) (८) देहात्मवादिनी प्रकृति राक्षसी तथा आसुरी कही जाती है (९-१२)। (९) शरीर (कार्य) और करणों (इन्द्रियों) के कर्तृत्व के रूप में संसार का कारण (१३-१९)। (१०) ईश्वर की विकार निर्माण करने वाली शक्ति (१३-१९), (११) क्षेत्र (अपर) क्षेत्रज्ञ (पर) संज्ञक ईश्वर की दो प्रकृतियां होती हैं जिनके द्वारा ईश्वर जगत् की उत्पति, स्थिति और प्रलय का हेतु होता है। वे दोनों प्रकृतियाँ अनादि तथा संसार का कारण होती हैं। (१३-१९)

प्रज्ञा = आत्मा और अनात्मा का विवेक करने के कारण विकसित हुई बुद्धि (२-५५)।

प्रणय = स्नेह के कारण निर्मित विश्वास (११-४१)।

प्रणव = परमात्मा का निजी स्वरूप, जिसमें सारे वेद समाये हैं (७-८)।

प्रणाश = पुरुषार्थ की अयोग्यता (२-६३)।

प्रद्वेष = शासन का अतिक्रमण करते हुए बर्तन (१६-१८)।

प्रभाव = उपाधि से प्राप्त शक्ति (१३-३)।

प्रमाद = प्राप्त कर्तव्य न करना (१४-९)।

प्रसाद = अनुग्रह करने की बुद्धि (११-४७)।

प्राकृत = बालक के समान जिसकी बुद्धि अत्यंत असंस्कृत होती है। (१८-२८)।

प्रेयस् = अविद्या का कार्य (२-१३)।

फल = फल्गुतया लयम् (अदर्शनं) गच्छति इति (क्षुद्रता के कारण जिसका लय होता है) (१८-१२)।

फलाकांक्षी = जो भिन्न भिन्न देवताओं का यजन करते हैं (४-१२)।

बुद्धि = (१) निश्चयात्मिका चित्त की वृत्ति (३-४२)। (२) सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम अर्थ जानने का अन्तःकरण का सामर्थ्य (४-१०)। (३) अहंकार का कारण तथा निश्चयात्मिका (१३-५) (४) विक्षेप तथा चलन से रहिता बुद्धि को 'निश्चला' बुद्धि कहते हैं (२-५३) (५) विकल्पों से वर्जित होने पर 'अचला' बुद्धि कही जाती हैं (२-५३)। (६) विक्षिप्ता बुद्धि = अनेक साध्य तथा उनका अनेक साधनों से संबंध प्रतिपादन करने वाले आप्तवाक्यों से जिसमें नानात्व उत्पन्न हुआ है (२-५३)। (७) अहंकार का कारण महत्तत्त्व (७-४) (८) विवेक करने की अन्तःकरण की शक्ति (७-१०)।

बुद्धियुक्त = समत्वविषयक बुद्धि से युक्त (२-५०)।

बुद्धियोग = (१) समत्वबुद्धि से युक्त होकर किया हुआ

कर्म (२.४९), (२) ईश्वर में बुद्धि को समाहित (स्थित) करना (१८-५७), (३) बुद्धि = भगवत्तत्त्व का सम्यग् दर्शन, उससे प्राप्त योग (१०-१०) (अर्थात् चित्त की तन्मयता) (४) सम्यक्दर्शन जिसका स्वरूप है (१०-१०)

बुद्धिविशुद्धता = मायारहितता (१८-५१)।

ब्रह्म = (१) जो भूख, प्यास आदि समस्त सांसारिक धर्मों से रहित है, जो नेति, नेति (ऐसा नहीं, ऐसा नहीं) इस प्रकार के वेद वांक्यों द्वारा सब विशेषणों से परे बताया गया है, (४-२५) (२) सर्व दोषों से अस्पृष्ट (५-१९) (३) जिसमें सारे विशेषण विध्वस्त होते हैं ऐसा अक्षर तत्त्व (१२ प्र.) (४) जो जातिमत्, गुणवद् और क्रियावत् न होने के कारण जातिवाचक, गुणवाचक तथा क्रियावाचक शब्द से कहा नहीं जाता (१३-१२), (५) इन्द्रियों से अतीत किंतु केवल शब्द (वेद) रूप प्रमाण से जिसका ज्ञान होता है (१३-१२), (६) जो एक, अद्वितीय (जिसके समान दूसरा नहीं), अविषय ओर आत्मस्वरूप होने से किसी से भी संबंधित नहीं (१३-१२), (७) जिसका प्रतिपादन अन्य तत्त्वों के अपोह (अपसारण, निराकरण) से तथा तद्भिन्न पदार्थों से धर्मों का अध्यास (आरोप) करने से होता है ऐसा श्रेष्ठ तत्त्व (१३-१२)। (८) जो अव्यक्त माया की शक्ति से युक्त तथा काल सूक्ष्मता, कारणता, नित्यता, महत्ता इनकी दृष्टि से सर्वोच्च होने से 'ऊर्ध्व' कहलाता है (१५ प्र.)।

ब्रह्मचर्य = गुरु की शुश्रूषा तथा भिक्षान्न का भोजन आदि व्रतों का पालन (१४-६).

ब्रह्मनिर्वाण = मोक्ष (२-७२)।

ब्रह्मविद् = ईश्वर से अपना अभेद जानने वाला (४-१०)।

ब्रह्मसूत्र = ब्रह्म को सूचित करने वाले वाक्य (१३-४)। उनके द्वारा ब्रह्म पाया जाता है अतः उन्हें 'ब्रह्मसूत्रपद' कहते है।

ब्राह्मण = सत्त्व प्रधान मनुष्य (४-१३)।

ब्राह्मणत्व = भूलोक का ब्रह्म। भौमं ब्रह्म (१ भू.)।

ब्राह्मी स्थिति = सर्व कर्मों से संन्यास लेकर ब्रह्मरूप में अवस्थित होना (२-७२)

भक्त = (१) जिसने अपना अंतरात्मा परमात्मा को समर्पित किया हो (९-३१)। (२) भगवान् के लिए कर्म करने वाला और भगवान् को ही परम प्राप्तव्य मानने वाला (११-५५), (३) भगवान् के अतिरिक्त दूसरे को शरण न जाने वाला (१२-१)।

भक्ति (अनन्या) = जो भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी के प्रति नहीं होती (११-५४)।

भक्ति (उत्तमा) = परमार्थ (मोक्ष) का ज्ञान ही जिसका स्वरूप है (२-२०)।

भगवान् = (१) अज (जन्म रहित) अव्यय (अपक्षयनाश रहित), भूतमात्रों का अधिपति, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त-स्वभाव (१ भू)। (२) ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य तेज इन गुणों से संपन्न (१ भू.) (जैसे श्रीकृष्ण)। (३) ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य ये छह गुण जिसमें नित्य, प्रतिबन्धरहित तथा संपूर्ण होते हैं। (४) जिसका तत्त्वतः जन्म नहीं होता किन्तु जो सामान्य मनुष्यवत् जन्म पाया सा दीखता है (४-६)

भय = (१) जन्म-मरण आदि स्वरूप संसार ही सबसे बड़ा भय है (२-४०)। (२) नरक आदि दुर्गति जिसका स्वरूप है (३-३५)।

भाव = परमार्थ तत्त्व के प्रति अभिनिवेश (अत्यधिक आकर्षण) (१०-७)।

भावसंशुद्धि = दूसरों से व्यवहार करते समय मायावीपन का न होना (१७-१६)।

भावना = आत्मज्ञान के प्रति अभिनिवेश (२-६६)।

भूत = अदृष्ट, दृष्ट, प्रणष्ट तथा भ्रान्ति जिनका स्वरूप है (२-२८) (२) विनायक, मातृगण, चतुर्भगिनी, सप्तमातृका इत्यादि देवता (९-२५) (३) समस्त विकाररूप पदार्थ (१५-१६) (४) जगत् (१५-१३)। (५) कार्य (शरीर) करण (इन्द्रियां) का समुदाय जिनका स्वरूप है (अर्थात् प्राणिमात्र)। (६) जो एक-दूसरे के नाश के कारण होते हैं (२-२४)।

भूतग्राम = स्थावर जंगम समस्त पदार्थ (८-१९)।

मन = संकल्प और विकल्प जिसका स्वरूप है (३-४२) (२) जो स्वभावतः चंचल होने के कारण स्थिर नहीं होता (६-२६)। (३) जो शरीर का प्रमथन और इन्द्रियों को विक्षिप्त तथा परवश करता है (६-३४)। (४) शास्त्र तथा आचार्य के उपदेश से संस्कृत होने पर जो आत्मदर्शन का साधन होता है (२-२१)।

मनःप्रसाद = मन की शांति, स्वच्छता (विकारहीनता) (१७-१६)।

मंत्र = जिसके प्रयोग द्वारा पितरों तथा देवताओं को हविर्दान होता है (९-१६)।

मन्द = कर्म में तथा केवल कर्मफलों में आसक्त मनुष्य (३-२९)।

मात्रा = (मीयन्ते। ज्ञायन्ते शब्दादयः याभिः ताः) जिनके द्वारा शब्द, स्पर्श आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् ज्ञानेद्रियां। (२-१४)।

मानित्व = अपनी प्रशंसा करने का स्वभाव (१३-७)।

मुक्त = जिसके धर्म अधर्म आदि बंधन निवृत्त हुए हैं (४-२३) (अर्थात् शास्त्रोक्त विधि-निषेधों के परे)।

मुनि = (१) मनन जिनका स्वभाव है और जो सर्व पदार्थों के ज्ञानी हैं (१०-३७)। (२) कर्मफलों से संन्यास करने वाला (६-३)। (३) ईश्वरस्वरूप का मनन करने वाला (५-६)।

मृत्यु = इसके दो प्रकार होते है (१) धनादि का अपहरण और (२) प्राणों का अपहरण (१०-३४)।

मोक्ष = (१) ईश्वरस्वरूप होना (४-१०)। (२) अमृतत्व का अनुभव (२-१५)। (३) जीवात्मा का परमात्मा से संगम (१५-७)। (४) सर्व उपद्रवों से रहित विष्णु का परम पद (२-५१)। (५) ज्ञानपूर्वक सर्व कर्मों के त्याग का फल (१८-८) (६) सत्त्वशुद्धि, ज्ञानप्राप्ति, सर्व कर्मों से संन्यास और ज्ञाननिष्ठा इस अनुक्रम से प्राप्त होने वाली परम शान्ति की अवस्था (५-१२)।

मोह = (१) मैं कर्ता हूं, यह मेरा कर्म है और मुझे इसका फल भोगना है यह धारणा (४-१८) (२) परमार्थ तत्त्व के ज्ञान की उत्पत्ति में प्रतिबन्ध होने का कारण (७-२७)।

मौन = मन का संयम (अर्थात मन में उत्पन्न होने वाले विचारों का नियंत्रण) (१७-१८)।

यज्ञ = (१) देवताओं के उद्देश्य से चरु, पुरोडाश आदि हविर्द्रव्यों का त्याग, इसे विसर्ग तथा कर्म कहते हैं (८-३)। (२) भगवान् जिसके स्वामी होते हैं वही यज्ञ हैं। (९-२२)। (३) भगवद्विषयक ज्ञान ही यज्ञ है (९-१५)।

यति = ज्ञाननिष्ठा में प्रवृत्त साधक (२-५८)।

यथाभूतार्थ वचन = जिस वचन में अप्रिय और असत्य वर्जित होते हैं (१६-६)।

यदृच्छालाभ = प्रार्थना न करते हुए जो अनायास प्राप्त होता है (४-२२)।

यश = धर्म के कारण हुई कीर्ति (१०-५)।

युक्त = मेरे सारे कर्म ईश्वर के लिए हैं, मेरे लिए नहीं हैं इस प्रकार निश्चयवाला साधक (५-१२)।

योग = आत्मा की देहादि से पृथक्ता, कर्तृता, भोक्तृता मानने की जिसमें अपेक्षा होती है, जो धर्म-अधर्म के विवेक से युक्त है, मोक्ष की साधना का अनुष्ठान जिसका स्वरूप है। (इसी विषय में व्यग्र बुद्धि को 'योगबुद्धि' कहते हैं। योगी कर्मी उन्हीं को कहते हैं जिन्हें योगबुद्धि प्राप्त हुई है (२-११ भू.)। (२) सांख्यबुद्धि की प्राप्ति का उपाय (अर्थात् कर्मयोग और समाधियोग) (२-३९) (३) सिद्धि और असिद्धि के प्रति समभावना (२-४८) (४) विवेकजनित प्रज्ञारूप समाधि (२-५३), (५) योग की साधना से उत्पन्न सर्वज्ञता रूप सामर्थ्य को भी योग कहते हैं (१०-७) (६) सम्यक्दर्शन ही जिसका स्वरूप लक्षण है, (१०-७) (७) अप्राप्त विषय की प्राप्ति (९-२२) उस प्राप्त विषय का रक्षण 'क्षेम' कहा जाता है। यही 'योगक्षेम' शब्द का पारिभाषिक अर्थ है) (८) शास्त्र और आचार्य के द्वारा ज्ञात हुए विषयों का इन्द्रिय-मन के संयम से एकाग्र चित्त हो कर अपने में अनुभव प्राप्त करना (१६-१)। (९) चित्त के समर्पण के विषय (परमात्मा) में विजातीय प्रतीतियों के व्यवधान से रहित, समान को योग कहते हैं (८-८)। स्वरूप प्रत्ययों की आवृत्ति के अभ्यास

योगज्ञ = चित्त के संचार को जानने वाले (६-१९)।

योगबल = समाधि (चित्त की एकाग्रता या निरुद्धता), के अनेक संस्कारों से चित्त में उत्पन्न स्थिरत्वं (८-१०)।

योगी = जिसने योग अर्थात् चित्त का समाधान प्राप्त किया है (६-१) (६-४)। (२) जिन कर्ममार्गियों की बुद्धि योग विषय में लग जाती है वे भी योगी कहलाते हैं (२-११ भू.)। (३) मोक्षप्राप्ति के हेतु कर्मानुष्ठान करने वाले (२-११ भू.)। (४) संयमवान् तथा जितेन्द्रिय (२-६९)। (५) ज्ञान प्राप्ति का एक उपाय इस बुद्धि से सारे कर्म अपने लिए कल की अपेक्षा न रखते हुए ईश्वर को समर्पण करते हैं (५-५)।

रजोगुण = जो कामविकार से उत्पन्न होता है या कामविकार जिसके कारण उत्पन्न होता है। (३-३७)

राग = प्राप्त विषयों में रंग जाना (७-११)।

लोकसंग्रह = लोगों की प्रवृत्ति को उन्मार्ग से निवारण करना (३-२०)।

लोकायतिक दृष्टि = इस जगत् का धर्म, अधर्म आदि कोई दूसरा अदृष्ट कारण नहीं है, केवल काम ही प्राणियों का कारण है यह दृष्टिकोण (१६८)।

लोभ = दूसरों का धन स्वाधीन करने की इच्छा (१४-१२)।

वाङ्मय तप = दूसरों को बोध देने हेतु प्रयुक्त वाक्यों में सत्यता, प्रियता, हितकारकता, अनुद्वेगकत्व इत्यादि संपूर्ण गुणों की युक्तता होना (१७-१५)।

विकार = बुद्धितत्त्व से लेकर देहेन्द्रियों तक सारा (प्रकृति का) विकार (अर्थात कार्य) है (१३-१९)।

विज्ञान = (१) (सृष्टि की) उत्पत्ति आदि (षड्विकारों का ज्ञान (३-३६)।

(२) आत्मा आदि (सूक्ष्म तत्त्वों का) विशेष रूप से अनुभव (३-४१) (९-१)।

विनाश = भावरूप पदार्थ का अन्तिम (छठवा) विकार (२-२१).

विवेकबुद्धि = मैं ईश्वर के लिए सेवक के समस्त कार्य करने वाला कर्ता हूं यह धारणा ही विवेकबुद्धि है (३-३०)।

विष्णु = सर्व यज्ञों की अभिमानिनी देवता (८-४)।

वीर्य = सामर्थ्य, विक्रम, पराक्रम (११-४०)।

वेदवादरत = वेद वाक्यों में जहां अर्थवादस्वरूप फल और उनके साधनों का कथन है उन्हीं में आसक्ति रखने वाले (२-४२)।

वेद = त्रैगुण्य अर्थात संसार जिनका विषय है वे वेद कहलाते हैं (२-४५)।

वैदिक धर्म = प्रवृत्ति लक्षण तथा निवृत्ति लक्षण दो प्रकार का धर्म (१ भू.)।

वैराग्य = दृष्ट (लौकिक) और अदृष्ट (स्वर्गीय) विषयों की तृष्णा का विलय (१८-५२)।

वैश्य = जिसमें तमोगुण अप्रधान और रजोगुण प्रधान होता है ऐसा मनुष्य (४-१३)।

वैश्वानर = जठराग्नि (१५-१४)।

व्यक्त = इंद्रियों द्वारा जिसका ज्ञान होता है (१२-१)।

व्रत = नियम और भक्ति सहत कर्म (९-२५)।

शठ = मायावी। अपनी शक्ति को गुप्त रखनेवाला (१८-२८)।

शम = (१) अन्तःकरण को वश में करना (१०-४)। (२) सर्व कर्मों से निवृत्ति (६-३)।

शरण = अभय प्राप्ति का कारण (२-४९)।

शरीर = इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख आदि की अभिव्यक्ति का अधिष्ठान (१४-१४)। इसमें कर्मफलों की उत्पत्ति होती है अतः इसे 'क्षेत्र' भी कहते हैं (१३-१)। इसे 'नवद्वार पुर' की उपमा दी है (५-१३)।

शरीरस्थ = आत्मा, जिसकी उपलब्धि शरीर में ही होती है।

शान्ति = (१) मोक्ष (२-६०) (२) निर्वाण, जहां सभी दुःखों का उपशम होता है (२-७०)। (३) अन्तःकरण का उपशमन (अर्थात संकल्प – विकल्पहीन होना) (१६-२)।

शारीरं कर्म = शरीर निर्वाह मात्र के लिए किए जाने वाले कर्म, (शरीर द्वारा होने वाले सभी कर्म नहीं।) (४-२१)।

शारीरं तपः = शरीर जिसमें प्रधान है, ऐसे समस्त कार्यकरणों से, जो कर्ताद्वारा किया जाता है (१७-४)।

शाश्वत = जिसमें छह विक्रियाओं में से अपक्षय नामक विक्रिया नहीं होती (२-२०)।

शाश्वत धर्म = ज्ञाननिष्ठा स्वरूप (निवृत्तिपर) धर्म (१४-२७)।

शूद्र = जिसमें रजोगुण अप्रधान और तमोगुण प्रधान होता है (४-१३)।

शोक = सुख के वियोग से तथा दुःख के संयोग से उत्पन्न अन्तःकरण का विकार (२-१४)।

शौच = रागादि मनोविकारों का प्रतिकूल भावना द्वारा निस्सारण (१३-७)।

श्रद्धा = आस्तिक्य बुद्धि (९-२२)।

श्रेयः = (१) मोक्षस्वरूप परम प्राप्तव्य (३-११)। (२) विद्या का विषय (१३-२)।

सक्ति = विषयों में प्रीति (१३-९)।

सखा = समान वय का मित्र (११-४१)।

सत् = जिस पदार्थ को विषय करने वाली बुध्दि नष्ट नहीं होती वह पदार्थ (२-१६)। (अर्थात् जिसको विषय करने वाली बुद्धि नष्ट होती है वे सभी पदार्थ असत्। सत्-असत् का यह विभाग बुद्धि के अधीन है।

सततयुक्त = ईश्वर-कार्य में समाहित बुद्धि से निरन्तर प्रवृत्त होने वाला (१-११)।

सत्य = देखे हुए तथा सुने हुए विषय का स्वानुभव दूसरे की बुद्धि में संक्रामित करने के लिए तदनुसार उच्चारित वाणी (१०-४)।

सत्त्व = विशिष्ट संस्कारों से संस्कारित अन्तःकरण (१७-३)।

सत्त्वशुद्धि = व्यवहार में दूसरों के साथ छल, कपट, और झूठ आदि अवगुणों को छोड़कर शुद्धभाव से आचरण करना (१६-१)।

समता = समचित्तता (१०-५)।

समाधि = १) समाधीयते अस्मिन् पुरुषोपभोगाय सर्वम् इति"। = पुरुष (जीवात्मा के उपभोग के लिए जिसमें सभी भरा हुआ रहता है अर्थात् **अन्तःकरण। २-४४)।** २) **"समाधीयते चित्तम् अस्मिन्"** = जिस में चित्त समाया होता है अर्थात् **आत्मा (२-५३)।**

समबुद्धि = कौन मनुष्य कौन सा कर्म करता है इसमें जिसकी बुद्धि व्यग्र नहीं होती (९-६)।

सम्यग् दर्शन = अद्वैत आत्मदर्शन (१८-२०) (२) मोक्ष प्राप्ति का प्रत्यक्ष साधन (९-१) (अर्थात् अन्य सभी अप्रत्यक्ष साधन हैं) (३) ये सारे मेरे कर्म नहीं हैं, मैं निर्व्यापार (निष्क्रिय) हूं यह धारणा (४-३२)। (४) कर्म में अकर्म देखने वाला (५-८) (५) जो शोकमोह आदि दोषों का अपहरण करता है। (४-४२)

सर्वज्ञ = (१) वेदार्थ का ज्ञानी (१५-१)। (२) संसार वृक्ष के अतिरिक्त कोई अन्य ज्ञेय नहीं है; अतः उसको जाननेवाला (१५-१)। (३) भगवत्-तत्व को जानने वाला (२-७)।

संकल्प = ऐहिक तथा पारलौकिक कामना के हेतु (४-६)।

संघात = देह तथा इन्द्रियों का समुच्चय (१३-६)।

संतुष्ट = देहस्थिति को आवश्यक पदार्थ का लाभ होने या न होने पर भी जिसके मन में पर्याप्तता का भाव (अलंप्रत्यय) रहता है। (१२-१३)

संतोष = जो भी मिले उसमें पर्याप्तता की भावना (१०-५)।

संन्यास = (संपूर्वः न्यासशब्दः त्यागार्थः न तु निक्षेपार्थः (२-२१) (१), कर्तव्य रूप से प्राप्त शास्त्रविहित सकाम कर्म को न करना (१८-२)। (२) त्याग (१८-२) (३) कर्मफलों का त्याग (१८-२) (४) निष्क्रिय आत्मा के स्वरूप में स्थिर रहना (५ प्र.) (इसीको सर्वकर्मसंन्यास कहते हैं)। (५) परमात्मा का ज्ञान जिसका स्वरूप है (प्र-६) (६) विवेक बुद्धि से कर्म में अकर्म देखना यही सर्वकर्मसंन्यास है (५-१३) (७) सर्व कामनाओं का त्याग (६-४)।

संन्यासी = (१) पुत्रैषणा,वित्तैषणा और लौकैषणा इन तीनों एषणाओं (आंतरिक इच्छाओं) का त्याग करने वाला (२-५५)। (२) सारी कामनाओं का त्याग कर जीवन के लिए अपरिहार्य चेष्टामात्र करने वाला (२-७१) [सर्वसंकल्पसंन्यासी = सारी कामनाओं का तथा सारे कर्मों का त्याग करने वाला] (६-४)। (३) अक्षरोपासक सम्यग्दर्शननिष्ठ, सर्वैषणाओं का त्यागी और सभी भूतमात्र को अभय देने वाला (१२-१२, १३)।

संमोह = कार्य तथा अकार्य के विषय में विवेक का अभाव (२-६३)।

संसार = (१) इष्ट तथा अनिष्ट जन्म के कारण सुख तथा दुःख की प्राप्ति जिसका स्वरूप है (२-११भू.)। (२) जहां

आत्मा में कर्तृत्व और भोक्तृत्व होता है (२/१३)। (३) अविद्या और काम जिसके कारण हैं(१३-२१)।

संसिद्धि = सत्त्वशुद्धि और ज्ञानोत्पत्ति जिसके लक्षण हैं। (२-११ भू.).

सांख्य = (१) एक दर्शन, जिसका विषय है परमार्थ (मोक्ष) (की वस्तु आदिकारण) (२-३९)। (२) जो परमार्थतः योग है (५-५) (३) ज्ञान होने पर संन्यास (५-५) (४) सत्त्व, रज, तम गुण मेरे दृश्य हैं, उनसे मैं अलग अर्थात् उनका द्रष्टा, नित्य, निर्गुण, आत्मा हूं यह चिन्तन इसीको "सांख्ययोग" कहते हैं (१३-२४) (५) जिस शास्त्र में ज्ञातव्य पदार्थों की संख्या (गणना) होती है। इसी को वेदान्त और कृतान्त भी कहते हैं (१८-१३)। (६) आत्मज्ञानी मनुष्य (२-११ भू.)।

सांख्यबुद्धि = (१) बुद्धियोग के परिपाक से उत्पन्न हुई बुद्धि (२-४९) (२) जन्म, वृद्धि आदि षड्-विकारों के अभाव के कारण आत्मा अकर्ता होता है ऐसी बुद्धि (२-११ भू.) (इस प्रकार की बुद्धि होने वाले पुरुष भी सांख्य कहे जाते हैं) (२-११ भू.)।

साधु = शास्त्रानुसार वर्तन करने वाला (६-९)

साम्यस्थिति = सभी प्राणिमात्रों में विद्यमान ब्रह्म में समभाव (५-१९)।

सिद्ध = (१) जिन्हें जन्मतः उत्कृष्ट धर्म, ज्ञान, वैराग्य की प्राप्ति हुई है। (१०-२६) (२) जो मोक्ष के हेतु प्रयल करते हैं (७-३)।

सिद्धि = (१) ज्ञाननिष्ठा की योग्यता (१८-५०)। (२) सत्त्वशुद्धि के कारण ज्ञान की प्राप्ति (२-४८) (१२-११)।

सुख = (१) इन्द्रियों की विषयभोग की तृष्णा से निवृत्ति (२-६६), (२) अनुकूल, प्रसन्नतादायक, तथा सत्त्वात्मक अवस्था (१३-६)।

सुहृद् = प्रत्युपकार की अपेक्षा न रखते हुए उपकार करने वाला (६-९) (९-१८)।

सूत्र = सूचक वाक्य (१३-४)

स्थितप्रज्ञ = (१) मै पर-ब्रह्म हूं इस अनुभव के कारण जिस की प्रज्ञा स्थित हुई (२-५४)। (२) परमार्थ दर्शन का अमृतरस प्राप्त होने से अन्य विषयों के प्रति तृप्तता का अनुभव (अलंप्रत्यय) करने वाला। संन्यासी, आत्माराम (आत्मसुख में रममाण होने वाला) आत्मक्रीडा (२-५५)। (२) सुख प्राप्त होने से जिसकी तृष्णा नहीं बढ़ती, तथा दुःख प्राप्त होने से जिसका मन क्षुभित नहीं होता (२-५६)। (३) दो प्रकारः- (१) कर्म संन्यास से ज्ञाननिष्ठा जिसे प्राप्त हुई है, तथा (२) कर्मयोग के द्वारा ज्ञाननिष्ठा में प्रवृत्त हुआ।

स्थिरबुद्धि = (१) सभी भूतमात्रों में एक सम निर्दोष आत्मा है इस विचार में जिसकी बुद्धि में संशयरहित स्थिर होती है (५-२०)।

स्पर्श = जिन्हें इन्द्रियों द्वारा स्पर्श किया जाता है ऐसे शब्द स्पर्श आदि विषय (२-१४)(५-२१)।

स्पृहा = सर्वसामान्य वस्तु के विषय में तृष्णा (४-१४) (१४-१२)।

स्मृति = शास्त्र तथा आचार्य के उपदेशों से प्राप्त संस्कारों के कारण उत्पन्न मति (२-६३)।

स्मृतिविभ्रम = स्मृति की उत्पत्ति होने का निमित्त प्राप्त होने पर भी स्मृति की अनुत्पत्ति (२-६३)।

स्वभाव = (१) पर-ब्रह्म का प्रत्येक देह में प्रत्यगात्मा के रूप में अस्तित्व। इसी को अध्यात्म कहते हैं (८-३)। (२) अन्य जन्म में किये हुए धर्मादि संस्कारों का मरणकाल में अभिव्यक्त होना (१७-२)।

स्वाध्याय = (१) ऋग्वेदादि (धर्मग्रंथों) का यथाविधि अभ्यास। (४-२८)। (२) अदृष्ट कल्याण की प्राप्ति के लिए ऋग्वेद आदि का अध्ययन (१६-१)।

होम = (१) श्रोत्र चक्षु आदि इन्द्रियों से (आत्महित के विरुद्ध) विषयों का ग्रहण न करना (४-२६) (२) उपाधियुक्त आत्मा का निरुपाधिक ब्रह्मस्वरूप में दर्शन (४-२५)।

* * *

वर्ग- ४ – जैन परिभाषा

अनियत्य = नवदीक्षित जैन श्रमण जो नित्य आचार विधि तथा जैन धर्मग्रंथों से अनभिज्ञ है।

अघाती कर्म = जीव के स्वाभाविक गुणों का नाश न करने वाले चार कर्मबन्ध (आयु, नाम, गोत्र और अंतराय)।

अंकुश = जैन यतियों का एक उपकरण जिसके सहारे वृक्ष की शाखा झुकाकर वे फूल तोड़ते हैं। अंकुश पर वज्र होने पर उसे **वज्रांकुश** कहते हैं।

अंग´ = जैन आगमों का एक भाग। जैन परंपरा में अंगों की संख्या १२ मानी जाती है – आचारांग सूत्र, (इसके दो भाग – श्रुत और स्कंध), सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवतीसूत्र, ज्ञानधर्मकथा, उपासकदशांग, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद (इसके उल्लेख मात्र मिलते हैं।)

अंगबाह्य = जैन धर्म के अंग नामक १२ ग्रंथों के अतिरिक्त ७ ग्रंथ – सामयिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन और कल्पव्यवहार। इन्हीं को **प्रकीर्णक** भी कहते हैं।

अंगविद्या = अंग, स्वर, लक्षण, व्यंजन, स्वप्न, छीख, भूमि और अंतरिक्ष इन आठ विषयों के आधार पर भविष्य कथन की विद्या। जैन वाङ्मय में इस नाम का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है किन्तु उसकी परिभाषा दुर्बोध है।

अच्छाप्ता = जैन संप्रदाय में पूज्य विद्या की देवता । यह अश्वारूढ एवं खड्गधारिणी मानी जाती है।-

अजितबला = अजितनाथ नामक द्वितीय तीर्थंकर की यक्षिणी देवता। निर्वाणकलिका नामक जैन ग्रंथ में इसका स्वरूप लोहासना, चतुर्भुजा वृषभवाहना, और मातुलुंग-अंकुशधारिणी इस प्रकार किहा है।

अजीव = अबोधात्मक समस्त वस्तुजात। जैन दर्शन में माना हुआ एक द्रव्य। इसके रूपी और अरूपी नामक दो प्रमुख भेद होते हैं तथा रूपी के – स्कंध, देश, प्रदेश और अविभागी – नामक चार भेद माने जाते हैं।

अंचलगच्छ = श्वेतांबर जैनों के छह गच्छों (पंथों) में से एक। इस के साधु मुखपट्टिका के अलावा अंचल का उपयोग करते हैं।

अणुव्रत = जैन मतानुसार गृहस्थाश्रमी श्रावकों के लिए विहित अहिंसा, सत्य, अस्तेय, स्वस्त्रीसंतोष और परिग्रहप्रमाण इन पांच व्रतों का पालन।

अधिकारपद (जैन मुनिसंघ के) = आचार्य, अंतेवासी, गणी, वाचक, श्रद्धचर, श्रमणोपासक, सूरि, भट्टारक, उपाध्याय आदि।

अनंतनाथ = १४ वें तीर्थंकर। जन्मस्थान अयोध्या।

अनन्तमति = एक जैन विद्यादेवता। यह सरस्वती के समान हंसवाहना मानी जाती है।

अन्तराय कर्म = अष्टविध कर्मों में से एक। दूसरों के पराक्रम, दान आदि उच्च गुणों का घात करने से आत्मा के उच्च गुणों का नाश करने वाला कर्म।

अनर्थदण्ड व्रत = एक जैन व्रत। सदाचार का पालन इस का स्वरूप है।

अनस्तमी व्रत = एक जैन व्रत। यावज्जीव सूर्यास्त के पूर्व संध्याकाल में भोजन करना।

अनिवृत्तिकरण संयत = जैन मतानुसार निर्वाणदायक १४ गुणस्थानों में से नवम स्थान।

अनुप्रेक्षा = जीवन में दशविध धर्म को धारण करने के लिए आवश्यक अनित्य, अशरण, संसार इत्यादि १२ प्रकारों की साधना।

अनुभागबन्ध = जीव के बंधनकारक कर्मपरमाणुओं में तीव्र या मन्द फल देने की शक्ति की उत्पत्ति।

अनुभाव = कर्मपुदगलों में निजी कार्य करने का विशेष सामर्थ्य।

अनुयोग = जैन-आगमों की चतुर्विध व्याख्या। (चार प्रकार) – (१) प्रथमानुयोग (धर्मकथानुयोग), (२) करणानुयोग (गणितानुयोग), (३) द्रव्यानुयोग, (४) करचरणानुयोग। अनुयोगों की व्यवस्था आर्यरक्षित की मानी जाती है। इन्हीं के आधार पर जैन शास्त्रों का विभाजन किया गया है।

अनेकान्तवाद = जैन दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त। तदनुसार अन्य सारे दार्शनिक वाद "एकान्तवाद" है। अतः उनसे विवाद का बवंडर निर्माण होता है। उन विवादों से मुक्त, सत्य का दर्शन देने वाला यह महान् सिद्धान्त है। परस्पर विरोधी वादों का समन्वय इस वाद से होता है। जैन दर्शन का नयवाद और सप्तभंगीवाद इस महासिद्धान्त के अंग होते हैं। ऐकान्तिक पक्ष को टालना ही अनेकान्तवाद का प्रयोजन तथा फल है।

अपराजिता = जैन, बौद्ध तथा पौराणिक देवता। जैन अपराजिता यक्षिणी मल्लिनाथ तीर्थंकर की सेविका है। (२) एक विशिष्ट विद्या की संज्ञा।

अपूर्वकरण संयत = जैन मतानुसार निर्वाण दायक १४ गुण स्थानों में से अष्टम स्थान।

अप्रतिचक्रा (जम्बूनदा) = एक जैन विद्या देवी।

अप्रमत्तसंयत = जैन मतानुसार निर्वाणदायक 14 गुणस्थानों में से सप्तम स्थान।

अभिषेक = जैनसूत्रों का अर्थ और विनियोग जानने वाले आचार्य की विशिष्ट उपाधि।

अभिसेग = जैन सूत्रों का अध्ययन समाप्त होने पर आचार्य पदवी के योग्य श्रमणक।

अभिसेगा = जैन संप्रदाय में प्रवर्तिनी पद की योग्यता प्राप्त

करने वाली श्रमणा।

अंबिका = दिगंबर जैन मतानुसार कूष्मांडी नामक एक यक्षिणी देवता जो तीर्थंकर नेमिनाथ की सेविका थी।

अयोग केवल = जैन मतानुसार निर्वाण दायक १४ गुणस्थानों में से अंतिम गुणस्थान। इस गुणस्थान पर आरुढ होना ही निर्वाण है।

अयोग केवली = जैन मतानुसार केवली अवस्था प्राप्त महापुरुष का एक प्रकार। यह सर्व बंधनों से मुक्त होता है।

अरिहंत = तीर्थंकरों का विशेषण। (अर्हत् का अपभ्रंश)

अरूपी = जैन दर्शन के अनुसार अजीव नामक तत्त्व का एक प्रमुख भेद।

अर्धपलितंका = जैनों की तपश्चर्या की एक अवस्था।

अर्धफलक = केवल लंगोटी पहनने वाले जैन श्रमणों का एक वर्ग।

अर्धमागधी = जैन श्वेतांबर संप्रदाय की प्रमुख भाषा। यह मागधी प्राकृत से भिन्न है। भगवान् महावीर ने इसी भाषा में धर्मोपदेश किया। भाषाविज्ञान की दृष्टि से आयारंगसुत्त नामक जैन धर्मग्रंथ इस भाषा का श्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है।

अर्हत्केवली = वीतराग और सर्वज्ञ जैन मुनि जो धर्मप्रवर्तन करते हैं। तीर्थंकरों की एक उपाधि।

अर्हन् = पूज्य तीर्थंकरों की एक उपाधि। जैनियों के पूज्य देवता। बौद्धों का उच्चतम, पुरोहित।

अवधिज्ञान = प्रत्यक्ष ज्ञान के तीन भेदों में से एक। इसमें भूत, भविष्य और दूरस्थित वर्तमान घटना का ज्ञान अन्तर्भूत होता है। अवधिज्ञान के ६ प्रकार माने जाते हैं।

अवसर्पिणी = सुख से दुःख की ओर जानेवाली कालचक्र की एक गति। (देखिये – उत्सर्पिणी)।

अव्वहग = एक प्राचीन जैन पंथ जो श्रमण और ईश्वर में अभेद मानता है।

अविभागी = जैन दर्शन में परमाणु की संज्ञा।

अशोका = जैन संप्रदाय की एक विद्यादेवी या यक्षिणी।

अष्ट दोष (जैन मत के अनुसार) = शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टि, अनुपगूहन, अवात्सल्य, असितीकरण, और अप्रभावना।

अष्टमंगल (जैन मतानुसार) = मत्स्ययुगल, नन्दावर्त, भद्रासन, कुंभ, श्रीवत्स, दर्पण, संपुट और स्वस्तिक।

अष्ट मूलगुण = जैन संप्रदायी श्रावक के आचार धर्म के आठ आधार – हिंसा, असत्य, स्तेय (चोरी), व्यभिचार, परिग्रह, मद्य, मांस, और मधु इन आठ पातकों का त्याग।

अष्टशील = उपोसथ तिथि (प्रत्येक मास की शु. व. अष्टमी और पौर्णिमा तथा अमावस्या के चार दिन) को व्रतस्थ लोगों के पालनीय ८ नियम – हिंसा, चोरी, मैथुन, असत्य, मद्य, अकालभोजन, नृत्यगायनादि, पुष्पमाला आदिं सुगंधी द्रव्य और सुखप्रद शय्या इन आठों से अलिप्तता।

असंयत सम्यग्दृष्टि = जैन मतानुसार निर्वाण दायक १४ गुणस्थानों में से चतुर्थ स्थान।

अस्तिकाय = बहुप्रदेशी द्रव्यों की संज्ञा। इनमें जीव और अजीव के चार प्रकार (धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल) मिलाकर पांच द्रव्यों को ''**पंचास्तिकाय**'' कहते हैं। पंचअस्तिकाय ''**बहुप्रदेशी**'' होते हैं। (प्रेदश = पुद्गल परमाणु द्वारा व्याप्त देश)।

अहिंसा-अणुव्रत = हिंसा के छह प्रकारों से अलिप्त रहना।

आकाश = जैन मतानुसार- पंच अस्तिकायों में से एक जो जीवादि अन्य अस्तिकायों का आधार है। दो प्रकार –(१) **लोकाकाश** जिसमें 'पुद्गल' द्रव्य रहते हैं। (२) **अलोकाकाश** जो लोकाकाश के उपर होता है और जिसमें केवल आकाशतत्त्व होता है।

आगम (जैनागम) = जैन धर्म के प्राचीनतम ग्रंथ। इनमें आप्तकथित, प्रमाणसिद्ध, सर्वहितकारक और परमसत्य उपदेश होता है। दो भेद – (१) **अंगप्रविष्ट** (महावीर शिष्य सुधर्मा द्वारा कथित धर्मज्ञान)। (२) **अंगबाह्य** महावीर तीर्थंकर के पश्चात् १ हजार वर्षों की कालावधि में अनेक आचार्यों द्वारा कथित ज्ञान।

आजीवक = हलायुध कोश के अनुसार दिगंबर जैनियों की संज्ञा। इन्हें एक-दण्डी भी कहते हैं। ये मस्करी गोशाल के अनुयायी माने जाते हैं।

आत्मषष्ठवाद = जैन दर्शन में अन्तर्भूत एक मत। पंचमहाभूत और छठा आत्मा मूलतत्त्व मानने वाला मत।

आत्मा = जैन मतानुसार – जीव तत्त्व। इस जीव तत्त्व के स्वभाव के प्रमुख पांच प्रकार – औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक। प्रत्येक भेद के अवांतर भेद माने जाते हैं।

आदिनाथ = जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का विशेषण।

आदिपुराण = जैन धर्म का जिनसेन कृत एक पुराण। इसका उत्तरार्ध गुणभद्र ने लिखा, जिसे उत्तरपुराण कहते हैं। दिगंबर संप्रदाय के 'प्रथमानुयोग' का यह प्रधान ग्रंथ है जिसमें ६३ शलाकापुरुषों का चरित्र संगृहीत हुआ है।

आयागपट्ट = जैन मंदिर में स्थापित जिनमूर्तियुक्त एक पाषाण जिसकी पूजा होती है।

आयुकर्म = अष्टविध कर्मों में से एक। जीव को शुक के समान बंधन में रखने वाला कर्म। इसके कारण आत्मा की सर्वव्यापक शक्ति का लोप कुछ समय तक होता है।

आरंभी हिंसा = जैन मतानुसार हिंसा के चार प्रकारों में से तीसरे प्रकार की हिंसा। उदा. – रसोई घर आदि स्थानों में अनवधान के कारण होने वाली हिंसा। (२) स्वरक्षण तथा पररक्षण के निमित्त होने वाली हिंसा।

आराधना = यापनीय जैन मतानुसार साधना, जिसके ४ प्रकार होते हैं – सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, सम्यक् चरित्र और सम्यक् तप। इन्हीं को आराधना कहते हैं।

आर्हत धर्म = अर्हत् (परमेश्वर के समान सिद्ध पुरुष) के द्वारा प्रवर्तित धर्म। जैन धर्म की अपर संज्ञा।

आवश्यक क्रिया = जैन धर्म का एक प्रधान अंग। इसमें सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान इन छह क्रियाओं का यथाक्रम अन्तर्भाव होता है। प्रत्याख्यान या गुणधारण सर्वोच्च आवश्यक क्रिया है। (इस नाम के मूलसूत्र ग्रंथ में इन क्रियाओं का प्रतिपादन किया है।)

आवश्यक क्रिया = जैन साधु के छह आवश्यक कर्म। इन कर्मों से आत्मा वासित (संस्कारित) होता है। अतः इन्हें 'आवासक' भी कहते हैं। छह प्रकार – सामायिक, चतुर्विशातिस्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, और प्रत्याख्यान।

आवश्यक चूर्णी = जैनागमों के चूर्णी नामक प्राकृत गद्यात्मक टीकाग्रंथ का एक प्रकार। इसमें ऋषभदेव, महावीर, आर्यरक्षित इत्यादि श्रेष्ठ पुरुषों के जीवनचरित्र वर्णित है।

आस्रव = संसार (पुनर्जन्मादि) का कारण होने वाला कर्मका बन्धन।

आस्रव = जैन मत के सात ज्ञेय तत्त्वों में से तीसरा तत्त्व। जीव द्रव्य में कर्म का प्रवेश होने का कारण। दो प्रकार – शुभयोग० और अशुभयोग०। शुभ आस्रवों से सुख-प्राप्ती और अशुभों से दुःख-प्राप्ती होती है। आस्रवहि जीव के कर्मबन्ध के कारण हैं। मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार आस्रव के कारण हैं।

ईश्वरयक्ष = एक जैन देवता जो तीर्थंकर श्रेयांसनाथ का सेवक था।

ईषत् प्राग्भार = जैन मतानुसार २६ स्वर्गों से उपर का स्वर्ग। निर्वाण-प्राप्त महात्मा यहीं निवास करते हैं।

उच्चारणसूत्र = जैनों के कषाय प्राभृत (कसाय पाहुड) नामक ग्रंथ का भाष्य। इसके लेखक थे उच्चारणाचार्य।

उत्तम श्रुत = देखिये छेदसूत्र (जैनागमों का एक विभाग)।

उत्तराध्ययन चूर्णी = जैनागमों के चूर्णी (या चूर्णीपद) नामक प्राकृत गद्यात्मक टीका-ग्रन्थों का एक प्रकार।

उत्सर्पिणी = दुःख से सुख की ओर जाने वाली कालचक्र की एक गति। (देखिये अवसर्पिणी)।

उद्योगी हिंसा = कृषि, वाणिज्य तथा युद्ध आदि में होने वाली (हिंसा के चार प्रकारों में से दूसरी) हिंसा।

उपशांतकषाय संयत = जैन मतानुसार निर्वाणदायक १४ गुणस्थानों में से ग्यारहवाँ स्थान।

उपांग = जैनागमों के १२ अंगों से संबंधित उपांग भी १२ हैं – औपपातिक, राजप्रश्न, जीवाधिगम, प्रज्ञापना, जम्बुद्वीप-प्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, निरयावली, कल्पावतंस, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, और वृष्णिदशा।

उपायपंचक = जीव में कर्म का प्रवेश रोकने के पांच उपाय – (१) गुप्ति, (२) समिति, (३) धर्मनुप्रेक्षा, (४) परीषह जय और (५) चारित्र्य।

उपाश्रय = जैन भिक्षु-भिक्षुणियों का निवास स्थान।

उपोसथ = अष्टशील (देखिये) का पालन करने के चार दिन – वद्य और शुद्ध अष्टमी, पौर्णिमा और अमावस्या।

एकान्तवाद = जैन मतानुसार, अनिर्वचनीयवाद, निर्वचनीयवाद (लक्षणावाद), प्रकृति-पुरुषवाद, परमाणुवाद, विभुद्रव्यवाद, अद्वैतवाद, सत्कार्यवाद, आदि सभी जगत्कारण का प्रतिपादन करने वाले वाद एकान्तवाद हैं, क्यों कि वे किसी एक पक्ष का आग्रह रखते हैं।

औदयिक = जैन मतानुसार जीव तत्त्व के पांच स्वभावों में से एक।

औपशमिक = जैन मतानुसार जीव तत्त्वों के पांच स्वभावों में से एक।

कथानुयोग = देखिये करणानुयोग। एक जैन अनुयोग-ग्रंथ।

करणानुयोग = जैन साहित्य के अन्तर्गत अनुयोग ग्रंथों का एक प्रकार। अन्य अनुयोग हैं – प्रथमानुयोग (या कथानुयोग) इन ग्रन्थों में भूगोल और खगोल विषयक काल्पनिक वर्णन होते हैं।

करणानुयोग = जैनागमों के व्याख्या स्वरूप चार अनुयोगों के अंतर्गत द्वितीय अनुयोग की संज्ञा। इसमें सूर्यप्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, और जयधवला इन सृष्टि-उत्पत्ति ज्ञान विषयक ग्रंथों का अन्तर्भाव होता है।

कर्म =दो प्रकार – घाती और अघाती। अघाती कर्म के चार प्रकार होते है।

कर्म = जैन दर्शन के अनुसार चार प्रकार – मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, और अंतराय।

कर्म (आठ प्रकार) = ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुकर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म, और अंतरायकर्म। इन अष्ट कर्मों के संयोग के कारण जीव संसार बंधन में फंसता है।

कर्मबन्ध = राग-द्वेषादि दोष युक्त आत्मा का कार्मणवर्गणा (देखिये) से संबंध। इसीसे जीव की ज्ञान-दर्शन शक्ति का घात होकर आत्मा अज्ञानी होता है।

कर्मसिद्धान्त = राग-द्वेष आदि के कारण जीव जो कायिक वाचिक और मानसिक क्रिया करता है उसके साथ एक द्रव्य जीव में प्रविष्ट होता है। वह द्रव्य जीव से संबद्ध होने पर उसे सुख-दुःख रूप फल देता है। जीव और कर्म का यह संबंध अनादि होता है।

कल्पसूत्र = जैनागमों के अन्तर्गत छह छेदसूत्रों में से ५ वां छेदसूत्र। इसमें प्रमुखतः जैन साध्वियों के आचार धर्म का प्रतिपादन है।

कषाय = जीव के राग, द्वेष, मोह इत्यादि भाव। कर्मपरमाणुओं को जीव में स्थापित करने वाला तत्त्व।

कायोत्सर्ग = जैनों की छह आवश्यक क्रियाओं में से एक। शरीर की ममता का त्याग कर धर्मकार्य में सर्वस्व समर्पण करना।

कार्मण वर्गणा = पुद्गल (द्रव्य) के अंगभूत स्कंध के विशिष्ट परमाणु जो संसार में सर्वत्र व्याप्त है।

काल = जैन मतानुसार वस्तुमात्र के परिवर्तन में सहायक एक द्रव्य। दो भेद – (१) निश्चयकाल, (२) व्यवहारकाल। संसार के सभी पदार्थों के परिणाम का कारणीभूत अमूर्तिक द्रव्य। यह अजीव द्रव्य का एक प्रकार माना गया है। इस द्रव्य के परमाणु एकप्रदेशी होते हैं। वे कभी एकत्र नहीं आते और विलग भी नहीं होते। लोकाकाश कालाणुओं से व्याप्त है।

कुबेर यक्ष = एक जैन देवता जो मल्लिनाथ तीर्थंकर का सेवक है।

कुमार = एक जैन देवता जो वासुपूज्य तीर्थंकर का सेवक है।

कुलकर = जैन मतानुसार कर्मभूमि नामक युग का विकास करने वाले १४ महापुरुषों की संज्ञा। अन्य युग की 'भोगभूमि' संसार है।

कुसुम = जैन देवताओं में से एक यक्ष। यह तीर्थंकर पद्मप्रभ का सेवक था।

कूर्चक = एक प्राचीन जैन संप्रदाय। (कूर्च = डाढी-मूंछ)।

कुलधामय = एक प्राचीन जैन पंथ।

कृतिकर्म (या पूजाकर्म) = जैनों की छह आवश्यक क्रियाओं में से एक। पूज्य व्यक्तियों का सर्वथा समादर। (देखिये वंदन)।

केवल ज्ञान = जैन दर्शनानुसार जीव सभावतः सर्वज्ञ ही होता है। विशिष्ट साधना से आवरण दूर होने पर जिसका उदय होता है वही केवल ज्ञान है।

केवल ज्ञान = प्रत्यक्ष ज्ञान के तीन प्रकारों में से एक। भ्रांतिरहित, जगत्प्रकाशक, समस्त पदार्थों के अनंत पर्यायों का ज्ञान। यह ज्ञान नित्योदित होता है। चतुर्विध कर्मों का क्षय होने पर इसका उदय होता है और मति, श्रुति आदि अपूर्णता युक्त ज्ञानों का संपूर्ण विलय होता है।

केवल ज्ञानी = तीर्थंकर महावीर के तीन प्रधान शिष्य – गौतम, सुधर्मा और जम्बूस्वामी।

केवली = केवलज्ञान संपन्न पुरुष जो पंचास्तिकायात्मक लोक को विशेष रूप से जानता है। ६ प्रकार – सयोग केवली, अयोग केवली, भवस्थ, सिद्ध, श्रुत, अर्हत्केवली। वीतराग और सर्वज्ञ जैन मुनि की सर्वश्रेष्ठ उपाधि।

केशलोच = जैन मुनियों का एक कठिन तप। इसमें हर दो-चार महीनों में हाथ से केशों का लुंचन होता है।

कैवल्य दशा = घाती कर्मों का सम्पूर्ण क्षय होने पर साधक को प्राप्त होने वाली परमोच्च अवस्था। इसी में जीव को अर्हत्पद की प्राप्ति होती है।

क्रियावादी = जैन मतानुसार चार पाखंडी पंथों में से एक। ज्ञान या श्रद्धा के बिना केवल क्रिया से ही उत्तम गति जीव को प्राप्त होती है, ऐसी इस पंथ की धारणा होती है।

क्षायिक = जैन मतानुसार जीव तत्त्व के पांच स्वभावों में से एक।

क्षायोपशमिक = जैन मतानुसार जीव तत्त्व के पांच स्वभावों में से एक।

क्षीणकषाय संयत = जैन मतानुसार निर्वाण दायक १४ गुणस्थानों में से बारहवाँ स्थान।

खरतरगच्छ = श्वेतांबरों के छह गच्छों में से एक। अन्य गच्छ- उपकेश, तपा, पार्श्वचन्द्र, सार्धपौर्णमीयक, अंचल और आगमिक। संप्रति खरतर, तपा और अचल विद्यमान हैं।

गच्छ = अनेक जैन साधुओं का संघ। गच्छों की कुल संख्या १७३ तक मानी जाती है जिन में ८४ प्रमुख हैं।

गण = जैन मतानुसार समान आचार, क्रिया और वाचन वाले परस्पर सापेक्ष अनेक कुलों के साधुओं का समुदाय।

गणधर = जैन परंपरा में श्रमणकुलों के समूह को गण कहते हैं। गणधर उसके प्रमुख की संज्ञा है।

गणधर = तीर्थंकरों के अनुयायी, जो अनुत्तर ज्ञान दर्शन आदि धर्म के गणों का धारण तथा उन पर प्रवचन करते थे।

गणस्थविर = एक जैन गणप्रमुख जो गण व्यवस्था की देखभाल करता था और व्यवस्था में बिगाड़ करने वालों का निग्रह करता था।

गणितानुयोग = जैन धर्मसाहित्य के चार प्रकारों में से एक। देखिये – अनुयोग।

गन्धर्व = जैन दैवतों में से एक यक्ष जो कुंथुनाथ तीर्थंकर का सेवक है।

गरूड = एक जैन देवता। यह तीर्थंकर शांतिनाथ का सेवक है।

गाणंगणिक = छह महीनों के अंदर गणप्रमुख की अनुज्ञा के बिना गण बदल करने वाला श्रमण।

गांधारी = जैन दैवत समूह की एक यक्षिणी व शासनदेवी। तीर्थंकर नेमिनाथ की सेविका।

गुणधारण = जैनों की छह आवश्यक क्रियाओं में से एक (देखिये- प्रत्याख्यान)।

गुणव्रत = (१) दिग्व्रत, (२) अनर्थदण्ड और (३) भोगोपभोग परिमाण।

गुणस्थान = जैन मतानुसार जीव के गुणों का क्रमशः विकास जहां होता है ऐसे १४ स्थान – मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत सम्यग् दृष्टि, देश संयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्त संयत, अपूर्वकरण संयत, अनिवृत्तिकरण संयत, सूक्ष्मसांपराय संयत, उपशांतकषाय संयत, सयोग केवल और अयोग केवल। (अन्तिम गुणस्थान पर आरुढ़ होने वाला साधक निर्वाण (मोक्ष) का अधिकारी होता है।

गुप्ति = उपायपंचक में से प्रथम उपाय। आहार-विहार, गमनागमन, वचन-व्यवहार आदि में संयम। इससे कर्म का जीव में प्रवेश होने में रुकावट आती है।

गुप्ति = संवर की प्रथम अवस्था। तीन प्रकार – कायगुप्ति, वचनगुप्ति, और मनोगुप्ति।।

गोत्रकर्म = अष्टविध कर्मों में से एक। इसके कारण जीव को उच्च-नीच कुलों में मनुष्य जन्म प्राप्त होता है।

गौरी = जैन दैवत समूह में एक यक्षिणी। यह तीर्थंकर

श्रेयांसनाथ की सेविका मानी जाती है।

घाती कर्म = जीव की प्रकृतिबन्ध में अन्तर्भूत चार प्रकार- (१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय और (४) मोहनीय। इन्हीं के कारण जीव के स्वाभाविक गुणों का घात होता है।

चक्रवर्ती = जैन मतानुसार १२ चक्रवर्ती – भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शांति, कुभुयु, अर, सुभूम, महापद्म, हरिषेण, जय और ब्रह्मदत्त। रत्नांकित आयुध धारण करने वाले महापुरुष को चक्रवर्ती कहा गया है।

चक्रेश्वरी = तीर्थंकर ऋषभनाथ की एक शासनदेवता। इसका स्वरूप लक्ष्मी के समानं कहा गया है।

चतुर्गति = चार योनियां। नारकीय, पशु, मनुष्य और देव।

चतुर्याम = प्राणिहत्या, मृषावाद (असत्य भाषण), अदत्तादान (चोरी), और बहिस्थादान (परिग्रह), इन चारों की संज्ञा। चतुर्याम धर्म (जिसके प्रवर्तक २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ माने जाते हैं) में इन चारों से निवृत्त होना श्रेयस्कर माना गया है। चतुर्याम के साथ अचेलकत्व (विवस्त्रत्व) का व्रत जोड़ कर भगवान् महावीर (२४ वें तीर्थंकर) ने "पंचव्रतधर्म" का प्रतिपादन किया।

चतुर्याम धर्म = २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन चार यामों पर आधारित धर्ममत।

चतुर्विध दान = आहारदान, ज्ञानदान, औषधिदान, और अभयदान।

चतुर्विंशति स्तव = जैनों की छह आवश्यक क्रियाओं में एक। २४ तीर्थंकरों की स्तुति।

चतुःशरण = अर्हत्, सिद्ध, साधु और जिनधर्म इन चारों के रक्षण के लिए प्रार्थना। (बौद्ध सम्प्रदाय में त्रिशरण कहा है) (बुद्ध, धम्म, और संघ को तीन बार शरण की प्रार्थना ही त्रिशरण विधि है।)

चंडा = जैनों की शासन देवता, या जैन समूह की यक्षिणी जो तीर्थंकर वासुपूज्य की सेविका है।

चम्पा = वासुपूज्य तीर्थंकर की शासन देवता। अपर नाम – प्रवरा।

चरण-करणानुयोग = धार्मिक साहित्य के चार प्रकारों में से एक।

चरणानुयोग = दिगंबर संप्रदायी १२ जैनागमों के चार अनुयोगों (विभागों) में से एक। इसमें मुनि गृहस्थ और समाज के आचार नियमों का प्रतिपादन करने वाले ग्रंथों का अन्तर्भाव होता है। इसमें मूलाचार, त्रिवर्गाचार, रत्नकरंड, श्रावकाचार नामक आचार धर्म विषयक ग्रंथों का अन्तर्भाव होता है।

चारणमुनि = जैन सिद्ध पुरुषों का एक वर्ग।

चारित्र = सदाचार का अखंडित पालन तथा क्रमशः उसमें प्रगति। इसके सामायिक, छेदोपस्थापना इत्यादि पांच प्रकार हैं।

चितिकर्म = जैनों की छह आवश्यक क्रियाओं में एक। पूज्य व्यक्तियों का सर्वथा समादर करना। इसी को वंदन, कृतिकर्म या पूजाकर्म भी कहते हैं।

चूर्णी = जैन आगमों की टीकाओं में से एक टीकाप्रकार। अपर संज्ञा चूर्णीपद। इनकी रचना गद्यात्मक प्राकृत भाषा में हुई है। विविध प्रकार – निशीथचूर्णी, आवश्यक चूर्णी, दशाश्रुतस्कंध चूर्णी, दशवैकालिक चूर्णी, नंदी चूर्णी, उत्तराध्ययन चूर्णी इत्यादि। कोटिक-गण तथा वज्रशाखा के जिनदासगणी (इ. ६ शती) इस टीकाप्रकार के प्रवर्तक माने जाते हैं।

चूर्णीसूत्र = जैनों के कषायप्राभृत (कसाय पाहुड) नामक ग्रन्थ का भाष्य। इसके लेखक थे यतिवृषभ।

चूलिका सूत्र = पवित्र जैन ग्रंथों की संज्ञा। दो भाग – (१) नंदी और (२) अनुयोग द्वार।

चैत्य = मृत सत्पुरुष के शरीरावशेष का स्मारक चबूतरा। इसी पर निर्मित स्मारकभवन को स्तूप कहते हैं। बौद्ध और जैन समाज में चैत्य तथा स्तूप के निर्माण की प्रथा थी।

चैत्यगृह = (१) ज्ञानपूर्ण वीतराग मुनि का शरीर। कुंदकुंदाचार्य के मतानुसार ज्ञानरूप आत्मतत्त्व ही चैत्य होता है। (२) चैत्ययुक्त स्तूप।

चैत्यवृक्ष = जिन वृक्षों की छाया में तीर्थंकरों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ ऐसे वट, साल, सरल आदि पवित्र वृक्ष।

चैत्यवृक्ष = अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र इन चारों की संज्ञा। जैन संप्रदाय में प्रत्येक चैत्यवृक्ष की चारों दिशाओं में चार चार जिनप्रतिमाएं स्थापन करने की प्रथा है।

छेदसूत्र = जैन आगमों का एक विभाग। इसमें मुनि तथा साध्वी के विधि-निषेधों तथा प्रायश्चित्तों का प्रतिपादन हुआ है। अपर संज्ञा – उत्तमश्रुत। **छह विभाग** – निशीथ, महानिशीथ, व्यवहार, दशाश्रुत स्कंध, कल्पसूत्र (या बृहत्कल्प), पंचकल्प (या जितकल्प)।

जम्बूनदा = एक विद्यादेवी। (देखिये- अप्रतिचक्रा)।

जिन = राग, द्वेष, मोह आदि अंतरंग शत्रुओं पर विजय पाने वाला। भगवान् महावीर आदि सभी तीर्थंकरों की श्रेष्ठ उपाधि।

जीव = चेतनायुक्त, सुखदुःखों का कर्ता और भोक्ता, देहाकार (तनुप्रभः), अनादि-अनन्त, अमूर्त किंतु प्रमाणों से सिद्ध होनेवाला तत्त्व। दो भेद – (१) संसारी (कर्मबन्ध के कारण जन्म-मरण के चक्र में ग्रस्त), (२) मुक्त (कर्मबंध से मुक्त)। सभी मुक्त जीव समान होते है।

जैनाभास = विशिष्ट जैन संघों की संज्ञा प्रकार – श्वेतांबर, यापनीय, द्राविड, माथुर (या निषिच्छ) और काष्ठा, चैत्यवासी, संवेगी (वनवासी), तेरापंथ, तारणपंथ, स्थानकवासी, ढुंढिया, अर्धस्फालक (अर्ध दिगंबर)।

ज्ञानावरणीय = अष्टविध कर्मों में से एक। इसके कारण ज्ञानशक्ति आच्छादित होने से ज्ञानप्राप्ति के मार्ग रुद्ध होते हैं।

ढूंढिया = एक श्वेतांबर जैन संप्रदाय। अन्य भेद – बावीस पंथ, तेरापंथ। अपर संज्ञा – साधुमार्गी या मठमार्गी।

णमोकार = जैन धर्म का सुप्रसिद्ध श्रेष्ठ मंत्र – "णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं" यही णमोकार मंत्र है। इसका सक्षिप्त रूप – "अ-सि-आ-उ-सा-" भी मंत्ररूप माना जाता है।

तर्क = तीन स्वतंत्रशास्त्र – (१) अनेकान्तवाद, (२) नय, (३) सप्तभंगीवाद।

तारणपंथी = मूर्ति पूजा न करने वाले किन्तु तारणस्वामी (संप्रदाय के प्रवर्तक) कृत १४ ग्रंथों की पूजा करने वाले जैन संप्रदायी।

तीर्थंकर = जीवों को भवसागर से पार करने के उद्देश्य से तीर्थ (आधार स्थान) होने वाला महापुरुष। तीर्थंकर मनुष्य रूप में जन्मते हैं और तीव्र तपस्या से देवत्व पाते हैं।

त्रिषष्टि शलाकापुरुष = देखिये शलाका पुरुष।

दर्शनावरणीय = अष्टविध कर्मों में से एक। इसीके कारण आत्मा की दर्शन शक्ति का लोप होने से वह आत्मा और शरीर में एकता देखता है।

दशविध धर्म = देखिये समिति।

दशवैकालिक चूर्णी = जैनागमों के चूर्णी (या चूर्णीपद) नामक गद्यात्मक प्राकृत टीका ग्रन्थों का एक प्रकार।

दशाश्रुत स्कंध = जैनागमों के अन्तर्गत छह छेदसूत्रों में से चौथा छेदसूत्र। कर्ता – भद्रबाहु।

दशाश्रुतस्कंध चूर्णी = जैनागमों के चूर्णी (या चूर्णीपद) नामक गद्यात्मक प्राकृत टीका ग्रन्थों का एक प्रकार।

दिव्ययोगी = तीर्थंकरों की अपर संज्ञा। वैराग्य से कैवल्यावस्था की प्राप्ति करने वाले जैन सिद्ध पुरुष।

देवता = (तीन प्रकार) (१) संप्रदाय देवता, (२) प्रासाद देवता और (३) कुल देवता।

देवता (या अतिमानवी दिव्ययोनि) = जैन मतानुसार चार प्रकार – भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक।

देश = जैन दर्शन में सम्मत अजीव तत्त्व के, रूपी नामक भाग के, स्कंध नामक भाग का आधा विभाग। उसके आधे भाग को **प्रदेश** कहते है।

देशसंयत = जैन मतानुसार निर्वाणदायक १४ गुणस्थानों में से पंचम स्थान।

देशावकाशिक = जैनों के चतुर्विध आचार धर्म में प्रथम व्रत। गुणव्रत की प्रदेशमर्यादा का संकोच करना।

द्रव्य = एक सत् तत्त्व जो उत्पन्न नहीं होता तथा जिसका विनाश नहीं होता, किन्तु पर्याय के कारण जिसमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य की निर्मिति होती है।

द्रव्य = जैन मतानुसार जीव-अजीव, धर्म-अधर्म, आकाश और काल- नामक छह द्रव्य माने जाते हैं। इनमें काल के अतिरिक्त पांच द्रव्यों का निर्देश **'अत्थिकाय'** शब्द से प्राकृत में होता है। तत्त्वतः जीव और अजीव में से **अजीव के पांच प्रकार होते हैं** – धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल।

द्रव्य संवर = संवर नामक ज्ञेय तत्त्व के दो प्रकारों में से दूसरा। कर्म-पुद्गलों का जीव में प्रवेश कुंठित होने पर नये कर्म पुद्गलों की निरुद्धता।

द्रव्यानुयोग = जैनागमों के व्याख्यास्वरूप चार अनुयोगों में तीसरा अनुयोग। कुंदकुंदाचार्य, उमास्वाति और समंतभद्र के ग्रंथों का इसमें अन्तर्भाव होता है। (देखिये - अनुयोग)

द्रव्यार्थिक नय = नय (अंशरूप ज्ञान) के दो प्रकारों में से एक। ज्ञेय वस्तु के अन्वयरूप द्रव्य (अर्थात् वस्तुत्व) का ज्ञान। (तीन प्रकार – नैगम, संग्रह और व्यवहार।)

धर्म-अधर्म = अजीव द्रव्य के प्रकार। जीव और पुद्गल की स्वयंभू क्रियाशक्ति को व्यक्त करने में धर्म-अधर्म सहायक होते हैं। ये दोनों द्रव्य सर्वव्यापी, अखंडित, असंख्यातप्रदेशी और आकाश की भाँति अमूर्तिक हैं।

धर्मकथानुयोग = जैन धार्मिक साहित्य के चार प्रकारों में एक। (देखिये- प्रथमानुयोग)।

नय = (दो प्रकार) – (१) द्रव्यार्थिक और (२) पर्यायार्थिक।

नयसिद्धान्त = नय = केवलज्ञान हीन सामान्य मानव का अंशात्मक ज्ञान, जिसमें ज्ञेय पदार्थ के समस्तधर्मों का आकलन नहीं होता। यह नयस्वरूप (अंशात्मक) ज्ञान का सिद्धान्त जैन दर्शन का एक प्रमुख विषय है। (नीयते – परिच्छिद्यते एकदेशविशिष्टः अर्थः येन स नयः)।

नंदी चूर्णी = जैनागमों के चूर्णी (या चूर्णीपद) नामक गद्यात्मक प्राकृत टीका ग्रन्थों का एक प्रकार।

नाटकत्रयी = कुंदकुदाचार्य (एक महान दाक्षिणात्य जैन पंडित) द्वारा विरचित प्रवचनसार, पंचास्तिकाय और समयसार नामक तीन श्रेष्ठ प्राकृत ग्रंथों की संज्ञा। अपर संज्ञा–**प्राभृतत्रयी।**

नामकर्म = अष्टविध कर्मों में से एक। इसी कर्म के कारण सूक्ष्म गुणों का नाश होने से आत्मा को ८४ लक्ष योनियों में जन्म लेना पड़ता है।

नियम = जैन मतानुसार सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र्य। इन तीनों को **रत्नत्रय** भी कहते है।

निर्ग्रन्थ = तीर्थंकर महावीर के 11 गणधरों में से सुधर्म नामक गणधर की परंपरा के श्रमणों का सम्प्रदाय।

निर्जरा = जैन मतानुसार सात ज्ञेय तत्त्वों में से छठा तत्त्व। जीव में पूर्वप्रविष्ट कर्मपुद्गलों का क्रमशः निस्सारण। यह निस्सारण बाह्य और आभ्यंतर तप से होता है। निर्जरा अवस्था में जीव आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति और विशुद्ध अंतःकरण में आत्मदर्शन पाता है।

निर्युक्ति = प्रमाणभूत जैन ग्रंथों की दस (भद्रबाहुकृत) टीकाओं की संज्ञा। निर्युक्तियाँ संस्कृत और प्राकृत भाषा में लिखी गई हैं।

निशीथ चूर्णी = जैनागमों के चूर्णी या चूर्णीपद नामक प्राकृत गद्यात्मक टीका ग्रंथ का एक प्रकार। इसमें श्रमणों के आचार धर्म के अपवाद तथा विविध प्रदेशों की आचार

पद्धतियों का कथन है।

निशीथ सूत्र = जैनागमों के अन्तर्गत छेदसूत्रों के छह विभागों में से एक। भद्रबाहु इसके रचयिता माने जाते हैं। आचार्य पदवी से लिए निशीथसूत्र का ज्ञान परम आवश्य माना है।

निश्चयकाल = काल-द्रव्य का एक भेद। लोकाकाश पर अवस्थित असंख्य कालाणु। इनके कारण संसार में प्रतिक्षण परिवर्तन होता है और वस्तु का अस्तित्व स्थिर रहता है।

नैष्ठिक श्रावक = मध्यम अवस्था का जैन धर्मी गृहस्थ। इस अवस्था के ११ भेद (जिन्हें प्रतिमा कहा है)। दार्शनिक, व्रतिक, सामायिक, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, दिवामैथुनविरत, ब्रह्मचारी, आरंभविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत।

पंचकल्प = जैनागमों के अन्तर्गत छह छेद सूत्रों में से छठा छेदसूत्र। संप्रति यह सूत्र उपलब्ध नहीं है।

पंचकल्याणिका = जैनों के आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव या आदिनाथ के जीवन से संबंधित पांच पवित्र तिथियाँ। – (१) गर्भकल्याण-आपाढ व. २। (२) जन्मकल्याण व दीक्षाकल्याण चैत्र व. ९। (३) केवल ज्ञान-कल्याण फाल्गुन व. ११। (४) मोक्ष-कल्याण मार्गशीर्ष व. १४। ये पांच व्रतों की तिथियां मानी जाती हैं।

पंचज्ञान = (जैनमत) मतिज्ञान, श्रुति, अबाधिज्ञान, मनःपर्यय, केवल।

पंचणमोकार (नमस्कार) = जैन संप्रदाय में अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और संत इन पांचों का नमस्कार "ओं णमो अरिहंताणं" इत्यादि प्राकृत घोषणाओं के सहित किया जाता है।

पंच परमेष्ठी = तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, वासुदेव और प्रतिवासुदेव।

पंच परमेष्ठी = जैन संप्रदाय में अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु नामक पांच परमेष्ठी (परमश्रेष्ठ पुरुष) माने जाते है। इन पांचों के वन्दन को पंच णमोकार कहते है।

पंचपरिवर्तन = (जैनमत) देखिये परिवर्तन।

पंचव्रत धर्म = देखिये 'चतुर्याम'।

पंचस्तूपान्वय संघ = जैन मुनियों के विशिष्ट संघ की संज्ञा।

पट्टधर = जैन आचार्य का प्रधान शिष्य।

पंचाक्षरी मंत्र = 'ओं नमः सिद्धम्'।

पंचांगी आगम = निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीका। इन चारों विवरणों सहित जैनागमों की संज्ञा।

परमाणु = पुद्गल के दो प्रकारों में से एक। अविभाज्य, अगोचर, नित्य अजीव द्रव्य को परमाणु कहते है।

परिवर्तन = (पांच प्रकार) द्रव्य परिवर्तन, क्षेत्र०, काल०, भाव०, और भव०।

परीषह जय = साधन मार्ग में उत्पन्न संकटों को झेलना। इनके २२ प्रकार माने है।

परोक्षज्ञान = देखिये प्रत्यक्षज्ञान।

पर्यायार्थिक नय = नय (अंशरूप ज्ञान) के दो प्रकारों में से एक। ज्ञेय पदार्थ की परिवर्तनीय अवस्था को विषय करने वाला ज्ञान। चार प्रकार – ऋजु, शब्द, समधिरूढ और एवंभूत।

पाक्षिक श्रावक = जैनधर्मी गृहस्थ की प्राथमिक अवस्था। आठ मूलगुणों का पालन तथा मंदिर में अर्हत्पूजा, गुरुसेवा, उचित दान आदि धर्माचरण करने वाला जैन गृहस्थ।

पाटलीपुत्रवाचना = पाटलीपुत्र में स्थूलभद्र की अध्यक्षता में हुआ 11 जैनागमों का संकलन।

पारिणामिक = जीव तत्त्व के पांच स्वभावों में से एक

परोक्षज्ञान = जैन मतानुसार दो प्रकार – (१) मति और (२) श्रुत।

पुद्गल = एक अजीव पदार्थ जिसमें स्पर्श, गंध, रस और रूप ये चार गुण होते हैं। 'पुद्गल' शब्द-पदार्थ का पूरण और गलन (अर्थात् संयोग और वियोग) गुणधर्म का सूचक है। दो भेद – परमाणु और स्कंध। 'पुद्गल' जैन दर्शन में भूतसामान्य का वाचक एक विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है।

पूजा के चार प्रकार (जैन मतानुसार) = (१) नाम पूजा (नाम जप), (२) स्थापना पूजा (प्रतिमा स्थापन), (३) द्रव्य पूजा (साधु पूजा), (४) भाव पूजा (उदात्त भाव से तीर्थंकर की पूजा)।

पौद्गलिक शरीर = जीव के विचारों के उस पर संस्कार होते हैं। इन संस्कारों से युक्त सूक्ष्म शरीर को जैन दर्शन में पौद्गलिक शरीर कहते हैं। यह सूक्ष्म संस्कारमय शरीर ही नवीन देह धारण करता है।

प्रकीर्णक = पवित्र जैन ग्रंथों की संज्ञा। इनकी संख्या दस है।

प्रकृतिबन्ध = कर्मबन्धन के चार प्रकारों में से एक। कर्म में ज्ञान, दर्शन आदि मोक्षमार्ग का घात करने के स्वभाव की उत्पत्ति।

प्रकृतिबन्ध के आठ भेद = **(१) ज्ञानावरण** – (जीवों के ज्ञान में भेद होने का कारण।) **(२) दर्शनावरण** – (जीव की दर्शकता का घात करने वाला बन्ध)। **(३) वेदनीय** – सुख दुःखों के अनुभव का कारण। **(४) मोहनीय** – जीव के मोहविकार का कारण। **(५) आयुर्बन्ध** – विशिष्ट कालमर्यादा तक जीव के शरीर में रुद्ध होने का कारण। **(६) नाम** – जीव को उत्तम, मध्यम, अधम शरीर की प्राप्ति का कारण। **(७) गोत्र** – उच्चनीच कुल में जन्म का कारण। **(८) अंतराय** – इच्छित वस्तु की प्राप्ति में बाधा आने का कारण।

प्रतिक्रमण = जैनों के छह आवश्यक कर्मों में से एक। शुभ कर्मों से च्युत होने पर पुनश्च शुभ कर्मों का प्रारंभ।

प्रतिहार्य = जैन मूर्तिकला के अनुसार अर्हत प्रतिमा का परिवार। इस परिवार में तीन छत्र, दो चामर, अशोकवृक्ष, दुंदुभि, सिंहासन, प्रभामंडल, दिव्यभाषा और पुष्पवृष्टि इन आठ पदार्थों का अन्तर्भाव होता है।

प्रत्यक्ष ज्ञान = (जैन मतानुसार) जिस ज्ञान की प्राप्ति 'आत्मसापेक्ष' अर्थात् आत्मा के निजी प्रयत्न से होती है। जिस ज्ञान की प्राप्ति इन्द्रिय और मन के द्वारा होती है उसे **परोक्षज्ञान** कहते हैं।

प्रत्यक्ष ज्ञान के तीन भेद = (१) अवधिज्ञान, (२) मनःपर्यय ज्ञान, (३) केवल ज्ञान।

प्रत्याख्यान = गुरु के सन्मुख विशिष्ट व्रत के पालन की शपथ ग्रहण करना।

प्रत्याख्यान = जैनों की छह क्रियाओं में से एक। अन्न-वस्त्रादि द्रव्यरूप बाह्य और असंयम, अज्ञान आदि भावरूप आंतरिक दोषों को त्याग। इसी को **गुणधारण** कहते हैं।

प्रथमानुयोग = जैनागम के व्याख्या स्वरूप ४ अनुयोगों में पद्मपुराण, त्रिषष्टिलक्षण, महापुराण, हरिवंश पुराण और उत्तर पुराण इन कथात्मक ग्रंथों की संज्ञा। (अपर नाम – धर्मकथानुयोग।)

प्रमत्तसंयत = निर्वाणदायक १४ गुणस्थानों में से छठवां स्थान।

प्रोषधोपवास = जैनों के चतुर्विध शिक्षा व्रत में तृतीय व्रत। अष्टमी और चतुर्दशी को उपोषण या एक भोजन।

बंध = जैन मत के सात ज्ञेय तत्त्वों में से चौथा तत्त्व। जीव और कर्म का संबंध ही बंध है। यह संबंध दूध और जल के संबंध के समान एक दूसरे को प्रभावित करता है। (२) योग और कषाय के कारण जीव को प्राप्त होने वाला कर्म का बन्धन। **चार प्रकार** – प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध, और अनुभागबन्ध।

बहुजीववाद = सांख्य तथा जैन दर्शन का एक मत। इसके अनुसार प्रत्येक जीव की सत्ता स्वतंत्र होती है। एकजीववाद मानने में एक जीव के सुखी या दुःखी होने में सभी सुखी या दुःखी होगें, या एक जीव के मुक्त या बद्ध होने पर सभी जीव मुक्त या बद्ध होने चाहिये। यह अनुभव न होने के कारण बहुजीववाद ग्राह्य माना जाता है।

ब्रह्मस्तंभ = जैन शिल्प की प्रथा के अनुसार मंदिर के सामने स्थापित अखंडित पाषाण का ऊंचा स्तंभ। इस पर ब्रह्मा की मूर्ति होती है।

भावसंवर = संवर नाम पांचवें ज्ञेय तत्त्व के प्रकारों में से एक। कर्ममार्ग का विरोध करने वाले नैतिक प्रयत्न।

भुक्तियोगी = तंत्रसाधना के द्वारा सिद्धि और भुक्ति प्राप्त करने वाले जैन तांत्रिक।

मठमार्गी = देखिये ढूंढिया।

मतिज्ञान = परोक्ष ज्ञान का एक प्रकार। ज्ञेय पदार्थ और विशिष्ट ज्ञानेन्द्रिय के सन्निकर्ष के कारण मन की सहायता से होने वाला पदार्थज्ञान। इस ज्ञान के अवग्रह, ईहा आदि प्रकार होते हैं।

मंदिरमार्गी = मूर्तिपूजक जैन समाज की संज्ञा।

मनःपर्यय ज्ञान = सग्यक् चारित्र्य के अनुसरण से आवरणीय कर्मों का क्षय होने पर संयमी सत्पुरुषों को होने वाला गूढज्ञान। प्रत्यक्ष ज्ञान के तीन प्रकारों में से एक।

महानिशीथ सूत्र = जैनागमों के अन्तर्गत छह छेदसूत्रों में से द्वितीय छेदसूत्र। हरिभद्रसूरि ने इनका संशोधन किया था।

महाव्रत = जैन श्रमणों के द्वारा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच व्रतों का निरपवाद पालन। (पातंजल योगसूत्र में 'यम' नामक प्रथम योगांग में 'सार्वभौम महाव्रत' शब्दों से इसका निर्देश हुआ है।

माथुरीवाचना = आर्य स्कंदिल की अध्यक्षता में मथुरा की आचार्य परिषद द्वारा किया गया ११ जैनागमों का संशोधन कार्य। (यह कार्य महावीर तीर्थंकर के पश्चात् ६०९ वें वर्ष में हुआ था।)

मानस्तम्भ = जैन शिल्प की परंपरा के अनुसार मंदिर के सम्मुख स्थापित अखण्ड पाषाण का उत्तुंग स्तम्भ। इसके ऊपर की वेदी पर चतुरानन ब्रह्मा की मूर्ति होती है।

मिथ्यादृष्टि = जैन मतानुसार १४ गुणस्थानों में से प्रथम स्थान।

मुनिधर्म के २८ गुण = ५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इन्द्रिय-विजयता, ६ आवश्यक और स्नान न करना, दन्तधावन न करना, भूमिशयन, तिष्ठद्भोजन, एकभुक्त, विवस्त्रता, और केशलोंच।।

मुष्टिविधान व्रत = एक जैन व्रत जो चैत्र, भाद्रपद और माघ मास में होता है। व्रतावधि – एक वर्ष।

मूलसंघ = दिगम्बर जैन संप्रदाय की अपर संज्ञा।

मूलसूत्र = पवित्र जैन ग्रंथों की संज्ञा। इनकी संख्या चार है।

मोक्षमार्ग = जैन मतानुसार – सम्यग् दर्शनज्ञान – चारित्राणि मोक्षमार्गः। (तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वातिकृत- १-१) अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों का समवाय ही मोक्ष का मार्ग है।

मोक्षासन = जैन मतानुसार पर्यंक, अर्धपर्यंक, वज्र, वीर, और कायोत्सर्ग नाम पांच योगासनों की संज्ञा।

मोहनीय = अष्टविध कर्मों में से एक। दर्शन और सुचरित्र इन आत्मगुणों का विलय करने वाला कर्म। लोभ, मत्सर आदि मानसिक दोषों के कारण यह कर्म होता है।

यापनीय = एक जैन संप्रदाय जो दिगंबर संप्रदाय के अचेलकत्व तथा श्वेतांबर संप्रदाय की स्त्रीमुक्ति को मान्यता प्रदान करता है। यह दक्षिण भारत में था।

योग = कर्म के परमाणुओं को जीव तक खींच लाने वाली एक शक्ति।

योग = काया, वाचा और मन की क्रिया। (अपर संज्ञा – आस्रव)। शुभ योग – पुण्यास्रव। अशुभ योग – पापास्रव।

रत्नत्रय = जैन मतानुसार उद्धार के तीन श्रेष्ठ उपाय – सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चरित्र।

रूपी = जैन दर्शन में अजीव तत्त्व का एक प्रमुख भेद। इसके स्कन्ध, देश, प्रदेश और अविभागी नामक चार भेद

माने जाते हैं।

वज्रशृंखला = जैन दैवतों में से एक यक्षिणी या विद्यादेवी। यह अभिनंदनाथ तीर्थंकर की सेविका मानी गई है।

वज्रांकुशा = तीर्थंकर अनंतनाथ की शासनदेवता। जैनों की विद्यादेवी।

वंदन = जैनों की छह आवश्यक क्रियाओं में से एक। पूज्य व्यक्ति का काया वाचा मन से आदर। इसी को **चितिकर्म, कृतिकर्म या पूजाकर्म** भी कहते हैं।

वलभी वाचना = देवर्धिगणी की अध्यक्षता में गुजरात की वलभी नगरी में हुआ ११ जैनागमों का द्वितीय (अंतिम) संशोधन। (श्वेताम्बर संप्रदाय में वलभीवाचना में संशोधित आगमों का ही प्रामाण्य माना जाता है। इनके अतिरिक्त आगमों में १२ उपांगों, ६ छेदसूत्रों, ४ मूलसूत्रों, १० प्रकीर्णकों और २ चूलिकासूत्रों की गणना होती है।

वेदनीय = अष्टविध कर्मों में से एक। इसके कारण परपीड़ा न करने का आत्मगुण लुप्त होता है।

वैयावृत्य = जैनों के चतुर्विध शिक्षाव्रत में चतुर्थव्रत। अन्नदान, औषधिदान, अभयदान, ज्ञानदान आदि दान देना तथा असमर्थ या रोगी-मुनि, श्रमण, या श्रावक की सेवा।

व्यवहार काल = जैन मतानुसार कालद्रव्य के दो भेदों में से एक। सौर मंडल की गति के कारण ज्ञात घटिका, अहोरात्र आदि।

व्यवहार सूत्र = जैनागमों के अन्तर्गत छह छेदसूत्रों में से तीसरा छेदसूत्र। कर्ता – भद्रबाहु।

शलाकापुरुष = जैन मतानुसार १४ कुलकरों के पश्चात् मानव जाति को सदाचारात्मक धर्म का ज्ञान देने वाले महापुरुष। इनमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव इन ६३ महापुरुषों की गणना होती है।

शिक्षा व्रत = जैनों के आचार धर्म का एक भाग। चार प्रकार – (१) देशावकाशिक, (२) सामायिक, (३) प्रोषधोपवास और (४) वैयावृत्य।

श्रमण संघ के ५ विभाग = गण, कुल, शाखा, संयोग और गच्छ।

श्रावक (या उपासक) = सम्यग् दर्शन की प्राप्ति के लिए मुनिजनों से सदाचार के उपदेश का श्रवण करने वाला जैन धर्मी गृहस्थ। तीन प्रकार – (१) पाक्षिक श्रावक, (२) नैष्ठिक, और (३) साधक।

श्रुतकेवली = तीर्थंकर महावीर के पांच शिष्य – विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु।

श्रुतज्ञान = जैन मतानुसार परोक्ष ज्ञान के दो प्रकारों में से दूसरा। प्रथम मतिज्ञान होने पर युक्ति, तर्क, अनुमान और शब्दार्थ के द्वारा होने वाला पदार्थज्ञान। दो भेद – **(१) अंगप्रविष्ट** और **(२) अंगबाह्य।** अंग प्रविष्ट में आचारांग, सूत्रकृतांग आदि 12 श्रुतांगों का अन्तर्भाव होता है। और अंगबाह्य में **दशवैकालिक, सामायिक** इत्यादि उत्तरकालीन आचारों का अन्तर्भाव होता है।

सत् = (उत्पाद- व्यय- ध्रौव्य- युक्तं सत्) अर्थात् उत्पत्ति, विनाश और ध्रौव्य (नित्यता) से युक्त तत्त्व। द्रव्य सत् होता है।

सप्तभंगी नय = जैन मतानुसार प्रत्येक पदार्थ में सात धर्म होते हैं। – नित्य, अनित्य, अवक्तव्य, नित्यानित्य, नित्यअवक्तव्य, अनित्य-अवक्तव्य, नित्यानित्य-अवक्तव्य। इन सात धर्मों की संज्ञा है सप्तभंगी (प्रकार) नय।

सप्तभंगी नय = पदार्थ का परामर्श करने के सात प्रकार – (१) स्याद् अस्ति उदा.- स्याद् घट घर में है। (२) स्यात् नास्ति उदा. – स्याद् घट घर के बाहर नहीं। (३) स्यात् अस्ति च नास्ति च उदा. – स्याद् घट घर में और घर के बाहर नहीं। (४) स्यात् अवक्तव्यम् उदा. – - कच्चा घट काला और पक्का घट लाल होता है अतः घट का वास्तविक स्वरूप अवक्तव्य है। (५) स्यात् अस्ति च अवक्तव्यं च, उदा. – स्यात् घट घर में है किन्तु वह नाना विरोधी धर्मों से युक्त होने के कारण उसका रूप अनिर्वचनीय है। (६) स्यात् नास्ति च अवक्तव्यं च उदा. – स्यात् घट घर के बाहर नहीं और वह अनिर्वचनीय भी है। (७) स्यात् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यं च उदा.– स्यात् घट घर में है, घर के बाहर नहीं, और वह अनिर्वचनीय भी है। सप्तभंगी नय के प्रत्येक प्रकार में स्यात् (या स्याद्) शब्द का प्रयोग आवश्यक होता है। (स्यात् का अर्थ है – संभवतः अथवा किसी विशिष्ट अपेक्षा से)।

समय = आकाश के एक प्रदेश में स्थित पुद्गल के एक परमाणु का अपनी निजी गति से दूसरे प्रदेश तक पहुंचने का काल। देखिये – व्यवहारकाल।

समाधिमरण = देखिये सल्लेखना व्रत।

समिति (पांच प्रकार) = जैन मुनिधर्म के २८ गुणों में से पांच गुणों की संज्ञा। पाच समितियां – **ईर्या समिति** चलने में सावधानता। **भाषा** – सत्य, प्रिय और मंगल भाषण। **एषणा** – शुद्ध भिक्षान्न तथा निर्लोभ व्यवहार। **आदान निक्षेप** – अनावश्यक वस्तुओं का त्याग। **इन्द्रिय विजयता** ज्ञानेन्द्रियों की इष्ट विषयों में प्रवृत्ति और अनिष्ट विषयों में अरति। **षडावश्यक** – समता, स्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, और कायोत्सर्ग।

समिति = उपायपंचक में से द्वितीय उपाय। क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, औदासीन्य, और ब्रह्मचर्य (यही दशविध धर्म है)। इसके पालन से कर्म का जीव में प्रवेश होने से रूकावट आती है।

सम्यक् चारित्र = अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का निरपवाद पालन।

सम्यग् ज्ञान = शास्त्र प्रतिपादित समस्त तत्त्वों का यथार्थ अनुभव।

सम्यग्दर्शन = तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित शास्त्रग्रंथों पर दृढ श्रद्धा। यह त्रिविध मोक्षमार्ग में प्रथम है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि = जैन मतानुसार निर्वाणदायक १४ गुणस्थानों में से तृतीय स्थान।

संयोगकेवल = जैन मतानुसार निर्वाणदायक १४ गुणस्थानों में से तेरहवाँ स्थान।

सयोगकेवली = केवली महापुरुष का एक प्रकार। इसको जिन, या अर्हत् कहते हैं। यह आयु के अंतिम मुहूर्त में ध्यानस्थ हो जाता है।

सल्लेखना व्रत = साधकावस्था के श्रावक का ध्यान में शरीरत्याग। इसी को समाधिमरण भी कहते है।

साधकश्रावक = उच्च अवस्था का जैनधर्मी गृहस्थ। आसन्नमरण अवस्था में भोजन आदि का त्याग कर, ध्यानमग्न रहने वाला।

साधुमार्गी = मूर्तिपूजा न करने वाले व्रतनिष्ठ जैन। (देखिये- ढुंढिया)।

सामायिक = जैनों के चतुर्विध आचार धर्म में से द्वितीय व्रत। दिन में तीन बार नियमित काल में तीर्थंकरों का गुणस्तवन करना।

सामायिक = जैनों की छह आवश्यक क्रियाओं में से एक। आत्मौपम्य बुद्धि से सभी से व्यवहार। समय याने आत्मा के विषय में शुभ भावना।

सासादन सम्यग् दृष्टि = जैन मतानुसार १४ गुणस्थानों में से द्वितीय स्थान।

सिद्धचक्र = जैन सम्प्रदाय में माना गया एक प्रतीक।

सूक्ष्म सांपराय संयत = जैन मतानुसार निर्वाण दायक १४ गुणस्थानों में से दशम स्थान।

संकल्पी हिंसा = जैन मतानुसार हिंसा के चार प्रकारों में से एक। उदा. कसाई द्वारा पशु की हिंसा।

संघ (या गण)) की संज्ञाएँ = नंदी, वीर, अपराजित, देव, सेन, भद्र, गुणधर, गुप्त, सिंह, चंद्र इत्यादि।

संथारु व्रत = जैन साधुओं का आमरण प्रायोपवेशन का व्रत।

संवर = मोक्ष का कारणीभूत होने वाला कर्म (संवरो मोक्ष कारणम्) (सर्वदर्शन संग्रह)। जैन मतानुसार ७ ज्ञेय तत्त्वों में से पांचवाँ तत्त्व। "आस्रवस्य निरोधः संवरः" अर्थात् आस्रव (याने जीव में कर्मप्रवेश का द्वार) का निरोध करना। (जीव और कर्म का संबंध टूटे बिना जीव मुक्त अवस्था को नहीं प्राप्त कर सकता)। दो भेद- भाव, और द्रव्य।

संसारी जीवों के ४ प्रकार = नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव।

स्कंध = जैन दर्शन में सम्मत अजीव तत्त्व का एक प्रधान भेद "रूपी" कहा जाता है। रूपी का एक प्रकार स्कंध है जो सकल पुद्गल द्रव्य स्वरूप माना जाता है। अनेक परमाणुओं के संयोग से निर्मित पदार्थ। यह इन्द्रियग्राह्य होता है।

स्तूप = महापुरुष के स्मरणार्थ निर्मित पाषाणमय भव्य स्मारक। जैन और बौद्ध परंपरा में इस प्रकार के स्मारक बनाये जाते थे।

स्थितिबन्ध = जीव के बन्धनकारक कर्मपरमाणुओं में काल मर्यादा की उत्पत्ति।

स्याद्वाद = जैन धर्म के तत्त्वज्ञान का एक मूलभूत एवं दार्शनिक जंगत् का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त। देखिये – सप्तभंगी नय।

स्वतंत्रजीववाद = यह एक जैन मत है। इसके अनुसार जीव चैतन्यस्वरूप तथा प्रतिशरीर भिन्न होने के कारण अगणित होते हैं।

हिंसा के दो प्रकार = (१) द्रव्यहिंसा (शरीर नाश), (२) भावहिंसा (दुष्ट भाषण या दूसरे की मृत्यु, हत्या आदि का चिंतन।

हिंसा के चार प्रकार = संकल्पी, उद्योगी, आरंभी, और विरोधी।

★★★

(वर्ग - ५) – बौद्ध परिभाषा

अंगुत्तरनिकाय = यह बौद्धों के सुत्तपिटक का एक भाग है जो निकाय ग्रंथों में चौथा माना जाता है। इसमें ९५५७ सुत्तों का समावेश हुआ है जिन में नीतिनियमों का मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण दिया गया है।

अंधक निकाय = आंध्रप्रदेश में महाचैत्यवादी बौद्ध संप्रदाय से अलग चैत्यवादी संप्रदाय का उदय अशोक के काल में हुआ था। चैत्यवादी संप्रदाय से पूर्वशैलीय, अपरशैलीय, राजगिरक और सिद्धार्थक नामक 4 संप्रदाय उत्पन्न हुए। इन चारों को 'अंधकनिकाय' कहते हैं। इसी निकाय से वैपुल्यवादी पंथ प्रवर्तित हुआ।

अकुशल कर्म = दुष्ट फल देने वाला कर्म।

अक्षोभ्य व्यूह = अक्षोभ्य नामक ध्यानी बुद्ध का स्वर्गस्थान।

अट्ठकथा (अर्थकथा) = बौद्धों के त्रिपिटकों के अन्तर्गत ग्रंथों पर कथापरक भाष्य। बुद्धदत्त, बुद्धघोष और धम्मपाल, पाली साहित्य के प्रख्यात अठ्ठकथाकार थे। बुद्धोत्तर एक हजार वर्षों के बाद अठ्कथा साहित्य की निर्मिति मानी जाती है।

अद्वय = महायान बौद्ध मतानुसार चतुष्कोटि-विनिर्मुक्त ज्ञान। (चतुष्कोटि - अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति, नास्ति-नास्ति) अर्थात् भावज्ञान और अभावज्ञान से पर ज्ञान। वेदान्त का अद्वैत और प्रस्तुत अद्वय में भिन्नता होती है।

अद्वयवादी = (1) भगवान् बुद्ध की एक संज्ञा। (2) ब्रह्म और विश्व का तादात्म्य या प्रकृति और आत्मा का तादात्म्य प्रतिपादन करने वाला अद्वैतवादी।

अधिकरण समथा धम्मा = बौद्ध संप्रदाय में संघ के अन्तर्गत विवाद होने पर पालनीय सात नियम – (१) संमुखविनय, (२) स्मृतिविनय, (३) अमूढविनय, (४) प्रतिज्ञातकरण, (५) यद्भूयसिक, (६) तत्पापीयसिका, (७) तिणवत्थारक।

अधिचित्त = बौद्धों के शिक्षात्रय नामक विशुद्धि के अन्तर्गत समाधिशिक्षा की अपर संज्ञा। कुशलचित्त की एकाग्रता को ही 'समाधि' कहते है।

अधिशील = बौद्धों के शिक्षात्रय में अन्तर्भूत शीलशिक्षा की अपरसंज्ञा। शील याने अहिंसापूर्वक आचारधर्म का पालन।

अध्यात्म आयतन = बौद्ध दर्शन में छह ज्ञानेन्द्रियों की संज्ञा। बाह्य आयतन – शब्दादि विषय। (देखिये- आयतन)।

अनागमी = बौद्ध मतानुसार सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रतपराभास, कामच्छंद और व्यापाद (हिंसा) इन पांच बंधनों का लय होने पर साधक को यह उच्च अवस्था प्राप्त होती है। मरणोत्तर वह संर्वोच्च 'अर्हत्' अवस्था में प्रविष्ट होता है। (न आगमी इति अनागमी = पुनर्जन्म से मुक्त)।

अनागरिक = गृहत्यागी भिक्षु।

अनात्मवाद = (अपर नाम – नैरात्म्यवाद, पुद्गल-प्रतिषेधवाद) यह बौद्ध दर्शन का एक मत है, जिसमें आत्मा की सत्ता का निषेध प्रतिपादन किया है। बौद्ध दर्शन लौकिक व्यवहार में पंच स्कंध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) के रूप में आत्मा की सत्ता ही अनात्मवाद मानता है किंतु पारमार्थिक दृष्ट्या शाश्वत आत्मा वह नहीं मानता। उत्तरकालीन बौद्ध दार्शनिकों ने अनेक प्रकार से इस वाद का प्रतिपादन किया है।

अनात्मवाद (या नैरात्म्यवाद) = बौद्ध मतानुसार आत्मा के अतिरिक्त अन्य पदार्थों की सत्ता का प्रतिपादन करने वाला सिद्धान्त। इस के अनुसार 'आत्मा' शब्द परस्पर संबद्ध अनेक धर्मों की एक सामान्य संज्ञा मात्र है।

अनियत कर्म = अनिश्चित फल देने वाला कर्म।

अनुत्तरज्ञान = बौद्ध दर्शन में कथित शून्यता, प्रज्ञा, और उपाय का एकात्मक ज्ञान। सहज स्वभाव तथा वज्रस्वभाव को आत्मसात् करने वाले साधक ही अनुत्तर ज्ञानसाधना के अधिकारी होते हैं। अनुत्तर = न उत्तरं यस्मात् तत् अर्थात् सर्वोत्कृष्ट।

अनुत्तरतंत्र = बौद्धों के वज्रयान के चार तंत्रों में से एक। अन्य तंत्र – क्रिया, योग, और अनुत्तर।

अनुत्तर पूजा = बौद्ध संप्रदाय में बोधिचित्त का उदय होने के लिये विहित विशिष्ट विधि। इस के सात अंग – वंदन, पूजन, पापदेशना पुण्यानुमोदन, बुद्धाध्येषण, बुद्धयाचना, बोधि परिणामना। इस सप्तांग पूजा से साधक में 'बोधिचित्त' का उदय होता है।

अनुत्तर योग = सर्वश्रेष्ठ योग।

अनुत्तर योगतंत्र = बौद्ध तंत्र साहित्य के चार प्रकारों में से एक। इस में बोधिसत्त्व के उत्पादहेतु वंदना, पूजा, शरणगमन आदि क्रियाओं का प्रतिपादन है।

अनुमान = (दो प्रकार) – स्वार्थानुमान और परार्थानुमान।

अनुमानाभास = भ्रान्तियुक्त अनुमान। तीन प्रकार – पक्षाभास (९ प्रकार)। हेत्वाभास (२ प्रकार)। और दृष्टान्ताभास (२ प्रकार)।

अनुलोमचर्या = बोधिसत्त्व को बुद्धत्त्व की प्राप्ति के लिए करने योग्य चार चर्याओं में से तृतीय चर्या। इस में बुद्धत्व प्राप्ति के लिए आवश्यक गुण संपादन किये जाते हैं।

अनुशय = बौद्ध दर्शन के अनुसार संसार के छह मूल कारण – राग (तृष्णा), प्रतिघ (द्वेष), मान, अविद्या, दृष्टिविशेष (सत्कार्य दृष्टि, मिथ्यादृष्टि इ.), और विचिकित्सा (संशय)।

अपदान (अवदान) = बौद्ध जातक कथाओं के समान अर्हत् के पूर्वजन्म वृत्तान्त सहित चरित्रों का कथन।

अपरशैलीय = चैत्यवादी बौद्ध संप्रदाय की आंध्र में उत्पन्न एक शाखा। धान्यकटक नगर की पश्चिम दिशा में विद्यमान पर्वत में निवास के कारण यह नाम प्राप्त हुआ। पूर्वदिशा के पर्वत में रहने वाले 'पूर्वशैलीय' कहे जाते थे।

अपान समाधि = बौद्ध दर्शन के अनुसार चित्त की एकाग्रता की एक अवस्था।

अपोहवाद = बौद्ध दर्शन का एक सिद्धान्त जो शब्दार्थ में 'सामान्य' (जाति) की सत्ता नहीं मानता; अतः शब्द का अर्थ सामान्य संबंध से विरहित ही ज्ञात होता है। अथवा शब्द का अर्थ अन्याभाव मात्र होता है। (अपोह =अप + ऊह) ।

अभिधर्म (अभिधम्म) = बौद्धों के त्रिपिटकों में एक। इसमें पुगल पञ्ञति, धातुकथा, धम्मसंगणि, विभंग, पट्ठानपगरण, कथावत्थु और मयक नामक सात ग्रंथों का अन्तर्भाव होता है। अन्य मतों का खंडन और बौद्ध मत का प्रतिपादन इस पिटक का प्रमुख विषय है।

अभिनिष्क्रमण = भगवान बुद्ध का राजप्रसाद का त्याग कर तपस्या के लिये निर्गमन।

अभिषेक = बौद्धों की तांत्रिक साधना में कलशाभिषेक, गुह्याभिषेक और प्रज्ञाभिषेक नामक तीन अभिषेक सात बार किये जाते हैं। इन अभिषेकों के बाद शिष्य तांत्रिक साधना का अधिकारी माना जाता है।

अभिषेक भूमि = बौद्धों की दशभूमियों में अंतिम भूमि की संज्ञा।

अभौतिक वाद = एक बौद्ध मत जो समाधि और ब्रह्मचर्य का विरोध करने वाले तथा परलोक का अस्तित्व न मानने वाले भौतिकवाद का विरोधक है। अनात्मवाद और अनीश्वरवाद का प्रतिषेध करते हुए यह मत प्रतिपादन हुआ है।

अमितप्रभ = एक बोधिसत्त्व का नाम।

अमिताभ = एक ध्यानस्थ बुद्ध जो सुखावती (दिव्यलोक) का अधिपति है। पद्मपाणि नामक बोधिसत्त्व की उत्पत्ति अमिताभ से ही हुई है। अमितायु इसीका पुत्र और सुखावती व्यूह (स्वर्गलोक) का अधिपति है।

अमोघदर्शी = बोधिसत्त्वका एक नाम।

अमोघसिद्धि = ध्यानी बुद्धों में चौथा बुद्ध। (वज्रसंग्रह) ।

अर्हत् = हीनयानी बौद्ध मतानुसार सात गुण – अनुद्विग्नता, आत्मशुद्धि, उत्साह, शांतता, आनंद, एकाग्रता और औदार्य। इन गुणों से युक्त तथा अष्टांगिक मार्ग का आक्रमण करने पर अंतिम अवस्था को प्राप्त हुआ सिद्ध पुरुष, जिसका पुनर्जन्म नहीं होता।

अवतंसक साहित्य = बौद्धों के छह प्रकार के अवतंसक सूत्रों का समुच्चय।

अवदान = बौद्ध साहित्य का एक प्रकार जिसमें कर्मफल सिद्धांत का प्रतिपादन करनें वाली कथाओं का संग्रह होता है। दिव्यावदान, अवदानकल्पलता आदि अनेक ग्रंथों का इसमें अन्तर्भाव होता है।

अवलंबन = बौद्धों की धारणा के अनुसार मरणोत्तर अधोमुखी अवस्था में पड़ा हुआ प्रेतात्मा। अवलंबन सूत्र नामक ग्रंथ में ऐसे प्रेतात्मा की मुक्ति का उपाय कहा है।

अवलोकितेश्वर = सभी ओर से मानवों को कृपादृष्टि से देखने वाला ईश्वर। बोधिसत्त्व 'समन्तमुख, लोकेश्वर, लोकनाथ आदि इसी के अन्य नाम हैं। महायानी साहित्य में इसे **'संघरत्न'** कहते हैं। यही तिब्बती लामा संप्रदाय का मुख्य ईश्वर है और दलाई लामा के व्यक्तित्व में आविष्ट होता है। चीन में अवलोकितेश्वर की मूर्ति स्त्रीरूपी होती है। पद्मपाणि इस देवता का मुख्य लक्षण तथा नामांतर है।

अवस्थात्रय = (बौद्ध मतानुसार) (१) उत्पाद (पदार्थ की एक अवस्था बदल कर दूसरी उत्पन्न होना।) (२) व्यय (अवस्था के रूपान्तर के समय प्रथम अवस्था का नाश)। और (३) ध्रौव्य (तत्त्वतः पदार्थ के अस्तित्व का परिणमन) ।

अविद्या = बौद्ध मतानुसार भवचक्र या प्रतीत्य समुत्पाद के १२ अंगों में से प्रथम। यह पूर्व जन्म की एक दशा है। इस अवस्था में प्राणी अज्ञान, मोह और लोभ के अधीन होकर क्लेश भोगता है।

अविवर्तचर्या (या अनिवर्तन चर्या) = बोधिसत्त्व को बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए करने योग्य चार चर्याओं में से अंतिम चर्या। बोधिसत्त्व की आठवीं अवस्था प्राप्त होने पर इसका प्रारंभ होता है।

अव्याकृत कर्म = भला या बुरा फल न देने वाला निष्फल कर्म।

अशुद्ध कर्म = दूसरों को पीड़ा देने के उद्देश्य से इहलोक में सुख प्राप्ति की कामना से किया हुआ कर्म।

अष्टशील = उपोसथ की आठ तिथियों (अष्टमी, चतुर्दशी, पौर्णिमा और अमावस्या) को उपवास आदि व्रतों का पालन।

अष्टशौच = (बौद्ध मतानुसार) – कालशौच, अग्निशौच, भस्मशौच, मृत्तिकाशौच, गोमयशौच, जलशौच, पवनशौच और ज्ञानशौच (रत्नकरण्डक श्रावकाचार अ. १)।

अष्टांगिक मार्ग = गौतम बुद्ध द्वारा "धर्मचक्र प्रवर्तन" नामक प्रथम प्रवचन में प्रतिपादित चतुर्थ **'आर्यसत्य'। इसी** को **"दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद्"** अर्थात् दुःखमुक्ति की ओर जाने वाला मार्ग कहते हैं। बौद्धधर्म के आचार मार्ग का यह सारसर्वस्व है। सम्यक् दृष्टि (श्रद्धा), सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त (कृति), सम्यक् आजीव (धंधा), सम्यक् व्यायाम (योगाभ्यास), सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि (ध्यान) ये ही अष्टांग हैं।

असत् = बौद्ध मतानुसार 'अकिंचित्करम् अभावादिकम्' अर्थात् जो कुछ भी निर्माण नहीं कर सकता ऐसा अभावात्मक तत्त्व। (वेदान्त मतानुसार नाम-रूपात्मक जगत् के रूप में व्यक्त न हुआ किन्तु कारणरूप में विद्यमान, सूक्ष्मतम तत्त्व) ।

असंस्कृत धर्म = आकाश, प्रतिसंज्ञानिरोध और अप्रतिसंज्ञा निरोध इन तीनों की संज्ञा। ये नित्य और अनुत्पन्न होते है। देखिये – विषयदत।

अस्तिकायः = जीव, आकाश, धर्म, अधर्म, और पुद्गल

इन पांचों की संज्ञा। इन पांच तत्त्वों में कालत्रय का "अस्ति" रूप में निर्देश होता है।।

आकाश गर्भ (या खगर्भ) = एक ध्यानस्थ बोधिसत्व।

आत्मा = पंचस्कन्धों का समुदाय। अपर संज्ञा – पुद्‌गल।

आत्मा = **वैभाषिक** बौद्ध मतानुसार – अनादि काल से लेकर निर्वाण काल तक स्थायी स्वरूप में प्रवाहित विज्ञान की धारा। **योगाचार** मतानुसार – चित्त या आलयविज्ञान। लोकायतिक मतानुसार – **चैतन्य** युक्त शरीर। (चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः)। **माध्यामिक** बौद्ध मतानुसार – शून्य। **विज्ञानवादी** बौद्ध मतानुसार – क्षणिक विज्ञान।

आदिबुद्ध = वज्रयानी मतानुसार वज्रधर और वज्रसत्त्व का संयुक्त स्वरूप।

आदिबुद्ध = कालचक्रयान नामक बौद्ध पंथ के प्रमुख देवता। नेपाल, श्रीलंका और जापान में इसकी उपासना होती है। वज्रधर आदिबुद्ध के मनुष्यावतार का नाम है।

आनंद = बौद्ध मतानुसार चार भेद – प्रथमानंद, परमानंद, विरमानंद, और सहजानंद। काम-विकार के कारण मन में उत्पन्न क्षोभ या भाव-विकास ही आनंद कहलाता है।

आयतन = छह ज्ञानेन्द्रियों को और उनके शब्द, स्पर्श आदि विषयों को बौद्ध दर्शन में आयतन (प्रवेशद्वार) कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियों को अध्यात्म आयतन और विषयों को बाह्य आयतन कहते हैं।

आर्यसत्य = धर्मचक्र प्रवर्तन (सारनाथ में प्रथम प्रवचन) द्वारा गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चार सिद्धान्त – (१) दुःख –(यह सारा संसार केवल दुःखमय है)। (२) दुःखसमुदय – (दुःख का मूल कारण तीन प्रकार की तृष्णा है। त्रिविध तृष्णा – कामतृष्णा, भवतृष्णा और विभवतृष्णा)। (३) दुःखनिरोध – (तृष्णा से मुक्तता। इसी को प्रतिसर्ग, निर्वाण या अनालय कहते हैं। (४) दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् (इसी को अष्टांगिक मार्ग कहते हैं। देखिये – अष्टांगिक मार्ग।

आलय विज्ञान = बाह्य-आभ्यन्तर तथा जड-चेतन सारा जगत् विज्ञान का परिणाम है। सागर में तरंगमालाएँ उत्पन्न और विलीन होती हैं, उसी प्रकार विज्ञान में सारे पदार्थ (इन्द्रियों का ज्ञान और मन) उत्पन्न होकर विलीन होते हैं।

आस्रव = बौद्ध मतानुसार चार प्रकार – कामास्रव, भवास्रव, दृष्ट्यास्रव, और अविद्यास्रव। आस्रव से मुक्ति ही अर्हत् पद की प्राप्ति का उपाय है। राग-द्वेषादि विकारों की बौद्ध संज्ञा।

उच्छेद दृष्टि = दृष्टि – आत्मज्ञान के दो प्रकारों में से एक। शरीर को आत्मा से अभिन्न मानता (अर्थात् देहात्मवाद) शरीरनाश में आत्मा का नाश मानना बौद्ध मत में सम्यक् दृष्टि नहीं है। यह एकान्तिक दृष्टि है।

उड्डीयान कुरुकुल्ला = तांत्रिक बौद्धों की एक भीषण उपास्य देवता। इसका वाहन प्रेत होता है।

उदान = भगवान् बुद्ध के भावपूर्ण वचनों का संग्रह। इस के आठ वर्ग है और प्रत्येक वर्ग में प्रायः दस सूक्त है।

उपचित = बौद्ध मतानुसार कर्म का एक प्रकार। स्वेच्छा से तथा बुद्धिपूर्वक किया गया कर्म, जिसका फल कर्ता को प्राप्त होता है। (अन्य प्रकार-कृत अर्थात् जो फलदायक नहीं होता)।

उपसथागार = बौद्ध विहार के अन्तर्गत पापोच्चारण विधि का स्थान।

उपादान = बौद्ध मतानुसार भवचक्र या प्रतीत्य समुत्पाद के १२ अंगों में से नौवां अंग। इस अवस्था में सुखप्रद विषयों की प्राप्ति के लिए प्राणी अस्वस्थ होकर दौड़धूप करता है।

उपादान स्कंध = जब रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान नाम पंच स्कन्ध संगठित होकर देहधारी व्यक्ति का निर्माण करते हैं, तब उन्हें यह संज्ञा दी जाती है।

उपाय = बौद्ध मतानुसार वास्तव समाधि में उदित प्रज्ञा या शुद्ध ज्ञान। इसे 'उपाय-प्रत्यय' भी कहते हैं।

उपाय कौशल = बौद्ध संप्रदाय में मुद्रामैथुन की गुह्यसाधना की यह संज्ञा है।

उपासक = बौद्ध संप्रदाय में नवदीक्षित पुरुष।

उपेक्षाविहारी = बौद्ध भिक्षु का एक प्रकार जो 'उपेक्षा' नामक शीलधर्म का पालन करते हुए उदासीन वृत्ति से जीवन व्यतीत करता है।

उपोसथ = पौर्णिमा, अमावस्या और दोनों अष्टमियाँ इन चार तिथियों को होने वाली बौद्धों की सभा, जिसमें सहभागी लोग अपने अपराधों का निवेदन करते थे। (वैदिक उपवसथ शब्द का यह अपभ्रंश है।)

उष्णीषकमल = मस्तकस्थित सहस्रारचक्र की बौद्ध संज्ञा।

उष्णीष देव = वज्रयानी बौद्धों के आठ देवता – वज्रोष्णीष, रत्नोष्णीष, पद्मोष्णीष, विश्वोष्णीष, तेजोष्णीष, ध्वजोष्णीष, तीक्ष्णोष्णीष, छत्रोष्णीष। ये प्रत्येकशः एक-एक दिशा के प्रमुख माने गये हैं।

उष्णीष विजया = एक बौद्ध देवता जिसकी उपासना नेपाल में लोकप्रिय है।

एकजटा = वज्रयानी बौद्धों की एक देवता।

एडूक = मृत व्यक्ति के दांत, केश, अस्थि आदि पर निर्मित चैत्य या अल्प स्तूप। (बौद्धों में एडूक निर्मिति के प्रथा अधिक थी)।

ऐलक (अचेलक) = अल्पतम वस्त्र धारण करनेवाला जैन श्रावक।

ऐश्वरिक = नेपाल के चार बौद्ध संप्रदायों में से एक। यह सम्प्रदाय परमात्मा की सत्ता मानता है।

ककुच्छंद = गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती छह बुद्धों में से एक। (समय ई. पू. ३१०१ प्रायः)।

कठिन = बौद्ध भिक्षुओं का एक दुष्कर व्रत। इस व्रत के बारह नियम कठोर होते हैं।

कनकमुनि = गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती छह बुद्धों में से एक

प्रागैतिहासिक बुद्ध। समय- प्रायः ई. पू. २०९९।

कर्म = बौद्ध मतानुसार सृष्टि का मूल कारण। मरणोत्तर जीव का कर्म दूसरे जीव में संक्रामित होता है। लोकवैचित्र्य का कारण। दो प्रकार – (१) चेतना, (२) चेतयित्वा। (अर्थात् कायिक और वाचिक कर्म)।

कर्मपथ = हिंसा, चोरी आदि दस प्रकार के दुष्कृत्यों की संज्ञा। दो प्रकार – कायिक और मानसिक। यह कर्म बुद्धिपूर्वक होता है।

कर्मसिद्धि = जो आश्रय, स्वभाव और समुत्थान इन तीन कारणों से होती है।

कामतृष्णा = बौद्ध मतानुसार त्रिविध तृष्णाओं में एक जो दुःखसमुदय (एक आर्यसत्य) का कारण है।

काय = (चार प्रकार) – निर्माणकाय, संभोगकाय, धर्मकाय और वज्रकाय। महायान बौद्ध संप्रदाय में गौतम बुद्ध की चतुर्विध काया का निरूपण किया है। इनमें वज्रकाया (या सहकाया, स्वभावकाया, महासुखकाया) सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। काय = शरीर।

कायविज्ञप्ति = कायिक कर्म, क्षणिक चेतना (अर्थात् मानस कर्म) के पुनः पुनः अभ्यास से इसकी उत्पत्ति होती है।

कायिक कर्मपथ = (बौद्ध मत) हिंसा, चोरी, व्यभिचार जैसे शारीरिक कुकर्म।

कार्मिक = नेपाल के चार बौद्ध संप्रदायों में से एक।

कालचक्र यान = एक तांत्रिक बौद्ध संप्रदाय।

काश्यप = गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती छह बुद्धों में से एक। (समय प्रायः ई. पू. १०४४)।

काश्यपीय = अशोकपूर्व काल में उत्पन्न बौद्ध धर्म के १८ निकायों में से एक। सर्वास्तिवाद, स्थविरवाद और धर्मगुप्तिक इन मतों का समन्वय इस संप्रदाय में हुआ है।

कुंडा = एक रक्तवर्ण बौद्ध देवता।

कुशल कर्म = बौद्ध मतानुसार दुःख की समाप्ति तथा निर्वाण की प्राप्ति कराने वाला कर्म।

कृत = बौद्ध मतानुसार कर्म का एक प्रकार। स्वेच्छा से या बुद्धिपर्वक न किया गया कर्म। (अन्य प्रकार उपचित – देखिये) यह कर्म फल नहीं देता।

क्रियातंत्र = वज्रयदान बौद्धतंत्र के चार प्रकारों में से एक। इसमें मंदिर-निर्माण, देव-प्रतिष्ठा आदि से संबंधित अनुष्ठानों का तथा दानशील, क्षमा, वीर्यध्यान और प्रज्ञा आदि क्रियासाधनाओं का निरूपण किया है।

खक्खर = बौद्ध भिक्षुओं का एक आयुध जो आत्मरक्षण के हेतु रखा जाता है।

खदिरवनीतारा = एक बौद्ध देवता।

खसर्पण = बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर का एक रूप।

गगनगज = एक बोधिसत्त्व।

गणपतिहृदया = एक नृत्यासना बौद्ध देवता जो गणपति की शक्ति मानी जाती है।

गंधहस्ती = एक बोधिसत्त्व की संज्ञा।

गुरुधम्मा = बौद्ध भिक्षु महिलाओं के लिए निषिद्ध ८ प्रकार के आचार। इसी को अट्ठगुरुधम्मा कहते हैं।

गुह्यत्रय = बौद्धों के मंत्रयान के अनुसार वागगुह्य, कायगुह्य और मनोगुह्य इन तीन पारमार्थिक साधनाओं की संज्ञा।

गुह्यसमाज = तांत्रिक साधना करने वाला बौद्ध संघ।

गौरी = वज्रयानी बौद्ध सम्प्रदाय में मान्य आठ देवताओं को गौरी कहते हैं। आठ गौरियां – गौरी, चौरी, वेताली, घस्मरी, पुक्काशी, शबरी, चंडाली और डोंबी। इनके वर्ण और पाश घंटा आदि चिन्ह अलग अलग होते हैं।

ग्रहमातृका = एक त्रिमुखी और षड्भुजा बौद्ध देवता।

घण्टापाणि = वज्रसत्त्व नामक ध्यानी बुद्ध का पुत्र। एक बोधिसत्त्व।

घस्मरी = वज्रयानी बौद्धों की अष्टगौरियों में से एक, वर्ण-हरित, चिह्न- घंटा।

चक्रसंवर = सहजयानी बौद्ध मतानुसार एक देवता।

चंडरोषण = एक तांत्रिक बौद्ध देवता जो अक्षोभ्य नामक ध्यानी बुद्ध से उत्पन्न हुई। इसकी मूर्ति के मस्तक पर अक्षोभ्य की मूर्ति होती है। इसकी मूर्ति और पूजाविधि गुप्त होती है।

चंडाली = वज्रयानी बौद्धों की अष्टगौरी देवताओं में से एक। वर्ण – नील, चिह्न – वह्निकुण्ड।

चण्डाली = बौद्धों के एक तांत्रिक देवता जो वायुरूप प्रकृति की शक्ति मानी गयी है।

चतुर्धातु = आकाश के अतिरिक्त अन्य ४ महाभूतों की बौद्ध मतानुसार संज्ञा।

चतुष्कोटि ज्ञान = महायान बौद्ध मतानुसार अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति और नास्ति-नास्ति यह चार प्रकार का ज्ञान माना गया है। इस चतुष्कोटि के परे अद्वय ज्ञान होता है।

चर्या = महायानी बौद्ध संप्रदाय में बोधिचित की अवस्था प्राप्त होने के लिये विहित छह पारमिताओं की साधना। इस साधना में दीक्षा, अभिषेक मंडल, आवेश आदि का अन्तर्भाव होता है। चर्या शब्द का अर्थ है "पथि स्थितिः" अर्थात् नियमों का समुचित पालन। **चर्या के चार प्रकार** – प्रकृतिचर्या, प्रणिधान (प्रणिधि) चर्या, अनुलोमचर्या, और अविवर्तचर्या।

चर्या = बौद्धों के नित्य और नैमित्तिक आचार विधि। इसमें चैत्यवन्दना और बोधिवन्दना नामक दो प्रकार के मंत्र या स्तोत्र पाठ होते हैं।

चर्यागीत = सहजिया बौद्ध संप्रदाय में प्रचलित उपदेशात्मक गीत। (बंगाल में इन चर्यागीतों का प्रचार था। ये गीत रागबद्ध होते हैं।)

चर्यातंत्र = बौद्ध तंत्रसाहित्य के चार प्रकारों में से एक। इसमें राग, द्वेष, मोह, श्रद्धा, बुद्धि और वितर्क नामक छह

चर्याओं का प्रतिपादन है।

चित्तवज्र = बोधिसत्त्व के चित्त की एक उच्च अवस्था, जिसमें संसार के किसी भी उत्तम-अधम विषय का चित पर कोई परिणाम नहीं होता।

चुंद्रा = (अपर नाम – चंद्रा, चंडा, चंड्रा)। १६ या २६ भुजा वाली एक बौद्ध देवता।

चेतना = बौद्ध मतानुसार मानसकर्म। मुनियों की शुद्ध चेतना से ही फल की उत्पत्ति होती है।

चेतयित्वा = बौद्ध मतानुसार कर्म के दो प्रकारों में से एक। इसके दो प्रकार – (१) कायिक और (२) वाचिक।

चैत्यक = अशोकपूर्वकाल में उत्पन्न बौद्ध धर्म के 18 निकायों में से महासांघिक निकाय से महादेव द्वारा स्थापित एक उपसंप्रदाय। इसी निकाय ने बुद्ध और बोधिसत्त्व को सर्वप्रथम देवस्वरूप माना था जिसे महायान संप्रदाय ने मान्यता दी थी। इस संप्रदाय में चैत्यों की निर्मिति, पूजा, प्रदक्षिणा पुण्यदायक मानी जाती है।

चैत्यमह = एक प्राचीन उत्सव।

चौरी = वज्रयानी बौद्धों की अष्टगौरियों में से एक। वर्ण – पीत, चिह्न – पाश। (साधनमाला)।

छेदोपतापन = (१) संदेहयुक्त मनःस्थिति में व्रत का पालन। (२) व्रतभंग होने पर प्रायश्चित्त लेकर पुनः व्रत का आरंभ।

जंभल = एक बौद्ध देवता। बौद्ध देशों में इसकी मूर्ति की पूजा होती है। कुबेर के समान जंभल भी धन का अधिपति माना जाता है।

जरा-मरण = बौद्ध मतानुसार भवचक्र या प्रतीत्य समुत्पाद के १२ अंगों में से अंतिम अंग।

जांगुली = बौद्धों की बारह धारिणी देवताओं में से छठी देवता। यह सर्पविष की बाधा का निवारण करती है।

जातक कथा = भगवान् बुद्ध की पूर्वजन्म की कथाओं के संग्रह की संज्ञा। यह खुद्दक निकाय का १० वां भाग है।

जातककथा के पांच भाग = (१) पच्चुपन्नवत्थू (वर्तमान घटना), (२) अतीतवत्थू (पूर्व-जन्म की कथा), (३) गाथा (जातक कथा का मुख्य अंश), (४) वेय्याकरण (या अत्थ वण्णना) इसमें गाथा का स्पष्टीकरण होता है।), (५) समोघन (उपसंहार)।

जाति = बौद्ध मतानुसार भवचक्र या प्रतीत्य समुत्पाद के १२ अंगों में से ११वाँ अंग। इसमें प्राणी मातृगर्भ में प्रविष्ट होकर अपने कर्मों का फल भोगने की योग्यता प्राप्त करता है।

जालिनीप्रभ (या सूर्यप्रभ) = अमिताभ नामक ध्यानी बुद्ध का शिष्य जो स्वयं बोधिसत्त्व था।

जीव = (बौद्ध मतानुसार) कर्म के कारण एकत्रित तथा प्रतिक्षण परिवर्तनशील अनेक द्रव्यों का समुच्चय।

ज्वालावस्था = देखिये – विरमानंद (बौद्ध मतानुसार एक आनंद)।

ज्ञानशक्ति पञ्चक = बौद्ध मतानुसार श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा।

डोंबी = वज्रयानी बौद्धों की अष्टगौरियों में से एक। वर्ण –मिश्र, चिह्न –पताका। (साधनमाला तथा निष्पन्नयोगावली)

तथागत गुह्यक = एक बौद्ध तंत्र की संज्ञा। इस तंत्र का पालन करने वाले समाज को तथागत गुह्यक समाज कहते हैं।

तंत्र = बौद्ध धर्म में मंत्रयान और वज्रयान के साहित्य की संज्ञा। बौद्धतंत्र के चार प्रकार – **क्रियातंत्र, चर्यातंत्र, योगतंत्र,** और **अनुत्तरयोग तंत्र**।

तृष्णा = बौद्ध मतानुसार भवचक्र या प्रतीत्य समुत्पाद के १२ अंगों में से आठवां अंग। जीवन की इस अवस्था में विषयोपभोग, संभोग आदि की कामना होती है। तीन प्रकार – **कामतृष्णा** (इन्द्रियभोगों की आसक्ति), **भवतृष्णा** (संसार की आसक्ति), और **विभवतृष्णा** (ऐहिक-पारलौकिक विभव की आसक्ति)।

त्रिरत्न = बुद्ध, धर्म और संघ इन तीनों की संज्ञा।

त्रिरत्न = शील, समाधि, और प्रज्ञा (जो अष्टांगिक मार्ग के तीन वर्ग हैं) इन तीन धर्मतत्त्वों की संज्ञा।

त्रिशरण = बुद्ध, धर्म और संघ इन तीन शरणस्थानों का आश्रय लेना। "बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघ सरणं गच्छामि" इस मंत्र का त्रिवार उच्चारण।

त्रिकाय = महायानी मतानुसार **धर्मकाय, संभोगकाय** और **निर्माणकाय** नामक बुद्ध की तीन कायाओं की संज्ञा।

त्रिचक्र = बौद्ध दर्शन के तीन परिवर्तन। (१) नैरात्म्यवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, (२) धर्मनैरात्म्यावाद, शून्याद्वैतवाद, (३) विज्ञानवाद, योगाचार। इन तीन सैद्धान्तिक भूमिकाओं के विकासक्रम को 'त्रिचक्र' कहते हैं।

दशभूमि = बोधिसत्त्व को बुद्धत्त्व प्राप्त करने के लिए उल्लंघनीय दस अवस्थाएँ। महायानी दशभूमि कल्पना मानते हैं। हीनयानी चारभूमि – स्रोतापन्न, सकृदागमी, अनागमी और अर्हत् – मानते है।

देवकुल = तांत्रिक बौद्ध संप्रदायों में माने गये वैरोचन, संभव, अमिताभ, अमोघ, और अक्षोभ्य, नामक पांच ध्यानी बुद्धों और उन प्रत्येक के परिवार की अनेकविध देवताओं का समूह।

धर्मकाय = सांसारिक क्लेशादि से मुक्त भगवान् बुद्ध का शरीर।

धर्मगुप्तिक = अशोकपूर्व काल में उत्पन्न बौद्ध धर्म के १८ संप्रदायों में से महीशासक संप्रदाय से उत्पन्न एक निकाय। मध्य एशिया तथा चीन में इसका प्रचार हुआ था। ये लोग स्तूप की पूजा महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

धर्मचक्र = (१) हृदयस्थित योगचक्र की संज्ञा। (२) बौद्ध धर्म का एक चक्राकार प्रतीक। भगवान् बुद्ध को संबोधी प्राप्त होने पर उन्होंने सारनाथ में जो प्रथम प्रवचन दिया उसे 'धर्मचक्र प्रवर्तन' कहते हैं। धर्मचक्र भगवान् बुद्ध द्वारा

प्रतिपादित चार आर्यसत्यों का प्रतीक माना जाता है।

धर्मचक्र प्रवर्तन = बोधी प्राप्त होने पर गौतम बुद्ध द्वारा इसिपत्तन (सारनाथ) में कौण्डिन्य आदि पंचवर्गीय भिक्षुओं को दिया ज्ञानोपदेश।

धर्मधातु = देखिये- वज्रसत्त्व।

धर्ममहामात्र = सम्राट अशोक द्वारा धर्मप्रचार के लिये नियुक्त अधिकारी वर्ग।

धर्मयुत = सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध-धर्म के प्रचारार्थ नियुक्त अधिकारी।

धर्मविजय प्रक्रम = भगवान् बुद्ध से संबधित तीर्थस्थानों का दर्शन करने हेतु सम्राट अशोक की यात्रा। इसी यात्रा में स्तूप स्थापित किये गये।

धातुत्रय = महायान बौद्ध मतानुसार रूप, काम, और धर्म नामक तीन धातुएं क्रमशः निर्माणकाय, संभोगकाय और धर्मकाय के कारण कहे ज़ाते हैं।

धारणी मंत्र = तांत्रिक बौद्ध संप्रदाय में मान्यता प्राप्त मंत्र। ये मंत्र बुद्धप्रणीत माने जाते है।

ध्यानीबुद्ध = पंचस्कन्धों के अधिष्ठाता पाच देवताओं की संज्ञा। पांच ध्यानीबुद्ध – वैरोचन, रत्नसंभव, अमिताभ, अमोघसिद्धि और अक्षोभ्य।

नवधर्म = बौद्ध धर्म के महायान सूत्रान्तर्गत प्रसिद्ध नौ ग्रंथों की संज्ञा। नौ ग्रन्थ – अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, सद्धर्मपुंडरीक, ललितविस्तर, लंकावतार, सुवर्णप्रभास, गंडव्यूह, तथागतगुह्यक, समधिराज, और दशभूमीश्वर। अपर संज्ञा – **वैपुल्यसूत्र**।

नामरूप = बौद्ध मतानुसार भवचक्र या प्रतीत्य समुत्पाद के १२ अंगों में से चौथा। भ्रूण अवस्था में प्राणी की शारीरिक एवं मानसिक प्रगति। विज्ञान अवस्था से षडायतन नामक ५ वीं अवस्था तक यह अवस्था होती है।

निकाय = भगवान् बुद्ध के महानिर्वाण के पश्चात् मतभेदों के कारण उत्पन्न १८ संप्रदाय।

नियत कर्म (बौद्ध मत) = निश्चित फल देने वाला कर्म।

निरोधगामिनी प्रतिपद् = बौद्ध मतानुसार आर्य सत्यों में अंतिम सत्य। प्रतिपद् = मार्ग (जो अष्टांगिक होता है)। अर्थात् दुःखनिरोध करने का अष्टांगिक मार्ग।

निर्माणकाय = सांसारिक जीवन व्यतीत करने वाला भगवान बुद्ध का मानव शरीर।

निर्माणचक्र = नाभिस्थित योग चक्र की बौद्ध संप्रदायी संज्ञा।

निर्वाण = बौद्ध साधक का अंतिम साध्य। (निव्वाणं परमं पदम्)।

निर्वाण = "दुःखनिरोध" नामक तृतीय आर्यसत्य की अपर संज्ञा। त्रिविध तृष्णाओं का त्याग (या प्रतिसर्ग) ही निर्वाण है।

निर्वाण = हीनयानी मतानुसार क्लेशावरण का निवारण और महायानी मतानुसार क्लेशावरण और ज्ञेयावरण दोनों का निवारण। हीनयानी दुःखाभाव को निर्वाण मानते है। किन्तु महायानी निर्वाण आनन्दरूप मानते हैं।

निर्वाणावस्था = देखिये – सहजानन्द (बौद्ध मतानुसार सर्वश्रेष्ठ आनंद)।

नेपाल के चार बौद्ध संप्रदाय = स्वाभाविक, ऐश्वरिक, कार्मिक, और यात्रिक।

नैरात्म्यवाद = देखिये अनात्मवाद।

पंच पारमिता = बौद्ध मत के वज्रयान संप्रदाय में पारमिता नामक साधना का विशेष महत्त्व माना है। पारमिता का अर्थ है परम उत्कृष्ट अवस्था। पंच पारमिताओं में प्रज्ञा पारमिता सर्व श्रेष्ठ मानी गई है जो भगवान् बुद्ध को प्राप्त हुई थी।

पंच बंधन = (बौद्ध मतानुसार) सत्काय दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रतपराभास, कामच्छंद और व्यापाद। इन बंधनों से मुक्त साधक अनागमी और अंत में अर्हत् अवस्था को प्राप्त करता है।

पंच भिक्षु = भगवान् बुद्ध से प्रथम उपदेश पाये हुए पांच भिक्षु – कौण्डिन्य, वप्र, भद्रायु, महानाम और अश्वजित्।

पंच शील = अहिंसा, सत्यभाषण, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और मद्य-मदिरा आदि का त्याग। इन पांच व्रतों की संज्ञा। (शील शब्द सभी सात्त्विक कर्मों का द्योतक है)।

पंच स्कन्ध = रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान। इन पांचों की उत्पत्ति रागद्वारा होती है और ये दुःखस्वरूप होते हैं।

परमाणुपुंज वाद = एक बौद्ध मत जो पंच स्कंधों को केवल परमाणुओं का पुंज मानता हैं।

परमानन्द = बौद्ध मतानुसार आनंद के चार प्रकारों में द्वितीय प्रकार, जो बोधिचित्त की पूर्णता में प्राप्त होता है। (बोधिचित्त = शरीर का सारभूत अंश जिसे बिन्दु कहते हैं)।

परित्राणपाठ = महामंगल सुत्त, करणीयमेत्त सुत्त, महामंगल गाथा, पुण्यानुमोदन, और जयमंगल अट्ठगाथा, इन पांचों का पठन, अमंगलनाश तथा मंगलप्राप्ति के निमित्त, करना या करवाना।

पापदेशना = सहेतुक या अहेतुक किये हुये पापों का भगवान् बुद्ध की मूर्ति के समक्ष पश्चात्तापयुक्त निवेदन।

पारमिता दशक = दान, शील, नैष्कर्म्य, प्रज्ञा, वीर्य, क्षान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री और उपेक्षा। दशपारमिता (पूर्णता) की साधना से ५५० जन्मों के पश्चात् शाक्यमुनि को सम्यक् समाधि की अवस्था प्राप्त हुई ऐसी महायानों की श्रद्धा है।

पाराजिक धम्म = बौद्ध भिक्षुओं के लिए निषिद्ध ४ आचार।

पुक्काशी = वज्रयानी बौद्धों की अष्टगौरियों में से एक। वर्ण – नील, चिह्न – बोधिचित्त घट।

पुण्यानुमोदन = बौद्धों की अनुत्तरपूजा के सात अंगों में एक। इसमें संसार के सभी प्राणियों को दुःखमुक्ति तथा सत्कर्म-प्रवृत्ति की प्रार्थना होती है।

पुद्गल = बौद्ध मतानुसार व्यावहारिक आत्मा की अपर संज्ञा। यह रूप, वेदना, संज्ञा संस्कार और विज्ञान नामक पांच स्कन्धों का संघात या समुदाय मात्र है। इसे 'सत्ता' भी कहते हैं।

पुद्गल नैरात्म्य = बौद्ध दर्शन के अनातमवाद (आत्मतत्त्व

का अस्तित्व नकारने वाला विचार) की अपर संज्ञा।

पूर्वशैलीय = आंध्र में उत्पन्न एक चैत्यवादी बौद्ध संप्रदाय। धान्यकटक की पूर्वदिशा में स्थित पर्वत में निवास के कारण यह संज्ञा प्राप्त हुई।

पृष्ठ = मौलकर्मपथ (प्रत्यक्ष कर्म) के अनंतर होने वाला कर्म (उदा. – हिंसित पशु के मांस का विक्रय)। इस पश्चात्-कृत्य का फल-भोग नहीं होता।

प्रकृतिचर्या = बोधिसत्त्व को बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए करणीय चार चर्याओं में से प्रथम चर्या। इसमें माता, पिता, श्रमण, ब्राह्मण, आदि की सेवा, बुद्ध की पूजा तथा सत्कर्म विहित हैं।

प्रज्ञा = बौद्धों के शिक्षात्रय नामक विशुद्धिसाधना के अन्तर्गत मोहादि चित्तविकारों का निर्मूलन करने की साधना।

प्रज्ञापारमिता = वज्रयानी बौद्ध साधक को तथागत (बुद्ध) की अवस्था प्राप्त होने पर जो मुद्रा होती है उसकी संज्ञा।

प्रज्ञात्रय = (१) श्रुतमयी प्रज्ञा (आत्मप्रमाण से उत्पन्न निश्चय), (२) चिंतामयी प्रज्ञा (युक्ति या तर्क के द्वारा उत्पन्न निश्चय), (३) भावनामयी प्रज्ञा (समाधिजन्य निश्चय)।

प्रज्ञोपाय = (१) एक बौद्ध सिद्धान्त जो प्रज्ञा और उपाय के संभोग का प्रतिपादन करता है। (२) वामशक्ति और दक्षिण शक्ति तथा शून्यता और करुणा के दुग्धजलवत् मिलन का स्थान। (हेवज्रतंत्र)। (३) सहजयानी बौद्धों के मतानुसार भोग और मोक्ष की दूध-जल के समान अद्वयावस्था।

प्रज्ञोपाय युगनद्ध = बौद्धों की एक गुह्य साधना जिसमें हठयोग का महत्त्व होता है।

प्रणिधि (या प्रणिधान) चर्या = बोधिसत्त्व को बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए करने योग्य चार चर्याओं में से द्वितीय चर्या। इसमें संबोधि (सम्यक् ज्ञान) की प्राप्ति करने की प्रतिज्ञा होती है।

प्रतिसर्ग = त्रिविध तृष्णाओं (कामतृष्णा, भवतृष्णा और विभवतृष्णा) का त्याग। इसी को 'निर्वाण' कहते है।

प्रतीत्य समुत्पाद = एक बौद्ध सिद्धान्त। वासनाओं के कारण मनुष्य में कर्मप्रवृत्ति होती है। कर्म के अनुसार पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार जन्ममरण की शृंखला का प्रतिपादन इस सिद्धान्त द्वारा हुआ है। कार्य-कारण संबंध का नियम। (अस्मिन् सति इदं भवति)।

प्रत्यक्ष ज्ञान = नाम, जाति, गुण, कर्म, द्रव्य, आदि के आकलन विरहित अर्थात् कल्पना विरहित तथा भ्रान्तिरहित ज्ञान। चार प्रकार – इन्द्रियप्रत्यक्ष, मानसप्रत्यक्ष, स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष, और योगिप्रत्यक्ष

प्रत्यय = बौद्ध मतानुसार कार्य-कारण संबंध के विविध प्रकार या एक वस्तु का दूसरी वस्तु से संबंध। कार्य का गौण कारण। उदा. – वृक्ष के बीज के अतिरिक्त पृथ्वी, जल, आदि।

प्रत्येक बुद्ध = बुद्धत्व की एक अवस्था। पूर्वजन्म के संस्कारों के प्रभाव से गुरुबोध के बिना ज्ञान संपन्न सत्पुरुष। ऐसा पुरुष आत्मोद्धार कर सकता है। दूसरों का उद्धार करने की उसमें शक्ति नहीं होती।

प्रत्येक बुद्ध यान = बौद्ध धर्म के तीन यानों में से द्वितीय यान।

प्रदेशबन्ध = जीव के बंधनकारक कर्म के परमाणुओं की संख्या नियत होना।

प्रमाण = बौद्ध न्यायानुसार अज्ञातार्थ – प्रकाशक, वास्तवानुकूल, और अर्थक्रिया द्वारा प्रतिबोधित होता है। दो प्रकार – प्रत्यक्ष और अनुमान।

बहुश्रुतीय = अशोक पूर्वकाल में उत्पन्न बौद्ध धर्म के १८ निकायों में से महासांघिक निकाय से उत्पन्न एक उपसंप्रदाय। ये लोग बुद्ध में चतुर्विध वैशारद्य, दशबल आदि दिव्यगुण मानते हैं। केवल वर्तमान को ही ये लोग वास्तव मानते हैं।

बाह्यार्थ प्रत्यक्षवाद = वैभाषिक बौद्धों का सिद्धान्त। जिन वस्तुओं पर मानवी जीवन आधारित होता है उनका अस्तित्व स्वयंसिद्ध मानना।

बाह्यार्थानुमेयवाद = सौत्रान्तिक बौद्धों का सिद्धान्त। आदर्श में प्रतिबिंब देखने पर बिंब की सत्ता का अनुमान होता है। इसी प्रकार बाह्य वस्तु का प्रतिबिंब चित्तपटल पर होने से मूल वस्तु के अस्तित्व का अनुमान मात्र होता है। बाह्य वस्तु का अस्तित्व प्रत्यक्ष पर नहीं अपि तु अनुमान पर अवलंबित होता है।

बिन्दु = बौद्ध तंत्र के अनुसार शरीर का सारभूत अंश। इसी को **बोधिचित्त** कहते हैं।

बुद्धयाचना = बौद्धों की अनुत्तरपूजा के सात अंगों में एक। समस्त मानवजाति के कल्याण का चिन्तन बोधिसत्त्व करे, यह प्रार्थना।

बुद्धाध्येषणा = बौद्धों की अनुत्तर पूजा के सात अंगों में एक अंग। दुःखनिवृत्ति के लिये संसार के सभी जीवमात्र को धर्मोपदेश करने की भगवान बुद्ध से प्रार्थना।

बोधी = सत्यज्ञान। (बोधीसंपन्न होने पर गौतम को 'बुद्ध' कहने लगे)।

बोधिचित्त (या बोधिवज्र) = सद्वस्तु और जगत् का अद्वय भाव।

बोधिपरिणामना = बौद्धों की अनुत्तर पूजा के सात अंगों में अंतिम अंग। अनुत्तर पूजा के कारण "मै प्राणिमात्र के दुःख का प्रशमन करने में कारणीभूत हो सकूं" यह भावना धारण करना।

बोधिसत्त्व = बोधी याने ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने वाला, सत्त्व (अर्थात् जीव)। बुद्धत्व की एक अवस्था।

बोधिसत्त्व = पंचस्कन्धों के अधिष्ठाता पांच बुद्धों के मानवी आविर्भाव। बुद्ध के अवतार।

बोधिसत्त्व = महायानी बौद्ध मतानुसार हीनयान के 'अर्हत्'

पद से उच्चपद पर आरूढ बुद्ध की उपाधि।

बोधिसत्त्व की दशभूमियां = दुरारोहा, बद्धमाना, पुष्पमंडिता, रुचिरा, चित्तविस्तारा, रूपवती, दुर्जया, जन्मनिदेश, यौवराज्य और अभिषेक।

बोधिसत्त्व यान = बौद्ध संप्रदाय के तीन यानों में से तृतीय यान। बोधिसत्त्व = सभी प्राणीमात्र के दुःख-क्लेशों का परिहार करने का प्रयत्न करने वाला महापुरुष। यह प्रत्येक बुद्ध से उच्चकोटि का होता है।

बौद्धतीर्थ = (चार स्थान) – (१) लुंबिनी (जन्मस्थान), (२) गया (ज्ञानस्थान), (३) ऋषिपत्तन (प्रथम प्रवचन स्थान), और (४) कुसीनारा (निर्वाण स्थान)।

बौद्ध दर्शन के संप्रदाय = (चार प्रकार) – वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक।

भद्रकल्प = विद्यमान कल्प की बौद्ध परंपरा के अनुसार संज्ञा। इस कल्प का अधिपति है अवलोकितेश्वर नामक बोधिसत्त्व।

भव = बौद्ध मतानुसार भवचक्र या प्रतीत्य समुत्पाद के १२ अंगों में से १० वां अंग। विषयासक्ति के कारण प्राणी पाप-पुण्य स्वरूप कर्म, इस अवस्था में करता है। इस कर्म स्वरूप भव के कारण प्राणी का पुनर्जन्म होता है।

भवचक्र = प्रतीत्य समुत्पाद सिद्धान्त के १२ अंग – अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति और जरामरण। इन १२ अंगों मे यथाक्रम पहला कारण और दूसरा उसका कार्य होता है।

भवतृष्णा = बौद्ध मतानुसार त्रिविध तृष्णाओं में एक जो दुःखसमुदय (एक आर्यसत्य) का कारण है।

भाजनलोक = सर्वास्तिवादी बौद्ध मतानुसार विश्व का आधारभूत एक लोक। अन्यलोक है **'सत्त्वलोक'** जो सजीव प्राणियों का निवास स्थान है।

भ्रान्ति के पांच प्रकार (१) संज्ञा भ्रान्ति – (मृगजल में जल की भ्रान्ति)। **(२) संख्या भ्रान्ति** – (नेत्र दोष के कारण दो चन्द्रमाओं का दर्शन)। **(३) संस्थान भ्रान्ति** – जलती लकड़ी के घुमाने पर तेजोवलय की भ्रान्ति)। **(४) वर्ण भ्रान्ति** – (पीलिया रोग के कारण शुभ्र वस्त्र पीला दिखना)। **(५) कर्म भ्रान्ति** – (वाहन के वेग से वृक्षों में वेग का दर्शन। इन पांच प्रकारों की भ्रान्ति से रहित ज्ञान को 'प्रत्यक्ष' कहते हैं।

मंजुश्री = एक बोधिसत्त्व का नाम।

मंत्रयान = एक बौद्ध संप्रदाय जो मंत्रसाधना में ही निर्वाण प्राप्ति हैं ऐसी श्रद्धा रखता है।

मध्यममार्ग = गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित अष्टांगिक मार्ग का स्वरूप। अष्टांगिक मार्ग में दुःखनिरोध के जो आठ उपाय – (वाचा, कर्मान्त, आजीव, व्यायाम, स्मृति, समाधि, संकल्प, और दृष्टि) कहे हैं, उनमें प्रत्येक को सम्मा (या सम्यक्) विशेषण लगा है। सम्यक् का स्पष्टीकरण 'मध्यममार्ग' शब्द से होता है। मध्यममार्ग याने उन्मार्ग का त्याग, अर्थात् किसी भी प्रकार से अतिरेक न करना। उदा. – अतिभोजन या सर्वथा अनशन त्याग कर मिताहार या युक्ताहार ही सम्यक् (सम्मा) होता है। यही मध्यम मार्ग है। अष्टांगिक मार्ग में मध्यममार्ग अपेक्षित है।

मध्यमा प्रतिपद् = गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित मध्यम मार्ग की संज्ञा। इसमें संसार को वास्तविक तथा अवास्तविक भी नहीं माना जाता।

मध्यमा प्रतिपद् = आत्मा की पारमार्थिक शाश्वत सत्ता मानना तथा उसके विपरीत उसका सर्वथा अभाव मानना इन दो ऐकांतिक मतों का समन्वय करते हुए, व्यावहारिक दृष्टि से पंच स्कंधात्मक आत्मा को मानना और पारमार्थिक दृष्टि से उसका अभाव मानना।

महापरिनिर्वाण = भगवान् बुद्ध के निधन का निर्देश इस शब्द से होता है।

महाभिनिष्क्रमण = गौतम बुद्ध का गृह, दारा, सुत, धन आदि सर्वस्व का परित्याग। आषाढी पौर्णिमा को **'महानिष्क्रमण** दिन' का व्रतोत्सव मनाया जाता हैं।

महामुद्रा = सहजयानी बौद्ध मत के अनुसार साधनावस्था में उपयुक्त नारी। (इसी को प्रज्ञा और साधक को उपाय कहते हैं)। प्रज्ञा + उपाय की समरसता को ही वे निर्वाण मानते हैं।

महायान = अपर संज्ञा- **अग्रयान या बोधिसत्त्वयान।** बौद्ध धर्म के दो प्रमुख संप्रदायों में से एक की संज्ञा। महायानी बोधिसत्त्व को आदर्श और पूज्य मानते हैं। दो प्रकार – (१) भक्तिमार्गी – बोधिसत्त्व यान और प्रज्ञायान। (२) तंत्रमार्गी – मंत्रयान, वज्रयान, तंत्रयान इ.।

महासांघिक = अशोक पूर्व काल में उत्पन्न बौद्ध धर्म के १८ निकायों में से एक थेरवादी (स्थविरवादी) मत के विरोध में इसका उदय हुआ। यही महायान संप्रदाय का मूल स्रोत माना जाता है। ये अनेक अतिमानुष बुद्धों का अस्तित्व मानते हैं। जो समाधि अवस्था में रहते हैं। परिवर्तन-वादियों का यह संप्रदाय था।

महीशासक = अशोक पूर्व काल में उत्पन्न बौद्ध धर्म के १८ संप्रदायों में से स्थविरवादी संप्रदाय से उत्पन्न एक उपसंप्रदाय। ये लोग गत (भूत) और अगत (भविष्य) नहीं मानते, केवल वर्तमान और 'असंस्कृत धर्म' (देखिये) मानते हैं।

मातिकाधर = बौद्ध विद्यापीठ में मंत्र-तंत्र आदि का ज्ञान देने वाले गुरुजन। (मातिका- मातृका अर्थात् मंत्रतंत्र)।

माध्यमिक = अशोक पूर्व काल में उत्पन्न बौद्ध धर्म के १८ निकायों में से नागार्जुन द्वारा स्थापित एक मध्यममार्गनिष्ठ संप्रदाय। नागार्जुन ने शून्यता को ही परमतत्त्व कहा है। अतः इसे "शून्यवादी निकाय" कहते हैं। शून्यता का अर्थ है वस्तु का सापेक्ष अस्तित्व।

मानसिक कर्मपथ = असत्य भाषण, गर्व और निंदा जैसे मानसिक कुकर्म।

मायाजाल क्रम = महायान बौद्धों के उपास्य अवलोकितेश्वर की मूर्ति का एक प्रकार।

मायाजालक्रम कुरुकुल्ला = एक तांत्रिक बौद्ध देवता। यह सर्पारूढ होती है तथा इसके मस्तक पर पांच ध्यानी बुद्ध होते हैं।

मार = समाधिमग्न बुद्ध की ज्ञानसाधना में विघ्न उत्पन्न करने वाले क्षुद्र देवता। कामवासना, क्षुधा, तृष्णा, लोभ, आलस्य, भीति, संशय, दंभ आदि विकार मार देवता के सैनिक हैं। भगवान् बुद्ध को 'मारजित्' कहते हैं।

मुद्रा = बौद्धों की तांत्रिक साधना में गुरु द्वारा शिष्य को समर्पित विशिष्ट स्त्री। ब्राह्मणी, क्षत्राणी, शूद्री, डोंबी, चांडाली आदि अनेक जातियों की स्त्री 'मुद्रा' मानी जाती है। बौद्ध तांत्रिक साधक इस मुद्रा से रममाण होकर सुप्त शक्तियों को जागृत करते थे।

मौनवाद = भगवान् बुद्ध को "जीव की शरीर से भिन्नता" व "मरणोत्तर जीव का अस्तित्व" के विषय में प्रश्न पूछे गये थे तब उन्होंने उन प्रश्नों के उत्तर में मौन का अवलंब किया था। इसी को मौनवाद कहते हैं।

मौल प्रयोग = प्रत्यक्ष कर्म की पूर्व सिद्धता। उदा. – हिंसा के हेतु पशु को खरीदना।

यात्रिक = नेपाल के चार बौद्ध संप्रदायों में से एक।

यानत्रय = बौद्धमतानुसार श्रावकयान, प्रत्येक बुद्धयान, और बोधिसत्त्वयान। ये तीनों 'यान' निर्वाणप्राप्ति के पृथक् मार्ग माने हैं।

युगनद्ध देवता = बौद्ध तांत्रिकों के शक्तिसहित संयुक्त देवता। देवताओं का यह स्वरूप बौद्ध तांत्रिकों के अद्वयवाद सिद्धान्त का द्योतक है। प्रज्ञा और उपाय इन दोनों का संयोग युगनद्ध अवस्था में सूचित होता है।

युगनद्धरूप = सहज (या सहजिया) संप्रदाय में सम्मत प्रज्ञा और उपाय का मिलन। प्रज्ञोपाय मिलन ही महासुख का उपाय माना गया है।

योगतंत्र = बौद्ध तंत्र साहित्य के चार प्रकारों में से एक। इसमें योगसाधना से संबंधित क्रियाओं का प्रतिपादन किया है।

योगाचार = अशोकपूर्व काल में उत्पन्न बौद्ध धर्म के १८ निकायों में से एक। मैत्रेय इसके संस्थापक तथा असंग और वसुबन्धु समर्थक विद्वान् थे। इस संप्रदाय में बोधि (सत्य ज्ञान) की प्राप्ति का साधन योग माना गया है। वसुबन्धु ने इसे 'विज्ञानवाद' कहा है। लंकावतारसूत्र इस निकाय का प्रमाण ग्रंथ है। विज्ञानवाद यानी विज्ञप्ति अर्थात् विज्ञान (अनुभवपूर्ण ज्ञान) ही अंतिम सत्य मानने वाला मत।

योगाम्बर मंडल = तांत्रिक बौद्धों के विशिष्ट देवकुल की संज्ञा।

रत्नत्रय = बुद्ध, धर्म और संघ।

राजगिरक = चैत्यवादी संप्रदाय की आंध्र में उत्पन्न एक शाखा। (देखिये- सिद्धार्थक)।

लोकप्रज्ञप्ति = बौद्ध मतानुसार जगदुत्पत्ति की संज्ञा।

वज्र = (१) बौद्ध मतानुसार भौतिक जगत् के अंत में शाश्वत रहने वाला शून्य स्वरूप सद् वस्तुतत्त्व, जो अभेद्य तथा अविनाशी है। (२) शून्यता का प्रतीक।

वज्र = वज्रयानी मत के अनुसार अच्छेद्य, अभेद्य, तथा अविनाशी, तत्त्व अर्थात शून्यता (शून्यता वज्रमुच्यते)।

वज्रधर = वज्रयानी मतानुसार सर्वश्रेष्ठ बुद्ध।

वज्रधर = कालचक्रयान नामक बौद्ध संप्रदाय के प्रमुख देवता आदिबुद्ध का अवतार।

वज्रधर्म = अवलोकितेश्वर का एक प्रकार। नेपाल में अवलोकितेश्वर के १०८ प्रकार माने जाते हैं।

वज्रयान = तांत्रिक साधना तथा ध्यानी बुद्ध, देवकुल, युगनद्ध, महासुख आदि सिद्धातों को मानने वाला एक बौद्ध संप्रदाय।

वज्रयान = मंत्र, मैथुन, भैरवीचक्र और हठयोग की साधना करने वाला एक मध्ययुगीन (ई. ८-१२ शती) बौद्ध संप्रदाय। **मंत्रयान** में भैरवीचक्र की उपासना या मैथुन की साधना नहीं होती, यही दोनों संप्रदायों में अंतर है। ८४ सिद्ध वज्रयानी माने जाते हैं।

वज्रयोगिनी = वज्रयानी बौद्धों की एक छिन्नमस्ता देवी।

वज्रवाराही = वज्रयानी बौद्धों की एक उपास्य देवता। अपर संज्ञा – बुद्धडाकिनी, तथा वज्रवैरोचनी। तिब्बत और चीन में इसकी उपासना होती है।

वज्रवाहनिका (या वज्रेश्वरी विद्या) = युद्ध में जय प्राप्ति के हेतु इसका दैवी प्रयोग होता था।

वज्रविदारिणी = अक्षोभ्य नामक ध्यानी बुद्ध के परिवार के वज्रयान की एक उपास्य देवता।

वज्रशृंखला = अमोघसिद्धि नामक ध्यानी बुद्ध के परिवार की उपास्य देवता। वज्रयानी बौद्ध इसकी आराधना करते हैं।

वज्रसत्त्व = वज्रयानी मतानुसार एक बोधिसत्त्व। यही अन्य सब बौद्ध देवताओं का आदिदेव माना जाता है।

वज्रसत्त्व = (अपरसंज्ञा - धर्मधातु) पाच ज्ञानी बुद्धों का पुरोहित। वज्रयानी बुद्धों के उपास्त देवता।

वज्रपर्वतवासी निकाय = वज्रयान की अपर संज्ञा – आंध्र के श्रीशैल या श्रीपर्वत को ही वज्रपर्वत कहते हैं।

वज्रहुंकार = रौद्रस्वरूपी वज्रयानी बौद्ध देवता। इसकी मूर्तियां चीन में विद्यमान हैं।

वज्राचार्य = यह प्रत्येक तथागत का गुरु माना गया है।

वज्रानंग = वज्रायानी बौद्धों के प्रेमदेवता। बोधिसत्व मंजुश्री का एक स्वरूप।

वज्रामृत = ध्यानी बुद्ध अमोघसिद्धि के परिवार के एक वज्रयानी देवता।

वज्रासन = बोधिवृक्ष के नीचे जिस पाषाण खंड पर गौतम

बुद्ध को बोधि (ज्ञान) की प्राप्ति हुई, उसकी संज्ञा।

वज्रासन बुद्ध (या मानुषी बुद्ध) = गौतम बुद्ध का एक स्वरूप। इसकी असंख्य मूर्तियां भारत में विद्यमान हैं जिसमें दाहिनी ओर मैत्रेय बोधिसत्त्व और बांयी ओर लोकेश्वर बोधिसत्त्व की मूर्तियां होती हैं।

वाग्विज्ञाप्ति = वाचिक कर्म। क्षणिक चेतना (अर्थात् मानस कर्म) के पुनः पुनः अभ्यास से इसकी उत्पत्ति होती है।

वात्सीपुत्रीय = अशोक पूर्वकाल में उत्पन्न बौद्ध धर्म के १८ निकायों में से एक पुद्गल सिद्धान्तवादी संप्रदाय। ये लोग पुद्गल को ही व्यक्ति का स्थिरतत्त्व मानते है। पुद्गल के कारण ही पुनर्जन्म संभव है। इसका प्रचार अवंती प्रदेश में हुआ।

विज्ञान = बौद्ध मतानुसार भवचक्र या प्रतीत्य समुत्पाद के १२ अंगों में से तीसरा। इस अवस्था में गर्भस्थ प्राणी को चैतन्य प्राप्त होता है।

विज्ञानवाद = एक बौद्ध दार्शनिक मत। असंगकृत योगाचार भूमि और उत्तरतंत्र इन ग्रंथों में इसका समर्थन हुआ है। वसुबंधु का अभिधर्मकोश भी इस मत का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। पांच इन्द्रियां तथा मन के विज्ञानों के अतिरिक्त विज्ञानवादी 'आलय विज्ञान' मानते हैं जिसमें संसार की जड और चेतन वस्तु की उत्पत्ति और लय होता है। वे आत्मा को केवल विज्ञान स्वरूप मानते हैं।

विज्ञानवाद = योगाचार बौद्धों का सिद्धान्त। विज्ञान = चित्त। चित्तस्वरूप विज्ञान के अतिरिक्त सारा संसार मिथ्या है। विज्ञान के विविध आभास को ही जगत् कहते हैं।

विद्यात्रय = देखिये समाधि।

विनयग्रंथ = बौद्ध भिक्षु की चर्या का कथन करने वाला ग्रंथ।

विनयधर = बौद्ध विद्यापीठ में विनय (बौद्ध धर्म की शिक्षा के दो अंगों में से दूसरा अंग। पहला अंग है धम्म) का अध्यापन करने वाले गुरुजन।

विभवतृष्णा = बौद्ध मतानुसार त्रिविध तृष्णाओं में एक जो दुःखसमुदय (एक आर्यसत्य) का कारण है।

विरमानन्द = बौद्ध मतानुसार आनंद के चार प्रकारों में से तृतीय प्रकार। इसकी अनुभूति को "ज्वालावस्था" कहते है। सहजिय (बौद्ध) मतानुसार राग-द्वेष आदि मानसिक विकारों का शक्ति साधना के कारण प्रशमन होने पर प्राप्त सर्वोच्च अवस्था।

विषयदत्त = स्थविरवादी बौद्ध निकाय (या संप्रदाय) का एक मत। इसके अनुसार पदार्थ धर्म के दो विभाग माने जाते हैं। (१) असंस्कृत धर्म और (२) संस्कृत धर्म। नित्य, स्थायी, शुद्ध, तथा किसी भी कारण की सहायता से उत्पन्न न होनेवाले **असंस्कृत धर्म** होते हैं और **संस्कृत धर्म** अनित्य, अस्थायी और मलिन होते है। इस के अनुसार सारा संसार स्कंध, आयतन, और धातु संज्ञक तीन महातत्त्वों में विभाजित है।

विहार = भिक्षुओं का निवास-स्थान।

वेताली = वज्रयानी बौद्धों की अष्टगौरियों में से एक। वर्ण-लाल, चिह्न- शृंखला।

वेदना = बौद्ध मतानुसार भवचक्र या प्रतीत्य समुत्पाद के १२ अंगों में से सातवाँ अंग। सुख, दुःख, न सुख, न दुःख। आयु के ५ वें वर्ष से इन तीन वेदनाओं का अनुभव प्राणी को आता है।

व्याप्तिज्ञान = पदार्थों के नित्य और उपाधिरहित संबध का ज्ञान। यही अनुमान का आधार है।

वैपुल्यवादी = अंधक निकाय नामक आंध्र के चार बौद्ध संप्रदायों से इनका संप्रदाय शुरु हुआ। वैपुल्यवादी, बुद्ध का अवतार तथा उसके द्वारा उपदेश नहीं मानते।

वैपुल्यसूत्र = महायान संप्रदाय के प्रमुख नौ ग्रन्थों के संज्ञा। देखिये नवधर्म।

वैभाषिकनय = बौद्धों के सर्वास्तिवादी वाङ्मय की संज्ञा।

शक्ति = सहजिया (बौद्ध) संप्रदाय के अनुसार तीन स्वरूप – अवधूती (द्वैतभावयुक्त), चांडाली (द्वैताद्वैतभावयुक्त), बंगाली या डोंबी (अद्वैतभावयुक्त)।

शबरी = वज्रयानी बोद्धों की अष्टगौरियों में से एक। वर्ण-श्वेत। चिह्न- मेरुपर्वत।

शमथ = शून्यता की अनुभूति के लिए आवश्यक चित्त की एकाग्रता।

शारीरिक धातु = शरीर का दहन होने पर अवशिष्ट रहने वाले अस्थि, दन्त, रक्षा, आदि अवशेष।

शाश्वत दृष्टि = दृष्टि – आत्मज्ञान के दो प्रकारों में से एक। शरीर से भिन्न, अपरिणामी तथा नित्य आत्मा का अस्तित्व मानना। बौद्धमत में यह सम्यक् दृष्टि नहीं है। यह एकान्तिक दृष्टि है।

शासन दायाद = बौद्ध संप्रदाय में दीक्षाप्रांप्त।

शिक्षात्रय (या त्रिशिक्षा) = बौद्ध साधना का एक भाग। इसमें (१) शीलशिक्षा (अधिशील), (२) समाधि शिक्षा (अधिचित्त), और (३) प्रज्ञा इन तीन विशुद्धिसाधनाओं का अन्तर्भाव होता है।

शुद्ध कर्म = वासना, अज्ञान आदि दोषों से अलिप्त कर्म। इसी से फल के अभाव के कारण जीव की निर्वाण प्राप्ति का मार्ग सुकर होता है।

शून्यवाद = माध्यामिक बौद्ध संप्रदाय का तात्त्विक सिद्धान्त। इसके अनुसार सुख-दुःख, बंध-मोक्ष, उत्पात-नाश, गति-विराम, देश-काल इत्यादि सारी धारणाएँ कल्पना मात्र हैं। संसार का पारमार्थिक दृष्टि से अस्तित्व ही नहीं है। कार्य-कारण संबंध सापेक्षता के कारण असत्य है। संसार अनुत्पन्न होने से अविनष्ट है। गुणसमुच्चय के अतिरिक्त आत्मा की सत्ता ही नहीं है। इन्द्रियों द्वारा प्राप्त विषयज्ञान वास्तव नहीं, वह ज्ञानाभास मात्र है। पारमार्थिक सत्य शून्यरूप है। बाह्य पदार्थ एवं विज्ञान (चित्त) सभी 'असत्' हैं। केवल शून्य ही 'सत्' है। जगत्

का अस्तित्व व्यावहारिक है किन्तु शून्य की सत्ता पारमार्थिक है।

श्रावकयान = (अपर संज्ञा- हीनयान) श्रावक अर्थात् गुरु के पास निर्वाण प्राप्ति के उद्देश्य से धर्म की शिक्षा पाने वाला। बौद्ध संप्रदाय के तीन यानों में से यह प्रथम यान है।

षडायतन = बौद्ध मतानुसार भवचक्र या प्रतीत्य समुत्पाद के १२ अंगों में से पांचवां अंग। शरीर के सारे अंग-प्रत्यंग प्राप्त होने पर भी उनका उपयोग करने की असमर्थता इस अवस्था का स्वरूप है।

सत्त्वलोक = देखिये- भाजनलोक।

सप्तशतिक हयग्रीव = एक बौद्ध देवता।

सप्ताक्षर = हेवज्र नामक बौद्ध देवता का एक स्वरूप।

समाधि = तीन प्रकार की विद्या का उदय करने वाली एक साधना। तीन विद्याएँ- (१) पूर्वजन्मस्मृति, (२) जीवों के उत्पत्ति-विनाश का ज्ञान, (३) चित्त-शुद्धि में बाधक विषयों का ज्ञान।

सम्यक् आजीव = बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग में से तृतीय अंग। न्यायपूर्ण व्यवसाय से उपजीविका करना।

सम्यक् कर्मान्त = बौद्ध धर्म के अष्टांमिक मार्ग में से द्वितीय अंग। हिंसा, चोरी, व्यभिचार आदि का त्याग और सदाचार का पालन।

सम्यक् दृष्टि = बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग में से आठवां अंग। आध्यात्मिक दर्शन का ज्ञान।

सम्यक् वाचा = बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग में से प्रथम अंग। मिथ्या, अनुचित और दुष्ट भाषण का त्याग तथा सत्यकथन।

सम्यक् व्यायाम = बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग में से चतुर्थ अंग। दुर्गुणों का क्षय तथा सद्गुणों का संचय करना।

सम्यक् स्मृति = बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग में से पंचम अंग। लोभ-मोह आदि विकारों का क्षय तथा चित्त शुद्ध करने की साधना।

सम्यक् संकल्प = बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग में से सातवां अंग। द्वेष, हिंसा, तथा लौकिक विषयों का त्याग करने में प्रयत्नशीलता।

सम्यक् समाधि = बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग में छठा अंग। चित्त की चंचलता क्षीण करना तथा उसे एकाग्र करना।

सम्यक् सम्बुद्ध (सम्मासंबुद्ध) = सर्वज्ञानी होने के नाते भगवान् बुद्ध की एक सर्वश्रेष्ठ उपाधि।

संघरत्न = बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की महायान सांप्रदायिक उपाधि।

संघातवाद = एक बौद्ध मत, जो रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन पांच स्कधों के संघात (समूह)को ही व्यावहारिक दृष्टि से आत्मा मानता है।

संतानवाद = एक बौद्ध मत जो आत्मा को नित्य किन्तु परिवर्तनशील मानता है। जलप्रवाह या दीपशिखा जिस प्रकार क्षणिक जल या अग्नि की संतान ही होते हैं, उसी प्रकार आत्मा भी पंच स्कंधों की एक संतान या सातत्य मात्र है।

संधाभाषा = सहजयानी बौद्धों के मतप्रचार की एक कूटभाषा। इसी भाषा में सहजयानी चर्यागीतों की रचना ई. १० से १२ वीं शती में बंगाल में हुई।

संभोगकाय = आनंद का अनुभव पाने वाला भगवान बुद्ध का शरीर।

संभोगचक्र = कंठ-स्थित योगचक्र की बौद्ध संज्ञा।

संवर = बौद्ध मतानुसार चार प्रकार के आस्रव ही संसार के कारण हैं। आस्रवरूपी मनोविचारों या मनोविकारों का नियमन ही संवर कहलाता है। (आस्रवो भवहेतुः स्यात्। संवरो मोक्षकारणम्। (सर्वदर्शन संग्रह – आर्हत मत)।

संवरमंडल = तांत्रिक बौद्धों के विशिष्ट देवकुल की संज्ञा।

संस्कार = बौद्ध मतानुसार – भवचक्र या प्रतीत्यसमुत्पाद के १२ अंगों में से दूसरा। पूर्व जन्म में अविद्या की दशा में प्राणी द्वारा किये गये सत्कर्म या पापकर्म।

संस्कृत धर्म = देखिये विषयदत्त।

समंतभद्र = योगाचारमार्गी बौद्ध इसे प्रथम ध्यानीबुद्ध तथा योगमार्ग का जनक मानते हैं।

समंतभद्र = धर्मकायस्वरूप एक श्रेष्ठ बुद्ध। आदि बुद्ध पंथी समंतभद्र से संसार की उत्पत्ति मानते हैं।

सर्वास्तिवादी = अशोक पूर्व काल में उत्पन्न १८ निकायों में से एक निकाय (संप्रदाय), धर्मग्रंथों की रचना संस्कृत भाषा में करने वाले, सर्व वस्तुओं का सर्वदा अस्तित्व मानने वाले, नैरात्म्यवादी, तथा विश्व में ७५ मूलतत्त्वों को मानने वाले बौद्ध साम्प्रदायिक। इसमें सभी पदार्थों में क्षणिकता का सातत्य (संतान) माना जाता है।

सर्वास्तिवाद = एक बौद्ध मत। वसुबंधु ने (५ श.) अपने अभिधर्मकोश में इसका सविस्तर प्रतिपादन किया है।

सर्वापायंह = एक बोधिसत्त्व की संज्ञा। यह सभी अपायों का निवारक है।

सहजकाय = भगवान् बुद्ध की चार कायाओं में से अंतिम सर्वश्रेष्ठ काया। यह दुःखातीत, द्वैतातीत तथा शुद्ध, सिद्ध एवं सहजरूप मानी जाती है। महायानी साधकों का यही प्राप्तव्य है।

सहज (सहजिया) यान = इन्द्रियों का संयम न करते हुए सहज प्रवृत्ति के अनुसार जीवन बिताते हुए बोधिचित्त (अर्थात् चित्त की जाग्रत् अवस्था) की प्राप्ति करने का सन्देश देने वाला एक बौद्ध संप्रदाय।

सहजायन = एक चैतन्यपूर्वकालीन तांत्रिक बौद्ध समाज। सहजयानी बौद्धों के मतानुसार सहज याने शून्यता या परमतत्त्व। मन-इन्द्रियाँ आदि की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का निरोध न करना, उनकी सहज प्रेरणा पूर्ण करना इसी को सहजयान में साधना माना जाता है।

सहजानंद = बौद्ध मतानुसार आनंद की चार अवस्थाओं में सर्वोच्चि चतुर्थ अवस्था। इसी को निर्वाणावस्था कहते हैं, जिसमें

वाचा तथा चित्तबिंदु का अवसान होता है।

संयुक्तनिकाय = बौद्धों के त्रिपिटकों में से सुत्तपिटक के पांच निकायों में से तीसरा निकाय। यह सगाथ, निदान, स्कंध, षडायतन, और महावर्ग नाम छह वर्गों में विभाजित है।

सागरमति = एक बौद्ध देवता।

सामान्यलक्षण = ज्ञेय विषय का दूसरा प्रकार। इसमें अनेक वस्तुओं के ज्ञान में उनके सामान्यस्वरूप का ज्ञान होता है। उदा.- अनेक वृक्षों का ज्ञान होते समय वृक्षत्व का ज्ञान। यह अनुमान का विषय है और यह अर्थक्रिया करने में असमर्थ होता है। (विषय का प्रथम प्रकार है- स्वलक्षण विषय)।

सांवृतिक सत्य = मोह या अविद्या से आच्छादित काल्पनिक ज्ञान। (संवृति- अविद्या)। **दो प्रकार)** – (१) लोकसंवृति (घटपटादि लौकिक पदार्थों का ज्ञान)। और (२) अलोक संवृति (पीलिया के कारण शुभ्र पदार्थ में पीतता का ज्ञान)।

सिद्धार्थक = अशोक के समय में महादेव नामक भिक्षु द्वारा आंध्र में स्थापित चैत्यवादी संप्रदाय की एक उपशाखा। दूसरी शाखा का नाम था **राजगिरक।**

सुखावती = सद्धर्मपुण्डरीक नामक बौद्ध ग्रन्थ में वर्णित स्वर्ग की संज्ञा। (सुखावतीव्यूह एक तांत्रिक बौद्ध ग्रंथ का नाम है)।

सुत्तंतिक = बौद्ध विद्यापीठ में धम्म- का अध्यापन करने वाले गुरुजन।

सौत्रान्तिक (या संक्रान्तिक) = अशोक पूर्वकाल में उत्पन्न बौद्ध धर्म के १८ निकायों में से काश्यपीय निकाय से उत्पन्न एक। श्रावकयान, हीनयान और महायान का समन्वय इस संप्रदाय में हुआ है। सौत्रान्तिक एक ऐसा बौद्ध मत है जो आत्मा के विज्ञान को सत् और ध्रुव मानता है। (यह मत वेदांत के समान है जो आत्मा को सत्, नित्य मानता है।)

स्तूप = भगवान् बुद्ध के शारीरिक धातुओं (अस्थि, दंत, रक्षा) पर रचित स्मारक। ऐसे स्तूप बौद्ध भिक्षुओं का उपासना स्थान होते हैं।

स्तूपमह = एक प्राचीन बौद्धस्तूप संबंधित उत्सव।

स्थविरवादी (थेरवादी या वैभाषिक) = अशोक पूर्व काल में उत्पन्न बौद्ध धर्म के १८ संप्रदायों (निकायों) में से सर्व प्रथम उत्पन्न निकाय। इस मत के अनुयायी सारा संसार अनित्य, निःसार और दुःखपूर्ण मानते हैं। स्थविरवादी-अपरिवर्तनवादी थे।

स्पर्श = बौद्ध मतानुसार भवचक्र या प्रतीत्य समुत्पाद के १२ अंगों में से छठा अंग। प्राणी की शैशव अवस्था की संज्ञा।

स्वर्ग = बौद्ध मतानुसार दो प्रमुख प्रकार- (१) कामधातु और (२) रूपधातु। जैन मतानुसार २६ स्वर्ग = १२ कल्प + ९ ग्रैवेयक + ५ अनुत्तर।

स्वलक्षण = पदार्थ की क्षणिकता के कारण वह दूसरी किसी वस्तु से संबंधित नहीं होता, उसकी स्वतः में विशिष्ट सत्ता होती है। यह एक बौद्ध सिद्धान्त है।

स्वलक्षण = जिस ज्ञेय विषय का ज्ञान शब्दादि प्रमाण के बिना होता है अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञात होने वाला विषय। यह अर्थक्रिया करने में समर्थ होता है। (ज्ञेय विषय का दूसरा प्रकार है सामान्य लक्षण)।

स्वाभाविक = नेपाल के चार बौद्ध सम्प्रदायों में से एक।

हारीती = एकं बौद्ध देवता। स्थविरवाद (थेरवाद) और सर्वास्तिवाद मानने वाला बौद्ध संप्रदाय। सर्वास्तिवाद से वैभाषिक और सौत्रांतिक संप्रदाय उत्पन्न हुए, वे भी हीनयान में अन्तर्भूत होते हैं।

हीनयान = स्थविरवादी बौद्ध संप्रदाय की अपर संज्ञा। हीन यानी अर्हत् को आदर्श मानते हैं। वे अपरिवर्तनवादी हैं।

हेतु = अनुमान को सिद्ध करने वाला घटक। तीन प्रकार – अनुपलब्धि, स्वभाव और कार्य।

हेतु = बौद्ध मतानुसार लोभ, मोह आदि दोषों के कारण चित्त की विकृति। कार्य का प्रमुख कारण। उदा. –वृक्ष का बीज।

हेतुविद्या = न्याय शास्त्र की बौद्ध संज्ञा। छह भाग - वाद, वादाधिकरण, वादाधिष्ठान, वादालंकार, वादनिग्रह, और वादे बहुकर।

हैमावत = अशोक पूर्व काल में उत्पन्न बौद्ध धर्म के १८ निकायों में से एक। स्थविरवादियों का एक उपसंप्रदाय। इसका प्रचार हिमालय के प्रदेश में हुआ था।

* * *

(वर्ग - ५ - अ) – जैन-बौद्ध परिभाषा (परिशिष्ट)

अचला = बुद्धत्व प्राप्ति की दशभूतियों में से आठवीं भूमि की संज्ञा। इस भूमि में जगत् के मिथ्यात्व की प्रतीति साधक को होती है।

अज्ञान = बौद्ध मतानुसार क्षणिक एवं अस्थिर पदार्थों को स्थिर मानना। यही सारे दुःखों का मूल कारण है।

अणुव्रत = जैनमतानुसार प्रखर या तीव्र व्रतों को 'महाव्रत' कहते हैं। उसीका सुकर या सौम्य स्वरूप अणुव्रत कहलाता है। इसका पालन गृहस्थाश्रमी के लिये उचित माना है।

अध्यवसाय = वैभाषिक बौद्धमतानसुार किसी भी वस्तु को नाम, जाति, गुण आदि विशेषों से संयुक्त करना। यथा 'गौः शुक्लः चलः डित्थः '' इस प्रकार प्रत्यक्ष पदार्थ का ज्ञान।

अप्रतिसंख्यानिरोध = देखिये- निरोध।

अभिधम्मपिटक = त्रिपिटकों में से अंतिम पिटक की संज्ञा।

अभिमुक्ति = बुद्धत्व प्राप्ति की दशभूमियों में से छठी भूमि की संज्ञा। साधक बोधिसत्व इस भूमि में प्रज्ञापारमिता का अभ्यास करता है।

अर्चिष्मती = बुद्धत्व प्राप्ति की दशभूमियों में से चतुर्थ भूमि की संज्ञा। इस भूमि में वैराग्य दया, मैत्री और असंदेह की प्राप्ति होती है। साधक बोधिसत्व वीर्यपारमिता का अभ्यास करता है।

अष्टमहास्थान = भगवान् गौतम बुद्ध के जीवन से संबंधित पवित्र स्थान – (१) लुंबिनी (जन्मस्थान), (२) बोधगया (ज्ञान प्राप्ति का स्थान), (३) सारनाथ (प्रथम प्रवचन का स्थान), (४) कुशीनगर (निर्वाणस्थान) (५) श्रावस्ती, (६) सांकाश्य, (७) राजगृह और (८) वैशाली।

अष्टादश धातु = वैभाषिक बौध्द मतानुसार १२ आयतन + ६ ज्ञानेद्रियों के विज्ञान। (धातु = ऐसी शक्तियां जिनके एकीकरण से घटनाओं का प्रवाह निष्पन्न होता है।)

आचारिक वाद = महासांघिक नामक प्रथम बौद्ध संप्रदाय के लोगों द्वारा, वैशाली की द्वितीय संगीति के बाद किया गया बुद्धवचनों का संकलन।

आरंभत्याग = जैन श्रावकों की ११ प्रतिमाओं (देखिये प्रतिमा) में से एक। इसमें असि (तलवार), मसि और कृषि का त्याग होता है।

आवरणद्वय = महायानी बौद्ध मतानुसार आत्मा के दो आवरण : (१) क्लेशावरण और (२) ज्ञेयावरण। इन दोनों आवरणों का निवारण ही महायानी मतानुसार 'निर्वाण' माना जाता है।

उद्दिष्टत्याग = जैन श्रावकाचार की ११ प्रतिमाओं (नियमों) में से एक। १० प्रतिमाओं का पालन करने पर संसार का परित्याग कर महाव्रतों का स्वीकार करने के लिए मुनि को शरण जाना। ११ प्रतिमाओं मे यह अंतिम प्रतिमा है।

कर्मनिर्जरा = तपःसाधना से संचित कर्मों का क्षय करना (जैन मत)।

काष्टासंघ = जैन भट्टारकों (आचार्य तथा पुरोहितों) का एक गण।

क्षणिकवाद = प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व क्षणमात्र मानने वाला एक बौद्ध मत। (अपर संज्ञा-अनित्यवाद)। बौद्धेतर सभी दार्शनिकों ने उस मत का खण्डन किया है।

क्षमावाणी व्रत = आश्विन वद्य प्रतिपदा को आप्तजनों से क्षमा की प्रार्थना करने का जैनव्रत।

गुप्ति = जैन मतानुसार व्रतपालन के विधिनिषेध।

चक्रवर्ती = जैनों के ६३ शलाकापुरुषों के अन्तर्गत १२ महापुरुष – भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शांति, कुंथू, अर, सौभग, पद्म, हरिषेण, जयसेन, और ब्रह्मदत्त

चतुर्यामधर्म = २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित सत्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह इन चार नीतिसिद्धांतों पर आधारित धर्ममत। तीर्थंकर महावीर का पंचमहाव्रतात्मक या गौतम बुद्ध का पंचशीलात्मक धर्ममत चतुर्याम धर्म का ही सुधारित संस्करण माना जाता है।

चर्याचतुष्टय = हीनयान मतानुसार बोधिसत्व को बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए आवश्यक चार प्रकार की साधनाएं – (१) प्रकृतिचर्या (पूज्यपूजा और सदाचरण), (२) प्रणिधि (या प्रणिधान) चर्या – (संबोधि प्राप्त करने का प्रतिज्ञापूर्वक निश्चय); (३) अनुलोमचर्या (बुद्धत्व प्राप्ति के लिए आवश्यक गुणों का संपादन) (४) अविवर्त (या अनिवर्त) चर्या (बोधिसत्त्व की आठवी भूमिका पर आरोहण करने पर इस अवस्था का प्रारंभ होता है।

चर्यातंत्र = बौद्धों के वज्रयान संप्रदाय के चार तंत्रों में से एक।

चित्त = वैभाषिक बौद्ध मतानुसार पंच महाभूतों का सारभूत अंश जहां ज्ञान प्रकाशित होता है। चैत्य = चित्त में उत्पन्न होने वाली पांच वृत्तियाँ- विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार, और रूप।

चैत्यगृह = स्तूप सहित सभामण्डप जहां प्रार्थना होती है।

चैत्यवादी = दक्षिणभारत का एक बौद्ध संप्रदाय। दो प्रकार (१) पूर्वशैलीय और (२) अपरशैलीय। श्रीशैल के दोन भागों में निवास होने के कारण ये संज्ञाएँ उत्पन्न हुईं।

चैत्यवासी = श्वेताम्बर जैन संप्रदाय का एक उपपंथ। चैत्यवासी साधु मठ-मंदिरों में निवास करते हैं तथा ग्रंथ, धन, संपत्ति का संग्रह करते हैं।

जिनकल्प = एक प्राचीन जैन संप्रदाय की संज्ञा। दिगंबर संप्रदाय की पूर्वसंज्ञा।

ज्ञानपंचमी = कार्तिक शुद्ध पंचमी को ग्रन्थों की साफसफाई और पूजा का जैन व्रत।

ज्ञानशक्तिपंचक = (बौद्धमतानुसार) श्रद्धा, वीर्य, स्मृति,

समाधि, और प्रज्ञा।

डेरावासी = श्वेताम्बर जैन संप्रदाय की एक मूर्तिपूजक शाखा।

तथता = विज्ञानवादी बौद्ध दर्शन का परमतत्त्व। परमार्थभूत अविकारी तत्त्व। अपर पर्याय **भूतकोटि** (अर्थात् सत्य तत्त्व का अंतिम स्वरूप)

तथागत = यथा पुनरावृत्तिर्न भवति तथा तेन प्रकारेण गतः अर्थात् जिस प्रकार पुनर्जन्म न हो उस प्रकार से बर्ता हुआ। पांच ध्यानी वुद्धों की संज्ञा। **बुद्ध के प्रकार** = श्रावक, सम्यक् संवुद्ध, जिन, अर्हत् और तथागत। इस अनुक्रम की दृष्टि से 'तथागत' संज्ञा सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की वाचक है। तथागत के ३२ लक्षण माने गये हैं।

तपागच्छ = श्वेतांबर जैनों का एक प्रमुख उपपंथ। इसका मूलनाम था बृहद्गच्छ। इसके प्रवर्तक जगच्चन्द्र सूरि (इ. १३ वीं शती) को 'तपा' उपाधि प्राप्त होने पर यह संज्ञा प्रचलित हुई। तपःगच्छ की एक शाखा की संज्ञा है "पार्श्वचंद्र गच्छ"।

तारा = एक बौद्ध तांत्रिक देवता। इसे प्रज्ञा या प्रज्ञापारमिता भी कहते हैं। यह अवलोकितेश्वर बुद्ध की सहचरी मानी जाती है। पांच ध्यानी बुद्धों की तारा नामक पांच शक्तियां मानी जाती है।

तीर्थ – (जैनमतानुसार) = द्वादशांग, रत्नत्रय, चतुर्विध संघ

तीर्थंकर बेलाव्रत = एक जैनव्रत। व्रतावधि ६ महीने।

तृष्णा = बौद्ध मतानुसार तीन प्रकार – कामतृष्णा, भवतृष्णा, और विभवतृष्णा।

तेरापंथ = दिगम्बर जैनों का एक अर्वाचीन उपपंथ। (१७ वीं शती में स्थापित) (मूल पुराने पंथ को **बीसपंथ** कहते हैं।)

त्रिगुणसारव्रत = एक जैन व्रत। इस में ३० उपवास और ११ पारणाएँ होती हैं। व्रतावधि '४१ दिन।

त्रिलोक = जैन मतानुसार नौ विभाग – सामान्य लोक, नारक लोक, भवनवासी. मनुष्यलोक, तिर्यक् लोक, व्यन्तर लोक, ज्योतिर्लोक, देवलोक और सिद्ध लोक।

त्रैपणक्रिया व्रत = एक जैन व्रत। व्रतावधि २ वर्ष + १ मास + १ पक्ष (त्रैपण = ५३)

त्रैलोक्यवशंकर = एक बौद्ध तांत्रिक देवता। **अपर संज्ञा** = उड्डियान लोकेश्वर।

त्रैलोक्य विजय = एक बौद्ध देवता। शिव और गौरी इसके वाहन कहे गये हैं।

थेरवाद = बुद्धकालीन एक बौद्ध संप्रदाय। अपरसंज्ञा **स्थविरवाद**। सम्राट अशोक थेरवादी थे। इस की १२ शाखाएँ थी।

थेरी गाथा = बौद्ध दीक्षा प्राप्त ७३ वृद्ध महिलाओं की ५२२ गाथाओं का संग्रह।

दर्शनों के दो प्रकार (जैनमतानुसार) = (१) विकलदेश, (जैनेंतर सारे दर्शन जिन्हें सत्य का अंशतः ज्ञान हुआ) (२) सकलदेश (केवल जैन दर्शन. जो स्याद्वाद तथा नयवाद के आधार पर संपूर्णतया सत्य का प्रतिपादन करता है।)

दशभक्ति = जैन मतानुसार सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चरित्रभक्ति, योगिभक्ति, आचार्यभक्ति, निर्वाणभक्ति, नंदीश्वरभक्ति, चैत्यभक्ति शांतिभक्ति, और पंचगुरुभक्ति। (इन दस प्रकारों के अतिरिक्त तीर्थंकरभक्ति और समाधिभक्ति भी श्रेयस्कर मानी गई हैं।

दशभूमि = बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए बोधिसत्व के लिये उल्लंघनीय दस अवस्थाएँ – मुदिता, विमला, प्रभाकरी, अर्चिष्मती, सुदुर्जया, अभिमुक्ति, दूरंगमा, अचला, साधुमती, धर्ममेघ (या अभिषेक)। इन दश भूमियों का उल्लंघन करने पर बोधिसत्व को बुद्धत्व प्राप्त होता है। अतः बुद्ध को **'दशभूमिग'** या **'दशभूमीश'** कहते है।

दशलक्षण व्रत = एक जैन व्रत। इसका प्रारंभ चैत्र, भाद्रपद और माघ मास की शुक्ल पंचमी से होता है। चतुर्दशीतक (दस दिन) उपवास और क्षमादि दशलक्षण धर्म मंत्र का जाप होता है।

दशलक्षण पर्व = देखिये पर्युषण पर्व।

दिक्पालिका = बौद्ध मतानुसार दिशाओं का संरक्षण करने वाली देवियाँ – वज्रांकुशी, वज्रपाशी, वज्रस्फोटा, वज्रघंटा, उष्णीष विजया, सुंभा, पुष्पा, धूपा, दीपा, गंधा।

दीघनिकाय = बौद्धों के त्रिपिटकों में से सुत्तपिटक के पांच भागों में से प्रथम भाग। इस में दीर्घ आकार के सुत्तों का संग्रह हुआ है।

दीपमालिका व्रत = एक जैन व्रत जो भगवान् महावीर की स्मृति में आश्विन अमावस्या को दीपाराधना के रूप में होता है।

दुःखदुःखता = हीनयानी बौद्ध मतानुसार भौतिक तथा मानसिक कारणों से उत्पन्न होने वाले क्लेश।

दूरंगमा = बुद्धत्वप्राप्ति की दशभूमियों में से सातवीं भूमि की संज्ञा। इस भूमि से शून्यता की तथा सर्वज्ञता की उपाधि होती है।

देवसंघ चतुष्टय = भवनपति, व्यंतर, जोतिष्क और वैमानिक (जैनमत)

द्रव्यानुयोग = जैनागमों के अनुयोग नामक चार विभागों में से जीव-अजीव, नय, निक्षेप, कर्म आदि सिद्धान्तों का विचार प्रतिपादन करने वाला एक विभाग। (अन्य तीन अनुयोग हैं; प्रथमानुयोग, करणानुयोग और चरणानुयोग।

द्वादश आयतन = वैभाषिक बौद्ध मतानुसार ६ ज्ञानेन्द्रियां, और छह विषयों की संज्ञा।

आयतन = अनुभूति का साधन।

द्विकावली व्रत = किसी भी मास से १२० दिनों तक दो दो तिथियों पर उपोषण करने का एक जैन व्रत।

धनद कलशव्रत = श्रावण वद्य प्रतिपदा से भाद्रपद पौर्णिमा तक एक जैन व्रत। इस व्रत में प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक और पूजा होती है। व्रतावधि - पाँच वर्ष।

धर्म = वैभाषिक बौद्ध मतानुसार प्रत्येक सत्तात्मक पदार्थ की संज्ञा। दो प्रकार सास्रव (मलयुक्त) और अनास्रव (मलरहित)

सास्रव (या संस्कृत धर्म के रूपधर्म, चित्तधर्म, चैत्तधर्म, रूपचित्तविप्रयुक्त इत्यादि कुल ७२ प्रकार माने गये है। अनास्रव (या असंस्कृत) धर्म के तीन प्रकार – (१) आकाश (२) प्रतिसंख्यानिरोध और (३) अप्रतिसंख्यानिरोध। (प्रतिसंख्या = प्रज्ञा)

धर्म-अधर्म = जैन दर्शन के छह द्रव्यों में से दो द्रव्य। जीव और पुद्‌गल इन दो द्रव्यों की गति के कारण हैं। धर्माधर्म स्थितीगति के कारण होने पर भी वे प्रेरक नहीं है।

धर्मकाय = बुद्ध के 'संभोग काय' और 'निर्माण काय' का आधारभूत एक अनिर्वचनीय अपरिमेय सूक्ष्म काय (अर्थात देह)।

धर्मगुप्तिक = मध्य एशिया तथा चीन में प्रचारित एक बौद्ध सम्प्रदायों के महीशासक नामक संप्रदाय से यह उत्पन्न हुआ। इस संप्रदाय में स्तूप का महत्त्व माना जाता है।

धर्मचक्र = वज्रयान मतानुसार बोधिसत्व का एक रूप। यही बौद्ध धर्म का प्रतीक माना जाता है।

धर्मचक्र प्रवर्तन = (१) बुद्धत्व प्राप्त होने पर गौतम द्वारा सारनाथ के मृगदाव (मृगवग) में दिया हुआ प्रथम प्रवचन। (२) अशोक स्तंभ पर उंट्टकित चक्र। इस चक्र में ३२ अर विद्यमान हैं जो ३२ महापुरुषों के लक्षणों के प्रतीक माने जाते हैं।

धर्मचक्र मुद्रा = बायें हाथ की ज्ञानमुद्रा और दाहिने हाथ की व्याख्यान मुद्रा इसका स्वरूप है।। धर्मचक्रप्रवर्तन के प्रथम प्रवचन में भगवान बुद्ध के हाथ इसी मुद्रा में थे।

धर्ममेघ (या अभिषेक) = बुद्धत्व प्राप्ति की दशभूमियों में से अंतिम भूमि की संज्ञा। इस अवस्था में साधक को सभी प्रकार की समाधियों का लाभ होता है।

धर्मराजिक = 'सारनाथ के बौद्ध स्तूप की संज्ञा।

धातु = बौद्धमतानुसार १८। (६ इन्द्रियाँ + ६ विषय + ६ विज्ञान)।

धारिणी = महायान बौद्ध सम्प्रदाय में मान्यता प्राप्त त्रिपिटकों के कुछ मंत्रमय सुत्त। **चार प्रकार** = धर्मधारिणी, अर्थधारिणी, मंत्रधारिणी, और धारिणी। नेपाल में पंचरक्षा नामक एक धारिणी - संग्रह बौद्धों में प्रचलित है।

ध्यानी बुद्ध = महायान बौद्ध संप्रदाय के देवता। **पांच भेद** = अभिताभ, अक्षोभ्य, वैरोचन, अमोघसिद्धि, और रत्नसंभव। इनके गुरु का नाम वज्रसत्व था। ये सदैव ध्यानमग्न रहते हैं। ध्यानी बुद्ध विश्वजनक आदिदेव माने जाते हैं।

ध्यानी बोधिसत्व = ध्यानी बुद्ध का आध्यात्मिक पुत्र। पांच ध्यानी बुद्धों के पांच ध्यानी बोधिसत्वः – समंतभद्र, वज्रपाणि, रत्नपाणि, अवलोकितेश्वर और विश्वपाणि।

नक्षत्रमालाव्रत = आश्विनी नक्षत्र पर प्रारंभ और ५४ वें दिन समाप्त होने वाला एक जैन व्रत। इसमें २७ उपवास और २७ पारणाएँ होती हैं।

नन्दीश्वर-पंक्तिव्रत = १० दिनों का एक जैनव्रत। इस व्रत में ५६ उपोषण और ५२ पारणाएँ होती हैं।

नन्दीश्वर पर्व = नंदीश्वर की पूजा का एक जैन व्रत (देखिये अष्टाह्निक पर्व व्रत)

नरदत्ता = यक्षिणी स्वरूप एक जैन देवता। अपर संज्ञा – बहुरूपिणी।

नवकार व्रत = सत्तर दिनों तक एकभुक्त रहनेका एक जैन व्रत।

नामसंगीति = एक बौद्ध देवता। इसकी प्रतिमा 'तर्पणमुद्रा' में होती है।

नाम संमतकरण = बौद्ध संप्रदाय में किसी विशिष्ट विद्वान् को उपाधि देकर सम्मानित करने का समारोह।

निकाय = बौद्ध मतानुयायी लोगों के विविध गुट या समूहों की संज्ञा। दो प्रमुख भेद **(१) स्थविरवादी** (इसमें १० निकायों का अन्तर्भाव होता है) और **(२) महासांघिक** (इसमें आठ निकायों का अन्तर्भाव होता है वसुमित्रकृत अष्टादशनिकाय शास्त्र नाम ग्रंथ में प्रमुख अठारह निकायों की नामावली दी है – स्थविरवादी, हैमवत, वात्सीपुत्रीय, धर्मोत्तरीय, भद्रयाणीय, सम्मितीय, षण्णागरिक, सर्वास्तिवादी, महीशासक, धर्मगुप्त, काश्यपीय, सौत्रान्तिक, महासांघिक, प्रज्ञप्तिवादी, चैतीय, लोकत्तरवादी, एकव्यावहारिक और गोकुलिक।

निकाय चतुष्टय = (१) आर्य महासांघिक, (२) आर्यस्थविर, (३) आर्यमूल सर्वास्तिवादी और (४) सम्मितीय इनमें से महासांघिकों के ७, स्थाविरों के ३, मूलसर्वास्तिवादियों के ४ और सम्मितीयों के ४ ऐसे कुल मिलाकर १८ निकाय माने जाते है।

नित्यरसी व्रत = एक जैन व्रत। इसमें रविवार से शनिवार तक क्रमश' नमक, हरा फल, मीठा, घी, दही, दूध, और तेल आहार में वर्जित होते हैं।

निदान कथा = जातक कथाओं की स्पष्टीकरणात्मक कथाएँ। इन में भगवान् बुद्ध के प्रथम जन्म से बुद्धत्व प्राप्त तक की कथाएँ सुसंगत रीति से ग्रंथित हुई हैं इसके तीन भाग हैं **दूरे निदान, अविदूरे निदान और संतिके निदान।**

निरोध = बौद्ध दर्शन के अनुसार अभावमात्र पदार्थों में से एक। निरोधस्वरूप विनाश या अभाव के दोन प्रकार (१) प्रतिसंख्या निरोध और (२) अप्रतिसंख्या निरोध। **प्रतिसंख्या निरोध** का उदाहरण है - पत्थर के आघात से घट फोड़ना या पुस्तक जैसी वस्तु को छिन्न भिन्न करना। इसमें विद्यमान पदार्थ का नाश करने की भावना कर्ता में होती है। **अप्रतिसंख्या निरोध** याने पदार्थ का प्रतिक्षण स्वभावतः होने वाला विनाश।

निरोध समापत्ति = बौद्धमतानुसार समाधि का एक श्रेष्ठ प्रकार। इस समाधि में कायसंस्कार, वाक्संस्कार और मानस संस्कार का निरोध होता है। इस समाधि की अवस्था में योगी सात दिनों तक रह सकता है।

निर्ग्रन्थ = दिगम्बर संप्रदायी जैन मुनिजनों की संज्ञा।

निर्माणकाय = धर्मोपदेश के निमित्त भगवान बुद्ध ने धारण किया हुआ रक्त-अस्थि-विरहित शरीर।

निर्माण चक्र = नाभिप्रदेश की बौद्ध संज्ञा।

निर्युक्ति = आचारांग, सूत्रकृतांग, सूर्य प्रज्ञप्ति, व्यवहार, कल्प दशाश्रुत स्कंध, **उत्तराध्ययन**, आवश्यक और दशवैकालिक इन नौ जैन आगमों की टीकाओं का एक प्रकार। इसमें प्राकृत पद्यों द्वारा आगमों के प्रतिपाद्य विषय का संक्षेपतः निवेदन होता है। भद्रबाहु निर्युक्तियों के रचयिता माने जाते हैं।

निर्वाण = हीनयानी मतानुसार क्लेशावरण का निवारण और महायानी मतानुसार क्लेश तथा ज्ञेय के आवरण का निवारण।

निर्वाण = जैन और बौद्ध मतानुसार त्रिविध क्लेशों से मुक्तता। त्रिविध क्लेश – (१) **दुःखदुःखता** (भौतिक तथा मानसिक कारणों से उत्पन्न क्लेश) **(२) संस्कार दुःखता** (उत्पत्तिविनाशशाली संसार के पदार्थों से होने वाला दुःख) **(३) विपरिणाम दुःखता** (दुःखरूप में परिणत सुखों के कारण क्लेश)।

निर्वाण के दो भेद = (१) प्रकृतिसिद्ध (श्रावक तथा प्रत्येकबुद्ध मैत्रीभावरहित होते हैं। अतः वे निर्वाण की ओर अपना चित्त केन्द्रित करते हैं। यही प्रकृतिसिद्ध निर्वाण कहलाता है। **(२) अप्रतिष्ठित निर्वाण** – बोधिसत्व मैत्रीभावयुक्त होने के कारण जनदुःख का परिहार करने में ही व्यग्र होते हैं। वे निर्माण के प्रति उदासीन होने के कारण अप्रतिष्ठित निर्वाण प्राप्त करते हैं।

निर्विकृतिव्रत = एक जैनव्रत। इसमें मनोविकृति निर्माण करने वाले भोज्य पदार्थों का त्याग करते हुए रुक्ष आहार किया जाता है।

निःशल्य अष्टमीव्रत = एक जैन व्रत। भाद्रपद शुद्ध अष्टमी से प्रारंभ। व्रतावधि – सोलह वर्ष।

निष्यन्दकाल = विज्ञानवादी (योगाचार) बौद्ध मतानुसार एक चित्त (विचार) से दूसरा चित्त उत्पन्न होता है। चित्त क्षणिक होने पर भी सर्वथा विनाशशील नहीं है। अतः एक चित्त से दूसरे चित्त का उदय होने का जो काल होता है वह **निष्यन्दकाल** है।

नैष्ठिक श्रावक = जैनधर्मीय श्रावकों की मध्यम श्रेणी का श्रावक। ११ अवस्थाएँ (या प्रतिमाएँ) – दर्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, दिवामैथुनविरत, ब्रह्मचारी, आरंभविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत।

नोजीव = एक प्राचीन जैन संप्रदाय की संज्ञा। जीव और अजीव के अतिरिक्त नोजीव नामक तीसरा तत्त्व मानने के कारण यह संज्ञा रूढ हुई है।

पंचकल्याणक = तीर्थंकरों के (१) गर्भवास (२) जन्म (३) तपश्चर्या (४) ज्ञानप्राप्ति और (५) निर्वाण की संज्ञा। इन पंचकल्याण की तिथियों को पंचकल्याणक प्रतिष्ठा नामक महोत्सव जैन समाज में होता है। पंचकल्याणक निमित्त **बृहद्व्रत** में पांच वर्षों में प्रत्येक कल्याण के निमित्त (२४ तीर्थंकरों के प्रीत्यर्थ) २४ उपवास होते हैं। **लघुव्रत** एक ही वर्ष में १२० उपवास तथा पारणा से होता है।

पंच परमेष्ठी = जैन मतानुसार साधु, उपाध्याय, आचार्य, सिद्ध और अर्हन्त इन उच्च भूमिकाओं पर आरूढ महापुरुषों की संज्ञा (परमेष्ठी = परमे इन्द्रादिवन्दिते पदे तिष्ठति इति) परमेष्ठी १८ प्रकार के मलों (दोषों) से मुक्त होते हैं।

पंच बुद्ध = अमोघसिद्धि, अमिताभ, रत्नसंभव, अक्षोभ्य और वैरोचन इन पांच बौद्ध देवताओं की संज्ञा। ये पांच ध्यानी बुद्ध माने जाते हैं। विदेशों में इन्हें क्रमशः शक, अमिद, होशी, अशुकू, और दैनिचि कहते हैं।

पंचरक्षा = नेपाली बौद्धों में मान्यता प्राप्त पांच मंत्रों का समूह। महाप्रतिसरा (रोग निवारक मंत्र), महासहस्त्रप्रमर्दिनी (भूतबाधा निवारक मंत्र); महामयूर (सर्पबाधा निवारक मंत्र); महाशीतवती (शत्रु एवं दुष्टग्रह निवारक मंत्र), महामंत्रानुसारिणी (सकल रोग निवारक मंत्र)।

पंचरक्षामंडल = महाप्रतिसरा, महासाहस्त्र प्रमर्दिनी, महामंत्रानुसारिणी, महामायूरी और महासितवती – इन पांच बौद्ध देवताओं का समूह। नेपाल में इन देवताओं की पूजा होती है।

पंचश्रुतज्ञान व्रत = एक जैन व्रत। इसमें एक वर्ष में १६० उपवास और १६८ पारणाएं होती हैं। ३३६ दिनों में व्रत पूर्ण होता है।

पट्टावली = जैन समाज के विविध गच्छों (अर्थात् उपसंप्रदायों) के आचार्यों की परंपरा का परिचय देने वाला ग्रंथ।

परित्राणपाठ = बौद्ध परम्परा के अनुसार विवाह, गृहप्रवेश आदि मंगल समारोह में तथा संकटकाल में महामंगल सुत्त, करणीयमेत्तसुत्त, महामंगलगाथा, पुण्यानुमोदन, और जयमंगल अठ्ठगाथा इन प्रकरणों का पठन यह एक धार्मिक विधि मानी जाती है।

पर्युषण पर्व = (अपर संज्ञा-धर्मपर्व या पर्वराज या दशलक्षण पर्व) = दिगंबर जैन समाज में यह उपोषणात्मक व्रत भाद्रपद शुद्ध पंचमी से चतुर्दशी तक होता है। व्रतकाल में क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, संयम, तप, त्याग, शौच, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य इन दस व्रतों का पालन आवश्यक होने कारण इसे **दशलक्षण व्रत** भी कहते हैं।

पल्लविधान = एक जैन व्रत। लघुव्रत ३४ दिनों तक, बृहद्व्रत – ७२ दिनों तक। उपवास और पारणाएँ इस व्रत में होती हैं।

पवारणा = वर्षाकाल में एकत्रित निवास करने के अंतिम दिन अपने अपराधों का कथन तथा दण्डन पाने का एक बौद्ध भिक्षु समाज का कार्यक्रम। भगवान् बुद्ध इस के प्रवर्तक माने जाते हैं।

पाप = बौद्ध मतानुसार दो प्रकार (१) पाराजिक (अक्षम्य पाप- इस के कारण संप्रदाय से बहिष्कृत किया जाता है।) (२) पाचितिय (प्रायश्चित्त से परिमार्जित होने योग्य परनिंदा, कलह आदि पाप)।

पारमिता दशक = (पारमिता = पारंगतता या पूर्णता। महायान मतानुसार पारमिता सर्वश्रेष्ठ साधना है।) दान, शील, नैष्कर्म्य. प्रज्ञा. वीर्य, क्षान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री, और उपेक्षा। (भगवान बुद्ध को ५५० जन्मों के द्वारा दश-पारमिता के कारण सम्यक् संबोधि की प्राप्ति हुई)।

पाराजिक = बौद्ध संप्रदाय में भिक्षुद्वारा स्त्री-संभाषण आदि अपराध होने पर करने योग्य एक प्रायश्चित्त।

पुस्तक गच्छ = जैनों के मूलसंघ के देसीय गण के अन्तर्गत एक पंथ।

प्रकाश देवता = वज्रयानी बौद्ध सम्प्रदाय की चार उग्र एवं नग्न देवताएँ – सूर्यहस्ता, दीपा, रत्नलोका और तडित्करा)।

प्रकीर्णक = तीर्थंकरों के समयोपदेशों पर आधारित श्रमणों द्वारा लिखित धार्मिक आचारविषयक ग्रंथ। इनकी संख्या मूलतः सहस्रावधि है किन्तु उन में से १० प्रकीर्णकों का अन्तर्भाव जैन आगामों में होता है। (१) चतुःशरण, (२) आतुर प्रत्याख्यान, (३) महाप्रत्याख्यान, (४) भक्तपरिरक्षा, (५) तंदुलवैचारिक, (६) संस्तारक (७) गच्छाचार (८) गणिविद्या, (९) देवेन्द्र और (१०) मरणसमाधि।

प्रज्ञा = कुशलचित्त से युक्त विपश्यना ज्ञान। स्कंध, आयतन, धातु, इंद्रिय, सत्य और प्रतीत्य समुत्पाद – इन्हें प्रज्ञा की छह भूमियाँ मानते हैं। (बौद्धमत)

प्रज्ञापारमिता = (१) दस या छह पारमिताओं में से सर्वश्रेष्ठ पारमिता। इसमें दृश्य जगत् के मिथ्यात्व की प्रतीति होती है। दान, शील, क्षांति, वीर्य, ध्यान, सत्य, मैत्री, नैष्कर्म्य, उपेक्षा इन सभी पारमिताओं (पारंगतता) की पूर्णता प्रज्ञापारमिता में होती है। वज्रयानी बौद्ध सम्प्रदाय में इन सभी पारमिताओं की मूर्ति के स्वरूप में उपासना होती है। सभी पारमिताएँ द्विभुज होती हैं।

प्रज्ञोपाय = प्रज्ञा = निःस्वभाव और उपाय = स्वभाव इन दोनों की अभिन्नता। प्रज्ञा + उपाय का सामरस्य ही सहजयान में निर्वाण मानां जाता है।

प्रज्ञोपाय = (१) प्रज्ञा + उपाय। शक्ति और शिव स्वरूप दिव्य तत्त्वों के युगल की वज्रयानी बौद्ध संप्रदाय में प्रचलित संज्ञा। (२) प्रज्ञा = शून्यता। उपाय = करुणा इन दोनों का दीप और दीपप्रभा के समान अभेद।

प्रतिमा = जैन आचार धर्म के श्रावक (गृहस्थ) आचार के ११ विभागों की संज्ञा प्रतिमा है। ११ प्रतिमाएँ – दर्शन प्रतिमा, व्रतप्रतिमा, सामायिक प्रतिमा, प्रोषधोपवास प्रतिमा, सचित्तत्याग, रात्रिभोजन त्याग, ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रह त्याग, अनुमतित्याग, और उद्दिष्टत्याग। यही मुनिधर्म की प्राथमिक अवस्था मानी जाती है।

प्रतिसंख्यानिरोध = ज्ञानद्वारा निर्वाण की प्राप्ति का सिद्धान्त। (बौद्धमत)

प्रत्येक-बुद्ध= महायानी बौद्धमतानुसार तीन प्रकार के निर्वाण साधकों में से मध्यम श्रेणी का साधक। श्रावक ही प्रतीत्य समुत्पाद की साधना से प्रत्येकबुद्ध होता है। इसे बोधी (ज्ञान) के लिये आवश्यक ३७ गुण जन्मतः प्राप्त होते हैं।

प्रभाकरी = बुद्धत्व प्राप्ति की दशभूमियों में से तृतीय भूमि की संज्ञा। इस भूमि में आठ प्रकार की समाधियाँ, चार ब्रह्मविहार और कुछ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। कामासक्ति और देहासक्ति क्षीण होती है। साधक बोधिसत्व धैर्यपारमिता का अभ्यास करता है।

प्रव्रज्या = बौद्ध दीक्षाविधि। इस विधि के बाद सत्पात्र व्यक्ति को 'श्रमण' पदवी प्राप्त होती है। श्रमण को ही बौद्ध संघ में प्रवेश मिलता था।

प्रतिहार्य = तीर्थंकरों के आठ वैशिष्ट्य- दिव्यच्छत्र, दिव्यध्वनि, अशोकवृक्ष, सिंहासन, दुंदुभि, पुष्पवृष्टि, चामर, और भामंडल।

प्राभृतत्रयी = देखिये नाटकत्रयी।

प्रोषधोपवास प्रतिमा = जैन श्रावकाचार या शिक्षाव्रत की ११ प्रतिमाओं (नियमों) में से एक। प्रत्येक मास की दोनों अष्टमी तथा चतुर्दशी को उपोषण के व्रत की संज्ञा।

बलभद्र = जैन संप्रदाय के त्रिषष्टि (६३) 'शलाकापुरुषों' के अन्तर्गत ९ शलाका पुरुष। (भागवत में वर्णित बलराम इनमें से एक हैं।)

बलात्कारगण = जैन भट्टारकों का (आचार्य तथा पुरोहितों का) एक गण।

बंध = जैन मतानुसार चार प्रकार = प्रकृति, स्थिति, अनुभाव और प्रदेश।

बुद्ध = ३२ महालक्षणों तथा ८० लघु लक्षणों से संपन्न महापुरुष।

बुद्धद्वादशी = श्रावण शुद्ध द्वादशी को बुद्धमूर्ति की पूजा का व्रत।

बृहद्गच्छ = देखिये तपागच्छ।

बोधिसत्त्व = बोधि अर्थात संपूर्ण शुद्ध ज्ञान प्राप्त करने का सत्त्व याने सामर्थ्य रखने वाला साधना सम्पन्न सत्पुरुष। अंत में यही बुद्ध होता है। जातक कथाएं बोधिसत्त्वों की ही कथाएँ हैं।

बोधिसत्त्व यान = बोधिसत्त्व के जीवन का सर्वोच्च आदर्श मानने के कारण महायान की संज्ञा। अपर संज्ञा है – अग्रयान। इस पंथ में बोधिसत्त्व की पूजा होती है।

बोधिसत्त्वयान = महायान बौद्ध पंथ की अपरसंज्ञा।

बोधिपक्षीय (पक्खीय) धर्म = निर्वाणप्राप्ति के छह उपाय जो भगवान् बुद्ध ने कहे हैं। (१) स्मृति-उपस्थान (२) सम्यक् प्रहाण (३) ऋद्धिपाद। (४) इन्द्रियवर्ग, (५) बलवर्ग और (६) संबोधि-अंग।

बौधिवृक्ष = बुद्धगया में महाबोधी मंदिर की पश्चिम की ओर एक पवित्र पीपल का वृक्ष। इस वृक्ष की छाया में आज तक हुए सभी बुद्धों को ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। गौतम बुद्ध को भी इसी वृक्ष की छत्रच्छाया में ज्ञान प्राप्त हुआ।

ब्रह्मविहार = योगशास्त्र में कथित मैत्री, करुणा, मुदिता और

उपेक्षा इन चार वृत्तियों से समाज के लोगों से यथोचित व्यवहार करना। (यह शब्द बौद्ध वाङ्मय मे प्रयुक्त हुआ है।)

भट्टारक = जैनधर्मीय आचार्य तथा पुरोहित की संज्ञा। दिगंबर तथा श्वेताम्वर पंथीय भट्टारकों के २२ पीठ प्रसिद्ध हैं।

भिक्षु = सर्व प्रकार से संयमी, अध्यात्मप्रवण, एकाकी और संतुष्ट बौद्ध सत्पुरुष। दो प्रकार – **समानावासक** (अर्थात् परिव्राजक - जो निरंतर भ्रमण करते हैं)। (२) **नानावासक** – (एक स्थान में रह कर समाज को संघटित करने वाले)

भूत = विशिष्ट तत्त्व के परमाणुओं का सामुदायिक स्वरूप (वैभाषिक मत)। भूत से उत्पन्न् पदार्थ 'भौतिक' कहलाते हैं।

भूमिचतुष्टय = हीनयानी बौद्ध मतानुसार साधक को अर्हत्पद की प्राप्ति होने तक क्रमशः चार भूमिकाओं से प्रगति करनी होती है। (१) स्रोतापन्न, (२) सकृदागामी, (३) अनागामी, और (४) अर्हत्।

भूमिदशक = बोधिसत्त्व की दस अवस्थाएँ – दुरारोहा, बद्धमाना, पुष्पमण्डिता, रुचिरा, चित्तविस्तार, रूपवती, दुर्जया, जन्मनिर्देश, यौवराज और अभिषेक। हीनयान मतानुसार इन दस भूमिकाओं के अनुक्रम से साधक को बोधिसत्त्व-अवस्था प्राप्त होती है।

भूमिस्पर्शमुद्रा = बौद्ध मूर्तियो की एक विशिष्ट स्थिति। इस में आसनस्थ मूर्ति का हस्तस्पर्श भूमि को होता है।

मंगल = विघ्नविनाशक शुभ कर्म। जैन मतानुसार छह प्रकार – नाममंगल, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। इनमें अंतिम मंगल सर्वश्रेष्ठ माना है।

मंत्रयान = बौद्धों के महायान पंथ का एक उपपंथ। इस पंथ में होम, जप, ध्यान, मुद्रा, मण्डल, मंत्र इत्यादि का विशेष महत्त्व माना जाता है। इसमें विशुद्धियोग, धर्मयोग, मंत्रयोग और संस्थानयोग नामक चार योग और शून्यता, अनिमित्त, अप्रणिहित और अनभिसंस्कार नामक चार **विमोक्ष** आवश्यक माने हैं।

महासांघिक = बुद्धकालीन बौद्ध मत की एक प्रमुख शाखा। जो द्वितीय धर्मसंगीति के पश्चात् स्थापित् हुई थी।

महासांघिक = बौद्ध भिक्षुओं का एक प्रारंभिक संप्रदाय। इसी संप्रदाय से महायान पंथ का उदय हुआ। महासांघिक बुद्ध को अजरामर सर्वशक्तिमान मानते है। इसी पंथ की अन्य शाखाएँ – एकव्यावहारिक लोकोत्तरवाद, कुक्कुटिक, बहुश्रुतीय, शैल, अंधक, चैतियवादी इ.।

मानुषीबुद्ध = हीनयान मतानुसार २४ एवं महायान मतानुसार ३२ बुद्धों में से अंतिम ७ बुद्धों को मानुषी बुद्ध कहते हैं। उनके नाम हैं – विपाशी, शिखी, विश्वभू, क्रकुच्छंद, कनकमुनि, कश्यप और शाक्यसिंह।

मुकुट सप्तमी = श्रावणशुद्ध सप्तमी। इस तिथि को जैनपंथी आदिनाथ की उपासना करते हैं। व्रतावधि-सात वर्ष।

मुक्तावली = जैनों का एक प्रायश्चित्त व्रत। इसमें छह उपोषणों के बाद एक भोजन होता हैं। व्रतावधि – तीन वर्ष।

मुदिता = बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए उल्लंघनीय दश भूमियों में से प्रथम भूमि की संज्ञा। इस भूमिका पर आरोहण करने के लिए, श्रद्धा, दया, मैत्री, दान, शास्त्रज्ञान, लोकज्ञान नम्रता, दृढता, और सहनशीलता, इन दस गुणों की आवश्यकता होती है।

मुद्रा (या मुद्रितयोषा) = बौद्ध साधक द्वारा तांत्रिक साधना के लिए स्वीकृत स्त्री। इस स्त्री के साथ साधक ब्रह्मचर्यव्रत से योगक्रियारूप अनुष्ठान करता है। मुद्रा की जाति का विचार नहीं होता।

मुष्टिविधान व्रत = भाद्रपद, माघ, और चैत्र मास में एक मुष्टि शुभ द्रव्य जिनेन्द्र को समर्पण करने का व्रत।

मूलसूत्र = जैनों के उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक, आवश्यक, पिण्डनिर्युक्ति, और ओघनिर्युक्ति इन पांच धार्मिक, ग्रंथों की संज्ञा। इनमें से प्रथम दो ग्रंथ विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

मेघमालाव्रत = एक जैन व्रत। भाद्रपद वद्य प्रतिपदा से आश्विन वद्य प्रतिपदा तक सात उपवास और २४ एकाशन का व्रत। व्रतावधि – पांच वर्ष।

मेरु त्रयोदशी = पौष वद्य त्रयोदशी। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की स्मृतिनिमित्त सात रजत घटों का मेरु इस दिनोत्सव में करते हैं।

मेरु पंक्तिव्रत = ८० उपवास, २० बेला और १०० पारणाएँ इस जैनव्रत में होती है। कुल समय ७ मास १० दिन।

मेरुव्रत = जैन मतानुसार श्रावण वद्या प्रतिपदा प्रत्येक युग की प्रथम तिथि मानी जाती है। इस तिथि से २२० दिनों तक यह व्रत होता है।

मोक्ष सप्तमी = श्रावण शुद्ध सप्तमी का एक जैन व्रत। व्रतावधि-सात वर्ष।

मौन एकादशी = मार्गशीर्ष शुद्ध एकादशी को उपोषण और मौन का एक जैन व्रत।

यति = धर्मप्रसार तथा पौरोहित्य करने वाले जैन साधुओं की संज्ञा। इनके कुल ८४ गच्छ (संप्रदाय या पंथ) माने जाते हैं।

यापनीय = श्वेतांम्बर जैन मत का एक उपपंथ। इस का प्रचार कर्नाटक में था।

यमसंप्रदाय = बौद्धों का एक गौण संप्रदाय। इसमें यम देवता का विशेष महत्त्व माना है।

युगनद्धरूप = प्रज्ञा और उपाय का मिलन। यही महासुख की प्राप्ति का श्रेष्ठ उपाय सहजयान या सहजिया संप्रदाय में माना गया है।

योगाचार = महायानी बौद्धों का मैत्रेयनाथ द्वारा स्थापित एक संप्रदाय। वसुबन्धु ने इसी को 'विज्ञान वाद' कहा है।

रत्नत्रय व्रत = जैनमत में सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य को रत्नत्रय कहते हैं। चैत्र, भाद्रपद और माघ मास की शुद्ध द्वादशी से पौर्णिमा तक उपोषण और "ओं ह्रीं सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र्येभ्यो नमः"- इस मंत्र के जाप का व्रत।

रत्नपाद = भगवान् बुद्ध का पदचिह्न। इसे 'श्रीपाद' भी कहते है।

रत्नावली व्रत = जैनों का एक उपोषण व्रत।

रविवार व्रत = आषाढ के अंतिम रविवार से भाद्रपद के अंतिम रविवार तक उपोषण का जैनव्रत। व्रतावधि ९ वर्ष।

रूपस्कन्ध = बौद्ध दर्शन के पंच स्कन्धों में से प्रथम स्कन्ध। शरीर, ज्ञानेन्द्रियाँ और शब्दादि विषयों का इस स्कन्ध में अन्तर्भाव होता है।

लक्षणपंक्तिव्रत = एक जैन व्रत। २०४ उपवास और २०४ पारणाएँ मिलाकर कुल ४०८ दिनों का यह व्रत होता है।

लब्धिविधानव्रत = एक जैन व्रत। चैत्र भाद्रपद और माघ मास में उपोषण तथा एकाशन इस व्रत में होता है।

लोकपाल = (या दिक्पाल) (बौद्धमतानुसार- सारचर-) – पूर्व – धृतराष्ट्र। पश्चिम – विरूपाक्ष। – दक्षिण – विरूदक। उत्तर – कुबेर।

वज्रयान = एक बौद्ध संप्रदाय। इस में मंत्र, हठयोग और मैथुन की साधना प्रशस्त मानी है। ८४ सिद्धों की परंपरा में वज्रयान का महत्त्व माना है। 'गुह्य समाजतंत्र' इस बौद्ध मार्ग का प्रमुख ग्रंथ है। इस संप्रदाय का उदय आंध्र में श्रीपर्वत पर हुआ। किन्तु प्रचार मगध के नालंदा और ओदन्तपुरी के विहारों में हुआ।

वज्रासन = बोधगया में भगवान बुद्ध को जिस पाषाणपर बैठकर सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति हुई उस पाषाण की संज्ञा।

विज्ञानवाद = महायानी बौद्धों के योगाचार पंथ का सिद्धान्त। इसके अनुसार विज्ञान या चित्त (विचार) के अतिरिक्त अन्य किसी बाह्य वस्तु का तत्त्वतः अस्तित्व नहीं होता। विज्ञान के दोन प्रमुख भेद – आलयविज्ञान और प्रकृतिविज्ञान। **आलयविज्ञान** से ही चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, धारणविज्ञान, रसनाविज्ञान, कायविज्ञान, मनोविज्ञान और क्लिष्टमनोविज्ञान नामक सात प्रकार उत्पन्न होते हैं। उन्हींको **प्रवृत्तिविज्ञान** कहा है। बुद्धत्व प्राप्त होने पर ही आलयविज्ञान का लय होता है।

विनयपिटक = बौद्ध वाङ्मय के त्रिपिटकों में से एक पिटक की संज्ञा। इसमें बौद्ध भिक्षुओं के आचार संबंधी नियमों का प्रतिपादन किया है। विभंग, खंधक और परिवार इसके तीन विभाग हैं।

विनयपिटक = बौद्ध भिक्षु और बौद्ध संघ के नियमों का बुद्धशिष्य उपाली द्वारा राजगृह की संगीति के लिये किया गया संचय। इसमें गौतम बुद्ध के वचनों का चयन हुआ है।

विनयवाद = भगवान् महावीर द्वारा विविध जैन संप्रदायों का जिन चार वर्गों में गठन हुआ उनमें से एक वर्ग। इस वर्ग के ३२ भेद माने जाते हैं। इस पंथ में ईश्वर, साधु तथा किसी अन्य श्रेष्ठ व्यक्ति के प्रति, तन, मन, धन और वचन द्वारा आदरभाव व्यक्त करना यही श्रेष्ठ साधना मानी जाती है।

विपरिणाम दुःखता = हीनयानी बौद्ध मतानुसार सुख ही दुःखरूप में परिणत होने के कारण होने वाले क्लेश।

विमला = बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए उल्लंघनीय दशभूमियों में से द्वितीय भूमि की संज्ञा। इस भूमि में साधक बोधिसत्व त्रिविध पापों का निवारण और शीलपारमिता का अभ्यास करता है।

विहार = 'बौद्ध भिक्षुओं का निवासस्थान। अपर संज्ञा- आराम, संघाराम।

वीरशासन जयंती = श्रावण वद्य प्रतिपदा को जैनमतानुसार युगारंभदिन माना जाता है। इसी तिथि को भगवान् महावीर ने राजगृह के समीप विपुलाचल पर धर्मचक्र का प्रवर्तन किया था। इस दिन जैन समाज में महावीर की आराधना होती है।

बीस पंथ = दिगंम्बर जैनों के भट्टारक पंथ की संज्ञा। १७ वीं शती में तेरापंथ की स्थापना राजस्थान में होने पर पुराने पंथ को यह संज्ञा प्राप्त हुई।

वेदनास्कन्द = बौद्ध दर्शन के पंचस्कंन्धों में से द्वितीय। वस्तुस्पर्श के कारण चित्त में उत्पन्न होनेवाले सुख-दुःख और नसुख-नःदुख स्वरूप अनुभव।

वैपुल्यसूत्र = महायानी बौद्ध संप्रदाय के प्रमाणभूत नौ ग्रंथों की संज्ञा। नौ ग्रन्थ-अष्टासाहस्रिका, प्रज्ञापारमिता, सद्धर्मपुण्डरीक, ललितविस्तर, लंकावतारसूत्र, सुवर्णप्रभास, गण्डव्यूह, तथागतगुह्यक, समाधिराज और दशभूमिक।

वैभाषिक = स्थविरसंप्रदाय के अन्तर्गत सर्वास्तिवादी बौद्ध संप्रदाय की एक संज्ञा। विनयपिटक की विभाषा नामक टीकाओं का अध्ययन करने के कारण यह संज्ञा रूढ हुई। इस मत के अनुसार जगत् सत्य है। और भौतिक तथा मानसिक जगत् की पृथक् सत्ता की अनुभूति होती है। (देखिये = सौत्रान्तिक ।)

वैभाषिक नय = सर्वास्तिवादी बौद्ध वाङ्मय की संज्ञा।

वैयावृत्य = जैनों के चार शिक्षा व्रतों में से एक। अन्नदान, औषधिदान, अभयदान और ज्ञानदान।

वैभाषिक = देखिये सौत्रांतिक।

व्रतप्रतिमा = जैन श्रावकाचार की ११ प्रतिमाओं (नियमों) में से एक। इसमें श्रावक पांच अणुव्रतों, तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों का पालन करता है।

शमथ = चित्त की एकाग्रतारूप समाधि (बौद्धमत)

शिक्षात्रय = बौद्ध मतानुसार विशुद्धि प्राप्त करने के तीन उपाय (१) शीलशिक्षा (या अधिशील), (२) समाधिशिक्षा (या अधिचित्त) और (३) प्रज्ञा।

शिक्षाव्रत = जैन आचारधर्म के प्रकारों की संज्ञा। चार प्रकार – देशावकाशिक, सामायिक, प्रोष्रधोपवास और वैयावृत्य।

शिवकुमारबेलाव्रत = एक जैनव्रत। इसमें ६४ बेला और ६४ पारणाएं होती हैं। प्रत्येक मास में ७, ८, १३, १४ तिथियों पर बेला और नवमी तथा पौर्णिमा तिथि को पारणा होती है। व्रतावधि १६ मास।

शील = अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि अंगीकृत पवित्र व्रतों का निरपवाद पालन करना। काया, वाचा, मन से निंद्य आचार का त्याग।

शीर्षमुकुट सप्तमी = श्रावण शुद्ध सप्तमी को भगवान्

आदिनाथ की उपासना का एक जैन स्त्रीव्रत।

शीलव्रत = जैनपंथ में श्रावण शुद्ध नवमी से भाद्रपद शुद्ध एकादशी तक उपवास का व्रत।

शीलकल्याणक = एक जैन व्रत। एक वर्ष की अवधि में १८० उपवास और १८० पारणाएं करना।

शून्यवाद = माध्यमिक वौद्धों का तात्त्विक सिद्धान्त। शून्य याने सत्, असत्, नसत्, नासत्, इन चारों कोटियों से विलक्षण तत्त्व। (वेदान्त में व्रह्म तत्त्वका वर्णन इसी पद्धति से किया है।)

श्रद्धान (या उपस्थान) = एक जैन प्रायश्चित्त पंथ। आचारधर्म का उल्लंघन करने वाले श्रमण को बहिष्कृत करना और पुनः दीक्षा देकर पंथ में प्रवेश देना यही इस प्रायश्चित्त का स्वरूप है।

श्रमण = बौद्ध तथा जैन पंथ के दीक्षाप्राप्त व्रती। जैन श्रमणों के निर्ग्रंथ, शाक्य, तापस, गेरुय, और आजीव नामक पाँच प्रकार कहे गये है।

श्रावक = जैन मतानुयायी गृहस्थ। तीन प्रकार – (१) पाक्षिक (प्रारंभिक अवस्था वाला। (२) नैष्ठिक (द्वितीय अवस्था वाला) । (३) साधक (सर्वश्रेष्ठ अवस्था का श्रावक) ।

श्रुतज्ञानव्रत = एक जैनव्रत इस में १२ वर्ष ८ मासों में १४८ उपवास होते हैं।

श्रुतपंचमी = ज्येष्ठ शुद्ध पंचमी। इस तिथि को आचार्य भूतवलि के षट्खण्डागम नामक महान् जैन ग्रंथ की रचना पूर्ण होने के कारण जैन समाज में इस तिथि को श्रुतपूजनव्रत होता है।

श्रुतस्कंध व्रत = भाद्रपद मास में उपोषण का जैनव्रत।

श्वेतपंचमी = आषाढ, कार्तिक या फाल्गुन मास की शु. पंचमी से प्रत्येक शुद्ध पंचमी को उपोषण का जैन व्रत।

षडंग योग = बौद्ध मतानुसार प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति और समाधि नामक योगसाधना के छह अंग।

षड्रसीव्रत = एक जैन व्रत। इसमें दूध, दही, घी, तेल, नमक और गुड़ इन छह पदार्थों का क्रमशः एक एक मास में आहार वर्जित होता है।

षोडशकारणव्रत = एक जैन व्रत। भाद्रपद, माघ या चैत्र मास की वद्य प्रतिपदा से एक मास तक उपोषण तथा अभिषेक का व्रत।

सखंडि = एक प्राचीन जैन उत्सव (आचारांग सूत्र में उल्लिखित)

सचित्तत्याग = जैन श्रावकाचार की ११ प्रतिमाओं (नियमों) में से एक। कंदमूल सागभाजी आदि पदार्थों का भोजन में त्याग।

समाचरी = श्रमणों के दैनन्दिन नियत कार्यक्रम की संज्ञा।

संकट हरणव्रत = चैत्र, भाद्रपद और माघ मास में शुद्ध त्रयोदशी से पौर्णिमा तक विशिष्ट मंत्र के जाप करने का एक जैन व्रत। व्रतावधि - तीन वर्ष।

संगीति = वौद्धों की धर्मपरिषदों की संज्ञा।

संघाटक व्रत = कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा से चार दिनों तक पूजा का एक स्त्रीव्रत। वाद में प्रत्येक मास के शुद्ध और वद्य पक्ष मे सात वार तक यह पूजाव्रत उपोषण सहित होता है।

संज्ञास्कन्ध = बौद्धों के पंचस्कन्धों में से तृतीय स्कन्ध की संज्ञा। अनुभूत पदार्थों का नामकरण। (नैयायिकों के सविकल्प ज्ञान की ही यह अपर संज्ञा है।)

सम्यक् प्रहाण = बुद्धों के मतानुसार निर्वाण प्राप्ति के ३७ उपायों के सात वर्गों में से एक। पापनाशक और पुण्यवर्धक कर्तव्यों का पालन ही सम्यक् प्रहाण कहलाता है।

सम्यक् सम्बुद्ध = अनेक जन्मों की पारमिता नामक साधनाओं से प्राप्त होने वाली सर्वोत्तम अवस्था में पहुंचा हुआ महापुरुष। भगवान गौतम बुद्ध को यह अवस्था प्राप्त हुई थी। इसी को वोधिसत्त्व भी कहते हैं।

संवत्सरी = जैन धर्मियों के पर्युषणवपर्व या धर्मपर्व का अंतिम दिन। इस दिन प्रत्यक्ष या पत्रद्वारा क्षमायाचना होती है।

संवर = जैन मतानुसार संसार के कारण को आस्रव कहते हैं। आस्रवों का निरोध गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, तप और चारित्र्य जैसे उपायों से करना ही संवर कहा जाता है।

संस्कार दुःखता = हीनयानी बौद्ध मतानुसार उत्पत्ति - विनाशशाली जगत् के पदार्थों से उत्पन्न होने वाले क्लेश।

संस्कार स्कन्ध = बौद्धों के पंचस्कन्धों में से चतुर्थ स्कन्ध। इसमें रागद्वेषादि क्लेश, मत- मान आदि उपक्लेश तथा धर्म, अधर्म का अन्तर्भाव होता है।

सर्वास्तिवाद = बुद्धकालीन एक बौद्ध संप्रदाय। यह महीशासक नामक स्थविरवाद की एक शाखा थी। सर्वास्तिवादी सभी पदार्थों की सत्ता (अस्तित्व) मानते हैं।

सर्वास्तिवाद के चार नय = (१) भावान्ययिक, (२) लक्षणान्ययिक, (३) अवस्थान्ययिक, (४) अन्यथान्ययिक।

सर्वार्थसिद्धिव्रत = शुक्ल पक्ष की अष्टमी से पौर्णिमा तक उपोषण का एक जैन व्रत।

सल्लेखना = देहत्याग के उद्देश्य से अनशन करना। इसी को प्रयोपवेशन कहते हैं।

सल्लेखनाव्रत = साधक नामक उत्तम श्रावक अवस्था में अन्नत्याग पूर्वक जप करते हुए देहत्याग करना। इसी को समाधिमरण कहते हैं।

सलोक पुरुष = जैनों के पूज्य ६३ शलाकापुरुषों की अपर संज्ञा।

सहजयान = एक बौद्ध संप्रदाय। इस मत में 'सहज' शब्द का प्रयोग आत्मा, परमतत्त्व, इन्द्रियों की प्रवृत्तियाँ इत्यादि अर्थों में होता हैं।

साधुमती = बुद्धत्व प्राप्ति की दशभूमियों में से नौवीं भूमि की संज्ञा। इस भूमि में साधक शब्दार्थविवेचन, धर्माधर्म विवेचन, व्याकरणात्मक विश्लेषण और शीघ्रप्रतिपादन का अभ्यास करता है।

सामायिक = जैनों का एक शिक्षाव्रत। दिन में तीन समय एकत्रित बैठकर तीर्थंकरों के गुणगान करना।

सांवृतिक सत्य = (संवृत्ति = अविद्या) जो सत्य तत्त्व

को आच्छादित करता है। (१) अविद्या या मोह के द्वारा उत्पादित काल्पनिक सत्य। (इसी को वेदान्त में 'व्यावहारिक सत्य' कहा है।) (बौद्ध मत)। दो प्रकार- **लोक संवृति** और **अलोक संवृति।**

सिद्धचक्र = जैनों का एक उपास्य प्रतीक। अष्टकोणी थाली पर पंचपरमेष्ठी (साधु, उपाध्याय, आचार्य, सिद्ध और अर्हत्) की प्रतिमाएँ तथा त्रिरत्न (सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य) का उल्लेखन यही इसका स्वरूप होता है।

सुखकारक व्रत = एक जैन व्रत। किसी भी मास की प्रतिपदा से साढ़ेचार मास तक क्रमशः उपोषण और पारणा का व्रत।

सुगंधदशमी = एक जैन व्रत। इसमें प्रत्येक भाद्रपद शुद्ध दशमी को उपवास होता है। व्रतावधि - दस वर्ष।

सुत्तपिटक = बुद्धशिष्य आनंद द्वारा राजगृह की संगीति में किया गया भगवान् बुद्ध के वचनों का संचय।

सुदर्शन व्रत = एक जैन व्रत। इसमें २४ उपवास और २४ पारणाएँ होतीं हैं।

सुदुर्जया = बुद्धत्व प्राप्ति की दशभूमियों में से पंचम भूमि की संज्ञा। चित्त में समता, विशुद्धता, दया, उदात्तता आदि भाव उत्पन्न होने पर साधक बोधिसत्त्व उपदेशक बनता है और वह ध्यानपारमिता का अभ्यास करता है।

सेनगण = जैन भट्टारकों का (आचार्य तथा पुरोहितों का) एक गण।

सौत्रांतिक = बुद्धोपदिष्ट मूल ग्रंथों को सूत्र कहते हैं। सूत्रों का प्रामाण्य मानने वाले बौद्धों की संज्ञा सौत्रांतिक हैं। सूत्रों के भाष्यों को 'विभाषा' कहते हैं। विभाषाओं को प्रमाण मानने वाले बौद्धों की संज्ञा है **वैभाषिक'**।

स्तूप = भगवान बुद्ध के शरीर के दांत, अस्थि आदि अवशेषों पर निर्मित अण्डाकार बौद्धशिल्प। बौद्ध लोग स्तूप की पूजा करते हैं। स्तूप पर बौद्धमूर्तियाँ होती हैं।

स्थविर कल्प = एक प्राचीन जैन संप्रदाय की संज्ञा। श्वेताम्बर संप्रदाय की पूर्वसंज्ञा।

स्थविरवाद (थेरवाद) = एक अपरिवर्तनवादी बौद्ध संप्रदाय। उपपंथ - महीशासक, सर्वास्तिवादी, काश्यपीय, सांक्रान्तिक, सौत्रान्तिक, धर्मगुप्तिक इत्यादि (इन्हें **'निकाय'** कहते हैं।)

स्थविरवादी (थेरवादी) = भगवान् बुद्ध के आदेशों का निरपवाद पालन करने वाले बौद्ध संप्रदाय की संज्ञा। स्थविरवादी बौद्धों ने ही भगवान बुद्ध के पश्चात् प्रायः एक शताब्दि के बाद बुद्धवचनों का ग्रंथरूप में संकलन किया था।

स्थानकवासी = श्वेताम्बर जैन संप्रदाय का एक मूर्तिपूजाविरोधी उपपंथ।

स्मृत्युपस्थान (पाली में सतिपठ्ठान) = बुद्धमतानुसार निर्वाणप्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय। चार प्रकार - (१) काय स्मृत्युपस्थान (शरीर की अन्तर्बाह्य क्रियाओं पर चित्त की एकाग्रता करना। (२) वेदना-स्मृत्युपस्थान (सुख, दुःख आदि आंतरिक वेदनाओं पर चित्त को एकाग्र करना। (३) चित्त-स्मृत्युपस्थान (राग, द्वेष विरहित चित्त पर एकाग्रता से ध्यान देना), (४) धम्म-स्मृत्युपस्थान- शरीरस्कन्धों के उत्पत्ति विनाश की ओर ध्यान देना।

स्वर्ग (१२ प्रकार) = सौधर्म, ईशान, सानतकुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लांतक, महाशुक्र, सहस्त्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत। (जैनमत)

हीनयान = स्थविरवादी तथा सर्वास्तिवादी बौद्ध सम्प्रदायों की संज्ञा। सर्वास्तिवाद से सौत्रान्तिक और वैभाषिक नामक दो उपसंप्रदाय निर्माण हुए।

* * *

(वर्ग - ६) – संकीर्ण साम्प्रदायिक परिभाषा

अक्षयवट = तीर्थराज प्रयाण में गंगायमुना संगम पर स्थित एक प्राचीनतम वटवृक्ष का नाम। गयाक्षेत्र में भी अक्षयवट प्रसिद्ध है।

अक्षरमातृका = भारतीय वर्णमाला के ५२ अक्षरों की संज्ञा

अंगारकी = मंगलवार तथा संकष्टी चतुर्थी का योग। यह दिन गणेश की उपासना के लिये उत्तम माना जाता है।

अतिवाहिक देवता = देहत्याग के बाद आत्मा को ऊर्ध्व लोक में जाने में सहाय करनेवाला देवताओं का गण।

अनन्त = बारह चक्रचिह्न वाला शालिग्राम पाषाण।

अनुग्रह = वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में परमात्मा के अनुग्रह (कृपा) को ही 'पुष्टि' कहा है। अनन्य भक्ति से भक्तों को परमात्मा का अनुग्रह या प्रसाद प्राप्त होता है। यह भक्ति मार्गियों की प्रमुख धारणा है।

अनुपातक = पंचमहापातकों के समान, गोवध, परदारागमन, व्रात्यता, व्रतलोप, संन्यासोत्तर गृहस्थता, अमंगलवस्तुस्पर्श, निकृष्ट से दानग्रहण, धर्मभ्रष्टता इत्यादि। (मनुस्मृति- ११/५५,-५८) इनका प्रक्षालन, दुष्कर प्रायश्चित्तों से होता है। (आप. धर्मसूत्र १, ९, २६, ८-९)

अपस्मार = दुष्ट पिशाचों का एक समुदाय (भागवत पुराण १०-६-६८)

अभयहस्त (या वरदहस्त) = एक शुभ चिह्न। हाथ के पंजे पर लगाये गये कुंकुम का ठप्पा।

अमृतप्राशन = सिक्खों के निर्मल संप्रदाय की दीक्षा में लोहपात्र में सिद्ध किया हुआ शर्करायुक्त पवित्र जल प्राशन करने की विधि।

अरण्य = पशुओं के संचार का स्थान। (प्रायः जंगल)। पुराण प्रसिद्ध ९ अरण्य = दण्डकारण्य, सैंधवारण्य, पुष्करारण्य, कुरु-जांगल, उत्पलावर्तकारण्य, जम्बूमार्ग, हिमवदरण्य, अर्बुदारण्य।

अरिष्ट (रिष्ट) = भावी मृत्यु के सूचक लक्षण। उदा. कौआ या गिद्ध का मस्तक पर बैठना, बादल बिना बिजली दिखना, दर्पण में प्रतिबिंब न दिखना इ.।

अश्रुमुख पितर = देखिये नान्दीमुख।

अष्ट अप्सरा (या देवांगना) = ऊर्वशी, मेनका, रंभा, घृताची, तिलोत्तमा, भिन्नकेशी, स्वयंप्रभा, पूर्वचित्ती।

अष्ट दिग्गज = पुराणों के अनुसार पृथ्वी का रक्षण तथा धारण करने वाले आठ दिव्य हाथी – ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदन्त, सार्वभौम, सुप्रतीक।

अष्ट दिव्ययोनियां = विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, गंधर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, और सिद्ध (अमर कोश)

अष्टनाग = पुराणों के अनुसार – अनंत, वासुकी, तक्षक, कर्कोटक, शंख, कुलिक, पद्म और महापद्म।

अष्ट नायिकाएं = भागवत के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण की आठ प्रमुख रानियाँ – रुक्मिणी, सत्यभामा, सत्या, लक्ष्मणा, जांबवती, कालिंदी, मित्रा और मित्रविन्दा

अष्टनिधि = पुराणोक्त संपत्ति के आठ प्रकार – पद्म, महापद्म, मकर, कच्छव, मुकुंद, नंद, नील, शंख

अष्टमंगल (या मंगलाष्टक) = ब्राह्मण, गाय, अग्नि, सुवर्ण, घृत, सूर्य, जल, और राजा। अथवा सिंह, वृषभ, हाथी, पूर्णकुंभ, पंखा, माला, भेरी और दीप। इन अष्ट-मंगलों का दर्शन शुभकारक माना जाता है।

अष्टमंगलक माला = मीनमिथुन, देवविमानगृह, श्रीवत्स, वर्धमान, त्रिरत्न, पुष्पदाम, इन्द्रयष्टि (या वैजयंती) और पूर्णकलश इन आठ मंगल चिन्हों से युक्त माला शुभकारक मानी गई है। दिग्विजय की यात्रा में विजिगीषु राजा इसे धारण करते थे।

अष्ट मर्यादागिरि = पुराणों के अनुसार हिमालय, हेमकूट, निषध, गंधमादन, नील, श्वेत, शृंगवान् और मौल्यवान् नामक पर्वतों को मर्यादागिरि कहते हैं। इन्हीसे जम्बूद्वीप का नौ वर्षों (विभागों) में विभाजन होता है, जिनमें भारतवर्ष एक है।

अष्टांग (साष्टांग) प्रणाम = घुटने, पांव, हाथ, हृदय, सिर, दृष्टि, मन-बुद्धि और वाणी इन आठ अंगों सहित प्रणाम (अथवा घुटने, पांव, हाथ (६) हृदय और सिर इन आठ अंगो से भूमिस्पर्श करते हुए प्रणाम)

अष्टायुध = इन्द्रादि अष्टदिक्पालों के आयुध – वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, पताका, गदा, शूल।

असिपत्रवन = २८ नरकों में एक, जिसमें सर्वत्र असिपत्र (तलवार) होते हैं। (भागवत पुराण- ५.२६.१५)

असुर = शतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति के ज्येष्ठ पुत्र। देवों के नित्यशत्रु। पुराणों के अनुसार शिवभक्त।

आचारसप्तक = (तांत्रिक मतानुसार) – वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धांताचार और कौलाचार (तंत्रशास्त्र कौलाचार को सर्वश्रेष्ठ मानता है। कौलाचारी साधक सभी बंधनों से अतीत सर्वत्र समबुद्धि रखने वाला होता है।)

आचार्य चतुष्टय (वैष्णवों का) = विष्णुस्वामी, निंबार्क, मध्वाचार्य, और रामानुजाचार्य।

आजीवकवृत्ति = उपजीविका के लिए भविष्य कथन करने का धंधा। बुद्ध काल में आजीवक नामक एक धर्मसंप्रदाय था। मंखली गोशाल आजीवक संप्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं।

आदिग्रंथ = सिक्ख संप्रदाय के पवित्र ग्रंथ का प्रथम भाग (गुरु अर्जुन सिंह द्वारा संकलित) की संज्ञा। इसीको गुरुग्रंथ या गुरुबानी कहते हैं।

ईशान = आगमान्त शैवसंप्रदाय की उपास्य सदाशिव मूर्ति के पांच मुखों में से एक।

उत्सन्न श्रुतिवाद = जब समाज में रूढ किसी धर्म विधि को वेदवचन का आधार नहीं मिलता तब नष्ट वेदांश में उसके अस्तित्व की कल्पना करना।

उद्वज्र = मंत्रयुक्त जल, जिसका प्रयोग मांत्रिक लोक शत्रुनाश के लिये करते थे।

एकायन = एक प्राचीन वैष्णव संप्रदाय। श्रीमद्‌भागवत में इसे भगवत्प्रसन्न एकात्मिक कहा है। (अपर संज्ञा – चौक्ष इसी से "चौखलिया" नाम उत्पन्न हुआ)

कपाल = (१) एक यज्ञोपयोगी मृत्तिकापात्र (२) तंत्रसाधना में उपयोगी मनुष्य की खोपड़ी का अस्थिमय पात्र। दो प्रकार, असृक्कपाल और मांसकपाल।

काकशिला = गयाक्षेत्र की एक शिला। इस पर तीर्थयात्री काकबलि का पिंड समर्पण करते हैं।

कात्यायनी = सभी देवताओं के सामूहिक तेज में कात्यायन ऋषि का तेज मिश्रित होने पर उत्पन्न हुई एक देवी। इसे दुर्गा भगवती का एक स्वरूप माना गया है।

कामकोटिपीठ = आद्य शंकराचार्य द्वारा कांचीवरम् में स्थापित आश्रम की संज्ञा।

कार्पटी वेष = ताम्रमुद्रा, ताम्र कंकण, और काषाय वस्त्र। तीर्थयात्रा में कार्पटी वेष उचित माना गया है।

कालाग्नि = पंचमुखी रुद्राक्ष की संज्ञा (इस रुद्राक्ष में सर्वपापों का दहन करने की शक्ति मानी गई है।)

कालीकुल = तांत्रिक साधकों का. एक वर्ग। इसमें जिन आठ वर्गों की गणना होती है वे हैं – काली, तारा, रक्तकाली, भुवनेश्वरी, महिषमर्दिनी, त्रिपुरा, दुर्गा और प्रत्यंगिरा।

किन्नर = (१) पुराणानुसार अश्वमुखी नरदेही देवयोनि। (२) बौद्धमतानुसार मानवमुखी पक्षी। (३) हिमालय में तिब्बत के पड़ोसी प्रदेश का निवासी एक समाज। इस समाज में अनेक भाइयों की एक ही पत्नी होती है।

कृतघ्न = उपकारी के उपकार को न मानने वाला या उस पर अपकार करने वाला। इस के आठ प्रकार कहे हैं।

कृत्या = एक आसुरी देवता, धनुष्कोटी तीर्थ (रामेश्वर) में इसे वालुकापिण्ड का दान करते हैं। इस पिण्डदान से पिशाच बाधा का उपद्रव शांत होता है।

कौस्तुभ = समुद्रमंथन से निकले हुए चौदह रत्नों में से एक। यह विष्णु-भगवान् का हृदयभूषण है।

क्षणिक लिंग = उपासना के लिए निर्मित मृण्मय शिवलिंग। पूजा होने पर इसका विसर्जन होता है।

क्षेत्रत्रय = (१) अवतारों की जन्मभूमि (२) संतों की मृत्युभूमि और (३) वीरों की कर्मभूमि।

क्षेत्र पंचक = नासिक, प्रयाग, पुष्कर, नैमिषारण्य, और गया।

क्षेत्रपाल = शैव-तांत्रिक पूजा में अग्रपूज्य देवता। यह एक लोकदेवता है।

कुंकुमपत्रिका = विवाह की निमंत्रण पत्रिका। इस पत्रिका पर कुंकुम छिडका जाता है।

कुरव = अप्सराओं के १४ गणों में से एक।

कूर्मचक्र = वराहमिहिर तथा पराशर के मतानुसार भारतवर्ष की संज्ञा।

खट्वांग = भगवान् शिव का एक आयुध। खट्वा (खटिया) के एक पैर पर नरमुण्ड ऐसा इसका स्वरूप होता है।

गीतपंचक (श्रीमद्‌भागवत में) = वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत, भ्रमरगीत और महिषीगीत।

गुरुग्रंथ = सिक्ख संप्रदाय का प्रमाणग्रंथ। सात अध्यायों में इसका वर्गीकरण किया है। अपर नाम **आदिग्रंथ।**

गुरुत्रय = माता, पिता और आचार्य

गुरुद्वय = विद्यागुरु और मोक्षगुरु

गुरुमतदर्शन = सिक्खों का अध्यात्मवाद। नीति और भक्तियुक्त सदाचार ही इसका स्वरूप है।

गोभूमि = भारत की पुराणोक्त संज्ञा। (मेरु पर्वत से उत्पन्न चार प्रवाहों में से दक्षिण दिशा में जाने वाला प्रवाह गोमुख से आता है। अतः यह संज्ञा दी गई है।

गोरोचन = गोमूत्र या गाय के वमन से निर्मित पीले रंग का द्रव्य। मांत्रिक प्रयोग में इसका उपयोग प्रशस्त माना जाता है।

गोवर्धन मठ = जगन्नाथपुरी के शांकर मठ की संज्ञा।

चललिंग = शैव उपासना के उपास्य शिवलिंग। छह प्रकार – मृण्मय, लोहज, (धातुनिर्मित) रत्नज, दारुज (काष्ठनिर्मित); शैलज और क्षणिक

चतुःश्लोकी भागवत = श्रीमद् भागवत पुराण के द्वितीय स्कन्ध में ९ वें अध्याय के ३२ से ३५ तक चार श्लोक। इनमें भागवत पुराण या भागवत धर्म का सार सर्वस्व संगृहीत हुआ है।

चतुश्लोकी भागवत =

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं तदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।।३२।।
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद् विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः ।।३३।।
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ।।३४।।
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ।।३५।।

चंद्रचूड = शैव संप्रदाय के अष्ट भैरवों में एक

जगन्नाथ की १२ यात्राएँ = चैत्र से फाल्गुन मास तक अनुक्रम से मदनभंजिका, चान्दनी, स्नापनी, रथ, शयनी, दक्षिणपार्श्वीय, वामपार्श्विक, उत्थानी, छादनी, पुष्याभिषेक, राज्योदनी, दोल.

जंबुद्वीप = पुराणों के अनुसार पृथ्वी का एक विस्तीर्ण भूखंड। भारत आदि नौ खंड (देश) इसमें अन्तर्भूत होते हैं।

जभंकविद्या = इंद्रजाल, जादुगरी

जयदेवसेवा = पुरी के जगन्नाथ मंदिर में जयदेवकृत गीतगोविंद काव्य की अष्टपदी का गायन करने की सेवा।

ज्येष्ठा गौरी = भाद्रपद में पूजा के निमित्त नदी से लाये हुए पाषाणों की संज्ञा। यह संज्ञा कोंकण विभाग में प्रचलित है।

ज्योतिर्मठ = श्री शंकराचार्यद्वारा स्थापित उत्तर भारत का शांकर मठ। इसका केंद्रस्थान बदरिकाश्रम में है।

तमिळवेद = नाथमुनि नामक वैष्णव आचार्य द्वारा संगृहीत १२ आलवार संतों के भक्तिरसपूर्ण चार हजार पद्यों का संग्रह। इसे "नालायिर (चार हजार) या प्रबंधम् कहते हैं। भारत के समस्त भक्तिसाहित्य का यह मूलस्रोत माना जाता है।

तंत्र = दो प्रकार (१) वैदिक और (२) अवैदिक (अप्पय्य दीक्षित का मत)

तपोलोक = सप्त स्वर्गों में से छठा स्वर्ग।

तत्पुरुष = आगमान्त शैव संप्रदाय की उपास्य सदाशिवमूर्ति के पांच मुखों में से एक।

तत्त्वदीक्षा = आगमोक्त १२ दीक्षाओं में से एक। इसके एकतत्त्व, त्रितत्त्व, पंचतत्त्व, नवतत्त्व, अष्टादशतत्त्व, षट्त्रिंशत्तत्त्व आदि भेद माने जाते हैं।

तारक मंत्र = (१) ॐ रामाय नमः। (२) ॐ श्रीराम राम राम (३) ॐ नमो नारायणाय'। इन मन्त्रों की संज्ञा।

तांत्रिक आचार = दो प्रकार (१) दक्षिणाचार और (२) वामाचार। वामाचार में पंच मकारों (मद्य, मांस आदि) का प्रत्यक्ष सेवन और शक्ति देवता की उपाना होती है। दक्षिणाचार में शैव उपासना और पंच मकारों का प्रतीकात्मक सेवन होता है।

तांत्रिक दीक्षा अभिषेक के आठ प्रकार = शाक्ताभिषेक, पूर्णाभिषेक, क्रमदीक्षाभिषेक, साम्राज्याभिषेक, महासाम्राज्याभिषेक, योगदीक्षाभिषेक, पूर्णदीक्षाभिषेक और महापूर्णदीक्षाभिषेक। दीक्षाविधि के बाद ये अभिषेक अनुक्रम से होते हैं।

तांत्रिक विधि – (छह प्रकार) = शांतिक, पौष्टिक, वश्य, आकर्षण, उच्चाटन, मारण, (प्रत्येक विधि के देवता का रंग पृथक् माना जाता है।)

तिरस्कारिणी विद्या = कृष्णाकाली देवी की अपरसंज्ञा

तीर्थ = 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यार्थ का निदिध्यासन करनेवाला संन्यासी। दसनामी संन्यासियों का एक प्रकार (मठाम्नाय)

तीर्थ के प्रकार = दैव, ब्राह्म, पैत्र्य, आसुर, आर्ष, जंगम, (तपस्वी ब्राह्मण); स्थावर (नदी, पर्वत, अरण्य आदि) मानस (क्षमा, दया, सत्य आदि आध्यात्मिक गुण), धर्मतीर्थ, अर्थतीर्थ, कामतीर्थ, मोक्षतीर्थ (देखिये महापुरी)।'

तुलापुरुषदान = १६ महादानों में एक। इसमें पुरुष की तुला जिस धातु या द्रव्य से होती है उस का संपूर्णतया दान होता है।

तुषित = तोष, प्रतोष, संतोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, दूध्म, कवि, विभु, स्वहन, सुदेव, और रोचन, नामक १२ देवों का गण।

तृचाकल्प नमस्कार = १२ सूर्यनमस्कारों की एक पद्धति। इसमें बीज, मंत्र, मंत्र, का एक चरण और एक सूर्यनाम का उच्चारण होता है। १२ नमस्कारों का तीन चार आवर्तन करने पर "तृचा कल्प' होता है।

तेजोलिंग = अरुणाचलम् का शिवलिंग

तेदंडिक = (त्रिदण्डी) ब्राह्मण यतियों का एक प्रकार। (बौद्ध ग्रंथों में उल्लिखित)

त्रिकूट = त्रिपुर सुंदरी श्रीविद्यामंत्र नामक श्रेष्ठमंत्र के तीन बीजों की संज्ञा। तीन बीज = वाग्बीज, कामबीज, और शक्तिबीज।

त्रिदण्डी = वाग्दण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड तीन प्रकार के तप या संयम करने वाला संन्यासी

त्रिमूर्ति = ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीन देवों की एकत्र मूर्ति। तीन मुख और छह भुजाएँ इसकी विशेषता होती है। महाराष्ट्र में श्री दत्तात्रेय की मूर्ति इस प्रकार की होती है। (२) मंजुश्री अवलोकितेश्वर और वज्रपाणि बौद्ध सम्प्रदाय में त्रिमूर्ति मानी जाती है।

त्रिविध कर्म (भागवतानुसार) = वैदिक (वेदोक्त), तांत्रिक (तंत्रशास्त्रोक्त) और वैदिक तांत्रिक (भाग ११.२७.७)

त्रिष्टुभ् = ११ अक्षरों के चार पाद वाला एक वैदिक छंद। (ऋग्वेद की सबसे अधिक ४२५३) ऋचाएं इसी छंद में हैं। इंद्र और मरुत् देवों के सूक्त प्रायः त्रिष्टुभ् छंद में मिलते हैं।

त्रिस्थली = प्रयाग, काशी, और गया इन तीन पवित्र तीर्थक्षेत्रों की संज्ञा।

दक्षिणाचार = "शिवो भूत्वा शिवं यजेत्" इस सिद्धान्त का प्रतिपादक एक तांत्रिक आचार मार्ग। इसमें शिव की उपासना और मद्यमांसादि पंच मकारों का प्रतीकात्मक सेवन उचित माना है।

दक्षिणामूर्ति = अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाला भगवान् शिव का एक स्वरूप। चार प्रकार – वीणाधरमूर्ति, योगमूर्ति, ज्ञानमूर्ति और व्याख्यानमूर्ति।

दधिवामन = विष्णुमूर्ति का एक प्रकार। इसके दाहिने हाथ में अमृतकलश और बाएँ हाथ में दहीभात होता है।

दर्भपवित्रक = दर्भों की बनाई हुई अंगूठी। यह स्नान, दान, जप, यज्ञ, स्वाध्याय, और नित्यकर्म करते समय आवश्यक माना गया है।

दासकूट = कर्नाटक के दो वैष्णव भक्त संघों में से एक की संज्ञा। दूसरे भक्तसंघ को व्यासकूट कहते हैं।

दारविहारी = सिद्ध तापसों के दो प्रकारों में से एक। गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले तपस्वी।

दीक्षागुरु = परम्पराप्राप्त मंत्र की दीक्षा शिष्यों के देने वाले सद्गुरु।

दीक्षात्रय = (शिवागम के अनुसार) वेधादीक्षा, क्रियादीक्षा, और मंत्रदीक्षा।

दीक्षागम = २८ आगमों में से एक शैवागम।

दुर्गासप्तशती = मार्कण्डेय पुराण के अध्याय ८१ से ९२ तक विभाग में वर्णित देवीमाहात्म्य की संज्ञा।

दुर्दशा देवी के दस रूप = दुर्मुखी, दीनवन्दना, मलिना, सत्यनाशिनी, बुद्धिनाशिनी, हिंसा, दुष्टा, मित्रविरोधिनी, उच्चाटनकारिणी, और दुश्चित्तप्रदा। देखिये वशादित्य व्रत।

देवता = प्रकार – इष्टदेवता, कुलदेवता, ग्रामदेवता, वास्तुदेवता।

देवता = (३३ कोटीं = प्रकार) = ८ वसु, १२ आदित्य, ११ रुद्र; इन्द्र और प्रजापति।

देवतापंचक = अग्नि, वायु, सूर्य, चंद्र और नक्षत्र। (तैत्तिरीय उप.)

देवतापंचक = सूर्य, देवी, विष्णु, गणेश, और शिव। इन्ही देवताओं का 'पंचायतन' होता है।

देवधामिक = ब्राह्मण यतियों का एक प्रकार। (बौद्ध ग्रंथों में उल्लिखित)

देवपर्व = तांत्रिक पद्धति की पूजा के लिए अनुकूल विशिष्ट तिथियों की संज्ञा। प्रत्येक मास में एक 'देव पर्व' होता है। – चैत्र शुद्ध १४, वैशाख शु. ३ (अक्षय तृतीया), ज्येष्ठ वद्य १४, आषाढ वद्य ९, श्रावण वद्य ५, भाद्रपद शु.६, आश्विन व. ५, कार्तिक शु. ९, मार्गशीर्ष पौर्णिमा, पौष, व. १४, माघ शु. ४ और फाल्गुन व ९। तांत्रिक साधक इन देवपर्वो में मध्यरात्रि के समय पंच मकारों से देवी की पूजा करते हैं।

देवपादप (पाँच) = मंदार, पारिजातक, संतान, हरिचन्दन और कल्पवृक्ष। (पादप = वृक्ष)

देवप्रयाग = भागीरथी और अलकनंदा का संगम क्षेत्र। पंच प्रयागों में से एक।

देवयु = देवताओं को प्राप्त करने की कामना करने वाले देवभक्त लोग

देवयोनि = (देवाः योनिः उत्पत्तिस्थानं येषां ते देवयोनयः)। विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, तथा सर्प इन की गणना देवयोनि जीवों में होती है।

देवर्षि = नारद, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ट, प्रचेता, और शिव।

देवहूति विद्या = देवताओं से प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष संपर्क स्थापन करने की एक मंत्रविद्या। कुन्ती को इस विद्या का ज्ञान दुर्वासा ऋषि द्वारा प्राप्त होने का उल्लेख है।

देवीविग्रह १२ स्थानों में प्रसिद्ध = कामाक्षी (कांचीपुर में); भ्रामरी (मलयगिरि में) कन्याकुमारी (केरल में), अंबा (आनर्त अर्थात् गुजरात में) महालक्ष्मी (करवीर या कोल्हापुर में), कालिका (उज्जयिनी में); ललिता (प्रयाग में), विन्ध्यवासिनी (विन्ध्याद्रि में), विशालाक्षी (वाराणसी में), मंगलावती (गया में), सुंदरी (बंगाल में), गुह्यकेश्वरी (नेपाल में)

देवीसूक्त = दुर्गासप्तशती ग्रंथ के पांचवें अध्याय में ८ से २२ (पंद्रह श्लोकों की संज्ञा)।

दैवकर्म = छह प्रकार = व्रत, दान, नक्त, एकभुक्त, अयाचित और उपवास।

द्वादशाक्षर मंत्र = "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस वैष्णव मंत्र की संज्ञा।

धनतारा = एक बौद्ध देवता। तिब्बत और चीन में इस की उपासना होती थी।

धर्म (दो प्रकार) = प्रवृत्तिपर और निवृत्तिपर

धर्म के प्रकार = (मनु के अनुसार) – जातिधर्म, जानपदधर्म, श्रेणीधर्म, और कुलधर्म। (मनुस्मृति ८-४१)। इनके अतिरिक्त वर्णधर्म और आश्रमधर्म होते हैं।

धातुवादी गुरु = शिष्यद्वारा विविध साधना करवाने पर अनुग्रह करने वाले सद्गुरु।

धामचतुष्टय = (१) बदरीकेदार, रामेश्वर, द्वारका और जगन्नाथपुरी। (२) हिमालय में गंगोत्री, जम्नोत्री, बदरी और केदार।

धूमावती = एक भीषण, कुरूप, विधवा, स्वरूप तांत्रिक देवता, इसका वाहन कौवा और स्थान श्मशान है। शाक्त सिद्धान्तानुसार महाशक्ति का वृद्ध रूप। यह देवता नर्तकी एवं नृत्यनाट्यादि में आनंद मानने वाली है।

ध्यानबदरी = हिमालय में पंचबदरियों में से एक तीर्थस्थान।

ध्वज = पुराणों में प्रत्येक देवता के पृथक् ध्वज कहे हैं। जैसे – शंकर- **वृषध्वज** विष्णु –**गरुडध्वज** दुर्गा –**सिंहध्वज** गणेश – **मूषकध्वज** (या कुंभध्वज)। स्कंद – **मयूरध्वज**। मदन – **मकरध्वज**। बलराम – **तालध्वज**। अनिरुद्ध – **हरिणध्वज**।

ध्रुवप्रिय = ध्रुवबालक की तपस्या से प्रसन्न होकर उसे वरदान देनेवाले विष्णु का एक अवतार

नमस्कार (दो प्रकार) = भावनमस्कार और द्रव्य नमस्कार। अथवा व्यवहार नमस्कार और निश्चय नमस्कार (रत्नकरंडक)

नवखंड = पुराणोक्त भारतवर्ष के नौ विभाग

नवखंड नामावली = इन्द्रद्वीप, कसेरू, ताम्रपर्व, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण और कुमारीद्वीप। (मत्स्यपुराण-११४-७-८) (कुछ पुराणों में पंच खंड या सप्तखंड ही माने हैं।)

नवगंगा = गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी, महानदी, पयोष्णी, और शरयू इन नौ नदियों की संज्ञा।

नवपत्रिका = कदली, दाडिमी, हरिद्रा, भात, कचू, बिल्व, अशोक, मानक, और जयंती। इन ९ पत्रिकाओं को दुर्गा या मातृदेवता का प्रतीक माना जाता है। बंगाल के दुर्गोत्सव में इनकी पूजा होती है।

नवब्रह्म = देखिये मानसपुत्र।

नवाक्षरी मंत्र = 'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा' नवचण्डीविधान में इस मंत्र का जप होता है।

नायन्मार = तामिलभाषा में इस शब्द का अर्थ है भगवद्भक्त। ज्ञानसंबंधपर, सुंदर, माणिक्यवाचकर आदि ६३ संतों का नायन्मारों में अन्तर्भाव होता है। ये शिवभक्ति का प्रचार करते रहे।

नारसिंह आगम = (सर्वोत्तर या सर्वोक्त) = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

नारायणीय धर्म = महाभारत शांतिपर्व (अध्याय ३३४ से ३५१ तक) भीष्माचार्य द्वारा प्रतिपादित एक प्रवृत्ति लक्षणात्मक वैष्णव धर्म। वर्तमान वैष्णव संप्रदायों का यही मूल माना जाता है। इस मत में वासुदेव (परमात्मा), संकर्षण, (प्राणिमात्र), प्रद्युम्न (मन), और अनिरुद्ध (अहंकार) इस चतुर्व्यूह का सिध्दान्त 'प्रतिपादित हुआ है।

निगम = वेदों की अपर संज्ञा। (आगम – तंत्रों की अपर संज्ञा है।

नित्यकर्म = यावज्जीवन् अग्निहोत्रं जुहोति' इत्यादि वचनों द्वारा ज्ञात यज्ञादि वैदिक कर्म। दुरितनिवृत्ति इसका फल होता है।

नित्यविहार = निबार्क के रसिक सम्प्रदाय में तथा राधावल्लभ संप्रदाय में कृष्ण-राधा की अखण्डित शृंगार लीला की संज्ञा।

निवीत = दोनो कंधों पर रखा हुआ यज्ञोपवीत (देखिये संवीत)

निश्वासागम़ = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

नैमित्तिक कर्म = नित्यकर्म का आचरण न होने पर प्रायश्चित्त के निमित्त कर्तव्य कर्म उदा. पथिकृतीष्टि (देखिये) । दुरित निवारण इस कर्म का फल होता है।

पंच उपासक = शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त और गाणपत्य।

पंच काशी = वाराणसी, गुह्यकाशी, उत्तरकाशी, दक्षिणकाशी (तेन्काशी) और शिवकाशी

पंच केदार = केदारनाथ नामक ज्योतिर्लिंग के पांच अंग – बदरीकेदार, मध्यमहेश्वर, तुंगनाथ, रुद्रनाथ और कल्पेश्वर (केदारक्षेत्र की यात्रा में इन पांचों का दर्शन विहित है।

पंच देवता = विष्णु, सूर्य, शिव, देवी, और गणपति। पंचायतन पूजा में इन देवताओं का पंचायतन स्थापन किया जाता है। श्री शंकराचार्य पंचायत पूजा के प्रवर्तक माने जाते हैं।

पंच देवी = दुर्गा, पार्वती, सावित्री, सरस्वती और राधिका।

पंच पतिव्रता = सती, पार्वती, अरुंधती, अनसूया और शांडिली।

पंचपद गोपाल मंत्र = गोपाल पूर्वतापिनी उपनिषद् में कथित कृष्णोपासना का मंत्र – 'क्लीं कृष्णाय गोविंदाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा''।

पंचब्रह्म = देखिये पंचमुख (शिव के)

पंच मकार = शाक्त पंथीय वाममार्गी लोगों के सेवनीय पांच पदार्थं – मांस, मदिरा, मत्स्य, मैथुन और मद्य (इनमें 'म' वर्ण होने से 'मकार' शब्द का प्रयोग हुआ है।) इन पांच मकार युक्त शब्दों का अर्थ तांत्रिक संप्रदाय में (१) प्रत्यक्ष (अर्थात् लौकिक व्यवहार में रूढ) (२) अनुकल्प (अर्थात् रूढ अर्थ से भिन्न भौतिक पदार्थ) और (३) दिव्य (अर्थात् अध्यात्म परक माना जाता है।

पंच मकार = के अनुकल्पात्मक अर्थ – **मद्य** = नारियल का पानी **मांस** = लहसुन, अद्रक, तिल, नमक, गेहूं की कलम। **मत्स्य** = लाल मूली, बैंगन इ. **मुद्रा** = चावल, अक्षता। मैथुन = प्रेमभाव से पुष्प समर्पण।

पंच मकार के दिव्य अर्थ = **मद्य** = परमात्मा का दिव्य ज्ञान जिससे साधक को बाह्य जड जगत् का विस्मरण होता है। **मांस** = सभी पदार्थों का अंतरात्मा को समर्पण। **मत्स्य** = श्वास और प्रश्वास का नियंत्रण करना तथा उन्हें सुषुम्णा नाड़ी में प्रवाहित करना। **मुद्रा** = संत्सगानुकूल व्यवहार। **मैथुन** = कुण्डलिनी का उद्दीपन तथा सहस्त्रारपद्म (या चक्र) में शिवशक्ति का मिलन।

पंचमुद्रा = (जपविधि में आवश्यक) – कमलमुद्रा, कलश०, धेनु०, ज्ञान०, अंजलि०।

पंचमुद्रा = वीर शैव संप्रदाय की दीक्षा में आवश्यक पांच वस्तुएं – भिक्षापात्र, दण्डकाष्ठ, काषायकंथा, कमंडलु, और विभूति (भस्म)।

पंचमुख = (शिवभगवान के) = सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, और ईशान। इन्हीको शैवलोग 'पंचब्रह्म' कहते हैं।

पंचरत्न गीता = भगवद्गीता, विष्णुसहस्त्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति और गजेन्द्रमोक्ष इन पांच ग्रंथों की संज्ञा।

पंचविनायक = मोद, प्रमोद, दुर्मुख, सुमुख, और गणनायक। (श्रीगणेशजी के पांच स्वरूप)

पंचाचार्य = (वैदिक धर्म के) = शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य और निंबार्काचार्य।

पंचाचार्य (वीरशैव संप्रदाय में) = देवणाराध्य, मरुलाराध्य, एकोरामाराध्य, पंडिताराध्य, और विश्वेश्वराराध्य (या विश्वाराध्य)।

पंचाचार्य = रेणुकाचार्य, दारुक (मरुल) घंटाकर्ण (एकोराम), धेनुकर्ण (पंडिताराध्य) और विश्वकर्ण (विश्वाराध्य)। ये पांच वीरशैवाचार्य पंचब्रह्म के अवतार माने जाते हैं।

पंचाक्षरी मंत्र (शैवों का) = ओं नमः शिवाय। (वैष्णवों का = विष्णवे नमः।।)

पंचायतन = शिव, विष्णू, सूर्य, गणेश और देवी। इन पांच देवताओं में जिसकी प्रतिमा मध्यस्थान में होती है उस का वह पंचायतन होता है। इस प्रकार पांच पंचायतन होते हैं।

पंचारति (पंचार्तिक्य) = दीप, कमल, वस्त्र, आम्रफल और सुपारी इन पांचों को एकत्र रखकर पंचारति होती है।

पंचोपचार (पूजा के) = (१) गंध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य।। (२) ध्यान, आवाहन, नैवेद्य, नीराजना और नमस्कार।

पददीक्षा = आगमोक्त २२ दीक्षाओं में से एक।

पद्मिनी विद्या = मार्कण्डेय पुराणोक्त अष्टनिधियों की अधिष्ठात्री। एक देवता।

परमात्मा के षड्गुण = ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य और तेज (पांचरात्र मतानुसार)

परमेश्वरागम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

परा पूजा = पूजा के तीन प्रकारों में से सर्वोत्कृष्ट पूजा का प्रकार। इसमें जीवात्मा परमशिव या परमात्मतत्त्व से अभिन्नता का अनुभव पाता है। अन्य पूजा प्रकार – अपरापूजा और परापरा पूजा।

पर्वत = पर्वत में निवास करनेवाला दशनामी संन्यासी (मठाम्नाय,

पांचरात्र = वैष्णवागमों का एक भेद। यह वेदानुकूल है।

पांचरात्र = (रात्र = वैष्णव आगमानुसार ज्ञान)। वैष्णव आगमों की संज्ञा। परमात्मा, भुक्ति, मुक्ति, योग, और संसार इन पांच तत्वों का ज्ञान देने वाला दर्शन।

पात्राष्टक = गुरुपात्र, भोगपात्र, शक्तिपात्र, योगिनीपात्र, वीरपात्र, वलिपात्र, पाद्य और आचमनीय पात्र। तांत्रिक उपासना में श्रीपात्र के चारों ओर इन आठ पात्रों की स्थापना होती है।

पाशुपत = एक अघोरपंथी दाक्षिणात्य शैव संप्रदाय। अवैदिक शैवागम का एक भेद।

पुत्रक दीक्षा = तांत्रिकों की निर्वाण दीक्षा की अपर संज्ञा।

पुराण (पंचलक्षण) = सर्ग (सृष्टि की उत्पत्ति), प्रतिसर्ग (सृष्टिसंहार), वंश (या पुनरुत्पत्ति), मन्वन्तर कथा, और वंशानुचरित (सूर्य-चंद्र आदि वशों के महापुरुषों की कथाएँ। सभी पुराणों में ये विषय होते हैं।

पुराण प्रस्थानत्रयी = वाल्मीकि रामायण, महाभारत, और श्रीमद्भागवत

पुरी = तत्वज्ञान से परिपूर्ण तथा ब्रह्मरत दशनामी संन्यासी (मठाम्नाय)।

पुष्टि = (ईश्वर का अनुग्रह) = (चार प्रकार) = प्रवाहपुष्टि, मर्यादापुष्टि, पुष्टिपुष्टि और शुद्धिपुष्टि।

पूजा = तीन प्रकार – वैदिकी, तांत्रिकी और मिश्र (अर्थात् वैदिकी और तांत्रिकी का संयोग)

पूजा के पांच भेद = १) साधनाभाविनी (पूजा-द्रव्यों के अभाव में केवल जल से पूजा) (२) त्रासी = संकटमय अवस्था में संक्षेपतः पूजा। (३) दौर्बोधी = पूजाविधि के अज्ञान से की गई पूजा (४) सौतकी = जननाशौच में की गई मानस पूजा। आतुरी = रोगातुर अवस्था में केवल पुष्प से पूजा।

पूजा के पंचकर्म = अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या।

(अभिगमन = देवगृह की स्वच्छता।, उपादान = पूजा साहित्य की सिद्धता।, योग = पूज्य देवता का अखंडित चिंतन।, स्वाध्याय = मंत्रजप, स्तोत्रपाठ। इज्या = षोडशोपचारयुक्त पूजा

पूतना = बालकों को उपद्रव देवे वाली उग्र तामसी देवता। बारह प्रकार – नन्दिनी, सुनन्दा, स्वग्रहा, मुण्डिका, मातृका, शकुनि, मुक्तकेशी, अर्थका, कुम्भिका, निरता, पिच्छिका, कामुका। १२ वर्ष की आयु तक आधिदैविक पीडा से मुक्त होने के लिए 'पूतनाशांति' नामक विधि होती है।

पूर्णावतार = परमात्मा का संपूर्ण १६ कलाओं सहित आविर्भाव। श्रीकृष्ण भगवान् पूर्णावतार माने जाते हैं। अन्य सभी अंशावतार हैं।

पूर्वकौल = एक तांत्रिक संप्रदाय। इसमें श्रीचक्र के अन्तर्गत त्रिकोण रूपी कुल की पूजा प्रधान उपासना है। दूसरा संप्रदाय उत्तर कौल कहलाता है जिसमें कुल शब्द का अर्थ स्त्री की योनि मान कर उसीकी पूजा होती है।

पृथ्वीलिंग = कांचीवरम् का शिवलिंग

प्रपत्ति = भगवान् की संपूर्ण शरणागति। यही भागवत धर्म का प्रधान सिद्धांत है।

प्राचीनावीत = पितृक्रिया में दक्षिण स्कंध पर रखा गया यज्ञोपवीत।

प्राणप्रतिष्ठा = उपास्य मूर्ति में प्राणतत्त्व की स्थापना का संकल्प करना। प्राणप्रतिष्ठा की विधि होने पर उपास्य मूर्ति चैतन्यमयी देवतास्वरूप होती है।

बलातिबला = बला + अतिबला) रामायण के अनुसार विश्वमित्र द्वारा रामलक्ष्मणों को दी गई दो रणविद्याओं की संज्ञा।

बलिदशक = तांत्रिक उपासना में बलि देने योग्य माने गये दस पशु – मृग, छाग (बकरा), मेष, भैसा, सूअर, शशक (खरगोश), शल्लक (साही), गोधा (घड़ियाल), कूर्म (कछुवा), और खड्ग (गेंडा)।

बहिरंग उपासना (चार प्रकार) = **संपत्** (उपास्य में अनंत गुणों की भावना); **आरोप** (उपास्य की प्रतिमा में देवत्व का अध्यारोप); **संवर्ग** (अनेक देवताओं में एकत्व की भावना); **अध्यास** (शालिग्रामादि प्रतीक में देवत्व देखना)। (शिवगीता १२-१०-१६)

बाणलिंग = (या चल पाषाणलिंग) = शिवमंदिर में स्थापित शिवलिंग। यह भूमि में स्थापित नहीं होता।

बीजमंत्र = दीक्षाविधि के समय गुरु द्वारा दिया गया मंत्र। लौकिक दृष्ट्या यह प्रायः अर्थहीन होता है किन्तु जपसाधना से सिद्धिदायक होता है।

बृहद्ब्रह्म = एकांतिक या भागवत संप्रदाय की १०८ संहिताओं में से एक प्रमुख संहिता का नाम।

ब्रह्मणस्पति = पौराणिक गणपति देवता का वैदिक नाम। तमिलनाडू में इसी नाम से गणेशजी का निर्देश होता है।

ब्रह्मध्वज = चैत्र शुद्ध प्रतिपदा को इस ध्वज की भवनों पर स्थापना तथा पूजा होती है। (महाराष्ट्र में इसे गुढी कहते हैं।)

भद्रकाली = शाक्तपंथियों की एक षोडश (१६) – भुजा उपास्य देवता। तांत्रिकों की अष्टतारा देवताओं में से एक।

भद्रागम = २८ तांत्रिक आगमनों में से एक रौद्रिक आगम

भवमालिनी = एक तांत्रिक उपास्यदेवता।

भारती = विद्या का भार सम्हालने वाला और संसार का भार त्यागने वाला दशनामी संन्यासी (मठाम्नार्य)

भावयाग = श्रीचक्र के स्वरूप में त्रिपुरसुंदरी देवी की आराधना की संज्ञा।

भुवनदीक्षा = आगमोक्त १२ दीक्षाओं में से एक।

भूतमह = भूत-पिशाच विषयक एक प्राचीन उत्सव।

मकुटागम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम

मंडलेश्वर = दसनामी पंथ के संन्यासियों को अध्यात्मशास्त्र

पढ़ाने वाले विद्वान् नागा साधु। जिस मंडलेश्वर के शिष्य मंडलेश्वर का अधिकार प्राप्त करते हैं, उन्हें **महामण्डलेश्वर** कहते हैं।

मंत्र = मनन से त्राण करने वाला वर्णसमूह (मननात् त्रायते इति मंत्रः) मंत्र के तीन तत्त्व – प्रणव, बीज और देवता। तंत्रशास्त्र में **दीक्षातंत्र** = सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

मंत्रदीक्षा = आगमोक्त १२ दीक्षाओं में से एक।

मंत्रराज = "ॐ नमो नारायणाय" इस अष्टाक्षरी नारायण मंत्र की अपर संज्ञा।

मंत्रों के प्रकार = (१)**स्त्री मंत्र** (या विद्या) इसके अंत में ॐ स्वाहा वर्ण होते हैं।, (२) **पुंमंत्र** (या सौरमंत्र) पुरुषमंत्र (इसके अंत में हुं फट् वर्ण होते हैं); (३) **नपुंसक मंत्र** (अर्थात **पौराणिक मंत्र) इस के अंत में नमः शब्द होता है।**

अन्य प्रकार = नित्यातंत्र के अनुसार – पिंड (१ अक्षरी), कर्तरी (२ अक्षरी), बीज (३ से ९ अक्षरों वाला); मंत्र (१० से २० अक्षरों वाला); माला (२० से अधिक अक्षरों वाला मंत्र)

मयूरेश्वर = त्रेतायुग के गणेश अवतार का नाम। मयूरारूढ षड्भुज गणेश।

मस्करी = एक प्राचीन परिव्राजक संप्रदाय का अनुयायी।

महाचीन तारा = एक तांत्रिक देवता। अपर संज्ञा – एकजटा।

महानुशासन = आद्य शंकराचार्य द्वारा सभी मठाधिपतियों को दिया हुआ सन्देश।

महापद्मनिधि = पुराणोक्त आठ धननिधियों के अन्तर्गत एक निधि। इसका स्वामी संत, योगी, सत्पुरुषों को धन-साहाय्य करता है।

महाकाली = (विविध स्वरूपों के नाम) = आद्याकाली, दक्षिणकाली, भद्रकाली, गुरुकाली, कामकाली, धनकाली, सिद्धिकाली, चण्डकाली, गुह्यकाली, श्मशानकाली, रक्षाकाली इत्यादि.

महापुरुषीय संप्रदाय = असम प्रदेश के वैष्णव संप्रदाय का नाम।

महापूर्णाभिषेक = तांत्रिक दीक्षा के बाद आठ अभिषेकों में से अंतिम अभिषेक। इस अभिषेक के बाद शिष्य अपना जीवत्श्राद्ध करता है। इससे शिष्य को गुरुपद प्राप्त होता है अर्थात् गुरु-शिष्य का भेदभाव समाप्त होता है।

महामण्डलेश्वर = देखिये मंडलेश्वर।

महालक्ष्मी = अष्टलक्ष्मीयों में एक। इसकी मूर्ति के मस्तक पर मातुलिंग नामक चिन्ह होता है।

महाविद्या या विद्या एक शाक्त देवता = दशमहाविद्या – काली, तारा, महाविद्या, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, विद्या, धूमावती, बगला। इन्हें सिद्धविद्या भी कहते हैं।

महाव्रतधर = कापालिक शैवों की अपरसंज्ञा। (देखिये कापालिक)

महिमाधर्म = एक् अर्वाचीन भक्तिप्रधान बौद्ध संप्रदाय। उड़ीसा में १८७५ में भीमभोई नामक संत ने इसकी स्थापना की। (इसी कालावधि में मुंबई में आधुनिक 'वैदिक धर्म' की अर्थात् आर्यसमाज की स्थापना हुई थी)।

मही = विष्णुमूर्ति के बांये हाथ की ओर स्थापित अष्टलक्ष्मियों में एक देवता।

मात्राशास्त्र = नानकदेव के पुत्र श्रीचंद द्वारा स्थापित उदासी संप्रदाय के सिद्धान्तों का संग्रह। श्रीचन्द ही इसके लेखक हैं।

मानसपुत्र = सृष्टिनिर्मित्ति के लिए ब्रह्मा के संकल्प से उत्पन्न नौ देवर्षि – भृगु, पुलस्य, पुलह, क्रतु, अंगिरस, मरीचि, दक्ष, अग्नि और वसिष्ठ। अपर संज्ञा = नवब्रह्म।

मानसपुत्र (ब्रह्मा के) = सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार। (भागवत ३-१२-४)

मांदार गणेश = मंदारवृक्ष की मूली से निर्मित गणेश की मूर्ति।

मायापुर = अवतारी पुरुष के देह की संज्ञा।

मार्तण्डभैरव = मणिमल्ल नामक असुर का नाश करने वाला शिव का एक अवतार। महाराष्ट्र में इसी को खंडोबा, और कर्नाटक में म्हालसा (महालसा) कान्त भी कहते हैं।

मुकुंदनिधि = पुराणोक्त अष्ट निधियों में एक। इसका स्वामी संगीतप्रेमी एवं कलाकारों को दान देने वाला होता है।

मुकुंदमह = एक प्राचीन कृष्णोत्सव

मुखबिंब (या मुखयुग्बिंब) आगम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

मुद्रांकन = शंख, चक्र, गदा, पद्म और नारायण की पांच मुद्राओं का चंदन या अन्य पदार्थ से शरीर पर रेखांकन, माध्वसंप्रदाय में प्रशस्त माना जाता है।

मुद्राधारण (माध्वसंप्रदाय में) = शंख, चक्र, गदा, पद्म, और नारायण, इनके चिह्न धारण करना

मेघादीक्षिता = काली का एक स्वरूप

मेघास्पर्शमणि = कालीदेवी का एक स्वरूप

मोक्षपुरी = अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारका। इन सात प्राचीन पुराणप्रसिद्ध नगरियों का विशेषण।

मोक्षसाधक पंचक = रामानुज संप्रदाय में मुद्राधारण, त्रिपुंड्र, विष्णुनामकरण, विष्णुप्रियमालाधारण, और "ओं नमो नारायणाय" मंत्र इन पाँचो को 'मोक्षस्थान' माना है।

यथार्थदीक्षा = यह दीक्षा मुमुक्षु साधक को तंत्रमार्ग में दी जाती है।

यात्रात्रय = गुरुयात्रा, देवयात्रा, और तीर्थयात्रा। (वीरशैव प्रदीपिका)

यूथेश्वरी = श्रीकृष्ण की नित्यप्रियाओं में से आठ प्रमुख सखियां जिनमें राधा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

योगलिंग = श्रीशंकरचार्य ने कैलास से लाये हुए पांच लिंगों में से एक। इसकी स्थापना उन्होंने कांचीवरम् के

कामकोटिपीठ में की है।

योजक आगम = २८ आगमों में से एक शैव आगम।

रसिक संप्रदाय = निंबार्काचार्य द्वारा स्थापित भागवत संप्रदाय की संज्ञा।

रात्रिसूक्त (पौराणिक) = दुर्गासप्तशती या देवीमाहात्म्य ग्रंथ के प्रथम अध्याय के ७१ से ८७ इन सत्रह मंत्रों की संज्ञा।

रासपंचाध्यायी = श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध के अन्तर्गत २९ से ३३ तक अध्याय। यह पंचाध्यायी भक्तिरसपूर्ण है। वैष्णवों का यह प्रिय काव्य है।

रुद्र = कन्या-संभोग करनेवाले प्रजापति को दण्ड देने के लिये सभी देवों के उग्र अंश से निर्मित भीषण देवता। शैवों के अष्ट भैरवों में एक भैरव।

रौरवागम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

लकुलीश = एक प्राचीन शैव संप्रदाय।

लक्ष्मीत्रय = श्रीदेवी, भूदेवी और दुर्गा। (इसीको त्रिरूपा लक्ष्मी कहते हैं।)

लक्ष्मी के दशरूप = सुबुद्धिदा, सुखकारिणी, सर्वसंपत्तिदा, इष्टभोगदा, लक्ष्मी, कांतिदा, दुःखनाशिनी, पुत्रप्रदा, विजया, और धर्मदायिनी। दशादित्यव्रत में इन रूपों में लक्ष्मी की पूजा होती है।

ललितागम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

लिंगचक्रवर्ती = श्रीशैल के मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिंग की संज्ञा।

वचन साहित्य = वीरशैव सम्प्रदाय का साहित्य।

वज्रवाहनिका (या वज्रेश्वरी विद्या) = एक प्राचीन गूढविद्या। रणांगण में शत्रु का नाश करने हेतु इस का प्रयोग होता था। इस में मंत्रजप तथा हवन से वज्र सिद्ध किया जाता था और युद्ध के समय विजय के निमित्त उसे राजा को दिया जाता था।

वन = वन में जलाशय के पास निवास करने वाला दसनामी संन्यासी (मठाम्नाय)

वर्णदीक्षा = आगमोक्त १२ दीक्षाओं में से एक।

वर्णमंडल = ५० पंखुडियों की कमलाकृति में अ से ह तक ५० वर्ण (आदि अन्त में ॐ और नमः सहित) लिख कर बनाया गया एक प्रतीक। शैव समाज में वर्णमंडल की पूजा ही शिवपूजा मानी जाती है।

वस्तुन्यास = मंदिर में मूर्ति स्थापना करते समय अष्ट दिशाओं में रत्न, धान्य, धातु, सुगंधिद्रव्य आदि पदार्थ भूमि में गाड़कर रखे जाते हैं। यही 'भूमिन्यास' विधि है।

वातुलागम (परागम) = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

वामदेव = आगमान्त शैव संप्रदाय की उपास्य सदाशिवमूर्ति के पांच मुखों में से एक।

वामाचार = तंत्रशास्त्रोक्त ७ आचारों में से पांचवां आचार धर्म। देखिये आचारसप्तक। वामाचारी रजस्वला के रज की और कुलस्त्री की पूजा करते हैं।

वामाचार = एक शक्तिपूजक तांत्रिक आचारमार्ग। इसमें मद्य, मांस, मैथुन, आदि पंच म-कारों का प्रत्यक्ष सेवन होता है।

वायुलिंग = आंध्र में कालहस्ती क्षेत्र का शिवलिंग

वाराणसी क्षेत्र = गंगा के तीर पर वरुणा और असी नदियों के बीच का क्षेत्र। इसी क्षेत्र में विश्वेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग (१२ ज्योर्तिलिंगों में एक) प्रकट हुआ है।

विजयागम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम

विमलागम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

विष्णुगायत्री = वैष्णव संप्रदाय का गायत्री मंत्र। इस मंत्र का उच्चारण करते हुए वैष्णव गोपीचंदन लगाते है।

वृद्धासरस्वती = कालिका पुराणोक्त सरस्वती के ६४ रूपों में से एक तांत्रिक स्वरूप

वैखानस आगम = वैष्णवागमों का एक भेद। यह वेदानुकूल है।

वैष्णवागम = वेदानुकूल आगम। इसके दो भेद – वैखानस और पांचरात्र।

व्यासकूट = कर्नाटक के दो वैष्णव भक्तसंघों में से एक की संज्ञा। दूसरा संघ है दासकूट।

व्रात = कठोर व्रत का पालन करने वाले लोग। व्रातपति, गणेशजी का एक विशेषण है।

शक्ति (विष्णु की) = ऐश्वर्यशक्ति, माधुर्यशक्ति, ह्लादिनी शक्ति, सामर्थ्यशक्ति, सिद्धशक्ति

शक्तिपीठ = दक्षयज्ञ में दग्ध सती के देह के विष्णु भगवान द्वारा खंडित अवयवों से संबंधित स्थान। शक्तिपीठ ५१ स्थानों में स्थापित हैं। अपर संज्ञा – महापीठ।

शठकोपाचार्य = आन्ध्रस्थित अहोबिल क्षेत्र के रामानुज संप्रदायी पीठ के प्रमुख आचार्य की उपाधि।

शाकिनी = (१) अभिचार कर्म करने वाली स्त्री। (२) कुमारिका का पिशाचरूप।

शाक्तागम = आगमों के तीन भेदों में से एक। वैदिक आगमों में इसकी गणना होती है।

शारदा पीठ = आद्य शंकराचार्य द्वारा द्वारकाक्षेत्र में स्थापित अद्वैतपीठ। उनके शिष्य सुरेश्वराचार्य इसके प्रथम आचार्य थे। विद्यमान आचार्य ७७ वें माने जाते हैं।

शालिग्राम = नेपाल की गण्डकी नदी में प्राप्त होने वाला, सुवर्णरेखांकित या चक्राकृतियुक्त पवित्र पाषाण। इसके ८९ प्रकार कहे गये हैं जिन्हे वासुदेव, हिरण्यगर्भ, श्रीविष्णु, प्रद्युम्न, अनन्त आदि संज्ञाएँ, वर्ण तथा आकृति के अनुसार दी जाती हैं।

शिखरदान = गौरी की प्रतिमा तथा गुड, इक्षुदण्ड आदि का दान।

शिलोंछवृत्ति = देखिये उंछवृत्ति।

शैव (चार संप्रदाय) = काश्मीर शैव, शैव सिद्धान्त, कारुणिक (सिद्धान्ती) और पाशुपत इन चार माहेश्वर संप्रदायों के आधारभूत सिद्धान्तों को शैवागम कहते हैं। तांत्रिक वाङ्मय में शैवागमों का अन्तर्भाव होता है।

शैव आगम के प्रमुख प्रकार = विजय, निश्वास, स्वायंभुव, आग्नेयक, भद्र, रौरव, मकुट, विमल, चंद्रहास, (या चंद्रज्ञान)

मुखयुग्बिंब (मुखबिंब), उद्गीत (प्रोद्गीत) ललित, सिद्ध, संतान, नारसिंह, सर्वोत्तर या (सर्वोक्ति), परमेश्वर, किरण और पर (या वातुल) । शैवागम के प्रमुख तत्त्व हैं – पशु (जीव), पति (शिव) और पाश (मल, कर्म और माया)

शैवाचार = तंत्रशास्त्रोक्त ७ आचारों में से एक। शैवाचारी पशुहिंसा करते हैं। (देखिये आचार सप्तक)

श्रीकुल = तांत्रिक साधकों का एक वर्ग। इस कुल में सुंदरी, भैरवी, बाला, बगला, कमला, धूमावती, मातंगी और स्वप्नावती इन आठों की गणना होती है।

श्रीचक्र = तंत्रमार्ग में यह आदिशक्ति का प्रतीक माना जाता है। श्रीचक्र की उपासना विशेष लाभदायक मानी जाती है। इसके अतिरिक्त तंत्रमार्ग में मायाचक्र, योगचक्र, तालुचक्र, दीप्तिचक्र, शांतचक्र, आनंदचक्र, स्थितिचक्र, संहारचक्र, शिवचक्र, ब्रह्मचक्र, महासुखचक्र, निर्वाणचक्र इत्यादि ३२ चक्र माने जाते हैं।

श्रीविद्या = एक तांत्रिक संप्रदाय की संज्ञा। तीन भेद **(१) कादि** – उपास्य देवता काली **(२) हादि** – उपास्य देवता -त्रिपुर सुंदरी, **(३) कहादि** – उपास्य देवता-तारा सरस्वती।

षडक्षर मंत्र = आगमान्त शैवसंप्रदाय का सर्व सामान्य मंत्र "ॐ नमः शिवाय"।

षण्मुद्रा = कापालिक संप्रदाय में माला, अलंकार, कुंडल, चूडामणि, भस्म और यज्ञोपवीत इन छह वस्तुओं की संज्ञा। कापालिक षण्मुद्रा धारण करते हैं।

संतानागम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

संन्यासी (दशनामी) = तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, गिरि पर्वत, सागर, सरस्वती, भारती, पुरी (मठाम्नाय)

संपद्विधि = चतुर्विध बहिरंग उपासना का एक प्रकार जिसमें अन्न, मन, प्राण, आदि तत्त्वों में ब्रह्मत्व की धारणा रखना। (शिवगीता)

संपुटित पाठ = विशिष्ट धर्मग्रंथ का पारायण करते समय प्रारंभ में और अंत में पारायण के ग्रंथ से संबंधित विशिष्ट मंत्र का १०८ बार जप करने पर उसे 'संपुटित पाठ' कहते हैं।

संवीत = दोनोन कंधों पर रखा गया यज्ञोपवीत (देखिये निवीत)

सदाशिवमूर्ति = आगमान्त शैव संप्रदाय की उपास्य शिवमूर्ति। इसके पंचमुख = सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान।

सद्योजात = आगमान्त शैव संप्रदाय की उपास्य सदाशिवमूर्ति के पंचमुखों में से एक।

सप्त ऋषि = ब्रह्मर्षि, देवर्षि, महर्षि, परमर्षि, काण्डर्षि, श्रुतर्षि, और राजर्षि

सबीज दीक्षा = तांत्रिकों की निर्वाण दीक्षा का एक प्रकार। यह दीक्षा समर्थ तथा विद्यावान् शिष्य को दी जाती है। इस दीक्षा से शिष्य का 'अप्राकृत जन्म' होता हैं।

समय दीक्षा = तंत्रमार्ग के अनुसार इस सामान्य दीक्षा में गुरु अपने शिष्य को रुद्रपद पर स्थापित करता है और शिष्य के मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देता है। यह दीक्षा लेनेपर समयधर्म का पालन आवश्यक माना है। समय धर्म के पालन को ही 'दासमार्ग' कहते हैं। दीक्षा प्राप्त होने पर गुरुशुश्रूषा, देवपूजा, आदि का अधिकार साधक को प्राप्त होता है। दो भेद = **कर्मदीक्षा और ज्ञानदीक्षा।**

समयाचार = कौलाचार जिसका गौडीय शाक्त संप्रदाय में पालन होता है। इसमें बहिर्योग का महत्त्व होता है। समयाचार में अन्तर्योग तथा पंच मकार (मद्य, मदिरा आदि) के प्रतीकात्मक अर्थ ग्राह्य माने जाते हैं। कौलाचार के प्रवर्तक, अभिनवगुप्ताचार्य और समयाचार के प्रवर्तक, शंकराचार्य माने जाते हैं।

सरस्वती = (१) सायंकालीन गायत्री देवी की संज्ञा। (२) स्वरज्ञान में निपुण एवं कवीश्वर (३) दशनामी संन्यासी (मठाम्नाय) तांत्रिकों की अष्टतारा देवताओं में एक।

संवर्गविधि = बहिरंग उपासना के चार प्रकारों में से एक जिसमें अनेक देवताओं में एकत्व की धारणा होती है। (शिवगीता)

सर्वराजेन्द्रमुद्रा = देखिये अंजलिमुद्रा।

सर्वोदय = महात्मा गांधी और विनोबा भावे द्वारा प्रतिपादित एक अभिनव मत या तत्त्वज्ञान। अहिंसानिष्ठ, जातिपंथ आदि भेदरहित तथा शोषणमुक्त समाज की निर्मिति, सर्वोदयवाद का उद्देश्य है। कर्मयोग, भगवद्भक्ति और पंचशील का समन्वय इस मत में होता है।

सहजिया = एक सिद्ध संप्रदाय।

सहजिया वैष्णव = चैतन्य मत का एक उपसंप्रदाय। इस संप्रदाय में 'परकीया भक्ति' की साधना का विशेष महत्त्व है। राधा आदि गोपिकाओं की कृष्णप्रीति परकीया भक्ति का उदाहरण है।

सहस्रागम = २८ आगमों में से एक शैवागम

सूर्यासावित्री = पुराणोक्त प्रजापति की धर्मकन्या।

सागर = सागर के समान गंभीर वृत्ति का ज्ञानसंपन्न दशनामी संन्यासी (मठाम्नाय)

सामर्थ्यशक्ति = वल्लभाचार्य की पुष्टिमार्गीय परिभाषा में गोपियाँ श्रीकृष्ण की सामर्थ्यशक्ति कही जाती है।

सावित्री = मध्याह्न की गायत्री देवता की संज्ञा।

सिद्धविद्या = देखिये विद्या, शाक्त देवता

सिद्धागम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

सिद्धांताचार = तंत्रशास्त्रोक्त ७ आचारों में से एक। सिद्धान्ताचारी नित्य देवपूजा में रत रहता है। (देखिये आचार सप्तक)

सुखशायी पंचक = अगस्ति, माधव, मुचुकुंद, कपिल, और आस्तीक। सुख से सोने वाले इस पंचक का निद्रा के पूर्व स्मरण करते हैं।

सुप्रभ (या सुप्रभेद) आगम = २८ आगमों में से एक शैवागम।

सूक्ष्मागम = २८ आगमों में से एक शैवागम

सुमेरु = जपमाला का मध्यमणि।

स्वांगाश्रित कर्म = (तीन प्रकार) = पुण्य, पाप और मिश्र। इस प्रकार के कर्म का स्वतः अस्तित्व होता है और इसके कर्ता को सुख, दुःख या मिश्र संवेदना का अनुभव आता है। अनुभव से ही कर्म के स्वरूप का अनुमान होता है।

स्वांगभुवागम = २८ आगमों में से एक रौद्रिक आगम।

स्वेच्छाप्रारब्ध कर्म = प्रारब्ध कर्मों का एक प्रकार। जीवात्मा को स्वयं इस प्रकार के कर्मों के फल का उपभोग पाने की इच्छा होती है।

हयग्रीव = एक वैष्णव तांत्रिक देवता।

हयपंचमी = चैत्रशुद्ध पंचमी। इस तिथि को मत्स्यावतार की पूजा का व्रत होता है। मत्स्यावतार की तिथि है- चैत्र शुद्ध प्रतिपदा।

हविष्यान्न = चांवल, मूंग, यव, तिल, मटर, गेहूं, सैन्धव, नमक, गोदुग्ध, गोघृत पनस, आम, नारियल, केला इत्यादि पदार्थ यज्ञ में उपयुक्त (हविष्य) पवित्र माने गये हैं। चातुर्मास्य में हविष्यान्न का सेवन उचित माना है।

हंससंप्रदाय = श्रीनिंबार्कद्वारा प्रवर्तित वैष्णव संप्रदाय।

हाटकेश्वर = सप्तपातालों के अधिष्ठाता ईश्वर (तंत्रशास्त्र)।

ह्लादिनी शक्ति = निंबार्क के हंससप्रदाय की परिभाषा में गोपियाँ श्रीकृष्ण की ह्लादिनीशक्ति कही जाती हैं।

* * *

(वर्ग - ७) – ज्योतिष शास्त्र परिभाषा

अंगविद्या = दैवज्ञ को प्रश्न पूछने वाला, अपने शरीर के जिस विशिष्ट अंग को स्पर्श करते हुए प्रश्न पूछता है, उस अंग के आधार पर प्रश्नकर्ता के प्रश्न के उत्तर जानने की विद्या। अंगविद्या में शरीर के १९ अंग पुरुषसंज्ञक, १५ अंग स्त्री-संज्ञक और १४ अंग नपुंसकसंज्ञक कहे जाते हैं। अंग के स्पर्श से प्राणियों के शुभाशुभ फल जानने की विद्या। अंगविद्या में "पुरुष" = संज्ञक अंग को स्पर्श करते हुए पूछे गये प्रश्नों के उत्तर शीघ्र फलप्रद होते हैं। स्त्री- संज्ञक अंग को स्पर्श करते हुए प्रश्न के उत्तर का फल विलंब से फलप्रद होता है और नपुंसक संज्ञक अंग को स्पर्श करते हुए किये गये प्रश्न के उत्तर निष्फल होते हैं।

अंधनक्षत्र = धनिष्ठा, पुष्य, रोहिणी, पूर्वाषाढा, विशाखा, रेवती, उत्तरा फाल्गुनी इन नक्षत्रों की संज्ञा।

अंहसस्पति = वाजसनेयी संहिता के अनुसार अधिक मास की संज्ञा (वा. सं. ७-२३; २२-३०)

अंहस्पतिः = जिस मास में संक्रांति नहीं होती अथवा दो संक्रांतियाँ आती हैं ऐसे संसर्प (लौंद का महीना, जो क्षयमास वाले वर्ष में होता है)। अंहस्पति और अधिमास (या मलमास) निंद्य माने जाते हैं। इस काल में कोई धार्मिक विधि नहीं की जाती। (पुरुषार्थ चिन्तामणि)

अग्निदेवा = कृत्तिका नक्षत्र की संज्ञा।

अग्निराशि = देखिये धनुराशि।

अग्रहायन = संवत्सर का पहला महीना। मार्गशीर्ष का अपरनाम। (हायन = संवत्सर, वर्ष)

अजवीथी = आकाशस्थ शिशुमार नक्षत्रों के उपर से दक्षिण की ओर का मार्ग। इसमें मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा इन तीन नक्षत्रों का अन्तर्भाव होता है। पितृयाण मार्ग इसके दक्षिण में माना गया है। (भागवत पु. ५-२३-५)

अतिचार = राशिभोग का नियतकाल समांप्त होने के पहले ही भौम (मंगल) आदि पांच ग्रहों का अग्रिम राशि में प्रवेश होना। ग्रहों का पूर्वराशि में प्रवेश को 'वक्रातिचार' कहते हैं। गुरु ग्रह के अतिचार से अवर्षण आदि आपत्तियां आती हैं।

अत्यन्तमहती = श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी को बुधवार होने पर उस तिथि को प्रस्तुत संज्ञा प्राप्त होती है। (पुरुषार्थ चिन्तामणि)

अधिकमास = (अधिकमास, मलमास, पुरुषोत्तम मास) – प्रत्येक चांद्रमास में एक सौर संक्राति होती है। किन्तु जब दो सौर संक्रांतियों के बीच एक संपूर्ण चांद्रमास होता है तब उसे अधिक मास कहते हैं। ३२ या ३३ चांद्र मासों के बाद एक अधिक मास होता है जिससें सौर मासों से चांद्र मासों की संगति होती है। चैत्र, ज्येष्ठ, श्रावण १२, आषाढ १८ भाद्रपद २४, आश्विन १४१ और कार्तिक ७०० वर्षों के बाद अधिक मास होता है। कार्तिक से चार महीनों तक अधिक मास नहीं होते। सौर (आर्तव) और चान्द्र (पार्वण) वर्षों की कालमर्यादा में होनेवाले अंतर में मेल लाने के लिए 'अधिक' मास की कल्पना की गई हैं। जिस चांद्रमास (शुक्ल प्रतिपदा से अमावस्या तक) में रवि की संक्रान्ति होती नहीं उसे अधिमास, अधिक मास या पुरुषोत्तम मास कहते हैं। (जिस वर्ष में क्षयमास होता है उस वर्ष में दो 'अधिमास' होते हैं। प्रथम अधिमास को '**संसर्प**' और द्वितीय को **अंहस्पति** कहते है।

अधिदिन = बढ़ा हुआ चांद्र दिवस।

अधिवत्सर = चांद्र संवत्सर में जब मध्यम मान से गुरु (ग्रह) की संक्रांति नहीं होती तब उसे अधिवत्सर कहत हैं।

अधोमुख नक्षत्रगण (कुल संख्या ९) = आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वा, पूर्वाषाढा, पूर्वा भाद्रपदा और शततारका। ये नक्षत्र अशुभ माने जाते है।

अधोमुख नक्षत्र = मूल, आश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, पूर्वा, भाद्रपदा, मघा और भरणी।

अनुमति = शुक्ल चतुर्दशी युक्त पौर्णिमा तिथि। अर्थात् इस पौर्णिमा में चंद्रमा की एक कला नहीं प्रतीत होती

अनुराधा = अश्विनी, भरणी, कृत्तिका आदि २७ नक्षत्रों में १७ वां नक्षत्र। आषाढ की पूर्व रात्रि में दक्षिण दिशा में जो वृश्चिक के आकार का तारका पुंज दिखाई देता है उसके मस्तिष्क स्थान में अनुराधा का दर्शन होता है। मित्र इस नक्षत्र की देवता है।

अनुवत्सर = युग के अंतर्गत पांच संवत्सरों में चौथा वर्ष। वत्सरों (वर्षों) की कुल संख्या ६० मानी है। इनमें प्रारंभ से क्रमशः पांच पांच वत्सरों के संघ को **'युग'** कहते हैं। इन पांच वर्षों के क्रमशः नाम हैं – **संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, 'अनुवत्सर'** और **इद्वत्सर**।

अपराह्ण = दिन के पांच भागों में चौथा भाग या दिन का उत्तर भाग। सूर्योदय से १८ घटियों के बाद का समय। पितृकार्यों के लिये अपराहण प्रशस्त होता है। (मनु. ३-२७८)

अमृता = सूर्य की पर्जन्यदायक विशिष्ट नाड़ियाँ। इन नाड़ियों से सूर्य जल का शोषण करता है और वही पर्जन्यरूप में बरसता है। (ब्रह्माण्ड पुराण २-२४-४७)।

अभिजित् = एक नक्षत्र जिसकी तीन ताराएँ होती हैं। मध्याह्नपूर्व एक घटिका और मध्याह्नोत्तर एक घटिका का समय अभिजित मुहूर्त होता है। अभिजित् नक्षत्र क्रांतिवृत्त की उत्तर दिशा में बहुत दूर होता है किन्तु क्रांति वृत्त से उसका कोई संबंध नहीं हैं।

अभ्रपिशाच = राहु ग्रह की उपाधि।

अमा = चन्द्रमा की सोलहवीं कला।

अमापर्व = नूतन चन्द्रमा का दिन।

अमावसु = पितृगणों में एक संयमी पितर। मास की अंतिम

तिथि 'अमावास्या' इसीके नाम से संबंधित है। अमावास्या (या अमावस्या सभी पितरों की प्रियतिथि मानी जाते है।

अमावस्या (अमावास्या, अमावसी, अमावासी, अमामती, अमामासी) = वह समय जब सूर्य और चंद्र संयुक्त से रहते हैं। (सूर्यचन्द्रमसोः परः संत्रिकर्ष। गोभिल सूत्र) इस तिथि में चंद्र और सूर्य का एक नक्षत्र में सहवास (अमा = सह) होता है। यह अशुभ तिथि मानी जाती है। सोमवार की अमावस्या **'सोमवती'** कहलाती है। भाद्रपद की अमावस्या को **'सर्वपित्री'** कहते है।

अमोघ = सूर्य के उदय या अस्त के समय में दीर्घाकार दिखने वाले सूर्य किरणों की संज्ञा।

अमृतसिद्धि योग = एक शुभ सूचक दिन नक्षत्र योग। मूल, श्रवण, उत्तराभाद्रपदा, कृत्तिका, पुनर्वसु, पूर्वा और स्वाती ये सात नक्षत्र, क्रमशः रविवार से शनिवार तक किसी दिन होने पर यह योग माना जाता है। **शुभयोग** = रविवार + हस्तनक्षत्र। गुरु + पुष्य.। बुध + अनुराधा.। शनि. + रोहिणी.। सोम. + मृगशीर्ष। शुक्र + रेवती। मंगल + अश्विनी। विशिष्ट तिथि को ये अशुभ योंग होते है। **अशुभ योग** = पंचमी को रवि + हस्त। सप्तमी को मंगल + अश्विनी। षष्ठी को सोम+ मृगशीर्ष। अष्टमी को बुध + अनुराधा दशमी को शुक्र + रेवती + नवमी को गुरु + पुष्य.। एकादशी को शनि. + रोहिणी।

अरुणोदय = पूर्व दिन के सूर्योदय से ५७ वीं घटिका का समय (सप्तपंचारुणोदयः)

अयन काल = उत्तरायण और दक्षिणायन का संधिकाल।

अयनांश = संपात गति के कारण अयनांश माने जाते हैं। निरयन गणना का आरंभस्थान निःशर रेवती योगतारा मानी गया है। वहां से सायन मेष संपात तक के अंशात्मक अंतर को अयनांश कहते हैं। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार यह अंतर पूर्व और पश्चिम की ओर २७ अंशों से अधिक नहीं बढ़ता। रेवती योगतारा पर संपात होने पर अयनांश शून्य होता है। (संपात = पूर्व-पश्चिम आंदोलन गति)

अयन = सूर्य का उत्तर या दक्षिण की ओर गमन। दो विभाग = दक्षिणायन = उत्तर से दक्षिण की ओर गमन। इसका प्रारंभ आषाढ (दिनांक २२ जून) से होता है। (२) उत्तरायण = दक्षिण से उत्तर की ओर गमन। इसका प्रारंभ पौष (२२ दिसंबर) से माना जाता है। मृत्यु के लिये उत्तरायण शुभ और दक्षिणायन अशुभ माना जाता है।

अवकडहा चक्र = फल ज्योतिषी वधू-वर संबंध का औचित्य इस चक्र के आधार पर देखते है। इस चक्र में मंडलाकृति ८ कोष्टक होते हैं जिन में क्रमशः नक्षत्रचरण, नाडी, योनि, गण, नक्षत्र, राशिवर्ण, राशिस्वामी, और राशि का निर्देश होता है। पंचांग में यह चक्र दिया जाता है।

अवम दिन = (तिथिक्षय) = एकही दिन में दो तिथियों की समाप्ति का दिन। शुभ कार्यों के लिये यह दिन वर्जित है।

अवान्तर दिशा = पूर्व, पश्चिम आदि चार दिशाओं की मध्यवर्ती, आग्नेयी, नैर्ऋती, वायवी और ऐशानी नामक चार दिशाएँ।

अशुभग्रह = शनि, मंगल, राहु और केतु।

अशुभतिथि = (१) शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पंचमी तक पांच तिथियाँ। इसकी क्रमशः नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा संज्ञा है। (२) कृष्ण पक्ष की एकादशी से अमावस्या तक पाँच तिथियाँ। इनकी भी नन्दा, भद्रा आदि संज्ञाएं हैं।

अश्लेषा (या आश्लेषा) = ९ वाँ नक्षत्र जिसमें पाँच तारकाएं होती हैं।

अश्लेषा-भू (भव। ज) = केतु ग्रह।

अश्विनी = तीन तारकाओं का अश्वसदृश एक नक्षत्र। अश्वकान्ता नामक छंद की देवता। २७ नक्षत्रों की गणना का आरंभ अश्विनी से होता है।

अष्टका = पौर्णिमा के पश्चात् आने वाले (वद्य पक्ष के) सप्तमी, अष्टमी और नवमी तिथि के दिन।

अष्टघटित (या घटिताष्टक) = वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रह, गण, भकुट, (सत्कूट) और नाड़ी। इनकी यथाक्रम १. २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ संख्या मानी जाती है; जो कुल मिलाकर ३६ होती है। १८ से अधिक गुणों का मेलन विवाह के लिये ग्राह्य माना जाता है।

अष्टमस्थान = जन्मकुंडली में यह स्थान मृत्युसूचक माना जाता है।

अष्टयोगिनी = मंगला, पिंगला, धन्या, भ्रामरी, भद्रिका, उलका, सिद्धा और संकटा। ज्योतिष मतानुसार इनके द्वारा शुभ या अशुभ फल प्राप्त होता है।

अहोरात्र = ३० मुहूर्तों का कालावधि। मुहूर्त = १ घंटा + १२ मिनटों की कालावधि)

आकाशगंगा = आकाश में प्रसृत तेजोमय मार्ग, (जिसे शतपथ और तैतिरिय ब्राह्मण में 'अर्यम्णः पन्थाः' कहा है। (तै.ब्रा. १-७-६-६) शत. ब्रा. ५-३-१-२)। इस तेजोमय प्रवाह में ४० अब्ज तारों का अस्तित्व माना जाता है, जिनमें सूर्य भी एक है।

आग्नेय मण्डल = पुष्य, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मघा, पूर्वाभाद्रपदा, पूर्व फल्गुनी इन सात नक्षत्रों के समूह की संज्ञा।

आग्रहायणी = मार्गशीर्ष मास की पौर्णिमा।

आदित्य व्यूह = कालस्वरूप बारह आदित्य तथा उनके विश्वसंसार में सूक्त-गान करने वाले ऋषि, नृत्य करने वाले गंधर्व-अप्सरा, नैर्ऋत और अग्रगामी वालखिल्य इनका समूह। (भागवत पु. १२-११)

आनंदयोग = बुधवार को हस्तनक्षत्र का होना।

आप्य (नक्षत्र) = पूर्वाषाढा नक्षत्र की अपरसंज्ञा।

आर्तव वर्ष = देखिए सौर वर्ष।

आर्द्रा = अश्विनी, भरणी आदि २७ नक्षत्रों में छठा नक्षत्र, जो मृग और पुनर्वसु के मध्य में होता है।

आषाढ = पूर्वाषाढा या उत्तराषाढा नक्षत्र से युक्त चैत्रादि में से चौथा तथा ग्रीष्म ऋतु का द्वितीय मास। इस मास में सूर्य का कर्क-संक्रमण होता है। दक्षिणायन के प्रारंभ का मास।

आश्लेषा (आधेया) = २७ नक्षत्रों में से ९ वां नक्षत्र। इसकी पांच तारकाएं पुष्य नक्षत्र की दक्षिण के ओर होती हैं। इसकी देवता सर्प है।

आश्वयुज = आश्विन मास से संबंधित। आश्वयुजी = आश्विन मास की पूर्णिमा।

आश्विन = आश्विनी नक्षत्र जिस पौर्णिमा के समय होता है ऐसा महीना। शरद् ऋतु का प्रथम तथा चैत्रादि से सातवां महीना। इसी मास में सूर्य का संक्रमण सातवीं तुला (राशि) में होता है। इसीको **तुलामास्** तथा **'इष'** भी कहते है।

आषाढी योग = आषाढी पौर्णिमा को उत्तराषाढा नक्षत्र में चंद्र का अवस्थान।

इडावत्सर (या इद्वत्सर) = पंच संवत्सरात्मक युग का तीसरा संवत्सर। (भागवत पु. ३-११-१४)

इन्द्रमण्डल = अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा और अनुराधा, इन सात नक्षत्रों के समूह की संज्ञा।

इल्वलाः = मृगशिरा नक्षत्र के ऊपर स्थित पांच तारकाएं

ईक्षणिक = ज्योतिषी, भविष्यवेत्ता।

उग्रनक्षत्र = पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वभाद्रपदा, भरणी और मघा इन पांच नक्षत्रों की संज्ञा। इनमें घातक कर्म सफल होते हैं।

उच्च स्थान (ग्रहों के) = सूर्य-मेष राशि। चंद्र-वृषभ। मंगल-मकर। बुध-कन्या। गुरू-कर्क। शुक्र-मीन। शनि। तुला। (देखिये- नीच स्थान) मिथुन, सिंह, धनुस् और कुंभ इन चार राशियों में ग्रहों की उच्च-नीच स्थिती नहीं मानी जाती)

उत्तरा फाल्गुनी = २७ नक्षत्रों में १२ वां नक्षत्र जो सिंह राशि के पुच्छस्थान में होता है। यह एक शुभ नक्षत्र है।

उत्तराभाद्रपदा = २७ नक्षत्रों में २६ वां नक्षत्र। यह मीन राशि में होता है। यह शुभ नक्षत्र है।

उत्तरायण = मकर, कुम्भ, मीन, मेष, वृषभ, और मिथुन इन छह राशियों में सूर्य के यथाक्रम अवस्थान का काल। उत्तरायण में मरण प्रशस्त माना जाता है।

उत्तराषाढा = २७ नक्षत्रों में से २१ वां नक्षत्र जिसका प्रथम चरण धनुराशि में और अन्य तीन चरण मकर राशि में होते हैं।

उत्पात = अतिवृष्टि, उल्का, दण्ड, परिवेष, ग्रहण, परिधि, रजोनीहार, दिग्दाह, भूकम्प और गन्धर्वनगर। ये सभी भावी अशुभ के सूचित करते हैं।

उत्पात योग = यह एक अशुभ सूचक योग है। विशाखा, पूर्वाषाढा, धनिष्ठा, रेवती, रोहिणी, पुष्य और उत्तरा ये सात नक्षत्र, क्रमशः रविवार से शनिवार तक किसी वार को आंने पर यह योग माना जाता है।

उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी = युगों का कालविभाग।

उपग्रह = मुख्य ग्रह की प्रदक्षिणा करने वाला ग्रह। उदा. चंद्र पृथ्वी का उपग्रह है।

उल्का = (१) वराहमिहिर के मतानुसार स्वर्ग में शुभ फल भोगकर नीचे गिरते हुए प्राणियों का स्वरूप। (२) लोगों की परीक्षा कर के, शुभाशुभ फलज्ञान के लिए, लोकपालों द्वारा छोड़े गये अस्त्र (गर्ग आदि ज्योतिषाचार्यों का मत)। **पांच प्रकार** = धिष्ण्या, उल्का, अशनि, विद्युत् और तारा।

उषःकाल = (पंचपंच उषःकालः) सूर्योदय के पूर्व ५ घटिकाओं का अथवा प्रथम दिन के सूर्योदय काल से ५५ घटिकाओं का काल। (५७ घटिका अरुणोदय, ५८ घटिका प्रातःकाल और बाकी समय सूर्योदय काल)

ऊर्ध्वनक्षत्र = आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणी।

ऋतुप्रारंभ = सूर्यसंक्रांति का दिन। उदा. वसंत का प्रारंभ सूर्य का मीन राशि में प्रवेश होने पर होता है।

ऋतुमान –वसन्त = मीन तथा मेष राशि में सूर्य के अवस्थान का काल।

ग्रीष्म = वृषभ तथा मिथुन राशि में सूर्य के अवस्थान का काल।

वर्षा = कर्क तथा सिंह राशि में सूर्य।

शरत् = कन्या तथा तुला राशि में सूर्य।

शिशिर = मकर तथा कुम्भ राशि में सूर्य।

कंकणाकृति ग्रहण = सूर्यग्रहण के काल में चंद्रबिंब सूर्यमंडल के मध्यभाग के सामने आने से पृथ्वी पर कुछ विभाग में सूर्यमंडल कंकणाकृति (बीच में काला) दिखाई देता है। इस अवस्था को कंकणाकृति ग्रहण कहते है। यह प्रायः दस मिनट तक ही दीखता है।

कन्या = बारह राशियों में छठी राशि। उत्तरा नक्षत्र के तीन पाद तथा हस्त और चित्रा नक्षत्र के प्रथम दो पाद मिलाकर कन्या राशि मानी जाती है। यह दक्षिण दिशा की स्वामिनी है। बुध इसका स्वामी है।

कन्यागत = गुरू ग्रह का कन्या राशि में निवास का काल।

कपिलाषष्ठी योग = भाद्रपद वद्य षष्ठी, मंगलवार, हस्तनक्षत्र का सूर्य, रोहिणी नक्षत्र का चंद्र और व्यतीपात इन पांच योगों एकत्र होना। लाक्षणिक अर्थ- अतिदुर्लभ योग। यह योग ६० वर्षों में एक ही बार आ सकता है।

१) करण = चंद्र-सूर्य में ५ अंशों का अंतर = एक करण। सात करणों का एक चक्र होता है। एक मास में ८ पूर्णचक्र अर्थात् ५६ करण होते हैं। करणचक्र का प्रारंभ चैत्र शु. १ से उत्तरार्ध तक होता है।

२) करण =. पंचांग में निर्दिष्ट करणचक्रों की कुल संख्या ११ है। नाम – बव, बालव, कौलव, तैत्तिल, गरज, वणिज, विष्टि, (भद्रा या कल्याणी) चतुष्पाद, नाग, किंस्तुघ्न।

करिदिन = ग्रहण, अयनसंक्रांति, होली, वैशाखी, अमावस्या और प्रेतदाह इन दिनों का अपर दिन। यह शुभ कृत्यों के लिए वर्जित कहा गया है।

कर्क = मेषादि १२ राशियों में चौथी राशि। पुनर्वसु का चौथा चरण और पुष्य आश्लेषा सहित सवा दो नक्षत्रों की यह राशि होती है। चंद्र इसका स्वामी है। कर्क – संक्रमण से सूर्य के दक्षिणायन का प्रारंभ होता है।

कर्णप्रहर = सूर्यपुत्र कर्ण की सूर्योपासना का समय। सूर्योदय से साढे सात घटिका (३ घंटे)।

कला = (१) चंद्रमा का सोलहवां अंश, (२) राशि के तीसवें भाग का साठवां अंश। (ज्योतिष)

कलियुग = इसका प्रारंभ इ.पू. ३१०२ में माना जाता है। इस युग की वर्षसंख्या ४३२००० वर्षों की कही गई है। यह युग तमोगुण प्रधान है। इस में यज्ञ संस्था उत्सन्न होती है। दान तथा हरिभक्ति इस युग का धर्म है।

कल्प = पुराणों के अनुसार ब्रह्मा के एक अहोरात्र का कालमान (अर्थात् मानवों के ८६,४०,००० वर्ष) एक कल्प में २४ मन्वन्तर होते हैं। कल्पों की कुलसंख्या मत्स्यपुराण (अ.२८९) के अनुसार ३० है। उनके नामों में एकवाक्यता नहीं है।

कल्प = ब्रह्मा का एक दिन। १००० महायुग या दिव्य युग।

कल्पादि तिथि = चैत्र शुद्ध पंचमी।

काणयोग = एक अशुभ योग। ज्येष्ठा, अभिजित्, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, आर्द्रा, मघा, और चित्रा ये सात नक्षत्र, रविवार से शनिवार तक यथाक्रम आने पर यह योग माना जाता है।

कामद-आदित्यवार = मार्गशीर्ष शु. षष्टी का आदित्यवार।

कार्तिक = जिस मास की पौर्णिमा को सूर्यास्त के समय पूर्व क्षितिज पर कृत्तिका नक्षत्र (सात ताराकाओं का पुंज) का उदय होता है उसका नाम। कृत्तिका नक्षत्र युक्त पौर्णिमा का मास। इसमें सूर्य तुला-राशिस्थ होता है।

कालचक्र = (या ज्योतिष्चक्र) = दिन, ऋतु, मास, संवत्सर आदि क्रम से चक्र के समान प्रतीत होने वाले काल की एक रूपकात्मक कल्पना।

कालनिर्णय = व्यक्ति के जीवन में भावी घटनाओं के काल की निश्चिति करने की पद्धति। विविध प्रकार – विंशोत्तरी दशा अष्टोत्तरी और योगिनी दशा तथा ताजिक, वर्षप्रवेश, गोचरी, दिनवर्ष पद्धति इत्यादि प्रकारों से कालनिर्णय होता है।

कालपाशयोग = ज्योतिषशास्त्रोक्त एक संज्ञा। काल और पास, दक्षिण-उत्तर इत्यादि विरुद्ध दिशा में होते हैं। रात और दिन में उनके स्थान विरुद्ध होते हैं। जैसे दिन में उत्तर में काल तो दक्षिण में पाश होता है। रात में वे उसी दिन दक्षिण-उत्तर में होते हैं। उनका भ्रमण उत्तर, वायव्य, पश्चिम इस क्रम से होता हैं। वायव्य उत्तर, ईशान्य में काल और उनके उल्टे अंग में पाश का होना अति शुभ माना जाता है।

कालपुरुष = ज्योतिष शास्त्र की अपर संज्ञा।

कालपुरुष = शुभाशुभ फलित जानने के निमित्त शीर्ष, मुख, बाहु, हृदय आदि पुरुषदेह के १२ स्थानों पर राशियों की स्थापना।

कालावयव = युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त, घटी, पल, नाडी, प्राण और त्रुटि।

कुण्डली = ज्योतिष शास्त्र के अनुसार बारह राशि स्थानों में नवग्रहों की स्थापना से निर्मित जीवन का एक मानचित्र। दो भेद – राशि कुण्डली और लग्न कुण्डली। (अवांतर भेद – नवमांशकुंडली, द्वादशांश कुंडली, त्रिंशांश कुण्डली आदि)। कुण्डली के आधार पर फलज्योतिषी भविष्य कथन करते हैं। व्रतबंध, विवाह आदि विधियों के लिए शुभ-अशुभ भवितव्यता का अनुमान, जन्मपत्रिका में आलिखित कुण्डली देखकर होता है।

कुतुप = दिन के १५ मुहूर्तों में से आठवें मुहूर्त का समय।

कुंभ = बारह राशियों में परिगणित ग्यारहवीं राशि का नाम। धनिष्ठा नक्षत्र का उत्तरार्ध और पूर्वा तथा उत्तरा भाद्रपदा के तीन चरणों को मिलाकर यह राशि स्थिर होती है। शनि ग्रह इसका स्वामी है।

कुंभपर्व = १२ वर्षों के बाद गुरु मकर राशिस्थ और उसी अवधि में सूर्य मकर राशिस्थ होने पर प्रयाग में होने वाली तीर्थयात्रा-पर्व की संज्ञा। (अपर संज्ञा – कुंभमेला)

कुलिक = शुभकर्म के लिए निषिद्ध माना गया प्रत्येक दिन का विशिष्ट प्रहर। प्रायः दिन के अंतिम प्रहर का उत्तरार्ध और रात्र के प्रथम प्रहर का पूर्वार्ध।

कुहू = अमावस्या, जिसमें चंद्रकला पूर्णतया लुप्त होती हैं। चंद्रकला किंचित् दीखती है तब अमावस्या को **सिनीवाली** कहते है। (सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः - अमर कोश)

कूटगुण = विवाह के निमित्त वधू-वर के आठ गुणों का विचार होता है। (आठ गुण = वर्णगुण, वश्यगुण, योनि, नक्षत्र, ग्रह, गण, कूट, और नाडी)। वधू या वर **की राशि** से दूसरी राशि छठी या आठवीं होने पर **षडाष्टक कूट'** माना जाता हैं। दूसरी या बारहवीं हो तो द्विर्द्वादशकूट' और पांचवी या नौवीं होने पर 'नवपंचक कूट' माना जाता है। इन तीनों को **''दुष्कूट' कहते हैं।**

कूटसंक्रान्ति = मध्यरात्रि के बाद सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में संक्रमण।

कृतयुग = (या सत्य युग) चार युगों में प्रथम। रवि, चंद्र और गुरु एक राशि में आने पर इसका आरंभ माना गया है। चार हजार दिव्य वर्ष इसकी काल मर्यादा है। इस युग में हंस नामक एक ही मानव वर्ग होता है। (२) सुखपूर्ण शासन काल। (अपर नाम मालवगण युग) कृतयुग की वर्ष मर्यादा सत्रह लक्ष अठ्ठाईस हजार सौर वर्ष मानी जाती है।

कृत्तिका = अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में तीसरा नक्षत्र। अंबा, दुला, नितत्री, अभ्रयन्ती, मेघयन्ती, वर्षयन्ती नामक छह तारकाओं के पुंज का नाम। इसका प्रथम चरण मेष राशि में

और अंन्य तीन वृषभ राशि में होते हैं। वैदिक काल में यह प्रथम नक्षत्र माना जाता था।

केतु = नवग्रहों में से एक पापग्रह। यह एक राशि में १८ मास रहता है और उलटे क्रम से राशिचक्र में भ्रमण करता है। यह दृश्य नहीं है। (पृथ्वी और चंद्र के क्रांतिवृत्त के दो छेद (या पात) बिंदुओं को राहु और केतु कहते हैं।

केतुत्रय = केतु नामक ग्रह के तीन प्रकार – (१) भौम (पृथ्वी पर उत्पन्न); (२) आन्तरिक्ष (ग्रह-नक्षत्रों के स्थान से भिन्न स्थान में उत्पन्न), (३) दिव्य (आकाश में उत्पन्न)

केतु के विविध प्रकार = (१) सूर्य पुत्र (२५ प्रकार) २) अग्निपुत्र (२५ प्रकार), ३) यमपुत्र (२५ प्रकार), ४) भूमिपुत्र (२२ प्रकार); ५) चन्द्रपुत्र (३ प्रकार); ६) ब्रह्मपुत्र (एक मात्र)। अन्य प्रकार – शुक्रपुत्र (८४); शनिपुत्र (६०), बुधपुत्र (५०), मंगलपुत्र (६०), राहुपुत्र (३३), अग्निपुत्र (१२२), वायुपुत्र (७७), प्रजापतित्र पुत्र (८), ब्रह्मपुत्र (१०४); वरुण पुत्र (३२); कालपुत्र (९६); विदिशापुत्र (९)। इनके अतिरिक्त वसा, अस्थि, कपाल, रौद्र, आदि संज्ञावाले केतु होतु होते हैं।

केंद्र योग = एक उत्तम प्रवास योग। जन्मकुण्डली में लग्न से ४, ७, १०, स्थान को केंद्र कहते हैं। केंद्र में तथा लग्न से ३, ६, ९ और १० वीं राशियों में गुरु ग्रह का होना।

कोटि = राशिचक्र का तृतीयांश।

कोलंबवर्ष = (कोल्लम शक) केरल मे प्रचलित सौर वर्षगणना। इसमें मकर संक्रमण से वर्षारंभ होता है।

कौर्मकल्प = और पितृकल्प = ब्रह्मा की पूर्णिमा और अमावस्या के नाम।

क्रकचयोग = शनिवार से शुक्रवार, गुरुवार इत्यादि उलटे क्रम से जब तिथियों का क्रम, षष्ठी, सप्तमी, इस प्रकार होता है तब 'क्रकच' नामक योग होता है जो शुभ कृत्यों के लिए वर्जित माना गया है।

क्रूरायण = दक्षिणायन की अपर संज्ञा।

क्रोध = ६० वर्षों के संवत्सर चक्र में ३८ वे वर्ष की संज्ञा।

क्षण = (१) निमेष काल का चतुर्थांश। (२) मुहूर्त का १२ वां भाग (अर्थात् ३० कला या ४ मिनट)।

क्षयमास = दो सूर्य संक्रमणों से युक्त चांद्रमास की संज्ञा। प्रायः कार्तिक, मार्गशीर्ष, और पौष में से एक क्षय मास होता है। सौर और चान्द्र मास समकाल होने के कारण क्षयमास होता है।

क्षयमास = जिस चान्द्रमास (शुक्ल प्रतिपदा से अमावस्या तक का समय) में दो रविसंक्रान्तियां आती हैं उसे क्षयमास कहते हैं। क्षयमास कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौष इन तीन ही मासों में होता है।

क्षयमास = जिस वर्ष आश्विन अधिकमास होता है उस वर्ष पौष क्षय मास होता है। १४१ वर्षों के बाद आश्विन अधिक मास होता है। पौष क्षयमास (नष्टमास) होता है तब मार्गशीर्ष में प्रतिदिन दो प्रहर मार्गशीर्ष और आगे दो प्रहर तक पौष मान कर दोनों महीनों के धर्मकृत्य होते है।

क्षिप्र = एक काल विभाग।

खगोल शास्त्र = ज्योतिष शास्त्र की एक संज्ञा।

खग्रास ग्रहण = पौर्णिमा की रात में सूर्य, पृथ्वी और चंद्र एक सरल रेखा में आने के कारण जब पृथ्वी की घनच्छाया में चंद्रबिंब लुप्त होता होता तब वह **खग्रास चंद्रग्रहण** होता है। उसी प्रकार अमावस्या के दिन-समय में सूर्य, चंद्र और पृथ्वी एक सरल रेखा में आने के कारण चन्द्र की घनच्छाया से पृथ्वी के किसी भाग में सूर्य लुप्त सा होता है, तब वह **खग्रास सूर्यग्रहण** होता है। यह प्रायः आठ मिनट तक दीख सकता है।

खण्डग्रास ग्रहण = पौर्णिमा की रात में चंद्रबिंब का पृथ्वी की उपच्छाया से घनच्छाया में प्रवेश होते समय का ग्रहण। संपूर्णतया घनच्छाया में प्रवेश होने पर **'खण्डग्रास ग्रहण** कहा जाता है।

खण्डतिथि = सूर्योदय के समय होने वाली तिथि, दिन के मध्यभाग में खंडित होने पर, खण्ड तिथि कही जाती है।

खडष्टक (षडष्टक) = फल ज्योतिष के अनुसार कुण्डली में एक स्थान के ग्रह के बांई ओर से षष्ठ स्थान में जो ग्रह होता है, उसका प्रथम निर्दिष्ट ग्रह से बैर होता है। यही गणना दाहिनी ओर से करने पर वह स्थान अष्टम आता है। अतः छठे और आठवें स्थान के ग्रह से प्रथम निर्दिष्ट ग्रह का बैर होता है। षडष्टक (या षडाष्टक। खडाष्टक) योग महान बैर का द्योतक माना जाता है।

गजच्छाया पर्व = (१) भाद्रपदी अमावस्या को हस्तनक्षत्र सूर्य-चंद्रयोग। (२) कृष्ण त्रयोदशी को चंद्र का मघा नक्षत्र में और सूर्य का हस्त नक्षत्र में होना। (३) सूर्यग्रहण में यह पर्व होता है।

गण = ज्योतिष शास्त्र में जन्मनक्षत्र के अनुसार मनुष्य प्राणियों के गण (देव, राक्षस या मनुष्य) माने जाते हैं। विवाह निमित्त वधू-वरों की पत्रिका देखते समय उनके गण की भी अनुकूलता देखी जाती है।

गणक = शुभ-अशुभ ग्रहों के कारण प्राप्त भोगों का फल कथन करने वाला, फलज्योतिषी। राजा के अनुचरों में गणक को स्थान दिया जाता था।

गणमैत्री = जातक शास्त्र में अश्विनी, भरणी आदि सत्ताईस नक्षत्रों के देव, मनुष्य और राक्षस गण निर्धारित किए हैं। वधू-वरों का घटित देखते समय दोनों के गणों की अनुकूलता और प्रतिकूलता गणक देखते हैं। दोनों के समान गण, अथवा वर देवगणी व वधू मनुष्य गणी होना उत्तम गणमैत्री का लक्षण माना जाता है।

गणित स्कन्ध = ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त स्कन्ध के

अन्तर्गत एक विभाग।

गणिविद्या = जैन संप्रदाय के प्रव्राजन, सामयिक, आरोपण, उपस्थान, श्रुतोद्देशानुज्ञा, विहार इत्यादि कर्मों के लिए शुभ दिन, तिथि, ग्रहयोग आदि देखने की विद्या।

गंडयोग = तीन प्रकार – (१) तिथिगंड, (२) नक्षत्रगंड और (३) लग्नगंड। पूर्णा तिथि और नंदा तिथि (अर्थात् पंचमी और षष्ठी)। (देखिए- सिद्धिप्रद तिथि की संधिघटिकाएँ (अर्थात् पंचमी की अंतिम और षष्ठी की प्रथम घटिका) **'तिथि गण्डान्त'** कहलाती है। 'उसी प्रकार कर्क-सिंह, वृश्चिक-धनुस्, मीन-मेष, इनकी संधि की क्रमंश अंतिम और आदिम अर्ध-अर्ध घटिकाओं को **लग्न गण्डान्त** कहते हैं। गण्डान्तर योग अशुभ माने जाते हैं।

गण्डान्त = जातक शास्त्र में कथित एक अशुभ योग। तीन प्रकार – तिथिगण्डान्त, नक्षत्रगंडान्त, लग्नगण्डान्त।

गलग्रह तिथि = गला पकड़ने वाली अर्थात् अनिष्ट फलदायक तिथि। १, ४, ६, ७, ८, ९, १३, १४ पौर्णिमा और अमावस्या, ये दस तिथियाँ 'गलग्रह तिथियाँ मानी जाती हैं।

गुण = जातक शास्त्र में वधू-वरों की जन्मपत्रिका द्वारा ३६ गुणों का विचार होता है। वर्ण-१, वंश-२, तारा-३, योनि-४, ग्रह-५, गण-६, कूट-७ और नाडी-८, यह गुणों की संख्या है। कुल मिला कर वे ३६ होते हैं।

गुरु (या बृहस्पति) = ९ ग्रहों में पांचवा तेजस्वी ग्रह। यह एक राशि में १ वर्ष तक रहता है। सभी ग्रहों में यह 'गुरु' (याने आकारमान में बड़ा) है।

गुरुपुष्य योग = गुरुवार को पुष्यनक्षत्र का होना। इस योग पर सुवर्णक्रय करना लाभदायक माना जाता है।

गुरुबल = जन्मराशिसे २, ५, ७, ९, या ११ वें स्थान में गुरु ग्रह होना। गुरुबल की अनुकूलता उपनयन संस्कार में देखी जाती है।

गोचर फल = सूर्यचंद्रादि नवग्रहों के दैनंदिन संचार के कारण जन्मराशि में उनका जो स्थान होता है उससे अनुमानित शुभ-अशुभ फल।

गोचरी पद्धति = व्यक्ति के जीवन में उत्कर्ष-अपकर्ष का अनुमान करने की कालनिर्णय की पद्धति।

गोदोहन काल = मुहूर्त का आठवां भाग। (मुहूर्त = ४८ मिनिट का काल) अर्थात् छह मिनिट की अवधि। गाय का दोहन करने की लिये पर्याप्त काल।

गोरज (या गोधूलि) **मुहूर्त** = सूर्यास्त के पूर्व आधी तथा बाद की आधी घटिका मिलाकर होने वाला एक घटिका का समय। विवाह के लिए यह शुभ मुहूर्त माना जाता है। (इस संध्या समय में गोचर भूमि से गांव की ओर लौटने वाली गायों की चरणधूलि उड़ने के कारण यह संज्ञा निर्माण हुई)।

ग्रह = 'गृह्णाति गतिविशेषान्' इति, अथवा गृह्णाति फलदातृत्वेन जीवान्' इति। अर्थात् विशिष्ट गति का ग्रहण करने वाले या शुभाशुभ फल दोनों के द्वारा जीवों का ग्रहण करने वाले नवग्रहों- सूर्य, चंद्र मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु - इन नौ ताराओं की संज्ञा। (अर्वाचीन जातकशास्त्र में युरेनस (प्रजापति), नेपच्यून (वरुण) और प्लूटो (इंद्र), नामक तीन ग्रह अधिक माने जाते हैं।

ग्रहगति के ६ प्रकार = शीघ्र, मन्द, दक्षिण, उत्तर, नीच और उच्च।

ग्रहण काल = **(१) स्पर्शकाल** – सूर्य या चंद्र के ग्रहण के प्रारंभ का काल। **(२) मोक्षकाल** –ग्रहण की समाप्ति का काल।

ग्रहपरिवृत्ति संवत्सर = तमिळनाडू में प्रचलित एक काल गणना। इसमें ९० वर्षों का कालचक्र होता है और इस का प्रारंभ कलियुग ३०७९(ई.पू. २४) में होता है। (इ. पू. ३१०१ कलियुग का आरंभ माना जाता है। अतः सन १९९० में ५०९१ युगाब्द माना जाता है।)

ग्रहयुद्ध = आकाश मे संचार करने वाले ग्रहों के आच्छादन, परिधिस्पर्श, किरणसंयोग आदि कारणों से (१) भेद, (२) उल्लेख, (३) अंशुमर्दन, और (४) अपसव्य नामक चार प्रकार के युद्ध माने जाते हैं। इन ग्रहयुद्धों के कारण अशुभ फल दिखाई देते हैं।

ग्रहयोग के छह प्रकार = **(१) संवर्त** –(एक नक्षत्र में पौर (या नागर) ग्रह के साथ पापी ग्रहं मिलकर उनकी संख्या ४ या ५ होना)। (२) **संमोह** (एक नक्षत्र में पौर ग्रह के साथ केतु या राहु का होना)। **(३) समाज** (पौर ग्रह के साथ पौर और पापग्रह के साथ पाप ग्रह का होना)। **(४) कोश** (शनि या गुरु के संयोग में दूसरे ग्रह का आना)। **(५) सन्निपात** (एक ग्रह पूर्व और दूसरा ग्रह पश्चिम दिशा में उदित होकर दोनों का एक नक्षत्र में आना)। (६) **समागम** (उक्त पांच प्रकारों से भिन्न प्रकार से ग्रहों का समागम।

ग्रास दशक = ग्रहण काल में राहु द्वारा सूर्य और चन्द्र का ग्रास दस प्रकार से दिखाई देता है। उन दस प्रकार के ग्रासों की संज्ञाएँ – सव्य, अपसव्य, लेह, ग्रसन, निरोध, अवमर्दन, आरोह, आघात, मध्यतम और तमोऽन्त्य। ज्योतिष शास्त्र में इन ग्रासों के अन्यान्य फल बताये हैं।

घटिका पात्र = विवाहमुहूर्त का समय निश्चित करने के लिए उपयुक्त एक कालमापक पात्र। सच्छिद्र घटिका-पात्र जलपूर्ण पात्र में रखने पर जब पूर्ण होकर डूब जाता है तब संपूर्ण घटिका, मानी जाती है।

घबाड मुहूर्त= (१) एक शुभ मुहूर्त। सूर्यनक्षत्र, दिवस नक्षत्र, तिथि के अनुसार यह मुहूर्त निश्चित होता है।

घटिका = अहोरात्र का ६० वां विभाग। अपर संज्ञा –नाडी।

चतुर्युग = (१) कृतयुग = १७,२८,००० मानवी वर्ष
(२) त्रेतायुग = १२,९६,००० मानवी वर्ष
(३) द्वापर युग = ८,६४,००० मानवी वर्ष

(४) कलियुग = ४,३२,००० मानवी वर्ष

चन्द्रबल = दो पापग्रहों के बीच या पापग्रह से युक्त अथवा किसी पापग्रह से सातवें स्थान में होने पर, चंद्र अशुभ माना जाता है; किन्तु शुभ ग्रह के नवांश में, मित्रग्रह के नवांश में या गुरुदृष्ट होने से वह अशुभ होने पर भी शुभ माना जाता है। दूसरे मत के अनुसार – शुक्लपक्ष के आरंभ में चंद्रमा शुभ होने पर उस पक्ष में चंद्रबल माना जाता है। कृष्णपक्ष के आरंभ में चंद्र अशुभ होने पर, उस पक्ष में चंद्रबल माना जाता है। इसकी विपरीत अवस्था में चंद्रबल का अभाव माना जाता है।

चर नक्षत्र = स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका इन पांच नक्षत्रों की संज्ञा।

चर नक्षत्र = संचार के लिए उचित नक्षत्र – श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, स्वाती और हस्त।

चल करण = बव, बालव, कौलव, तैत्तिल, गर, वणिज और विष्टि- इन सात करणों की संज्ञा।

चान्द्र दिन = तिथिभोग्य काल की संज्ञा।

चांद्र नक्षत्र (या दिन नक्षत्र) = चंद्रमा के समीपवर्ती नक्षत्र।

चान्द्र मास = दिन प्रमाण $29^{1}/_{2}$। शुद्ध प्रतिपदा से अमावस्या तक या वद्य प्रतिपदा से पौर्णिमा तक का कालमान।

चान्द्र मास = (दो प्रकार) = (१) मुख्य – जो शुक्ल पक्ष की प्रतिपदासे अमावस्या तक होता है। यह नर्मदा के दक्षिण विभाग में प्रचलित है।

(२) गौण = कृष्णपक्षीय प्रतिपदा से पौर्णिमा को समाप्त होने वाला। यह नर्मदा के उत्तर भाग में प्रचलित है। मुख्य चान्द्रमास को **'अमान्त'** और गौण को **पौर्णिमान्त** कहते हैं।

चांद्र वर्ष = चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से फाल्गुन-अमावस्या तक ३५४ दिनों की कालावधि। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार चान्द्र वर्ष में ३५४ दिन, २२ घटिका, १ पल और २४ विपल होते हैं।

चांद्र वर्ष = १२ अमावस्याओं और पौर्णिमाओं से युक्त कालमान। यह पर्व (अमावस्या-पौर्णिमा) पर आधारित होने से इसे **पार्वण वर्ष** कहते हैं।

चित्रा = २७ नक्षत्रों में से १४ वां नक्षत्र। इस नक्षत्र के पहले दो चरण कन्या राशि में और दूसरे दो चरण तुला राशि में होते है।

चूडामणि योग = रविवार को सूर्यग्रहण या सोमवार को चंद्रग्रहण का होना। यह एक पुण्ययोग माना जाता है।

चैत्रमास = चांद्र संवत्सर का प्रथम मास। इसकी पौर्णिमा के आगे पीछे चित्रा नक्षत्र का उदय होने से यह मास चैत्र कहलाता है।

छायाशंकु = कालमापन का एक प्राचीन साधन। भूमि पर दंड की छाया की दिशा देखकर घटिका, पलं, आदि कालगणना होती थी। उसी डंडे को छायाशंकु कहते हैं।

जन्मपत्रिका = जन्मतिथि से एक महीने के बाद जन्मकालीन, तिथि, नक्षत्र, घटिका, पल, लग्न, ग्रहस्थिति, आदि का निर्देश करने वाली पत्रिका। इसमें जन्मकुंडली (लग्नकुण्डली) और राशिकुण्डली भी लिखी जाती है।

जन्मपत्रिका के १२ स्थान = (१ से १२ तक) (१) तनु (२) धन (३) सहज (४) सुहृत् (५) सुत, (६) रिपु (७) माया, (८) मृत्यु, (९) धर्म, (१०) कर्म, (११) आय, (१२) व्यय।

जन्मलग्न = जन्म के समय पूर्व क्षितिज पर सूर्योदय की राशि।

जयंतादित्यवार = उत्तरायण के आदित्यवार।

जया तिथि = तृतीया, अष्टमी, और त्रयोदशी तिथियों को 'जया' कहते हैं। ये तिथियां युद्ध कार्य में जय देने वाली मानी जाती हैं।

जयादित्यवार = दक्षिणायन के आदित्यवार।

जातक =. ज्योतिषशास्त्र के फलित स्कन्ध का एक भाग। इसमें जन्मकाल के आधार पर मानवों तथा अन्य प्राणियों के जीवन संबंधी सभी प्रकार के फल कहे जाते हैं।

जामित्र = एक मुहूर्तदोष जो विवाह के लिए अशुभ माना जाता है।

ज्येष्ठा = २७ नक्षत्रों में से १८ वां नक्षत्र। वैदिक संज्ञा, ज्येष्ठघ्नी। इन्द्र इस नक्षत्र की देवता है। यह नक्षत्र वृश्चिक राशि के अन्तर्गत होता है। इस नक्षत्र पर कृषिविषयक कार्य करना उचित माना है।

ज्योतिष = यज्ञ के कालविधान का एक प्राचीन शास्त्र। यह छह वेदांगों में नेत्ररूप वेदांग माना जाता है। **तीन भाग** – ऋग्वेद ज्योतिष, यजुर्वेद ज्योतिष और अथर्ववेद ज्योतिष।

ज्योतिष शास्त्र के त्रिस्कन्ध = (१) सिद्धान्त (या गणित) (२) संहिता और (३) होरा।

ज्योतिष के विविध सिध्दान्त = सूर्यसिध्दान्त, ब्रह्म स्फुट सिध्दान्त, पितामहसिद्धान्त, वेदांगज्योतिष, आर्यभट्टीय, ग्रहलाघव, ज्योतिर्गणित। भारतीय ज्योतिष शास्त्र में इन सिद्धान्तों का प्रचार है।

तन्त्रस्कन्ध = ज्योतिष शास्त्र के तीन स्कन्धों में से एक। इसमें गणित द्वारा ग्रहगति का निर्णय किया जाता है।

ताजिक = ज्योतिष शास्त्र के फलित स्कन्ध का एक भाग। इससे वर्षफल, मासफल आदि का ज्ञान होता है। यह शास्त्रज्ञान भारतीय विद्वानों ने यवनाचार्यों से ग्रहण किया। ताजिक शास्त्र के परिभाषिक शब्द फारसी भाषीय हैं।

तिथि = चान्द्रमास का दिवस। चान्द्र मास २७ दिनों का माना जाता था। उस मास का तीसवां भाग तिथि होती है। चांद्र मास का ३० वा अंश। अथवा सूर्य और चंद्रमा में १२ अंशों का अंतर पड़ने का काल।

तिथि = पक्ष का १५ वाँ विभाग तिथि होती है। शुक्ल पक्ष में ''सूर्योदयव्यापिनी'' और कृष्ण पक्ष मे ''सूर्यास्तव्यापिनी'' तिथि ग्राह्य मानी जाती है। वस्तुतः तिथि २९.५ दिवसों का तीसवाँ भाग होती है। यह चान्द्रमान का एक दिन या चान्द्रमास का तीसवाँ

भाग होती है। चन्द्रमा को सूर्य से १२ अंश दूर जाने के लिए लगने वाला समय। चंद्रमा सूर्य की संपूर्ण ३६० अंश प्रदक्षिणाएं, , २९.५ दिनों में, करता है। उसमें १२ अंशों का अंतर जितने समय में पूर्ण होता है वह अवधि ही एक तिथि होती है। सूर्योदय के समय की तिथि उस संपूर्ण दिन की तिथि मानी जाती है। तिथि के क्षय तथा वृद्धि का निर्देश पंचांग में दिया जाता है।

तिथिक्षय = सूर्योदय के क्षण की तिथि को दिनतिथि मानना चाहिए इस संकेत के कारण तिथि का क्षय माना जाता है। उदा. बुधवार को सूर्योदय से १ घटिका १२ पल तक वद्य त्रयोदशी हो तो उस दिन की तिथि त्रयोदशी ही मानी जाती है। फिर १घटिका १२ पल से चतुर्दशी का प्रारंभ होने पर भी वह गुरुवार का सूर्योदय होने से पहले ही समाप्त होती है तब गुरुवार को अमावस्या मानी जाती है। अर्थात् बुधवार को त्रयोदशी और गुरुवार को अमावस्या आने के कारण वद्य १४ का क्षय माना जाता है। (देखिये अवमदिन)

तिथिगण्डान्त = गण्डान्त योग के तीन प्रकारों में से एक। पंचमी, दशमी, पौर्णिमा और अमावस्या इन तिथियों की प्रथम घटिका। (देखिये – गण्ड योग)

तिथिचक्र = प्रवास का मुहूर्त देखने के लिए उपयुक्त एक तिथिसारणी। इसमें पौष को प्रारंभिक मास माना जाता है। इस सारणी में फलज्योतिपी तिथि और प्रवास की दिशा का फल देखते हैं।

तिथिस्वामी = प्रतिपदा – ब्रह्म, २ विधाता, ३ विष्णु, ४ यम, ५ चन्द्र, ६ कार्तिकेय, ७ इन्द्र, ८ वसु, ९ सर्प, १० धर्म, ११ शिव, १२ सूर्य, १३ कामदेव, १४ कलि, पौर्णिमा-विश्वेदेव। अमावस्या-पितृगण (इसी प्रकार २७ नक्षत्रों तथा करणों के भी स्वामी कहे हैं।

तिथीश (या तिथिस्वामी) = प्रतिपदा- अग्नि। द्वितीया-ब्रह्मा। तृतीया-गौरी। चतुर्थी- गणेश। पंचमी- नाग। षष्ठी- कार्तिकेय। सप्तमी-सूर्य। अष्टमी-शिव। नवमी-दुर्गा। दशमी-यम। एकादशी-विश्वेदेव। द्वादशी-विष्णु। त्रयोदशी - कामदेव। चतुर्दशी-शिव। अमावस्या-पितर। पौर्णिमा-पितर।

तिर्यङ्मुख नक्षत्र = मृग, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा और अश्विनी।

तीक्ष्णनक्षत्र = मूल, आर्द्रा, ज्येष्ठा, आर्द्रा - इन चार नक्षत्रों की संज्ञा। इनमें कुकर्मों की सिद्धि होती है।

तुलामास = देखिये आश्विन। इस मास में सूर्य का तुला राशि में संक्रमण होता है।

तुला राशि = १२ राशियों में सातवी राशि। चित्रा के दो चरण तथा स्वाती और विशाखा के तीन चरण मिलाकर तुला राशि मानी जाती है।

त्रिपाद नक्षत्र = कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तरा, विशाखा, उत्तरापाढा और पूर्वाभाद्रपदा - इन छ नक्षत्रों को त्रिपाद मानते हैं। इन नक्षत्रों पर मृत्यु होने पर शांति करते हैं।

त्रिपुष्कर योग = मंगलवार, शनिवार और रविवार को द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी, तथा कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तरा, विशाखा, उत्तराषाढा, और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र इन तीनों का एकत्र योग आता है तब जो शुभ या अशुभ घटना होती है उस घटना की तीन बार आवृत्ति होती है। किन्तु उक्त वार और तिथि को मृग, चित्रा और घनिष्ठा में से किसी नक्षत्र के आने पर **'द्विपुष्कर योग'** होता है। इस योग पर हुई घटना की दो वार आवृत्ति होती है।

त्रिप्रश्न गणित = ज्योतिर्गणित की संज्ञा। ग्रह और तारका का स्थल, काल और विशिष्ट तारका से अंतर और दिशा - इन तीन प्रश्नों का विचार ज्योतिगणित में प्रधान होने के कारण यह संज्ञा रूढ हुई है।

त्रिस्कन्ध ज्यौतिष = (१) सिद्धान्त (२) गणित और (३) फलित नामक ज्यौतिप शास्त्र के तीन विभाग। अथवा (१) संहिता (२) तंत्र, (३) होरा।

त्रुटी = कालगणना का सूक्ष्मतम भाग।

त्रेतायुग = चार युगों में दूसरा युग। इसकी काल मर्यादा १२ लक्ष ९६ हजार वर्षो की मानी जाती है। प्रभु रामचंद्र का आविर्भाव इसी युग में माना जाता है। वायु पुराण के अनुसार इसी युग से वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रारंभ हुआ।

त्र्यहःस्पृक् तिथि = तीन वारों को स्पर्श करने वाली वृद्धि तिथि। एक ही तिथि दो वारों में होती है तब उसे **'वृद्धितिथि'** कहते हैं। उदा. जब गुरुवार सूर्योदय से ५७ घटिका २ पल तक अष्टमी होती है तब शुक्रवार के उदय क्षण में नवमी का प्रारंभ होने से शुक्रवार की तिथि नवमी होती है। वह शनिवार की सूर्योदय के बाद १ घ. ३० प. तक होने से शनिवार की भी तिथि नवमी होती है। ऐसी तिथि को 'वृद्धितिथि' कहते हैं। यह नवमी गुरुवार, शुक्रवार और शनिवार को स्पर्श करती है। अतः उसे 'त्र्यहःस्पृक्'' कहते हैं।

दक्षिणायन = कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, और धनु - इन छह राशीयों में सूर्य का यथाक्रम अवस्थान का काल।

दक्षिणायन = आषाढ से पौष तक छह महीनों का काल। इस काल में सूर्य का अयन (अर्थात् गमन) दक्षिण गोलार्ध की ओर दिखाई देता है। सूर्य का प्रवेश कर्क राशि में होने पर दक्षिणायन का और मकर राशि में होने पर, उत्तरायण का प्रारंभ होता है।

दग्ध योग = एक अशुभ योग जो विशिष्ट वार और तिथि के संयोग पर माना जाता है। उदा. रविवार-तिथि १२। सोमवार-११, मंगलवार-५-१०। बुधवार-३। गुरुवार-६। शुक्रवार-२-८। शनिवार- ७-९।

दण्ड = सूर्य के उदय या अस्त के समय स्पष्ट इन्द्रधनुष्य के समान दिखने वाली मेघरेखा की संज्ञा।

दर्श = (१) अमावस्या। (२) अमावस्या के बाद चंद्रदर्शन की (प्रतिपदा) तिथि।

दशा = नक्षत्रों के अनुसार सूर्य – चंद्रादि ग्रहों का जिस काल विभाग पर स्वामित्व होता है उस कालांश को दशा कहते हैं। दस प्रकार – योगिनी, वार्षिकी, नाक्षत्रिकी, लाग्निकी, मुकुंदा, विंशोत्तरा, त्रिंशोत्तरा, पताकी, हरगौरी, और दिनदशा।

दशापद्धति = व्यक्ति के जीवन में उत्कर्ष-अपकर्ष के योग का अनुमान करने की एक पद्धति।

दिक्शूल = विशिष्ट दिशा को प्रवास करने के लिए निषिद्ध माने गए वार। जैसे **पश्चिम** = रवि, शुक्र। **उत्तर** = बुध, मंगल। **पूर्व** = शनि. सोम.। **दक्षिण** = बृहस्पति.। बुधवार सभी दिशाओं के लिए दिक्शूल माना गया है। (जोतिःसारसंग्रह)

दिनवर्षपद्धति = व्यक्ति के जीवन में उत्कर्ष-अपकर्ष का अनुमान करने की काल निर्णय की एक पद्धति। इस पद्धति में जन्म के बाद का प्रत्येक दिन, एक वर्ष का द्योतक माना जाता है।

दिनांश = अहोरात्र के समय के १२४ समान विभाग।

दिवस या दिन = ६० संपूर्ण घटिकाओं की कालावधि। (१) एक सूर्योदय-क्षण से दूसरे सूर्योदय क्षण तक का समय। (२) एक मध्याह्न से दूसरे मध्याह्न तक का समय। (३) एक मध्यरात्रि से दूसरी मध्यरात्रि तक का समय। इन तीन पद्धतियों से "सौरदिवस" माना जाता है। दो प्रकार – सौर दिवस और नाक्षत्र दिवस **(पितरों का दिवस** = कृष्ण पक्ष। शुक्लपक्ष उनकी रात्रि होती है।)

दिवस के पाँच विभाग = प्रातः, संगव, मध्याह्न, अपराह्ण और सायाह्न (स्मृतिकार तथा कौटिल्य दिन के आठ विभाग मानते हैं।)

दिव्य अहोरात्र = मानवों का एक वर्ष।

दिव्य दिन = मानवों का उत्तरायण, जो कर्क संक्रांति को (आषाढ मास में) पूर्ण होता है। उत्तरायण का प्रारंभ मकर संक्रांति (पौष मास) से होता है।

दिव्यरात्रि = मानवों का दक्षिणायन जो कर्क संक्रांति से प्रारंभ होकर मकर संक्रमण (पौष मास में) पूर्ण होता है।

दिव्य रात्र = ज्येष्ठ शुद्ध दशमी को शुक्रवार तथा रात्र में एकादशी के प्रारंभ का योग।

दिव्यवर्ष = मनुष्यों के ३६० वर्षों का कालावधि। एक युग में १२००० दिव्य वर्ष माने जाते हैं और एक कल्प में २४,००,००,००० दिव्य वर्ष माने हैं।

दुष्कूट = देखिए कूटगुण। षडाष्टक (या खडाष्टक) द्विर्द्वादशक और नवपंचक राशियोग की संज्ञा। दुष्कूट होने पर विवाह तय नहीं होता।

देवनक्षत्र = (२७ में से प्रारंभिक १४ नक्षत्र) कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसू, तिष्य, आश्लेषा, मघा, फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा। (तैत्ति. ब्रा. १-५/२-७) (नामान्तर – **दक्षिण नक्षत्र**)। देव नक्षत्रों के काल में कर्मकार्य अधिक पुण्यकारक होता है। ये **नक्षत्र** दक्षिण दिशा में होते हैं। शेष नक्षत्रों को **यमनक्षत्र** कहा जाता है और वें उत्तर दिशा में होते हैं।

द्वापर युग = चार युगों में तिसरा। इसका प्रारंभ भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी, गुरुवार से माना गया है। कृष्णावतार इसी युग में हुआ। महाभारत युद्ध इस युग के अंत में हुआ था। इसकी कालावधि – आठ लक्ष, चौंसठ हजार सौर वर्षों का है। कृष्णावतार की समाप्ति के दिन कलियुग का प्रारंभ हुआ।

द्वारचक्र = मुहूर्तशास्त्र के अनुसार भवन का नया द्वार स्थापन करते समय इस नक्षत्रचक्र का विचार होता है। द्वार के अन्यान्य भागों में विशिष्ट शुभ या अशुभ नक्षत्रों का स्थान होता है। उसी नक्षत्रचक्र को द्वारचक्र कहते हैं।

द्विर्द्वादशक = देखिए कूट गुण।

द्विपुष्कर योग = देखिए त्रिपुष्कर योग।

धनिष्ठा (या श्रविष्ठा) = २७ नक्षत्रों में से २३ वां नक्षत्र इसके पांच मंदप्रभ तारका होते है। इसके पहले दो चरण मकर राशि में और अन्य दो चरण कुंभ राशि में होते हैं। वसु इस नक्षत्र के देवता हैं। इस नक्षत्र पर जन्म पाने वाला धनवान् होता है।

धनुर्मास = मार्गशीर्ष मास में सूर्य का भ्रमण धनुस् राशि में होता है। अतः मार्गशीर्ष मास की यह अपर संज्ञा है। इस मास में सूर्योपासना तथा सूर्योदय के समय भोजन करते हैं। तामिलनाडु में यह काल अशुभ माना जाता है।

धनु राशि = मेष-वृषभादि १२ राशियों में नौवीं राशि। इस राशि में मूल, पूर्वाषाढा, तथा उत्तराषाढा नक्षत्र का पूर्व चरण होता है। गुरु इस राशि का स्वामी है। अपर संज्ञा = **अग्निराशि।**

धूमकेतु = आकाश में कभी कभी प्रकट होने वाले विरल तेजस्वी वस्तुकणों के पुंज। इनकी संख्या अगणित है। इनके तीन प्रकार माने जाते हैं। इनका आविर्भाव उत्पातसूचक माना जाता है।

ध्रुव या स्थिर नक्षत्र = रोहिणी, उत्तराषाढा, उत्तर भाद्रपदा, उत्तर फाल्गुनी - इन नक्षत्रों की संज्ञा। इनमें सत्कर्म सफल होते हैं।

ध्रुव = नीचे की दिशा। (अधरा दिक्)। बृह. उप. ३-९-२५)

नक्षत्र = आयनिक वृत्त की दोनों ओर आठ अंशों के आयाम में प्रमुख तारकाओं की कल्पित आकृति। नक्षत्र स्वरूप तारकापुंज आकाश में स्थिर होते हैं। क्रांति वृत्त के २७ समान भागों की यह संज्ञा है। सामान्यतः चंद्र एक नक्षत्र में १ दिन तक रहता है।

नक्षत्र (प्रकार) = लघुनक्षत्र (४), मृदुनक्षत्र (४), और चरनक्षत्र (५)।

नक्षत्र – दो प्रकार = देवनक्षत्र और यमनक्षत्र।

नक्षत्रकल्प = अथर्व परिशिष्ट का एक भाग। इसमें युद्ध आदि कार्यों में नक्षत्रों की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता का विचार किया गया है।

नक्षत्र के विविध वर्ग = (१) ध्रुव, तीक्ष्ण, चर, मृदु, लघु, उग्र, मृदुतीक्ष्ण। (२) अधोमुख, ऊर्ध्वमुख, तिर्यङ्मुख, अंध, मंदाक्ष, मध्याक्ष, सुलोचन, (३) **(देवी भागवत के अनुसार** = नाग वीथी, गज वीथी, ऐरावती वीथी, आर्षभी वीथी, जारद्गवी वीथी, अज वीथी, गो वीथी, मार्गी वीथी और वैश्वानरी वीथी – (इनमें प्रत्येक के अन्तर्गत तीन नक्षत्रों का समूह होता है)। (४) स्त्री नक्षत्र, पुंनक्षत्र और क्लीब नक्षत्र। (९ पुं नक्षत्र, ३ क्लीब नक्षत्र और १५ स्त्री नक्षत्र माने जाते हैं।) (५) **आद्य** = (मनुष्य के जन्मसमय का नक्षत्र); **कर्म** = (जन्मनक्षत्र से १० वां), **सांपत्तिक** (१६ वां); **समुदाय** – (१८ वां), **वैनाशिक** (२३ वां), **मानस** – (२५ वां)।

नक्षत्र गण्डान्त = गण्डान्त योग के तीन प्रकारों में एक। आश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती नक्षत्रों की अंतिम दो घटिकाएँ तथा मघा, मूल और अश्विनी नक्षत्रों की प्रथम दो घटिकाएँ।

नक्षत्र दर्श या नक्षत्रविद्या = ज्योतिषशास्त्र की अपर संज्ञा।

नक्षत्रनाम = नक्षत्र की अधिष्ठात्री देवता के अनुरूप यजमान का एक गुप्त नाम।

नक्षत्रसूचक = ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान न होते हुए अपने आपको दैवज्ञ कहला कर फलित कथन करने वाला। दांभिक ज्योतिषी।

नक्षत्रिय प्रजापति = आकाश में दिखनेवाले हस्त नक्षत्र से अनुराधा नक्षत्र तक एक कल्पित मनुष्याकृति की वैदिक संज्ञा। इस आकृति में हस्त = हाथ,; चित्रा = शिर, स्वाती = हृदय, विशाखा = ऊरु; अनुराधा = चरण माने जाते हैं।

नन्दा तिथि = प्रत्येक मास की प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी तिथियों की संज्ञा। इन तिथियों को श्राद्धविधि वर्ज्य मानी है।

नंदादित्यवार = मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठी का आदित्यवार।

नपुंसक ग्रह = बुध और केतु।

नवपंचक = देखिए कूटगुण।

नवांश कुंडली = व्यक्ति के भविष्य की सूक्ष्म घटनाओं का अनुमान इस कुंडली के द्वारा फलज्योतिषी करते हैं।

नाक्षत्र काल गणना = नक्षत्रों की दैनिक गति पर आधारित कालगणना। सौर दिन से **नाक्षत्र** ३ मिनट ५५.९ सेकंद कम होता है। नाक्षत्र काल गणना का आरंभ मेष संपात से माना जाता है। अश्विनी से रेवती तक २७ नक्षत्रों में से चंद्रमा का भ्रमण एक मास में होता है। इसे नाक्षत्र मास कहते है। १२ **नाक्षत्र मास** पूर्ण होने पर **नाक्षत्र वर्ष** पूर्ण होता है।

नाक्षत्र दिन = नक्षत्रोदय से नक्षत्रोदय तक का समय।

नाक्षत्र दिवस = एक तारका आकाश के मध्यमण्डल में दिखने पर पुनः उसी स्थान पर उसी तारका का आगमन होने तक का समय। पंचांग में नाक्षत्र दिवस ही प्रमाणभूत माना जाता है। सूक्ष्म कालगणना इसीके अनुसार होती है।

नाक्षत्र वर्ष = २७ दिन के १२ महीनों का काल (अर्थात् २७ × १२ = ३२४ दिन।

नाडी = ज्योतिष शास्त्र के अनुसार तीन प्रकार - आद्य, मध्य और अंत्य।

नाडी = अहोरात्र का ६० वां विभाग। अपर संज्ञा = घटिका।

नाडीग्रंथ = किसी भी व्यक्ति के भूत-भविष्य का कथन करने वाला जातक पद्धति का ज्योतिष ग्रंथ। भृगु संहिता भी इसी प्रकार का ग्रंथ माना जाता है। दक्षिण भारत में नाडी ग्रंथों का प्रचार है।

निमेष = लघु अक्षर का उच्चारण करने योग्य समय। २ निमेष = त्रुटि। १० त्रुटि = १ प्राण। ६ प्राण = १ विनाडिका। ६० विनाडिका = १ नाडिका और ६० नाडियां = १ अहोरात्र अर्थात् सूर्योदय से सूर्योदय तक का काल।

निमेष = काल गणना का लघुतम घटक। आंख की पंखुडिया बंद करने में लगने वाला समय। (नि + मिष् = बंद करना)। १५ निमेष = १ इदानीं। १५ इदानीं = १ एतर्हि। १५ एतर्हि = १ क्षिप्र। १५ क्षिप्र = १ मुहूर्त। ३० मुहूर्त = १ अहोरात्र (दिन और रात्रि का समय अर्थात् एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय।

नियोज्य गणित = गणितशास्त्र के तीन प्रकारों में से एक जिसमें यंत्रशास्त्र, भूमापन, भूपदार्थविज्ञान, ज्योतिष आदि विषयों का अन्तर्भाव होता है। (अन्य दो प्रकार – शुद्ध और व्यावहारिक।)

निर्घात = दो दिशाओं से तीव्र गति से वहने वाले वायुप्रवाह टकराकर आकाश से पृथ्वी पर गिरने के कारण उत्पन्न होने वाली घोर ध्वनि। यह अशुभसूचक होती है।

नीचस्थान (ग्रहों के) = सूर्य- तुला राशि। चन्द्र- वृश्चिक राशि। मंगल- कर्क। बुध- मीन। गुरु- मकर। शुक्र- कन्या। शनि- मेष।

नृपानुचर पंचक = **वामनक** (भद्रयोगी राजा का अनुचर); **जघन्य** (मालव्ययोगी राजा का अनुचर); **कुब्ज** (हंसयोगी राजाका अनुचर); **मण्डलक** (रुचकयोगी राजा का अनुचर); **साची** (शश योगी राजा का अनुचर।) देखिए योग पंचक।

पंच पर्वकाल = अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पौर्णिमा और रविसंक्रांति।

पंच पर्वकाल = व्यतिपात, वैधृति, संक्रान्ति, पौर्णिमा और अमावस्या।

पंच सिद्धान्त (ग्रहगणित के) = पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह।

पंचमी = (अपर संज्ञा पूर्णा) – **नागपंचमी** = श्रावण शु. ५। **ऋषिपंचमी** = भाद्र. शु.५। **ललिता पंचमी** = आश्विन शु. ५। **पांडवपंचमी** = कार्तिक शु.५। **वसंतपंचमी** = माघ शु. ५। **रंगपंचमी** = फाल्गुन वद्य ५।

पद्मक योग = (१) षष्ठी युक्त माघ शुद्ध सप्तमी को रविवार का होना। (२) विशाखा नक्षत्र पर सूर्य और कृत्तिका

नक्षत्र में चन्द्र होना। (३) विष्टि, व्यतीपात और रविवार - इन तीनों का एकत्र होना। यह एक शुभ योग माना जाता है।

परिघ = सूर्य के उदय या अस्त के समय दिखाई देने वाली तिरछी मेघरेखा की संज्ञा।

परिवत्सर = पांच वर्षों के चक्र में द्वितीय क्रम का वर्ष।

परिवेष = सूर्य-चन्द्र के किरणों से युक्त तथा वायु द्वारा आकाश में मण्डलाकार हुए अल्प मेघ, जो अनेक वर्णों के दिखाई देते हैं। परिवेष की आकृति तथा वर्ण से शुभाशुभ फल सूचित होता है।

पर्वकाल = तीर्थस्नान, श्राद्ध, दान, जप तथा उपवास करने के पवित्र दिन।

पर्वपंचक = अष्टमी, चतुर्दशी, पौर्णिमा, अमावस्या और सूर्यसंक्रान्ति का समय। इनके अतिरिक्त दक्षिणायन-उत्तरायण का प्रारंभ काल, विषुवदिन, चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण एवं व्यतीपात योग भी ज्योतिष शास्त्र के अनुसार पर्वकाल माने जाते हैं।

पर्वदिन = दर्श (अमावस्या) और पौर्णिमा।

पश्चिमसन्ध्या = सूर्यबिंब का अर्धास्त होने पर स्पष्ट रूप में ताराओं का दर्शन होने तक का समय।

पाशक विद्या = देखिये रमल।

पार्वण वर्ष = देखिये चांद्रवर्ष।

पितृपक्ष = भाद्रपद मास के वद्य पक्ष की संज्ञा।

पितृयाण मार्ग = आकाशस्थ अजवीथी के दक्षिण की ओर का एक मार्ग। (ब्रह्माण्ड पु.)

पुनर्वसू = २७ नक्षत्रों में सातवें नक्षत्र की संज्ञा। यह युग्म या मिथुन नक्षत्र है। इसके प्रथम तीन चरण मिथुन राशि में होते हैं।

पुरुषग्रह = सूर्य, मंगल, और गुरु।

पुरुषोत्तम मास = पुराणों के अनुसार अधिकमास का नाम। विष्णु इस मास के देवता माने गये हैं। इस मास में वर्जित धर्मकर्म- अग्न्याधान, देवप्रतिष्ठा, राज्याभिषेक, विवाह, उपनयन, गृहारंभ, गृहप्रवेश, देशांतरगमन इत्यादि।

पुष्य = नक्षत्रों में आठवाँ नक्षत्र। पुनर्वसू और मघा नक्षत्र के बीच कर्क राशि में कर्क (खेकडा) के समान मंद प्रभा वाला यह एक तारकापुंज है। वेद में इसे **तिष्य** और फलज्योतिष में **कौस्तुभ** कहा है। गुरुग्रह इसकी देवता है। अतः गुरु-पुष्य योग को 'अमृतसिद्धि योग' माना जाता है।

पूर्णिमा (पौर्णिमा, पौर्णमासी, पूर्णमासी) = मास को पूर्ण करने वाली शुक्ल पक्ष की अंतिम तिथि। दो प्रकार – (१) अनुमति (एक चंद्रकला से अपूर्ण), (२) राका समग्र चंद्रकलाओं से युक्त। पौर्णमास याग की तिथि।

पूर्वसंध्या = प्रातःकाल में ताराओं के प्रकाश की हानि के समयं से सूर्यबिंब का अर्धोदय होने तक का काल।

पूर्वाफल्गुनी = २७ नक्षत्रों में ११ वां नक्षत्र। उत्तर-दक्षिण स्थित दो तारकाओं वाला यह नक्षत्र सिंह राशि में होता है।

पूर्वा भाद्रपदा = २७ नक्षत्रों में २५ वां नक्षत्र। श्रवण-नक्षत्र के समीप दक्षिणोत्तर दो तारकाएं । इसका प्रथम चरण कुंभ राशि में और अन्य तीन चरण मीन राशि में होते हैं। अज-एकपाद इसका अधिपति है। वैदिक संज्ञा – **प्रोष्ठपदा।**

पूर्वाषाढा = २७ नक्षत्रों में २० वां नक्षत्र। आप (जल) इसकी देवता है। यह अंध स्त्री नक्षत्र माना जाता हैं।

प्रश्न ज्योतिष = ज्योतिषी को भविष्य के संबंध में प्रश्न पूछे जाने पर, प्रश्न काल के लग्न के आधार पर उत्तर देने का फलज्योतिष का एक प्रकार। होरा स्कन्ध का यह एक अंग है।

प्राजापत्य दिन = शुक्ल पक्ष की १४ दिनों की अवधि। कृष्णपक्ष को **प्राजापत्य रात्रि** कहा है। यह एक वैदिक कालगणना थी।

प्रातःकाल = पूर्वदिन के सूर्योदय काल के बाद ५८ वीं घटिका का समय। (अष्टपंच भवेत् प्रातः)

प्रोष्ठपदा (या प्रोष्ठपद) = यम नक्षत्रों के अन्तर्गत एक नक्षत्र द्वन्द्व का नाम।

फलितस्कन्ध = ज्योतिष शास्त्र के तीन स्कन्धों के अन्तर्गत एक स्कन्ध जिसमें जातक, तांत्रिक, मुहूर्त, प्रश्न और संहिता पांच भेद माने जाते हैं।

फल्गुनी = देवनक्षत्रों के अन्तर्गत नक्षत्र-युग्म।

बार्हस्पत्य कालगणना = बृहस्पति या गुरु नामक सूर्यमंडल का पांचवा ग्रह १२ वर्षों में एक सूर्यप्रदक्षिणा पूर्ण करता है। अतः दीर्घ काल की गणना 'बार्हस्पत्य कालगणना' पद्धति से होती थी।

बार्हस्पत्य संवत्सर = बृहस्पति ग्रह १२ वर्षों में राशिचक्र का भ्रमण पूर्ण करता है। अतः बृहस्पति (गुरू) का एक संवत्सर १२ वर्षों का होता है। बार्हस्पत्य वर्ष प्रायः ४०० दिनों का होता है। अतः १२ सौर वर्षों में (सौर वर्ष = ३६५.२५८७ दिन) बर्हिस्पत्य गणना के ११ वर्ष पूर्ण होते हैं।

बुध की चतुर्विधा गति = (देवल के मतानुसार) ऋज्वी, अतिवक्रा, वक्रा, और विकला।

बुध की सात गतियाँ = विशिष्ट नक्षत्रों में बुध की गति की संज्ञाएँ अलग अलग होती हैं :– प्राकृत, विमिश्र, संक्षिप्त, तीक्ष्ण, योगान्तिक, घोर और पाप। ये गतिवाचक संज्ञाएँ बुध के उदय तथा अस्त की दिनमर्यादाओं को सूचित करते हैं।

ब्राह्ममुहूर्त = रात्रि के अंतिम प्रहर के तृतीय मुहूर्त की दो घटिकाओं का काल।

भद्रपदा = प्रोष्ठपदा नक्षत्र का अपरनाम।

भद्रादित्यवार = भाद्रपद शुक्लपक्ष का आदित्यवार।

भरणी = २७ नक्षत्रों में द्वितीय नक्षत्र की संज्ञा। इसकी तीन तारकाएं त्रिकोण में दीखती हैं।

भरणी (अपभरणी) = यमनक्षत्रों में एक। इसका निर्देश स्त्रीलिंगी बहुवचनी होता है।

भौमयोग = कार्तिक वद्य चतुर्दशी, मंगलवार और चित्रा नक्षत्र एक ही दिन होने पर यह योग होता है। भौम =

मंगलग्रह, जो भूमि का पुत्र माना जाता है।

मकर = १२ राशियों में अंतिम राशि की संज्ञा। उत्तराषाढा के तीन पाद और श्रवण तथा धनिष्ठा के अर्धपाद मिलकर यह राशि होती है।

मकर संक्रान्ति (अयन संक्रान्ति) = सूर्य का मकर राशि में प्रविष्ट होने का दिन। संक्रांति के दूसरे दिन को **किंक्रान्त** या **करिदिन** कहते है।

मगीवर्ष = बंगाल (चित्तगांव ज़िला) में प्रचलित एक कालगणना।. ईसवी सन से ६३८-३९ वर्ष बाद इस काल गणना का प्रारंभ हुआ।

मघा = २७ नक्षत्रों में १० वां नक्षत्र। यह सिंह राशि में स्थित पांच तारकाओं के रूप में हलाकार दीखता है। वैदिक संज्ञा- अघा।

मघा (अघा) = देवनक्षत्रों में एक। इसका निर्देश स्त्री लिंगी बहुवचनी होता हैं।

मघापंचक = मघा, पूर्वा, उत्तरा, हस्त और चित्रा। (ये वर्षाऋतु के पांच प्रमुख नक्षत्र है।)

मंगल = (अपर संज्ञा भौम, कुज, अंगारक) = नवग्रहों में तीसरा, रक्तवर्ण, दक्षिण दिशा का स्वामी, युद्धदेवता। यह पापग्रह माना जाता है। जन्मलग्न कुण्डली में १, ४, ७, ८ और १२ वें स्थान में मंगल होने पर वह पत्रिका मंगलयुक्त मानी जाती है। वधू और वर दोनों की जन्मपत्रिकाएं मंगलयुक्त या मंगल विरहित होनी चाहिए। अन्यथा अमंगल होता है।

मंगल के पंचमुख = जिस नक्षत्र से मंगल का उदय या अस्त होता है उससे जिस विशिष्ट क्रमांक के नक्षत्र पर, जब वह वक्री होता है तब उसे नई संज्ञाएँ दी जाती हैं। – (१) उष्णमुख, (२) अश्रुमुख, (३) व्यालमुख, (४) रुधिरानन, (५) असिमुसलमुख। इस प्रकार वक्री मंगल को शुभ-अशुभ सूचक माना जाता है।

मण्डलचतुष्टय = सात सात नक्षत्रों के चार समूह = वायव्य मण्डल, आग्नेय मण्डल, इन्द्रमण्डल और वरुण मण्डल।

मधु-माधव = वसन्त ऋतु के मास। चैत्र-वैशाख मास की अपर संज्ञा।

मध्यतिथि = शुक्ल और कृष्ण पक्ष की षष्ठी से एकादशी तक पाँच तिथियाँ। इन्हें क्रमशः नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, और पूर्णा कहते है। अन्य तिथियों के समान ये शुभ या अशुभ नहीं होती।

मध्याक्ष नक्षत्र = आर्द्रा, मघा, पूर्वाभाद्रपदा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित् और भरणी।

मंदाक्ष नक्षत्र = हस्त, उत्तराषाढा, अनुराधा, शततारका, आश्लेषा, अश्विनी और मृगशीर्ष।

मन्वन्तर = ७१ दिव्य युगों का कालखंड। (३० कोटी ६७ लक्ष, २० हजार मानव वर्षों का काल)।

मन्वन्तर १४ = स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णी, दक्षसावर्णी, ब्रह्मसावर्णी, धर्मसावर्णी, रुद्रसावर्णी, देवसावर्णी (रुचि), इंद्रसावर्णी (भौम)

मन्वादि तिथि = (कुल संख्या १४) – आश्विन शुद्ध ९। कार्तिक शुद्ध १२। चैत्र शु. ३। भाद्रपद शु. ३। फाल्गुनी अमावस्या। पौष शु. ११। आषाढ शु. १०। माघ शु. ७। श्रावण वद्य ८। आषाढ, कार्तिक, फाल्गुन और चैत्र पौर्णिमाएं। इन तिथियों को गत १४ मन्वन्तरों का यथाक्रम प्रारंभ माना जाता है।

मलमास = अधिक मास का अपर नाम। मूल शब्द **मलीम्लुच** (वाजसनेयी संहिता)

महाकला = चंद्रमा की १६ वीं कला, जिसका क्षय और उदय नहीं होते।

महाचैत्री = चैत्र पौर्णिमा को गुरु-चंद्र युति चित्रा नक्षत्र पर होती है तब उस पौर्णिमा को महाचैत्री कहते हैं।

महाज्यैष्ठी = ज्येष्ठ पौर्णिमा, ज्येष्ठा नक्षत्र, चंद्र-गुरु युति, और रोहिणी नक्षत्र में सूर्य - इस प्रकार का योग होने पर पौर्णिमा को महाज्यैष्ठी कहते हैं।

महापराह्न = श्रावण वद्य प्रतिपदा की संज्ञा। इस संज्ञा का वाच्यार्थ है बड़ा मध्याह्न।

महापूर्णिमा = नक्षत्र नामांकित मास में उसी नक्षत्र पर पूर्णचंद्र और गुरु का योग होने पर पौर्णिमा की संज्ञा।

महाभरणी = भाद्रपद वद्य पक्ष की भरणी नक्षत्रस्थित चंद्र की स्थिति।

महामखम् = कुंभकोणम् क्षेत्र का एक महोत्सव। १२ वर्षों के अंतर से गुरु ग्रह मघा नक्षत्र में आने पर यह मख होता है।

महायुग (या दिव्य युग) = कृत, त्रेता, द्वापर, कलि – इन चार युगों का समेकित कालखण्ड। १२०० दिव्य वर्षों का काल (अर्थात् – ४३,२०,००० मानुष वर्ष)।

महालयपक्ष (या पितृपक्ष) = भाद्रपद वद्य पक्ष की संज्ञा। इस पक्ष में महालय श्राद्ध (अर्थात् सभी मृत पूर्वजों एवं मृत पत्नी, पुत्र, गुरु, मित्र आदि संबंधियों के निमित्त श्राद्ध) होता है।

महावारुणी योग = चैत्र वद्य त्रयोदशी, शततारका नक्षत्र, और शनिवार का एक ही दिन आना। इस योग पर गंगास्नान का माहात्म्य माना गया है।

महाश्वेताप्रिय आदित्यवार = सूर्यग्रहणयुक्त आदित्यवार। इस दिन महाश्वेतामंत्र का जप करते हैं।

महोदयपर्व = पौष या माघ की अमावस्या को सोमवार, श्रवणनक्षत्र और व्यतीपात का योग।

मार्गशीर्ष = चैत्रादि १२ मासों में नौवां मास। इसकी पौर्णिमा के आगे पीछे मृगशीर्ष नक्षत्र होने के कारण, मास को यह संज्ञा प्राप्त हुई। प्राचीन काल में वर्षगणना का प्रारंभ इस मास से होने के कारण इसे 'आग्रहायण' मास भी कहते हैं। (हायन = वर्ष)।

मालवगण युग = (१) कृत युग का अन्य नाम। (२) इसका प्रारंभ इ.पू. ४५८ में माना गया है।

मास = १२ मासों के अतिप्राचीन नाम – मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभ, नभस्य, इष, ऊर्ज, सह, सहस्य, तप और तपस्य। (चैत्र वैशाख आदि १२ मासों के इन नामों का प्रयोग काव्य ग्रंथों में होता है।)

जैन परम्परा में मासों की नामावली = (चैत्रादि क्रम से) – वसंत, कुसुमसंभव, निदाघ, दानविरोधी, अभिनन्द, सुप्रतिष्ठा, विजया, प्रतिवर्धन, श्रियान्, शिव, शिशिर और हैमवान।

मास (विविध प्रकार) = **(१) सावन मास** – सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक अहोरात्र काल को **'सावन दिन'** कहते हैं। ३० सावन दिन = १ सावन मास। (२) **सौरमास** = सूर्य का एक राशि में प्रवेश होने से दूसरी राशि में प्रवेश होने तक का काल। (३) **चान्द्रमास** = शुक्ल प्रतिपदा से अमावस्या (या कृष्ण प्रतिपदा से पौर्णिमा) तक की कालाव्रधि। (४) **नाक्षत्र मास** = चंद्र का अश्विनी नक्षत्र में प्रवेश होने से (२७ नक्षत्रों को लांघकर) पुनः अश्विनी नक्षत्र में प्रवेश होने तक की कालावधि।

मित्र = मार्गशीर्ष मास में सूर्य का नाम।

मिथुन = मेषादि १२ राशियों में तीसरी राशि। आधी मृगशीर्ष, संपूर्ण आर्द्रा और पुनर्वसु के तीन चरण मिलकर यह राशि होती है। इस राशि का स्वामी बुध है।

मीन = मेषादि १२ राशियों में बारहवीं राशि। पूर्वा भाद्रपदा का एक चरण, उत्तराभाद्रपदा और रेवती (दोनों संपूर्ण) इसे राशि में आते हैं। इस राशि का स्वामी गुरु हैं।

मुहूर्त = (१) दो नाडिकाओं का कालमान अर्थात् दिन का ३० वा विभाग (४८ मिनट)। दिन के १५ और रात के १५ इस प्रकार कुल मिलाकर एक अहोरात्र में ३० मुहूर्त होते हैं। (२) तिथि, वार, नक्षत्र, करण और योग नामक पांचों अंग जब शुभ होते है तब उस समय को मुहूर्त कहते हैं।

मुहूर्त = विवाहादि कार्यों की सिद्धि के लिए निश्चित तिथि, वार, घटिका, पल, स्वरूप काल। दो प्रकार - शुभ और अशुभ। त्रिस्कन्ध ज्योतिष के संहितास्कंध का यही प्रमुख विषय होने के कारण उसे **'मुहूर्तस्कन्ध'** संज्ञा है।

मूल = २१ नक्षत्रों में से १९ वें नक्षत्र की संज्ञा। वृश्चिक नक्षत्र की ११ तारकाओं में पुच्छ स्थानीय अन्तिम दो तारकाएं ही मूल नक्षत्र मानी जाती हैं। धनु राशि में इसका स्थान होता है। यही आकाशगंगा का मूल माना जाता हैं।

मृगपंचक = मृग, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा।

मृगशीर्ष = २१ नक्षत्रों में पांचवां नक्षत्र। इन्वका नामक १३ तारकाएं इसमें होती हैं। यह आधा वृषभ और आधा मिथुन राशि में होता है। इसकी दक्षिण दिशा में व्याध या मृगव्याध नामक तेजस्वी तारा होता है। व्याध का त्रिकांड बाण मृग के उदर में घुसा हुआ दीखता है।

मृत्युयोग = एक अशुभ योग। अनुराधा, उत्तराषाढा, शततारका, अश्विनी, मृगशीर्ष, आश्लेषा और हस्त नक्षत्र, क्रमशः रविवार से शनिवार तक किसी भी दिन आने से यह योग माना जाता है।

मृत्युयोग = (१) नंदा तिथि को रविवार या मंगलवार। (२) भद्रातिथि को सोमवार या शुक्रवार। (३) जयातिथि – बुधवार (४) रिक्तातिथि – गुरूवार (५) पूर्णातिथि – शनिवार।

मृदुतीक्ष्ण नक्षत्र = कृत्तिका और विशाखा।

मृगनक्षत्र = अनुराधा, चित्रा, रेवती और मृगशिरा - इन चार नक्षत्रों की संज्ञा। ये मंगल कार्यों के लिए फलप्रद होते हैं।

मेदिनीय ज्योतिष = राज्य के सामुदायिक भविष्य का विचार करने वाले ज्योतिष शास्त्र का एक अंग।

मोक्षदशक = सूर्य और चन्द्र के ग्रहण काल की समाप्ति के दस प्रकार – दक्षिण हनु, वाम हनु, दक्षिण कुक्षि, वाम कुक्षि, दक्षिण पायु, वाम-पायु, संछर्दन, जरण, मध्य विदरण और अन्त्य विदरण। इन दश मोक्षों के अन्यान्य प्रकारों के फल शास्त्र में कहे हैं। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण में दिग्वैपरीत्य करके मोक्षों के लक्षण और फल का विचार होता है।

यमघंटयोग = एक अशुभ वार नक्षत्रयोग। रविवार – मघा, सोमवार – विशाखा, मंगलवार – आर्द्रा, बुधवार – मूल, गुरुवार – कृत्तिका, शुक्रवार – रोहिणी, और शनिवार – हस्त, इस प्रकार के वार नक्षत्रों का योग।

यम नक्षत्र = नक्षत्रों के दो भागों में एक। अनुराधा नक्षत्र से भरणी (या अपभरणी) नक्षत्र तक यम नक्षत्र माने जाते हैं।

यम नक्षत्र = अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, आषाढा, उत्तराषाढा। अभिजित्, श्रोण (या अश्वत्थ), श्रविष्ठा, शतभिषज्, प्रौष्ठपदा, उत्तरे प्रौष्ठपदा, रेवती, अश्वयुजौ, भरणी। (तैति. ब्राह्मण १.५/२.७)। अश्विनी का नामान्तर – उत्तरनक्षत्र

यात्रायोग द्वय = (१) युद्धयात्रा को प्रस्थान करने के दो मुहूर्त – लग्नस्थ शनि व मंगल, दशम स्थान में रवि या बुध तथा शुक्र। एकादश स्थान में बुध व शुक्र। उसी प्रकार (२) तृतीय एकादश तथा षष्ठ स्थानों में से किसी स्थान पर मंगल या शनि होना और गुरु, बुध, शुक्र का अपनी स्थिति में बलवान् होना।

युग = वैदिक वाङ्मय के अनुसार ४ वर्षों का कालखंड। वेदांग ज्योतिष के अनुसार संवत्सर, परिसवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर नामक पांच वर्षों का कालखंड। एक युग में दो अधिक मास होते हैं। एक युग में ६२ चांद्रमासों और १८३० अहोरात्रों की गणना होती थी। युग के पंचमांश काल को वर्ष कहा जाता था।

युग = बृहस्पति ग्रह की पांच सूर्य प्रदक्षिणाएँ ६० वर्षों में पूर्ण होती हैं। इन पांच प्रदक्षिणाओं की कालमर्यादा बार्हस्पत्य कालगणना के अनुसार एक युग मानी जाती है। अर्थात् ५ बार्हस्पत्य वर्ष = १ युग।

युगनाम = युगों की संख्या १२ मानी गई है। उनकी संज्ञाएँ दैवतस्वरूप अधिपति के नामानुसार होती हैं। – प्रथम युग = वैष्णव युग। द्वितीय युग = बार्हस्पत्य। तृतीय = ऐन्द्र।

चतुर्थ = आग्नेय। पंचम = त्वाष्ट्र। षष्ठ = प्रौष्ठपद। सप्तम. = पितृ।, अष्टम. = वैश्व। नवम. = सौम्य। दशम. = शक्राग्नि। एकादश. = आश्विन। द्वादश = भाग्य। प्रत्येक युग में पांच पांच वर्ष होते हैं। उनकी साठ संज्ञाएँ शास्त्रों में उल्लिखित हैं।

युगादि तिथि = **कृतयुग** की - वैशाख शु. ३, **त्रेता युग की** - कार्तिक शुद्ध ९, **द्वापर युग** - भाद्रपद वद्य १४. और **कलियुग की** - माघ पौर्णिमा (या अमावस्या)।

युगादितिथि = (अन्य मतानुसार) -- कृत- कार्तिक व. ९। त्रेता- वैशाख शु. ३। द्वापर- माघ अमावस्या। कलि- भाद्रपद व. १२।

युगान्त = कृत युग का अन्त- सूर्य, सिंह राशि में। त्रेता. - सूर्य, वृश्चिक राशि में। द्वापर- सूर्य वृषभ राशि में। कलियुग के अन्त में सूर्य कुम्भ राशि में प्रवेश करेगा। (युगादि और युगान्त तिथि को श्राद्ध एक महत्वपूर्ण कर्म है।)

युगाब्द = (युधिष्ठिर शक, कलियुग संवत् या भारत युद्ध संवत्) = ई.पू. ३१०२ से प्रारंभ होने वाला संवत्सर। युधिष्ठिर के राजाभिषेक निमित्त इस कालगणना का प्रारंभ हुआ। सर्वत्र पंचांगों में इसका निर्देश होता है। भारत का यही वास्तविक राष्ट्रीय संवत् या शक है।

योग = ज्योतिष शास्त्र के अनुसार आनंद, कालदंड, धूम्र आदि २८ योग अर्थात् शुभ-अशुभ फलदायक विशिष्ट समय कहे गये हैं। योगनिर्धारण करने में अभिजित् सहित २८ नक्षत्रों की गणना होती हैं। विशिष्ट दिन के नक्षत्र से इष्ट तिथि तक नक्षत्रों की गणना करते समय प्राप्त संख्या से योग का निर्धारण होता हैं। (मुहूर्त चिंतामणि)।

योगतारा = नक्षत्र पुंज के अन्तर्गत प्रमुख तेजस्वी तारा

योगपंचक = महापुरुष के पांच योग (१) हंसयोग (बृहस्पति ग्रह स्वगृह में उच्च और केन्द्र में बली) (२) शश. (शनि स्वगृह में उच्च और केन्द्र में बली), (३) रुचक. (मंगल स्वगृह में उच्च और केन्द्र में बली) (४) भद्र. (बुध स्वगृह में उच्च और केन्द्र में बली)। (५) मालव्य (शुक्र स्वगृह में उच्च और केन्द्र बली) उक्त योग वाले पुरुषों की उँचाई और व्यायाम (दोनों भुजा पसार कर चौडाई) में भेद होता है। इनके व्यक्तिगत गुण भी अलग अलग होते हैं।

रमल = (या पाशकविद्या) - पासे डाल कर प्रश्न का उत्तर जानने की एक विद्या। यह विद्या अरबस्तानी मानी जाती थी। रमल पद्धति के अनेक परिभाषिक शब्द अरबी और प्राकृत भाषीय है।

राक्षसी बेला = प्रातःकाल, संगव, मध्याह, अपराह और संध्याकाल इन पांच दिन विभागों के प्रारंभ की तीन नाडिकाओं का समय (नाडिका = २४ मिनट)

राशि = ३६० अंशात्मक क्रांतिवृत्त के ३०-३० अंशों के १२ विभाग। ३० अंशों के प्रत्येक विभाग को मेष, वृषभ, आदि बारह नाम दिये गये हैं। अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों के प्रत्येकशः ४ चरणों की दृष्टि से ९ चरणों (या सवा दो नक्षत्रों) से एक राशि होती है। मेषादि राशियों के मंगल, शुक्र, बुध, चंद्र, रवि, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि, शनि और गुरु - स्वामी माने जाते हैं। स्वामी के अनुसार राशिफल का विचार फलज्योतिषी करते हैं। सूर्य एक वर्ष में १२ राशियों में भ्रमण पूर्ण करता है। राशि के दो प्रकार – (१) सायन (गतियुक्त) और (२) निरयण (गतिरहित) (भारतीय पंचांग में निरयण राशि का विचार होता है।

राशिकुण्डली = जन्मपत्रिका में ग्रहस्थिति का दर्शक रेखाचित्र। इस में व्यक्ति की राशि का क्रमांक शीर्षस्थान में लिखते है। लग्न कुण्डली में जन्मकालीन लग्न (राशिका उदय) का क्रमांक शीर्षस्थान में लिखा जाता है। अन्य राशियों के क्रमांक वामतः लिखे जाते है। जन्मकुण्डली के नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश इत्यादि अंशात्मक कुण्डलियां सूक्ष्म भविष्य के ज्ञान के लिए बनाई जाती हैं।

रिक्ता = नवमी तिथि की अपरसंज्ञा। इस तिथि पर जन्म पाने वाला अभागा होता है।

रेवती = अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में अंतिम नक्षत्र। ३२ मंदप्रभ तारकाओं का मृदंगाकार पुंज इस का स्वरूप होता है। इस नक्षत्र में सभी ग्रह बलवान् होते हैं।

रोगह-आदित्यवार = पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र युक्त आदित्यवार।

रोहिणी = २७ नक्षत्रों में चौथा नक्षत्र। यह वृषभ राशि में होता है। ब्रह्मा इसका अधिपति है। रोहिणी के तारका पुंज में पांच तारकाओं की शकटाकृति बनती है। इस पुंज की अतितेजस्वी तारा को रोहिणी कहते हैं।

रोहिणी योग = चन्द्रमा के रोहिणी नक्षत्र से होने वाले विविध प्रकार के संयोग। इस योग के फल विविध प्रकार के कहे गये हैं।

रोहिणीशकट = रोहिणी नक्षत्र की छह तारकाओं का समूह।

राहु और केतु = पृथ्वी की सूर्यप्रदक्षिणा की कक्षा और चंद्र की पृथ्वी प्रदक्षिणा की कक्षा का जिन बिंदुओं पर छेद होता है उन छेदबिंदुओं की (या संपात बिंदुओं की) संज्ञा। अतः नव ग्रहों में ये दो अदृश्य माने जाते हैं।

लक्ष्मण सेन शक = मिथिला में प्रचलित एक अर्वाचीन कालमान। कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा शके १०४१ अथवा ७ अक्तूबर १११९ इसका प्रारंभ दिन माना जाता है। बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के राज्याभिषेक से इस वर्षगणना का प्रारंभ माना जाता है।

लग्न = जन्म के समय पूर्व क्षितिज पर उदित मेषादि राशि। जन्मकुण्डली में प्रथम कोष्ठक, फलित ज्ञान के लिए महत्त्व का स्थान है।

लग्नकुंडली = देखिए राशिकुण्डली।

लग्नगण्डान्त = गण्डान्त के तीन प्रकारों में से एक। कर्क,

मीन, वृश्चिक लग्नों की अंतिम अर्ध घटिका तथा सिंह, मेष, धनु लग्नों की प्रथम घटिका।

लघुनक्षत्र = हस्त, अश्विन अभिजित् और पुष्य- इनकी संज्ञा। इनमें शिल्पकर्म, कला, यात्रा आदि सिद्ध होते हैं।

वरुणमण्डल = रेवती, पूर्वाषाढा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, उत्तरभाद्रपदा और शतभिषा- इन सात नक्षत्रों के समूह की संज्ञा।

वर्ष = देखिए युग। एक वर्ष में ३६५ अहोरात्र होते हैं। वर्ष के दो प्रकार – सौर और चांद्र।

वर्ष = (मास और दिनों की संख्या) = (१) २७ दिनों के १२ मास = ३२४ दिन। (२) २६ दिनों के १२ मास और एक मास = ३५१ दिन।। (३) ३० दिनों के ६ मास और २९ दिनों के ६ मास (अर्थात् सौर मास) = ३५४।। (४) सामान्य सावन वर्ष = ३६० दिन (५) ३६० + १८ दिन = ३७८ दिन। इसमें सावन और सौर वर्ष का समन्वय है। (सामवेदी सूत्र)

वर्षगणना = (९ प्रकार) – ब्राह्म, पित्र्य, दैव, प्राजापत्य, गौरव (या बार्हस्पत्य) सौर, सावन, चान्द्र, और नाक्षत्र। इनमें बार्हस्पत्य, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र वर्षगणना लौकिक व्यवहार में होती है। ब्राह्म, दैव, पित्र्य और प्राजापत्य वर्षगणना कल्प, युग आदि दीर्घतम कालों की गणना के लिए होती है।

वर्षेश = चैत्र शुद्ध प्रतिपदा का वार।

वसंत संपात = जिस दिन में रात और दिन का कालमान समान होता है। (दिनांक २१ मार्च)। इस संपात बिंदु में आने पर सूर्य का उत्तरायण प्रारंभ होता है।

वायव्य मण्डल = उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, मृगशिरा, और आश्विनी- इन सात नक्षत्रों के समूह की संज्ञा।

वाराह कल्प = वराह अवतार के आविर्भाव से प्रचलित कल्प। विद्यमान कल्प का यही नाम है। (अपर संज्ञा = **श्वेतवाराहकल्प**)

वारुणी पर्व = (१) चैत्र वद्य त्रयोदशी को शततारका नक्षत्र का होना। उसी स्थिति को शनिवार होने पर **''महावारुणी''** कहते हैं। महावारुणी पर कोई अन्य शुभ योग होने पर महावारुणी पर्व कहते हैं।

विक्रमसंवत् = उत्तर भारत में प्रचलित कालगणना। इसकी पूर्वसंज्ञा **कृतसंवत्** तथा **मालव संवत्** थी। ई.पूर्व ५७ वें वर्ष से (उत्तर भारत में चैत्र शुद्ध प्रतिपदा से और दक्षिण भारत में कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा से) इसका प्रारंभ माना जाता है। इसमें मासगणना शालिवाहन शक के समान चांद्र पद्धति से होती है।

विजय दशमी (या विजया दशमी) = आश्विन शुद्ध दशमी की संज्ञा। यह एक उत्तम मुहूर्ततिथि मानी जाती है। श्रवणनक्षत्र युक्त होने पर यह अति शुभ मानी जाती है। दुर्गानवरात्रव्रत की समाप्ति इसी तिथि को होती है। इस दिन सीमोल्लंघन, शमीपूजन, अपराजिता पूजा और शस्त्रपूजा- ये चार विधियां होती हैं।

विजय योग = शुक्लपक्ष की सप्तमी को रविवार तथा रोहिणी नक्षत्र का होना। इस योग पर सूर्यपूजा का व्रत होता है।

विजयादित्यवार = रोहिणीनक्षत्रयुक्त सप्तमी का आदित्यवार।

विवाह नक्षत्र = उत्तरा फल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपदा, रेवती, मृगशिरा, मूल, अनुराधा, मघा, हस्त और स्वाती। इन नक्षत्रों में विवाह शुभ होता है।

विवाहयोग्य लग्न = कन्या, तुला और मिथुन (लग्न = राशि का उदयकाल)

विशोक संक्रान्ति = अयन संक्रान्त और विषुवसंक्रान्ति को व्यतिपात का योग। इस योग में सूर्योपासना का व्रत होता है।

विश्व के तीन विभाग = अन्तरिक्ष, द्यौः और पृथ्वी।

विषयोग = मुहूर्त ज्योतिष के अनुसार रविवार- चतुर्थी, सोमवार- षष्ठी, मंगलवार- सप्तमी, बुधवार- द्वितीया, गुरुवार-अष्टमी, शुक्रवार- नवमी, और शनिवार- सप्तमी- विषयोग अर्थात् अशुभ योग माने जाते हैं।

विषुव = प्रत्येक अयन का मध्यम दिन।

विष्णु = पौष मास के सूर्य का नाम।

विष्णुशृंखला योग = एकादशी सहित द्वादशी और दोनों दिन श्रवण नक्षत्र का योग।

वीरनिर्वाण संवत् = भगवान् महावीर के महानिर्वाण से आरंभ होने वाली वर्षगणना। इसका निर्देश प्रायः जैनग्रंथों में होता है। ईसवी संवत् से ५२७, विक्रम संवत् से ४७० तथा शालिवाहन शक से ६०५ वर्ष पूर्व, इस कालगणना का प्रारंभ माना जाता है। युधिष्ठिर शक के बाद इस कालगणना का क्रम आता है।

वृश्चिक = १२ राशियों में ८ वीं राशि। विशाखा का चतुर्थ चरण और अनुराधा तथा ज्येष्ठा नक्षत्र का इस राशि में अन्तर्भाव होता है।

वृषभ = १२ राशियों में दूसरी राशि। कृत्तिका के ३ चरण तथा रोहिणी और मृगशीर्ष नक्षत्र का इस राशि में अन्तर्भाव होता है। इस राशि का स्वामी शुक्र है।

वेधकाल = ग्रहण का प्रारंभ होने के पूर्व तीन या चार प्रहरों (सवा या डेढ घंटे) का समय।

वेधशाला = आकाशस्थ ग्रह-तारकाओं की स्थिति आदि का यंत्रों द्वारा निरीक्षण करने का स्थान। **वेध** = ग्रह नक्षत्र आदि की स्थिति तथा गति का परीक्षण।

वेध्ययंत्र = आकाशस्थ ताराओं का वेध (शलाका की सहायता से सूर्यादि वेध्य पदार्थों का अवलोकन। इस अवलोकन में वेध्य पदार्थ विद्ध होता है। अतः उसे 'वेध' कहते हैं।) वेध लेने का साधन। नौ प्रकार – चक्रयंत्र, चाप. तुरीय., गोलयंत्र, नाडीवलय, घटिकायंत्र, शंकु, फलक और यष्टि. (भास्कराचार्य कृत सिद्धान्तशिरोमणि के यंत्राध्याय में उल्लिखित)

वेध्ययंत्र = (सूर्य सिद्धान्त में उल्लिखित) – शंकु, चक्र,

कपाल, धनुष, नर, वानर, भू-भ गोल। इनके अतिरिक्त सम्राट यंत्र, नाडीवलय यंत्र, दिगंशयंत्र, भित्तियंत्र, शंकुयंत्र, रामयंत्र, जयप्रकाशयंत्र, षष्ठांशयंत्र, कपालयंत्र।

वैकुण्ठ एकादशी = मार्गशीर्ष शुद्ध एकादशी।

वैकुण्ठ चतुर्दशी = कार्तिक शुद्ध चतुर्दशी। यह हरि और हर के समागम की तिथि मानी गई है।

वैवस्वत मन्वन्तर = वर्तमान मन्वन्तर की पौराणिक संज्ञा। जिस विवस्वान् से यह संज्ञा हुई वह १४ मनुओं में ७ वां कहा गया है। मन्वन्तर = ७१ चतुर्युगों का कालखंड।

व्यतीपातयोग = सूर्य और चंद्र परस्पर आमने सामने (अर्थात् १८० अंश पर) होने का दिन। यह एक अशुभ मुहूर्त माना जाता है। इस योग पर जन्म होने पर शांतिविधि की जाती है। प्रत्येक मास में व्यतीपात योग आने पर विशिष्ट व्रत किया जाता है। (व्यतीपात योग के समान अन्य २८ प्रकार के योग ज्योतिष शास्त्र में माने जाते हैं।

शततारका = २७ नक्षत्रों में २४ वां नक्षत्र। यह १०० तारकाओं का एक पुंज सा है। अपर संज्ञा – शतभिषा या शतभिषक्।

शरत् संपात = जिस दिन रात और दिन का कालमान समान होता है। (दिनांक २३ सितम्बर) इस संपातबिंदु में आने पर सूर्य का दक्षिणायन प्रारंभ होता है।

शालिवहन शक = दक्षिण भारत में मान्यता प्राप्त वर्षगणना। इसके महीने दक्षिण भारत में अमान्त (और उत्तर में पौर्णिमान्त) माने जाते हैं। चैत्र शुद्ध प्रतिपदा से इसका प्रारंभ माना जाता है। शालिवाहन या शातवाहन महाराष्ट्र या दक्षिण भारत के सम्राट थे। उनका नाम इस कालगणना से जोड़ा गया है। शक राजाओं ने इस कालगणना का स्वीकार करने के कारण संवत्सर को 'शक' संज्ञा भी प्राप्त हुई।

शालिवाहन शक + ७८ या ७९ = ईसवी सन।

शालिवाहन शक + १३४ या १३५ = विक्रम संवत्

शालिवाहन शक + ३१७९ = युगाब्द।

स्वतंत्र भारत में शालिवाहन शक को मान्यता दी गई है।

शिशिर ऋतु = माघ और फाल्गुन मास का शीत समय। इस ऋतु में वृक्षों की पत्रशोभा शीर्ण होती है। इसी कारण 'शिशिर' संज्ञा दी जाती है।

शुक्र ग्रह की नौ वीथियाँ = अश्विनी, भरणी आदि क्रमानुसार तीन तीन नक्षत्रों में, नाग, गज, ऐरावत, वृष, गो, जरद्गव, मृग, अज और दहन नामक शुक्र की ९ वीथियाँ होती हैं।

शुद्धगणित = गणित शास्त्र के तीन प्रकारों में एक, जिसमें अंकगणित, बीजगणित, भूमिति, और संख्या सिद्धान्त का अन्तर्भाव होता है। (अन्य दो प्रकार – नियोज्य और व्यावहारिक)।

शुभतिथि = शुक्लपक्ष की एकादशी से पौर्णिमा तक पांच तिथियां। इन्हें क्रमशः नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, और पूर्णा कहते हैं। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से पंचमी तक पांच तिथियाँ। इन्हें भी नंदा, भद्रा आदि ५ संज्ञाएं दी जाती हैं।

शुभग्रह = सूर्य, गुरु, बुध, शुक्र और चंद्र।

श्रवण = महाभारत के अनुसार माना गया प्रथम नक्षत्र। २७ नक्षत्रों में २२ वां नक्षत्र। वेदों में इसीको श्रोणा कहा है। इस तीन तारका स्वरूप नक्षत्र का स्थान मकर राशि में होता है।

श्रविष्ठा = धनिष्ठा नक्षत्र की वैदिक संज्ञा। वेदांग ज्योतिष में नक्षत्र नामावली की गणना श्रविष्ठा से होती थी। ईसा पूर्व पांचवी शती से श्रवण से गणना होने लगी। अति प्राचीन काल में रोहिणी से नक्षत्रगणना होती थी।

श्वेतवाराह = वर्तमान कल्प की संज्ञा। (कल्प = १ सहस्र दिव्य युगों का कालखंड)। यही ब्रह्मा का एक दिन (उदय से अस्त तक) होता है।

षडष्टक = देखिए कूट गुण और खडष्टक।

सप्तर्षि (या सप्तऋषि) = कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज और (अरुंधती सहित) वसिष्ठ। ध्रुव-तारा की उलटी प्रदक्षिणा करने वाला सात ताराओं का समूह। इनमें छठे (वसिष्ठ) के निकट अरुंधती की तारका होती है। इस तारा समूह का उदय ईशान्य दिशा में और अस्त वायव्य में होता है। पुराणों के अनुसार सप्तर्षि तारासमूह एकेक नक्षत्र में १०० वर्षों तक रहता है। इस क्रम सें संपूर्ण नक्षत्र चक्र का भ्रमण २७०० वर्षों में पूर्ण होता है।

सप्तर्षि संवत् = काश्मीर तथा आसपास के प्रदेश में यह कालगणना प्रचलित है। विक्रम संवत् में ३०१९; ईसवी सन में ३०७५ और शालिवाहन शक में ३१५४ संख्या मिलाने पर सप्तर्षि संवत् का वर्ष मिलता है। काश्मीर में इसका आरंभ युगाब्द से २५ वर्षों बाद माना जाता है।

समयविभाग = ध्वंसि, निमेष, काष्ठा, कला, क्षण, मुहूर्त और अहोरात्र।

समय विभाग = १ दिन = १५ मुहूर्त। १ मुहूर्त = १५ क्षिप्र। १ क्षिप्र = १५ एतर्हि। १ एतर्हि = १५ इदानीं । १ इदानीं = १ प्राण।।

मुहूर्त के विभाग = इदानीं, तदानीं, एतर्हि, क्षिप्रम्, अचिरम, आशु, निमेष, प्राण, द्रवन्, अतिद्रवन्, त्वरन्, त्वरमाण, आशीयान् और जव।

सविता = उदयपूर्व सूर्य की संज्ञा। (सायण के अनुसार)

संगवकाल = दिन के पांच भागों में दूसरा भाग।

संध्याकाल (या पर्वकाल) = **प्रातः** – सूर्योदय के पूर्व दो घटिका। **सायं** – सूर्यास्त के पश्चात् दो घटिका। (१ घटिका = २४ मिनट) मध्याह्न काल भी संध्याकाल माना जाता है।

संपत्करनक्षत्र = जन्मनक्षत्र से दूसरा, ११ वां, और २० वां नक्षत्र। ये शुभकारक माने जाते हैं।

संवत्सर = बारह मासों का कालखंड। **चांद्रसंवत्सर** = ३५४ दिन। **सावन संवत्सर** = ३६० दिन। **सौर संवत्सर**

= ३६५ दिन। **बार्हस्पत्य** = ३६१ दिन। **नाक्षत्र संवत्सर** = ३२४ दिन। भारत में प्रमुखतया चैत्र शुद्ध प्रतिपदा से संवत्सर का प्रारंभ माना जाता है।

संवत्सर तनु = कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र। इन दो नक्षत्रों का संवत्सर, पुरुष का (तनु) शरीर माना जाता है।

संवर्तक योग = बुधवार की प्रतिपदा या रविवार की सप्तमी को संर्वतक योग कहते है। यह एक अशुभ योग माना जाता है।

संसर्प मास = पौष क्षयमास होने पर मार्गशीर्ष में उसका समावेश माना जाता है। इस युग्म-मास को संसर्प मास कहते हैं। देखिये अधिक मास।

संहिता स्कन्ध = (या मुहूर्त स्कंध) = त्रिस्कंध ज्योतिष शास्त्र का द्वितीय स्कन्ध। शुभ-अशुभ, ग्रह नक्षत्र आदि के योग का विचार इसका प्रमुख विषय है।

संहिता विभाग = ज्योतिष शास्त्र के फलितस्कन्ध के पांच विभागों में एक। इसमें ग्रहचार आदि फलों के अतिरिक्त वायसविरुत, शिवारुत, मृगचेष्टित, श्वचेष्टित, गवेङ्गित, अश्वेङ् गित, हस्तिचेष्टित, आदि के फल कहे जाते हैं।

सामुद्रिक विद्या = स्त्री-पुरुषों के शरीर पर विशिष्ट लक्षणों को देखकर उनके व्यक्तित्व तथा भवितव्य का अनुमान करने की विद्या। यह फल-ज्योतिष-शास्त्र का एक प्रकार है। हस्त सामुद्रिक में केवल हथेली पर की रेखाएँ तथा शंख, चक्र, पद्म, धनुष्य, बाण, आदि चिह्न देखकर भविष्य कथन किया जाता हैं।

सारणी = ज्योतिष शास्त्र के विशिष्ट ग्रन्थ। इनकी सहायता से पंचांग की रचना सुकर होती है।

सावन (दिन, मास, वर्ष) = एक सूर्योदय से पुनः सूर्योदय तक सावन दिन। ३० सावन दिन = १ सावन मास। १२ सावन मास = एक सावन वर्ष।

संक्रान्ति = सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में संक्रमण समय। इस संक्रान्ति के अनुसार सौर मासों की व्यवस्था मानी गई है। जिस मास में राशिसंक्रान्ति नहीं होती उसे "अधिकमास" कहते हैं। जब मासावधि में दो संक्रातियाँ होती हैं तब वह "क्षयमास" माना जाता है। वसिष्ठ के मतानुसार संक्रान्तियों का समय – **विष्णुपदी संक्रान्ति** – सूर्य का कुम्भ, वृश्चिक, वृषभ और सिंह राशियों में प्रवेश।

षडशीति संक्रान्ति = सूर्य का कन्या, धनु, मीन और मिथुन राशियों में प्रवेश।

यामायन संक्रान्ति = सूर्य का कर्क राशि में प्रवेश।

सौम्यायन संक्रान्ति = सूर्य का मकर राशि में प्रवेश।

विषुव संक्रान्ति = सूर्य का मेष तथा तुला राशि में प्रवेश। संक्रान्तियों का समय **पर्वकाल** कहा जाता है।

सिद्धान्त स्कन्ध (या गणित स्कन्ध) = त्रिस्कन्ध ज्योतिष शास्त्र के तीन स्कन्धों में से प्रथम। इसमें कालमापन और युति, ग्रहण, वेध आदि का विवेचन होता है। इसमें त्रुटिकाल से प्रलय के अन्त तक के काल की गणना, सौर, सावन. चान्द्र, नाक्षत्र आदि कालमानों के भेद, ग्रहों के संचार का ज्ञान; पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहों की स्थिति, वर्णन तथा यंत्रादि का वर्णन आदि विषयों का परामर्श होता है।

सिद्धिप्रद तिथि = शुक्रवार की नन्दा, बुधवार की भद्रा, मंगलवार की जया, शनिवार की रिक्ता और गुरुवार की पूर्णा। **नंदातिथि** – १, ६, ११ **भद्रातिथि** – २, ७, १२ **जयातिथि** – ३, ८, १३ **रिक्तातिथि** – ४, ९, १४ **पूर्णा** – ५, १०, पौर्णिमा (शुक्लपक्ष में। कृष्णपक्ष में) भी तिथियों की यही संज्ञाएं होती हैं। अमावस्या को पूर्णा कहते हैं।

सिद्धियोग = विशिष्ट वार और नक्षत्र का योग। मुहूर्त ज्योतिष के अनुसार यह शुभ माना जाता है। जैसे रविवार को हस्त, मूल, उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, तथा अश्विनी नक्षत्रों का योग।

सिनीवाली = चंद्रकलायुक्त अमावस्या। (देखिए कुहू)

सिंहस्थपर्व = सिंह राशि में गुरु ग्रह के प्रवेश की कालावधि। १२ वर्षो के बाद यह पुण्यपर्व होता है। कुम्भपर्व का ही यह एक अंश है। कुम्भपर्व का योग कन्याविवाह के लिये अप्रशस्त माना जाता है। इस पर्व में गो-प्रसव भी अशुभ माना जाता है।

सिंह संवत् = काठियावाड में प्रचलित एक कालगणना। शालिवाहन शक से १०३५ वर्ष या विक्रम संवत् से ११७० वर्ष बाद इसका प्रारंभ हुआ। इसका वर्षारंभ आषाढ शुद्ध प्रतिपदा से होता है। (इसका उल्लेख केवल सात अभिलेखों में मिलता हैं।

सुलोचना नक्षत्र = स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, कृत्तिका, उत्तरा भाद्रपदा, मूल और पूर्वाफल्गुनी।

सौम्यवार = रोहिणी नक्षत्र युक्त रविवार। ऐसे दिन में सूर्योपासना तथा स्नान, दान, जप, होम, तथा श्राद्ध आदि कर्म लाभदायक माने गये हैं।

सौम्यदित्यवार = रोहिणीनक्षत्रयुक्त आदित्यवार।

सौरदिन = सूर्य का एक अंशात्मक भोग्य काल।

सौर नक्षत्र काल = सूर्य के नक्षत्र विभाग के आक्रमण का समय।

सौरमास = एक राशिसंक्रांति से दूसरी राशि संक्रान्ति की कालावधि। सूर्य के मेप राशि संक्रमण से सौर वर्ष के प्रथम मास का प्रारंभ माना जाता हैं। मलबार तथा तमिलनाडू में सौर मासों के नाम मेप, वृषभ, आदि १२ राशि - नामों के अनुसार ही प्रचलित हैं। सौर मास में २९ से ३१ तक दिन होते हैं।

सौरवर्ष = सूर्य प्रत्येक नक्षत्र पर १३ १/३ दिनों तक रहता है; अतः १३ १/३ × २७ = ३६० दिन। ऋतुओं में इसका विभाजन होने से इसे आर्तव वर्ष भी कहते हैं।

सौरवर्ष = दो प्रकार – (१) सांपातिक (सायन) और (२) नाक्षत्र (या निरयन) सौर।

स्थिर करण = शकुनि, नाग, चतुष्पद और किंस्तुघ्न - इन चार करणों की संज्ञा।

स्त्रीग्रह = चंद्र, शुक्र और राहु।

स्वरोदयशास्त्र = सूर्यस्वर और चान्द्रस्वर (दाहिनी और बांई नासापुट से श्वासोच्छ्वास) के अनुसार भविष्य कथन का एक प्राचीन शास्त्र। इसे को शिवस्वरोदय भी कहते हैं।

स्वाती योग = स्वाती नक्षत्र में चन्द्रबिंब की अवस्था।

हस्त = १३ वां नक्षत्र। हस्ताकृति छह तारकाओं का यह एक पुंज होता है। इसका स्थान कन्या राशि में होता है।

हृदययोग = रविवार और संक्रान्ति का योग। इस योग पर सूर्योपासना की विधि होती है।

हृदयादित्यवार = संक्रांतियुक्त आदित्यवार। इस दिन सूर्याभिमुख वैठकर आदित्यहृदय मंत्र का जप करते हैं।

होरा = (१) मेपादि राशिका अर्धभाग। (२) अहोरात्र का २४ वां भाग। तीन प्रकार – जन्म होरा, यात्रा होरा और विवाह होरा।

होरास्कन्ध = त्रिस्कन्ध ज्योतिषशास्त्र के तीन स्कन्धों में तृतीय स्कंध। अपर संज्ञा- **जातक स्कन्ध**। व्यक्ति के जन्मकालीन ग्रह नक्षत्र आदि के आधार पर उसकी भवितव्यता का विचार इसका विषय होता है। अपर संज्ञा - फलज्यौतिपशास्त्र।

★ ★ ★

अवशिष्ट
धर्म परिभाषा

अग्निहोत्री = अग्निहोत्री के लिए उपयुक्त गाय।

अधोवेदन (अधोवेद) = प्रथम पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह करना।

अद्‌भुतशान्ति = अथर्ववेद के ६७ वें परिशिष्ट की संज्ञा।

अध्वर्युकाण्ड = अध्वर्युनामक ऋत्विजों के लिए वैदिक मंत्रों का भाग।

अनुवाक = ब्राह्मण ग्रन्थों का एक भाग।

अनुश्रविक (आनुश्रविक) = वेद शास्त्र से संग्रह किया हुआ।

अभिचार (पांच प्रकार) = मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण और विद्वेषण।

अरिक्थभाग् (अरिक्थीय) = पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा पाने में किसी दोष के कारण अनधिकारी पुत्र।

अरुणपराशर = एक वैदिक शाखा तथा उसके अनुयायी।

अरुन्धतीदर्शन = विवाहविधि के अन्तर्गत एक संस्कार। इस मे वधू को अरुन्धती का तारा पतिद्वारा दिखाया जाता है।

अवकीर्णी = व्याभिचार करने वाला ब्रह्मचारी। इस अपराधी को कठोर प्रायश्चित्त धर्मशास्त्र में कहा है।

अष्टका = श्राद्ध, महालय पक्ष। आश्विन वद्य अष्टमी तिथि के दिन् अष्टका श्राद्ध किया जाता है। नवमी को 'अन्वष्टका' श्राद्ध विधि होती है।

(धर्मशास्त्र में तीन 'अष्टका' माने है)

अस्थियज्ञ = और्ध्वदैहिक क्रिया का एक भाग।

आकूपार = कुछ साममन्त्रों की संज्ञा।

आचार्या = स्वयम् अध्यापन करने वाली।

(**आचार्याणी** = आचार्य की पत्नी। यह अध्यापन नहीं करती)

आपोशान = भोजन के प्रारंभ तथा अन्त में कहने योग्य मंत्र।

आम्रकुब्जासन = आम्रफल के समान शरीर की अवस्था करना। जैन श्रमणों की तपश्चर्या के लिए विहित एक आसन।

आर्षिक्य = ऋषियों द्वारा प्रस्थापित धर्म या आचार-विचार की पद्धति।

आयुष्य होम = दीर्घायुष्य की प्राप्ति के हेतु किया जाने वाला यज्ञ।

आर्चिक = ऋग्वेद से संबंधित।

आवर्तक = भुजकंठ पुरुष और ब्राह्मण स्त्री की संतान।

आवाप = मन्त्रों का बारंबार उच्चारण।

इष्टिश्राद्ध = एक विशेष औध्वदैहिक क्रिया।

उखासंभरण = शतपथ ब्राह्मण ग्रंथ का छठा अध्याय।

उञ्छशील (या उञ्छवृत्त) = खेत में बचे अनाज के कणों को चुन कर उपजीविका करने वाला व्रती।

उत्तरक्रिया = मरणोत्तर श्राद्धादि क्रिया। अन्त्येष्टि।

उत्थान-एकादशी = कार्तिक शुद्ध एकादशी। अपर संज्ञा देवोत्थान एकादशी या विष्णु प्रबोधिनी।

उत्पत्ति व्यंजक संस्कार = उपनयन में यज्ञोपवीत पहनाकर छात्रत्व की दीक्षा देना। इसीके कारण 'द्विज' संज्ञा प्राप्त होती है।

उत्सर्जन (या वेदोत्सर्जन) = वेदाध्ययन का स्थगन तथा उस स्थान से संबंधित एक षण्मासिक संस्कार।

उदक-द = पितरों को जलतर्पण करने वाला, उत्तराधिकारी।

उदकशान्ति = ज्वर दूर करने के लिए रोगी के शरीर पर अभिमन्त्रित जल छिड़कना। मरणोत्तर एक उत्तर क्रिया।

उदास्थित = ऐसा तपस्वी जिसका व्रतभंग हुआ है।

उद्‌गीति = सामवेद के मन्त्रों का गायन।

उद्‌गीथ = सामवेद का उत्तरार्ध। सामवेद के मन्त्रों का गायन

उद्‌ग्रह = धार्मिक कृत्यों से सम्पन्न होने योग्य कार्य।

उद्धान = यज्ञकुण्ड।

उद्‌बन्धक = वर्णसंकर से उत्पन्न अस्पृश्य जाति जो धोबी का काम करती है। सूनिक पुरुष और क्षत्रिय स्त्री की सन्तान।

उद्यापन = व्रतादि की समाप्ति की विधि।

उपदेश = सूर्य-चन्द्र के ग्रहण काल में पुण्यस्थान में मन्त्र की दीक्षा।

उपधर्म = अप्रधान धार्मिक नियम।

(मनु. २-२३७/४-१४७)

उपनिष्क्रमण = बच्चा चार मास का होने पर उसे घर के बाहर प्रथम निकालने का एक संस्कार। (मनु. २-३४)

उपपातक = पंच महापातकों के समान पातक।

उपमाता = मातृष्वसा (मौसी), मातुलानी (मामी), पितृष्वसा (फूफी), पितृव्यस्त्री (चाची), श्वश्रू (सास), पूर्वजपत्नी (बड़े भाई की पत्नी। इनके अतिरिक्त धाय भी उपमाता मानी जाती है।

उपयाज = यज्ञविधि के अतिरिक्त यजुर्वेदीय मंत्र।

उपविष्ट होम = देखिए जुहोति।

उपसंख्यान = अतिरिक्त निर्देशन। परिशिष्ट। उदा: कात्यायन के वार्तिकों में पाणिनीय सूत्रों का 'उपसंख्यान' हुआ है।

उपाकरण = प्रारंभिक अनुष्ठान करने के बाद वेद पाठ का उपक्रम।

उपाकर्म = वर्षारंभ के पश्चात् वेदपाठ प्रारंभ करने के पूर्व करने योग्य अनुष्ठान।

उपांग = शिक्षादि छह वेदांगों के परिशिष्ट स्वरूप ग्रंथ समूह। इस में पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र का अन्तर्भाव होता है। वेदों का अध्ययन **'सांगोपांग'** अर्थात् ६ और ४ उपांगों सहित होना प्रशस्त माना जाता है।

उपाध्याय = वेद का विशिष्ट अंश या उपजीविका के हेतु वेदांगों का अध्यापन करने वाला।

उपाध्याया = अध्यापन करने वाली स्त्री।

उपाध्यायानी = उपाध्याय की पत्नी।

उपाध्याया (यी) = स्वयम् अध्यापन करने वाली स्त्री। उपाध्यायानी तथा आचार्याणी = उपाध्याय तथा आचार्य की पत्नी। यह अध्यापन नहीं करती)।

ऊर्ध्वरेतस् = अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला।

ऋग्ब्राम्हण = ऐतरेय ब्राह्मण की अपर संज्ञा।

ऋत = (१) निश्चित नियम या दिव्य नियम। (इस अर्थ में प्रस्तुत शब्द का प्रयोग वैदिक मंत्रों में मिलता है।). (२) उञ्छवृत्ति (देखिए) (मनु. ४-४)। या शिलोञ्छवृत्ति।

ऋतसाम = सामवेद के एक अंश की संज्ञा।

ऋषि = (व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ (१) ऋषति = जानाति इति ऋषिः। (२) **प्रलीनाः वेदाः तपोबलवशात् यान् अर्षन्ति** प्रानुवन्ति ते ऋषयः। प्रलय काल में लुप्त वेद, तपश्चर्या के कारण जिन्हे स्वयं प्राप्त होते हैं उन्हें ऋषि कहते हैं।

ऋषिस्तोम = एक दिन में समाप्त होने वाला एक विशेष यज्ञ।

एकजाति = शूद्र वर्ण की संज्ञा। अन्य तीन वर्ण 'द्विजाति' कहे जाते हैं।

एकदण्डी = चार श्रेणियों के संन्यासियों में से 'हंस' श्रेणी के संन्यासी की संज्ञा।

एक पत्नी = (१) स्वाध्वी स्त्री (२) अनेक स्त्रियों में से पुत्रवती स्त्री। (मनु. ९-१८-३)।

एकोदक = आप्त संबंधी जिसका संबंध एक ही मृत पूर्वज को तर्पण करने के कारण होता है।

ऐकान्यिक = वेद के सस्वर पाठ में एक-दो अशुद्धियाँ करने वाला छात्र।

ॐ = मंत्रशास्त्र के अनुसार आदि बीजरूप अक्षर।

कण्डिका = शुक्ल यजुर्वेद का छोटे अनुभाग की संज्ञा।

कठधूर्त = (या कठश्रोत्रिय) = यजुर्वेद की कठ शाखा में पारंगत।

कन्या शुल्क = विवाहनिमित्त कन्या के पिता को दिया जाने वाला धन।

कपाली = ब्राह्मण माता तथा मछुवे पिता की संतान।

कपोतवृत्ति = एक संन्यासी व्रत। इसमें अपने भोजन का कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया जाता।

करपात्री = अपने हाथ में ही भिक्षा ग्रहण करने वाला संन्यासी।

करपीडन (पाणिपीडन) = विवाह योग।

करसूत्र = विवाहनिमित्त कलाई में बांधा जाने वाला सूत्र।

कर्मचाण्डाल = नीचतम कर्म करने वाला। (अत्याचारी प्रकार – असूयक, पिशुन, कृतघ्न, दीर्घकोपी, और जन्मना चाण्डाल (वसिष्ठ स्मृति)।

कष्टमातुल = सौतेली मा का संबंधी भाई या पुत्र।

कंसकार = ब्राह्मण द्वारा वर्णसंकर से उत्पन्न जाति। कसेरा। कांसे की ढलाई का काम करने वाला।

काकस्पर्श = मृत्यु के पश्चात् दसवाँ दिन। इस निमित्त भात का पिण्ड कौअे को दिया जाता है।

काण्डपृष्ठ = (१) औरस के अतिरिक्त अन्य पुत्र। (२) वैश्य स्त्री का पति।

कामोदक = आप्त संबंधियों के अतिरिक्त मित्रों द्वारा दिवंगत के प्रति ऐच्छिक तर्पण। (याज्ञ. ३-४)

कारावर = निषाद पिता और वैदेही माता का पुत्र। (मनु. १०-३६)

कालवेला = धर्मकृत्य करने योग्य दिन के विशिष्ट आधे प्रहर का समय।

कालंजर = धार्मिक साधुओं की सभा।

कुतपसप्तक = श्राद्ध विधि में दी जाने वाली सात वस्तुएँ शृंगपात्र, ऊर्णावस्त्र, रौप्य धातु, कुशमृग, सवत्सा धेनु, तिल और दौहित्र।

कुन्ताप सूक्त = अथर्ववेद के विशिष्ट सूक्तों की संज्ञा।

कृत्या = अभिचार मंत्रों के द्वारा शत्रुवध के लिए अग्निमध्य से उत्पन्न होने वाली क्षुद्रदेवता।

कृत्रिमपुत्र = गोद में लिया हुआ पुत्र। जन्मदाता की अनुमति के बिना यह पुत्र माना जाता है। धर्मशास्त्र में पुत्र के प्रकार १२ माने जाते हैं। (मनु. ९-१६९)

कौथुम = सामवेद की एक शाखा या उसका विशेष ज्ञानी।

कौलिक = वाममार्गी शाक्त संप्रदाय का अनुयायी।

क्षात्रि = क्षत्रिय पुरुष और शूद्र स्त्री की संतान। 'क्षत्रिय' क्षत्रिय स्त्री-पुरुष की संतान का वाचक है।

क्षेत्रज (क्षेत्रजात) = धर्मशास्त्रोक्त १२ प्रकार के पुत्रों में से एक। पुत्रोत्पत्ति के निमित्त विधिवत् नियोजित पुरुष द्वारा उत्पन्न सन्तान।

खरु = पति का वरण करने वाली स्त्री ।

गणदेवता = समूह में रहने वाले देवता। आदित्य, रुद्र, वसु आदि वेद पुराणोक्त गणदेवता हैं।

गर्भाधान = ऋतु स्नान के पश्चात् एक शुद्धिसंस्कार। इसी संस्कार से विवाह पूर्णतः वैध माना जाता है। (याज्ञ. १-११)

गुरुपुष्य मुद्रा = गुरु-पुष्य योग पर २७ बार खरीदे गए सोने की अंगूठी। यह मुद्रा सर्वत्र यशोदायक मानी जाती है।

गुरुश्रुति = गायत्री मंत्र की संज्ञा।

गोपथ = अथर्ववेद का एक ब्राह्मण।

गोसावित्री = गायत्री मंत्र की एक संज्ञा।

ग्रहशान्ति = आकाशस्थ ग्रहों के कारण सम्भाव्य पीड़ा की निवृत्ति के लिए यज्ञ, जप आदि दैवी उपचार।

घातचतुष्टय = घातचंद्र, घाततिथि, घातनक्षत्र और घातवार।

चंडातक = (अपर संज्ञा अर्धोरुक, दहर, अर्धवसन) = एक प्राचीन वस्त्र जो कमर से घुटने नर शरीर का भाग आच्छादित करता है। वाजपेय यज्ञविधि की विशिष्ट विधि में यजमान पत्नी इसे परिधान करती थी।

चरण = वेद की शाखा।

चरणामृत (चरणोदक) = देवता अभिषेक या गुरु आदि सत्पुरुष के चरणक्षालन होने पर अवशिष्ट रहा पवित्र जल।

चर्चा = वर्ण, आश्रम या संप्रदाय के अनुरूप व्रतमय आचरण।

चात्वाल = भूमि को खोद कर, बनाया हुआ यज्ञकुण्ड।

चैत्य = (१) समाधि स्थान का कोई स्मारक। (२) देवमूर्ति की स्थापना का स्थान।

जटावल्लभ = 'जटापाठ' की पद्धति के अनुसार वेदपाठ करने वाला वैदिक।

जन्माष्टमी = कृष्णजन्म की तिथि अर्थात् विक्रम संवत् के अनुसार भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी। (शालिवाहन संवत्सर के अनुसार श्रावण कृ. ८)।

जातिब्राह्मण = तप और ज्ञान से विहीन केवल जन्मतः ब्राह्मण।

जीवमातृका = प्राणियों का पालन पोषण करने वाली सात देवियों की संज्ञा। सात देवियाँ- कुमारी, धनदा, नन्दा, विमला, मंगला, बला और पद्मा।

जुहोति = 'जुहोति' क्रिया से सम्पन्न होने वाले यज्ञानुष्ठान। इन्हींको 'उपविष्ट होम' कहते हैं। 'यजति क्रिया से सम्पन्न होने वाले यज्ञानुष्ठानों को 'तिष्ठद्धोम' कहते हैं।

जैमिनि = सामवेद की एक शाखा की संज्ञा।

ज्येष्ठसाम = सामवेद के विशिष्ट भाग की संज्ञा।

तन्त्रम् = अनेक धर्म विधियों समान रहने वाली विशिष्ट धार्मिक विधि।

तन्त्रसंहिता = वामाचारी शाक्त संप्रदाय की पूजापद्धति का कथन करने वाले ग्रन्थों की संज्ञा।

तप्तमुद्रा = शरीर पर अंकित तप्तधातु की शंख, चक्र, आदि मुद्राओं के चिह्न। यह वैष्णवों में प्रचलित है।

तर्पण = दिवंगत पितरों की तृप्ति के लिए विधिपूर्वक जलसमर्पण। इसीको 'पितृयज्ञ' कहते है।

तलवकार = सामवेद की विशिष्ट शाखा या उसके ज्ञाता।

तिष्ठद्धोम (तिष्ठत् + होम्) = देखिए यजति।

तुरायण = एक प्रकार का यज्ञ।

तुषिता = समूहदेवता, गौण देवताओं का समूह। इनकी संख्या १२ या ३६ मानी जाती हैं।

तृच = तीन ऋचाओं की समष्टि।

तोयकृच्छ् = केवल जल पीकर ही उपोषण करने का व्रत।

त्रयी = पति-पुत्रवती स्त्री।

त्रयीधर्म = वैदिक धर्म का अपर संज्ञा।

त्रिकर्मा = स्वाध्याय, यज्ञ और दान करने वाले (ब्राह्मण के छह कर्म माने जाते हैं, उनमे से केवल तीन ही करने वाला।)

त्रिदण्डी = एकत्र बांधे हुए तीन दण्ड धारण करने वाला संन्यासी अथवा, वाग्दण्ड, मनोदण्ड, और कायदण्ड युक्त संन्यासी अर्थात् काया वाचा मन का पूर्ण संयम करने वाला।

त्रिपुण्ड्र = चन्दन या भस्म से शरीर पर अलिखित तीन रेखाएँ।

त्रिसवण = एक ही दिन में तीन कालों में होने वाले यज्ञ।

त्रेताग्नि = यज्ञाग्नियों का समाहार।

त्रैविद्य = तीन वेदों (या आध्यात्मिक शास्त्रों में निष्णात।

दक्षिणाम्नाय = भारत के 'दक्षिणावर्त' (दक्षिण प्रदेश) से संबंधित एक तांत्रिक सम्प्रदाय।

दशतयी = दश मण्डलात्मक होने के कारण ऋग्वेद की संज्ञा।

दशमहाविधा = महाकाली, उग्रतारा, पोडशी, (या त्रिपुरासुंदरी), भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमला इन शाक्तों की उपास्य दस देवी - स्वरूपों की आगमोक्त संज्ञा। निगमों में इन्हीं की विराट विद्या कहते हैं।

दशमी = जीवन की शताब्दी के अन्तिम दस वर्ष।

दशरथ चतुर्थी (या करक चतुर्थी) = कार्तिक वद्य चतुर्थी। इस तिथि को करक (मृत्तिका पात्रों) में दशरथ और दुर्गा की मूर्ति की पूजा करते हैं।

दशरथ-ललिता व्रत = आश्विन शुद्ध दशमी से आश्विन वद्य चतुर्थी तक (दस दिनों का) एक व्रत। (यह केवल आश्विन दशमी को ही करने की प्रथा है।) ललिता अर्थात् चन्द्रपत्नी रोहिणी इस की प्रधान देवता है। स्कन्द पुराण के अनुसार महाराजा दशरथ ने पुत्र कामना से यह व्रत किया था। व्रतावधि दस वर्ष।

दस्यु = चातुर्वर्ण्य से बाह्य, संस्कार-कर्महीन, म्लेच्छभाषा तथा आर्यभाषा बोलने वाले लोग (मनु. १०-४५), विश्वामित्र के अंध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिंद और मूतिव नामक पुत्र।

दान (चार प्रकार) = नित्य नैमित्तिक, काम्य और विमल (निष्काम)।

दानचतुष्टय = कन्यादान, गोप्रदान, भूमिदान और विद्यादान।

दान (पांच प्रकार) = धर्ममूलक, अर्थमूलक, भयमूलक, काममूलक और करुणामूलक।

दान के छह अंग = दाता, प्रतिगृहीता, (लेने वाला), श्रद्धा, देयपदार्थ, देश और काल।

दासीघट = महापातक करने वाले व्यक्ति को परिवार तथा समाज से बहिष्कृत करने की एक विधि। महापातक की व्यक्ति की 'जीवित् काल में ही' की गयी एक औपचारिक अंत्यक्रिया।

दिवाकीर्त्य = एक पितृगण की संज्ञा। प्रत्येक मास की शुद्ध प्रतिपदा को इस पितृगण की श्राद्ध विधि होती है।

दीक्षान्त = यज्ञादि धार्मिक कर्मों में संभाव्य त्रुटियों की शान्ति के निमित्त पूरक धर्मविधि।

दीक्षित = किसी विशिष्ट श्रेष्ठ कार्य के लिए प्रतिज्ञा आदि संस्कार ग्रहण करने वाला।

देवऋण = जन्मतः प्राप्तऋण या दायित्व जिससे मुक्तता मिलती है यज्ञ कर्म से। (**पितृऋण** से मुक्तता संतति के द्वारा और **ऋषिऋण** से मुक्तता ब्रह्मचर्य या अध्ययन से होती है।)

देवलक्ष्म = ब्राह्मणत्व का चिन्ह। यज्ञोपवीत।

देवशिल्प = देवताओं को प्रसन्न करने वाले यज्ञीय स्तोत्र।

दैवल (लक) = भूत प्रेतादि का उपासक। तामसी उपासक।

द्रव्यसंस्कार = यज्ञ या पूजा के साहित्य का शुद्धीकरण।

द्रुम = यज्ञोपयोगी वृक्ष। उदा. पलाश शमी औदुंबर इ.।

व्यामुष्यायण = दत्तक पुत्र जो जन्मदाता तथा दत्तक पिता इन दोनों की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है।

धर्मज्ञ समय = रागद्वेषरहित अनेक विद्वानों ने एकत्रित होकर एकमत या बहुमत से निर्धारित नियम। ('आपस्तंब' धर्मसूत्र)।

धर्मपत्नी = शास्त्रोक्त विधि के अनुसार विवाहित स्त्री। धार्मिक कृत्यों में पति के साथ सहभागी होने योग्य पत्नी।

धर्ममूल = वेद, स्मृतिवाङ्मय, सज्जनों का आचार, अपनी अभिरुचि, और सम्यक् संकल्पों से उत्पन्न कामना (या इच्छा)। (कुल पांच) (याज्ञवल्क्य स्मृति १.७)

धर्मलक्षण = (चतुर्विध) वेद, स्मृति, सज्जनों का आचार और आत्मप्रियता। (मनु. २-१२)

धर्मवणिक् (धर्मवाणिजिक) = अपने धर्माचरण का स्वार्थ के लिए दुरुपयोग करने वाला ढोंगी धर्माचरणी व्यक्ति।

धर्मशास्त्र = (१) स्मृति वाङ्मय की अपरसंज्ञा। (२) श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, और धर्मसूत्र - इन तीन नामों के सूत्र ग्रंथ। धर्मशास्त्र में अन्तर्भूत विषय – वर्णधर्म, आश्रमधर्म, राजधर्म, आचारधर्म, आपद्धर्म, उपवास, तीर्थयात्रा, दान, दायभाग, विविधपुत्र, प्रायश्चित्त, विवाह, श्राद्ध, पूजाविधि, इष्टापूर्त, दत्तकविधान, गोत्रप्रवर, तिथिनिर्णय, आशौच। इनका वर्गीकरण – वर्णधर्म, आश्रमधर्म, और नैमित्तिक धर्म - इन तीन विभागों में होता है।

धर्मशास्त्र के १२ विषय = संस्कार, आह्निक, श्राद्ध, काल, व्यवहार, प्रायश्चित्त, कर्मविपाक, व्रत, दान, शांति, तीर्थ और प्रतिष्ठा।

धर्मशास्त्र = सदाचार विषयक विधि निषेधात्मक शास्त्र। श्रुति, स्मृति, सदाचार और आत्मतुष्टि धर्म शास्त्र के प्रमाण हैं। (याज्ञ. १-७)। इनमें श्रुति सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। अन्य तीनों का महत्त्व अनुक्रम से माना जाता है। जनपद, ग्राम, और कुल के रीतिरिवाज भी धर्मशास्त्र में प्रमाण माने जाते हैं।

धर्मसाधन (२ प्रकार) = प्रवृत्ति और निवृत्ति – (मोक्ष) गीता ३-४)

धर्मस्कन्ध = वैदिक धर्म के आधार। (तीन धर्मस्कंध = यज्ञ, अध्ययन और दान। (अथवा श्रुति, स्मृति और पुराण- ये तीन प्रमाण हैं।

धर्मारण्य = तपस्वियों के निवासार्थ सुरक्षित अरण्य।

धात्या = यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करते समय गाए जाने वाली ऋचाएँ।

धूमावती = दश महाविद्या नामक देवियों में से विधवा रूपिणी महाविद्या की संज्ञा।

नांदीमुख = पिता, दादा और उनके पिता को अश्रुमुख पितर कहते हैं। अश्रुमुख पितरों के सभी पूर्वजों को नांदीमुख कहते हैं।

नारायणसूक्त = ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरुषसूक्त की अपर संज्ञा।

नास्तिक = १) वेदप्रामाण्य न मानने वाला। (२) मरणोत्तर जीवन तथा परलोक न मानने वाला। (३) सर्वशक्तिमान् ईश्वर का अस्तित्व न मानने वाला।

नास्तिकत्रय = तीन प्रकार के नास्तिक = (१) क्रियादुष्ट (किसी प्रकार का धार्मिक कृत्य न करने वाला); (२) मनोदुष्ट (३) वाग्दुष्ट (वाणी से धार्मिकता की निंदा करने वाला)।

नाहल = जातिबहिष्कृत व्यक्ति या समुदाय।

निघण्टु = वेदों के दुर्बोध शब्दों का कोश। यास्ककृत निरुक्त नामक वेदांग इसीका विवरणात्मक भाष्य है। वेदार्थ के निर्णय का यह प्रधान साधन है। अपर संज्ञा समाम्नाय।

निमित्तधर्म = प्रायश्चित्त स्वरूप कर्म।

नियोग = देवर या अन्य किसी योग्य व्यक्ति द्वारा प्रजोत्पादन करने की प्रथा।

निर्ग्रन्थ = जैन संप्रदायों की अपर संज्ञा।

निर्दोष सप्तमी = भाद्रपद शुद्ध सप्तमी को उपोषण का एक जैन व्रत। व्रतावधि सात वर्ष।

निर्हरण = दाह संस्कार के लिए शव को ले जाना।

निवपन (निवाप) = मृत संवंधियों के निमित्त जलतर्पण।

निवीत = माला की भांति यज्ञोपवीत को धारण करना।

निष्क्रम (निष्क्रमण) = चतुर्थ मास में शिशु को घर के बाहर निकालने का संस्कार।

न्याय = वैदिक स्वर या जटा आदि पाठ करने की पद्धति।

पंचगीता = भगवद्गीता, गणेशगीता, भगवतीगीता, सूर्यगीता और शिवगीता।

पंचनीराजन = दीपक, कमल, वस्त्र, आम और पान का पत्ता इन - पांचों से आरती उतारना।

पंचपात्र = एक श्राद्ध, जिसमें पांच पात्रों में रखकर भेंट दी जाती है।

पंचम वेद = महाभारत की अपर संज्ञा। चार वेदों के समान सर्वज्ञानमय तथा प्रमाणभूत ग्रंथ होने के कारण यह संज्ञा रूढ हुई है।

पंचमाता = गुरुपत्नी, मित्रपत्नी, भ्रातृपत्नी, पत्नीमाता, और स्वमाता। (वृद्ध चाणक्य ४-२०)

पंचमी व्रत = मार्गशीर्ष या माघ शुद्ध पंचमी से छह वर्षों तक प्रत्येक शुक्ल पंचमी को लक्ष्मी नारायण की पूजा का व्रत।

परपाकानिवृत्ति = दूसरों के घर भोजन न करने का व्रत।

परिचरणतन्त्र = श्राद्ध के अनुष्ठान की विशेष रीति।

परिप्लोष = शरीर के अन्दर की दाहपीडा।

पर्युक्षण = धार्मिक विधि में मन्त्रोच्चार के विना चारों ओर जल छिड़कना।

पवमान = आहिताग्नि के गार्हपत्य नामक यज्ञाग्नि की संज्ञा।

पवित्रारोपण (रोहण) = यज्ञोपवीत धारण करने का संस्कार।

पशुगायत्री = बलिदान के समय पशु के कान में बोला जाने वाला एक विकृत गायत्रीमंत्र (पशुपाशाय विद्महे।

विश्वकर्मणे धीमहे। तन्नो जीवः प्रचोदयात्।।

पाषंण्डक = (पाषण्डी) = धर्म संबंधी आचार-विचार को तुच्छ मानने वाला। नास्तिक।

पाण्डारक = (पण्ड = नपुंसक) = नपुंसक की सन्तति, अर्थात् अन्य पुरुष द्वारा उत्पादित। (पण्ड + आरक)

पादकृच्छ् = एक व्रत जिसमें हर तीसरे दिन उपवास होता है।

पालाशविधि = ढाक की लकड़ियों से मृत शरीर का दाह संस्कार।

पिण्डदान (पिण्डनिर्वपन) या पिण्डयज्ञ = (श्राद्ध विधि में पितरों को पिण्ड समर्पण करना।

पिण्डान्वाहार्य = पितरों के निमित्त हुआं भोजन।

पिण्डोदकक्रिया = श्राद्ध और तर्पण।

पितुःपुत्रः = पिता का शिष्य (अन्तेवासी)। (यहां विद्याकृत सम्बन्ध अपेक्षित है।

पितृकर्म (कार्य, क्रिया, कृत्य) = मृत पूर्वजों के निमित्त श्राद्ध आदि धार्मिक विधियां।

पितृपक्ष = भाद्रपद वद्य पक्ष। इसमें विशिष्ट तिथि को पितृकर्म प्रशस्त माना जाता है।)

पीठनायिका = चौदह वर्ष की कुमारिका, जो दुर्गा पूजा के अवसर पर दुर्गा का प्रतीक मानकर पूजी जाती है।

पुण्ड्र = संप्रदाय द्योतक चन्दनादि का चिह्न।

पुत्रकृतक = दत्तक आदि कृत्रिम पुत्र।

पुत्रेष्टि = (पुत्रेष्टिका) = पुत्रप्राप्ति की कामना से किया जाने वाला यज्ञ।

पुनर्भू = दुबारा विवाह करने वाली अक्षतयोनि स्त्री।

पूरक = श्राद्धविधि की समाप्ति होने पर पितरों को अर्पित पिण्ड।

पुरोहित = धार्मिक विधियों का संचालन करने वाला विशेषज्ञ।

पुष्टिकर्म = गृहस्थ जीवन में सुखसमृद्धि की प्राप्ति के निमित्त किया जाने वाला कर्म।

पुंसवन = गर्भधारणा होने पर पुत्र की अपेक्षा से किया जाने वाला धार्मिक संस्कार।

पूर्णपात्र = स्वामी को आनंददायक शुभार्ता सर्वप्रथम सुनाते हुए उसके महावस्त्र, अलंकार आदि का अपहरण करने की प्राचीन रूढ़ि को 'पूर्णपात्र हरण' कहते थे। (२) धार्मिक विधि में मंगलकलश पर स्थापित धान्य से पूर्ण पात्र।

पौत्रिकेय = कन्या का पुत्र जो अपने मातामह का वंश चलाता है।

पौनर्भव = पुनर्विवाहिता विधवा का पुत्र। धर्मशास्त्र में संमत १२ पुत्रों में से एक।

प्रतिग्रह = दान का स्वीकार। ब्राह्मणों का एक कर्तव्य।

प्रतिसर = (१) विवाहकंक्कण या विवाहसूत्र। (२) विवाहकंक्कण।

प्रतिपदादिव्रत = प्रतिपदा से पौर्णिमा तक प्रत्येक तिथि को किसी विशिष्ट एकमात्र पदार्थ का सेवन। (इसमें त्रयोदशी को गोमूत्र प्राशन कहा गया है।)

प्रदोष व्रत = प्रत्येक मास की शुद्ध और वद्य त्रयोदशी को शिवपूजा तथा नक्त भोजन का व्रत। शनिवार, सोमवार और भौमवार की प्रदोष तिथि को शनिप्रदोष, सोमप्रदोष और भौमप्रदोष कहते हैं।

प्रयाज = प्रधान यज्ञ से संबंधित एक अनुष्ठान।

प्रयोगशास्त्र = कल्पसूत्रों की अपरसंज्ञा।

प्रवर = एक विशेष प्रकार का आवाहन जो यज्ञ में अग्न्याधान के अवसर पर अग्नि को संबोधित किया जाता है।

प्रवर्ग = यज्ञीय अग्नि।

प्रवार्य = सोमयाग से पूर्व किया जाने वाला अनुष्ठान।

प्रव्रज्या = संन्यासी अवस्था। संन्यास व्रत

प्राजापत्य = एक यज्ञविधि जो पुत्रहीन पिता द्वारा अपने दौहित्र को उत्तराधिकारी करने हेतु किया जाता है।

प्राजापत्या = संन्यासदीक्षा लेने से पूर्व अपनी सारी सम्पत्ति का दान करना।

प्रीतिश्राद्ध = पितरों सम्मानार्थ किया जाने वाला समारोह।

प्रेतशौच = किसी आप्त की मृत्यु के निमित्त स्नान आदि शुद्धि क्रियाएं।

फट् = मांत्रिक प्रयोग के मन्त्रोच्चार के अन्त में उच्चारणीय एक शब्दध्वनी। (उदा. अस्त्राय फट् इ.)

फलस्थापन = सीमन्तोन्नयन का संस्कार। **बलि** (= भोजन) के पूर्व 'भूतयज्ञ' निमित्त आकाश में फेंका जाने वाले खाद्यात्र का अंश।

बृहत्साम = सामवेद का एक श्रेष्ठ मंत्र। भगवद्गीता में इसे परमात्मा की एक विभूति मानी है।

ब्रह्मकूर्च = एक कठोर व्रत। इसमें पौर्णिमा (या अन्य किसी) तिथि पर अहोरात्र उपोषण करने पर दूसरे दिन प्रातः गोमूत्र प्राशन किया जाता है।

ब्रह्मग्रह = वेदपारंगत एवं गर्विष्ठ ब्राह्मण का पिशाच।

ब्रह्मण्य = वेदों में निष्णात।

ब्रह्मपरायण = साम मंत्र की संज्ञा।

ब्राह्मण (ब्रह्म = वेद) = वेद का अध्ययन करने वाला या ज्ञानी।

ब्राह्मणाच्छंसी = ब्राह्मण (मंत्र से भिन्न वेदभाग) ग्रन्थों में पठित 'शस्त्रों (गुणानुवादों) का पारायण करने वाला ऋत्विक्।

भट्ट = क्षत्रिय का ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र।

भारुष = (१) अविवाहित कन्या से किसी व्रात्य द्वारा उत्पादित पुत्र। २) शक्ति की पूजा करने वाला।

भाल्लवि = सामवेद की एक शाखा।

भीमरथी = मनुष्य जीवन के सत्तरवें वर्ष में सातवें महीने की सातवीं रात। यह समय अति भयानक संकट का माना जाता है। इस निमित्त 'भीमरथ शान्ति' नामक धार्मिक विधि होती है। (साठवें वर्ष में इसी कारण **'उग्ररथ शान्ति'** होती है।)

भूर्जकण्टक = ब्राह्मण का वेश्यापुत्र।

भोल = वैश्य द्वारा नटी में उत्पादित पुत्र।

भ्रातृद्वितीया (यमद्वितीया) = कार्तिक शुक्ल द्वितीया।

मंगल प्रतिसर (या मंगलसूत्र) = विवाहोत्तर सौभाग्यवती स्त्रियों का एक मणिमय अलंकार। पति का देहान्त होने पर यह निकाला जाता है।

मण्डल = ऋग्वेद के खण्ड की संज्ञा। समस्त ऋग्वेद दस मण्डलों या आठ अष्टकों मे विभाजित है।

मदनचतुर्दशी = चैत्र शुक्ला चतुर्दशी। मदनोत्सव की तिथि।

मधुप्राशन = नवजात शिशु के शुद्धीकरण के सोलह संस्कारों में एक। इसमें शिशु को मधु चटाया जाता है।

मन्त्रकरण = सस्वर वेदपाठ।

मन्त्रजागर = मन्त्रपारायण सहित जागरण।

मन्त्रस्नान = अधमर्षण आदि पवित्र मन्त्रों के उच्चारण सहित स्नानक्रिया।

महापुरी = (१) **धर्मतीर्थ** (धर्मनीति के अध्यापन का स्थान (२) **अर्थतीर्थ** (नदीतीरस्थ व्यापार केंद्र (३) **कामतीर्थ** (कलोपासना तथा सौंदर्यपूर्ण कारीगरी का केंद्र) और (४) **मोक्षतीर्थ** (आध्यात्मिक साधना का स्थान)। इन चार प्रकार के तीर्थों से युक्त नगरी।

महाशूद्र = उच्चपदस्थ शूद्र।

महाशूद्र = आभीर जाति का पुरुष (ब्राह्मण पुरुष और उग्र स्त्री की संतान)। स्त्री महाशूद्री = (उग्र- क्षत्रिय पुरुष और शूद्रा स्त्री की संतान)

महास्नान = शीतोदक, उष्णोदक, शंखोदक, समुद्रजल, गोरस, आदि तथा पंचगव्य, गोष्ठ, चतुष्क, वल्मीक, नदीतट इत्यादि स्थानों की मृत्तिका के उपयोग से होने वाला देवता या देवता-प्रतिबिंब का अभिषेक।

मातृकान्यास = मातृका का अर्थ है स्वर और वर्ण। मातृकाओं का अनुस्वारयुक्त उच्चारण करते हुए कंठमूल, नाभि, लिंगमूल, मूलाधार, भ्रूमध्य आदि स्थानों में न्यास (स्थापना) करना। दो प्रकार – बहिर्मातृकान्यास और अन्तर्मातृकान्यास। संहारमातृकान्यास में बहिर्मातृका न्यास के उलटे क्रम से स्वर वर्ण लिए जाते है।

मातृयज्ञ = ब्राह्मी, माहेश्वरी, चण्डी आदि अष्ट मातृदेवताओं के निमित्त किया जाने वाला यज्ञ।

मिथ्याजीव = मंत्रतंत्रों के द्वारा जारण-मारण आदि प्रयोग करने वाले लोग।

मृतस्नान = किसी की मृत्यु होने के निमित्त होने वाला स्नान।

मृताशौच = किसी आप्त संबंधी की मृत्यु के कारण धर्मतः आने वाला आशौच।

मोदक = क्षत्रिय पिता और शूद्र माता का पुत्र।

म्लेच्छ देश = यज्ञिय देश से भिन्न देश। (मनु. ९-२३)।

यजति = 'यजति'क्रिया से सम्पन्न होने वाले यज्ञविधि। इन को तिष्ठद्धोम (तिष्ठत् + होम) कहते हैं।

यजत्र = अग्निहोत्री। यज्ञीय अग्नि का यथाविधि रक्षण करने वाला।

यज्ञकण्टक = यज्ञविधि में विघ्न डालने वाले या बाधा उत्पन्न करने वाले यजमान आदि।

यज्ञकीलक = यज्ञीय बलि पशु बांधने हेतु स्थापित स्तंभ या खूंटा।

यज्ञद्रव्य (या संभार) = यज्ञ विधि में प्रयुक्त करने योग्य समिधा आज्य आदि पदार्थ।

यज्ञपत्नी = यजमान की धर्मपत्नी।

यज्ञायज्ञीय = एक सामसूक्त की संज्ञा।

यज्ञिय देश = वह प्रदेश जिसमें कृष्णसार जाति का मृग स्वभावतः संचार करता है। इसके अतिरिक्त देश को 'म्लेच्छदेश' कहते हैं। (मनु. ९-२३)।

याज्य = यज्ञविधि कराने के निमित्त पुरोहित को प्राप्त होने वाली दक्षिणा।

याज्या = यज्ञ की आहुति की पद्धति।

योनिसंकर = भिन्न वर्ण या जाति के स्त्री-पुरुषों का वैवाहिक संबंध।

राजन = क्षत्रिय पुरुष द्वारा शूद्रा स्त्री से अथवा अविवाहित स्त्री से उत्पन्न जाति की संज्ञा।

राजन्य शब्द क्षत्रिय पुरुष तथा स्त्री की सन्तान का वाचक है।

लेपभागी = चौथी, पांचवी और छटी पीढ़ी के पूर्वज। (लेप = श्राद्ध के पिण्ड बनाने पर हाथ में चिपका हुआ अन्नांश।) पिण्डभागी (पिता, पितामह, प्रपितामह) पूर्वजों को पिण्डदान करने पर यह **लेप** चौथी, पांचवी और छठी पीढ़ी के पूर्वजों द्वारा ग्रहण किया जाता है।

वर्चोग्रह = बद्धकोष्ठता, कब्ज।

वर्धापन = अर्भक का नालच्छेदन। जन्मदिन का उत्सव।

वंशब्राह्मण = सामवेद से संबंधित ब्राह्मणग्रन्थ।

वास्तोष्पति = एक वैदिक देवता जो घर की आधारशिला की अधिष्ठात्री मानी जाती है।

वृद्धिश्राद्ध = पुत्रजन्मादि के निमित्त होने वाला श्राद्ध।

वृषली = १२ वर्ष की अविवाहित कन्या। रजोदर्शन होने पर भी अविवाहित अवस्था में पिता के घर में रहने वाली कन्या। (२) शूद्रस्त्री।

वेदपाश = वेद का अल्पज्ञानी।

वेदसंन्यास = वैदिक कर्मकाण्ड का त्याग।

वैखानस = वानप्रस्थाश्रमी पुरुष।

व्रतस्नातक = ऐसा व्यक्ति जिसके ब्रह्मचर्याश्रम की विधिवत् समाप्ति हो चुकी है।

व्रतादेश = बालक के यज्ञोपवीत का संस्कार।

व्याहृति = सन्ध्याविधि के समय ओंकार के सात उच्चारणीय, 'भूः भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्यम् इन पवित्र शब्दों की संज्ञा। इनमें से 'भूः भुवः स्व'' का प्रयोग अधिक होता है।

शंखकार = ब्राह्मण द्वारा वर्णसंकर से उत्पन्न एक जाति।

शान्तिहोम = मुख्य यज्ञविधि में संभाव्य पापादि दोषों के प्रशमननिमित्त हवनविधि।

शूद्र = त्रैवर्णिक समाज के अतिरिक्त समाज की संज्ञा। (दो प्रकार) = (१) **निरवसित** = जिनके उच्छिष्ट पात्र क्षार मिश्रित जल से मांजने पर भी शुद्ध नहीं माने जाते। उदा. चाण्डाल आदि। (२) अनिरवसित। जिनके उच्छिष्ट कांस्यपात्र क्षारयुक्त जल से मांजने पर शुद्ध माने जाते हैं। उदा. बढ़ई, लुहार, आदि। संस्कृत व्याकरण में 'शूद्राणामनिरवासितानाम्' (२-४-१०) इस सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि भाषा में द्वन्द्व सामासिक शब्द करने वाले विद्वान् इस भेद की ओर ध्यान देते थे। 'अनिरवसित' (अबहिष्कृत शूद्रवाचक शब्दों का समास प्रस्तुत सूत्र से समाहार द्वन्द्व होता है उदा. तक्षायस्कारम् इ.। किन्तु "निरवसित" शूद्र वाचक शब्दों का इतरेतर द्वन्द्व समास होता है। (उदा. चण्डालमृतपाः)।

शिक्षागुरु = योगाभ्यास शास्त्राध्ययन आदि साधना शिष्यों से करवाने वाले गुरु।

शूद्रावेद = शूद्रा स्त्री से विवाह

श्राद्धिक = श्राद्ध के अवसर पर दिया जाने वाला उपहार, तथा उसे ग्रहण करने वाला व्यक्ति।

सनाभ्य = सात पूर्वजों तक एक ही वंश से संबंधित परिवार के लोग।

सपिण्ड = समान पितरों को पिण्डदान करने के कारण सम्बन्धी।

सपिण्ड = पितृवश में मूल पुरुष से सातवीं पीढ़ी तक की सन्तति और मातृवंश में मूल पुरुष से पंचम पुरुष पर्यंत सन्तति की संज्ञा।

सप्तद्वीपव्रत = चैत्रशुद्ध प्रतिपदा से प्रत्येक मास में सात दिनों तक जम्बू, शाक, कुश, कौंच, शाल्मली, गोमेद और पुष्कर - इन पुराणोक्त पृथ्वी तक के सात द्वीपों की यथाक्रम पूजा का व्रत।

सन्ध्यावन्दन = प्रातः और सायंकाल में ब्राह्मणों द्वारा की जाने वाली उपासना।

संप्रोक्षण = जल के छीटों से अभिमंत्रित करना।

संस्था = प्रेत का दाह संस्कार या जलविसर्जन।

समानोदक = समान पितरों को जलतर्पण करने के कारण संबंधित लोग। यह संबंध सातवीं से १४ वीं पीढ़ी तक माना जाता है।

सम्प्रदाय = परम्परा से प्राप्त विचार तथा आचार की पद्धति।

सर्वस्वार = एक वैदिक यज्ञ की संज्ञा। इसमें रोगपीड़ित व्यक्ति आत्मबलिदान करता है।

सहसान = यज्ञ, आहुति।

सहोढ (सहोढज) = धर्मशास्त्र में कथित. १२ प्रकार के पुत्रों में से एक। विवाह के समय गर्भवती का पुत्र।

सान्नाय्य = घृतयुक्त हव्य पदार्थ।

सापिण्ड्य = समान पितरों को पिण्डदान करने से प्राप्त संबन्ध।

सार्ववेदस = यज्ञ या अन्य पुण्यकार्यों में अपना संपूर्ण धन समर्पण करने वाला।

सावित्रम् = यज्ञोपवीत का संस्कार। यह संस्कार होने के पश्चात् ब्रह्मचारी को सवितृदेवता विपयक गायत्री मंत्र का जाप करने का अधिकार प्राप्त होता है।

सुत्या = (१) यज्ञ के लिए सोमरस तैयार करना। (२) यज्ञ की आहुति।

सोमप = पितरों के तीन गणों में से एक।

सौदायिक = विवाह के समय कन्या को उसके माता, पिता आदि संबंधियों से प्राप्त होने वाला धन। यह उसका निजी धन होता है।

स्थण्डिल = (१) यज्ञनिमित्त रचित पीठ। (२) स्थण्डिल = (यज्ञभूमि) पर शयन करने वाला साधु।

स्नातक = ब्रह्मचर्याश्रम में अध्ययन समाप्त होने पर स्नानविधि से उसकी समाप्ति करने वाला युवक। स्नातक होने पर वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने को पात्र होता है।

स्मार्त = स्मृतियों के अनुसार धर्माचरण करने वाला।

स्वकालीन = पितरों के तीन गणों में से एक।

स्वयंदत्त = दत्तक ग्रहण करने वाले माता-पिता का अपनी इच्छा से पुत्रत्व स्वीकारने वाला पुत्र। धर्मशास्त्रोक्त १२ पुत्रों में से एक।

स्वयंवरा = अपने पति को स्वयमेव चुनने वाली कुमारी।

स्वरू = यज्ञीय स्तंभ का एक अंश।

स्वस्तिवाचन = (स्वस्तिवाचनिक) = प्रत्येक मंगल कार्य के आरंभ में होने वाला एक धार्मिक विधि।

स्वस्त्ययन = दान का स्वीकार होने पर ब्राह्मण द्वारा उच्चारित मंगलकामनापूर्ण मंत्रपाठ।

हविष्यान्न = यज्ञादि पवित्र विधि में खाने योग्य अन्न। हविष्य = आहुति के योग्य पदार्थ।

होत्र = हवन में आहुति के योग्य पदार्थ।

★ ★ ★

अवशिष्ट ज्योतिष परिभाषा

अक्षौरिम = चूडाकर्म या केशमुंडन के लिए अशुभ दिन या नक्षत्र।

अखण्डतिथि = सूर्योदय से कर्मकाल की समाप्ति तक पर्याप्त तिथि।

अश्वत्यमुहूर्त = अश्वत्थ = अश्विनी नक्षत्र। अश्विनी नक्षत्र से युक्त मुहूर्त।

अशंक = विवाह के लिए उचित ग्रहदशा।

अष्टम राशि = किसी व्यक्ति की नक्षत्र राशि से आठवीं राशि जो प्रायः अशुभ मानी जाती है।

असंक्रान्त = अधिकमास या मलमास का विशेषण।

एकनाडी (या नाड) = पुरुष और स्त्री के जन्म नक्षत्र के अनुसार एक ही नाडी (आदि, मध्य या अन्त्य) नाडी होना। ऐसी अवस्था में विवाह अप्रशस्त माना गया है।

आजपाद = पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र।

ईशानकल्प = चार युगों का काल।

ईसराफ = फल ज्योतिष का चतुर्थ भाग।

उपनक्षत्र = गौण नक्षत्र पुंज। इनकी संख्या ७२९ मानी जाती है।

ऋतुसन्धि = श्रावण (वर्षारंभ) कार्तिक (शिशिरारंभ) और चैत्र (निदाघारंभ) - इन तीन मासों की संज्ञा।

कल्प = एक हजार चतुर्युग अर्थात् ब्रह्मा का एक दिन। इसके अन्त में प्रलय होता है। उसे नैमित्तिक प्रलय या 'ब्राह्मी रात्री' कहते हैं।

कालग्रंथि = एक वर्ष का समय।

कालाष्टक = आषाढ मास-कृष्ण पक्ष के प्रथम आठ दिन।

कायचिकित्सा = आयुर्वेद के आठ अंगों में से तीसरा अंग। इसमें समस्त शरीर में व्याप्त रोगों की चिकित्सा का प्रतिपादन होता है।

कुतप = दिन के १५ मुहूर्तों में से अष्टम मुहूर्त की संज्ञा।

कुम्भलग्न = दिन का वह समय, जब राशिचक्र का उदय क्षितिज के उपर होता है।

कुल तिथि = शुक्ल पक्ष की चतुर्थी, अष्टमी, द्वादशी और चतुर्दशी।

कुलवार = मंगलवार और शुक्रवार की संज्ञा।

कूटसंक्रान्ति = मध्यरात्रि के समय में सूर्य का अन्य राशि में संक्रमण।

कूर्मद्वादशी = पौष शुक्ला द्वादशी।

कृष्णव्दादशी = आषाढ कृष्ण द्वादशी।

केन्द्र = जन्मकुण्डली में लग्न से पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान।

केरल = ज्योतिर्विज्ञान की अपर संज्ञा।

क्षुरनक्षत्र = क्षौरकर्म के लिए शुभ नक्षत्र।

क्रान्ति (या क्रान्तिवृत्त) = सूर्य का भ्रमणमार्ग। पृथ्वी का उष्णकटिबन्ध।

क्षयतिथि = दो सूर्योदयों के पूर्व ही समाप्त होने वाली तिथि।

क्षेत्रलिप्ता = क्रान्तिवृत्त की एक कला।

क्षेत्रांश = क्रान्तिवृत का एक अंश।

खविद्या = ज्योतिष विद्या।

गुलिककाल = दिन का अशुभ काल।

गुलिक = केरलीय ज्योतिष में मान्य एक उपग्रह। यह शनिपुत्र माना जाता है।

ग्रहदशा = जन्मराशि की दृष्टि से ग्रहों की स्थिति। ग्रहों के शुभाशुभ फल का समय।

ग्रहयुति = एक ही राशि में अनेक ग्रहों का सामीप्य।

ग्रहाधार = ध्रुवनक्षत्र का विशेषण। अपर संज्ञा- ग्रहाश्रय। ध्रुव ही नक्षत्रों का स्थिर केन्द्र है।

घटिकामण्डल = विषुवद्वृत्त।

घातवार = अशुभ दिन। (इसी प्रकार घाततिथि, घातनक्षत्र, घातचन्द्र)।

चन्द्रग्रह = कर्कराशि, (राशिचक्र में चौथी राशि)।

चपेटी = भाद्रपद शुक्ल षष्ठी तिथि।

जातकचक्र = जन्मकुण्डली।

जामित्र = जन्मकुण्डली में लग्न से सातवाँ घर।

ज्ञानशास्त्र = भविष्यकथन का शास्त्र।

ज्योतिषचक्र = राशिचक्र।

तुरीययंत्र = ग्रहणवेध लेने में उपयुक्त एक यंत्र।

दशयोग = एक दुर्लभ मुहूर्त की संज्ञा। ज्येष्ठमास, शुक्लमास, दशमी तिथि, बुधवार, हस्तनक्षत्र, गरकरण, आनंदयोग, व्यतीपात, कन्याराशि का चन्द्र, और वृषभ राशि में सूर्य इन दस योगों का एकत्र आना।

दिक्शूल = विशिष्ट दिशा में प्रवास का निषेध करने वाली ग्रहदशा या ग्रहनक्षत्र योग।

देवयुग = कृतयुग की अपरसंज्ञा।

दैवयुग = १२००० दैववर्षों का काल।

नक्षत्र पाठक = ज्योतिषी।

नक्षत्रविद्या = ज्योतिष गणित।

नक्षत्रसूचक = अल्पज्ञ ज्योतिषी।

नरयंत्र = धूपघड़ी।

नाडी (डि) = आधे मुहूर्त का अथवा २४ मिनटों का कालमान।

नाडीत्रय = ज्योतिष्यशास्त्र में आद्य० मध्य० अन्त्य०।

नाडी मण्डल = आकाशीय विषुवत् रेखा।

पंचसिद्धान्त (ज्योतिषशास्त्र के) = रोमक, पैतामह, वासिष्ठ, पौलिश और सौर। वराहमिहिर कृत पंचसिद्धान्तिका ग्रंथ में इनका विवरण है।

पंचांग (काल के) = तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण।

जिस कालदर्शन पुस्तक में इन पांच अंगों से कालविचार होता है उसे व्यवहार में पंचांग कहते हैं।

पर्वकाल = दोनों पक्षों की अष्टमी, तथा पौर्णिमा और अमावस्या। चन्द्रमा का, पर्वसंधि में से निकलने का समय।

पर्वसन्धि = पौणिमा (या अमावस्या) तथा प्रतिपदा के मध्य का समय। पौर्णिमा (अमावस्या) की समाप्ति और प्रतिपदा के प्रारंभ का समय।

पितृतिथि (दिन.) = अमावस्या की संज्ञा।

पित्र्यनक्षत्र = मघा नक्षत्र की संज्ञा।

प्रश्नविचार = फलित ज्योतिष शास्त्र की एक शाखा।

प्रहर = दिन का आठवाँ भाग। करीब ३ घंटों का समय।

फलकयन्त्र = भास्कराचार्यद्वारा प्रचारित एक ज्योतिर्विषयक उपकरण।

बहुलपक्ष = महीने का कृष्ण पक्ष (वद्य पक्ष)

ब्राह्ममुहूर्त = रात्रि के अंतिम प्रहर की समाप्ति तथा दिन के प्रथम प्रहर के प्रारंभ का समय। यह अतिपवित्र समय माना जाता है।

भीष्मपंचक = कार्तिक शुक्ला एकादशी से पौर्णिमा तक के पांच दिन। ये अतिपवित्र माने जाते हैं।

भाग्यऋक्ष = पूर्वा फल्गुनी नक्षत्र की संज्ञा।

भुजंग = आश्लेपा नक्षत्र की संज्ञा।

मकरसप्तमी = माघ शुक्ल सप्तमी।

मन्त्रस्थान = जन्मकुण्डली में पांचवां स्थान।

मन्वन्तर = ४३ लक्ष + २० सहस्त्र संवत्सरों का काल। ब्रह्मा का एक दिन १४ मन्वन्तरों का होता है। इस समय सातवाँ (वैवस्वत) मन्वन्तर चल रहा है।

महायुग = चारों युगों का समाहार। ३ लक्ष २० हजार मानव वर्षों का काल।

मानरन्ध्रा = कालमान देखने की छिद्र युक्त घटी। घटिका यन्त्र।

मास = दो प्रकार (१) अधिमास और (२) क्षयमास।

मासप्रमित = अमावस्या या शुद्ध प्रतिपदा के चन्द्रबिंब का विशेषण।

मृगशिरस्, मृगशीर्षन् = पांचवे नक्षत्र की संज्ञा।

यष्टियन्त्र = समय मापन का एक पुराना साधन।

योनिदेवता = पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र की संज्ञा।

योगत्रय (फलज्योतिष में) = कालयोग, ग्रहयोग और प्रारब्धयोग।

विक्रम = जन्मकुण्डली में लग्न से तीसरा घर।

विघटिका = एक घटिका के समय का साठवाँ भाग। (लगभग २४ सेकंद के समय का काल)

विपक्ष = चन्द्रमा का एक पक्ष से दूसरे पक्ष में संक्रमण करने का दिन।

वैकुण्ठ चतुर्दशी = कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी।

रामनवमी = चैत्र शुक्ला नवमी। श्रीरामचन्द्र की जन्मतिथि।

राशिभोग = सूर्यादि ग्रहों का किसी राशि में रहने का काल।

राहुसूतक = सूर्य या चन्द्र का ग्रहण। राहु का जन्म।

रिक्ता तिथी = चान्द्र मास की चतुर्थी, नवमी या चतुर्दशी तिथि।

लग्न = वह बिन्दु जहां ग्रहपथ मिलते हैं।

सप्तनाडीचक्र = ज्योतिष का एक रेखाचित्र जो वर्षभविष्य का कथन करने हेतु खींचा जाता है।

संवत्सर (चार प्रकार) = चान्द्र संवत्सर, सौर. नाक्षत्र, सायन (या संपात.)। इनके अतिरिक्त पांचवाँ वार्हस्पत्य संवत्सर भी माना जाता है।

सहस्य = पौष मास की अपर संज्ञा।

सुनफा = ज्योतिष शास्त्रोक्त एक योग।

* * *

अर्थ विभाग

संस्कृत वाङ्मय कोश

परिभाषा खण्ड (पूर्वार्ध)

अनुक्रमणिका

अर्थ विभाग

वर्ग-१ कौटिलीय अर्थशास्त्र की संकीर्ण परिभाषा १९७
वर्ग-२ कौटिलीय अर्थशास्त्र की राज्यव्यवहार परिभाषा २३५
वर्ग-३ कौटिलीय अर्थशास्त्र की आर्थिक व्यवहार परिभाषा २४७
वर्ग-४ कौटिलीय अर्थशास्त्र की युद्धविषयक परिभाषा २५३
वर्ग-५ कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित अधिकारी वर्ग २६२
वर्ग-६ कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित नर-नारी जीवन संबंधी परिभाषा २६४
वर्ग-७ *(परिशिष्ट)* कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित संकीर्ण शब्दावली २६६
वर्ग-८ (विविध ग्रंथों से संकलित) अर्थशास्त्रीय शब्दावली (संकीर्ण) २७२
वर्ग-९ कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित - रत्न/धातु अलंकार २८०
वर्ग-१० कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित - कृषिविषयक परिभाषा २८३
वर्ग-११ कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित - वनस्पतियाँ २८४
वर्ग-११ अ *(परिशिष्ट)* अमरकोश में उल्लिखित - वनस्पतियाँ २८४
वर्ग-१२ धातु और रत्न पर्यायशब्द २८९
वर्ग-१२ अ *(परिशिष्ट)* धान्यादि भोज्य पदार्थ २८९
अवशिष्ट अंश २९१
वर्ग-१३ पशु-पक्षीवर्ग पर्याय शब्द २९६
वर्ग-१४ कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित - वास्तुकर्मविषयक परिभाषा २९८
वर्ग-१५ वास्तुशास्त्र एवं गणित परिभाषा २९९

अर्थ विभाग कुल प्रविष्टियाँ – ५२२०

वर्ग - १

कौटिलीय अर्थशास्त्र की परिभाषा (संकीर्ण)

कौटिलीय अर्थशास्त्र, भारतीयं अर्थव्यवहार तथा राजनीति का सुव्यवस्थित प्रतिपादन करने वाला सर्वश्रेष्ठ संस्कृत ग्रंथ है। इसी ग्रंथ के अर्थशास्त्र तथा राजनीति विषयक पारिभाषिक शब्दों का उपयोग उत्तरकालीन सभी ग्रंथकारों ने किया है। अतः प्रस्तुत कोश में कौटिलीय परिभाषा का अकारादि अनुक्रमानुसार समग्र चयन तथा विवरण (उपलब्ध अनुवाद ग्रंथों के अनुसार) किया गया है। अर्थशास्त्र का विभाजन अधिकरण, अध्याय और प्रकरण में हुआ है। मूल ग्रंथ में कुल १५ अधिकरण, १५० अध्याय और १८० प्रकरण हैं। प्रस्तुत कोश में **शब्द के साथ दिया हुआ क्रमांक अध्याय का है।** इससे मूल ग्रंथ में शब्द की खोज करने में जिज्ञासुओं को सुविधा होगी। प्रस्तुत संकीर्ण शब्दावली का विषयानुसार वर्गीकरण भी आगामी वर्गों में किया है। अतः यत्र तत्र पुनरुक्ति हुई है। **– संपादक**

अकर्मण्य = बेकार, निरुद्योगी। (१२)

अकान्ति = (लेख दोष) (२ प्रकार) – (१) अचारुविषय और (२) विराग (फीके अस्पष्ट) अक्षर। (३१)

अकृतार्थमान = जिसका धन देकर सत्कार नहीं किया। (२१)

अकृत्य = शत्रु के वश में जाने वाला सेवक। राजा पर निष्ठा न रखने वाला। (११-१३)

अकृत्योपगृहीत = दुष्कृत्य के कारण कैद किया गया मनुष्य। (२१)

अकृष्या भूमि = खेती के लिये अयोग्य भूमि। (२३)

अक्षणताडन = भलते समय भटकने पर सजा। (५७)

अक्षपटल = सराफा का विभाग। सराफ कट्टा। दफ्तरदार की कचहरी। (रजिस्ट्रार का कार्यालय) (२५,२८)

अक्षशाला = सोने-चांदी के अलंकार बनाने का स्थान। (३४) शासकीय कार्यालय। (८६)

अक्षीब = समुद्री नमक।

अगरु = (कोशप्रवेश्य रत्नों में अन्तर्क्षत) विविध प्रकार = जोंगक, दोंगक, पारसमुद्रक, तैलपर्णिक, सौवर्णकुड्यक, पूर्णद्वीपक, भद्रश्रीय। (३२)

अगार = संग्रह का स्थान (२-२६)

अग्निजीवी = लुहार इत्यदि अग्नि पर उपजीविका करने वाले। (५७)

अग्निदण्ड = निषिद्ध समय पर घर में आंग जलाने का दण्ड। (१/८पण)

अग्निधारण करने वाले पदार्थ = सरल, देवदारु, पूतितृष्ण, गुग्गुल, श्रीवेष्टक, सर्ज – इन वृक्षों के रस, तथा खर, उष्ट्र, अज, अबी इन प्राणियों की विष्टा (कुल ८)। (१४४)

अग्निरस = विष। (१२)

अग्निशाला = स्नानगृह ।(६५)

अंगविद्या = सामुद्रिक लक्षणों का शास्त्र। (१-११)

अंगार = कोयला। (३३)

अंगुष्ठ-सन्दंशन = अंगूठा काटने की सजा। (२४)

अंसपथ = स्थलमार्ग।

अंबरीषोदपानक = रोगोत्पादक जल के कुंड। (२४)

अजस्रपण्य = नित्योपयोगी विक्रेय माल। (३७)

अट्टाल = चबूतरा। (२४)

अणिद्वार = बाहर का दरवाजा। (६७)

अतिनयन = सीमा के पार ले जाना।

अत्यय = द्रव्यदण्ड।

अतिचार = अनाचार, अवैध व्यवहार। (४) (६०)

अतिसन्धान = ठगाना, विश्वासघात, वंचना, प्रतारणा। (१४३)

अतिसन्धि = ठगाना।

अत्याहित = अतिसाहस।

अत्याहारित =जिससे अधिक धन का अपहरण हुआ।

अद्वैध्य = अविभाजनीय।

अत्यय = नुकसान , हानि (३०) कर न देना। (३३)

अदण्डकर = जिस भूभाग पर दण्ड या कर लागाया नहीं जाता। (२२)

अदृष्टकर्मा = कर्तव्य कर्म का अनुभव न होने वाला अननुभवी। (८)

अदेवमातृक = उत्तम देश का एक लक्षण। जहां की खेती वर्षा पर निर्भर नहीं होती। (९७)

अधिकरण = विभाग (२६)। विभागप्रमुख (२८), अधिकारपद (३०)। उत्पादन या आय का विभाग (२८)। शासन का कोई विभाग (१३७)।

अधिकरण ग्रहण = गिरवी (माल) रख कर ऋण लेना (५८)।

अधिकरणी = हथियार, औजार।

अधिचार = बलात्कार। (८६)

अधिमासकं = अधिक मास का हिसाब. (२८)

अधिवेदनिक = पति द्वारा दूसरा विवाह करने के कारण प्राप्त नुकसान भरपाई। (६०)

अधिष्ठाता = कार्यकर्ता अधिकारी। (१८)

अध्यक्ष = अधिकारी, विभागप्रमुख। (३०, ९३)

अध्यक्षनिबन्ध = अधिकारी का आदेश। (४९)

अध्यक्षपुरुष = विभाग प्रमुख का सहायक निकृष्ट अधिकारी। (८६)।

अनपाकर्म = नकारना। (६३)

अनर्थ = जिस लाभ के कारण अपनी प्रजा से या शत्रुराज्य से भय उत्पन्न होता है। (१२८)

अनर्थसंयोग = धन का अपव्यय। (अधि १ अ ७)

अनर्थसंशयापद् = सभी ओर अनर्थ होने की परिस्थिति में

मित्र द्वारा सहायता जब होती है ऐसी परिस्थिति। (१२८)

समन्ततो अनर्थापद् = जब सभी ओर से शत्रुओं की पीडा उत्पन्न होती है। (१२८)

अनवसित सन्धि = जिस सन्धि में समाप्ति की कोई कालमर्यादा नहीं होती। (१०९)

अनिभृत सन्धि = अनिश्चित सन्धि, जिसमें बलवान् राजा को दी गयी भूमि वापिस लेने की संभावना होती है। (१०९)।

अनिष्कासिनी = गोषावाली स्त्री। (५८)

अनिसृष्ट = अनुमति रहित, बिना परवाना । (९२)

अनिसृष्टोपजीवी = बिना परवाने के माल तैयार करने वाला। निश्चित उद्योग न करने वाला। (३३)

अतिसृष्टोपभोक्ता = बिना अनुमति निक्षेप का उपभोग लेने वाला। (६९)

अनीकस्थ = हाथी की परीक्षा करने वाला। (२३)

अनीकस्थान = सैन्य शिबिर (छावनी) का स्थान। (१६)

अनीश्वर = अनधिकारी (६२)

अनुग्रह = टोल या चुंगी की माफी। (३६)

अनुग्रह = किसान को दी हुई तकावी। (२२)

अनुग्रहकारण = सार्वजनिक निर्माण कार्य के लिए आवश्यक सामान विनामूल्य देना। (२२)

अनुग्राह्य = (१) क्षमा करने योग्य (७७)।
(२) सहायता देने योग्य (१०६)

अनुजीविवृत्त = नौकरों के कामधाम के नियम। (५)

अनुनय = तीन प्रकार = पैसे मांगने के निमित्त,
(२) अतिक्रम की क्षमायाचना के निमित्त और
(३) किसी का महत्त्व बढ़ जाने के कारण।

अनुपात = पीछा करना।

अनुबन्ध षड्वर्ग = अर्थ के तीन और अनर्थ के तीन अनुबन्ध (परिणाम), देखिये अर्थ-अनर्थ (लाभ-हानि) (१२८)

अनुमेय राजवृत्त = भूत घटनाओं से भावी घटनाओं का तर्क करना। (९)

अनुयोग = (पूछताछ) के विषय = देश, जाति, गोत्र, नाम, कर्म, सार (संपत्ति), सहाय, निवास। (कुल ८)। गवाह से यह जानकारी न्यायांलय में प्राप्त की जाती है। (८५)

अनुलास = दो सीमाओं के बीच की खुली भूमि।

अनुलोमपुत्र = उच्च वर्णियों से अवरवर्णीय स्त्री द्वारा उत्पन्न पुत्र। (६४)

अनुष्ठान = बंदोबस्त, व्यवस्था (अनुतिष्ठेत्)। (२६)

अनूपग्राम = नदी या समुद्र के तीर पर के गाव। (४९)

अनेकमुख = अनेक स्थानों में चलने वाला व्यवहार।(४६)

अनेकस्थानतल (पण्यगृह) = अनेक मंजिलों वाला (२६)

अन्तःकोप = प्रजाजनों में असंतोष ।(१६)

अन्तःपाल = गांव या देश की सीमा की देखभाल करने वाला अधिकारी। (१२) (२२) (४२)

अन्तरमात्यकोप = मुख्य मंत्रियों के अतिरिक्त मंत्रियों का प्रक्षोभ। (१२४)

अन्तरारंभशेष (आय) = मंजूर किए हुए खर्च से बची हुई राशि। (२७)

अन्तर्धि = नेता (विजिगीषु) और शत्रु इन दोनों के बीच वाला दुर्बल राजा। (उदा. भारत और चीन के बीच नेपाल) (१११)

अन्तरिका = दरवाजे की पटिया (पॅनेल)। (६५)

अन्तर्वंशिक सैन्य = अन्तःपुर का सैन्य। (१२९)

अन्तर्वेशिक = अन्तःपुर का सेवक, जिसे नाटक में कंचुकी कहा जाता है। (१२)

अन्यंगा = पंगु स्त्री। (४४)

अन्यजात = लावारिस माल (३६)

अन्यजात आय = नष्टप्रस्मृत, आयुक्तदण्ड, पार्श्व, परिहीणिक, औपायनिक, अस्वम्, अपुत्रकम्। (आठ प्रकार) (२७)

अन्वाधि = नियमानुसार पालक (स्त्री का)। (६०)।

अन्वाधि = अन्य प्रदेश में किसी को वापस लौटाने निमित्त दिया हुआ द्रव्य। ६९) (देखिये आदेश)।

अन्वाधेय . विवाह निमित्त स्त्री को मिलने वाला उपहार। (५९)

अन्वायन = विवाह के वाद पिता के घर से पति के घर जाने वाला स्त्री का सामान।(४२)

अपचय = क्षय-व्यय = युग्य (कार्यक्षम) पुरुष का अपचय (नाश) ही क्षय और हिरण्यधान्य का अपचय (ह्रास) ही व्यय होता है। (१२५)

अपचरित प्रकृति = जिस राजा के अत्याचारों से प्रजाजन त्रस्त हैं ऐसा राजा। (१०३)

अनपय = सामदामादि शास्त्रोक्त उपायों का अयोग्य देशकाल में प्रयोग। (इसीसे आपत्तियों का उद्भव होता है।) (१२६)

अपराजिता = लक्ष्मीदेवी, दुर्गादेवी। (२५)

अपराधी (३ प्रकार) = (१) युक्त (मुख्य) (२) उपयुक्त (अपराधी का सहायक) और (३) तत्पुरुष (अनुचर)।

अपरान्त कोंकण। (४५)

अपरिपणित सन्धि = धन देकर सन्धि। (७)

अपवर्तक = जिसमें मोती और सुवर्णमणि अनुक्रम से होते हैं ऐसी एकावली। (३२)

अपवाहित स्थान = रिक्त अधिकारपद। (१४५)

अपविद्धपुत्र = परित्यक्त पुत्र। इस पर जो संस्कार करता है उसी का यह धर्मतः पुत्र माना जाता है। (आजकल के अनाथालयों में इसी प्रकार के पुत्र कन्या पाले जाते हैं। (६४)

अपव्ययमान = आरोप नामंजूर करने वाला। (२९)

अपशब्द = (लेखदोष) लिंग, वचन, काल और कारक (विभक्ति) का अयोग्य प्रयोग। (३१)

अपसर्प = परीक्षा करने की व्यवस्था। (१२)

अपसर्पण = किसी की योजना या नियुक्ति करना। (१३)

अपसर्पप्रणिधि = गुप्तचरों की रवानगी। (१३)

अपसार = अपराधी का पलायन। (३५)

अपसारभूमि = युद्ध संकट में आश्रय का स्थान। (१-१६)

अपसारित = (मिलावट से सोना चोरना) त्रिपुटकाप- सारित, शुल्बापसारित, वेल्लकापसारित, हेमापसारित। (कुल चार प्रकार)।

अपसृत सन्धि = जमानत की रक्कम देकर सन्धि। (७)

अपहीन = स्वायत्त खेत में कृषि उत्पादन न करने पर दण्ड। (२२)

अपाश्रयवान् = परावलंबी (५८)

अपुत्रक (आय) = पुत्रहीन की संपत्ति के रूप में प्राप्त। (२७)

अपुत्रा = जिस के पुत्र अल्पजीवी होते हैं ऐसी स्त्री। (४९)

अप्रतिहत = विष्णुदेवता। (२५)

अप्राप्तव्यवहार = आर्थिक इत्यादि व्यवहारों का अनधिकारी, अज्ञान। (७०)

अप्रार्थनीय = न्याय के अतिरिक्त किसी को न मानने वाला अधिकारी।

अप्रणीत = उपयोग में न लाया हुआ।

अप्सारक = नेपाली कंबल जो वर्षा से संरक्षण करता है। (३२)

अभयदान = (देने योग्य) पतित, पराङ्मुख, अभिपत्र (शरणागत), मुक्तकेश, शस्त्रभयविरूप। (कुल ५)

अभयवनपरिग्रह = संरक्षित वन में रहने वाले प्राणी। (४७)

अभिग्रह = गूढाजीवी अपराधी को पकड़ना। इसके तीन प्रमुख उपाय = शंकाभिग्रह (शंका के कारण पकड़ना), रूपाभिग्रह (चोरी का माल पकड़ना) कर्माभिग्रह (अपराध स्थान के लक्षणों से पकड़ना)। (८३)

अभित्यक्त पुरुष = वध्य पुरुष, जिसे फांसी की सजा हुई हो। (२६)

अभिपत्र = शरणागत। (१८)

अभिप्रजात = कुलशीलवान्। (७०)

अभिभर्त्सन = किसी को ऐसी धमकी देना कि आगे चलकर वे संकट में फसेंगे। (३१)

अभियान में दोष = क्षय (मनुष्यनाश), व्यय (द्रव्यनाश), प्रवास, प्रत्यवाय (पाप), परापकार, शरीरबाधा। (१०६)

अभियास्यत्कर्म = शत्रु पर आक्रमण। (१२२)

अभियुक्त = न्यायालय में पराभूत प्रतिवादी। (५८)

अभियुक्तोपजाप = आरोपी के साथ मेलजोल। षडयंत्र। संगनमत। (२९)

अभियोक्ता = आक्रमणकारी (प्रकार)- धर्मविजयी, लोभविजयी, असुरविजयी (कुल ३)। (१३६)

अभियोग = न्यायालयीन मामला, दोषारोप। (२९)

अभियोग करने योग्य = ३ प्रकार- मूलहर (मूल धन का व्यय करने वाला)। तादात्विक (यथाशक्ति निर्वाह करने वाला), कदर्य (कंजूस)। (१११)

अभिरूपदायक = योग्यता के अनुसार दी हुई कृषि योग्य भूमि। (२२)

अभिशस्त = पूर्वदण्डित अपराधी। (५८)

अभिहितसन्धि = अपरिवर्तनीय सन्धि। (१०९)

अभेद्य सैन्य = जिसके देश, जाति, शिल्प (कला) समान होते हैं और जिसमें संगठन अच्छा होता है। (१२३)

अभ्यन्तर कोप = मंत्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज इन में से किसी एक या अनेकों का उत्थान। (१२४)

अभ्यवपत्ति = संकट में सहायदान (व्यसनसाहाय्य)। (३१)

अभ्यागारिक = अन्तपुर का सेवक वर्ग। (२१)

अभ्रपटल = अभ्रक के टुकड़े। (३५)

अमात्य = मंत्रिमंडल। मुख्यमंत्री। (९७)

अमात्यसंपत् = अमात्य या मंत्री के विविध गुण। (९) (३०)

अमित्र = (शत्रु) समान सीमा वाले राज्य के स्वामी। (दो प्रकार = सहज, कृत्रिम अथवा चल और स्थित। (१११)

अमित्रभावी (प्रकार) = अनात्मवान् (दुष्ट), नित्यापकारी, शत्रुसहित पार्ष्णिग्राह, व्यसनयातव्य, व्यसन (संकट) - अभियोक्ता (कुल-५)। (११६)

अय = (सुदैव) दैवयोग से इष्ट फल की प्राप्ति। (अनिष्ट फल की प्राप्ति = अनय अर्थात् दुर्दैव)। (९८)

अरति = २४ अंगुलियों का अंतर, मुड़ा हाथ (यही एक धनुष्य का अंतर होता है) (२५) (२६) (१३३)

अरिप्रकृति = विजिगीषु की सीमा से संलग्न भूमि का स्वामी। (९८)

अरिविशेष = बलवान सामन्त, व्यसनी, अनपाश्रय, दुर्बलाश्रय, (आक्रमण करके इनका नाश करना इष्ट होता है) (९८)

अरिष्ट = औषधोपयोगी मदिरा। (४६)

अर्घपतन = बाजारभाव घसरना, मंदी आना। (६९)

अर्घवृद्धि = महंगाई। (२७)

अर्घान्तर = तेजी मंदी। (३७)

अर्घारोपण = मूल्य में बढोत्री करना। (३७)

अर्थ = (लाभ) के तीन अनुबंध (परिणाम) = अर्थानुबन्ध. (जिससे नवीन लाभ होता है) निरनुबन्ध = जिससे लाभ या हानि दोनों नहीं होते)। (१२७) (१२८) **अनर्थानुबन्ध** = जिससे अनर्थ उत्पन्न होते हैं।

अनर्थ के तीन अनुबंध = अर्थानुबंध, निरनुबन्ध, अनर्थानुबंध। (१२७) (१२८)

अर्थकारणिक = रकम जमा करने वाला। (२८)

अर्थकृच्छ्र = आर्थिक संकट। (९२)

अर्थ त्रिवर्ग = धर्म, अर्थ, काम।

अनर्थ त्रिवर्ग = अनर्थ, अधर्म, शोक।

संशय त्रिवर्ग = अर्थ-अनर्थ, धर्म-अधर्म, काम-शोक। (१२८)

अर्थदूषण = ४ प्रकार = अदान, आदान, विनाश, परित्याग। (११९)

अर्थशास्त्र = (मनुष्याणां वृत्तिः अर्थः। मनुष्यवती भूमिः इत्यर्थः) = अर्थ शब्द का अर्थ है मनुष्यों की जीविका का उपाय, यह उपाय याने जिस पर मनुष्य रहते हैं ऐसी भूमि। उस भूमि के लाभ और पालन का उपाय प्रतिपादन करने वाला शास्त्र। (१५०)

अर्थशास्त्र के प्रतिपादन की ३२ युक्तियाँ = १) अधिकरण (प्रमुख विषय का निर्देश। २) विधान = (प्रकरणों का अनुक्रम)। ३) योग = वाक्यों की योजना। ४) पदार्थ = पद-शब्द - का अर्थ विशद करना, ये शब्द परिभाषात्मक होते हैं। ५) हेत्वर्थ = प्रतिपादित विधान का पुष्टीकरण। ६) उद्देश्य = संक्षेप में अधिक अर्थ का कथन। ७) निर्देश = विस्तार में अर्थ का कथन। ८) उपदेश ९) अपदेश (अन्य व्यक्तियों के मतों का उल्लेख। १०) अतिदेश = कथित वाक्यों द्वारा अकथित की सूचना। ११) प्रदेश = भावी वक्तव्य की सूचना। १२) उपमान। १३) अर्थापत्ति। १४) संशय १५) प्रसंग (पूर्वोक्त क्रम का निर्देश। १६) विपर्यय = एक विषय बताने पर दूसरा उसके विपरीत है यह कथन। १७) वाक्यशेष = वाक्यार्थ की पूर्ति के लिये आवश्यक शब्द की कल्पना। १८) अनुमत = दूसरे मत का उल्लेख करने पर उसका खंडन न करना। १९) व्याख्यान = अनेक प्रकारों से विवरण। २०) निर्वचन = व्युत्पत्ति पर आधारित अर्थ का कथन। २१) निदर्शन. = उदाहरण से विधान की सिद्धि। २२) अपवर्ग = अतिव्याप्त विधान को सीमित करने वाले वाक्य का प्रयोग। २३) स्वसंज्ञा = लेखक की अपनी परिभाषा। २४) पूर्वपक्ष = खंडन योग्य मत। २५) उत्तर पक्ष। २६) एकान्त = निरपवाद विधान। २७) अनागतावेक्षण = आगामी प्रतिपादन की पूर्वसूचना। २८) अतिक्रान्तावेक्षण = पूर्व प्रतिपादित विषय का स्मरण। २९) नियोग = इसी प्रकार से, अन्य प्रकार से नहीं, ऐसा निश्चित कथन। ३०) विकल्प। ३१) समुच्चय = परस्पर पोषक दो उपायों का कथन। ३२) ऊह्य = सामान्य दिग्दर्शन।

अर्थ संप्राप्ति के उपाय = पार्ष्णिग्राह और आसार का प्रतिघात, मनुष्यक्षय, धनव्यय, प्रवास की व्यवस्था, प्रत्यादेय (ऋण का प्रत्यर्पण), मूलरक्षण (राजधानी का रक्षण) (कुल ६)। (१२८)

अर्थसमुदय = द्रव्यसंचय। (३०)

अर्थ संशयापद् = सभी ओर से प्राप्य लाभ से पार्ष्णिग्राह के द्वारा जब विघ्न आता है। (१२८)

समन्ततो अर्थापद् = जब सभी ओर से लाभदायक परिस्थिति होती है। (१२८)

अर्थोपधा = द्रव्य के प्रलोभन से गूढ परीक्षा। (१०)

अर्धगुच्छ = २४ यष्टियों वाला मोतियों का हार। (३२)

अर्धबाहु = युद्धोपयोगी स्थितयंत्र, गिराने योग्य दो स्तम्भ। (३९)

अर्धमाणवक = मध्यमणियुक्त १, ३, ५ या १० यष्टि (सर) वाला मोतियों का हार (फलकहार, त्रिफलक, पंचफलक। (३२)

अर्धसीतिक = आधे हिस्से की बोली पर खेती करने वाला। (६८)

अर्धहार = ६४ यष्टियों वाला मोतियों का हार। (३२)

अलंकारभूमि = वेषभूषा का स्थान (२०)

अल्पभोग (मित्र) = अल्प संपत्तिवाला (१०७)

अवक्लृप्तिक = अधिकार के लिये अधिक योग्य। (२८)

अवक्रय = किराया। (६५)

अवक्रयी = किरायेदार। (५७)

अवक्रीतक = बेचे गये माल की रकम। (६९)

अवक्षार = म्लान, क्षीण। (१२२)

अवक्षिप्त = अपमानित। (१०)

अवक्षेप = अधिकार से निवृत्त करना। (१०)

अवक्षेप = भट्टी, अंगीठी (३५)

अवगूर्णन = शस्त्र लेकर मारने दौड़ना।

अवघाटक यष्टि = मोतियों के हार का एक प्रकार। (३२)

अवध्वंसन = धातु की ठोकपीट। (३५)

अवनिधान = अवनिधत्ते = लोगों के पास धन को गुप्त रखना। (३०)

अवमर्द = कीले पर कब्ज़ा। (१३)

अवमर्शभित्ति = छप्पर की आधार भित्ति। (६५)

अवरवर्ण लोगों के ३ गुण = सर्वभोगसहत्व, बहुत्व, ध्रुवत्व। (१०९)

अवरुद्ध = कारागार में बंद रखा हुआ कैदी। (१३)

अवरुद्धवृत्त = बंदिवान राजपुत्रों से व्यवहार। (१)

अवरुद्धादान = बंदिवान राजपुत्र आदि को मुक्त करने का प्रयोग। (१२४)

अवलेपन = मुलामा चढ़ाना। (३४, ३५)

अवश्य सैन्य = जिस का सैन्य वश में नहीं रहता। (१०७)

अवस्कन्द = शौचकूप। (१०)

अवस्कन्दित = निर्माण कार्य में बाधा (हडताल आदि से) डालने वाले। (४४)

अवस्कर = कचरे का ढेर। (६५)

अवस्कर भ्रम = पाखाने के गंदे पानी की नाली। (६५)

अवस्राव (अवस्रावयति) = परदेश में धन जमा रखना। (३०)

अविनय = विरुद्ध उत्थान, विद्रोह, बगावत (बंड-मराठी में) (९१)

अविसंपादक = वचनं भंग न करने वाला। (१८)

अश्मक = पश्चिम महाराष्ट्र। (४५)

अश्वतर = खच्चर। (५०)

अश्वदमक = घुड़सवार सिपाही। (२२)

अश्वयुद्ध (प्रकार) = अभिसृत, परिसृत, अतिसृत,

उन्मथ्यावधान, वलय, गोमूत्रिक, मण्डल, प्रकीर्णिका, व्यावृत्तपृष्ठ, अनुवंश, भग्नरक्षा, भग्नानुपात। (कुल १२)। (१३३)

अश्ववाह = घुड़सवार या घोड़े की देखभाल करने वाला, सईस। (५१)

अश्वविभाग = क्रयोपगत, आहव (युद्ध) लब्ध, आजात, (अश्वशाला में जन्म पाये हुये) साहाय्यकागत, पणस्थित (गिरवी रखे हुए), यावत्कालिक (किंचित् काल के लिए रखे हुए) (कुल ६)। (५१)

अश्वशाला का प्रमाण = अश्वायाम द्विगुण विस्तार अर्थात् घोडे की लंबाई से दुगुनी चौड़ाई होनी चाहिये। (५१)

अश्वाध्यक्ष = अश्वविभाग का प्रमुख अधिकारी। (५१)

अष्टक = मोम। (३५)

अष्टादशकमंडल = प्रत्येक राज्य की विदेश नीति का यह पृथक् एकक होता है। इसमें प्रत्येक विजगीषु, मित्र और मित्र के अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश तथा दण्ड का अन्तर्भाव होता है। कुल चार मंडलों में १२ राजा और उनकी ६० प्रकार की द्रव्यप्रकृतियां अन्तर्भूत होती हैं। (९८)

असत्प्रगह = अयोग्य व्यक्ति को उच्चाधिकार देना। (१०)

अस्थितुत्थ = हड्डी के चूर्ण का लेप। (३४)

अस्वामिविक्रय = दूसरे की वस्तु की लेन देन। (३)

अहिभय = राजपुत्र को किसी स्थान पर बंद कर रखने के कारण संभाव्य भय; जैसा सांप को बंद रखने के कारण हो सकता है। (१७)

अहोरात्रोत्तर = अधिक कालमर्यादा। (१३६)

आकर-कर्मान्त = खनि से संबंधित उद्योग।

आकर कर्मान्त प्रवर्तन = (२) खदान का उत्खनन। (१३)

आकरिक = खदान के मज़दूर। (३३)

आक्रन्द = विजिगीषु राजा की पिछाड़ी का मित्र राजा। (पार्ष्णिग्राह की सीमा से संलग्न राज्य का स्वामी) अर्थात् पिछाड़ी के शत्रु का शत्रु। (९८) (१११)

आक्रन्दासार = विजिगीषु राजा की पिछाड़ी के मित्र का मित्र (अर्थात् परोक्ष मित्र)। (९८)

आक्रमण करने योग्य शत्रु = क्षीण पुराण भक्त (जिसका पुराना धान्य समाप्त हुआ), अगृहीत नवभक्त (जिसने नये धान्य का संग्रह नहीं किया), असंस्कृत दुर्ग, क्षीणतृणकाष्ठोदक। (कुल ४) (१२२)

आक्रमण करने योग्य शत्रुसैन्य = अभूमिष्ठ, विभूतिप्राप्त, संहतानीक, भिन्न, प्रचल, विमुख, दूष्य फल्गुबल, विषम, श्रान्त, विश्वस्त, प्रमत्त, आकृष्ट, अवसुप्त, अकृतहस्त्यश्व, प्रतिनिवृत्त, प्रतिसूर्यवात, (१३१)

आक्षपटले गाणनिक्याधिकार = जनगणना। (२)

आगन्तुलवण = विदेश से आया हुआ नमक। (३३)

आचरण हस्ती = सब प्रकार की गति जानने वाला औपवाह्य हाथी। (५३)

आचामोदक मार्ग = मुखमार्जन का स्थान। (६५)

आज्ञापत्रक = (देखिये शासन)।

आतिपातिक = नियमों का अतिक्रमण करनेवाला। (७१)

आतिवाहिक = चुंगी माल के आयात-निर्यात का कर। (५६)

आतोद्य = वाद्य। (२१)

आत्मसंपन्न = सर्वगुणसंपन्न। (१७)

आत्माधाता = अपने आप को आधान (गिरवी) रखने वाला। (७०)

आत्ययिक = (कार्य) आवश्यक कार्य या दीर्घ काल से चलते आया हुआ कार्य, जिसकी कालमर्यादा अत्यधिक हो चुकी। (१५) (१९)

आटविक = वनाधिपति। (अटवि = अरण्य, वन)

आढक = वजन का एक प्रकार (७९)

आदान = करवसूली। (२७)

आदेश = अपने गांव में किसी को पहुंचाने निमित्त दिया हुआ द्रव्य। (देखिये अन्वाधि)। (६९)

आधान = गिरवी रखना। (२२)

आधानगतिक हस्ती = नाना प्रकार की गति से चलने वाला औपवाह्य हाथी। (५३)

आधिवेदनिक = नुकंसान भरपाई या परिपोषण निमित्त देय धन। (५९)

आनूप (अनूप) = दलदल का जलयुक्त प्रदेश। (४५)

आन्वीक्षिकी (१) = सांख्य, योग, तर्कवाद - तीनों विद्याओं का नाम।

(२) त्रयी, वार्ता, और दण्डनीति के बलाबल की परीक्षा करने वाली विद्या।

आपत्ति = (दो प्रकार) कुलबन्धन (फौजदारी); तूर्य (दीवानी), (७०)

आपत्ति = के चार कारण, आभ्यंतर उत्पत्ति और बाह्य प्रतिजाप, बाह्योत्पत्ति-अभ्यंतर प्रतिजाप, बाह्योत्पत्ति- बाह्य प्रतिजाप, अभ्यन्तरोत्पत्ति- अभ्यन्तर प्रतिजाप। (उपजाप = विरोधी षड्यंत्र) (१२६)

आपत्ति = शुद्धा (अमिश्रा और परमिश्रा। शुद्धा (दो प्रकार) दूष्यशुद्धा और शत्रुशुद्धा। **अमिश्रा** = दूष्य और अदूष्य के संगम से। **परमिश्रा** = मित्र और शत्रु के संयोग से। (१२७)

आपत्ति (तीन प्रकार) = अर्थयुक्त, अनर्थयुक्त, संशययुक्त। (१२८)

आपद् (के तीन मार्ग) = (१) पुत्र भ्राता आदि बांधव, (२) पौर जानपद, दण्डमुख्य। (३) सामन्त-आटविक। इनके प्रतिकार के उपाय - पुत्रादि द्वारा सामदाम से। पौरादि द्वारा भेद से। सामन्तादि द्वारा- भेद दण्ड से। (१२८)

आपदर्थ = ऐसा अर्थ (लाभ) जिसकी अप्राप्ति शत्रुवृद्धि के कारण होती है, जो प्राप्त होने पर शत्रु को वापिस देना बाध्य होता है, और जिसको प्राप्त करने में क्षय और व्यय

अधिक होता है। (१२८)

आपदर्थ = जिस लाभ को सामन्त चाहते हैं। जो सामंत के संकट से प्राप्त हुआ है। शत्रु जिसे चाहते हैं। जो शत्रु को अनायास प्राप्त होता है। पार्णिग्राह के द्वारा जो बाधित हो सकता है। जो मित्रच्छेद से, सन्धिच्छेद से, या मित्रमंडल के मतविरोध में प्राप्त हुआ है। (कुल ८) (१२८)

आपद् दैवी = प्रकार = अग्नि, उदक, व्याधि, प्रमार, विद्रव (ज्वालामुखी, भूकंप आदि), दुर्भिक्ष, और आसुरी सृष्टि (शलभ- मूषक आदि।) (१२८)

आपमित्यक = उधार धान्य। (३६)

आपूपिक = रोटी बनाने वाला (३६)। मिष्टान्न बनाने वाला रसोइया। (११५)

आप्यप्रयोग = एक कूट प्रयोग जिस में औषधि के निमित्त विष पिलाकर हत्या की जाती है। (९१)

आबन्ध्य = स्त्रीधन के अलंकार या अलंकार रूप स्त्रीधन। (५९)

आभिगामिक गुण = लोगों को आकर्षित करने वाले गुण। (९७)

आय = (३ प्रकार) वर्तमान, पर्युषित (गत-बचत) अन्यजात (आकस्मिक)। (२७)

आय = (गावों से) = हिरण्य, विष्टि, शुल्क (चुंगी और कर), दण्ड (कुल ४ प्रकार)। (५६)

आयमुख = राज्य के उत्पन्न के प्रकार। इसमें मूल (विक्री का मूल्य), भाग (लगान), ब्याज, परिघ (किराया), क्लृप्त (ठेका), रूपिक (नाणक बनाने पर कर), अत्यय (दण्ड) इन सात प्रकारों की गणना होती है। (२७)

आयाति = वेतन (३०)। भावी उत्पन्न। (४८)

आयशरीर = आवक के विषय। इसमें दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु, वन, व्रज, और वणिक्पथ इन सात विभागों का अन्तर्भाव होता है। इन सात विभागों से राज्य की आमदनी होती है। (२७)

आयुक्त दण्ड आय = अधिकारियों को दण्ड देने से प्राप्त। (२७)

आयुक्त पुरुष = राज्य की मंत्रणा में अन्तर्भूत पुरुष। (१५)

आयुधवर्ग = यन्त्र, गोष्पण, मुष्टि, पाषाण, रोचनी, दृषद्। (३१)

आयोगव = प्रतिलोम पुत्र (शूद्र पुरुष द्वारा ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न।) (६४)

आरकूट = [illegible]। (३३)

आरक्षविपर्यास = आरक्षकों का स्थानान्तर। (१२९)

आरण्यक = अरण्यवासी लोग। (१३)

आरंभकर्ता = (५ प्रकार) शक्यारंभी, कल्पारंभी (निर्दोष कार्य का आरंभ करने वाला), भव्यारंभी (फलोत्पादक कार्यों का आरंभ करने वाला), स्थिरकर्मा (आरब्ध कार्य संपूर्ण करने वाला) और अनुरक्त प्रकृति (जनता की सहायता से अल्प व्यय में करने वाला) (१०६)

आरालिक = हलवाई, मिठाई बनाने वाला। (१२) (११५)

आर्य = १) उत्तम लोग (२) चातुर्वण्य के अन्तर्गत लोग। (४६) (७७)

आर्य = अदास, स्वतंत्र, आपत्ति के कारण दासत्व आने पर भी जिसे मूल्य देकर आर्यत्व प्राप्त करने का जन्मसिद्ध अधिकार होता है।

अनार्य = म्लेच्छ

आर्यभक्त = एक भले मनुष्य का एक समय का आहार।

आर्षविवाह = वरपक्ष द्वारा 'गोमिथुन' (दो गाय) या बैलजोड़ी या एक गाय और एक बैल लेकर योजित विवाह। (५९)

आवरणक = १) संरक्षक हथियार (२५)। २) कवच (३९)

आवरण प्रकार = शिरस्त्राण, कण्ठत्राण, कूर्पास, कंचुक (घुटने तक), वारबाण, पट्ट (जाकिट के समान), नागोदरिका (अंगुलित्राण), पेटी, चर्म, हस्तिकर्ण, तालमूल (लकडे की ढाल), धमनिका, कवाट, किटिका, अप्रतिहत, बलाहकांत। (३९)

आवाप = अधिक सेना या अवशिष्ट सेना।

प्रकार- **(१) प्रत्यावाप** = अधिक पदाति। (१३३)

(२) अन्वावाप = सेना के तीन अंगों में किसी अंग का आधिक्य।

आवेशनिक = अतिथि, मेहमान। (९१)

आवेशनी = सोने का काम करने वाला सुनार, कारीगर। (३५)

आसन = अपने उत्कर्षनिमित्त वैर से निवृत्ति। (देखिये स्थान) (१०२)

आसार = सहायक सैन्य। (१४०)

आसुरविवाह = वधूपक्ष से शुल्क (दहेज) लेकर आयोजित विवाह। (५९)

आसुरी वृत्ति = कामादि विकारों का उत्सेक (अतिरेक) और अपनय। (१२८)

आसुरी सृष्टि = शलभ, मूषक आदि उपद्रवकारक जीव। (१२८)

आस्तरक = बिस्तर बिछाने वाला। (१२)

आस्थिक = जुए में हारी गई रकम। (७३)

आस्फोटिम = युद्धोपयोगी चलयंत्र जिसके चार स्तम्भ चर्माच्छादित होते हैं। (३९)

आशीतिक = ८० वर्षों की उमरवाला पुरुष।

आशुग्रन्थ = शीघ्र शब्द- वाक्यों की रचना करने वाला। (३१)

आशुमृतक = अपघात में मृत। (४)

आशुमृतक = (अकस्मात मृत) - निरुद्धोच्छ्वास हत, उद्बन्धहत, अवरोपित, उदकहत, काष्ठाश्महत, अवक्षिप्त, विषहत, सर्पकीटहत, मदनयोगहत, उद्बन्धकण्ठ, निकृत्तकण्ठ (कुल ११ प्रकार)। (८४)

आहार्यबुद्धि = (१) दूसरे की बुद्धि को प्रमाण मानकर व्यवहार करने वाला। (२) धर्म और अर्थ का ज्ञान होने पर भी तदनुसार आचरण न करने वाला (इसी को घृतबुद्धि कहते

हैं) (१७)

आहार्योदक सेतु = (२) वर्षाकालीन प्रवाह पर बांधा हुआ तात्कालिक सेतु।

आहितिक = ठेकेपर काम करने वाले।

आहितिका = गिरवी रखी हुई स्त्री।

आहिच्छत्रक = एक जाति का हीरा। (८६)

आहितुण्डक = सांप पकड़ने वाला, सपेरा।

ऋणवृद्धि से मुक्त = दीर्घसत्रस्थ। व्याधित, गुरुकुलोपरुद्ध, बाल, असार (अकिंचन), (कुल ५)। (६८)

ऋतुमान = दो मास का काल।

एकपुरुषक = एक पुरुष की जीवनमर्यादा तक ही जिस पर स्वामित्व होता है ऐसा खेत। (२२)

एकप्रग्रह = राजाधिकार पाने योग्य। (१०)

एक मुख व्यवहार = एक मनुष्य को ठेका देना (३६) (४६)

एकलोष्टवध = पथराव से हत्या। (१७)

एकांग वध = हाथ-पांव आदि अवयव काटने का दण्ड। (४) (८७)

एकावली = केवल मोतियों का सूत्र। (३२)

एकैश्वर्य = एक पुरुष के अधीन सर्व व्यवहार। (९६)

ऐश्वर्य = एकच्छत्री आधिपत्य। (५)

औत्पत्तिक व्यय = प्रकृति (सामान्य व्यय) से अधिक। (४६)

औत्साहिक सैन्य = अनेक जातीय तथा शत्रुदेश की लूट करने वाला नित्य सैन्य। (१२३)

औदनिक = चांवल पकाने वाले, लाही, चने वाले। (३६) भड़भुंजे।

औद्र = जलचर की चमड़ी। (५७)

औदार्य = लेखगुण। ग्राम्यशब्द का प्रयोग न करना। (३१)

औपघातिक = नुकसान करने वाला व्यवहार (३७) कृतघ्न मनुष्य। (७३)

औपघातिक देश = खराब हवापानी का, या उपद्रवयुक्त प्रदेश। (१४५)

औपनिधिक = गिरवी और न्यास का व्यवहार। (३)

औपनिषदिक प्रयोग = विनाश के गुप्त प्रयोग (११३)

औपपादिक = पर्वताधिपति। (१०)

औपवाह्य = वल्गन, नीचैर्गत, लंघन, धोरण, नारोष्ट, (या नारोष्ट्र)- अश्वगति के प्रकार। सवारी के घोडे की चाल के प्रकार हैं। (५१)

औपवाह्य = अंबारी का हाथी। (३६)

औपवाह्य हस्ती (आठ प्रकार)= आचरण-सब प्रकार की गति जानने वाला), कुंजरापवाह्य- (दूसरे हाथी के साथ चलने वाला), घोरण (दौड़ने वाला), आधान-गतिक, यष्ट्युपवाह्य (दण्डा मारने पर चलने वाला), तोत्रोपवाह्य (तोत्र= अंकुश) मार्गायुक = (स्वेच्छा से चलने वाला) (५३)

औपवाह्यक कर्म = आरूढ या सवार होना।

औपवेणुक = घोड़े की मंडलाकार चाल। (५१)

औपस्थायिक वर्ग = (गजशाला का सेवक वर्ग)= चिकित्सक (गजवैद्य), अनीकस्थ, आरोहक, आधोरण (महाहत), हस्तिपक, औपचारिक, विधापाचक, यावासीक (घास खिलाने वाला), पादपाशिक, कुटीरक्षक, औपशायिक (साथ में सोने वाला, (कुल ११)। (५३)

औपस्थायुक = हाथी को सम्हालनेवाला, महावत। (देखिये उपस्थायुक्त) (५२)

औपायनिक (आय) = नज़राना, उपहार, उपायान द्वारा प्राप्त। (२७)

औरभ्रक भय = राजपुत्र के संभाव्य विद्रोह के भय से, (उसे सीमान्त के अधिकारी के नियंत्रण में रखने के कारण) 'उरभ्र' (मेष, भेड़) के समान आक्रमण का भय। दूर जाकर भेड़ अधिक शक्ति से टक्कर मारता है। (१७)

औरस पुत्र = यथाविधि विवाहित स्त्री से स्वयं पतिद्वारा उत्पादित। अथवा पुत्रिका (कृतककन्या) का पुत्र (६४)

इतिहास = पुराण, इतिवृत्त (बखर), आख्यायिका, उदाहरण (पुराने वृत्तान्त), धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र इनका 'इतिहास' विषय में अन्तर्भाव होता है। (५)

इंगित भेद = नित्य आचरण में अंतर। (१५)

इन्द्रकोश = दुर्ग के तट पर आरक्षियों के बैठने की खिड़की। (२४)

इन्द्रच्छंद = १००८ यष्टियों वाला मोतियों का हार।

इन्द्रवानक = एक जाति का हीरा। (३२)

इन्द्रनील = गहरे नीलवर्ण का मणि। (२३) गुणानुसार प्रकार = नीलावलीय, कलायपुष्पक, महानील, जाम्बवाभ, जीमूत (मेघ) प्रभ, नन्दक, स्रवन्मध्य (कुल ७)। (३२)

इन्द्रियजय = श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों को उनके शब्दादि विषयों की प्राप्ति न होना।(६)

(२) शास्त्रोक्त कर्तव्यों का पालन करना (शास्त्रानुष्ठान)।

(३) कामादि षड् रिपुओं का त्याग करने से उत्पन्न योग्यता। (६)

इषु (बाण) प्रकार = वेणु, शर, शलाका, दण्ड, आसन, नाराच। (३९)

ईश्वर = राजा, सर्वाधिपति। (३१)

उक्षा = बूढ़ा बैल। (६७)

उञ्छ = जमीन से चुनकर उठाया गया अन्न धान्य। (१३)

उत्कर = कमिशन। (३६)

उत्कोचक = जबरदस्ती से रिश्वत लेने वाला। (८१)

उत्क्रम = निश्चित क्रम से अलग क्रम। (२८)

उत्तमकाल = जब अपने सैन्य के व्यायाम के लिये भरपूर समय मिलता है। इसके विपरीत **अधम** काल होता है। (१२२)

उत्तम दण्ड = ५ सौ से १ हजार पण दण्ड। (३३)

उत्तम देश = जहां अपने सैन्य को व्यायाम के लिए पर्याप्त भूखंड होता है और शत्रु को स्थान नहीं होता। इसके विपरीत

अधम देश होता है। (१२२)

उत्तम साहस (या वध) दण्ड = ५०० से १००० पण दण्ड। (४२)

उत्तमागार = मंदिर का शिखर। (१४०)

उत्तराध्यक्ष = वरिष्ठ अधिकारी। (३०)

उत्थान = जिससे योगक्षेम होता है ऐसा उद्योग। (७)

उत्थान क्लेश = दौरे के परिश्रम। (२८)

उत्साह = शौर्य, अमर्ष (शत्रु का उत्कर्ष सहन न होना) शीघ्रता, दाक्ष्य (कुल ४ गुण)। (९७)

उत्साहहीन द्वारा संग्राह्य लोग = श्रेणी, प्रवीर पुरुष, चोरगण, आटविक, म्लेच्छजाति, उपजापकरी, गूढपुरुष। (कुल 7) (११२)

उत्साहहीन = सैन्यहीन, उत्थानशक्तिहीन।

उत्सेचक = नाव के अंदर का पानी फेकने वाला।

उत्सेध = बुर्ज़।

उत्सेध = समावक्षेपसोपान - चढने और उतरने की सीढी। (२४)

उदकपेषण = पानी से अनेक बार धातु को घंसना। (३५)

उदय = लाभ, नफा।

उदरदास = उदर निमित्त दास बना हुआ (अर्थात् जो जन्मतः दास नहीं)। (७०)

उदासीन = विजिगीषु, शत्रु और मध्यस्थ दोनों से अलग किन्तु सभी से बलाढ्य होने के कारण संकट में साहाय्य तथा विरोध करने में समर्थ राजा। (७) (९८)

उदास्थित = संन्यास मार्ग से भ्रष्ट (प्रव्रज्या- प्रत्यवसित), ऐसे लोग गुप्तचर होते है। (११)

उद्धारक = रकम लेने वाला। (२८)

उद्यतदण्ड = नित्य दण्डप्रयोग करने वाला। (४)

उद्वाप = फसल निकलना। (९२)

उन्मान - अवामान = आकार, मूल कीमत।

उपकण्ठी = पोले दंडे वाला तराजू। (२८)

उपगत पुत्र = पुत्रभाव से किसी के पास रहने वाला। (६४)

उपग्रह = वश में लाना। (१४)

उपजाप = भेद या फूट, प्रतिकूल प्रचार करना। (१३) (१०)

उपजाप = २ प्रकार- **स्वपक्ष उत्कर्ष, परपक्षोपवेग**। उपाय (१.)= **सर्वज्ञख्यापन** (राजा सर्वज्ञ है ऐसा मिथ्या प्रचार) (२) **दैवतसंयोग स्थापन** (राजा पर देवता प्रसन्न हैं इत्यादि मिथ्या प्रचार)। (१४१)

उपदाग्राहक = रिश्वत लेने वाला। (८१)

उपधा = (१) गूढ युक्ति से सत्त्वपरीक्षा। (२) कपट प्रयोग। (१०)

उपाधि = मिलावट, अशुद्धता। (३४)

उपनिधि = परोक्ष या गुप्त जमा। न्यास। (५८) (६९)

उपनिपात = आधिभौतिक संकट। (४) (६९) (७२) (८०)

उपनिषत्प्रतिषेध = अंतरंग शत्रु का नाश करने का गुप्त उपाय। (९१)

उपप्रदान = (एक उपाय) द्रव्य देकर उपकृत करना। (३१)

उपभोग का अधिकार = (स्थावर संपत्ति के) प्राप्त होने के निमित्त। = **प्रक्रय** (रोकड़ रकम देकर), **अवक्रय** (किराया पट्टी या हप्ता,) **अधिभाग** (विभाजन), **भोग** दीर्घकाल उपभोग, निसृष्ट समर्थन (६६)। (कुल ५)

उपवाद = दोषदर्शन (वाक्पारुष्य रूप अपराध का एक प्रकार)। दो प्रकार (सत्य और मिथ्या)। इसके विषय-शरीर, स्वभाव, विद्या, वृत्ति (धंधा) और देश (कुल ५)। (७५)

उपवास = गांव वाला पडोसी या सहकारी। (६७)

उपयुक्त = नियोजित अधिकारी वर्ग। (३०)

उपशाल = धर्मशाला। (६७)

उपशीर्षक = (यष्टि) (३२) मोतियों के हार का एक़ प्रकार।

उपस्थान = राज्यसभा का स्थान। (१९) (२०)

कार्यालय का समय। (२८)

देवडी या चौकी। (१२९)

उपस्थान = तुलामानान्तर, हस्तपूरणक, उत्कर (कमिशन) ब्याजी, पर्युसित (पुरानी बचत) और प्रार्जित (आगामी उत्पन्न) (इन ६ प्रकारों की आय)। (३६)

उपाय = चार प्रकार – साम, उपप्रदान, भेद, और दण्ड। (३१)

उपाय = प्रयोग। स्थान- **साम**-शंकित अमात्य पर। **दान**- दूष्य अमात्य पर। **भेद**- सांघिक विरोध होने पर। **दण्ड**- प्रबलों का विरोध होने पर। (१२८)

उपायों के त्रिविध प्रयोग = **नियोग**- निश्चित किसी एक उपाय का। **विकल्प** - एक या दो उपायोंका, **समुच्चय**- दो तीन या चार उपायों का मिलकर। (१२८)

उपाय = सिद्धि के अनुसार राजभेद = एक उपाय से सिद्धि प्राप्त करने वाला = **एक सिद्धि**। इसी प्रकार द्विसिद्धि, त्रिसिद्धि, चतुःसिद्धि। ये राजा के विशेषण होते हैं। (१२८)

उपावर्तन = विवाहादि संबंध में नकार। (७२)

उपांशु दण्ड = गुप्त घात। (११, १७, १३३)

उपेक्षण = शत्रुविरोधी उपाय की योजना क्षमता होने पर भी न करना। (देखिये आसन) (१२८)

उभयतो अनर्थापद् = इधर उधर के दोनों मार्गों से अनर्थ की संभावना जब होती है। (१२८)

उभयतो अर्थापद् = इधर उधर के दोनों मार्गों से लाभ होने की जब संभावना होती है। (१२८)

उभयतोऽर्थाऽनर्थ संशयदायिनी = एक ओर से लाभ किन्तु अन्य सभी ओर से आपत्ति आने की संभावना जब होती है। सर्वतोऽर्थाऽनर्थसंशयदायिनी - इसी प्रकार की होती है। (१२८)

उभयवेतन = दोनों राज्यों से वेतन पाने वाला गुप्तचर (१२)

उरस्य = सेना व्यूह का मध्यभाग। (१३४)

उष्ट्रगुप्तिस्थान = ऊंटखाना। (२५)

उष्ट्री = मिट्टी का घड़ा।

ऊरुवेष्ट = दंडा, बेड़ी। (८५)

ऊर्ध्वबाहु = युद्धोपयोगी स्थितयंत्र। ऊंचे स्थान से आक्रमक पर फेंकने योग्य स्तम्भ। (३९)
कंकट कर्मान्त = कवच बनाने का कारखाना। (४४)
कक्षौ = व्यूह की पिछाड़ी के दो अग्रभाग।
कंटकशोधन = अनिष्ट या गुंडे लोगों का बंदोबस्त। (१०), (३५), (७८)
कटव्रज = जलपूर्ण घट (जो ग्रीष्म काल में मार्ग पर रखे जाते थे)। (५७)
कटशर्करा = मिश्री, गड़ीशक्कर।
कटुकवर्ग = पिपली, मीरा, सोंठ, जीरा, राई, आदि तीखे पदार्थ। (३६)
कडंगर = घास आदि पशुखाद्य।)५२)
कणकुण्डक = जानवरों का खाद्य, भूसा। (३६)
कण्डोली = धान्य धोने का सच्छिद्र पात्र, (रोळी - मराठी में)।
कणय = (१) एक हलमुखीयंत्र - २० से २४ अंगुलि लंबा, (२) त्रिकोणाकृति नोंक वाला लोहदण्ड। (३९)
कदर्य = स्वतः को तथा भृत्यों को पीड़ा देकर धनसंचय करने वाला कंजूस। (३०)
कन्याकुमारपुर = राजकन्या तथा राजकुमार वर्ग के निवास का राजप्रासाद का विभाग। (२०)
कन्याप्रकर्म = अविवाहिता से बलात्कारपूर्वक संभोग। (४)
कर = धन के रूप में शासनद्वारा वसूली। (२७)
कपालसंधि = सर्वथा घातक संधि।
कपिशीर्षक = रास्ते के बाजू में लगाये हुए सीमा के पत्थर।
करणीय = इसमें संस्थान (चालू काम), प्रचार (नया काम), शरीरावस्थापन (पुराने काम का सुधार), आदान (करवसूली), सर्वसमुदयपिण्ड, (वसूली एकत्रित करना), संजात (सारी आय का बहीखाता रखना)- इन छह विषयों की गणना होती है। (२७)
करप्रति-कर = गोरक्षकद्वारा गाय का घी, चमड़ा इत्यादि जो प्रतिवर्ष राजा को दिया जाता है। (५०)
कक्षापरिगत = कमरों से सभी ओर से सीमित घर का भाग।
कक्षाविभाग = महल, प्रासाद। (२०)
कर्पण = हाथ से फेंकने योग्य बाण। (३९)
कर्म = (युद्धोपयोगी) (२ प्रकार) = ऐन्द्रजालिक और औनिषदिक। (३९)
कर्म आयोग = कर्तव्य में नैपुण्य। (५४)
कर्मकर = प्रवीण या जानकार नौकर। (३३)
कर्मकरवर्ग = नौकर, चाकर, मजदूर ।(३) (३६) (७०)
कर्मगुह्य = खराब वस्तु को सुंदर दिखाने का उपचार। (३२)
कर्मगृह = कार्यालय। (२५)
कर्मच्छेद = काम में हुआ नुकसान। (२८)
कर्मच्छेदवहन = काम के नुकसान की भरपाई करना। (२८)
कर्मदिवस = काम की कालमर्यादा। (३०)
कर्मनिर्दिष्ट = विशिष्ट काम में नियुक्त नौकर वर्ग। (४६)
कर्मनिषद्या = ग्रामोद्योग का स्थान, कारखाना। (२५)
कर्मफल = लाभांश। (१८)
कर्मफल-विनिपात = उत्पादन के लाभ में हानि। (४५)
कर्मयोग = शत्रुनाश के हेतु जारण मारण आदि प्रयोग। (१६)
कर्मवध्य = देहान्त शासन देने योग्य अपराध करने वाला (८५)
कर्मव्यापद् = मंत्र-तंत्र के कर्म में दोष। (९१)
कर्मसन्धि = दोनों मिलकर दुर्ग आदि कार्य करने के हेतु संधि। (११०)
कर्मसंबंध = मजदूरी के करार, सेवा के संकेत या प्रस्ताव। (७०)
कर्मसंवत्सर = ३५४ दिन का कालावधि। (इसकी समाप्ति आषाढ़ी पौर्णिमा को होती है। (२८)
कर्मान्त = कारखाना, (३८) धातु का कारखाना (३३)
कर्मान्तिक = कारखाना। (२५)
कर्मार = लुहार। (४५)
कर्मोदक = खेती के काम का जल। (६७)
कर्ष = वजन का एक प्रकार। (७९)
कलभित्तिका = हाथी की झूल।
कल्पना = हाथी के अलंकार
कल्प = संकटरहित लाभ।
कलापक = शिर, हाथ, पाँव, और कमर के विशिष्ट मौक्तिकालंकार। (३२)
कल्प = नियम, निर्बंध, संकेत। (५)
कल्पक = प्रसाधक = (१) वस्त्र, अलंकार पहनाने वाला। (१२)। (२) नाई या हजाम।
काकणिक = दो रत्ती का वजन (३५)
काक्षीब = गोपीचंदन, फिटकरी।
काच = ठगाई, वंचना।
काचमणि = सर्वसामान्य मणि। (३२)
कांचनकारु = सुवर्णालंकार बनाने वाले कारीगर (३४)
काणलिंग = अंध, पंगु इत्यादि विकलांग। (६३)
कानीन पुत्र = कन्या के विवाह पूर्व संभोग से उत्पन्न। यह प्रायः "अपविद्ध" होता है। उदा- महाभारत का कर्ण।
कान्तारक = वनवासी लोग (६८)
कापटिक = इंगितज्ञ और प्रौढ़ छात्रचर। (११)
कापटिक = छात्र गुप्तचर। (९२)
कापिशायन = मधु (द्राक्षासव) का प्रदेशानुसारी एक नाम। (४६)
कामदान = कलाकारों को दान। (७३)
काममूलक चार व्यसन = मृगया, द्यूत, स्त्री, मद्यपान। (११९)
कामोपधा = स्त्रीविषयक प्रलोभन द्वारा गूढ परीक्षा। (१०)
काम्बुक = कम्बु पर्वत में प्राप्य रजत।
कायदण्ड = दण्डनिमित्त शारीरिक ताडन, पीड़न। (५७)

कारणिक = हिसाब की जांच करने वाला। (२८)

कारु = कारीगर। (४)

कारुकर्म = सुनार के काम (५ प्रकार) – **(१) घन (२) घनसुषिर** – लोटे जैसे पात्र (मोटा पत्रा) मढ़ाना **(३) अवलेप्य** – (पतला पत्रा मढ़ाना)। **(४) संघात्य** – तार के अलंकार बनाना **(५) वासितक** – (मुलामा देना) (३५)

कार्तान्तिक = ज्योतिषी, भविष्यवेत्ता। (१३)

कार्पासिक = सूती वस्त्र (३२)

कार्मान्तिक = खनिज का अधिकारी। (१२)

कार्मिक = अधिकारी। (२८)

कार्य = (राजसेवक के) = आभ्यन्तर, बाह्य, गुह्य, प्रकाश्य, आत्ययिक (सत्वर), उपेक्षितव्य। (कुल ६ प्रकार)। (९५)

कार्यानुशासन = कर्तव्यों का उपदेश, जिससे स्वधर्म की स्थापना होती है। (७)। (२) न्यायदान। (१९)

कार्यार्थी = अर्जदार। (१-१९)

कार्वटिक (या खार्वटिक) = २०० गावों में प्रमुख स्थान

कालमान = ऋत, लव, निमेष, काष्ठा, कला, नालिका, (घटिक)ा मुहूर्त, दिन, (रात्रि) = १५ मुहूर्त काल) अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग (पांच संवत्सर)। (४१)

कालायास = लोहा (३४)

कालिक = उधार मिलने वाला माल। (१३९)

कालिका = उत्तम मदिरा। (४६)

काष्ठकोष्ठ = स्निग्ध पदार्थ रखने योग्य लकड़ी का पात्र। (३६)

काष्ठद्रोणी = पैसे रखने योग्य लकड़े की पेटी।

कासीस = नीला थोथा, हिराकस, मोरचूद।

किट्ट = धातु का मल। (३३)

किलाख = तक्र, छाछ।

किण्व = उड़द और चांवल के पिष्ट से निर्मित मद्य। (४६)

किष्कु = १।। या २ हाथ का लंबा अंतर। (६५)

कीलाट = दूषित या फटा दूध। (५०)

कुंजरोपवाह्य हस्ती = दूसरे हाथी की साथ संगत मिलने पर चलने वाला औपवाह्य हाथी। (५३)

कुंत = एक हलमुखी शस्त्र। ५ से ७ हाथ लंबा दण्ड। (३९)

कुटुम्बकामा = वैधव्य आने पर श्वशुर की अनुमति से दूसरा विवाह करने की इच्छा करने वाली। (इसे पूर्वपति और श्वशुर द्वारा प्रदत्त धन पाने का अधिकार था। (५९)

कुट्टक = खलबत्ता। (३६)

कुट्टनशाला = कूटने पीसने का कमरा। (६५)

कुट्टनी = ओखली। (६५)

कुट्टाक = बढ़ई। (४५)

कुडुम्ब = वेतन। (४८)

कुण्ड्य = दीवार। (८६)

कुत्सितयाजक = निंद्य लोगों से यज्ञ करने वाला। (७१)

कुप्य = जंगल में प्राप्य कच्चा माल। (४, ३२, ४६, ५६, १३६)

कुप्यगृह = वन्य वस्तुओं का आगर। (२५), (२६)

कुप्य पण्य = जंगल में उत्पन्न होने वाली नैसर्गिक संपत्ति। (१६)

कुप्यागार = अन्नधान्यादि की कोठी। (१२९)

कुप्याध्यक्ष = जंगल का अधिकारी। (२), (३८)

कुप्योपजीवी कुप्याध्यक्ष = वन्य संपत्ति पर जीविका करने वाला।

कुल्या = (१) कुलीन स्त्री। (२०), (२) भूमिगत मार्ग, तहखाना।

कुल्यावाप = जहां नहर के पानी से खेती होती है। (४५)

कुशिक्या = असमान तराजू।

कुसीद = व्याजरहित मुद्दल (मूल राशि) (६८) सूदखोरी।

कुशीलव = बहुरूपी (४८) वैदेहिक जातीय पुरुषद्वारा, अंबष्ठ जातीय स्त्री से उत्पन्न। (६४)
(देखिये वैण)

कुहक = जादू,टोना या करनी करने वाला। (२) चापलूस

कुम्भीपाक = कटाह या कुम्भ में जलाकर मारना, (अभिषिक्त रानी से संभोग करने का दंड है) (९०)

कूटपणकारक = झूठा करारनामा करने वाला। (८१)

कूटमुद्रा = खोटा सिक्का। (४२)

कूटरूपकारक = झूठे नाणक बनाने वाला। (८१)

कूटसाक्षी = झूठी गवाह देने वाला। (८१)

कूटसुवर्णकारी = झूठे सोने के पैसे बनाने वाला। (८१)

कूलग्राम = बंदरगाह। (४९)

कृच्छ्रवृत्तिः = कठिन कार्य में नियुक्त। (१८)

कृतकपुत्र = जिसे पुत्र के स्वधा-रिक्यादि अधिकार दिये जाते हैं। (६४)

कृतकर्मा = कर्तृत्व सम्पन्न, जिसने कोई महान् कर्म किया है। (२१)

कृतक्षेत्र = कसने या फसल निकालने योग्य खेत। (२२)

कृतकबन्धांक = अपराधी के मस्तक पर लगाया गया चिह्न। (९०)

कृतशिल्प = कलाकुशल। (९)

कृत्य = विश्वासघाती जो राजभक्ति से पथभ्रष्ट किया जा सके। (१, १३)

कृत्यअकृत्यवर्ग (परराज्यस्थ) = क्रुद्ध, भीत, लुब्ध, और मानी इन चार प्रकारों का अधिकारी वर्ग। (१४)

कृत्यपक्ष = बेईमान बनाये जा सकने योग्य लोग। (१३८)

कृत्यपक्षोपग्रह = बेईमान असंतुष्ट लोगों से सख्य, दोस्ती करना। (१८)

कृत्रिम मित्र = शत्रु की सीमा के पार का राजा अथवा माता पिता से संबंधित राजा। (९८)

कृत्रिम शत्रु = स्वयं विरोध करने वाला या दूसरे के द्वारा विरोध करवाने वाला। (९८)

कृषियोग्य भूमि के ७ प्रकार = फेनाघात – जहां पानी में फेस आता है। **परीवाहान्त =** (प्रवाह के पासवाली), **कूपपर्यंत, हरणीपर्यंत** (जलप्रचुर), **पाल्य** – खेत के किनारे की), **स्थली, अनूप।** (४५)

कोपमूलक = तीन व्यसन - वाक्पारुष्य, अर्थदूषण, दण्डपारुष्य। (११९)

कोल = नींबू या बेर।

कोश अवस्तार = वसूली का दिन बदलना। झूठा जमा खर्च। (२९)

कोशक्षय के ८ कारण = प्रतिबंध, प्रयोग (ब्याज के हेतु द्रव्य देना), व्यवहार (लेन देन), अवस्तार (झूठे हिसाब), परिहापण, (वसुली न करना), उपभोग, परिवर्तन (अदलाबदल), अपहार।

कोशगृह = खज़ाना, बँक। (२६)

कोशनिर्हार = कोश के धन से खरीदा धान्य। (३६)

कोशपरिवर्तन = सरकारी माल के स्थान में दूसरा माल जमा करना। (२९)

कोशपरिहापन = आय कम करना और व्यय बढ़ाना। (२९)

कोश - प्रतिबन्ध (तीन प्रकार) = असाधन (वसूली न करना), अनवतारण (दिया हुआ वसूल न लेना), अप्रवेशन (मिला हुआ वसूल जमा न करना। (२९)

कोशप्रयोग = कोश का द्रव्य ब्याज से देना। (२९)

कोशसंग = कर न देने का अपराध। (८)

कोशसन्धि = धन की बोली पर सन्धि। (१३६)

कोशवृद्धि के ९ साधन = प्रचारसमर्धि (कारखानों का विकास), चरित्रानुग्रह (शीलरक्षण), चोरग्रह, युक्तप्रतिषेध (अधिकारियों का नियंत्रण), सस्यसम्पत्, पण्यबाहुल्य, उपसर्गप्रमोक्ष (आधिभौतिक उपसर्ग से बचाव), परिहारक्षत (रियायत न देना), हिरण्योपायन।

कोशव्यवहार = शासकीय भांडार के माल की बिक्री करना (२९)

कोशापहार = (तीन प्रकार) = आय जमा न करना, अवैध व्यय वापस न लौटाना, प्राप्त हुई बाकी रकम अमान्य करना। (२९)

कोशाभिसंहरण = कोशसंग्रह (५), कोश की व्यवस्था। (९२)

कोशावच्छेद = कोश का नाश। (२६)

कोशोपभोग = राजस्व का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उपभोग। (२९)

कोष्ठक - आलय = देवमंदिर (२५)

कोष्ठागार = धान्य भुसार माल आदि के संग्रह का स्थान। (२) (२५) (२६)

कौमारभृत्य = प्रसूतिशास्त्रज्ञ।

कौष्ठेयक = कांजी घर का कर (३६) वृक्षों का उत्पन्न।

क्रम (या अनुक्रम) **लेखगुण** = क्रियाओं का उचित क्रम रखते हुए महत्त्व के विषय का प्रथम निर्देश और अन्य कार्यों का पश्चात् निर्देश करना। (३१)

क्रमावहीन = निश्चित क्रम रहित। (२८)

क्रयसंघर्ष = नीलाम। (२७)

क्रयिम = धान्यमूल्य, कोशनिर्हार (कोश के व्यय से खरीदा धान्य), प्रयोग-प्रत्यादान (अल्प धान्य लेकर अधिक धान्य लौटाना। (३६)

क्रियाभारिक = जहां भारी श्रम करने पड़ते हैं ऐसे काम (जैसे खदान)। (३३)

क्रीतपुत्र = मूल्य देकर प्राप्त किया हुआ पुत्र। (६४)

क्रुद्धवर्ग = वंचित, अपमानित, पीडित, निर्वासित, अधिकारच्युत, कैद में कुण्ठित, दण्डित, लुण्ठित इत्यादि प्रकार का अधिकारी वर्ग। (१४)

क्षत्रिय धर्म = अध्ययन, यजन, दान, शस्त्राजीव (शस्त्रविद्या पर उपजीविका), भूतरक्षण (प्राणिमात्र का रक्षण।) (३)

क्षुद्रिका = छोटी नौका या छोटी नदी। (४९)

क्षुरप्रमाला = नक्षत्रमाला - हाथी का एक भूषण। (४३)

क्षय-व्यय-लाभ-विमर्श = सैन्य तथा कोश का आय व्यय। (९)

क्षय = स्वकार्य की हानि होना और शत्रुकार्य की न होना। (९९)

क्षीरवृक्ष = गांव की सीमा पर लगाने योग्य वृक्ष। (वट, पीपल, शाल्मली इ.)। (२२)

क्षुद्रक = कनिष्ठ अधिकारी वर्ग, २) सोने के मणि। (१३)

क्षुद्रपरिषत्क = जिस की परिषद में क्षुद्रलोग होते हैं। (९७)

क्षुरवर्ग = (सात प्रकार के शस्त्र) = परशु, कुठार, पट्टस, खनित्र (फावड़ा), कुद्दाल, क्रकच (आरी), काणुछेदन। (३९)

क्षेत्रपथहिंसा = खेती का नुकसान। (६७)

क्षेत्रिक = किसान। (६७)

क्षेमरात्रि = अपराधविरहित रात्रि। (५७)

क्षौम (रेशम) = नौ प्रकार – वांगक (बंगाल का), पौंड्रक, सौवर्णकुड्यक, सूर्यवर्ण, मणिस्निग्ध, उदवान, चतुरश्रवान, व्यामिश्रवान, काशिक। (३२)

क्षारवर्ग = फाणित (पक्व इक्षुरस), गुड, मत्स्यण्डिका (गुड की शक्कर), खंडशर्करा (मिश्री, गडीशक्कर)। (३६)

खंजन = जलमयी भूमि।

खंडसंघात्य = अनेक टुकड़े एकत्र जोड़कर बनाया वस्त्र।

खड्ग के प्रकार = निस्त्रिंश, मंडलाग्र, असियष्टि। (३९)

खण्डफुल्ल = (दरवाजा) बंद करना और खोलना।

खनक योधी = खंदक से लड़ने वाले। (६५)

खनि के ३ गुण = प्रभूतसारा, अदुर्गमार्गा, अल्प- व्ययारम्भा। (११०)। **खनि** विभाग के अन्तर्गत, सुवर्ण, रजत, वज्र (हीरा), मणि, मुक्ता, प्रवाल, शंख, लोह, लवण, भूमि, प्रस्तर, रस (पारद) और धातु इन १३ का अन्तर्भाव होता है। (२७)

खनि (खदान) से १२ प्रकार की आवक = मूल्य, विभाग,

व्याजी (कसर), परिघ (मुद्रापरीक्षक का शुल्क), अत्यय, शुल्क, वैधरण दण्ड रूप, (मुद्रा), रूपिक, धातु और पण्य।

खन्यध्यक्ष = खनि विभाग का प्रमुख। (३३)

खरपट्ट = कैदी के गले में बांधा हुआ लोहे का बिल्ला। (८५)

खात-साल = खंदक और तट। (१४४)

खार्वटिक = दो सौ गांवों का केन्द्र स्थान। (२२)

गणिका (प्रकार) = दासी, रूपदासी, रूपाजीवा, गूढाजीवा, रंगोपजीविनी, मातृका। (४८)

गणिकाध्यक्ष = राजप्रासाद में सवेतन सेवा करने वाली स्त्रियों का प्रमुख। (४८)

गण्डिका (या गांडिका) = लकड़े के ढेले।

गण्डिका = कूटने का पात्र, खल। (३४)

गण्यपण्य = संख्या की गिनती से बेचने योग्य माल। (३७)

गर्भपात = (अपराध) = प्रहार से, भैषज्य से और परिक्लेश से (तीन प्रकार)। (८८)

गाणनिक्य = हिसाब लिखने वाले हिसाबनवीस। (२८)

गाणनिक्य = दर्ज करने वाला (रेकार्ड कीपर)। (२८)

गांधारपंक = गांधार देश की लाख, या लाख जैसी मिट्टी। (३५)

गुच्छ = ३२ यष्टियों वाला मोतियों का हार। (३२)

गुप्तचर द्वारा परीक्षण योग्य स्थान = चैत्य, चतुष्पथ, शून्यपद, उदपान, नदी, निपान (नदी घाट), तीर्थ , आयतन (देवालय), आश्रम, शैल, वनगाहन। (कुल ११)

गुप्तचर के प्रकार = सिद्ध, तापस, प्रव्रजित, चक्रचर (जादूगर), चारण, कुहक (मदारी या मांत्रिक), प्रच्छन्दक, कार्तान्तिक (भविष्यवादी), मौहूर्तिक, चिकित्सक, उन्मत्त, मूक, बधिर, जड, अंध, वैदेहक, कारु, शिल्पि, कुशीलव, वेश (नट), शौण्डिक, आपूपिक, पाक्वमांसिक, औदनिक (कुल २४)। (८१)

गुप्तिछिद्र = मर्मस्थान (१-१६)

गुप्तिस्थान = आरक्षित विभाग। (४७)

गूढ प्रणिधान = गुप्तचरों की योजना (११६)।

गुल्मतरदेय = मार्ग पर देने योग्य चुंगी। (३७)

गुह्यसधर्मा =जिसका गुह्य मर्म ज्ञात है ऐसा पुरुष। (अधि १-८)

गूढज पुत्र = बांधवों के घर में गूढ संभोग के कारण उत्पन्न। नियोगज पुत्र के समान इसे द्विपितृकता से प्राप्त अधिकार नहीं होते। (६४)

गूढदण्डनिवारण = शत्रु के गुप्त सैन्य का निवारण या नाश करना। (१-१६)

गूढपुरुष = गुप्तचर, जासूस खुफिया। (१-१)

गूढलेख्य = गुप्तपत्र। (१-१२)

गूढाजीवा = गुप्त मार्गों से कमाई करने वाली स्त्री। (४८)

गूढाजीवी के प्रकार = उपदाग्राह, उत्कोचक, कूटसाक्षी, संवननकारक, रसद, मदनयोगव्यवहारी, कूटरूपकारक, कूट सुवर्णकारक (कुल ३०)। इन आरोपों से ३ प्रकार के ग्रामकंटकों को निर्वासित किया जाता है। (८१)

गूढाजीवी = रिश्वत लेने वाले। (१-४)

गुरुसमुत्थ = (मित्र) जिसे युद्ध के समय उत्थान करने में प्रयास होते हैं। (१०७)

गृष्टि = जंगल (२-२२)

गृहपति = कुटुंबी (किसान) (५६)

गृहपतिक = खेती में नुकसान आने के कारण बेकार बना हुआ किसान। (१-११)

गृहपरिवाप = घर काम के बर्तन। (६३)

गृहस्थधर्म = स्वकर्माजीव (स्वकर्म से उपजीविका), भिन्न गोत्रज (असमान ऋषि) परिवार में विवाह संबंध, ऋतुगामित्व (योग्य समय पर सम्भोग), देव, पितर, अतिथि तथा भृत्यों को अन्नादि दान और अवशिष्ट भोजन।
(अ-३) (अधि १-३)

गो = गाय व्यक्ति की आर्थिक परिस्थिति का प्रमाण माना गया था। "शतगु" (सौ गाय का धनी) होने पर आहिताग्नि न होना और "सहस्रगु" होने पर "यज्वा", यज्ञकर्ता न होना निंद्य ब्राह्मण का लक्षण माना जाता था। (७१)

गोदान = ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त होने पर केश कटवाने की विधि। (अधि १ अ ५)

गोध्यक्ष = बैल, गाय, भैंस आदि पशुओं का प्रमुख। (५०)

गोप के प्रमुख कर्तव्य = ग्रामसीमा, क्षेत्र वनमर्यादा पथ प्रमाण, संप्रदान (दान), विक्रय, अनुग्रह (इनाम), परिहार (करमाफी), करद, अकरद, गृहसंस्थान, (मनुष्य पशु गणना, गाव की प्राप्ति इन की नोंद रखना। (कुल १०)। (५६)

गोप = ५ या १० गावों का प्रमुख

गोप = १०, २० या ४० कुलों पर देख रेख रखने वाला नगर का अधिकारी। (५७)

गोपायक = पहेरेदार, चौकीदार (२८)

गोरुत (भूमि) = जहां एक स्थान से दूसरे स्थान तक गाय का रंभाना सुनाई देता है इतनी मर्यादा वाली भूमि। (२-२३)

गोवाणिजक = गाय बैलों के व्यापारी। (१३९)

गौरव = वस्तु का वजन (१-२१)

ग्रन्थिभेद = जेब काटना, गांठ खोलना। (८७)

ग्रहणकाल = पशु को पकड़ने का समय। (४२)

ग्राम के प्रकार= परिहारक (करमुक्त), आयुधीय (सैनिक देने वाला), धान्यप्रतिकर, पशुप्रतिकर, हिरण्यप्रतिकर, कुप्यप्रतिकर, विष्टिप्रतिकर, (कुल-७)।

ग्रामकूट = गांव का प्रमुख। (८१)

ग्रामदेववृष = देवता के निमित्त अर्पित नंदी (सांड)। (इनका कोई स्वामी नहीं होता)।

ग्रामभ्रातृक = गांव वाले नौकर। (२-२२)

ग्रामसीमावृक्ष = शाल्मली (सेमल का पेड), शमी, क्षीरवृक्ष (वट, पीपल इ.)

ग्रामिक = गांव का मज़दूर। (६७)

ग्रासाच्छादन = अन्नवस्त्र। (६०)

घटिका (नालिका नाडिका) = चार मासा सोने की ४ अंगुलि लंबी तार की चौड़ाई के बराबर छिद्र वाले पात्र से, १ आढक (१/४ द्रोण) पानी गलने के लिए लगने वाला समय। दिन का १/६० वां विभाग) (४१)

चक्रचर = गाड़ियों में सामुदायिक प्रवास करनेवाले। (११५)

चक्रान्त = सेना की पिछाड़ी।

चक्रयुक्तनाश = अन्तर्गत मारपीट के कारण हानि। (६९)

चक्षुष्मान् = दूरदर्शी। (९)

चतुरस्त्रिका = ऊन का चौकोनी आसन।

चंद्रचित्रा (या चंद्रोत्तरा) = चमड़े का एक प्रकार।

चंदन के ११ गुण = लघु (हलकापन), स्निग्ध, अश्यान (आर्द्रता), सर्पिः स्नेहलेपि, गंधुख, त्वगनुसारी (त्वचा में मिलना), अनुल्बण (चिकना न होना) अविरागी, उष्णसह, दाहग्राही, सुखस्पर्श। (३२)

चन्दन = (वर्ण और गंध के अनुसार १६ भेद) = सातन, गोशीर्षक, हरिचंदन, तार्णस, ग्रामेरुक, दैवसभेय, जावक, जांगक, कुचंदन, कालप्रवर्तक, सौरूप, कोशाकार, पर्वतक, शीतोदकीय, नागपर्वतक मलयक, शाकल। इसमें कुछ चंदनों में मत्स्य, गोमूत्र, अजमूत्र, आम्र जैसी गंध होती है। (३२)

चरक = मूस तयार करने वाले। (३४)

चर्म = कान्तनावक, प्रैयक, बिसी, महाविसी, श्यामिका, सामूर, चीनसी, सामूली, सातिना, नलतुला, वृत्तपुच्छा, (कुल १५ प्रकार) (इनमें वनचर और जलचर प्राणियों के चर्म अन्तर्भूत हैं। (३२)

चर्मकरण्ड = चमड़े का टोकरा। (१३०)

चरित्रसंस्थान = (१) स्वाभाविक बर्ताव (२८) (२) काम का स्वरूप

चलयंत्र = (युद्धोपयोगी शस्त्र समूह)। पंचालिक, देवदण्ड, सूकरिका, मुसल, यष्टि, हस्तिवारक, तालवृन्त, मुद्गर, गदा, स्पृक्तला, कुद्दाल, आस्फोटिम, औदघाटिम, सप्तदिन, त्रिशूल,. चक्र (कुल १६ प्रकार) (३१)

चाक्रवालिक = चांदी का एक प्रकार।

चातुरन्त = समुद्रवलयांकित पृथ्वी का अधिपति।

चापकुक्षि और चापपक्ष = धनुष्याकार व्यूह की बाजू।

चारक = कैदी। दीवानी कारागृह। (८६)

चाररक्ष = गुप्तचरों पर निगरानी रखने वाले। (१२९)

चार्या = तट के अन्तरंग में बांधी हुई सीढ़ी। (२४)

चित्रघात = तड़पा तड़पा कर या आत्यंतिक पीड़ा देकर मारना। (६८)

चित्रदण्ड = देहान्त शासन, मौत की सजा। ((४)

चित्रभोग = अनेक प्रकार से उपयोगी मित्र।

चीनपट्ट (चीनांशुक) = चीन में निर्मित वस्त्र। (३२)

चीनसी = चमड़े की एक जाति।

चुंचुवालुका = बारीक रेती।

चूलिका = गुठली।

उद्गतचूलिकरूप्य = जिस के उपरिभाग में गुठली होती है, ऐसी चांदी। (३४)

चैत्य = पूजास्थान, समाधिस्थान। (२०)

चोर रज्जू = (१) चोर पकड़ने वाले सिपाही, (२७) (२)चोर पकड़ने वाले का इनाम।

चोररज्जूक = एक सामान्य ग्रामाधिकारी। (९०)

चौर्णेय = मोती की एक जाति।

छन्दवासिनी = स्वतंत्र रहने वाली (विधवा आदि)। (७७)

छन्दिका = राजकुमार आदि को वैयक्तिक व्यय के लिये दी जाने वाली रकम (पॉकेट मनी)। (१३५)

छन्नपथ = भूमिगत गुप्त मार्ग (२५)

छायानलिका = (१) राजा को समय की सूचना देने का साधन। (२) उन्मार्गवर्ती राजा को सन्मार्गपर लाने के लिए मार्गदर्शक आचार्य द्वारा जिसका प्रयोग किया जाता था ऐसा कोई साधन। (७)

छाया प्रमाण = समय बोध के लिए छाया को नापना। (१९).

जघनाभिघात = पिछाड़ी से हमला।

जंभक विद्या = वशीकरण विद्या। (१४२)

जंघाकारिक = दौड़ते जाने वाला जासूस। (२२)

जंघाग्र = स्त्री पुरुषों की गिनती। (५६)

जनपद के तीन विभाग = संग्रहण, द्रोणमुख और स्थानीय। (५८)

जनपदनिवेश = १) नये गांवों की निर्मिति करना। (२२) (२) देश की रचना।

जनपदसन्धि = प्रदेश के विभाग। (५८)

जनसमवाय = सार्वजनिक स्थान। (१३)

जांगल = रुक्षप्रदेश। (४५)

जांगलीविद् = विषविद्या के विशेषज्ञ। (२१) (५१)

जात्य = असली माल। अजात्य = खोटा माल। (७९)

जानपद = १) स्वदेश का निवासी। (८९) (२) सर्वसामान्य जनता। (९९)

जानुभंजनी = एक शस्त्र।

जावक = चंदन का एक प्रकार।

जामदग्न्य = युद्धोपयोगी स्थित यंत्र, जिसके मध्यरन्ध्र से शत्रु पर बाण वर्षाव किया जाता है। (३९)

जालक = मस्तक, हाथ, पांव और कटिदेश के विशिष्ट मौक्तिकालंकार। (३२)

जीवक = जैन भिक्षु। (२०)

जागक = चन्दन का एक प्रकार।

जोंगनी = सांडस। (३४)

ज्ञातिकुल = (स्त्री के लिए) मातृपितृगृह, मायका। (६०)

ज्योतीरसक = एक प्रकार का रत्न।

झरक-पांसुधावक = रास्ते साफ करने वाला, झाड़ू वाला

झषास्य =मत्स्यमुखाकार सेनाव्यूह।

उमर = दंगा, युद्ध।

उमरगत = (आय) लूट से प्राप्त धन। (२७)

डामरिक = किसी रोग की महामारी से मरा हुआ। (८६)

तटाकवमन = (या वामन) = तलाव शुष्क करवाना। (६६)

तन्तुवाय = बुनकर। (७८)

तन्माणवक = मध्यमणि युक्त मोतियों का हार। इसके इन्द्रच्छद, देवच्छन्द आदि १० प्रकार होते हैं।

तपनीय = सोना, सुवर्णालंकार। (३४)

तपनीय = (सुवर्णालंकार) के १३ गुण समराग, समद्वंद्व विभक्त, स्थिर, सुप्रमृष्ट, असंवीत, धारणसुख, अभिनीत, प्रभायुक्त, संस्थानमधुर, सम, मनोनेत्राभिराम। (३४)

तप्त-कलधौत = सोना-चान्दी। (३५)

तर = (१) जहाज (२) जहाज से आने वाला माल। (३)इस प्रकार के माल का केन्द्र। (२७) (४९)

तरलयष्टि = मोतियों के सर का एक प्रकार। (३२)

तादात्विक = आय के समप्रमाण में व्यय करने वाला। (३०)

तापस व्यंजन = तपस्वी के वेश में घूमने वाला गुप्तचर। (५६)

ताम्ररूप्यवेधन = धातु = जो तांबा और चांदी में मिलाने योग्य होता है। (३३)

तार्णस = चंदन का एक प्रकार।

तार्याबन्ध = नांव में बैठकर टालने योग्य।

तालावचर = नट, नर्तक तथा अन्य तमासगीर। (२५,६०)

तिरोजनपद = जनपद के बाहर का मनुष्य। (५५)

तीक्ष्णदण्ड = नित्य दण्ड का कठोर प्रयोग करने वाला। (४)

तीक्ष्ण = (१) हाथी, सांप इत्यदि से लड़ने का खेल।

तीक्ष्ण = विष और शस्त्र के प्रयोग से शत्रु का नाश करने वाले गुप्तचर। (१२६)

तीक्ष्णधातु = लोहा। (३३)

तीक्ष्णमूत्र = मनुष्य का या विशिष्ट पशु का मूत्र। (३३)

तीक्ष्णरस = विष, जहर। (११)

तीर्थ = अन्यान्य शासकीय विभाग (जिनकी संख्या १८ थी)

तीर्थघात = तीर्थस्थान में अपराध करने वाला। (१२)

तीर्थाकांक्षा = मासिक रजोदर्शन तक पति की प्रतीक्षा (पंचतीर्थाकांक्षा, सप्ततीर्थाकांक्षा इ.)। (६०)

तीर्थाभिग्रह = उतार का रास्ता रोकना।

तीर्थोपरोध = ऋतुस्नात स्त्री से समागम न करना। (६०) (तीर्थोपरोधो हि धर्मवधः इति कौटिल्यः।) **धर्मवध** = धर्म का उल्लंघन।

तुत्थ = लेपन क्रिया। (३४)

तुन्नवाय = दर्जी। (७८)

तुला प्रकार = समवृत्ता और परिमाणी (४१)

तुलामानपौतव = वजन तथा नाप की परीक्षा। (२)

तुलोत्सेध = (१) खंभे की उचाई (२) मयाल की लंबाई। (२४)

तुल्यलाभ में विमर्शनीय ७ विषय = देश-काल, शक्ति-उपाय, प्रिय-अप्रिय, जव-अजव (अल्प - दीर्घकाल), सामीप्य-विप्रकर्ष, तदात्व-अनुबंध, सारत्व-सातत्य, (संख्या बाहुल्य- बाहुगुण्य)। (१२५)

तुष्टिदान = राजा के द्वारा अर्पित पारितोषिक, पुरस्कार (११)

तूर्यभाण्डफेला = वाद्य और अलंकार की पेटी। (११५)

तूर्यकर = बाजेवाले। (९३)

तूष्णींदण्ड = गुप्त दण्ड।

तृतीयसार = तृतीय श्रेणी का। नपुंसक

तेजनोदक = तेजाब। (१४६)

तेजनाग्नि = अग्नि के समान चमकने वाले पदार्थ।

तोत्र = अंकुश, तुतारी। (५३)

तोत्रोपवाह्य = अंकुश के आघात होनेपर चलने वाला हाथी। (५३)

त्रपु या त्रपुस = कथिल, जस्ता। (३३)

त्रयी = सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद- इन तीनों की संज्ञा। (३७)

त्रयी धर्म = चार वर्णों और चार आश्रमों की कर्मस्थापना करने वाला। (३)

त्रस्नु = भयग्रस्त जानवर। (५०)

त्रासिक = एक हलमुखी शस्त्र जो प्रास के समान होता है। (३९)

त्रिक = तीन रथ आदि का एक गुट। (१३३) (सेना के व्यूह में १५ त्रिक अर्थात ४५ रथ होते है।)

त्रिपुटक = दो भाग चांदी और एक भाग तांबे का मिश्रण। (३५)

त्रिपुटकापसारित = शुद्ध सोने में त्रिपुटक (२ भाग चांदी + १ भाग तांबा) मिलाकर उतना सोने का अंश निकाल लेना। (३५)

त्रिवर्ग = धर्म, अर्थ, काम नामक तीन पुरुषार्थ।

त्रिशूल = एक प्रकार का शस्त्र।

त्रैविद्य = तीन वेदों का ज्ञान। (६२)

त्रैविद्य = तीन वेदों का अध्ययन करने वाला। (१९)

त्वष्ट्रकर्म = सोने की तार के अलंकार बनाना। (३४)

दक्षिणा = पुरोहित वर्ग के ब्राह्मणों को धर्मविधिनिमित्त प्रदेय द्रव्य। यह "वेतन" के समान निर्धारित नहीं होता किन्तु आवश्यक होता है। (७१)

दत्त (या दत्तक पुत्र) = माता पिता द्वारा समर्पित। (६४)

दण्ड = आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता - इन तीनों विद्याओं के योगक्षेम का साधन। दण्ड की नीति = दण्डनीति। (१४)

दण्ड = (तीन प्रकार) पूर्व, मध्यम, उत्तम वध। (२६) (वध = दण्ड)

दण्ड (तीन प्रकार) = वध, परिक्लेश (पीडा देना) और अर्थहरण।

दण्डखेदी = (दण्ड की पीडा न होते ही व्याकुल हुआ।

दण्डनीति = नय और अनय का अर्थात् अर्थ और अनर्थ का विवेक। (२)

दण्डपारुष्य = अपकृत्यनिमित्त निर्दय ताड़न आदि। (३)

दण्डपारुष्य = (३ प्रकार) **स्पर्शन** = (गंदे हाथ से या पांव से) **अवगूर्णन** = (शस्त्र उठाकर धमकी), **प्रहत** (आघात करना)। (७६)

दण्डप्रतिकारिणी = दण्ड लौटाने निमित्त मजदूरी करने वाली स्त्री। (४४)

दण्डप्रयोग में विचारणीय (८) विषय = पुरुष, अपराध, कारण, गुरुलाघव, अनुबन्ध (विशिष्ट परिस्थिति), तदात्व, देश और काल। (८७)

दण्डवृद्ध = वृद्ध सेनाधिकारी। (९३)

दण्डमण्डल व्यूह = दण्डाकार एवं वर्तुलाकार व्यूह की रचना।

दण्डव्यासंग = सेना का अभ्यास, या प्रशिक्षण।(१०६)

दण्डसन्धि = हाथी, घोड़े जैसे सेनांगों की प्राप्ति की बोली पर संधि। (१३६)

दण्डातिसंधान = सेना के बल से शत्रु को त्रस्त करना। (१२)

दण्डान्तर = चार हाथों का अंतर। (२४)

दण्ड्य =सभी असिद्ध व्यवहारों में कर्ता, कारयिता, श्रोता, अनुमन्ता (साथीदार या साक्षीदार)। (५८)

दम =दण्ड। (६६)

दम्य = अप्रशिक्षित किन्तु प्रशिक्षण योग्य। (५२)

दम्यकर्म = असंस्कारित बैल, घोडे, हाथी को शिक्षा देना। (५२)

दम्यहस्ती = (५ प्रकार) = स्कन्धगत, स्तंभगत, वारिगत, अवपातगत, यूथगत। (५३)

दशबन्धं दण्ड = दस गुना दण्ड (२८)

दशवर्गाधिपति = दस सैनिकों के प्रमुख।

दशवर्गिक = पुरोहित आदि दस वर्गों के नेता गण। (२१)

दण्डकर्मिक = गुप्तता से राज्यद्रोहियों का वध करवाना। (९१) (९६)

दान =(३ प्रकार) = अनुग्रह, परिहार (कर माफी), कर्म आयोग (विशिष्ट कार्य पर नियुक्ति। (१२६)

दान के निमित्त = शौच, सामर्थ्य, व्यसन (गृहसंकट), अभ्युदय (उत्तम कार्य) - इन चार निमित्तों से दानप्रयोग करना चाहिये। (१२६)

दानप्रयोग साध्य =(१) लुब्ध और (२) धनक्षीण। (१२७)

दान (पांच प्रकार) = देयविसर्ग (लेने की रकम छोड़ना), गृहीतानुवर्तन (ली हुई राशि को मान्यता देना), आत्तप्रतिदान (स्वाधीन की हुई राशि वापस देना), स्वद्रव्यदान, परधन लूटने की अनुमति देना। (१२७)

दान (प्रकार) = धर्मदान, अर्थदान, कामदान (कलाकारों को दान), भयदान, रोषदान, (दूसरे को अपाय करने हेतु दान)। (७३)

दाय = पूर्वक्रमागत संपत्ति। (४८) (६२)

दाय के ६ अनधिकारी =पतित, पतितजात, जड, उन्मत्त, अन्ध, कुष्ठी। (६२)

दायधर्म = (प्रकार) – देश, जाति, संघ, व्यापारी संस्था तथा ग्राम- इन चारों की परम्परा दायविभाग में प्रमाण होती है। (६४)

दायाद = संपत्ति के उत्तराधिकारी, वारिस, (६२)

दार = प्राचीर में निर्मित विच्छेद।

दारकर्म = विवाहसंस्कार। (५)

दाण्डकर्मिक = शत्रुओं को गुप्तता से दण्ड देना।

दायक = (दापक) – वसुली की रकम तय करने वाला और वसूल करने वाला। (२८)

दिवायाम =दिन का सांकेतिक शब्द। (१२९)

दास (या दासी के चार प्रकार) =गृहजात, दायागत, लब्ध और क्रीत। (७०)

दासी =(५ प्रकार की सेवावृत्ति) धात्री (धाय), परिचारिका (घर काम रसोई आदिवाली), अर्धसीतिका (आधे हिस्से पर खेत में काम करने वाली), उपचारिका (रुग्णसेवा करने वाली), पुश्चंली (व्येश्या)। (७०)

दुर्ग =(आठ प्रकार) १) स्थल, (२) नदीदुर्ग, ३) प्रास्तर, (४) पार्वत, (५) इरिण, (६) धान्वन, (रुक्षभूमिस्थित) (७) संबगहन, (८) वन.। (२४)

दुर्ग (अष्टभेद) = अन्तद्वीप (स्थल), २) निम्नावरुद्ध (औदक), ३) प्रातर (जलप्राय भूमि में स्थित) गुहा (या पर्वत), ५) इरिण, ६) धान्वन, ७) खंजनोदक, (८) स्तंबगहन (वन.)। (१०८)

दुर्ग से संबंधित शब्द = मत्तवारण, प्रतिमंच, आणि, हर्म्य, स्थूणावबन्ध, उत्तमागार, तोरणाशिरः, इन्द्रकील, अरत्नि, मणिद्वार, हस्तिपरिघ, निवेश, हस्तिनख। इनके शब्दों के अर्थ अज्ञात से हैं।

दुर्ग = इसके अन्तर्गत शुल्क, दण्ड, पौत्तव, नागरिक, लवणाध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, सुरा, सूना, सूत्र, तैल, घृत, क्षार, सौवर्णिका, पण्यसंस्था, वेश्या, द्यूत, वास्तुक, कारुशिल्पिगण, देवताध्यक्ष, द्वारबाहिरिकार देय- इन २० विषयों का अन्तर्भाव होता है। (८ / २७)

दुर्गनिवेश = किलों की स्थापना। (२)

दुर्गवध = किले पर चढ़ाई करना। (५४)

दुर्बुद्धि = नित्य संकटग्रस्त रहने वाला और धर्म, अर्थ का द्वेष करने वाला। (१७)

दुष्टतुला (खोटा तराजू) = ७ प्रकार - सन्नामिनी (झटका देने योग्य), उत्कीर्णिका (नीचे सीसा भरी हुई), भिन्न मस्तका

(टूटे कांटे वाला), **उपकण्ठी** (पोले डंडी वाली, **कुशिक्या** (विषम पात्र वाली), **सकटुकक्ष्या** – डोरी में गांठ वाली), **परिवेल्ययस्कान्ता** (लोहचुंबक युक्त)। (३५)

दूतप्रणिधि = राजसभा की मसलत या मंत्रणा का ज्ञान रखने वाला दूत। (१६)

दूतप्रणिधि के तीन प्रकार =१) निःसृष्टार्थ। (२) परिमितार्थ। ३) शासनहर। (१६)

दूतप्रावर्तिम = पराराष्ट्रस्थित दूतावास का व्यय।

दूष्य = राजद्रोही, या जिस पर राजद्रोह का आरोप किया जाता है। (९१) (१००)

दूष्यकुल्य = राजद्रोही परिवार के लोग। (९२)

दूष्यबल = सैन्यान्तर्गत राजद्रोही लोगों का दल या जिनके (१११) विषय में राजद्रोह की संभावना है ऐसे लोग। (१३१)

दूष्यवध =राजद्रोही का कड़ा दण्ड। (११)

दूष्यव्यंजन = राजद्रोही के रूप में संचार करने वाले गुप्तचर। (१२६)

दृढक =व्यूह का एक प्रकार।

दृति = भाता (३५), पखाल (५७)

दृतिप्लवग = तैरने के लिये चमडे के बुधले। (१३०)

दृष्टापदान = पूर्व परम्परा जानने वाला। (८)

दृढवास्तुक = जड़ाव का अलंकार।

दृषद् =पीसने की चक्की। (३६)

देवगृह =देवमंदिर। (२५)

देवताकोष्ठक = देवता का मंदिर। (२५)

देवताध्यक्ष = देवता का प्रमुख पुजारी। (२७)

देवच्छन्द = १०० यष्टियों के मोतियों का हार। (३२)

देवदण्ड = युद्धोपयोगी चलयंत्र, लम्बे कीलकों से युक्त महान दण्ड जो किले के बुर्ज पर रखा जाता है। (३९)

देवपथ = भूमिगत मार्ग या गुप्त मार्ग। (२४)

देवरात्रिकरण = रातभर भजन करना। (८०)

देवसर =विशाल नैसर्गिक सरोवर (जो कभी शुष्क नहीं होता)। (४९)

देशमान =(अंतर का नाप) = परमाणु, धूलिकण, लीख, ऊं, यव, अंगुल, धनर्ग्रह, धनुर्मुष्टि, वितस्ति, (बिल्लस), अरति (एक हाथ), शम, किष्कु, व्याम (गहराई नापने का प्रमाण), दण्ड। (४१)

देशलौल्य = अन्यान्य देशों में प्रवास करने का शौक।

देशावस्थापन = देश विषयक चिन्तन।

देशोपनत सन्धि = भूमि का उत्पन्न देने की बोली पर की गई संधि।

दैव (कर्म) =जिस का ज्ञान घटना के पूर्व नहीं होता। (९८)

दैवकृत दुर्ग =(१) नैसर्गिक भूरचना के अनुरूप, (२४) या निसर्गतः सुरक्षित दुर्ग। (११०)

दैवदण्ड = दैवी आपत्ति। १ (१३)

दैवपीडन = (पांच प्रकार) अग्नि, उदक (महापूर), व्याधि, दुर्भिक्ष, मरक। (१२०)

दैवी महाभय = (८ प्रकार) = अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष, मूषिका (चूहे), व्याल (हिस्र पशु), भर्व, भूतापिशाच (रक्षांसि)। (८०)

दोष (अधिकारी के) = जिससे राजा (सरकार) का आर्थिक नुकसान होता है। अज्ञान, आलस्य, प्रमाद , भय, काम, कोप, दर्प, लोभ। (२८) (यथापराधं दण्डयाः)

दौरात्मिक व्याधि = दुराचार के कारण उत्पन्न होने वाला रोग। (९१)

दौवारिक = द्वारपाल, द्वाररक्षक। (२१)

द्यूत समाह्वय = द्यूत या स्पर्धा (१-३)

द्यूताध्यक्ष = (७७)।

द्यूतावास = जुए का अड्डा। (५७)

द्रव्य = जंगम संपत्ति। (६२)

द्रव्यवन = उत्पादक वन या उत्पन्न देने वाला वन। (३८)

द्रव्यवनकर्मान्त = जंगल के कच्चे माल से पक्का माल तयार करने का कारखाना। (२३)

द्रव्यहरण के ४० उपाय = पूर्व सिद्ध पश्चात् अवतारितम्। पश्चात् सिद्ध पूर्वम् अवतारितम् (पहली जमा बाद में, और बाद की पहले दर्ज करना),। साध्यं न सिद्धम्, असाध्यं सिद्धं (मिलने योग्य वसूल न लेना, और वसूल करने अयोग्य लेना) इत्यादि प्रकार की हेराफेरी।

द्रोण = अनाज का एक विशिष्ट नाप। (७९) १ द्रोण = चार आढक। (३६)

द्रोणमुख = चार सौ गांवों का केन्द्रस्थान, या एक प्रकार की व्यूहरचना। (२२)

द्रोणी = मजबूत पेटी। (३७)

द्वारबाहिरिकादेय = दरवाजे के अंदर बाहर से आने वाले माल पर लेने का कर। चुंगी। (२७)

द्वारादेय = सीमा के अंदर माल आने पर लादा गया कर। (४३)

द्विगुणावास्तुक = दो पत्रेवाला अलंकार। (३५)

द्विपटवान = चौड़े पन्हे वाला कपड़ा। (७८)

द्विपितृक पुत्र = क्षेत्रज पुत्र के जन्मदाता और माता का पति दोनों पिता धर्मतः होते हैं। यह "द्विगोत्र" भी होता है। दोनों की संपत्ति का उत्तराधिकारी तथा दोनों का पिडदान करता है।

द्वैधीभाव = सन्धि और विग्रह दोनों का अवलंब। (९९)

द्वैराज्य = दो राजाओं का आधिपत्य।

द्वि-अंगबल विभाग = पदाति आगे की दोनों ओर, दोनों बगलों में अश्व, हाथी पिछाडी में और रथ अग्रभाग में। इसी प्रकार त्र्यंग बलविभाग भी होता है। (१३३)

धनिक = साहुकार। (६८)

धनिक – धारणिक = धनको और ऋणको। (६८)

धनुस् = एक नाप (प्रायः ६ फीट का अंतर)

धनुष प्रकार = चाप, ताल, दारव, शाङ्‍र्ग, कार्मुक, कोदण्ड। (३९)

धन्वन = अश्वत्थ या बांस। (३८)

धरक = वजन करने वाला, कांटावाला।

धरण = वजन। **प्रकार** = माष, गुंजा, सुवर्णमाष, सुवर्णाकर्ष, पल, रूप्यभाष, धरण = (१६ मासे का वजन)। (४१)

धर्मलोप = सामाजिक अधिकारों का अपहरण। (६०)

धर्मवध = धर्म नियमों का अतिक्रमण। (६०)

धर्मस्थ = (१) न्यायाधीश। (५८) (६०)। (२) सामान्य कैदी। (२६)

धर्मसंस्थान = धार्मिक आचार की पद्धति। (२८)

धर्मस्थ = (न्यायाधीश) के २० अपराध = तर्जन, भर्त्सन, अपसारण, अभिग्रसन (गवाह को बोलने से मना करना), वाक्पारुष्य (गालियां देना), पृच्छ्यस्य अपृच्छा, अपृच्छस्य पृच्छा, पृष्ट्वाविसृजति, स्मारयति, पूर्वंददाति (पहली जबानी दिखाना), देयं देशं न पृच्छति, अदेय देशं पृच्छति, कार्यम् अदेशेन अतिवाहयति, छलेन अतिहरति, कालहरणेन श्रान्तम् अपवाहयति, मार्गापत्रं वाक्यम् उत्क्रमयति, मतिसाहाय्यं साक्षिभ्यो ददाति, तारितानुशिष्ट कार्यं पुनरपि गृहणाति। भूतम् अर्थं नाशयति, अभूतम् अर्थं करोति। (८६)

धर्मस्थीय = न्यायविभाग। (१०)

धर्मावसथी = धर्मस्थान का व्यवस्थापक। (५७)

धर्मोपधा = धार्मिकता की कसौटी या गूढ परीक्षा। (१०)

धातु = (तीन प्रकार) भूमिजन्य, प्रस्तर (पत्थर), जन्य, रसजन्य। (३३)

धातुप्रकार =कांचन, शिलाजतु, ताम्र, रूप्य, सीस, त्रपु (कथिल), तीक्ष्ण धातु (लोह) वैकृन्तक (पोलाद), मणिधातु। (३३)

धान्य के तीन प्रकार =पूर्ववाप, मध्यवाप, पश्चाद्वाप। (४५)

धान्यनिचय = धान्य का गोदाम। (२५)

धान्यवृद्धि = धान्य के रूप में व्याज। (६८)

धारणिक = ऋण लेने वाला। (६८)

धारा =(औपवाह्य अश्व का वेग) = धारा के ५ प्रकार= विक्रम, वल्गित, उपकंठ, उपजव, जव। (५१)

धेनु = दुभती गाय। (५०)

धोरण = दौड़ लगाने वाला औपवाह्य हाथी। (५३)

धोरण = (औपवाह्य अश्व की एक गति) ८ प्रकार — कांक, वारिकांक, मायूर, अर्धमायूर, नाकुल, अर्धनाकुल, वाराह, अर्धवाराह। (५१)

ध्मायक = भाता फूकने वाला। (३४)

ध्रुवनिधि = गंगाजली, स्थायी निधि। (२६)

ध्वजस्थान = राजपुत्र को मातुल परिवार में रखने पर, भिखारी जिस प्रकार झंडा लेकर पैसे जमा करते हैं, उसी प्रकार मातुल परिवार के लोग राजा से द्रव्य मांगते रहते हैं। अतः ऐसे राजपुत्र को 'ध्वजस्थान' कहते है। (१७)

ध्वजाहत = युद्धबंदी। (७०)

नक्षत्रमाला = २७ यष्टियों वाला मोतियों का हार। (३२)

नदीपाल = तीर्थरक्षक अधिकारी। (२०)

नष्टप्रस्मृत (आय) = स्वामी मृत या अज्ञात होने से प्राप्त धन। (२७)

नागरायण =सीमा पर टक्कर मारना।

नागरक (या नागरिक) = नगर प्रमुख। (२७) (५७)

नागवन = हाथी वाला जंगल। चार प्रकार = पार्वत, नदेय, सारक, आनूप।

नागवनाध्यक्ष = हाथी वाले जंगल का प्रमुख (२३)

नायक = १० सेनापतियों का प्रमुख। (अर्थात् सेना के हजार अंगों का प्रमुख। (१२), (१३४)

नारोष्ट्र (या नारोष्ट) = औपवाह्य अश्व की एक गति जिस में वह इशारे के अनुसार दौडता है। (५१)

नारोष्ट्र कर्म = हाथी का जठराग्नि प्रदीप्त करना। (५३)

नालिका = समयबोधक घटिका पात्र। (१९)

नाली = नली, पन्हाल, मूस। (३५)

नावध्यक्ष = नौकाविभाग प्रमुख। (४९)

निकष = कसौटी का पत्थर। (३४) **तीन प्रकार** — क्रयहित, विक्रयहित, क्रयविक्रयहित।

निक्षेप और उपनिधि = बंद और खुला न्यास। (अमानत)। (६९)

निक्षेप = भूमि में गाड़ कर रखा हुआ धन। (७३)

निक्षेपभाजन = तिजोरी। (२८)

निक्षेपोपनिधि = गिरवी रखा हुआ माल। (४६)

निगूढोपहित = गुप्तता से रहने वाले जासूस।

निचय = कोशस्थान, संग्रहस्थान। (२६)

नित्यव्यय = दैनंदिन खर्च। (२७)

नित्याधिकार = एक ही अधिकार पर सदा के लिये नियुक्त व्यक्ति। (३०)

नित्योत्पादिक = (व्यय) = नित्य व्यय के साथ किसी कारण होने वाला आनुषंगिक व्यय। (२७)

निधातृ- निधातृक = या निधायक = प्रमुख कोषाधिकारी या खजांची, खजीनदार (२८)

निन्दा के ३ विषय = कुल, शील, और शरीर के दोष कथन।

निन्दु = मृतपुत्रा या जिसके पुत्र जन्मतः मरते हैं ऐसी स्त्री। (५९)

निबन्ध = विविध चिह्न या लक्षण। (२३)

निबन्धक = हिसाब लिखने वाला मुनीम। (२८)

निबन्धपुस्तक = वहीखाता, हिसाब के कागजात। (२८)

निमित्त = शकुनशास्त्र। (९)

निम्नयोधी = पर्वत की घाटी में लड़ने वाले।

निम्नारण्य = पर्वत की घाटी में बढ़ा हुआ अरण्य। (५५)

नियम्य = न्यायालय में पराभूत होने वाला। (५८)

नियुक्त = नियोग पद्धति से पुत्र उत्पन्न करने वाला। (६३)

नियोगसम्पद् = संसिद्ध कार्य को अधिक फलप्रद करने की उपाय योजना। (१६)

निर्देशोत्पादिक = (लाभ) विशेष सहुलीयत। विशेष अधिकार से छूट। (२८)

निविशमान = नई बस्ती बसाने वाला। (९२)

निविष्टपण्य = भारी कीमत का माल। (४२)

निवेशकाल = विधवा द्वारा पुनर्विवाह किये पर दूसरे पति के घर में प्रवेश करने का काल। (५९)

निशान्त प्रणिधि = राजमहल की रचना तथा संरक्षण। (१) (२०)

निश्चार = संचार को प्रतिबन्ध (कर्फ्यू)।

निश्रेणी = सीढ़ी। (६५)

निष्कर = दुर्धर आघात, जोरदार हमला। (१४४)

निष्कुहद्वार = गुप्त दरवाजा। (२४)

निष्पातन = वस्तु बाहर या अन्यत्र ले जाना। (४८) (६९)

निष्पातित = फरार, पलायित। (४८)

निसृष्टार्थ = पूर्ण अधिकार दिया हुआ गुणसंपन्न दूत।

निसृष्टिलेख = अधिकार-दान की संमति का लेख।

निसृष्टि = (शासन पत्रक प्रकार) विशिष्ट व्यक्ति को अपना कार्य करने या अपना प्रचार करने की अनुमति। (३१)

निसृष्टिस्थापना = अपना अधिकार दूसरे को देने की विधि।

निर्हरण = समाचार बाहर भेजना। (१२)

नीचैर्गत = (औपवाह्य अश्व की एक चाल) १६ प्रकार = प्रकीर्णक, प्रकीर्णोत्तर, निषण्ण, पार्श्वानुवृत, ऊर्मिमार्ग, शरभक्रीडित, शरभप्लुत, त्रिताल, बाह्यानुवृत, पंचपाणि, सिंहायत, स्वाधूत, क्लिष्ट, श्लाघित, बृंहित, पुष्पाभिकीर्ण। (५१)

नीव्र = घर का छप्पर। (६५)

नीराजनाविधि = (या वाजिनीराजनाविधि) = अश्वपूजन की विधि। (५१)

नीवी = संपूर्ण खर्च होने पर रहने वाली बचत। (२७) दो प्रकार १) प्राप्ता (रोख बचत)। २) अनुवृत्ता- हिसाब होने पर रही बचत।)

नीवीग्राहक = खजांची, कोषप्रमुख। (३०)

नीवीभक्षण = बचत के पैसे खाना। (२८)

नेता = विजिगीषु राजा। (१०३)

नैत्र = नेतृत्व, राजनीति की चाल।

नैमित्तिक = शकुन-अपशकुन जानने वाले। (१३)

नैवेशनिक = विवाह पर हुआ व्यय। (६२)

नैषेचनिक = मृत्युनिमित्त मद्य का वितरण। (१३५)

पक्ष = व्यूह की आघाड़ी के दो अग्रभाग।

पक्षवान् = जिसे किसी पक्ष का आधार होता है। (३०)

पक्षोपग्रह = स्वपक्ष में लाना। (१)

पंचकं शतं वेतनम् = प्रतिशत पांच मजदूरी। (७८) सैकड़ा पांच दण्ड। (४६)

पंचकुली = (पांच कुल जहां एकत्र रहते हों ऐसी भूमि)।

पंचग्रामी = (या दशग्रामी) के अन्तर्गत विभाग = (गोप के कार्यक्षेत्र के विभाग) = कृष्ट, अकृष्ट, स्थल (समभूमि), केदार (जलमय भाग), आराम, वाट (वाडी), वन, वास्तु, चैत्य (समाधि स्थान), देवगृह, सेतुबंध, श्मशान, सत्र (अन्नसत्र), प्रपा (पेयजलस्थान), (पुण्यस्थान, विवीत, मार्ग। (५६)

पंचबंध = पांच गुना।

दशबन्ध = दस गुना। (७०)

पंचसंस्था = कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक और तापस नामक पांच प्रकार के गुप्तचर। (११)

पंचालिक = युद्धोपयोगी एक चलयंत्र। आक्रमकों के मार्ग में जल के अन्तर्गत रखा हुआ कीलयुक्त फलक। (३९)

पंचाशत्क = ५० वर्षो की उमर वाला। (२०)

पट्टन = गांव (२७)।

पण = एक प्रकार की मुद्रा।

पणन-व्यवहार = क्रय-विक्रय जो पण (मुद्रा) के माध्यम से होता था। (३३)

पणयात्रा = मुद्रा व्यवहार के नियम। (३३)

पण्य = बिक्री का माल। (२५)

पण्यगृह = किराने का गोदाम। (२६)

पण्यनिचय = बिकाऊ माल का गोदाम। (२५)

पण्यपतन = व्यापार के केंद्र का नगर। (२२)

पण्यपतन-चरित्र = व्यापारी बंदरगाह की पद्धति। (३७) (४९)

पण्यपुट = अन्याय प्रकार के बाजारू मालों की मंडियां। (२४)

पण्यसंपात = बिक्री को माल एकत्रित करना।

पण्यसंस्था = व्यापार की संस्था। (७९)

पण्यागार = विक्रेय माल का संग्रह स्थान। गोदाम (मराठी में कोठार)। (५६)

पण्याधिष्ठाता = माल की बिक्री करने वाला। (३७)

पण्याध्यक्ष = बिकाऊ माल का प्रमुख। (७९)

पथ्यनुसरण = पुरुष के साथ स्त्री का भाग जाना, (यह एक दण्ड्य अपराध है।) (६०)

पतिशयनं पालयन्ती = पतिव्रता विधवा। (५९)

पत्तनाध्यक्ष = बंदरगाह का प्रमुख। (४९)

पत्तियुद्ध = (पत्ति- पदाति सैन्य)। २ प्रकार। सर्वदेश और सर्व काल में आघात करना। तथा (२) उपांशु दण्ड (गूढ आघात)। (५४) (१३३)

पत्यध्यक्ष = पैदल सेनाविभाग का प्रमुख। (२)

पत्रोर्णा = नागवृक्ष, लकुच, बकुल और वट वृक्ष के पत्तोंपर पोसे गए कीडों द्वारा निर्मित रेशम। ३ प्रकार मागधिका, पौण्ड्रिका, सौवर्ण कुड्यका। (३२)

पथिभक्त = प्रवास भोजन का व्यय-। (५८)

पदिक = सेना के दस अंगों का प्रमुख। (१३४)
परदेशोपवाहन = परकीय प्रदेश से लोगों को लाना। (२२)
परविषय = शत्रुराज्य। (१४)
पराक्रमं = शांतता संधि का भंग करने हेतु शत्रु पर आक्रमण। (१६)
परमित्रा = वह आपत्ति जिसमें शत्रु और मित्र एकत्रित आये हों।
परावाप = शत्रु पक्ष की अलग रखी हुई सेना।
परकर्मिक = सेवा शुश्रूषा करने में कुशल। (२३)
परकर्मी = सेवा में कुशल नौकर वर्ग। (४५)
परिखा = खंदक। (२०)
परिघ = सब्बल। (१४०)
परित्याज्य सेवक = भीरु, निरुद्योगी, और अमर्षशील (असहिष्णु या निष्ठुर) तीन दोषों से युक्त। (१०४)
परिदान लेख (शासन पत्रक का प्रकार) = गुणी जनों को पारितोषिक, या संकट निमित्त सहाय का आदेश। (३१)
परिदेश = एक लंबाई का नाम (२ रज्जू - १ परिदेश)
परिपणित सन्धि = देश विभाजन की बोली पर शत्रु से सन्धि। (७)
परिपूर्णता (लेखगुण) = शब्द और अर्थ में न्यूनता या अतिरेक न होना, हेतु, उदाहरण और दृष्टान्तों द्वारा अर्थ को विशद करना। (३१)
परिबंध = पक्षसंबंध।
परिभाषण = धमकी, इशारा (२६)
परिभाण्ड और वास्तुक = अशुद्ध और शुद्ध सोना। (३४)
परिभाण्ड = हीन सुवर्ण, हलका सोना। (३४)
परिमाणि = वजन का एक प्रकार।
परिमितार्थ = दूतप्रणिधि= अमात्य से ३/४ गुणों से युक्त दूत जो सीमित कार्य पर नियुक्त किया जाता है। (१६)
परिरय = १० अंगुलियों का नाप।
परिवर्तक = एक धान्य लेकर दुसरा धान्य देने वाला। (३६)
परिवाप = आर्थिक परिस्थिति। (६०)
परिवाह (या परीवाह) = बाहर जाने का मार्ग। (२४)
परिव्राजक धर्म = इंद्रिय संयम, अनारंभ (नैष्कर्म्य), अकिंचनता, संगत्याग, भैक्ष (भिक्षाटन), अरण्य में अनेक स्थानों में निवास, बाह्य एवं आभ्यंतर शुचित्व। (३)
परिस्तोम = कंबल का एक प्रकार।
परिहायण = उत्पन्न घटाना और व्यय बढाना।
परिहारोपहत = सहुलीयत के कारण क्षीण।
परिहार = फसल न आने पर दी गई किसान को सहूलीयत। (३२)
परिहार लेख = (शासन पत्रक का प्रकार) = विशिष्ट जाति, नगर, ग्राम और प्रदेश को सहूलियत देने का आदेश। (३१)
परिहार लाभ = करमाफी।(२८)
परोक्त = न्यायालयकी जबानी में एक अपराध। नौ प्रकार के अपराध = संक्रमण, अभिसंधान, अभिग्रहण, अनिर्देश, निर्देश, उपस्थापन, अर्थवचन, अपव्यय, अनवधारण। (५८)
परोक्ष = परोपदिष्ट, दूसरे के द्वारा कथित। (९)
प्रतीवाप = पिष्ट आदि का लेपन। (३३)
पर्जन्यक = युद्धोपयोगी स्थित यंत्र, जिससे आग बुझाई जाती है। (३९)
पर्युपासन कर्म = (१) घेराव (२) किलों का बंदोबस्त (१३) (४४)
पर्युषित आय = परसांवत्सरिक (गतवार्षिक), परप्रचार (जो निवृत्त अधिकारी द्वारा समर्पित की जाती है)। (२७)
पशु के ४ उपकार = लोम (ऊन), दोह (दूध), वाहन, प्रजनन। (९०)
पश्चात्कोपचिन्ता = पिछाड़ी के ओर से संरक्षण की सिद्धता। (९)
पश्चाद्वाप = वर्षा के अन्त में बोने योग्य धान्य। (कुसुम्भ, मसूर, कुलत्थ, याव, गोधूम (गेंहू) कलाय (द्विदल धान्य), अतसी (अलसी), सर्षप (राई)। (४५)
पष्ठौही = गर्भधारण योग्य (तरुण) गाय। (५०)
पाकपात्र = पतला पत्रा। (३४)
पादगोप = सेना में अश्वरथ तथा हाथी के रक्षक पदाति वीर। (१३३)
पादपाशिक = हाथी जैसे पशुओं के पांव में पाश बांधने वाला। (२३)
पादप्रक्षालन = (अश्वमेधावभृथस्नानेन तुल्यो हस्तिना वधः इति पादप्रक्षालम्।) हाथी के पावतले मृत्यु आना, अवभृथ स्नान (यज्ञ समाप्ति का स्नान) के समान है। अतः उसे पादप्रक्षालन कहते हैं (९०)
पादबंध = घर की नींव। (६५)
पादिक = चतुर्थांश। (५०)
पानागार = मद्यपान का स्थान, शराबखाना। (४६)
पानानुबन्ध = मद्यपान का चस्का।
पारग्रामिक = शत्रु के ग्राम पर कब्जा करने का उपाय। (१२४)
पारग्रामिक योग = शत्रुओं के गांवो में धूम मचाना। (१८)
पारतल्पिक = व्यभिचारी। (८२)
पारदारिक = व्यभिचार चेष्टा। (६७)
पारविषयिक = परदेश के लोग। (४९)
पारिकर्मिक = हाथी के सेवा में कुशल सेवक।
पारीक्षिक = मुद्रा आदि की परीक्षा का शुल्क। (३३)
पारिपतन्तक = व्यूह का एक प्रकार।
पारिवेल्ली = टेढ़ी डंड़ी का तराजू।
पारिहीणिक = राजमार्गस्थ वृक्षों की आय। (३६)
पारिहीणिक (आय) = नुकसान भरपाई। (२७)
पारुष्य = मारपीट (६५)
पार्श्व (आय) = धन स्वामी की विस्मृति के कारण प्राप्त। (२७)

पार्ष्णिग्राह = विजिगीषु राजा की पिछाड़ी के प्रदेश का अधिपति जो युद्ध के समय पीछे से उपद्रव देता है। (९८) (तीन प्रकार) = चेष्टा निरोधक, पृष्ठतो वर्ग सामन्त, और पार्श्वतः प्रतिवेशी (बांये दाहिने ओर के पड़ोसी)। (१११)

पार्ष्णिग्राहासार = विजिगीषु राजा की पिछाडी के शत्रु का मित्र (अर्थात् विजिगीषु का परोक्ष शत्रु या आक्रंद राजा का प्रत्यक्ष शत्रु। (९८) (१०१)

पालि = बगीचे की साग सब्ज़ी। (६७)

पाषंडावास = पाखंडी लोगों का निवासस्थान या विधर्मियों के निवास का भाग। (५७)

पांसुधावक = झाडू पोछा करने वाला सेवक। (३४)

पिंकअपसारण = जडाव के अलंकार से सोना निकालकर दूसरी धातु डालना। (३५)

पिण्डकर = गांव की वसूली। (३६)

पिंडारक = महिषपाल।

पिण्याक = जानवरों के खाने की तिल की पेंड। (३६) -५०)

पीठिका = राजासन। (४८)

पीडन (प्रजा के उपद्रव के कारण) = दैवपीडन, क्षुद्रकक्षय, मुख्यक्षय, स्वचक्र, (अन्तर्गत कलह), परचक्र, प्रकृतिविवाद, राजविवाद, देशविहार (क्रीडा), राजविहार, रात्रपुत्र, राजकन्या, श्रेणी, मुख्य, सन्निधाता, समाहर्ता, अन्तपाल, वैदेहक (१२०), प्रतिरोधक (डाकू, आटविक), (कुल १९)। (१२०)

पुंगव (बैल) की अवस्थानुसार ६ भेद = वत्स, वत्सतर, दम्य, वाही, वृष, उक्षा, युगवाहन, शकटवाहन। (५०)

पुत्रिका = कृतक कन्या या मानी हुई अनौरस कन्या।

पुद्गल = अलंकार बनाने योग्य सोना।

पुनरुक्ति (लेखदोष) = आवश्यकता न होने पर भी उक्त विषय का पुनः कथन। (३१)

पुरुषभृति-पथिभक्त = दैनिक भोजन व्यय तथा प्रवास भोजन का व्यय। (५८) (डेली अलाऊन्स, ट्रॅव्हलिंग अलाऊन्स)

पुरुषभोग (मित्र) = जिस के पास शूर मनुष्यों का संग्रह अधिक है ऐसा मित्र। (१०७)

पुरुष विप्रकार = पतिद्वारा स्त्री को उपद्रव या पीड़ा। (६०)

पुरुष-वेतन = श्रमिक की दैनिक मजदूरी। (३०)

पुरुष-सन्धि = सैनिक देने की बोली पर संधि। (१३५)

पुरुषोपस्थापन = सामूहिक मजदूरों में कोई एक अस्वस्थ होने पर उसने अपने लिए दूसरे को उपस्थापित करना। (७१)

पुलक = रत्न जो बीच में काला पड़ गया हो।।

पुलाक = पुलाव, पक्व खाद्य। (५१)

पुष्पका-सीस = आयर्न सल्फेट।

पुष्पच्छिद्र = मणि का एक दोष। बीच बीच के दाग होना। (३२)

पुस्तकस्थ प्रकरण = दर्ज करना, नमूद करना। (२८)

पुस्तभाण्ड = पुस्तकों की पेटी। (२८)

पूग = संघ, समुदाय। (१-१३)

पूजा-वेतन = सत्कारधन, धनस्वरूप उपहार। (९२)

पूज्यव्यक्ति = न्यायालय के ५ गुण = विद्या, बुद्धि, पौरुष, अभिजन, कर्मातिशय। (७७)

पूतिकिट्ट = धातु को शुद्ध करने से निकाला गया माल। (३५)

पूर्ववध दण्ड = (तीन प्रकार) = ४८ से ९६ पण। **मध्यम वध** = २०० ते ५०० पण। **उत्तम वध** = ५०० ते १००० पण। (वध दो प्रकार देखिये)

पूर्ववाप = वर्षा ऋतु के प्रारंभ में बोने योग्य। (शालि, व्रीहि, कोद्रव, तिल, प्रियंगु, दारक, वरक। (४५)

पूर्वसाहस दण्ड = ४८ से ९६ तक पण का दण्ड।

पृषतकारु = जड़ाव का काम करने वाला कारीगर। (३४)

पृषित = सोने के मणि। (३४)

पेटक = मुलामा चढाया हुआ एक अलंकार (दो प्रकार) गाढ़े सीसे पर किया हुआ और अभ्युद्धार्य = लाख पर किया हुआ। (३५)

पौतव = वजन और नाप। (२७) (४१)

पौतवाध्यक्ष = वजन और नाप का अधिकारी। (३४) (३५)

पौरजानपद = समस्त प्रजाजन। (१३)

पौर (व्यावहारिक) = नगराध्यक्ष। (१२)

प्रकाण्डक यष्टि = मोतियों की लड़ी का एक प्रकार। (३२)

प्रकाश युद्ध का अवसर = बल, विशिष्टता और उपजाप की सिद्धता, ऋतुमान की व्यवस्था। (अन्यथा कूट युद्ध करना उचित)। (१३१)

प्रकीर्णिका = सैन्य की मिश्र हलचल।

प्रकृत = विभाग का अधिकारी। (२८)

प्रकृति = स्वामी (राजा), अमात्य, जनपद (देश), दुर्ग, कोश, दण्ड = (सेनाबल), मित्र। (इन्हींको राज्यपुरुष के ७ अंग कहते हैं। (९७)

प्रकृति = विजिगीषु और उसका शत्रु, इनके अतिरिक्त, मित्र अरिमित्र, मित्रामित्र, अरिमित्रामित्र,पार्ष्णिग्राह, आक्रंद, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रंदासार, इनके अतिरिक्त २ उदासीन और २ मध्यम (कुल १२ राजाओं का गण)। (९८)

प्रकृति = अमात्यदि उच्च अधिकारी वर्ग। (११४)

प्रकृति (२ प्रकार) मित्रप्रकृति और अरिप्रकृति। (११६)

प्रकृति (प्रजाजनों के) **प्रिय-हित** करने के ६ उपाय = स्वधर्म, स्वकर्म, अनुग्रह (उपहार इ.), परिहार (कर माफ करना), दान, मान। (१४५)

प्रकृतिकर्शन = प्रजा के द्वारा पीडा देना। (१०६)

प्रकृतिप्रकोप = सामाजिक अशान्तता। (९)

प्रकृतिमण्डल = राजमण्डल। (९९)

प्रकृतिसंपद् = राज्य के विविध अंग। (६)

प्रकृति-विकृति = मित्र-शत्रु। (११६)

प्रकृतिवेतन = राष्ट्रीय संकट। (८) (दो प्रकार) = अनय (नीती का अभाव) और अपनय (नीतिबाह्य व्यवहार)। (११७)

प्रकृति व्यसन (संकट के दो प्रकार) = दैव और मानुष। (११७)

प्रकृष्टभौम = विजिगीषु के राज्य से दूर के प्रदेश का अधिपति।

प्रक्रय = राजस्व या राजकीय हिस्सा। (३३)

प्रक्रय = नगद रकम देकर खरीदना। (६६)

प्रक्षेप = (१) जमा रखा हुआ माल (६८) (२) स्थावर गिरवी। (६९)

प्रग्रहलाभ = आदर सत्कार। (२८)

प्रग्रीव = कठड़ा (लकड़े का)। (५१)

प्रचार = नया कार्य। (२७)

प्रचारसम = कार्य की सामान्य पद्धति। (२८)

प्रचार-संस्थान = कार्य की पद्धति। (२८)

प्रच्छन्दक = स्वैर संचारी।

प्रज्ञागुण = (७ प्रकार) शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊहापोह, तत्त्वाभिनिवेश। (राजा का एक गुण) । (९७)

प्रज्ञापना (आज्ञालेख) = नौकरों को दण्ड यां अनुग्रह देने का आदेश। (३१)

प्रणय = व्यवहार, न्यायपद्धति। (९२)

प्रणिधि = (१) अधिकार पर नियुक्ति (१), (२) गूढ वार्ताहर (३), (३) अधिकारी (८०), (४)कर्तव्य। (८१)

प्रताप = शत्रु को पीडा देना। (१६)

प्रतिकर्तृ = सख्त मजदूरी का दण्ड भोगने वाला कैदी। (४५)

प्रतिकृष्ट = नीलाम की घोषणा करने वाला। (६६)

प्रतिक्रोष = नीलाम की घोषणा। (६६)

प्रतिग्रह = (१) राजपरिवार के किसी व्यक्ति को देकर की गई संधि। (११५) (२) साहाय्य। (३) परिवार।

प्रतिग्रह = पिछाड़ी का अवशिष्ट सैन्य। (१३३)

प्रतिग्राहक = वसूली जमा करने वाला। (२८)

प्रतिजाप = शत्रु के कपटप्रयोग निष्फल करने का प्रयत्न। (१२४) (२)दूसरों के षड़यंत्र में सहकारी होना। (१२६)

प्रतिदेय वस्तु= वापस लौटाने योग्य वस्तु। (चार प्रकार) याचितक, अवक्रीतक (कीराये की), आहितक (गिरवी), निक्षेपक (न्यास या घरोहर)। (७७)

प्रतिपण्यार्घ = अन्य वस्तु के रूप में मूल्य। (३७)

प्रतिपत्तिमान् = समयज्ञ, प्रत्युपन्न बुद्धिशाली। (९)

प्रतिपात = दण्ड, भरपाई।

प्रतिपात = प्रतिबन्धक यष्टी। मोतियों की लड़ी का एक प्रकार। (३२)

प्रतिबल कर्म = शत्रु सेना का प्रतिकार। (९)

प्रतिभू = जामीनदार (२८)

प्रतिरागी = यथास्थित रंग बताने वाला।

प्रतिरोधक = डाकू, तस्कर, रास्ते में रोक लगाने वाले। (६९)

प्रतिलेख = (शासन पत्रक का प्रकार) दूसरे राजा से प्राप्त पत्र का राजा के आदेशानुसार उत्तर। (३१)

प्रतिलोमद्वार = सामने वाले पड़ोसी के मकान का दरवाजा। (६५)

प्रतिवर्णक = मेहनताना। (२८)

प्रतिवर्णिका = कसौटी।

प्रतिवर्णिका ग्रहण = कसौटी पर सेना परखना। (३४)

प्रतिवाप = संमिश्रण।

प्रतिवेश = पड़ोसी, समीपस्थ राजा।

प्रतिसंसर्ग = भेंट, उपहार। (३७)

प्रतिसंस्कार = दुरुस्ती। (३२)

प्रतिबेध = नौकरी से निकाल देना। (१२)

प्रतीकार लाभ = संकट का प्रतिकार करने के लिए दी गई विशेष सुविधा। (२८)

प्रतोली = ड्यौढ़ी, रास्ता । (२४)

प्रत्यन्त स्कन्ध = सीमास्थित सैन्य।

प्रत्यपसृत = शत्रुपक्ष से आया हुआ और बाद में भेद के लिए वापस भेजा गया।

प्रत्यभियोग = न्यायालय में पराभूत होने पर पुनः अभियोग करना। (५८)

प्रत्यवाप = बचत मे रखा हुआ पदाति सैन्य।

प्रत्यासारवती = पीछेहाट करने योग्य भूमि।

प्रदर = सेनाव्यूह का एक प्रकार।

प्रदान-आदान = (नजराना) = उपहार और लगान का हिस्सा। (२८)

प्रदेशभोग = जमीनदारी, मालगुजारी इ.। (२८)

प्रदेष्टा = १) पुलिस अधिकारी (१२), २) विभागाधिकारी (७८), ३) गोप तथा स्थानिक के कर्तव्यों का पर्यवेक्षक अधिकारी। (५६), (९३)

प्रधावितिका = दुर्ग से बाहर भागने योग्य अस्थायी सेतु, सीढ़ी का रास्ता। (२४)

प्रमाद हेतु = मृगया, द्यूत, मद्य, स्त्री। (कुल ४), (९८)

प्रभानुलेपी = मणि का एक गुण। (३२)

प्रभावहीन = द्रव्य और सैन्य से हीन। (१२)

प्रमाणकरण = शपथ लेना। (१)

प्रमार = सर्वत्र फैलने वाला रोग।

प्रयाम = महंगाई, धान्य के भाव में चढ़-उतार। (२८)

प्रयोगापहत = नई वस्तु बनाने अर्थात् रूपांतरित करने के निमित्त दिया हुआ (चांदी, सोना इ.) माल। (४६)

प्रयोगोपलब्धि = प्रयोगद्वारा अनुभव पाना। (३१)

प्रयोग्य = औलाद उत्पन्न करने योग्य (घोड़ा) (५१)

प्रलम्भन = औषधि, मंत्र आदि की शत्रुनाश के लिए योजना। (१४)

प्रवहणिक निकाय =प्रवासी व्यापारी संघ। (२५)

प्रवीर पुरुष = साहसी लोग। (५६)

प्रशास्ता = सेना का एक नियामक अधिकारी।

प्रशोध्य = कठिनाई से वसूल होने वाली रकम।

प्रसन्नायोग = एक प्रकार के मद्य का मसाला।

प्रसाधक = राजा को वस्त्रालंकार से सजानेवाला। (२२)

प्रसारवीवध = धान्य आदि की निर्यात और आयात। (१४४)

प्रस्रवण प्रपात = नाली का उतार। (६५)

प्रसार वृद्धि = निरुपयोगी सेना का विस्तार, निरुपयोगी सैन्य।

प्रहवण = यज्ञादि उत्सव।

प्रतिभाव्यबन्ध = ज़मानतदार के करार का बन्धन।

प्राकार = प्रासाद के परिसर की सीमाभित्ति। (२०) परकोट।

प्रतिभाव्य = ज़मानत की रकम। (७३)

प्रतिभाव्यबन्ध = जमानतदार को करार से बांध लेना।

प्रात्ययिक = विश्वासपात्र। (३४)

प्रादानिक = कन्या विवाह के निमित्त (पिता की संपत्ति का) देय अंश। (६२)

प्रापनीवी = मिली हुई बाकी रकम।

प्राप्तव्यवहार = सज्ञान, शासनमान्य व्यवहार करने योग्य आयु वाला व्यक्ति (स्त्री द्वादशवर्षा, पुमान षोडशवर्षः)। (६०)

प्रामित्यक = मांग क़र लाया हुआ धान्य, जिसे वापस नहीं लौटाया जाता। (३६)

प्रावरक = राजा की वेशभूषा करने वाला।

प्रावदिक = राजा को कथा सुनाने वाला।

प्रावृत्तिक = (शासन लेख का प्रकार) दैवी एवं मानुषी आपत्ति के प्रतिकार निमित्त आदेश। (३१)

प्रावृत्तिकलेख = विशिष्ट कार्य करने का लिखित आदेश।

प्रावर्तिम (सिचाई) के चार प्रकार= हस्तप्रावर्तिम, स्कन्धप्रावर्तिम, स्रोतोयंत्र प्रावर्तिम, नदीसरतटाककूपोद्घाट। (४५)

प्राश्यप्राशं = अन्न-जल का भरपूर संग्रह।

प्रास = एक हलमुखी शस्त्र या दो मूठी वाला २४ अंगुल लंबा शस्त्र, भाला। (३९)

प्रासपाणि = भाले से लड़ने वाला सैनिक। (२१)

प्रासाद = राजभवन। (२६)

प्रेक्षा = नाटक, तमाशा आदि।

प्रैयक = नीले पीले रंग वाले रत्न का एक प्रकार।

प्लवक या प्लवकसौभिक = खेलकूद का तमाशा करने वाला, रस्से पर नाचने वाला। (४८), (१३५)

प्रस्थ = एक पाव का नाप। (३६)

प्रशंसा = (क ३ विषय) कुल, शील और शरीर - इन ३ विषयों की स्तुति होती है। (३१)

फलकहार: = अनेक लड़ियो वाला हार।

फलवाट = शाक सब्जी के बगीचे की जमीन।

फलाम्ल = फलों की मदिरा। (४६)

फल्गुकुप्य = जंगल का हलका सस्ता माल। (२८)

फल्गुभाण्ड = हल्का माल। (४२)

फाणित = गन्ने का उबाला या पकाया हुआ रस। (काकवी – मराठी में)। (३६)

फेला = पेटी, डब्बा।

बदराम्ल = बेर से बनाया अम्ल (ॲसिड)। (३५)

बन्धकी = वेश्या। (१३५)

बन्धकीपोषक = वेश्या गृह का संचालक। (९२)

बन्धनागाराध्यक्ष = कारालय प्रमुख। (८६)

बल (सैन्य) ६ प्रकार = मूल, भृतक, श्रेणी, मित्र, अमित्र, अटवी। (१२३)

बल (सैन्य) = (पांच प्रकार) – मौल (खानदानी, वंशपरंपरागत) भृत, श्रेणी (सामूहिक), मित्र, अटवी (वनवासी लोगों का दल)। (५४)

बलव्यसन = सैनिकों का विग्रह। (८)

बलव्यसन = दीर्घ कान्तार, अनुदक, यवस-इन्धनहीन, कृच्छ्रध्वा अभियोग, प्रस्कन्न (शत्रु के आक्रमण से त्रस्त), क्षुत्पिपासाध्व-क्लान्त, दुर्गम मार्ग, पहाड़ में रुकावट, विसन्नाह (कवचहीन), भोजनव्यासक्त, परिश्रान्त, अवसुप्त, व्याधिमरक-दुर्भिक्षपीडित, व्याधिग्रस्त, (इस अवस्था में परसैन्य पर आघात करना चाहिये। (१३०)

बलव्यायोग = सेना की व्यूहरचना। (९)

बलावाप = रक्षित सेना का साहाय्य।

बलि = यात्रियों से मिलने वाला कर। (२७)

बंहुकुष्ठवन = शौर्यहीन हाथियों की बहुसंख्या वाला वन। (११०)

बहुमुख = (१) जहां से सभी और बाणों की वर्षा करने की व्यवस्था हो ऐसा किले पर का एक स्थान (३९) (२) अनेक लोगों को ठेका देना।

बालसूर्यक = बाल सूर्य के रंग का रत्न।

बाहिरिक = बौद्ध विहार।

बाहूत्सार = (१)शरीररक्षक (१३०) (२) सेना की आजू बाजू के शत्रुओं को खदेड़ना।

बाह्यम्-आभ्यन्तरम् = व्यय-आय। (२६)

बाह्यकोप = राष्ट्र (प्रांत) का मुख्य, अन्तपाल, आटविक, दंडोपनत (विजित)। राजा इन चारों का प्रत्येकशः या संमिलित प्रक्षोभ। (१२४)

बीजोत्तरा = आमरस की विशिष्ट मदिरा। इसी को **महासुरा** कहते हैं। (१७)

बुद्धिमान् = सिखाने पर जो धर्म और अर्थ (पुरुषार्थ) ठीक समझता है। (१७)

ब्रह्मचारिधर्म = स्वाध्याय, अग्निकार्य, अभिषेक (स्नान), भैक्षव्रत (भिक्षाटन), आचार्य तथा उनके अभाव में गुरुपुत्र तथा सब्रह्मचारी (गुरुकुलनिवासी सहपाठी) की सेवा (प्राणान्तिकी वृत्ति)। (३)

ब्रह्मदेयिक = ब्रह्मकर्म के हेतु वार्षिक अनुदान पाने वाला। (६७)

ब्रह्मारण्य = अध्यापन तथा यज्ञादि ब्रह्मकर्म करने योग्य वन। (२३)

ब्राह्मण महानसावलेही= ब्राह्मण के रसोई घर में घुसकर खाने वाला अपराधी। (इस अपराध के लिए जिह्वा उखाडने की सजा कही है। (८८)

भक्तभाटक = माल के रक्षकों. का वेतन। (३७)

भक्तवेतन = (१)चांवल के रूप में वेतन या चांवल और वेतन। (११) (२) भत्ता। (३) जीविका के लिये पर्याप्त वेतन।

भक्तलवण = भोजनार्थ आवश्यक नमक। (३३)

भग्नानुपात = पराभूत सेना का पीछा करना।

भग्नोत्सृष्टक = (१)व्याधित, पंगु इत्यादि प्रकार की अयोग्य गौवों के द्वारा प्रतिवर्ष राजा के लिये दिया गया दूध, घी, चमड़ा इत्यादि आंशिक भाग। (५०) (२)विशिष्ट कारण से भागने के लिये छोड़े गये जानवर।

भंगप्रदान = पराजय का बहाना करना।

भयोपधा = प्राणभय दिखाकर गूढ परीक्षा। (१०)

भर्मसमर्थ = भरणपोषण करने में समर्थ। (६०)

भर्मणी = अन्नवस्त्रादि जीविका का अधिकार वाली स्त्री। (६०)

भव्यारंभी = महान् कार्य का दायित्व लेने वाला।

भाग = खेती का कर। (२०)

भागधेय = राजा का हिस्सा, राजा को देय अंश (जैसे धान्य का षष्ठांश, व्यापार का दशांश और सुवर्ण) (१३)

भाग - प्रक्रम = हिस्से, राशि और ठेका। (३३)

भागानुप्रविष्टक = शत्रु आदि के भय से बाहर से आये हुये पशुओं का दशांश भाग (जो राजा को दिया जाता है। (५०)

भाजनी = (१) एक प्रकार का तराजू। (२) नाप या वजन।

भांड = माल, बाजारू सामान। (२८)

भांडफेला = अलंकारों की पेटी।

भांडवाहिनी = कोश संरक्षक दल। (२६)

भाण्डागार = कोशस्थान (२५)

भारिक = भार उठाने वाला, हमाल या कुली। (३३)

भिंगिसी = काले रंग के टुकडे जोड़कर बनाया नेपाली कंबल। यह वर्षा से संरक्षण करता हैं। (३२)

भीतवर्ग = अपने निजी दोष के कारण जिसका नुकसान हुआ, जिसका पाप प्रकाशित हुआ, जिसकी भूमि जप्त हुई, भरपूर दण्ड से त्रस्त, अधिकार के दुरुपयोग से धनाढ्य, तथा राजद्वेष्टा इन ७ प्रकारों का अधिकारी वर्ग।

भित्तिलेप्य = ईंट बनाने वाले या दीवार के लिपा पोती करेने वाले। (३६)

भूमि =(दो प्रकार) = **भिन्नपुरुषा** (जहां लोग भिन्न भिन्न गावों में विखरे होते हैं) और **श्रेणीमनुष्या** (जहां लोग समुदाय से रहते हैं) (१०९)

भूमिच्छिद्रविधान = भूमि का विभाजन या वर्गीकरण। (२३)

भूमिपरिग्रह = स्थावर संपत्ति। (५६)

भूमिभोग (मित्र) = (१) जिसके अधीन भूमि है। (१०७), (२) जिससे भूमि का लाभ होता है ऐसा मित्र।

भूमिसन्धि = भूमि देने की बोली पर सन्धि। (१३६)

भूम्येकान्तर = सीमा के समीपस्थ देश की सीमा से जुड़े हुए भूभाग।

भृंगार = सुवर्णपात्र। सोने की एक जाति। (१२) (४८)

भृतक = (१) मजदूर, कामगार (दो प्रकार)- संघभृत = सामूहिक और संभूय समुत्याता (सहकारी) २) सरकारी नौकर। (२९)

भृत्यक (या भृत) = वेतन पर नियुक्त कायम नौकर। (५४)

भृत्यभरणीय = नौकर वर्ग के वेतन की व्यवस्था। (५)

भृत्यभावी सामन्त = (६ प्रकार) बलवान् से भयभीत, अन्तर्धि (विजिगीषु और अरि के मध्यवर्ती), बलवान् का पार्ष्णिग्राह (पिछाड़ी का शत्रु), स्वयम् उपनत, प्रतापोपनत, दण्डोपनत। (११६)

भेद = उपाय (दो प्रकार) - शंका और निर्भर्त्सना (भय उत्पन्न करना। (३१)

भेदोपदान = भेदनीति (११)

भेद्यसैन्य = (३ प्रकार) – भक्तवेतन, विलोपप्रतापकर (लूट के लिए पराक्रम करने वाला) विष्टि-प्रतापकर। (१२३)

भोग = वस्तु के दर या भाव। (४८)

भोगव्यूह = सर्प मंडलाकार व्यूहरचना।

भ्रेष = विक्रेय माल में खराबी होना। (६९)

भ्रेषण = धमकी। (७७)

मणिकारु = जवाहरात के अलंकार बनाने वाले कलाकार। (२५)

मणि के गुण = ११ और दोष ६ माने गये हैं। (३२)

मणिधातु = तेजस्वी धातु (३३)

मणिमंतक = एक प्रकार का हीरा।

मणिसोपान = एक प्रकार का रत्नालंकार।

मण्डपक = कमान (२४)।

मण्डल = शत्रु-मित्र समूह। (७)

मत्कुण = दन्तहीन हाथी।

मत्स्यण्डिका = गुड़ की शक्कर या गुड़ की मदिरा। (३३)

मदनयोग = मदन वृक्ष (धतूरे) का रस पिलाना। (विष प्रयोग का एक प्रकार)। (११५) (१४६)

मदनयोग व्यवहारी = गूढाजीवी। अपराधी का एक प्रकार जो मदनवृक्ष के रस का प्रयोग करता है। (८१)

मदनरस = बेहोष करने वाली औषधि, या विष। (१८) (१३५)

मदनवृक्ष = धतूर (१४६)

मदिरा = चामुंडा देवी।

मद्य के ६ प्रकार = भेदक (मदक), प्रसन्न, आसव, अरिष्ट, मैरेय, मधु। (४६)

मद्य = (तीन प्रकार) शुद्ध, माद्य, रससिद्ध (विषयुक्त)।

(१३९)

मद्यध्वज = शराब के दुकान की निशानी। (८५)
(ब्राह्मण ने सुरापान का अपराध करने पर उसके मस्तक पर यह चिन्ह अंकित किया जाता था।)

मध्यभेदी (सैन्यरचना) = मध्य में हाथी, दोनों कक्षाओं में रथ की और दोनों पक्ष (आगे पीछे) भाग में घोड़े - इस प्रकार की रचना।
इससे उलटी रचना को अन्तर्भेदी रचना कहते हैं। (१३३)

मध्यम = तटस्थ राज्य। (७)

मध्यम वध दण्ड = २०० ते ५०० पण

मध्यवाय = वर्षा ऋतु के मध्य में बोने योग्य धान्य। (मुद्ग, माष, शैब्य) (४५)

मध्यस्थ = विजिगीषु और उसका शत्रु इन दोनों के राज्यों से संलग्न राज्य का स्वामी, जो सहाय या विरोध कर सकता है। (९८)

मंत्र के ५ अंग = (१) कर्मारम्भ का उपाय (२) पुरुष और द्रव्य का बल ३) कर्म का स्थल और काल (४) अकल्पित संकट और उसका प्रतिकार तथा (५) कार्यसिद्धि।

मंत्रभूमि = मंत्रणा करने का स्थान। (२०)

मंत्रयुद्ध = दांव पेच, पेच प्रति पेच, (कोल्ड वॉर)। (१२)

महाकच्छवर्धन = सागर की पूजा।

महाभाण्ड = भारी (वजनदार) माल। (४९)

महाभोग (मित्र) = अधिकधन संपन्न। (१०७)

महामात्र = अमात्य या उच्चाधिकारी (१०), (२६, २८)

माणव = अपराधी प्रवृत्ति के लोग। (८२)

माणव प्रकाशन = गूढ अपराध का प्रकाशन।

माणव विद्या = गूढ विद्या (८२)

माणवक = जादूगर। (९३)

माणवक = २० यष्टियों वाला मोतियों का हार (३२)

मातृका = उपमाता, धात्री। (४८)

मात्स्यन्याय = मछलियों के समान बलवानों द्वारा दुर्बलों का नाश। (४)

माधुर्य = (लेख गुण) मधुर अर्थ व्यक्त करने वाले सहज सुंदर शब्दों का प्रयोग। (३१)

मान = (माप) ११ प्रकार। माषद्रोण, व्यावहारिक द्रोण, भाजनी द्रोण, आढका, प्रस्थ, कुडुव, खारी, कुंभ, वद्वारक, घटिका। (४१)

मानिवर्ग = (४ प्रकार) – सम्मान की इच्छा करने वाला, प्रतिपक्ष का मान होने से क्रुद्ध, अपात्र अधिकारी का उपसहायक, प्राप्त वेतन से असंतुष्ट अधिकारी वर्ग।

मानुषकर्म = जिसका ज्ञान घटना के पहले तर्क से हो सकता है। दैव .अचिन्त्य होता है। (९८)

मानुषाग्नि = प्रेत दहन की अग्नि।

मानुषोपेत = पौरुषयुक्त, अक्लीब। (६३)

मानोन्मान = नापने में कम – अधिकता।)२७)

मायक = नाप डालने वाला।

मायायोगविद् = जादूगर, ऐन्द्रजालिक। (१९)

मार्ग (घोड़े के चलने योग्य) ३ प्रकार = विक्रम, भद्राश्वास और भारवाह्य।

मार्गायुक = स्वेच्छा से चलने वाला औपवाह्य हाथी। (५३) २) आखेट के काम का हाथी। (२३)

मालवन = जंगल का मैदानी भाग। (६७)

मासवृद्धि = मासिक ब्याज का प्रमाण। (६८)

माहानसिक = पाकशाला का अधिकारी। (१९)

मित्र (उभयतो भोगी) = शत्रु और शत्रुमित्र (आसार) राजाओं का बंदोबस्त करने वाला। (११४)

मित्र = (एकतोभोगी) = शत्रु को एक ओर से रुद्ध करने वाला। (११४)

मित्र (६ गुण) = (मित्रं षड्गुणमुच्यते) नित्य, वश्य, लघूत्थान, पितृपैतामह, अद्वैध्य, संपत्र। (१०७)

मित्र = (६ प्रकार) चित्रभोग, महाभोग, सर्वभोग, एकतोभोगी, उभयतोभोगी, सर्वतोभोगी। (११४)

मित्र = (३ प्रकार) नित्य, अवश्य (वश में न रहनेवाला), अनित्य। इनके प्रत्येकशः महाभोग, अल्पभोग, गुरुसमुत्थ, लघुसमुत्थ, महत्, लघु, विक्षिप्त सैन्य, अवश्य सैन्य, पुरुष भोग, हिरण्यभोग, भूमिभोग (कुल ११) प्रकार होते हैं। (१०७)

मित्र (चित्रभोग) = नगर, खनि, वन, इत्यादि में प्राप्य विधि प्रकार के द्रव्य देकर मैत्री करने वाला। (११४)

मित्रप्रकृति = शत्रुराष्ट्र की अपर सीमा में संलग्न देश का स्वामी। (९८) (वह शत्रु का शत्रु होने के कारण मित्र सा होता है।)

मित्रभावी (७ प्रकार) = एकार्थाभिप्रयात, पृथगर्थाभिप्रयात, संभूय यात्रिक, स्वार्थाभिप्रयात, सामुत्थायिक, कोशदण्ड में से एक का क्रेता या विक्रेता, द्वैधीभाविक (एक से संधि, दूसरे से बैर करने वाला। (११६)

मित्र (महाभोग) = द्रव्य और सैन्य का सहाय्य देने वाले। (११४)

मित्रव्यसन = (मित्र के विराग से उत्पन्न संकट । १३ कारण) = परित्याग, विक्रय, भयावमान, अमोक्ष, अवरुद्ध, भयापसार, अवमान, अत्याहार (अधिक करवसूली), अतिभारे-नियोजन, उपेक्षा, भक्ति का अस्वीकार, मित्रोपघात-संत्रास, अरिशंकित, दूष्यभेद (१२१)

मित्र (सर्वभोग) = दण्ड, कोश, और भूमि तीनों देकर मित्रता करने वाला। (११४)

मित्र (सर्वतोभोगी) = शत्रु, आसार और प्रतिवेशी तीनों का बंदोबस्त करने वाला। (११४)

मित्र (विक्षिप्त) = मित्र के कार्यनिमित्त दूर रखा हुआ सैन्य।

मिथःसमवाय = दो मनुष्यों द्वारा आपस में किया गया

व्यवहार। (६९)

मिथ्याभोग = अधिकार न होते हुए भी उपभोग लेना।

मिथ्यावृत्त = दुराचरणी। (६२)

मुख = व्यय का विषय। (२८)

मुखोत्पत्ति-निवृत्ति = वसूली या मुआवज़ा । (२८)

मुण्डकद्वार = कमान का दरवाजा।

मुण्डहर्म्य = शिखरहीन प्रासाद।

मुण्डा = बौद्ध भिक्षुणी (१२) जो गुप्तचर का काम करने निमित्त प्रवास करती है।

मुंडानीक = कुशल सैन्य।

ताम्र मुद्राएँ = माष, अर्धमाष, काकणी, अर्धकाकणी (४ प्रकार) इनमें १/४ हलकी धातु मिलाई जाती थी। (३३)

रूप्य मुद्राएँ = पण, अर्धपण, पावपण, अष्टांश पण। (लोहा, सीसा कथिल जैसे धातु के साथ १/११ चांदी मिलाकर ये मुद्राएँ बनाई जाती थीं। (३३)

मुद्राध्यक्ष = नाणक विभाग का प्रमुख। (५५)

मुद्राध्यक्ष = परवाना (लाइसेन्स) देने वाला अधिकारी। (५५)

मूकपूषा = पोली मूस। (३५)

मूढवात = तूफान। (४९)

मूलहर = (१) पूर्वजों से प्राप्त संपत्तिपर गुजारा करने वाला (३०) (२) जमा से अधिक खर्च करने वाला।

मूलहर = राज्य का अपहरण करने वाला। (१००)

मृगाश्मक = किंचित् कृष्णवर्ण धवल रत्न

मृत्कोष्ट = माटी का घड़ा, तेल घी रखने योग्य। (३६)

मृत्युकूट = मृत्यु का गुप्त स्थान।

मृत्युदण्ड = दण्ड का अल्पमात्र प्रयोग करने वाला।(४)

मेदकयोग = मेदक नामक मद्य का मसाला।

मेथीप्रतति = कंटकमय लताएँ। (१२९)

मैत्र = निर्मत्सरी। (९)

मोक्ष या मोक्षण = कैदी की मुक्तता। (५०)

मोषक = अन्न परोसने वाला। (२१)

मोहनगृह = शत्रु को वंचित करने के लिए रचित घर। (२०)

मौक्तिक = उप्तत्ति स्थान के भेदानुसार १० प्रकार। (ताम्रपर्णी, पाशिका, आदि नदियां तथा सरोवर हिमालय आदि १० स्थान मोती के उत्पत्ति के माने गये हैं (३२) अप्रशस्त जाति के मोतियों के दस प्रकार और प्रशस्त जाति के सात प्रकार माने हैं।(३२)

मौक्तिक हार (११ प्रकार) = इन्द्रच्छंद, विनयछंद, देवच्छंद, अर्धहार, रश्मिकलाप, गुच्छ,, नक्षत्रमाला, अर्धगुच्छ, माणवक, अर्धमाणवक, शुद्ध। (३२)

मौल पुरुष = वंश परंपरागत सेवक। (२१)

यज्वा = सहस्र गायों का स्वामी होने पर वैदिक ब्राह्मण के लिये जो यज्ञ करना आवश्यक माना है। यज्वा का अर्थ है यज्ञ पूर्ण करने वाला। अयज्वा ब्राम्हण निंद्य माना जाता है। (७१) (देखिये- अग्न्याधान)

यथार्हदण्ड = पात्रता के अनुसार दण्ड करने वाला। (यथार्हदण्डः पूज्यः।) (३४)

यन्त्रयुक्त सोपान = कील से खुलने वाला गूढ सीढ़ी का मार्ग। (२६)

यमक = घोड़े की एक चाल।

यष्टि = मध्यमणियुक्त एकावली।

एकावली = मोतियों की एकमात्र लड़ी।

यष्टि = मोतियों की लड़ी। इस में **शीर्षक, उपशीर्षक, प्रकाण्डक, अवघाटक, तरल और प्रतिबंधक** नामक यष्टि प्रकार माने जाते हैं। (३२)

यष्ट्युपवाह्य = दण्डा मारनेपर चलने वाला औपवाह्य हाथी। (५३)

याचितक = (१) विक्री के लिए मांगा हुआ दूसरे का माल (६९)। (२) उधारी का सामान (७०)

यातव्य = आक्रमण करने योग्य शत्रु। प्रकार = गुरुव्यसन, न्यायवृत्ति, लघुव्यसन, अन्यायवृत्ति, विरक्त-प्रकृति, क्षीण- लुब्ध प्रकृति, उपचरित-प्रकृति, बलवान् अन्याधान, दुर्बलन्यायी। (१०३)

यात्रा = (आक्रमण) के योग्य ३ काल – चैत्र, ज्येष्ठ, मार्गशीर्ष अनुकूलता होने पर ग्रीष्म, वर्षा, जैसे ऋतुओं में भी आक्रमण करना योग्य होता है।(९) (१२२)

यान = (आक्रमण) के दो प्रकार- **(१)व्यसनाभियान-** (शत्रु का संकट देखकर यान) **(२) विगृह्ययान-** (युद्ध घोषित होने पर यान)

यानक = युद्धोपयोगी स्थितयंत्र जिसमें चक्के पर डंडा बांधा होता है। (३९)

यानभाटक = गाड़ीभाडा। (३७)

यामतूर्य = प्रहर समाप्ति सूचक नगाड़े या घंटे का निनाद। (५७)

युक्त = शासन द्वारा नियुक्त कर्मचारी।

युक्तयमदण्ड = अपराधी के समान दण्ड। (२९)

युक्तापहृत = अधिकारी द्वारा हेराफेरी किया गया (धन)। (२९)

युगपिंगन काल = नये बैल को गाड़ी में जोतने का समय।

युग्मोरस्य = व्यूह की द्विकेन्द्रक रचना।

युद्ध के ८ प्रकार = निम्न (दरी) स्थान, प्रकाश (मैदान), कूट, खनक (खंदक), आकाश, दिवा, रात्रि। (५४), (१०८)

युद्धभूमि के ५ प्रकार = स्वभूमि (चतुरंग सेना के योग्य), रथभूमि, अश्वभूमि, पदातिभूमि, हस्तिभूमि (१३२)

युद्धप्रतिग्रह = युद्धानुकूल स्थान। (१६)

युद्धविचार = युद्धदेश, युद्धकाल और युद्धलाभ इन तीनों का विचार आवश्यक। (११७)

यूथ = दस व्यक्तियों का समूह। (८८)

योग = बुद्धिमत्ता के कारण होने वाला गुण। श्रद्धा। (५)

योग = षड्यंत्र, गुप्त कार्रवाई। (१४३)

योगक्षेमवध = आजीविका का साधन नष्ट करना।

योगधूम = शत्रु सेना पर छोड़ने योग्य विषैला धुंआ।

योगयान = घृणाजनक द्रव्य का प्राशन। (१७)

योगपुरुष = गुप्तचर। (२१) (९२)

योगवामन = कपट प्रयोग द्वारा शत्रु का उच्चाटन। (१३) (१४२)

योगस्थान = माल के उत्पादन का स्थान। (२८)

योगाग्नि = कपटसे शत्रु सेना में भड़काई गई आग।

योगातिसंधान = कपट प्रयोग से शत्रु को त्रस्त करना। (१२)

योगापसर्य = कपट बुद्धि से शत्रु के राज्य में निवास करने वाला।

योगोपनिषद् = गुप्तचर। (१२२)

योगोपनिषत्प्रणिधि = गुप्तचर। (९९)

योग्याचार्य = अश्वशिक्षक। (५१)

योध के १६ प्रकार = पदाति, अश्व, रथ, हस्ति, धान्वन, वन, निम्न, स्थल, खनक, आकाश, दिवा, रात्रि, नादेय, पार्वत, अनूप, सारस। (१३२)

योनिपोषक = पशु, पक्षी वेश्या आदि के समूहों का पालन करने वाला। (९२)

यौनानुबन्ध = रिश्ते-नाते का संबंध। (३१)

रक्षी = आरक्षक (पुलीस)- इनके २ प्रकार (१) दृश्य, (२) अदृश्य। (१६)

रत्न- (तीन प्रकार) = कौट, मालेयक, पारसमुद्रक। (३२)

रत्नों के गुणानुसार १० प्रकारं = षडस्र, चतुरस्र, वृत्त, तीव्रराग, संस्थानवान्, अच्छास्निग्ध गुरु, अर्चिष्मान, अन्तर्गतप्रभ, प्रमानुलेपी। (३२)

रत्नदोष = (६ प्रकार) मंदरागप्रभ, सशर्कर, पुष्पच्छिद्र, खण्ड, दुर्विद्ध, लेखाकीर्ण। (३२)

रत्न = (अवांतर १८ प्रकार) =विमलक, सस्यक, अजनमूलक, पित्तक, सुलभक, लोहितक, अमृतांशु, ज्योति - रसक, मैलेयक, अहिच्छत्रक, कूर्प, प्रतिकूर्प, सुगंधिकूर्प, क्षीरपक,. शुक्तिचूर्णक, शिला-प्रवालक, पुलक, शुक्रपुलक। (३२)

कोशप्रवेश्य रत्न = (१२ प्रकार) मौक्तिक, माणिक, वैडूर्य, इन्द्रनील, हीरक, प्रवाल, चंदन, अगरु, चर्म, ऊन, क्षौम (रेशम), कार्पासिक (सूती वस्त्र)। (३२)

रत्नावली = सोने के मध्यमणियों से युक्त मोतियों की एक मात्र लड़ी। (३२)

रत्नोपधा = रत्न की परीक्षा। (२६)

रथ = ऊंचाई तथा आकार मान से इसके प्रकार होते हैं। उत्तम रथ १० पुरुष ऊंचा और १२ पुरुष लंबा चौड़ा होता है। (५४)

रथ के ६ प्रकार = देवरथ (देवयात्रार्थ), पुष्परथ (विवाहयात्रार्थ), सांग्रामिक, पारियाणिक (प्रवासार्थ), परपुराभियानिक, वैनयिक (शिक्षानिमित्त)। (५४)

रथचर्यासंचार = रथ चलाने योग्य मार्ग। (२४)

रथयुद्ध के (१७ प्रकार) = अश्वयुद्ध के उन्मथ्यावधान (विध्वंस और विरोध) के अतिरिक्त १४ प्रकार और अभियान, अपयान (पीछे हाट) और स्थित युद्ध। (१३३)

रथाध्यक्ष = रथ सेना के अधिकारी। (५४)

रथोपस्थ = रथ के अन्तर्गत बैठने का स्थान। (१५५)

रथ्य = रथ को जोतने योग्य (घोडा) (५१)

रश्मिकलाप = ५४ लड़ियों का मोतियों का हार। (३२)

रसद = विष प्रयोग करने वाला गुप्तचर। (१२) (८१)

रसपाक = पारे की कृति (पारद-कर्म) या रसायनशास्त्र। (३३)

रसोत्तरा = आमरस की एक विशिष्ट मदिरा। (४८)

रांकव = रंकु नामक हिरन का ऊन। (४४)

राजकिल्बिषी = राजापराध करने वाला, राजद्रोही। (५९)

राजधर्म = निष्पक्षपाती न्याय। (५८)

राजधर्म = शासकीय कोष में जमा करने योग्य (द्रव्यादि)। (७३)

राजनीति के ३ उद्देश्य = मित्रप्राप्ति, हिरण्यप्राप्ति और भूमिप्राप्ति। (१०९)

राजनौका = सरकारी जहाज। (४९)

राजपण्य = राजा के अधिकार का विक्रेय माल (३३) (३८)

राजपरिग्रह = सरकारी इमारत। (५७)

राजपेया = राजाने पीने योग्य मदिरा, जिसमें अनेक प्रकार के मसाले मिश्रित होते हैं। (४८)

राजप्रणिधि = राजा के कर्तव्य। (९) (१९)

राजमंडल = इसमें विजिगीषु, मित्र, मित्रामित्र, राजा तथा प्रत्येक के अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड कुल मिलाकर (१८) प्रकृतियों का समावेश होता है। (इसीको "अष्टादशकमंडल" कहते हैं) जो अरि, मध्यम और उदासीन का भी अपना अपना पृथक् होता है।

राजवर्ष = राज्याभिषेक का संवत्सर। (२७)

राजवाच्य = सरकारी दण्ड भोगा हुआ। राजदण्डित। (६९)

राजविहार = राजाओं की क्रीडा।

राजव्यंजन = राजा के समान दिखने वाला व्यक्ति। (तोतया- मराठी में) (९६)

राजव्यसन = (राजा के कारण संकट) = अन्ध (शास्त्रचक्षुहीन), चलितशास्त्र (शास्त्रमर्यादा उल्लंघन करने वाला), व्याधित, नव, दुंर्बलोऽभिजातः, बलवान् अनभिजात, (६ प्रकार)

व्याधित राजा = (दो प्रकार) = पापरोगी, अपापरोगी।

राजव्यसन = राजा का मरण। (९६)

राजशब्दी = अपने आप को राजा कहलाने वाला।

राजहार = राजा के निजी व्यय के निमित्त धनराशि।

राजा = (तीन गुण) = आत्मसम्पन्न (सत्त्वगुणसंपन्न), द्रव्यसंपन्न, प्रकृतिसंपन्न। (९४)

राजा के व्रत = (या आवश्यक कर्तव्य) = उद्योग

(उत्थान), यज्ञ, न्यायदान, दक्षिणादान, वृत्तिसाम्य (सर्वत्र समान व्यवहार, निष्पक्षपात), यज्ञदीक्षा का अवभृत स्थान। (१९)

निकृष्ट राजा = (७ लक्षण) = दुर्बल, अराजबीज, निरुत्साह, अपक्ष (असहाय), अन्यायवृत्ति, व्यसनी, दैवप्रमाण, यत्किंचनकारी (अविवेकी)। (१०९)

राज्य = (दो प्रकार) = द्वैराज्य – (पिता-पुत्र या भाई-भाई दोनों का राज्य। वैराज्य = परकीय राजा का राज्य। (११८)

राज्यवध (नाश) दो प्रकार = सस्यवध (धान्य के अभाव से नाश) और मुष्टिवध = (आक्रमण के कारण नाश। (११५)

राज्यकंटक = राज्य में विघ्न उत्पन्न करने वाला। (९६)

राज्यप्रतिसंधान = राज्य का बंदोबस्त, नियंत्रण (५)

राज्यविभ्रम = राज्यक्रान्ति या राज्य में अराजकता। (६८)

राढायुक्त = मिलावट किया हुआ। (७९)

रात्रिदोष = रात में किये जाने वाले अपराध। (५७)

राशिमूल = धान्य की राशि का भूमि पर बचा हुआ अंश। (९२)

राष्ट्र = इस विषय के अन्तर्गत **सीता, भाग, बलि, कर, वणिक्, नदीपाल, तर, नौका, पट्टन, विवीत, वर्तनी,** रज्जू और **चोररज्जू** इन १२ विषयों का अन्तर्भाव होता है। (२७)

राष्ट्र = राज्य के भूभाग के अन्तर्गत प्रांत या प्रदेश। (१३)

राष्ट्र = पिण्डकर, षड्भाग, सेनाभक्त, बलि, कर, उत्संग, पार्श्व, परिहीणिक, औपायनिक, औष्ठेयक इन - दस प्रकारों की आय। (३६)

राष्ट्रपाल = प्रान्त का प्रमुख अधिकारी। राज्यपाल। (९३)

रिक्थहर = १) संपत्ति के विभाग ग्रहण करने का अधिकारी (पुत्र आदि) (६७) (७३) २) भागीदार।

रूप और व्याजी = द्रव्यात्मक दण्ड के दो प्रकार। (७४)

रूपदर्शक = १) सिक्कों या मुद्राओं की परीक्षा करने वाला अधिकारी। (२६) २) सराफ (३०)।

रूपदासी = राजा को हार, गुच्छ, इत्र आदि भोग देने वाली गणिका। (४८)

रूपलक्षण = सिक्कों की शब्द - अशुद्धता। (२८)

रूपाजीवा = १) सुरूप पर जीविका करने वाली (नटी नर्तकी जैसी कलाकार स्त्री) (४८) २) वेश्या (२०)।

रूपिक = मुद्रा तैयार करने पर देय कर।

रूप्य = (चांदी के प्रकार) तुत्थोद्‌गत गौडिक, काममल, कांबुक, चाक्रवालिक।

रूप्य धातु = अशोधित चांदी। चांदी धारण करने वाला पत्थर (३३) या मृत्तिका।

लक्षणाध्यक्ष = टकसाल का प्रमुख। (३३)

लक्ष्यलंभाधिकार = लक्ष्य पर बाण मारने में कुशल।

लग्नक = उद्दाम, उन्मत्त (हाथी)।

लघुसमुत्थ (मित्र) = कर्तव्य के समय शीघ्र उत्थान करने वाला। (१०७)

लंघन (औपवाह्य अश्व की गति) = कपिप्लुत, भेकप्लुत, एणप्लुत, एकपादप्लुत, कोकिल - संचारी, उरस्य, बकचारी - ये सात, गति के अन्य प्रकार हैं। (५१)

लम्भ = (विजय से अरण्यादि विभाग स्वायत्त करना) = (तीन प्रकार) = नव, भूतपूर्व, पित्र्य। (१४५)

लब्धप्रशमन = विजित भूभाग को स्वाधीन रखना। (१३)

लब्धप्रशमन = विजित राज्य में शांति स्थापना के उपाय = प्रजा के समान शील, भाषा आचार अपनाना और प्रजा से देश, दैवत, सामाजिक उत्सव और समारोह के प्रति भक्तिपूर्ण व्यवहार करवाना। (१४५)

लवणाध्यक्ष = नमक का अधिकारी। (२७), (३३)

लाघविक = अल्पश्रम का काम। (३३)

लाभ (१२ प्रकार) = आदेय (सुखप्राप्य व नित्योप – भोग्य), प्रत्यादेय (कष्टप्राप्य और अनित्य), प्रसाधक (अधार्मिकता से धार्मिक का), प्रकोपक = (मंत्री के उपदेश से धार्मिक से अधार्मिक का लाभ), ऱ्हस्वकाल (आक्रमण करते ही होने वाला), **तनुक्षय** (मंनुष्य हानि द्वारा), अल्पव्यय, महान (जिससे भरपूर 'प्राप्ति' तत्काल मिलती है।), **वृध्द्युद्य** वित्तदायक) **कल्य** (हानिविरहित), धर्म्य, पुरोग (अनायास) (१२५)

लाभविघ्न = काम, कोध, भय, कारुण्य, ऱ्ही, अनार्यभाव, अभिमान, सानुक्रोशता, परलोकापेक्षा, दांभिकत्व, अत्यागित्व, दैन्य, असूया, हस्तगतावमान, दौरात्म्य, अविश्वास, भय, उपेक्षा, अतितिक्षा, तिथिनक्षत्र-विश्वास। (कुल २०)

लाभव्यय = जिस व्यय के कारण कुछ समय के बाद लाभ होता है। (२७)

लाभोत्पादिक (व्यय) = लाभव्यय के साथ होने वाला आनुषंगिक व्यय। (२७)

लुब्धवर्ग = (अधिकारी वर्ग जिसका आय से व्यय अधिक है, जो अपनी पात्रता से अधिक भारी काम करता है। (१४)

लुब्धक = पशुपाल या शिकारी (५०) (५५)

लेख = (आज्ञापत्रक) के उद्देश्य = निंदा, प्रशंसा, पृच्छा, आख्यान (कथन), प्रार्थना, प्रत्याख्यान (नकार), उपालंभ, प्रतिसेध, चोदना (प्रेरणा), सांत्वन, अभ्यवपत्ति (सहायदान), भर्त्सना, अनुनय (मनौती)। (३१)

लेखक = बाबू (क्लर्क), मुनीम। (३०)

लेखक = (क्लर्क के ५ अपराध) उक्तं न लिखति, अनुक्तं लिखति, दुरुक्तम् उपलखति, सूक्तम् उल्लिखति, अर्थोत्पत्तिं विकल्पयति (८६)

लेखदोष (पांच प्रकार) = अकान्ति, व्याघात (विरोध), पुनरुक्ति, अपशब्द और संप्लव (शब्दों की अव्यवस्था)। (३१)

लेखसम्पत् = लेख (आज्ञापत्रक) के ६ गुण = अर्थक्रम, संबंध (वाक्य संगति), परिपूर्णता, माधुर्य, औदार्य, स्पष्टत्व। (३१)

लेख्यनीविक = जमा करने की लिखित रकम। (२८)

लोभनीयार्थ = रिश्वत (तमाखु आदि प्रलोभक द्रव्य)। (१०)

लोहकारु = लोहे का कारीगर, लुहार। (२५)

लोहवर्ग = कालायस (लोहा), ताम्र, वृत, कांस्य, सीस, त्रपु (कथिल) वैकृन्तक (जस्ता), आरकूट (पीतल), (कुल ८) (इसमें सोना चांदी अर्न्तभूत नहीं)।

लोह = सामान्य धातु।

लोहाध्यक्ष = धातु-खदानों का अधिकारी।(३३)

वज्र (या हीरक) = ६ प्रकार – सभाराष्ट्रक, मध्यराष्ट्रक, काश्मक (कान्तीर, राष्ट्रक, श्रीकटनक, मणिमन्तक, इन्द्रवानक। (३२)

वज्र (अशुभ) तीन प्रकार = नष्टकोण, निरश्रि (नष्टप्रभ), पार्श्वापवृत्त (एक ओर झुका हुआ)। (३२)

वज्र (शुभ) = स्थूल, स्निग्ध, गुरु, प्रहार, समकोटिकं, भाजनलेखी (बर्तनों पर लिखने योग्य) तर्कुभ्रमि (परावर्तनशील); भ्राजिष्णु। (अतितेजस्वी)। (शुभ हीरे के कुल गुण ८)। (३२)

वज्रभेद (हीरे के विविध वर्णो के अनुसार ६ भेद) = मार्जाराक्षक, शिरीषपुष्पक, गोमूत्रक, गोमेदक, शुद्धस्फटिक, मूलाटीपुष्पक वर्ण (मालती – पुष्पवर्ण)। (३२)

वडवा = घोड़ी (५१)

वणिक्पथ = वारिपथ, स्थलपथ, चक्रपथ (गाड़ी का मार्ग), पादपथ, खरोष्ट्रपथ, असंपथ (डोली से जाने का मार्ग)। (कुल ६) (२७) - (११०)

वत्सतर = दूध पीने वाला गाय का बछड़ा। (५०)

वत्स = जिसका दूध पीना बंद किया गया है ऐसा बछड़ा।

वत्सस्थान = (भय) राजपुत्र को किसी सामंत के अधीन रखने पर वह सामन्त राजा से उसके निमित्त धन वसूल करते रहता है, जैसे बछड़े को सामने रखकर गाय से दूध निकला जाता है। (१७)

वध = (दो प्रकार) शुद्धवध और चित्रवध (८८)

वधावध = पैरों से कुचलकर हत्या।

वन (दो प्रकार) = हस्तिवन और द्रव्यवन। (१०९)

वनपरिग्रह = जंगल की वसूली (२७)

वनविचय = जंगल के शत्रुओं का खदेडना।

वनविभाग = इस में पशु, मृग, द्रव्य, हस्ति, वनपरिग्रह इन ५ विषयों का अन्तर्भाव होता है। (२७)

वनस्पति = के विविधवर्ग – सारदारु वर्ग (बांधकाम की लकड़ी), वेणुवर्ग, वल्लीवर्ग, पत्रवर्ग, पुष्पवर्ग, औषधिवर्ग। (३८)

वनस्पति = कालकूट, वत्सनाभ (बचनाग), हालाहल, मेषशृंग, मुस्त, कुष्ठ, महाविष, वेल्लितक, गौरार्द्र, बालार्द्र, मार्कट, हैमवत, कालिंगक, दारदक, अंकोलसारक, उष्ट्रक। (कुल १६ प्रकार) (३८)

वप्र = तट (तीन प्रकार) १) ऊर्ध्वचय = (नीचे अधिक चौड़ा और ऊपर कम), २) मंचपृष्ठ = नीचे ऊपर समान चौड़ाई वाला। (३) कुम्भकुक्षिक = कुंभ के समान बीच में बड़े आकार वाला। (२४), (१४४)

वमन = लोगों का निर्वासन। (१४४)

वरकार = शांतिकर्म, कल्याण की कामना से किया हुआ कर्म।

वरत्रा = बेत या बांस की रज्जू, रस्सी। (४४)

वराहकर्ण = एक हलमुखी शस्त्र जिसका पाता वराह के कान सा होता है। (३९)

वर्तनकाल = बैल को जोतने का समय।

वर्तनी = रहदारी का मार्ग, आम रास्ता। (२७) (५५)

वर्तमानाय = चालू जमा।

वर्धकी = बढ़ई। (९२)

वर्धमानक = घोडे की एक चाल।

वर्म = (विरह-बख्तर या कवच) प्रकार = लोहजाल, जालिकापट्ट, कवच, सूत्र (कार्पासादि सूत्रमय कवच), कंकट, शिंशुमार (एक जलचर), खड्गि (गेंडा), धेनुक, हस्ति, गो, इनके चर्म, खुर, शृंगों से बनाये गये। (३९)

वर्षमान कुण्ड = पर्जन्यमान देखने का कुंड। (२६)

वर्षवर = राजा के अन्तः पुर में सेवा करने वाले खोजे, या हिजड़े लोग। (२१)

वल्गन = (औपवाह्य अश्व की मंडलाकार गति) - ६ प्रकार – औपवेणुक, वर्धमानक, यमक, आलीढ, प्लुत, पृथग, त्रिकचाली।

वल्लभ = राजा के प्रिय लोग। (१४)

वल्लभापाश्रय = पहुंच। शिफारिश। (२८)

वल्लूर = (१) सूखा मांस (२५), (२) सूखी मछलियाँ। (९२)

वाक्पारूष्य = अशिष्ट, कठोर शब्दप्रयोग, बदनामी, वाक्ताडन। (४८) (तीन प्रकार) - कुत्सन (निंदा, गाली), उपवाद (दोष दर्शन), अभिभर्त्सन (धमकी)। (७५)

वाक्पारुष्य के लिये दण्डनीय ६ विषय = देश, ग्राम, जाति, संघ, देव, चैत्य। (७५)

वाक्यकर्मानुयोग = चोरी की तलाशी। (४)

वाक्यविप्रेक्षण = दूसरों का संभाषण छिप कर सुनना।

वाक्यशक्ति = वक्तृत्व। (११)

वाक्संग = अस्पष्ट बोलना, तुतलापन।

वागुरिक = पाश की सहायता से शिकार करने वाला।

वागुरा = पाश। (२२)

वाग्जीवन = भाट, (१२) (१८), स्तुतिपाठक।

वाटभेद = वाटिका या खेत की सीमा (कपौंड) तोड़ना। (२५) (६७)

वातग्रहण = वायु के अनुकूल रणस्थान प्राप्त करना।

वानकर्मान्त = बुनकरी का कारखाना, (कपडे की मिल)। (४४)

वानलटी = घर का छप्पर। (६५)

वारक =४।। कुडव (अनाज का एक प्रमाण या नाप)।

वार्ता= गोरक्ष, वाणिज्य और कृषिकर्म (१३५)

वार्ताकर्मप्रदिष्टाभूमि = जानवरों के बाजार का स्थान। (११)

वासगृह = राजा का मुख्य निवासस्थान। (२०)

वासविचय = छावनी के स्थानों से शत्रु को खदेड़ना।

वासितक = मुलामा चढ़ाना।

वास्तु = (या वास्तुक) (६ प्रकार) - गृह, क्षेत्र, आराम (बगीचा), सेतुबन्ध, तटाक (तालाव), आधारकूप आदि जलाशय- इन छह की सामान्य संज्ञा। (६५)। २) स्थावर संपत्ति। (६५)

वास्तुक = (१) वास्तुविद्या का ज्ञानी। (२०), (२) शुद्ध सोना। (३४)

वास्तुछिद्र = भवननिर्माण के निमित्त भूमि का विभाजन।

वास्तुकप्रदेश = बस्ती करने योग्य प्रदेश। (२४)

वास्तुविवाद के ९ विषय = गृह, ग्रामसीमा, तपोवन, विवित, महापथ, श्मशान, देवकुल, यजनस्थान, पुण्यस्थान। (कुल ९) (६६)

वाहिरीक = विहार स्थापन करने वाले। (२५)

विक्क = हाथी का बछड़ा, कलभ, स्तनंधय। (५२)

विक्रम = (आक्रमण) के ३ प्रकार = प्रकाशयुद्ध, कूटयुद्ध, तूष्णीयुद्ध। (१०४)

विक्षिप्तसैन्य = जिसका सैन्य यत्र तत्र बिखरा हुआ रहता है। (१०७)

विक्षेप = अन्यत्र बदली या तावादला। (९३)

विक्षेप = (आय) उद्योग में लगाई राशि के लाभांश का हप्ता। (२७)

विगृह्ययान = शत्रु पर स्वयंम् आक्रमण करना। (७)

विगृह्यासन = शत्रु के प्रदेश में लूट करना। (७)

विचय = तलाशी। (९१)

विजय पाने के पांच उपाय = १) उपाजय, अपसर्प, वासन, पर्युपासन, अवमर्द। (१४४) इन उपायों से शत्रु का प्रदेश जीता जाता है।

विजयच्छन्द = ५०४ यष्टियों वाला मोतियों का हार। (३२)

विजिगीषु = आत्मगुण, द्रव्यगुण तथा प्रकृतिगुण से संपन्न नीतिनिष्ठ राजा। (९८) विजिगीषु के सामने वाले पांच राजा (अनुक्रम से) - प्रकृत्यमित्र, मित्र, अरिमित्र, मित्र-मित्र, अरिमित्र-मित्र। (९८)

विजिगीषु के पिछाडी के अनुक्रम से चार राजा = पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, अक्रन्दाकसार। (९८)

वितर्दि (या वितर्दिका) = स्थंडिल, ओटा। (८०)

वितंस = पक्षी का चित्र (जो पक्षियों को जाल में पकडने हेतु रखा जाता है।)

विद्या = जिस ज्ञान से धर्म-अधर्म, अर्थ-अनर्थ के विवेक का ज्ञान होता है। (२)

विद्या = (१) अन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति (कौटिल्य का मत)

२) त्रयी, वार्ता, दण्डनीति (मानव मत)।

३) वार्ता, दण्डनीति (बार्हस्पत्यमत)।

४) दण्डनीति (औशनस अर्थात् शुक्राचार्य का मत)। (अ. २)

विद्रव = ज्वांलामुखी का स्फोट, २) भागदौड़।

विधाप्रमाण = हाथी के खाने का प्रमाण। (३६)

विधायोग = हाथी या घोड़े के आहार की योजना। (५१)

विधाविधि = हाथी या घोडे के आहार का प्रमाण। (७२)

विनय = वृद्धसेवा से प्राप्त होने वाला उत्तम गुण। २) प्रात्यक्षिक सहित अध्ययन। (५)

विनय = आचार्य के अनुशासन के अनुसार विद्याग्रहण से उत्पन्न होने वाला गुण। (५)

विनयग्रहण = उन्मार्ग से सन्मार्ग पर लाना। (२२)

विनयन = योग्य मार्गदर्शन (५)। (२) छात्र को प्रशिक्षण देकर निपुण करना। (१७)

विनिपात = परस्पर विरुद्ध वृत्तकथन। (१२)। (२) अकल्पित आने वाला संकट। (१५)

विलवण = नमक में मिलावट करने वाला।

विलोप =लूट (१२३)

विलोपभृत = लूट पर निर्वाह करने वाला

विवध = धान्यादि संचय।

विवादपद निबंध = १) न्यायालय के विवादों का विचार। (५८) २) विवाद में पूर्व-उत्तर पक्ष, या वादी-प्रतिवादी निश्चित करना। (३)

विवादार्थ के चतुष्पाद = धर्म (शास्त्रोक्त), व्यवहार; चरित्र (रूढि परम्परा) और राजशासन। न्यायालय में इन चारों का प्रामाण्य अनुक्रमानुसार अधिकतर माना जाता है। अर्थात् राजशासन (राजाज्ञा) सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

विवाहधर्म = विवाह के शासकीय नियम। (५९)

विवीत = गोचर भूमि। (२३) (२५)

विवीताध्यक्ष = गोचर भूमि का प्रमुख। (२) (५५)

विशद = चमकीला। (३३)

विशालविजय = व्यूह का एक प्रकार।

विशाखा = सराफ कट्टा। (२) (३५)

विशिष्टच्छन्दिका = राजपुत्रों के निजी खर्च की रकम।

विश्वासघाती सेतु = युद्धोपयोगी स्थितयंत्र खंदक पर डाला हुआ एक सेतु। (३९)

विष्कम्भ = चौडाई। (२४)

विष्टि = कारीगर (४), मजदूर वर्ग। (३३) बिगार काम का दर। (२८)

विष्टादण्ड = अस्थान में मलोत्सर्ग निमित्त दण्ड। (५७)

विष्टिबन्धक = मजदूर लाने वाला अधिकारी। (९३)

विसर = शुष्क होने वाला सरोवर। (४९)

विस्रावण = (अपसारण) सोना चुराने का कूट उपाय। (३५)

विहारार्थ शाला = नाट्यगृहादि भवन। (२२)

वीवधासार-प्रसारवध = शत्रु की कोठी या कोशागार का नाश। (१२)

वृक्ष विषयक ५ अपराध = प्ररोहछेदन, क्षुद्रशाखाछेदन, पीनशाखाछेदन, स्कन्धवध, समुच्छित्ति। (७६)

वृक्षायुर्वेद = वनस्पतिशास्त्र। (४५)

वृश्चिकबन्ध = बिच्छू के समान अपराधी को बांध के रखना।

वृत्ति = दो हजार (पण) से अधिक स्त्रीधन। (५९)

वृत्तिच्छद्र = मूल्यवान पदार्थों के संरक्षण की व्यवस्था। (१६)

वृद्धि = नफा, फायदा, लाभ(२७)। व्याज (६८)

वृद्धि = इष्ट फलप्राप्ति (अर्थात् अपनी उन्नति और शत्रु की हानि), षाड्गुण्य प्रयोग इसका साधन है। (९९)

वृद्धिक्षय = नफा-नुकसान, लाभ-अलाभ। (२८)

वृद्धिमूल्य = ब्याज की रकम।(६९)

वृध्द्यारोपण = ब्याज पर ब्याज लगाना। चक्रवृद्धि ब्याज (६८)

वृष = सांड, या गर्भाधान करने वाला।

यूथवृष = गोसमूह में संचार करने वाला सांड। (५०)

वेणिका = बांस का बना हुआ, तराफा (१३०)

वेतन = मजदूरी, रोजी, तनख़ाह, (२८)

वेतननाश = वेतन में कटौती। (३५)

वेतनोपग्राहिक = केवल वेतन लेकर पशुओं की रखवाली करने वाला। (५०)

वेतसधर्मा = वेत के समान नम्रवृत्ति धारण करने वाला। (१३६)

वेलाग्राम = बंदरगाह। (४९)

वेल्लक = लोहे और चांदी का समप्रमाण मिश्रण। (३५)

वेल्लकापसारित = शुद्ध सोने में वेल्लक (लोहे + चांदी का मिश्रण) मिलाकर उतना सोना निकाल लेना। (३५)

वेल्लन = बेलना।

वेश-शौण्डिका = वेश्यागृह का मद्यपान कक्ष।

वैकृन्तक धातु = पोलाद को काटने वाली धातु। (३३)

वैजयन्ती = गजपताका, हाथी का एक भूषण। (५३)

वडूर्यमणि के गुणानुसार ८ प्रकार = उत्पलवर्ण, शिरीषपुष्पक, उदकवर्ण, वंशराग, शुकपत्रवर्ण, पुष्पराग, गोमूत्रक, गोमेदक। (३२)

वैडूर्यमणि = जल, गोमूत्र, वंश आदि आठ प्रकार की छटाओं वाला मणि। (३२)

वैदेहक = (१) दिवालिया व्यापारी (११) २) व्यापारी वर्ग (३७) (४२)

वैदेहक व्यंजन = व्यापारी का वेष धारण करने वाला गुप्तचर। (४२)

वैधरण = माल न खपने कारण हुए नुकसान का दण्ड। (३३)

वैयापृत्य कर्म = सलाह देना। (८८)

वैयापृत्याविक्रय = मूल्य वापिस लौटाने की बोली पर विक्री करनी। (६९)

वैयावृत्यकर = अंतरंग सेवक, सहकारी। (२९)

वैयावृत्यकार = अपराधियों के साथी। (२६)

व्यंजन = हाथी आदि का लक्षण। (२३)

व्यय (चार प्रकार) = नित्य, नित्योत्पादिक, नित्यानुषंगी, लाभ, लाभोत्पादिक।

व्ययप्रत्याय = निर्धारित व्यय से अल्प व्यय होने पर बची हुई रकम। (२७), (३६)

व्ययशरीर = (सरकारी खर्च) के १९ विषय = देवपूजा आदि धार्मिक, दूतावास, शस्त्रागार, पदार्थसंग्रहालय, सेना के विविध विभाग, पशुपक्षि-संग्रहालय, काष्ठतृण-संग्रह आदि। (२७)

व्ययसमानयन = खर्च का तालमेल देखना। (२८)

व्यवहार = न्यायालय के विवाद। (३)

व्यवहार (करारनामा) के प्रकार = तिरोहित, उपनिधि, अगारकृत, रात्रिकृत, अरण्यकृत, उपधिकृत, उपह्वरकृत। ये व्यवहार सामान्यतः असिद्ध (अमान्य) माने गये है। विशिष्ट अपवाद में ये सिद्ध माने गये है। (५८)

व्यवहार (अन्तरगारकृत किन्तु सिद्ध) = दाय, निक्षेप, उपनिधि गुप्त, विवाह, अनिष्कासिनी (गोषावाली) स्त्री, व्याधित (अमूढसंज्ञ)। (५८)

व्यवहार = (अरण्यकृत किन्तु सिद्ध) पांच = सार्थ, व्रज, आश्रम, व्याध, चार (यात्री), (इन्होंने अरण्यवास के समय किये हुये)। (५८)

व्यवहार (असिद्ध) = क्रुद्ध, आर्त, मत्त (मद्यपान से), उन्मत (मानसिक विकार से), अवगृहीत (अगतिक)। (इन पांच अवस्थाओं में किसी का भी व्यवहार सिद्ध नहीं माना जाता) (५८)

व्यवहार (तिरोहित किन्तु सिद्ध) = १) परोक्षे अधिकरण ग्रहण, (२) अवक्तव्यकर। (५८)

व्यवहार (रात्रिकृत किन्तु सिद्ध) = साहसानुप्रदेश, कलह (द्वंद्वयुद्ध), विवाह, राजनियोग, पूर्वरात्रव्यवहार (कुल ५)। (५८)

व्यवहार = (करारमदार) जो असिद्ध होते है। पितृमान् पुत्र, पुत्रवान् पिता, कुलभ्रष्ट भ्राता, अविभक्तांश कनिष्ठ (भ्राता), पतिमती तथा पुत्रवती स्त्री, दास तथा परोपजीवी, अल्पवयी, अतिवृद्ध, अभिशस्त (दण्डित गुनाहगार), प्रव्रजित, व्यंग, व्यसनी, इन १२ लोगों के व्यवहार असिद्ध अर्थात् शास्त्रबाह्य होते है) (५८)

व्यवहार पत्रक में निवेश योग्य १४ विषय = संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिवस (तिथि) करण, अधिकरण, स्थान, ऋण, देश, ग्राम, जाति, गोत्र, नाम, कर्म। (५८)

व्यवहार संस्थान = सामाजिक रीतिरिवाज। (२८)

व्यसन (५ प्रकार) = गुणप्रातिलोम्य (सद्गुणों का विपर्यास), गुणाभाव, प्रदोष, दुर्गुणों का आधिक्य, प्रसंग, (आसक्ति)

पीडा। (११७)

व्यसन (संकट) तीन प्रकार के = युद्ध, अवस्कन्द (मारपीट, दंगा), अवरोध।

व्यसन (आपत्ति) = बलव्यसन और मित्र व्यसन। बलव्यसन सैन्य दोष प्रकार = अवमानित, विमानित, अभृत, व्याधित, नवागत, दूरायात, परिश्रान्त, परिक्षीण, प्रतिहत, हताग्रवेग, अनृतुप्राप्त, अभूमिप्राप्त, आशानिर्वेदि, परिसृप्त, कलत्रगर्दि, अन्तः शल्य, कुपितमूल।

भिन्नवर्ग (व्यसन) = अपसृत, अतिक्षिप्त, उपनिविष्ट, समाप्त, उपरुद्ध, परिक्षिप्त, छिन्नधान्य-पुरुष, स्वविक्षिप्त, मित्र विक्षिप्त, दूष्यमुक्त, दृष्टपार्ष्णिग्राह, शून्यमूल, अस्वामिसंहत, भिन्न कूट, अन्ध (ज्ञानहीन) (कुल ३३)। (१२१)

व्याघात = (लेखदोष) पहले और दूसरे वाक्य में असंबद्धता या परस्पर विरोध। (३१)

व्याजी = (१) वजन और नाप के भेद से वृद्धि (२८) २) कर, राजस्व (२८) ३) लभ्यांश, नफा (४६) ४) माल की कीमत पर कसर। (३७)

व्याधित = (आय) दिवाला निकालने पर रही हुई बचत। (२७)

व्यायाम = आरब्ध कार्यों को सफल करने के लिए प्रयत्न, उद्योग उद्यम। (९८)

व्यायाम युद्ध = आमने सामने किया गया युद्ध।

व्यायोग = सैन्यरचना, व्यूह। (१३२)

व्याल = उन्मत हाथी जिसे किसी भी उपाय से प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता। (२३, ५२, ५३) (दुष्ट हस्ति प्रकार) = शुद्ध (१८ दोषयुक्त।), सुव्रत (१५ दोष युक्त), विषम = (१८+१५ = ३३ दोष युक्त) दोष-प्रदुष्ट = ३३+२९ = ६२ दोषयुक्त। (५३)

व्यावहारिक = व्यापारी वर्ग (९२)

व्यावहारिकाध्यक्ष = व्यापार प्रमुख। (२५)

व्यावर्तन = प्रकुपित लोगों को शांत करना। (१३)

व्यावेधन = शत्रुसैन्य में घुसकर उसे पीड़ा देना।

व्यावेशन = शत्रुसेना में घुस कर उसे भयाकुल करना।

व्युपरत = नौकरी के लिये अपात्र, या सेवानिवृत्त। (४४)

व्युष्ट = उदय से उदय तक का समय। अर्थात् पूरा एक दिन। (२८)

व्यूह की संज्ञा के साधन = तूर्य, घोष, ध्वज, पताका। इन्ही संज्ञाओं से सेना की अंगविभाग, संघात, स्थान, गमन, व्यावर्तन और प्रहरण ये पांच क्रियाएं होती थी।

व्यूह = प्रकार – दण्डमण्डल व्यूह, भोगसंहत व्यूह, विषयव्यूह (अन्यान्य प्रकार युक्त)। **अचलव्यूह** = पदाति, घोड़े, रथ और हाथी इस क्रम से सेना विभागों की रचना। (१३४) **अप्रतिहत व्यूह** = हाथी, अश्व, रथ और पदाति इस क्रम से सेना की रचना। (१३४) **अरिष्टव्यूह** = मध्य में रथ, बाजू में हाथी और पिछाडी में घोड़े ऐसी सैन्य रचना। (१३४)

असंहत व्यूह = पृथग् विभागों में सैनिकों की रचना। प्रकार = वज्र (या गोधा), **उद्यानक** (काकपदी), अर्धचन्द्रक या कर्काटक शृंगी)। (१३४) **दण्डव्यूह** = सैनिकों की तिर्यक् रचना। (१३२) (१७ प्रकार) प्रदर, दृढक, असह्य, श्येन (चाप, चाप-कुक्षि, प्रतिष्ठ, सुप्रतिष्ठ (प्रदरादि के विपरीत)। संजय, विजय, स्थूलकर्ण, विशाल विजय, चमूमुख, झषास्य, सूची, वलय, दुर्जय। (१३४)

प्रकृति व्यूह = (४ विभाग), दण्डाकार, सर्पाकार, मण्डलाकार और असंहत (पृथक् विभाग)। (१३४) **मण्डलव्यूह** = सभी दिशाओं की ओर मुख करके मण्डलाकार रचना। (प्रकार) = सर्वतोमुख, सर्वतोभद्र, अष्टानीक, दुर्जय। (१३४) **भोगव्यूह** = एक के पीछे दूसरी तति इस प्रकार सैनिकों की वर्तुलाकार रचना। (४ प्रकार) = सर्पसारी (या गोमूत्रक) शकट, मकर, परिपतंतक। (१३४)

व्यूहरचना = मकर, शकट, वज्र, सर्वतोभद्र, सूची (कुल ५ प्रकार)। (१३०)

विषम व्यूह = पक्ष, कक्ष और उरस्य (अर्थात् अग्रिम बाजू का और मध्य) भाग जिस व्यूह में समव्यूह रचना के विपरीत संख्या के रथ, अश्व तथा पदाति दल से सिद्ध किया जाता है। (१३३) **समव्यूह पदाति** = ४५ रथ, २२५ अश्व, ६७५ पदाति और पादगोप सैनिक से युक्त व्यूह रचना। (१३३)

व्रज = इस शब्द से गो, महिष, अज, अविक (भेड), खर (गधा) उष्ट्र, अश्व, अश्वतर (खच्चर) - इनका ग्रहण होता है। (२७)

व्रजपर्यग्र = गाय बैल आदि जानवरों का हिसाब रखना। (५०)

व्रजिक = एक लोकसत्ताक राज्य।

व्रात्य = दुराचारी सवर्ण स्त्री-पुरुषों का पुत्र। (ये अनुलोम पुत्र नहीं होते)।

शकल = मीठी बातें करने वाला।

शंकारूप = गुप्त रूप से व्यवहार करने वाले तस्कर। (४)

शण = ताग। **शणक्षौम** =ताग का वस्त्र। (४४)

शत्रु =(दो प्रकार) कर्शनीय और उच्छेदनीय। (११६) और (१) आसन = अन्तःशत्रु २) पर = बाह्य शत्रु। (१७)

शत्रु = दो प्रकार = १) नित्य और २) अनित्य। तथा १) पीडनीय और २) उच्छेदनीय। (१०८)

स्थिर शत्रुराज्य (के नाश में प्रयोजनीय लोग = सामन्त (पड़ोसी राजा), **आटविक** (वन्य राजा), **तत्कुलीन, अवरुद्ध** (बंदिस्थ राजपुत्र), सार्थव्रज (व्यापारी वर्ग), **अटवी** (वन्य समाज)। (१२७)

शत्रु सेना के ज्ञातव्य ९ विषय = चार, ग्रास, आहार, शय्या, प्रस्तार (सामग्री), अग्नियंत्र, निधान (कोष) ध्वज, आयुध। (१३०) स्वसेना के ये विषय गुप्त रखने चाहिये)

शत्रु को उद्विग्न करने के ११ उपाय = गुप्तयंत्र, व्यासक्तघाती तीक्ष्ण (गुप्तचर), हाथी, रथ, दूष्यप्रकोप, गोयूथ (अपने सेना

के सामने गायों का झुंड रखना), स्कंधावार- प्रदीपन, कोटीघात, जघनघात, दूतव्यंजन, भेदन, असत्यप्रचार इ.। (१३४)

शम या शल = १४ अंगुलि अंतर। (१३३)

शम = कार्य के फल का अबाधित उपभोग लेने योग्य परिस्थिति (शांततापूर्ण काल)। (९८)

शम-व्यायाम = शांतता और बलवर्धन। (६)

शरावाप = बाणों का भाता या तूणीर। (५३)

शारदकर्म = पुष्ट हाथी को कृश करना। (५३)

शाला = भवन के अंदर का चौक। (२६)

शासन = आदेश या आदेशपत्रक। (३१) (१२७)

शासन आज्ञापत्रक = (८ प्रकार) = प्रज्ञापन (निवेदन) आज्ञा, परिदान, परिहार (सहुलीयत), निसृष्टि (अनुमति) प्रावृत्तिक (संकट निवारण की सूचना), प्रतिलेख (प्रत्युत्तर), सर्वत्रग (जाहीरनामा)। (३१)

शासनहर = १/२ अमात्य गुणों से युक्त दूतों में से केवल संदेश पहुंचाने वाला। (१६)

शिका या शिकादण्ड = कोड़े मारने की सजा। (४८) (६०)

शिल्पकारिका = स्त्रियों की केशरचना करने वाली। (१२)

शिंशुप = अशोक वृक्ष। (३८)

शीर्षक यष्टि = मोतियों के हार का एक प्रकार। (३२)

शेष = इसमें सिद्धिप्रकर्मयोग (समाप्त काम का हिसाब) दण्डशेष, आहरणीय (थकबाकी), बलातकृत, प्रतिस्तब्ध, अवसृष्ट – इन पांचों की गणना होती है। इसकी वसूली अनिश्चित होती है। (२७)

शक्ति = एक हलमुखी शस्त्र जो चार हाथ लंबा होता है। (३९)

शक्ति = (तीन प्रकार) मन्त्रशक्ति (ज्ञानबल), प्रभुशक्ति (कोश दण्डबल) और उत्साहशक्ति (विक्रमबल)। देखिये सिद्धि। (९८)

शक्तिमान् = आक्रमण के समय सहायता देने की या पिछाड़ी के शत्रु को रोकने की शक्ति से युक्त। (१०३)

शक्यसामन्त = सामन्तों को काबू में रखने वाला (राजा का एक गुण)। (९७)

शुक्तवर्ग = इसमें विविध प्रकार के अचार और मुरब्बे अन्तर्भूत होते हैं। (३६)

शुचि = कार्य की सिद्धि या असिद्धि होने पर बोली के अनुसार व्यवहार करने वाला। (१०३)

शुद्धदण्ड = केवल वध का दंड। (८७)

शुद्धव्यूह = केवल हाथी या घोड़े या पदातियों की व्यूहरचना। (१३३)

शुद्धस्फटिक = (गुणानुसार ३ प्रकार) मूलाट वर्ण (दधिवर्ण), शीतवृष्टि, सूर्यकान्त। (३२)

शुद्धहार = एक मात्र यष्टि वाली मोतियों की माला। (३२)

शुल्क = चुंगी, राजस्व (२७)

शुल्क = दहेज। (५९)

शुल्कवर्तनी = माल की मूल कीमत। (३७)

शुल्कस्थान = चुंगी नाका। (७३)

शुल्काध्यक्ष = कर या चुंगी की वसूली करने वाला अधिकारी। (२), (४२)

शुल्कावरुद्धा = धन आदि देकर जिससे विवाह निश्चित किया गया हो ऐसी कुमारी। (८९)

शुल्ब = तांबा। (३३, ३४, ३५)

शुल्बशास्त्र = धातुशास्त्र।

शुल्बापसारित = शुद्ध सोने में जितना तांबा मिलाया उतना सोना निकाल लेना। (३५)

शुष्कतुत्थ = नीले थोथे का लेप। (३४)

शुष्कपटल = जंगल में प्राप्त गोबर। (३४)

शूद्र-प्रकर्म = विधियुक्त विवाहादि कर्म करने वाले शूद्र। (७२)

शूद्रधर्म = द्विजाति की सेवा, वार्ता (कृषि, गोरक्षण) कारु (कारीगरी), कुशीलवकर्म (कुशीलव = नटवर्ग)। (३)

शून्यपाल = राजा की अनुपस्थिति में व्यवहार सम्हालने वाला अधिकारी। (१३७)

शून्यमूल = जिसकी राजधानी का सैन्य खदेड़ा जा चुका है ऐसा राज्य।

शृंगाटक = त्रिशूल के समान एक शस्त्र।

शृंगिशुक्तिज = सोने का एक प्रकार।

शूर = (के दो गुण) = स्थैर्यप्रतिपत्ति (दृढनिश्चिय) और असंमोष (स्वीकृत कार्य को न छोड़ना)। (११५)

श्रेणी = समिति (७८)। स्वयंसेवक दल। (११२)

श्रेणीनिकाय = स्थानिक व्यापारी संघ। (२५)

श्वगणि = शिकारी कुत्ते पालने वाले लोग। (५५)

श्वेतसुरा = पारिवारिक धार्मिक कृत्यों में उपयुक्त विशिष्ट मदिरा। एक उत्तम प्रकार की मदिरा। (४६)

षाड्गुण्य = राजनीति के छह प्रकार। सन्धि – (लेन-देन के द्वारा संबंध), विग्रह (अपकार), आसन – तटस्थता, यान (युद्ध की सिद्धता), संश्रय (परार्पण), द्वैधीभाव (संधि और विग्रह दोनों अंगों का अवलंब)। (९९), (११६)

सकटुकक्षा = जिसकी रस्सी में गांठ हो ऐसा तराजू।

संकट = जहां प्रवेश करना असंभव है ऐसा प्रदेश।

संकलन-निर्वर्तन = अनुकूल प्रतिकूल परीक्षण। सीधी उलटी जांच। (२८)

संक्रोश = निंदा, बदनामी। (१७) (२८)

संख्यातार्थ कर्म = अमात्यादि पर सौंपने योग्य कार्य। (८)

संख्यान = गणित।

संख्याप्रचार = नाम आदि को दर्ज़ करना। (२८)

संख्यायक = हिसाब रखने वाला गांव का एक अधिकारी। (२२), (३०)

संग्रहण = दस गांवों का केन्द्रस्थान। (२२)

संग्रहण = परपुरुष के साथ पाणिग्रहण (यह स्त्री का दण्ड्य

अपराध है। (६०)। विवाहित स्त्री का अपहरण। (७३)

संग्रहात्यय = व्यभिचार का अपराध। (६०)

संग्राम = उभय पक्षों द्वारा देश और काल का निश्चय होने पर युद्ध। या धर्मयुद्ध। (१३१)

संघट्टन = लोगों की भीड़। (९०)

संघभृत = सामूहिक मजदूर वर्ग। (७१)

संघाटी = १) युद्धोपयोगी स्थित यंत्र, २) शत्रु के किले पर आग भड़काने योग्य एक काष्ठ दण्ड। (३९)

संघात = समूह, गुट। (११२)

संघात्य = तार का गहना बनाना। (३५)

संज्ञालिपि = सांकेतिक लिपि। (१२)

सत्तलिका = गलीचा।

सत्रस्थान = शत्रु पर आघात करने के लिए छिपकर रहने का स्थान। (१२१)

सत्रस्थान (छिपने के स्थान) = धान्वन (रेगिस्तान, मरुस्थल), वन, संकट, पंक, शैल, निम्न, विषम नौका, शकटव्यूह, नीहार (कुहरा), रात्रि। (कुल ९) (१३१)

सत्री = कपट वेशधारी गुप्तचर। (८१)

सत्रि = गुप्तचर। (२-१०)। जो विविध वेशों में संचार करते हैं। (११)

सत्रि = सहकारी। (१-११)

सत्रिसवर्ण = समान व्यवसाय करने वाला। (गुप्तचर)। (८१)

सत्रिप्रयोग = गुप्त वेशधारी विविध गुप्तचरों द्वारा अपराधियों की खोज। (८२)

सन्दंश = चिमटा। (३४)

संदंशच्छेदन = अंगुलि- छेदन (८७)

सन्देहार्थ (के चार प्रकार) = जिस लाभ में-

१) शत्रु के मित्र प्रोत्साहित होने का संशय,

२) शत्रु सैन्य को निमंत्रित करने में संशय।

३) बलवान् सामन्त की भूमि पर कब्ज़ा करने में संशय

४). प्रवल से सन्धि करते हुए अभियान में संशय.

सन्धायासन = शत्रु से सन्धि करने पर उसके प्रदेश में रहना। (१-७)

संधि, शम, समाधि = (तीनों राजनीति शास्त्र में समानार्थक शब्द हैं) = राजाओं के परस्पर विश्वास का हेतु। (११५)

सन्धि = दो प्रकार - १) परिपणित २) अपरिपणित। (१०४)

सन्धि = (दो प्रकार) = चल और स्थावर।

चलसन्धि = शपथ ग्रहण से होने वाली।

स्थावर सन्धि = जमानत या न्यास के द्वारा होने वाली। (यह आचार्य-मत है। कौटिल्य का मत इससे विपरीत है।)

संधि = (प्रकार) दण्डसन्धि, पुरुषसंधि, कोशसंधि, भूमिसन्धि (कुल ४)। (१३६)।

सन्धि = (अकृतचिकीर्षा) = जव सामादिं उपायों का प्रयोग होने पर समान, कनिष्ठ और वरिष्ठ राजाओं के अधिकारों का निश्चय होता है। (१०४)

अदृष्ट पुरुष सन्धि = किसी एक अधिकारी ने अथवा कुछ सेनाप्रमुखों ने किसी स्थान पर युद्ध में साहाय्य देने की वोली पर की गई सन्धि। (१०१)

अपक्रय सन्धि = भूमि का उत्पन्न मात्र देने की वोली पर की गई सन्धि। (१०१)

सन्धि = (अवशीर्ण क्रिया) = अपने दोष के कारण विभक्त हुए मित्र या भृत्य को अपने अनुकूल करना। **अवशीर्ण क्रिया** के चार प्रकार – सकारण जाना-आना। अकारण जाना-आना। सकारण जाना, अकारण आना। अकारण जाना-सकारण आना। (१०४)

आत्मामिष सन्धि = अपना सारा सैन्य लेकर आपका साहाय्य करूंगा इस अभिवचन से की गई। (१०१)

आदिष्ट संधि = राज्य का कोई प्रदेश देने की बोली पर की गई संधि। (१०१)

उच्छिन्न संधि = राजधानी व्यतिरिक्त सारा प्रदेश देने की बोली पर की गई सन्धि। (१०१)

उपग्रह (संधि) = हप्ते से द्रव्य देने की बोली पर की गई संधि। (१०१)

कपाल संधि = अपरिमित द्रव्य देने की वोलीपर की गई संधि। (१०१)

सन्धि (कृतविदूषण) = पुराने संधिनियमों का उल्लंघन सिद्ध करते हुए सन्धि को तोड़ना।)१०४)

सन्धि (कृतश्लेषण) = पुराने संबंध कायम रखने के लिये पुराने करारों का पालन, और परिस्थित्यनुरूप नये निर्वंधों की योजना करना। (१०४)

सन्धिकर्म = तद्नामा, सन्धिनिमित्त लिखित पत्रक। (७)

परदूषण सन्धि = उत्पन्न से अधिक द्रव्य देने के बोली पर की गई सन्धि। (१०१)

संधि परिक्रय = केवल द्रव्य देने की बोली पर की गई संधि। (१०१)

पुरुषान्तर सन्धि = सेनापति और राजकुमार को उपस्थित करने की बोली पर की गई सन्धि। (१०१)

परिपणिव सन्धि = (७ प्रकार) परिपणित देश, परिपणित काल, परिपणितार्थ। (तीन प्रमुख प्रकार) - और देश-काल, काल-कार्य, देश-कार्य, देश-काल-कार्य, इनका विचार करने पर अवांतर ४ प्रकार होते हैं। (१०४)

परिपणितार्थ सन्धि = जब विजिगीषु और सामन्त आक्रमण के कार्य का विभाजन करते हुए सन्धि करते हैं। (१०४)

परिपणितकाल सन्धि = जब विजिगीषु और सामन्त आक्रमण का समय बांट लेते हैं। (जैसे तुम अश्विन महीने में आक्रमण करो, मै कार्तिक में करूंगा।) (१०४)

परिपणित देश सन्धि = जब विजिगीषु और सामन्त आक्रमण योग्य देश के विभाग बांटकर आक्रमण करने उद्युक्त होते हैं।

(१०४)

सुवर्णसंन्धि = परस्पर विश्वास से की गई सन्धि। (१०१)

हीन संधि = तीन प्रमुख प्रकार= (१) दण्डोपनत। (२) कोशोपनत। (३) देशोपनत संधि। (१०१) हीन संधि (प्रकार)= **दण्डोपनत संधि** = आत्मामिष सन्धि, पुरुषानंतर संधि, अदृष्टपुरुष संधि, मुख्य स्त्री बन्धन। **कोशोपनत सन्धि**= उपग्रह, सुवर्णसंधि, कपालसन्धि। **देशोपनत संधि**= आदिष्ट संधि, उच्छिन्न संधि, अपक्रय संधि, परदूषण सन्धि (कुल १२ प्रकार) (१०१)

सन्नाह = सेना की सिद्धता। (९)

संनिधाता = कोशपाल, भांडार प्रमुख (१०) (२६)

सन्निधातृ चेयकर्म = द्रव्य सम्पादन। (२)

सन्निधान = घर में जमा कर रखना। (३०)

सर्पसारी = व्यूह का एक प्रकार।

सर्वतोभद्र = युद्धोपयोगी स्थितयंत्र जिसको घुमाकर शत्रु पर पथराव किया जाता है। (३९)

सर्वत्रग (शासनपत्रक) = प्रवासी लोगों के रक्षण तथा सहाय के निमित्त, सभी मार्गो में तथा संपूर्ण देश में घोषणीय आदेश। यह उच्चतम अधिकारियों के नाम से निकाला जाता है। (३१)

सर्वसमुदयपिण्ड = संपूर्ण वसूली का एकत्र संग्रह करना। (२७)

सर्वसामान्य धर्म = अहिंसा, सत्य, शुचिता, आनृशंस्य (सदयता) और क्षमा। (३)

समय = व्यवहार, संकेत, करार। (३१)

समयस्य अनपाकर्म = करार और हिस्सेदारी का पालन न करना। (३)

समयाचार = संधिपत्रक का अनुपालन। (५)

समयाचारिक = करार के अनुसार सेवा करने वाला सेवक। (११३)

समवायानुबन्ध = विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित संगठन या समिति। (२२)

समसन्धि = वरिष्ठ, समान और निकृष्ट राजा से सन्धि, जिस में लूट का माल क्रमशः अधिक, समान और न्यून देने का वादा होता है। इसके उलटा क्रम होने पर **विषम संधि** होती है। (१०५) अन्य दोनों को अधिक देने पर **अतिसन्धि** (वंचना) होती है।

समाधिमोक्ष = न्यासरूप में रखे हुए शत्रुपक्षीय राजपुत्रादि की मुक्तता। (१६)

समानतीर्थ्य = सहाध्यायी। (६३)

समानयन = जांच करना। (२८)

समाहर्तृ = करवसूली करने वाला, जमाबंदी विभाग का प्रमुख। (२, १०, २७, ५६)

समाहर्तृ समुदय- प्रस्थापनम् = कर लादना और वसूल करना। (२)

समुत्थान (के दो प्रयोजन) = (१) अटवी इत्यादि भाग स्वायत्त करना। (२) ग्राम-नगरादि स्वायत्त करना। (१४५)

समुदय = (१) कर वसूली (२) राज्य की आवक (३) द्रव्योत्पत्ति का स्थान। (२७) (२८) (२९)

समुदय-परिहापन = अल्पमात्रा में वसूली करना। (३०)

समुदय प्रत्यानयन = अपहृत शासकीय द्रव्य वापस मिलाना। (२९)

समुदयस्थान = (स्थानीय) व्यापार केन्द्र का नगर। (२४)

समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनम् = अधिकारियों द्वारा खाया गया सरकारी धन वसूल करना। (२)

सम्पत् = अनेक गुणों का एकत्र अस्तित्व। (९७)

संपत्ति का पुनर्विभाजन = (चार कारण) दुर्विभक्त अन्योन्यापहृत, अन्तर्हित (संपत्ति गूढ रखना), अविज्ञातोत्पन्न। (६२)

राजा की संपन्नता = (चार प्रकार की) पक्ष, मंत्र, द्रव्य, वल। (११२)

संपात निश्चार = सीमा पर आने जाने वालों की निगरानी।

संप्रिय = सर्वप्रिय।

संप्लव (एक लेखदोष) = अयोग्य वर्गीकरण। अयोग्य स्थान पर लेख का विभाजन करना। (३१)

संबन्ध (एक लेखगुण) = प्रारंभ में लिखे हुए अर्थ का अन्त तक कहीं भी विरोध न होना। (३१)

संभारिकी = आमरस की विशिष्ट मदिरा जिसमें मसाले का प्रमाण अधिक होता है। (४६)

संभाषित वेतन = जिसके वेतन के संबंध में बातचीत द्वारा निर्णय हुआ हो। (७०)

संभूय समुत्थान = सहकारी संस्था। (३) (७१)

सभ्योपकारी = भागीदार, साझेदार। (३७)

संयानीय = बाजारपेठ, जहाँ माल उतारा जाता है। (२५)

संयूहन = जोड़ या दाग देना। (३५)

संरुद्धिका = कैदी स्त्री।

संवनन = वशीकरण। (८१)

संवाहक = अंगमर्दन करने वाला। (१२) (२१)

संवीत = मिश्रित रंग वाला। (३४)

संशयार्थ = संशययुक्त लाभ। जिस लाभ में अर्थ या अनर्थ, प्रथम अर्थ पश्चात् अनर्थ, या प्रथम अनर्थ पश्चात् अर्थ- इस प्रकार के ३ संदेह उत्पन्न होते हैं। (१२८)

संश्रय = शक्तिहीन राजा के आपत्काल में दूसरे बलवान् राजा को सर्वस्वार्पण करना। (९९)

संश्रयवृत्ति = स्नेहसंपादन। (७)

संसर्गविद्य (या सत्रि) = जो बेकार किन्तु सामुद्रिक, वशीकरण, ज्योतिष इत्यादि विद्या जानते हैं ऐसे प्रवासी गुप्तचर। (१२)

संसर्गानुबन्ध = मैत्री दृढ करना। (१६)

संस्था = रूढि (५८)

संस्थाध्यक्ष = व्यापार विभाग का प्रमुख। (७९)

संस्थान = चालू व्यवहार। (२७) परंपरा, पद्धति या रूढि। (२८)

संस्थावृक्ष = गमले में लगाए पेड़। (२०)

संहतभेदन = संधि के कारण एकत्रित सेनाओं में भेद निर्माण करना। (५४)

सस्य पण्य = विकाऊ धान्य। (१६)

सहग्राही = सहायक, सहकारी। (२८)

सहोद्रक सेतु = नित्य जलपूर्ण प्रवाह पर बांधा हुआ सेतु (१२)

साक्षी (के ३ गुण) = प्रात्यक्षिक (विश्वसनीय), शुचि, अनुमत (मान्यता प्राप्त)। (६८)

साक्षी (के लिए निषिद्ध लोग) = **श्याल** (साला), **सहाय** (भागीदार), **अन्वर्धि** (कैदी), **धनिक** (साहुकार), **धारणिक** (ऋणी), **वैरी**, **न्यंग** (विकलांग), **धृतदंड** (पूर्वदण्डित), इनके अतिरिक्त **राजा**, **श्रोत्रिय**, **ग्रामभृतक**, **अहंकारी**, **स्त्री**, **राजपुरुष**, इत्यादि लोग विशिष्ट व्यवहार में निषिद्ध होते हैं। (कुल १४)। (६८)

साक्षी (छल करने अयोग्य) = **मन्दावधान** (अल्प जानकारी वाला), **बाल**, **वृद्ध**, **व्याधित**, **मत्त**, **उन्मत्त**, **क्षुधाक्लान्त**, **पिपासाक्लान्त**, **अध्वक्लान्त**, **अत्याशित**, (अति भोजन करने वाला), **आत्मकाशित** (स्वयं आरक्षक के अधीन होने वाला), **दुर्बल**।

साधन = वश करना, अधीन करना। (१३)

सान्त्व, **सान्त्वन** या **सामप्रयोग** = मुझ में और आप में भेद नहीं, हम एक ही हैं, मेरा जो कुछ है वह आप ही का है, ऐसा कथन, (२) उच्चाधिकार देना। (१२६) (३१)

सान्नाह्य हस्ती = (लड़ाई का हाथी) = प्रशिक्षण के सात प्रकार) = **उपस्थान**, **संवर्तन**, **सयान**, **वधावध**, **हस्तियुद्ध**, **नागरायण**, **सांग्रामिक**। (५३)

साम (उपाय के पांच प्रकार) = **गुण संकीर्तन** (विद्यमान तथा अविद्यमान गुणों की प्रशंसा), **संबंध कथन** (समान जाति कुल इत्यादि कथन), **उपकार संदर्शन**, **आयति दर्शन** (भावी परिणाम की सूचना), **आत्मोपनिधान** (अभेद कथन)। (३१)

साम = (प्रकार) तुष्टलिंगम्- अतुष्टम्। अतुष्टलिंगम्-तुष्टयम् (अर्थात् बाह्यतः संतोष दिखाकर असंतुष्ट रहना और बाह्यतः असंतोष दिखाकर तुष्ट रहना। (१२६)

सामप्रयोग साध्य- राजा (के ८ प्रकार) = निवृत्तोत्साह, विग्रह (युद्ध से) श्रान्त, प्रतिहतोपाय, उपतप्त (त्रस्त), सन्मित्र का इच्छुक, अन्य सहकारियों से शंकित) मैत्री का महत्त्व जानने वाला, कल्याणबुद्धि। (१२७)

सामसिद्धि = (तीन प्रकार)- स्वामी, मंत्री या दोनों के अधीन। अथवा प्रधानसिद्धि, आयत्तायत्त, प्रधानायत्त (अर्थात् स्वाधीन, पराधीन, उभयाधीन)। (१२७)

सामवायित परामर्श = मित्र राजाओं का परामर्श। (७)

सामुत्थायक = सहकारी संस्था। (२२)

सामेधिक = वैभव-प्राप्ति की साधना जानने वाला। (११) (१४२)

सामन्त = पड़ोसी राजा। (६५)

सांपरायिक (दुर्ग) = युद्धोपयोगी।(२-२४)

सार = बहुमूल्य वस्तु। (२६)

सारकुप्य = जंगल का भारी या क़ीमती माल (२८)

सारच्छिद्र = मूल्यवान पदार्थों के संग्रह का स्थान। (१६)

सांरदारु = भवन निर्माण में उपयोगी लकड़ी। मजबूत लकडी- (२५)

सारदारु = इमारती लकड़ी के योग्य वृक्ष। साग, तिनिश, धन्वन (अश्वत्थ या बांस), अर्जुन (मोह) मधूक, तिलक, साल, शिंशुप (अशोक), अरिभेद, राजादन, शिरिश, खदिर, सरल (देवदार), ताल, सर्ज (सालई), अश्वकर्ण, सोमवल्क (सफरखैर), कश, आम्र, प्रियक, धव। (कुल २० प्रकार)

सारबल = विशिष्ट बलसंपन्न सेना। (९)

सारभाण्ड = भारी माल। (४२)

साहस = कानून भंग करना, कानून या शासकीय निर्बंध का अतिक्रमण। (५८)

साहस = अत्याचार (३) बलात्कार या बलात्कार से धन आदि का अपहरण। (४८) (७४)

साहस दण्ड = कानून भंग करने पर शासकीय दण्ड। (५८)

सालपरिक्षेप = लकड़े का प्रकार।

सांवनिकी = वशीकरण करने वाली औषधि या मादक औषधि। (९१), (१३५)

सार्थ = व्यापारी मंडल, व्यापारी समूह। (४२)

सार्थवाह = दूसरे प्रदेश से माल लाने वाले या दूसरे प्रदेश में बेचने वाले। (३७)

सार्थातिवाह्य = मालवाले व्यापारी समुदाय को संकटयुक्त मार्ग से सुरक्षित पहुंचाना। (५५) (विवीताध्यक्ष का कर्तव्य)।

सिद्धद्रव्य = इसमें **कोषार्पित** (कोश में जमा हुआ द्रव्य), **राजहार** (राजा के द्वारा स्वीकृत), **प्रविष्ट** (बही खाते में लिखित), परमसंवत्सरानुवृत्त (गत वर्ष की जमा राशि), **शासन मुक्त**, **मुखातप्त**, **आपातनीय** (आकस्मिक व्यय) इन ७ का अन्तर्भाव होता है। (२७)

सिद्धि = मंत्रशक्ति साध्या, प्रभुशक्ति साध्या, उत्साहशक्ति साध्या। (कुल ३ प्रकार) (देखिये शक्ति)।

सिंहनिका = दारु, (शराब) मदिरा, तेल, पिष्ट, गुड, इत्यादि तैयार करवाने की मजदूरी। (३६)

सीता = धान्य उत्पादक क्षेत्रभूमि। (२७) (३६)

सीताध्यक्ष = कृषि विभाग का प्रमुख। (२) (४५)

सीधू = गुड़ की मदिरा। (४६)

सूत्राध्यक्ष = सूतकाम का अधिकारी। (४४)

सुराकिण्व विचय = मदिरा बनाने की क्रिया।

सुराकिण्व व्यवहार = मदिरा बनाना और बेचना। (४६)

सुराध्यक्ष = आवकारी या मदिरा विभाग का प्रमुख। (२) (४६)

सुवर्चिका = क्षार का एक प्रकार। (३६)

सुवर्ण = सोने का सिक्का। (७८)

सुवर्ण के आठ प्रकार = जाम्बूनद, हाटक, शातकुंभ, वैणव, शृंगीशुक्तिज, रसविद्ध, आकरोद्भव और जातरूप। (३४)

सुवर्ण पुद्गल = सोने के अलंकार। (३५)

सुवर्ण मालुका = धातु का प्रकार।

सुवर्णाध्यक्ष = कोशाधिकारी। (२), (३४)

सुवर्णालंकार के काम = (३ प्रकार) क्षेपण (जड़ाव काम), गुण (तार, गोफ आदि बनाना), क्षुद्रक (सोने के मणि तथा पोले अलंकार करना)। (३४)

सुरंगा = भूमिगृह से बाहर निकलने का मार्ग, गुप्तमार्ग (२०)

सुषमारूप = शुभ संवत्सर का लक्षण।

सूकरिका = युद्धोपयोगी पोतड़ी, जिसमें कपास या ऊन भरकर शत्रुओं की पथराव का प्रतिकार किया जाता था। (३९)

सूद = रसोइया। (१२)

सूद-आरालिक व्यंजनप्रणिहित = मांसान्न और पक्वान्न बेचने वाले के वेश में गुप्तचर। (९१)

सूत्राध्यक्ष = बुनकरों के काम पर देखरेख करने वाला प्रमुख अधिकारी। (२)

सूनाध्यक्ष = कसाईखाने का प्रमुख। (२) (४७)

सूपकार = दाल, शाक पकाने वाला।

सेतु = गांव की सीमा का बांध, बंधारा (दो प्रकार = स्थावर और कृत्रिम। (६६)

सेतु = गृह रचना के लिए खंभों पर आड़े खंभो को रखने पर बनने वाली चौखट। (६५)

सेतु = के अन्तर्गत पुष्प, फल, वाट (वाडी), षण्ड, केदार, मूल, वाप (वाफा) इन ७ विषयों का ग्रहण होता है। (२७)

सेतुबन्ध = नहर (दो प्रकार) **सहोदक** – अन्तर्गत झरने के पानी से भरा हुआ) **आहार्योदक**= बाहर के जल से भरा हुआ। (११०)

सेनापति = दस पदिकों का प्रमुख (अर्थात् १०० सेनांगों का प्रमुख। (१३४)

सेनापति के ज्ञातव्य ८ विषय = स्वभूमि, युद्धकाल, प्रत्यनीक (शत्रुसेना), अभित्रभेदन, भित्रसंधान, संहतभेदन (जिन अनेक सेनाओं में संधि हो उनमे भेद करना), भित्रवध, दुर्गबन्ध, यात्राकाल। (५४)

सेनापतिप्रचार = सेनापति के कर्तव्य। (५४)

सेनाभक्त = सेना का अन्नभाग। (३६)

सैन्धविका = सैन्धव का पिष्ट। (३४)

सैन्य (पांच प्रकार) = मौल, भृत, श्रेणी, मित्र, अटवी (वनवासी वीर)। (१०६)

सैन्य के चार गुण = शूर, कृतास्त्र, दुःखसह, अनुरक्त। (१०६)

सैन्य के आवश्यक ८ पदार्थ = गुणवत्ता, धान्य, कुप्य (कच्चा माल), यंत्र, शस्त्र, आवरण (कवच आदि), विष्टि, राशि। (१४४)

सैन्य के ६ संकट = व्याधि, दुर्भिक्ष, निचय, रक्षाक्षय, आवश्यक पदार्थों का अभाव) क्रीतबलनिर्वेद मित्रबल निर्वेद। (१४४)

सैन्य विनय = सैनिक अनुशासन। (शिस्त – मराठी में, (५४)

सैमिक = सीमारक्षक। (२३)

सोपानक = सोने की तार वाली एकावली (एक लड़ी की मोती-माला) (३२)

मणिसोपानक = बीच में मणि वाला सोपानक।

सोमारण्य = सोमयाग करने योग्य अरण्यस्थल। (२३)

सौगन्धिक = लाल रंग का मणि, माणिक। (३२)

सौप्तिक = सुप्त शत्रु पर आघात करना। (१३१)

सौभिक = मदारी, ऐन्द्रजालिक, जादु वाला। (१३५)

सौभित्तिक = हाथी की झूल।

सौवर्णकुड्यक = एक श्रेष्ठ जाति का क्षौम (रेशम)। (३२)

सौवर्णिक = (१) सोने के व्यापारी (२७)। (२) अधिकारी द्वारा नियुक्त सुनार। (३४), (३५)

सौवर्णिक के ५ अपराध = सोने में वर्णहीनता, प्रमाणहीनता, तुलोपधा, (खोटा तराजू), प्रतिमानोपधा (खोटा वजन), भांडोपधा (धातु में अदल बदल)। (३५)

सौवर्णिक प्रचार = सुनार के व्यवहार। (३५)

सौस्नातिक = राजा का स्नान होने पर कुशलता पूछने वाला। (२१)

स्कन्धप्रावर्तिम = (१) कंधे पर पानी लाकर खेत में सिंचाई करना। (२) उक्त प्रकार की खेती पर कर। (४५)

स्कन्धावार = छावनी, सेना निवेश। (२३) (४६)

स्कन्धावार का **स्वरूप** = चतुर्द्वार, षट्पथ, नवसंस्थान, (विभाग), खातवप्रसक्त (बुर्ज), साल (तट) द्वार (१२९), अट्टालक से संपन्न। (१२९)

स्कन्धावार में निषिद्ध (३ विषय) = विवाद, सौरिक समाज (शराबी लोग) और द्यूत। (१२९)

स्कन्धावार प्रयाण = सेना का अभियान। (१००)

स्कन्धावार निवेश = सेना की छावनी। (१०)

स्कन्धोपनेय = किश्तों किश्तों में प्रदान करने योग्य।

स्तम्भ = (१) राजद्रोह का अपराध। (८), (२) गर्व। (९)

स्तम्भ = (राज्य की प्रगति में विघ्न) दो प्रकार- (१) मुख्यस्तम्भ (नेताओं के कारण) (२) अमित्राटवीस्तम्भ (शत्रु एवं वन्य लोगों के कारण)। (१२०)

स्तम्भ वर्ग = करबंदी का आंदोलन करने वाले लोग।

स्तम्भ संक्रम = खंभों पर निर्मित तात्कालिक सेतु।

स्तवन के ४ विषय = जाति, कुल, श्रुत (ज्ञान) और वृत्त। (१२७)

स्तेय = राक्षस और पैशाच विवाह होने पर स्त्रीघन का उपयोग करना। (यह चोरी है और इस व्यवहार में चोरी समान दण्ड होता है। (५९)

स्तेय = (के प्रकार)- क्षुद्रक द्रव्य और स्थूलक द्रव्य (इसके ३ प्रकार = अवर, मध्यम, वर)। (७४)

स्तेय दण्ड = चोरी के अपराध का दण्ड। (२२)

स्तेय = अप्रत्यक्ष अपहरण या दूसरे की वस्तु का उपभोग। (७४) (देखिये साहस)।

स्त्रीधन = २ हजार से अधिक पण धनराशि या आबन्ध्य (अलंकार)।

स्त्रीधनकल्प = स्त्रीधन की व्यवस्था का विचार। (५९)

स्त्री-विप्रकार = पत्नी द्वारा पीड़ा या उपद्रव। (६०)

स्थल औदक (भूमि) = जिराईत, बागाईत बगिचे की (शाक सब्ज़ी के)। (१०९)

स्थल (वणिक्) पथ = (४ गुण) बहुखनि, सारपण्य, प्रसिद्धगति, अल्पव्यायाम।

स्थान = (१) स्वकर्म की वृद्धि या हानि दोनों न होना। (९९)

स्थान = (२) विशिष्ट उद्देश्य से शांत रहना। (१०२) (देखिये आसन)।

स्थानिक = (१) नगर के किसी एक विभाग का अधिकारी। (२) दुर्ग के चतुर्थ भाग की देखरेख करने वाला। (१७)

स्थानिक = (३) देश के चतुर्थ भाग का प्रमुख, प्रांतप्रमुख।

स्थानीय = ८ सौ गावों का केन्द्रस्थान। (२२)

स्थावर = अचल संधि।

स्थित यन्त्र = सर्वतोभद्र, जामदग्न्य, बहुमुख, विश्वासघाति, संघाटी, यानक, पर्जन्यक, अर्धबाहु, ऊर्ध्वबाहु। (कुल ९)। (युद्धोपयोगी विविध शस्त्रास्त्र)

स्थूलकर्ण = एक प्रकार का व्यूह।

स्नापक = हजाम (१२) या स्नान कराने वाला। (१२), (२१)

स्पष्टत्व = (लेख गुण) सर्वपरिचित शब्दों का प्रयोग। (३१)

स्पृक्तला = युद्धोपयोगी चल यंत्र। नोंकदार गदा। (३९)

स्रोतोयंत्र प्रावर्तिम = मोट चलाकर सिंचाई करना। (४५)

स्रौव = याज्य-याजक संबंध।

स्वकरण = स्वामित्व सिद्ध करना। (७३)

स्वदेशाभिष्यन्दवमन = अपने देश में एक प्रदेश के लोगों को अन्यत्र भेजना। (नयी बस्ती बसाने के निमित्त अन्यत्र भेजना।)

स्वधापाश = मृत पिता से संबंधित ज्येष्ठ पुत्र के कर्तव्य। (६३)

स्वप्न = अकाल निद्रा। (५२)

स्वबलोपघात प्रतिकार = शत्रु के गुप्त प्रयोगों से अपनी सेना की सुरक्षा करना। (१४)

स्ववग्रह = जिसके अनेक आप्तजन हैं ऐसा मनुष्य। (९)

स्ववित्तकारु = अपनी निजी पूंजी पर धंदा करने वाले। (७८)

स्ववीर्योपजीवी = शरीरश्रम पर जीवन बिताने वाले। (४५)

स्वाजीव = स्वावलंबी जीविका वाला।

स्वापतेय = पतिद्वारा ससुराल से प्राप्त संपत्ति। (४८)

स्वामिसंपद् = राजा की गुणसंपदा। (९५)

हरणोपाय = (सोना चांदी चुराने के उपाय) तुलाविपम, अपसारण, विस्रावण, पेटक, पिगक। **सुवर्णहरण के ४ उपाय** = परिकुट्टन (ठोकपीट), **अवच्छेदन** (तोड़ना), **उल्लेखन** (खरोधना), **परिमर्दन** (घिसना)। (३५)

हरितपण्य = घास पता आदि विक्रेय वस्तु। (२२)

हलमुखशस्त्र = शक्ति, प्रास, कुंत, हाटक, भिंदिपाल, शूंल, तोमर, वराहकर्ण, कणय, कर्पण, त्रासिक। (कुल ११)। (३९)

हस्तपादपारंचिक = हाथ पाव तोडना। (७६)

हस्तप्रावर्तिम = खेत में हाथों से सिचाई करना। (४५)

सेना के हस्ति तथा अश्व के १३ गुण = कुल, जाति, सत्त्व (सामर्थ्य) वयःस्थता, प्राणशक्ति, वर्ष्म (शरीर), जव, तेज, शिल्प (कौशल्य), स्थैर्य, उदग्रता (भव्यता), विधेयता, (आज्ञापालन), सुव्यंजनाचारता। (१३३)

हस्तिदोष = कर्मशंकित, अवरुद्ध, विषम, प्रभिन्न, विनिश्चय, मदहेतु विनिश्चय। (कुल दोष ६२ माने जाते हैं)। (५३)

हस्तिबंधकी = हाथी को वश में लाने में कुशल हाथिनी। (२३)

हस्तियुद्ध (प्रकार) = अश्व युद्ध प्रकार के प्रकीर्णिका व्यतिरिक्त ११ प्रकार और चतुरंग बल का घात, पक्ष-कक्ष-उरस्य विभाग को जर्जर करना और सौतिक (शत्रु पर आघात)। (कुल १५)। (१३३)

हस्तिवाटक = युद्धोपयोगी चलयंत्र। हाथी का प्रतिकार करने वाला तीक्ष्ण नोंक वाला दण्ड। (३९)

हस्ती (दो प्रकार) = नदीज, पर्वतौकस। नदीज हाथी के दांत २।। वर्षों के बाद और पर्वतीय हाथी के ५ वर्षों के बाद काटे जाते हैं। (५३)

हस्त्यध्यक्ष = पीलखाने का प्रमुख। (५२) (५३)

हाटक = हलमुखीशस्त्र, ३ या ४ पातों वाला दण्ड। (३९)

हारहूरक = हरहूर नामक नगर का मधु (द्राक्षामद्य) (४६)

हस्तिपक = पीलवान, महावत। (२३)

हिरण्य = मुद्रा।

सुवर्ण = नाणक। (२६)

द्रव्य = धन। (९३)

हिरण्यभोग (मित्र) = जिसके पास धन संपत्ति अधिक है। (१०७)

हिरण्यप्रतिग्रह = वसूली का स्वीकार। (१९)

हिरण्यप्रतिग्राही = रिश्वत लेने वाला।

हिरण्यभोग = जिससे सुवर्ण लाभ होता है ऐसा मित्र।

हिरण्यभोग = मित्र के ४ गुण = प्रर्थितार्थता, प्राभूत्य, अल्पप्रयासता, सातत्य। (१०७)

हिरण्य-सुवर्ण = सोना और सोने की मुद्रा। (७३)

हिस्त्रिका = तस्करों की नौका। (४९)

हीनकर्म = कृश हाथी को पुष्ट करना। (५३)

हीनप्रतिवर्णक = हलकीं कीमत वाला नमूना। (४२)

हीनशक्तिपूरण = प्रबल होने के लिये दुर्बलोंकि उपाय। (११२)

हीनसंधि = शत्रु को धन देकर संधि करना। (७)

हीनानुसारण = पराजित सेना का पीछा करना।

हीरक = देखिये वज्र। (६ प्रकार)। (३२)

हेड = अवकृपा। (९७)

हेमापसारित = १ भाग सोने और आधे भाग तांवे का मिश्रण। शुद्ध सोने में मिलाकर शुद्ध सोने का अंश निकाल लेना। (३५)

* * *

वर्ग - २ – कौटिलीय अर्थशास्त्र

राज्य व्यवहार की परिभाषा

अकृतार्थमान = अधिकारी जिसका धन देकर सत्कार नहीं किया गया। (२१)

अकृत्य = राजा पर निष्ठा न रखने वाला और शत्रु के वश में जाने वाला सेवक।

अकृत्योपगृहीत = दुष्कृत्य के कारण कैद किया गया मनुष्य। (२१)

अक्षणताडन = असमय या बेवक्त भटकने पर सजा। (५७)

अक्षपटल = सराफे का विभाग, सराफ कट्टा। दफ्तरदार की कचहरी (रजिस्ट्रार का कार्यालय)। (२५/२८)

अग्निदण्ड = निषिद्ध समय पर घर में आग जलाने का दण्ड। (१/८५)

अंगुष्ठ-सन्दंशन = अंगूठा काटने की सजा। (४४)

अतिनयन = सीमा के पार ले जाना। (६७)

अत्यय = द्रव्यदण्ड।

अतिचार = अनाचार, अवैध व्यवहार (४) (६०)

अतिसन्धान = ठगाना, विश्वासघात, वंचना, प्रतारणा। (१४३)

अतिसन्धि = ठगना।

अत्याहित = अतिसाहस।

अत्याहारित = जिसके अधिक धन का अपहरण हुआ है।

अद्वैध्य = अविभाजनीय।

अत्यय = नुकसान, हानि (३०)। कर न देना (३३)

अदण्डकर = जिस भूभाग पर दण्ड या कर लगाया नहीं जाता। (२२)

अदृष्टकर्मा = कर्तव्य कर्म का अनुभव न होने वाला। (८)

अधिकरण = विभाग (२६)। विभाग प्रमुख, (२८)। अधिकारपद (३०)। उत्पादन या आय का विभाग (२८)। शासन का कोई विभाग (१३७)

अधिचार = बलात्कार (४७)

अधिमासकं = अधिक मास का हिसाब (२८)

अध्यक्ष निबन्ध = अधिकारी का आदेश। (४९)

अनर्थ = जिस लाभ के कारण अपनी प्रजा से या शत्रु के राज्य से भय उत्पन्न होता है। (१२८)

अनर्थसंशयास्पद् = सभी ओर से अनर्थ होने की परिस्थिति में मित्र द्वारा सहाय जब होता है, ऐसी परिस्थिति। (१२८)

समन्त अनर्थापद् = जब सभी ओर से शत्रुओं की पीड़ा उत्पन्न होती है। (१२८)

अनिसृष्ट = अनुमति रहित, बिना परवाना। (९२)

अनिसृष्टोपभोक्ता = बिना अनुमति के निक्षेप का उपभोग लेनेवाला। (६९)

अनीश्वर = अनधिकारी। (६२)

अनुग्रह = टोल या चुंगी की माफी (३७)

अनुग्रह = किसान को दी हुई तगाई (२२)

२) टोल या चुंगी की माफी (३७)

अनुग्रहकरण = सार्वजनिक निर्माण कार्य के लिए आवश्यक सामान विनामूल्य देना। (२२)

अनुग्राह्य = १) क्षमा करने योग्य। (७७)

२) साहाय्य देने योग्य। (१०६)

अनुजीविवृत्त = नौकरों के कामधाम के नियम। (५)

अनुनय (तीन प्रकार) = १) पैसे मांगने के निमित्त। (२) अतिक्रम की क्षमायाचना के निमित्त, और ३) किसी का महत्त्व बढ़ जाने के कारण।

अनुयोग (पूछताछ) के विषय = देश, जाति, गोत्र, नाम, कर्म, सार (संपत्ति), सहाय, निवास। (कुल ८)। गवाह से यह जानकारी न्यायालय में प्राप्त की जाती है। (८५)

अनुलास = दो सीमाओं के बीच की खुली भूमि।

अनुष्ठान = बंदोवस्त, व्यवस्था (अनुतिष्ठेत्)। (२६)

अनेकमुख = अनेक स्थानों में चलने वाला(व्यवहार)। (४६)

अन्तःकोप = प्रजाजनों में असंतोष। (१६)

अन्तरमात्यकोप = मुख्य मंत्रियों के अतिरिक्त मंत्रियों का प्रक्षोभ। (१२४)

अन्तर्धि = नेता (विजिगीषु) और शत्रु इन्न दोनों के बीच वाला दुर्वल राजा। (उदा. भारत और चीन के बीच नेपाल)। (१११)

अन्तर्वेशिक = अन्तःपुर का वृद्ध सेवक, जिसे नाटक में कंचुकी कहा जाता है। (१२)

अन्यजात = लावारिस माल (३६)

अन्यजात आय = नष्टप्रस्मृत, आयुक्तदंड, पार्श्व, परिहीणिक, औपायनिक, उमरगत, अस्वम्, अपुत्रकम। (आठ प्रकार) (२७)

अन्वाधि = अन्य प्रदेश में किसी को वापस लौटाने निमित्त दिया हुआ द्रव्य। (६९) (देखिये आदेश)

अपचय (क्षय-व्यय) = युग्य (कार्यक्षम) पुरुष का अपचय (नाश) ही क्षय और हिरण्यधान्य का अपचय (न्हास) ही व्यय होता है। (१२५)

अपचरित प्रकृति = जिस राजा के प्रजाजन अत्याचारों से त्रस्त हैं। (१०३)

अपनय = साम-दामादि शास्त्रोक्त उपायों का अयोग्य देश काल में प्रयोग। (इन्हीं से आपत्तियों का उद्भव होता हैं।) (१२६)

अपराधी (तीन प्रकार) = १) युक्त (मुख्य) २) उपयुक्त (अपराधी का सहायक) और ३) तत्पुरुष (अनुचर)

अपवाहित स्थान = रिक्त अधिकार पद (१४५)

अपव्ययमान = आरोप नामंजूर करने वाला। (२९)

अपसर्प (प्रवासी गुप्तचर) (१२) = परीक्षा करने की व्यवस्था। (१३)

अपसर्पण = किसी की योजना या नियुक्ति करना। (१३)

अपसर्पप्रणिधि = गुप्तचरों की रवानगी (१३)

अपसार = अपराधी का पलायन। (३५)

अपसृत सन्धि = जमानत की रकम देकर सन्धि। (७)

अपुत्रक (आय) = पुत्रहीन की संपत्ति के रूप में प्राप्त। (२७)

अप्राप्त व्यवहार = आर्थिक इत्यादि व्यवहारों का अनधिकारी, अज्ञान (७०)

अप्रार्थनीय = न्याय के अतिरिक्त किसी को न मानने वाला अधिकारी।

अपहीन = स्वायत्त खेत में कृषि उत्पादन न करने पर दण्ड। (२२)

अप्रणीत = उपयोग में न लाया हुआ (घर खेत आदि)

अभयदान देने योग्य = पतित, पराङ्मुख, अभिपन्न (शरणागत), मुक्तकेश, शस्त्रभयविरूप। (कुल ५)

अभयवन परिग्रह = संरक्षित वन में रहनेवाले प्राणी। (४७)

अभिग्रह = गूढाजीवी अपराधी को पकड़ना (इसके तीन प्रमुख उपाय = **शंकाभिग्रह** = (शंका के कारण) पकड़ना। रूपाभिग्रह (चोरी का माल पकड़ना) **कर्माभिग्रह** (अपराध स्थान के लक्षणों से पकड़ना) (८३)

अभित्यक्त पुरुष = वध्य पुरुष, जिसे फांसी की सजा हुई है। (२६)

अभिपन्न = शरणागत। (१८)

अभिप्रजात = कुलशीलवान। (७०)

अभिभर्त्सन = किसी को धमकी देना कि आगे चलकर आप संकट में फसेंगे। (३१)

अभियुक्त = न्यायालय में पराभूत प्रतिवादी । (५८)

अभियुक्तोपजाप = आरोपी के साथ संगनमत। (२९)

अभियोग = न्यायालयीन मामला (३७), दोषारोप। (२९)

अभियोग करने योग्य = (३ प्रकार) मूलहर (मूल धन का व्यय करने वाला। तादात्विक (यथाशक्ति निर्वाह करने वाला), कदर्य (कंजूस)। (१११)

अभिरूपदायक = योग्यता के अनुसार दी हुई कृषियोग्य भूमि। (२२)

अभिशस्त = पूर्वदण्डित अपराधी। (५८)

अभ्यन्तर कोप = मंत्री पुरोहित सेनापति और युवराज इन में से किसी एक का या अनेकों का उत्थान। (१२४)

अभ्यवपत्ति = संकट में सहायदान (व्यसनसाहाय्य)। (३१)

अमात्यसम्पत् = अमात्य या मंत्री के विविध गुण (९), (३०)

अर्थ संशयापद् = सभी ओर से प्राप्त लाभ में पार्ष्णिग्राह के द्वारा जब विघ्न आता है। (१२८)

समन्ततोअर्थापद् = सभी ओर से लाभदायक परिस्थिति। (१२८)

अर्थोपधा = द्रव्य के प्रलोभन से गूढ परीक्षा। (१०)

अल्पभोग (मित्र) = अल्प संपत्ति वाला (१०७)

अवक्लतिक = अधिकार के लिये अधिक योग्य। (२८)

अवक्षेप = अधिकार से निवृत्त करना। (१०)

अवगूर्णन = शस्त्र लेकर मारने दौड़ना।

अवनिधान = लोगों के पास धन को गुप्त रखना। (३०)

अवरुद्ध = कारागार में बंद कैदी। (१३)

अवरुद्धवृत्त = राजपुत्रों से व्यवहार। (१)

अवरुद्धादान = बंदिवान राजपुत्र आदि को मुक्त करने का प्रयोग। (१२४)

अवश्यसैन्य (मित्र) = जिसका सैन्य वश में नहीं रहता। (१०७)

अवस्कन्दित = निर्माण कार्य में बाधा (हड़ताल आदि से)। (४४)

अविनय = विरुद्ध उत्थान, विद्रोह, बगावत (बंड – मराठी में)। (९१)

अविसंवादक = वचन भंग न करने वाला। (१८)

अष्टादशशक मंडल = प्रत्येक राज्य की विदेश नीति का यह पृथक् एकक होता है। इसमें प्रत्येक विजगीपु, मित्र और मित्र के मित्र के अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश तथा दण्ड का अन्तर्भाव होता है। कुल चार मंडलों में 12 राजा और उनकी ६० प्रकार की द्रव्यप्रकृति अन्तर्भूत होती है। (९८)

असत्प्रगह = अयोग्य व्यक्ति को उच्चाधिकार देना। (१०)

अहिभय = राजपुत्र को किसी स्थान में बंद कर रखने के कारण संभाव्य भय जैसा साप को बंद रखने के कारण हो सकता है। (१७)

आक्षपटले गाणनिक्याधिकार :
जनगणना (२)

आज्ञापत्रक = (देखिये शासन)।

आतिपातिक = नियमों का अतिक्रमण करने वाला (७२)।

आत्मवत्ता = श्रद्धा से उत्पन्न होने वाला आत्मप्रत्यय गुण। आत्मविश्वास।

आत्मसंपन्न = सर्वगुणसंपन्न। (१७)

आत्ययिक (कार्य) = आवश्यक कार्य या दीर्घकाल से चलते आया हुआ, जिसकी कालमर्यादा अत्यधिक हो चुकी है। (१५) (१९)

आदेश = अपने गांव में किसी को पहुंचाने निमित्त दिया हुआ द्रव्य। (देखिये अन्वाधि)। (६९)

आधिवेदनिक = नुकसान भरपाई या परिपोषण के निमित्त देय धन। (५९)

आनूप = (अनुप) दलदल का जलयुक्त प्रदेश। (४५)

आपत्ति (तीन प्रकार) = कुल, बन्धन (फौजदारी), तूर्य

(दीवानी)। (७०)

आपदर्थ = जिस अर्थ (लाभ) की अप्राप्ति शत्रुवृद्धि का कारण होती है। जो प्राप्त होने पर शत्रु को वापिस देना बाध्य होता है, और ज़िसको प्राप्त करने में क्षय और व्यय अधिक होता है। (१२८) जिस लाभ को सामन्त चाहते हैं। जो सामन्त के संकट से प्राप्त हुआ है। शत्रु जिसे चाहते हैं। पार्ष्णिग्रह के द्वारा जो बाधित हो सकता है। जो मित्रोच्छेद से, सन्धिच्छेद से, या मित्रमण्डल के मत-विरोध में प्राप्त हुआ है। (कुल ८) (१२८)

आपद् दैवी (प्रकार) = अग्नि, उदक, व्याधि, प्रमार, विद्रव (ज्वालामुखी, भूकंप आदि), दुर्भिक्ष और आसुरी सृष्टि (शलभ-मृपक आदि)। (१२८)

आप्यप्रयोग = एक कूट प्रयोग जिसमें औषधि के निमित्त विष पिलाकर हत्या की जाती है। (९१)

आभिगामिक गुण = लोगों को आकर्षित करने वाले गुण। (९७)

आयुक्त दण्ड (आय) = अधिकारियों को दण्ड देने से प्राप्त। (२७)

आरक्षविपर्यास = आरक्षकों का स्थानान्तर। (१२९)

आरण्यक = अरण्यवासी लोग। (१३)

आरंभकर्ता = (५ प्रकार) शक्यारंभी, कल्पारंभी, (निर्दोष कार्य का आरंभ करने वाला), भव्यारंभी, (फलोत्पादक कार्यों का आरंभ करने वाला), स्थितकर्मा (आरब्ध कार्य संपूर्ण करने वाला) और अनुरक्त प्रकृति (जनता की सहायता से अल्प व्यय में करने वाला। (१०६)

आर्य = १) उत्तम लोग (४६) २) चातुर्वण्य के अन्तर्गत लोग। (७७)

आर्य = आपत्ति के कारण दासत्व आने पर भी जिसे मूल्य देकर आर्यत्व प्राप्त करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। (अनार्य = म्लेच्छ)। (७०)(८६)

आसन = अपने उत्कर्ष निमित्त बैर से निवृत्ति। (देखिये – स्थान)। (१०८)

आशुमृतक = अपघात में मृत। (४)

आशुमृतक (अकस्मात् मृत) = निरुद्धोश्वासहत, उद्बन्धहत, अवरोपित, उदकहत, काष्ठाश्महत, अवक्षिप्त, विषहत, सर्वकीटहत, मदनयोगहत, उद्बन्धकण्ठ, निकृत्तकण्ठ। (कुल ११ प्रकार) (८४)

आहार्यबुद्धि = १) दूसरे की बुद्धि को प्रमाण मानकर व्यवहार करने वाला। २) धर्म और अर्थ का ज्ञान होने पर भी तदनुसार आचरण न करने वाला (इसी को घृतबुद्धि कहते हैं)। (१७)

उत्कोचक = जबरदस्ती से रिश्वत लेने वाला (८१)

उत्तमदण्ड = ५ सौ से १ हजार पण दण्ड (३३)

उत्तम साहस (या वध) दण्ड = ५०० से १००० पण दण्ड (४२)

उत्थान = ऐसा उद्योग जिससे योगक्षेम होता है। (७)

उत्थानक्लेश = दौरे के परिश्रम। (२८)

उदरदास = उदरनिमित्त दास बना हुआ (अर्थात् जो जन्मतः दास नहीं है।) (७०)

उद्यतदण्ड = निर्दय दण्डप्रयोग करने वाला। (४)

उपग्रह = वश में लाना। (१४)

उपजाप = भेद या झूठ प्रतिकूल प्रचार करना। (१३) (१०)

उपजाप (२ प्रकार) = स्वपक्ष उत्कर्ष तथा परपक्षोपक्षेप के उपाय = १) सर्वज्ञख्यापन (राजा सर्वज्ञ है ऐसा मिथ्याप्रचार) २) दैवत संयोग स्थापन (राजा पर देवता प्रसन्न हैं इत्यादि मिथ्या प्रचार)। (१४१)

उपदाग्राहक = रिश्वत लेने वाला। (८१)

उपधा = गूढ युक्ति से सत्त्वपरीक्षा (१) २) कपट प्रयोग। (१०)

उपाधि = मिलावट, अशुद्धता (३४)

उपनिपात = आधिभौतिक संकट। (४) (६९) (७२) (८०)

उपनिषत् प्रतिषेध = अन्तरंग शत्रु का नाश करने का गुप्त उपाय। (९१)

उपप्रदान (एक उपाय) = द्रव्य देकर उपकृत करना।

उपभोग का अधिकार (स्थावर संपत्ति के) **प्राप्त होने के निमित्त** = प्रक्रय (रोकड़ रकम देकर), **अवक्रय** (किराया पट्टी या किश्त) **अधिभाग** (विभाजन), भोग (दीर्घकाल उपभोग), **निसृष्ट** (समर्पण) (कुल ५) (६६)

उपवाद (दोषदर्शन) = वाक्पारुष्यरूप अपराध का एक प्रकार)। दो-प्रकार (सत्य और मिथ्या। (इसके विषय- शरीर, स्वभाव, विद्या, वृत्ति (धंधा) और देश (कुल ५) (७५)

उपस्थान = राजसभा का स्थान (१९, २०)। २) कार्यालय का समय (२८) ३) देवडी या चौकी (१२९)

उपाय = साम, दान, भेद और दण्ड। (३१)

उपाय सिद्धि के अनुसार राजभेद = एक उपाय से सिद्धि प्राप्त करने वाला = एकसिद्धि। इसी प्रकार द्विसिद्धि, त्रिसिद्धि, चतुःसिद्धि। ये राजा के विशेषण होते हैं। (१२८)

उपावर्तन = विवाहादि संबंध में इन्कार। (७२)

उपाशु दण्ड = गुप्त घात। (११) (१७) (१३३)

उपेक्षण = शत्रुविरोधी उपाय योजना (शक्यता होने पर भी) न करना (देखिये आसन)। (१०२)

उभयतो अनर्थापद् = इधर उधर के दोनों मार्गों से अनर्थ की संभावना जब होती है। (१२८)

उभयतो अर्थापद् = इधर उधर से दोनों मार्गों से लाभ होने की जब संभावना होती है। (१२८)

उभयतोऽर्थाऽनर्थसंशयदायिनी = एक ओर से लाभ और अन्य सभी ओर से आपत्ति आने की संभावना जब होती है। (१२८)

सर्वतोऽर्थानर्थ संशयदायिनी इसी प्रकार की होती है।

उष्ट्रगुप्तिस्थान = ऊंटखाना (२५) उष्ट्री = मिट्टी का घड़ा।

उरुवेष्ट = दंडबेड़ी (८५)

एकपुरुषक = एक पुरुष की जीवन मर्यादा तक ही जिस पर स्वामित्व होता है। (ऐसा खेत) (२२)

एकप्रग्रह = राजाधिकार पाने योग्य। (१०)

एकलोष्टवध = पथराव से हत्या। (१७)

एकांगवध = हाथ पांव आदि अवयव काटने का दण्ड। (४) (८७)

औपघातिक = नुकसान करने वाला व्यवहार। (३७) कृतघ्न मनुष्य। (७३)

औपघातिक देश = खराब हवा पानी का उपद्रव युक्त प्रदेश (१४५)

औपनिषिदिक प्रयोग = विनाश के गुप्त प्रयोग। (११३)

औपपादिक = पर्वताधिपति। (१०)

औपयनिक (आय) = नजराना, उपहार, उपायन द्वारा प्राप्त। (२७)

औरभ्रकभय = राजपुत्र के संभाव्य विद्रोह के भय से, उसे सीमान्त के अधिकारी के नियंत्रण में रखने के कारण 'उरभ्र' (भेष, भेड) के समान आक्रमण का भय। (दूर जाकर भेड़ अधिक शक्ति से टक्कर मारता है। (17)

कंटकशोधन = अनिष्ट या गुंडे लोगों का बंदोबस्त। (१०) (३४) (७८)

कन्याकुमारपुर = राजकन्या तथा राजकुमार - वर्ग के निवास का राजप्रासाद का विभाग। (२०)

कर = धन के रूप में शासनद्वारा वसूली। (२७)

करणीय = इसमें, संस्थान (चालू काम), प्रचार (नया काम), शरीरावस्थापन (पुराने काम का सुधार), आदान (करवसूली), सर्वसमुदयपिण्ड (वसूली एकत्रित करना), संजात (सारी आय का बहीखाता रखना), इन छह विषयों की गणना होती है। (२७)

करप्रतिकर = गोरक्षक द्वारा गाय का घी, चमडा, इत्यादि जो प्रतिवर्ष राजा को दिया जाता है। (४०)

कर्म आयोग = कर्तव्य में नैपुण्य। (५८)

कर्मकर = प्रवीण या जानकार नौकर (३३)

कर्मगृह = कार्यालय। (२५)

कर्मयोग = शत्रुनाश के हेतु जारणमारण आदि प्रयोग। (१६)

कर्मवध्य = देहान्त शासन देने योग्य अपराध करने वाला (८५)

कर्मसंवत्सर = ३५४ दिन का कालावधि (इसकी समाप्ति आषाढी पौर्णिमा को होती है। (२८)

कल्य = संकट रहित लाभ।

कल्प = नियम, निर्बन्ध, संकेत। (५)

कल्पक = प्रसाधक (वस्त्र, अलंकार पहनाने वाला) २) नाई या हजाम। (१२)

कान्तारक = वनवासी लोग। (६८)

कापटिक = इंगितज्ञ और प्रौढ छात्रचर। (११)

कापटिक = छात्र गुप्तचर। (९२)

कामदान = कलाकारों को दान। (७३)

काममूलक चार व्यसन = मृगया, द्यूत, स्त्री, मद्यपान। (११९)

कायदण्ड = दण्डनिमित्त शारीरिक ताड़न पीड़न। (५७)

कार्य = (राजसेवक के) आभ्यन्तर, बाह्य, गुह्य, प्रकाश्य, आत्ययिक (सत्वर), उपेक्षितव्य। (कुल ६ प्रकार) (९५)

कार्यानुशासन = १) कर्तव्यों का उपदेश (जिससे स्वधर्मस्थापना होती है (७)। २) न्यायदान (१९)

कालमान = त्रुट, लव, निमेष, काष्ठ, कला, नालिका (घटिका) मुहूर्त- दिन (रात्रि = (१५ मुहूर्त काल), अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, सवंत्सर, युग = (पाच संवत्सर)। (४१)

कुडुम्ब = वेतन (४८)

कुत्सित याजक = निंद्य लोगों से यज्ञ करवाने वाला। (७१)

कुल्य = समान कुल में उत्पन्न। (१)

कुम्भीपाक = कटाह या कुम्भ में जलाकर मारना (अभिषिक्त रानी से संभोग करने का दण्ड है।) (९०)

कूटपणकारक = झूठा करारनामा करने वाला। (८१)

कूटसाक्षी = झूटी साक्ष, गवाही देने वाला। (८१)

कृच्छवृत्ति = कर्तृत्वसंपन्न, जिसने कोई महान् कर्म किया है। (२१)

कृतकबन्धांक = अपराधी के मस्तक पर लगाया गया कलंक। (९०)

कृत्य = विश्वासघातकी, जो राजभक्ति से पथभ्रष्ट किया जा सके। (१, १३)

कृत्य-अकृत्य वर्ग (परराज्यस्थ) = क्रुब्ध, भीत, लुब्ध और मानी - इन चार प्रकारों का अधिकारी वर्ग। (१४)

कृत्यपक्ष = जो बेइमान हो सके ऐसे लोग। (१३८)

कृत्यपक्षोपग्रह = बेईमान, असंतुष्ट लोगों से सख्य करना। (१८)

कोशवृद्धि के ९ साधन = प्रचारसमर्धि (कारखानों का विकास), चरित्रानुग्रह (शीलरक्षण), चोरग्रह, युक्तप्रतिषेध (अधिकारियों का नियंत्रण), सस्यसंपत्, पण्यबाहुल्य, उपसर्ग प्रमोक्ष (आधिभौतिक उपसर्ग से बचाव), परिहारक्षय (सहूलियत न देना), हिरण्योपादान।

कौष्ठेयक = कांजी घर का कर (३६)। वृक्षों का उत्पन्न।

क्रुद्धवर्ग = वंचित, अपमानित, पीडित, निर्वासित, अधिकारच्युत, कैद में कुण्ठित, दण्डित, लुण्ठित, इत्यादि प्रकारों का अधिकारी वर्ग। (१४)

क्षय = स्वकार्य की हानि होना और शत्रुकार्य की न होना। (९९) क्षय-व्यय-लाभ-विमर्श = सैन्य तथा कोश का आय व्यय। (९)

क्षुद्रक = कनिष्ठ अधिकारी वर्ग (१३)

क्षुद्रपरिषत्क = जिस की परिपद में क्षुद्र लोग होते हैं। (९७)

क्षेमरात्रि = अपराधविरहित रात्रि। (५७)

खरपट = कैदी के गले में बांधा हुआ लोहे का बिल्ला। (८५)

खार्वटिक = दो सौ गांवों का केन्द्रस्थान। (२२)

गर्भपात अपराध = प्रहार से, भेषज्य से, परिक्लेश से। (८८)

गुप्तचर द्वारा परीक्षण योग्यस्थान = चैत्य, चतुष्पथ, शून्यपद, उदपान, नदी, निपान (नदी घाट), तीर्थ, आयतन (देवालय), आश्रम, शैल, वनगहन। (कुल ११)

गुप्तचर के प्रकार = सिद्ध, तापस, प्रव्रजित, चक्रचर (जादुगर), चारण, कुहक (मदारी या मांत्रिक), प्रच्छन्दक, कार्तान्तिक (भविष्यवादी), मौहूर्तिक, चिकित्सक, उन्मत्त, मूक, बधिर, जड, अंध, वैदेहिक, कारु, शिल्पि, कुशीलव, वेश (नट) शौण्डिक, आपूपिक, पाक्वमांसिक, औदनिक (कुल २४)। (८१)

गुप्तिच्छिद्र = मर्मस्थान। (१-१५)

गुप्तिस्थान = आरक्षित विभाग। (४७)

गूढप्रणिधान = गुप्तचरों की योजना। (११६)

गुह्यसधर्मा = ऐंसा पुरुष जिसका गुह्य मर्म ज्ञात है। (८)

गूढलेख्य = गुप्तपत्र (१-१२)

गूढाजीवा = गुप्त मार्गों से कमाई करने वाली स्त्री। (४८)

गूढाजीवी = प्रकार – उपदाग्राहक, उत्कोचक, कूटसाक्षी, संवननकारक, रसद, मदनयोगव्यवहारी, कूटरूपकारक, कूट सुवर्णकारक (कुल ८)। (इन आरोपों से १३ प्रकार के ग्रामकंटकों को निर्वासित किया जाता है। (८१)

गूढाजीवी = रिश्वत या घूस लेने वाले। (१-४)

गुरुसमुत्थ (मित्र) = जिसे युद्ध के समय उत्थान करने में प्रयास होते हैं। (१०७)

ग्रन्थिभेद = जेब काटना, गांठ खोलना। (८७)

ग्रहणकाल = पशु पकड़ने का समय। (५२)

ग्राम के प्रकार = परिहारक (करमुक्त), आयुधीय (सैनिक देने वाला), धान्यप्रतिकर, पशुप्रतिकर, हिरण्यप्रतिकर, कुप्य – प्रतिकर, विष्टिप्रतिकर (कुल ७)। (५६)

ग्रामभृतक = गांव वाले नौकर। (२-२२)

चारक = कैदी। दीवानी कारागृह। (८६)

चित्रभोग = अनेक प्रकार से उपयोगी मित्र।

छन्दिका = राजकुमार आदि को वैयक्तिक व्यय के लिए दी जाने वाली रकम। (पॉकेट मनी)। (१३५)

छायानलिका = १) राजा को समय की सूचना देने का साधन २) उन्मार्गवर्ती राजा को सन्मार्ग पर लाने के लिए मार्गदर्शक आचार्य द्वारा जिसका प्रयोग किया जाता था ऐसा कोई साधन। (७)

जंघाकारिका = दौड़ते दौड़ते जाने वाला जासूस। (22)

जंघाग्र = स्त्री पुरुषों की गिनती। (५६)

जनपद के तीन विभाग = संग्रहण, द्रोणमुख और स्थानीय। (५८)

जनपदनिवेश = नये गावों की निर्मिति करना। (२२), २) देश की रचना।

जनपदसन्धि = प्रदेश के विभाग (५८)

जनसमवाय = सार्वजनिक स्थान। (१३)

जानपद= १) स्वदेश का निवासी (९), २) सर्वसामान्य जनता (९९)

तटाकवमन = (या वामन) = तालाब शुष्क करवाना। (६६)

तापसव्यंजन = तपस्वी के रूप में घुमने वाला गुप्तचर। (५६)

तिरोजनपद = जनपद के बाहर का मनुष्य (५५)

तीक्ष्णदण्ड = नित्य कठोर दण्ड का प्रयोग करने वाला। (४)

तीक्ष्ण = १) हाथी, साप इत्यादि से लढने का खेल करने वाले प्रवासी गुप्तचर (१२)। २) घातक गुप्तचर (९)

तीर्थ = अन्यान्य शासकीय विभाग (जिनकी संख्या १८ थी) (१२)

तीर्थघात = तीर्थस्थान में अपराध करने वाला।

तुल्य लाभ से विमर्शनीय ७ विषय = देश, काल, शक्ति उपाय, प्रिय- अप्रिय, जव-अजव (अल्प - दीर्घकाल), सामीप्य-विप्रकर्ष, तदात्व-अनुबन्ध, सारत्व, सातत्य, संख्या बाहुल्य-बाहुगुण्य। (१२५)

तुष्टिदान = राजा के द्वारा अर्पित पारितोषिक। (११)

तृतीयसार = तृतीय श्रेणी का।

दण्ड = आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता इन तीनों विद्याओं के योगक्षेमं का साधन। दण्ड़ की नीति = दण्डनीति। (१४)

दण्ड = (तीन प्रकार)- पूर्व, मध्यम, उत्तम वध। (वध = दण्ड।) (२६)

दण्ड = (तीन प्रकार)- वध, परिक्लेश (पीड़ा देना) और अर्थहरण।

दण्डखेदी = दण्ड की पीडा न होते ही व्याकुल हुआ। नय और अनय का अर्थात् अर्थ और अनर्थ का विवेक। (२)

दण्डप्रयोग में विचारणीय ८ विषय = पुरुष, अपराध, कारण, गुरु-लाघव, अनुबन्ध (विशिष्ट परिस्थिति) तदात्व, देश और काल (८७)

दण्डपारुष्य = अपकृत्यनिमित्त निर्दय ताडन आदि (३)

दण्डपारुष्य (३ प्रकार) = स्पर्शन (गंदे हाथ से या पांव से) अवगूर्णन (शस्त्र उठाकर धमकी)। प्रहत (आघात करना)। (७६)

दण्ड्य = सभी असिद्ध व्यवहारों में कर्ता, कारयिता, श्रोता, अनुमन्ता (साथीदार या गवाह) (५८)

दम = दण्ड। (६६)

दशबन्ध दण्ड = दस गुना अधिक दण्ड। (२८)

दाण्डकार्मिक = गुप्तता से राज्यद्रोहियों का वध करवाना। (९१) (९६)

दान (३ प्रकार) = अनुग्रह, परिहार (करमाफी) कर्म –

आयोग (विशिष्ट कार्य पर नियुक्ति)। (१२६)

दान = के निमित = शौच, सामर्थ्य, व्यसन (गृहसंकट), अभ्युदय (उत्तम कार्य) - इन चारों निमित्तों से दान प्रयोग करना चाहिये। (१२६)

दान प्रयोग से साध्य = १) लुब्ध और धनक्षीण। (१२७)

दान = (पांच प्रकार) देयविसर्ग (देने की रकम छोड़ना) गृहीतानुवर्तन (ली हुई राशि को मान्यता देना), आत्तप्रतिदान (स्वाधीन की हुई राशि वापिस लेना), स्वद्रव्यदान, परधन लूटने की अनुमति देना। (१२७)

दान = (प्रकार) - धर्मदान, अर्थदान, कामदान (कलाकारों को दान), भयदान, रोषदान, (दूसरे को अपाय करने हेतु दान)। (७३)

दायक = (दापक) वसूली ठहराने वाला और वसूल करने वाला। (२८)

दास = (या दासी) चार प्रकार- गृहजात, दायागत, लब्ध और क्रीत। (७०)

दासी = (पांच प्रकार की सेविका) धात्री (धाय), परिचारिका (घर काम रसोई आदि वाली,) अर्धसीतिका (आधे हिस्से पर खेत में काम करने वाली), उपचारिका (रुग्णसेवा करने वाली) पुंश्चली (वेश्या) (७०)।

दुर्ग = इसके अन्तर्गत शुल्क, दण्ड, पौतव, नागरिक, लवणाध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, सुरा, सूना, सूत्र, तैल, घृत, क्षार सौवर्णिक, पण्यसंस्था, वेश्या, द्यूत, वास्तुक, कारुशिल्पिगण, देवताध्यक्ष, द्वारबाहिरीकार देय - इन २० विषयों का अन्तर्भाव होता है। (२७)

दुर्बुद्धि= नित्य संकटग्रस्त रहने वाला और धर्म अर्थ का द्वेष करने वाला (१७)

दूतप्रणिधि = के तीन प्रकार- १) निःसृष्टार्थ। (२) परिमितार्थ। (३) शासनहर (१६)

दूतप्रावर्तिम = परराष्ट्र स्थित दूतावास का व्यय।

दूष्य = राजद्रोही या जिस पर राजद्रोह का संशय किया जाता है। (९१) (१००)

दूष्यकुल्य = राजद्रोही परिवार के लोग (९२)

दूष्यबल = सैन्यान्तर्गत राजद्रोही लोगों का दल, या जिनके (१११) विषय में राजद्रोह की संभावना है ऐसे लोग। (१३१)

दूष्यवध = राजद्रोही का कडा दण्ड (११)

दूष्यव्यंजन = राजद्रोही के रूप में संचार करने वाले गुप्तचर। (१२६)

दृष्टापदान = पूर्व परंपरा जानने वाला। (८)

देशमान = (अंतर का नाप) = परमाणु, धूलिकण, लीख, ऊं, यव, अंगुल धनुर्ग्रह, धनुर्मुष्टि, वितस्ति, (बिल्लस), अरत्नि (एक हाथ), शम, किष्कु व्याम (गहराई नापने का प्रमाण), दण्ड। (४१)

देशलौल्य = अन्यान्य देशों में प्रवास करने का शौक़।

देशावस्थापन = देश विषयक चिन्तन।

दैवदण्ड = दैवी आपत्ति। (१३)

दैवपीडन (पांच प्रकार) = अग्नि, उदक (महापूर), व्याधि, दुर्भिक्ष, मरक। (१२०)

दैवी महाभय (८ प्रकार) = अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष, मूषिक (चूहे), व्याल (हिंस्र पशु), सर्प, भूतपशिाच (रक्षांसि)। (८०)

दोष = (अधिकारी के) जिससे राजा (सरकार) का आर्थिक नुकसान होता है) = अज्ञान, आलस्य, प्रमाद, भय, काम, कोप, दर्प, लोभ। (यथापराधं दण्डयाः)।

द्यूतसमाह्वय = द्यूत, शर्यत या स्पर्धा । (१-३)

द्यूतावास = जुए का अड्डा।

द्रव्यहरण के ४० उपाय = पूर्वसिद्ध पश्चात् अवतारितम्, पश्चातसिद्धं पूर्वम् अवतारितम् (पहली जमा बाद में, और बाद की पहले, दर्ज करना) साध्यं न सिद्धम्, असाध्यं सिद्धम् (मिलने योग्य वसूल न लेना), और वसूल करने अयोग्य लेना) इत्यादि प्रकार की हेराफेरी।

द्वारबाहिरिकादेय = बाहर से दरवाजे के अंदर आने वाले माल पर लेने का कर, टोल. (२७)

द्वैधीभाव = सन्धि और विग्रह दोनों का अवलंब। (99)

द्वैराज्य = दो राजाओं का आधिपत्य।

धनुस् = एक नाप (प्रायः ६ फीट का अन्तर)।

धर्मलोप = सामाजिक अधिकारों का अपहरण। (६०)

धर्मवध = धर्मनियमों का अतिक्रमण। (६०)

धर्मस्थ (न्यायाधीश) के २० अपराध = तर्जन , भर्त्सन, अपसारण अभिग्रसन, साक्षी या गवाह को बोलने से मना करना वाक्पारुष्य (गालिया देना), पृच्छ्यस्य अपृच्छा, अपृच्छ्यस्य पृच्छ।, पृष्ट्वा विसृजति, स्मारयति, पूर्वं ददाति (पहली जबानी दिखाना), देयं देशं न पृच्छति, अदेयं देशं पृच्छति, कार्यम् अदेशेन अतिवाहयति, छलेन अतिहरति, काल हरणेन श्रान्तम् अपवाहयति, मार्गापत्र, वाक्यम् उत्क्रमयति, मतिसाहाय्यं साक्षिभ्यो ददाति, तारितानुशिष्टं कार्यं पुनरपि गृहणाति, भूतम् अर्थं नाशयति, अभूतम् अर्थं करोति। (८७)

धर्मस्थीय = न्यायविभाग (१०)

धर्मोपधा = धार्मिकता की कसौटी या गूढ परीक्षा। (१०)

ध्वजस्थान = धार्मिकता की कसौटी को मातुल परिवार में रखने पर , भिखारी जिस प्रकार झंडा लेकर पैसे जमा करते हैं, उसी प्रकार मातुल परिवार के लोग राजा से द्रव्य मांगते रहते हैं। अतः ऐसे राजपुत्र को ध्वजस्थान कहते हैं। (१७)

नष्टप्रसृत (आय) = स्वामी मृत या अज्ञात होने से प्राप्त धन। (२७)

निगूढोपहित = गुप्तता से रहने वाले जासूस।

नियम्य = न्यायालय में पराभूत होने वाला। (५८)

निर्देशोप्तादिक (लाभ) = विशेष सहूलियत, विशेष अधिकार

से छूट। (२८)

निविशमान = नई बस्ती बसाने वाला (९२)

निशान्तप्रणिधि = राजप्रासाद की रचना।

निशान्त प्रणिधि = राजमहल की रचना तथा संरक्षण। (१) (२०)

निश्चार = संचार को प्रतिबंध (कर्फ्यू)

निष्पातन = वस्तु बाहर अन्यत्र ले जाना। (४८) (६९)

निष्पतित = फरार, पलायित। (४८)

निसृष्टि = (शासन पत्रक का प्रकार) – विशिष्ट व्यक्ति को उसका कार्य करने या अपना प्रचार करने की अनुमति। (३१)

निसृष्टि स्थापना = अपना अधिकार दूसरे को देने की विधि।

निर्हरण = समाचार बाहर भेजना। (१२)

पक्षवान् = जिसे किसी पक्ष का आधार होता है। (३०)

पक्षोपग्रह = स्वपक्ष में लाना (१)

पंचकुली = पांच कुल जहां एकत्र रहते हैं ऐसी भूमि।

पंचग्रामी = (या दशग्रामी) के अन्तर्गत १७ विभाग (गोप के कार्यक्षेत्र के विभाग) = कृष्ट, अकृष्ट, स्थल (पठार, मैदान, समभूमि केदार (जलमय भाग) आराम, वाट (वाड़ी), वन, वास्तु, चैत्य (समाधि स्थान), देवगृह, सेतुबन्ध, श्मशान, सत्र (अन्नसत्र), प्रपा (पेयजलस्थान), पुण्यस्थान, विवीत, मार्ग। (५६)

प्रकृति = स्वामी (राजा), अमात्य; जनपद (देश), दुर्ग, कोश, दण्ड (सेनाबल), मित्र। (इन्हीं को राजपुरुष के ८ अंग कहते है। (९७)

प्रकृति (प्रजाजनों के) प्रिय हित करने के ६ उपाय = स्वधर्म, स्वकर्म, अनुग्रह (उपहार इ.), परिहार (कर माफ करना), दान, मान। (१४५)

प्रकृतिमण्डल = राजमंडल। (९९)

प्रकृतिसंपद् = राज्य के विविध अंग। (६)

प्रकृति व्यसन के (दो कारण) = अनय (नीति का अभाव) और अपनय (नीतिबाह्य व्यवहार)। (११७)

प्रकृतिव्यसन (संकट के २ प्रकार) = दैव और मानुष (११७)

प्रकृष्ट भौम = विजिगीषु के राज्य से दूर के प्रदेश का अधिपति।

प्रचारसम = कार्य की सामान्य पद्धति। (२८)

प्रचारसंस्थान = कार्य की पद्धति। (२८)

प्रज्ञागुण = राजा का एक गुण (७ प्रकार) = शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊहापोह; तत्वाभिनिवेश। (९७)

प्रज्ञापना = (आज्ञा लेख) नौकरों को दण्ड या अनुग्रह देने का आदेश। (३१)

प्रणय = व्यवहार, न्यायपद्धति। (९२)

प्रणिधि = (१) अधिकार पर नियुक्ति। (१)
(२) गूढ वार्ताहर। (३)
(३) अधिकारी। (८०)
(४) कर्तव्य। (८१)

प्रतिकर्तृ = सख्त मजदूरी का दंड भोगने वाले कैदी (४५)

प्रतिग्रह = (१) राजपरिवार के किसी व्यक्ति को ज़मानत के रूप में देकर की गई संधि। (११५) (२) साहाय्य (३) परिवार।

प्रतिजाप = दूसरों के षड़यंत्र में सहकारी होना। (१२६)

प्रतिपत्तिमान् = समयज्ञ, प्रत्युत्पन्न बुद्धिशाली। (९)

प्रतिपात = दंड, भरपाई।

प्रतिरोधक = डाकू, तस्कर, रास्ते में रोक लगाने वाले। (६९)

प्रतिलेख = (शासन पत्रक का प्रकार) दूसरे राजा से प्राप्त पत्र का राजा के आदेशानुसार उत्तर। (३१)

प्रतिषेध = नौकरी से निकाल देना। (१२)

प्रतीकार लाभ = संकट का प्रतिकार करने के लिये दी गई विशेष सुविधा। (२८)

प्रतोली = देवड़ी रास्ता (२४)

प्रत्यभियोग = न्यायालय में पराभूत होने पर पुनः अभियोग करना। (५८)

प्रत्यय = ज़मानत, गारंटी, विश्वास। (४९)

प्रदान-आदान (नजराना) = उपहार और लगान का हिस्सा। (२८)

प्रमादहेतु = मृगया, द्यूत, मद्य, स्त्री (कुल ४)। (९८)

प्रभावहीन = द्रव्य और सैन्य से हीन। (११२)

प्रमाणकरण = शपथ लेना (१)

प्रहवण = यज्ञादि उत्सव।

प्रातिभाव्यबन्ध = ज़मानतदार के करार का बन्धन।

प्राप्तनीवी = प्राप्त हुई बाकी की रकम।

प्राकार = प्रासाद के परिसर की सीमाभित्ति। (२०) परकोट।

प्रतिभाव्य = ज़मानतदार की रकम। (७३)

प्रातिभाव्यबन्ध = ज़मानतदार को करार से बांध लेना।

प्रात्ययिक = विश्वासपात्र। (३४)

प्राप्तनीवी = मिली हुई बाकी रकम।

प्राप्तव्यवहार = सज्ञान, शासनमान्य व्यवहार करने योग्य आयु वाला व्यक्ति (स्त्री द्वादशवर्षा। पुमान् षोडशवर्षः। (६०)

प्रावृत्तिक = शासन लेख का प्रकार, दैवी एवं मानुषी आपत्ति के प्रतिकार निमित्त आदेश। (३१)

प्रावृत्तिक लेख = विशिष्ट कार्य करने का लिखित आदेश।

प्रासाद = राजभवन। (२६)

प्रसाधक = राजा को वस्त्रालंकारों से सजाने वाला (२१)

बलि = यात्रियों से मिलने वाला कर। (२७)

बुद्धिमान् = जो सिखाने पर धर्म और अर्थ (पुरुषार्थ) ठीक समझता है। (१७)

ब्रह्मदेयिक = ब्रह्मकर्म के हेतु वार्षिक अनुदान पाने वाला। (६७)

भग्नोत्सृष्टक = १) व्याधित पंगु इत्यादि प्रकार की अयोग्य गौवों के रक्षकद्वारा प्रतिवर्ष राजा को दिया गया दूध, घी

चमडा इत्यादि आंशिक भाग। (५०)

२) विशिष्ट कारण से भागने के लिये छोडे गये जानवर।

भयोपधा = प्राणभय दिखाकर गूढ परीक्षा। (१०)

भव्यारंभी = महान् कार्य का दायित्व लेने वाला।

भागानुप्रविष्टक = शत्रु आदि के भय से बाहर से आये हुये पशुओं का दशांश भाग (जो राजा को दिया जाता है)। (५०)

भीतवर्ग = अपने निजी दोष के कारण जिसका नुकसान हुआ, जिसका पाप प्रकाशित हुआ, जिसकी भूमि जप्त हुई, भरपूर दण्ड से त्रस्त, अधिकार के दुरुपयोग से धनाढ्य तथा राजद्वेष्टा इन ७ प्रकार का अधिकारी वर्ग।

भूमि (दो प्रकार) = भिन्न मनुष्या (जहां लोग भिन्न भिन्न गावों में बिखरे होते हैं) और **श्रेणी मनुष्या** (जहां लोग समुदाय से रहते है) (१०९)

भूमिच्छिद्रविधान = भूमि का विभाजन या वर्गीकरण। (२३)

भूमिभोग (मित्र) = १) जिसके अधीन अधिक भूमि है (१०७) २) जिससे भूमि का लाभ होता है ऐसा मित्र।

भूम्येकान्तर = सीमा के समीपस्थ देश की सीमा से जुड़ा हुआ भूभाग।

भेद (उपाय) दो प्रकार = शंकाजनन और निर्भर्त्सना (भय उत्पन्न करना)। (३१)

भेदोपदान = भेदनीति। (११)

मध्यम वध दण्ड = २०० से ५०० पण।

मंत्र के पांच अंग = १) कर्मारम्भ का उपाय २) पुरुष और द्रव्य का वल ३) कर्म का स्थल और काल, ४) अकल्पित संकट और उसका प्रतिकार तथा ५) कार्यसिद्धि।

मंत्रभूमि = मंत्रणा करने का स्थान। (२०)

महाभोग (मित्र) = अधिक धनसंपन्न। (१००)

माणव = अपराधी प्रवृत्ति के लोग (८२)

माणव प्रकाशन = गूढ अपराध का प्रकाशन।

माणव विद्या = गूढ विद्या। (८२)

मात्स्यन्याय = मछलियों के समान बलवानों द्वारा दुर्बलों का नाश होना। (४)

मानिवर्ग (४ प्रकार) = सम्मान की इच्छा करने वाला, प्रतिपक्ष का मान होने से क्रुद्ध, अपात्र अधिकारी का उपसहायक, प्राप्त वेतन से असंतुष्ट अधिकारी वर्ग।

मास (६ प्रकार) = सौर (३०।। दिवस), **चांद्रमास** (२९।। दिवस), **नाक्षत्र** (२७ दिवस), **मल** (मल्ल) मास ३२ दिवस। **अश्ववाह** (३५ दिवस), **हस्तिवाह** (४० दिवस) (४१)

मित्र (के ६ गुण) = मित्रं षड्गुणमुच्यते) नित्य, वश्य, लघूत्थान, पितृपैतामह, अद्वैध्य, संपन्न। (१०७)

मित्र (६ प्रकार) - चित्रभोग, महाभोग, सर्वभोग, एकतोभोगी, उभयतोभोगी, सर्वतोभोग। (११४)

मित्र (चित्रभोग) = नगर, खनि, वन इत्यादि में प्राप्य विविध प्रकार के द्रव्य देकर मैत्री करने वाला। (११४)

मित्रप्रकृति = शत्रुराष्ट्र की अपर सीमा से संलग्न देश का स्वामी (९८), (वह शत्रु का शत्रु होने के कारण मित्र सा होता है)।

मित्र (भावी) (७ प्रकार) = **एकार्थाभिप्रयात, पृथगर्थाभिप्रयात, संभूययात्रिक, स्वार्थाभिप्रयात, सामुत्थायिक** (कोश दण्ड में से एक का क्रेता या विक्रेता), **द्वैधीभाविक** (एक से संधि दूसरे से वैर करने वाला। (११६)

मित्रव्यसन (मित्र के विराग से उत्पन्न संकट) (१३ कारण) = परित्याग, विक्रय, भयावमान, अमोक्ष, अवरुद्ध, भयापसार, अवमान, अत्याहार, (अधिक करवसूली), अतिभारे-नियोजन, उपेक्षा, भक्ति का अस्वीकार, मित्रोपघात- संत्रास, अरिशंकित, दूष्यभेद। (१२१)

मित्र-सर्वभोग = दण्ड कोश और भूमि, तीनों देकर मित्रता करने वाला। (११४)

मित्र सर्वतोपभोगी = शत्रु, आसार और प्रतिवेशी तीनों का बंदोबस्त करने वाला। (११४)

मित्रविक्षिप्त = मित्र के कार्यनिमित्त दूर दूर रखा हुआ सैन्य।

मिथःसमवाय = दो मनुष्यों द्वारा आपस में किया गया व्यवहार। (६९)

मिथ्याभोग = अधिकार न होते हुए भी उपभोग लेना। (६५)

मिथ्यावृत्त = दुराचरणी। (६२)

मूलहर = १) पूर्वजों से प्राप्त संपत्ति पर गुजारा करने वाला। (३०)। २) प्राप्ति से अधिक खर्च करने वाला। (३) दण्ड का अल्पमात्र प्रयोग करने वाला (४)

मोक्ष या मोक्षण = कैदी की मुक्तता। (५७)

मौलपुरुष = वंशपरंपरागत सेवक। (२१)

मौहूर्तिक = शुभ-अशुभ मुहूर्त जानने वाला। (१३)

यथार्हदण्ड = पात्रता के अनुसार दण्ड करने वाला। (४)

युक्तसमदण्ड = अपराधी के समान दण्ड। (२९)

युक्तापहत = अधिकारी द्वारा हेराफेरी किया गया (धन)। (२९)

युगपिंगनकाल = नये बैल को गाड़ी में जोतने का समय।

योग = षड्यंत्र, गुप्त कारवाई। (१४३)

योगक्षेमवध = आजीविका का साधन नष्ट करना।

यौनानुबन्ध = रिश्ते का संबंध। (३१)

रसद = विष प्रयोग करने वाला गुप्तचर (१२) (८१)

राजकिल्बिषी = राजापराध करने वाला, राजद्रोही। (५९)

राजधर्म = निष्पक्षपाती न्याय। (५८)

राजधर्म = शासकीय कोश में जमा करने योग्य द्रव्यादि। (७३)

राजनीति के ३ उद्देश्य = मित्रप्राप्ति, हिरण्यप्राप्ति और भूमिप्राप्ति। (१०९)

राजपरिग्रह = सरकारी इमारत (५७)।

राजपेया = राजा के द्वारा पीने योग्य मदिरा (जिसमें अनेक प्रकार के मसाले मिश्रित होते हैं। (४६)

राजप्रणिधि = राजा के कर्तव्य (१), (१९)

राजमंडल = इसमें विजिगीषु, मित्र, मित्र-मित्र राजा तथा प्रत्येक के अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड। कुल मिलाकर १८ प्रकृतियों का समावेश होता है। (९८)

इसी को "अष्टादशकमण्डल" कहते हैं। जो अरि, मध्यम और उदासीन का भी अपना अपना पृथक् होता है।

राजवर्ष = राज्याभिषेक का संवत्सर। (२७)

राजवाच्य = सरकारी दण्ड भोगता हुआ, (राजदण्डित)। (६९)

राजव्यसन = (राजा के कारण संकट) = अंध (शास्त्रचक्षुहीन), चलितशास्त्र (शास्त्र मर्यादा उल्लंघन करने वाला), व्याधित, नव, दुर्बलोऽभिजातः, बलवान् अनभिजातः। (६ प्रकार)

व्याधित राजा (दो प्रकार) = पापरोगी, अपापरोगी।

राजव्यसन = राजा का मरण (९६)

राजशब्दी = अपने आप को राजा कहल वाने वाला।

राजहार = राजा के निजी व्यय के निमित्त धनराशि।

राजा (तीन गुण) = आत्मसंपन्न (सत्त्वगुणसंपन्न), द्रव्यसंपन्न, प्रकृतिसंपन्न। (९४)

राजा के व्रत (या आवश्यक कर्तव्य) = उद्योग (उत्थान), यज्ञ, न्यायदान, दक्षिणादान, वृत्तिसाम्य (सर्वत्र समान व्यवहार, निष्पक्षपात), यज्ञदीक्षा का अवभृतस्नान) (१९)

निकृष्ट राजा (७ लक्षण) = दुर्बल, अराजबीज, निरुत्साह, अपक्ष (असहाय), अन्यायवृत्ति, व्यसनी, दैवप्रमाण, यत्किंचनकारी (अविवेकी)। (१०९)

राज्य (दो प्रकार) = द्वैराज्य- (पिता-पुत्र दोनों का या भाई-भाई दोनों का राज्य।

वैराज्य = परकीय राजा का राज्य (११८)

राज्यवध (नाश) दो प्रकार = सस्यवध (धान्य के अभाव से नाश और **मुष्टिवध** (आक्रमण के कारण नाश)। (११८)

राज्यकण्टक = राज्य में विघ्न उत्पन्न करने वाला। (९६)

राज्यप्रतिसन्धान = राज्य का बंदोबस्त, नियंत्रण। (५)

रात्रिदोष = रात में किया जाने वाला अपराध (५७)

राष्ट्र = इस विषय के अन्तर्गत **सीता, भाग, बलि, कर, वणिक्, नदीपाल, तर, नौका, पट्टन, विवीत वर्तनी, रज्जू और चोररज्जू** - इन 12 विषयों का अन्तर्भाव होता है। (२७)

राष्ट्र = राज्य के भूभाग के अन्तर्गत प्रांत या प्रदेश। (१३)

राष्ट्र = पिण्डकर, षड्भाग, सेनाभक्त, बलि, कर, उत्संग, पार्श्व, परिहीणिक, औपायनिक, औष्ठेयक, इन दस प्रकारों के आय (३६)

रूप और व्याजी = द्रव्यात्मक दण्ड के दो प्रकार। (७४)

रूपिक = मुद्रा तैयार करने पर देय कर।

लम्भ = (विजय से अरण्यादि विभाग स्वायत्त करना)। (तीन प्रकार) = नव, भूतपूर्व, पित्र्य (१४५)

लब्धप्रशमन = विजित भूभाग को स्वाधीन रखना। (१३)

लब्धप्रशमन = (विजित राज्य में शांति स्थापना के उपाय) = प्रजा के समान शील, भाषा, आचांर को अपनाना और प्रजा के देश, दैवत, सामाजिक उत्सव और समारोह के प्रति भक्ति पूर्ण व्यवहार करना। (१४५)

लाभ (१२ प्रकार) = आदेय (सुखप्राप्य व नित्योपभोग्य), प्रत्यादेय (कष्टप्राप्य और अनित्य), **प्रसादक** (अधार्मिक से धार्मिक का), **प्रकोपक** (मंत्री के उपदेश से धार्मिक से अधार्मिक का), **ह्रस्वकाल** (आक्रमण करते ही होने वाला), **तनुक्षय** (मनुष्य हानि द्वारा) **अल्पव्यय, महान्** (जिससे भरपु लाभ तत्काल मिलता है), वृध्युदय (वित्तदायक), कल्य (हानिविरहित), **धर्म्य, पुरोग** (अनायास) (१२५)

लाभ-विघ्न = काम, क्रोध, भय, कारुण्य, ह्री, अनार्यभाव, अभिमान, सानुक्रोशता, परलोकापेक्षा, दांभिकत्व, अत्यागित्व, दैन्य, असूया, हस्तगतावमान, दौरात्म्य, अविश्वास, भय, उपेक्षा, अतितिक्षा, तिथिनक्षत्रविश्वास। (कुल २०)

लेख (आज्ञापत्रक) = के १३ उद्देश्य = निंदा, प्रशंसा, पृच्छा, आख्यान (कथन), प्रार्थना, प्रत्याख्यान (नकार), उपालंभ, प्रतिषेध, चोदना (प्रेरणा), सांत्वन, अभ्यवपत्ति (सहायदान), भर्त्सना, अनुनय (मनौती)। (३१)

लेखक (क्लर्क) के पांच अपराध = उक्तं न लिखति, अनुक्तं लिखति, दुरुक्तम् उपलिखति, सूक्तम् उल्लिखति, अर्थोत्पत्ति विकल्पयति। (८६)

लेखदोष (पांच प्रकार) = अकान्ति, व्याघात (विरोध), पुनरुक्ति, अपशब्द और संप्लव (शब्दों की अव्यवस्था)। (३१)

लेखसंपत् = लेख (आज्ञापत्रक) के ६ गुण = अर्थक्रम संबंध (वाक्यसंगति) परिपूर्णता, माधुर्यम्, औदार्यम्, स्पष्टत्व (३१)

लोभनीयार्थ = रिश्वत, तमाखु आदि प्रलोभक द्रव्य। (१०)

वत्सस्थान (भय) = राजपुत्र को किसी सामंत के अधीन रखने पर वह सामन्त, राजा से उसके निमित्त धन वसूल करते रहता है, जैसे बछडे को सामने रखकर गाय से दूध निकाला जाता है। (१७)

वध = दो प्रकार = शुद्ध वध और चित्रवध। (८८)

वधावध = पैरों से कुचलकर हत्या।

वन (दो प्रकार) = हस्तिवन और द्रव्यवन। (१०९)

वनपरिग्रह = जंगल की वसूली। (२७)

वनविचय = जंगल से शत्रुओं को खदेड़ना।

वनविभाग = इसमें पशु, मृग, द्रव्य, हस्ति, वनपरिग्रह- इन ५ विषयों का अन्तर्भाव होता है। (२७)

वमन = लोगों का निर्वासन (१४४)

वरकार्य = शांतिकर्म। कल्याण की कामना से किया हुआ कर्म।

वर्षमान कुण्ड = पर्जन्य का मान देखने का कुण्ड। (२६)

वर्षवर = राजा के अन्तःपुर में सेवा करने वाले वृद्ध खोजे लोग, या हिज़डे। (२१)

वल्लभ = राजा के प्रिय लोग। (१४)

वल्लभापाश्रय = वशीला (२८)

वाक्पारुष्य = अशिष्ट, कठोर शब्दप्रयोग, बदनामी वाक्ताडन। (३) (४८)। (३ प्रकार) = कुत्सन (निंदा गाली), उपवाद, अभिभर्त्सन (धमकी)। दोषदर्शन। (७५)।

वाक्पारुष्य = के लिये दण्डनीय ६ विषय- देश, ग्राम, जाति, संघ, देव, चैत्य। (७५)

वाक्यकर्मानुयोग = चोरी की तलाशी। (४)

वाक्यविप्रेक्षण = दूसरों का संभाषण छिप कर सुनना।

वाटभेद = वाटिका या खेत की सीमा (कपौंड) तोड़ना (२५) (६७)

वारिपथ = (३ प्रकार) कूलपथ (किनारे वाला मार्ग) और संयानपथ (सागरी मार्ग), नदीपथ।

वासगृह = राजा का मुख्य निवास स्थान।

वास्तुकप्रदेश = बस्ती करने योग्य प्रदेश (२४)

वास्तुविवाद = के ९ विषय= गृह, ग्रामसीमा, तपोवन, विवीत, महापथ, श्मशान, देवकुल, यजनस्थान, पुण्यस्थान (कुल - ९)। (६६)

विक्षेप = अन्यत्र बदली, तबादला (ट्रान्सफर)। (९३)

विचय = तलाशी (९१)

विद्या = जिस ज्ञान से धर्म-अधर्म, अर्थ-अनर्थ के विवेक का ज्ञान होता है। (२)

विद्या = (१) आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति (कौटिल्य का मत) (२) त्रयी, वार्ता, दण्डनीति-(मानव मत), (३) वार्ता दण्डनीति-(बार्हसत्य मत) (४) दण्डनीति = (औशनस अर्थात् शुक्राचार्य का मत। (अ-२)

विनय = वृद्धसेवा से प्राप्त होने वाला उत्तम गुण।
(२) प्रात्यक्षिक सहित अध्ययन (५)

विनय = आचार्य के अनुशासन के अनुसार विद्या ग्रहण से उत्पन्न होने वाला गुण। (५)

विनय ग्रहण = उन्मार्ग से सन्मार्ग पर लाना। (२२)

विनयन = (१) योग्य मार्गदर्शन (५)
(२) छात्र को प्रशिक्षण देकर निपुण करना (१७)

विनिपात = (१) परस्पर विरुद्ध वृत्तकथन (१२)
(२) अकल्पित आने वाला संकट। (१५)

विलोप = लूट। (१२३)

विलोपभृत = लूट पर निर्वाह करने वाले।

विवध = धान्यादि संचय।

विवाद पद निबन्ध = (१) न्यायालय के विवादों का विचार। (५८) (२) विवाद में पूर्व-उत्तर पक्ष या वादी-प्रतिवादी निश्चित करना। (३)

विवादार्थ के चतुष्पाद = धर्म (शास्त्रोक्त) व्यवहार, चरित्र (रूढि परंपरा) और **राजशासन**। न्यायालय में इनका प्रामाण्य अनुक्रमानुसार अधिकतर माना जाता है। (अर्थात् राजशासन (राजाज्ञा) सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

विवाहधर्म = विवाह के शासकीय नियम। (५९)

विशिष्ट छन्दिका = राजपुत्रों के निजी खर्च की रकम।

वृत्ति = दो हजार (पण) से अधिक स्त्रीधन। (५९)

वृत्तिच्छिद्र = मूल्यवान पदार्थों के संरक्षण की व्यवस्था। (१६)

वृद्धि = इष्टफल प्राप्ति (अर्थात् अपनी उन्नति और शत्रु की हानि), और षाड्गुण्य प्रयोग इसका साधन है। (९९)

वेतनोपग्राहिक = केवल वेतन लेकर पशुओं की रखवाली करने वाला। (५०)

वेतसधर्मा = बेंत के समान नम्रवृत्ति धारण करने वाला। (१३६)

वेलाग्राम = बंदरगाह। (४९)

वैयापृत्य कर्म = सलाह देना। (८८)

वैयावृत्यकर = अंतरंग सेवक, सहकारी। (२९)

वैयावृत्यकार = अपराधियों के साथी।

व्ययशरीर = सरकारी खर्च के १९ विषय। देवपूजा, धार्मिक, दूतावास, शस्त्रागार, पदार्थ संग्रहालय, काष्ठतृण संग्रह आदि। (२७)

व्यवहार = न्यायालय के विवाद। (३)

व्यवहार = (करारनामा) के प्रकार – तिरोहित, उपनिधि, अगारकृत, रात्रिकृत, अरण्यकृत, उपधिकृत, उपह्वरकृत। ये व्यवहार सामान्यतः असिद्ध (अमान्य) (५८) माने गये हैं। विशिष्ट अपवाद में ये सिद्ध माने गये हैं।

व्यवहार (उपन्तरागारकृत किन्तु सिद्ध) = दाय, निक्षेप, उपनिधि, (गुप्तजमा), विवाह, अनिष्कासिनी (पड्दे वाली स्त्री, व्याधित (अमूढसंज्ञ)। (५८)

व्यवहार (अरण्यकृत किन्तु सिद्ध) छह = सार्थ, व्रज, आश्रम, व्याध, चार, यात्री इन्होंने अरण्यवास के समय के किये हुए (५८)

व्यवहार (असिद्ध) = कृद्ध, आर्त, मत्त, (मद्यपान), उन्मत्त (मानसिक विकार से), अवगृहीत (अगतिक) (इन पांच अवस्थाओं में किसी का भी व्यवहार सिद्ध नहीं माना जाता) (५८)।

व्यवहार = (तिरोहित किन्तु **सिद्ध**) (१) परोक्षे अधिकारग्रहण (२) अवक्तव्यकर। (५८)

व्यवहार (रात्रिकृत किन्तु **सिद्ध**) = साहसानुप्रवेश, कलह (द्वंदयुद्ध), विवाह, राजनियोग, पूर्वरात्रव्यवहार। (कुल ५) (५८)

व्यवहार = (करारमदार) (जो **असिद्ध** होते हैं) – पितृमान् पुत्र, पुत्रवान् पिता, कुलभ्रष्ट भ्राता, अविभक्तांश कनिष्ठ (भ्राता), पतिमती तथा पुत्रवती स्त्री, दास तथा परोपजीवी, अल्पवयी, अतिवृद्ध, अभिशस्त (दण्डित गुनहगार), प्रव्रजित, व्यंग, व्यसनी – इन १२ लोगों के व्यवहार असिद्ध शास्त्रबाह्य होते हैं। (५८)

व्यवहार पत्रक = में निवेशयोग्य १४ विषय = संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिवस (तिथि), करण, संधिकरण (स्थान), ऋण, देश ग्राम, जाति, गोत्र, नाम, कर्म। (५८)

व्यवहारसंस्थान = सामाजिक रीतिरिवाज। (२८)

व्यसन (५ प्रकार) = गुण प्रतिलोम्य (सद्गुणों का विपर्यास), गुणाभाव, प्रदोष, (दुर्गुणों का आधिक्य), प्रसंग (आसक्ति), पीडा। (११७)

व्यावर्तन = प्रकुपित लोगों को शांत करना। (१३)

व्रजपर्यग्र = गाय बैल आदि जानवरों का रेकार्ड रखना। (५०)

व्रजिक = एक लोकसत्ताक राज्य।

शंकारूप = गुप्तरूप में व्यवहार करने वाले तस्कर। (४)

शम = कार्य के फल का अबाधित उपभोग लेने योग्य परिस्थिति। (शांतता पूर्ण काल) (९८)

शम-व्यायाम = शांतता और बलवर्धन। (६)

शरीरावस्थापन = पुराने कामों में सुधार या दुरुस्ती, (२७)

शासन = आदेश या आदेशपत्रक। (३१) (१२७)

शासन (आज्ञापत्रक) (८ प्रकार) = **प्रज्ञापन** (निवेदन), **आज्ञा, परिदान, परिहार,** (सहूलियत) **निसृष्टि** (अनुमति, लाइसेन्स), **प्रावृत्तिक** (संकटनिवारण की सूचना), **प्रतिलेख** (प्रत्युत्तर), **सर्वत्रग** (ज़ाहिरनामा)। (३१)

शासनहर = ½ अमात्य गुणों से युक्त दूत। केवल सन्देश पहुंचाने वाला। (१६)

शिफा या शिफादण्ड = कोड़े मारने की सजा। (४८) (२०)

शेष = इसमें सिद्धिप्रकर्मयोग (समाप्त काम का हिसाब), दण्डशेष, आहरणीय (पुरानी), बलात्कृत प्रतिस्तब्ध, अवसृष्ट- इन पांचों की गणना होती है। इसकी वसूली अनिश्चित होती है (अल्पसारम् असारं) वा। (२७)

शुचि = कार्य की सिद्धि या असिद्धि होने पर बोली के अनुसार व्यवहार करने वाला। (१०३)

शुद्ध दण्ड = देहान्त शासन, प्राणदण्ड, मौत की सजा। (४)

शुद्ध वध = केवल वध का दण्ड। (८७)

शुल्क = चुंगी, राजस्व (२७), (३३)। दहेज। (५९)

शून्यमूल = ऐसा राज्य जिसकी राजधानी में का सैन्य खदेड़ा गया है।

श्रेणी = समिति (७८), स्वयंसेवक दल (११२)

षाड्गुण्य राजनीति के छह प्रकार - **सन्धि** (लेन देन के द्वारा संबंध), **विग्रह** (अपकार), **आसन** (तटस्थता), **यान** (युद्ध की सिद्धता), **संश्रय** (परार्पण), **द्वैधीभाव** (संधि और विग्रह दोनो अंगो का अवलंब। (९९) (११६)

संकलन-निर्वर्तन = अनुकूल-प्रतिकूल परीक्षण। उलटी-सीधी जांच। (२८)

संक्रोश = निंदा, बदनामी। (१७) (२८)

संख्यातार्थ कर्म = अमात्यदि पर सौंपने योग्य कार्य (८)

संग्रहण = दस गांवों का केन्द्र स्थान। (२२)

संग्रहण = पर पुरुष के साथ पाणिग्रहण (यह स्त्री का दण्ड्य अपराध है)। (६०)। विवाहित स्त्री का अपहरण। (६३)

संग्रहात्यय = व्यभिचार का अपराध। (६०)

सत्रि = सहकारी। (१-११)

सत्रि = गुप्तचर जो विविध वेशों में संचार करते हैं। (११)

सत्रिसवर्ण = समान व्यवसाय करने वाला (गुप्तचर) (८१)

सत्रिप्रयोग = गुप्त वेशधारी विविध गुप्तचरों द्वारा अपराधियों की खोज। (८२)

संदंशच्छेदन = अंगुलि छेदन। (८७)

सन्देहार्थ (के चार प्रकार) = जिस लाभ में- (१) शत्रु के मित्र प्रोत्साहित होने का संशय।
(२) शत्रुसैन्य को निमंत्रित करने में संशय,
(३) बलवान् सामन्त की भूमि पर कब्जा करने में संशय,
(४) बल से सन्धि करते हुए अभियान में संशय।

सन्निधातृ चेयकर्म = द्रव्य सम्पादन। (२)

समानयन = जांच करना। (२८)

समाहर्तृ समुदय प्रस्थापनम् = कर लादना और वसूल करना। (२)

समुदय = (१) कर वसूली, (२) राज्य की आवक (३) द्रव्योत्पत्ति का स्थान। (२७), (२८), (२९)

समुदय परिहापन = अल्पमात्रा में वसूली करना। (३०)

समुदय प्रत्यानयन = अपहृत शासकीय द्रव्य वापस मिलाना। (२९)

समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयन = अधिकारियों द्वारा अपहार किया गया सरकारी धन वसूल करना। (२)

संपत्ति का पुनर्विभाजन = (चार कारण) दुर्विभक्त, अन्योन्यापहृत, अन्तर्हित (संपत्ति गूढ रहना) अविज्ञातोत्पन्न। (६२)

राजा की संपन्नता = (चार प्रकार की) पक्ष, मंत्र, द्रव्य, बल। (११२)

संपातनिश्चार = सीमा पर आने जाने वाले की निगरानी।

संरुद्धिका = कैदी स्त्री (८६)

संशयार्थ = संशय युक्त लाभ। जिस लाभ में अर्थ या अनर्थ, प्रथम अर्थ पश्चात् अनर्थ, या प्रथम अनर्थ पश्चात् अर्थ इस प्रकार के ३ संदेह उत्पन्न होते हैं। (१२८)

संसर्गविद्य (या सत्रि) = जो बेकार किन्तु सामुद्रिक, वशीकरण, ज्योतिष इत्यदि विद्या जानते हैं ऐसे प्रवासी गुप्तचर। (१२)

संसर्गानुबन्ध = मैत्री दृढ करना। (१६)

संस्था = रूढि। (५८)

संस्थान = परंपरा, पद्धति या रूढी। (२८)

सहोदक सेतु = नित्य जलपूर्ण प्रवाह पर बांधा हुआ सेतु। (२२)

सर्वत्रग (शासनपत्रक) = प्रवासी लोगों के रक्षणार्थ तथा सहाय के निमित्त सभी मार्गों में तथा संपूर्ण देश में घोषणीय आदेश। यह उच्चतम अधिकारियों के नाम निकाला जाता है। (३१)

सर्वसमुदय पिण्ड = संपूर्ण वसूली का एकत्र संग्रह करना।

(२७)

साक्षी = (के ३ गुण) = प्रात्ययिक (विश्वसनीय), शुचि अनुमत (मान्यता प्राप्त)। (६८)

साक्षी (के लिए निषिद्ध लोग) = **स्याल** (साला), **सहाय** (भागीदार), **अन्वर्धि** (कैदी), **धनिक** (साहुकार), **धारणिक** (ऋणी), **वैरी**, **न्यंग** (विकलांग), **धृतदण्ड** पूर्व दण्डित)। इनके अतिरिक्त **राजा**, **श्रोत्रिय**, **ग्रामभृतक**, **अहंकारी**, **स्त्री**, राजपुरुष इत्यादि लोग विशिष्ट व्यवहारों में निषिद्ध होते हैं। (कुल १४)। (६८)

साक्षी-(छल करने अयोग्य)। = **मन्दावधान** (अल्प जानकारी वाला), **बाल**, **वृद्ध**, **व्याधित**, **मत्त**, **उन्मत्त**, **क्षुधाक्रान्त**, **पिपासाक्लान्त**, **अध्वक्लान्त**, **अत्याशित** (अति भोजन करने वाला), **आत्मप्रकाशित** (स्वयं आरक्षक के अधीन होने वाला), **दुर्बल**। **(१२)**

साधन = वश करना, अधीन करना। (१३)

सान्त्व = (१) सान्त्वन, सामप्रयोग = मुझमें और आप में भेद नहीं, हम एक ही हैं, मेरा जो कुछ है वह आप ही का है ऐसा कथन (२) उच्चाधिकारपद देना। (१२६)

साम (उपाय के पांच प्रकार) = **गुणसंकीर्तन** (विद्यमान तथा अविद्यमान गुणों की प्रशंसा), **संबंधकथन** (समान जाति कुल इत्यादि कथन), उपकार संदर्शन, आयतिदर्शन (भावी परिणाम की सूचना) आत्मोपनिधान, अभेदकथन। (३१)

साम = (प्रकार) तुष्टलिंगम्-अतुष्टम्। अतुष्टलिगंम्-तुष्टम् (अर्थात् बाह्यतः संतोष दिखाकर असंतुष्ट रहना) और बाह्यतः असंतोष दिखाकर तुष्ट रहना। (१२६)

सामसिद्धि = (अथवा प्रधान सिद्धि) (तीन प्रकार) स्वामी, मंत्री या दोनों के अधीन,, आयत्तायत्त, प्रधानायत्त (अर्थात् स्वाधीन, पराधीन, उभयाधीन) (१२७)

साहस = कानून भंग करना, कानून या शासकीय निर्बन्ध का अतिक्रमण। (५८)

साहस = अत्याचार (३) बलात्कार या बलात्कार से धन आदि का अपहरण (४८) (७४)

साहसदण्ड = कानून भंग करने पर शासकीय दण्ड। (५८)

सिद्ध द्रव्य = इसमें **कोषार्पित** (कोश में जमा हुआ दण्ड), **राजहार** (राजा के द्वारा स्वीकृत), **प्रविष्ट** बही खाते में लिखित), **परसंवत्सरानुवृत्त** (गत वर्ष की जमा राशि), **शासनमुक्त**, **मुखाज्ञप्त**, **आपातनीय** (आकस्मिक व्यय) - इन ७ का अन्तर्भाव होता है। (२७)

सिद्धि = मन्त्रशक्ति साध्या, प्रभुशक्तिसाध्या, उत्साहशक्तिसाध्या। (कुल तीन प्रकार)। (देखिये शक्ति)।

सुहृद्भेद = मित्र के मित्रों में भेद निर्माण करना। (१६)

सेतु = गांव की सीमा का बांध, (दो प्रकार = स्थावर और कृत्रिम)। (६६)

सेतुबन्ध (नहर दो प्रकार) = अन्तर्गत झरने के पानी से भरा हुआ

आहार्योदक = बाहर के जल से भरा हुआ। (११०)

स्तम्भ = (१) राजद्रोह का अपराध (८)। (२) गर्व। (९)

स्तम्भ = राज्य की प्रगति में विघ्न (दो प्रकार) = (१) मुख्य स्तंभ (नेतोओं के कारण), (२) अमित्राटवीस्तंभ (शत्रु एवं वन्य लोगों के कारण)। (१२०)

स्तम्भवर्ग = करबंदी का आंदोलन करने वाले लोग।

स्तेयदण्ड = चोरी के अपराध का दण्ड। (२८)

स्तेय = अप्रत्यक्ष अपहरण या दूसरे की वस्तु का उपभोग (७४) (देखिये साहस)।

स्त्रीधनकल्प = स्त्रीधन की व्यवस्था का विचार। (५९)

स्त्रीविप्रकार = पत्नीद्वारा पीडा या उपद्रव। (६०)

स्थान = (१) स्वकर्म की वृद्धि या हानि न होना। (९९)

स्थान = (१) विशिष्ट उद्देश्य से शांतता रखना (१०२) (देखिये आसन)।

स्थानिक = (१) नगर के किसी एक विभाग का अधिकारी। (२) दुर्ग के चतुर्थ भाग की देखरेख करने वाला। (५७)

स्थानीय = ८ सौ गांवो का केंद्रस्थान। (२२)

स्वदेशाभिष्यन्द वमन = अपने देश में एक प्रदेश के लोगों को अन्यत्र भेजना (नयी वस्ती बसाने के निमित्त।)

स्ववग्रह = ऐसा मनुष्य जिसके अनेक आप्तजन हैं। (९)

स्वामिसंपद् = राजा की गुणसंपदा। (९७)

हस्तपादपारंचिक = हाथ पाव तोड़ना। (७६)

हिरण्यभोग (मित्र) = जिस के पास धनसंपत्ति अधिक है। (१०७)

हिरण्यप्रतिग्रह = वसूली का स्वीकार। (१९)

हिरण्यप्रतिग्राही = रिश्वत लेने वाला।

हिरण्यभोग = जिससे सुवर्णलाभ होता है ऐसा मित्र।

हिरण्यभोग = मित्र के ४ गुण = प्रार्थितार्थता, प्राभूत्य, अल्पप्रयासता, सातत्य। (१०७)

हिंस्त्रिका = तस्करों की नौका। (४९)

हीनशक्तिपूरण = प्रबल होने का उपाय (११२)

* * *

वर्ग - ३ – कौटिलीय अर्थशास्त्र

आर्थिक व्यवहार की परिभाषा

अकर्मण्य = बेकार, निरुद्योगी। (९२)

अजस्रपण्य = नित्योपयोगी विक्रेय माल। (३७)

अधिकरण ग्रहण = गिरवी (माल) रखकर ऋण लेना। (५८)

अनर्थ संयोग = धन का अपव्यय। (७)

अनिसृष्टोपजीवी = अनुमती के बिना माल तयार करने वाला। निश्चित उद्योग न करने वाला। (३३)

अन्तरारंभशेष = मंजूर किये हुए खर्च से बची हुई राशि। (२७)

अर्घपतन = बाजारभाव घसरना, मंदी आना। ((६९)

अर्घवृद्धि = महंगाई। (२७)

अर्घान्तर = तेजी-मन्दी। (३७)

अर्घारोपण = मूल्य में बढोत्री करना। (३७)

अर्थलाभ के तीन अनुबंध परिणाम = १) अर्थानुबन्ध = जिससे नवीन अर्थलाभ होता है।

२) निरनुबन्ध = जिससे लाभ या हानि दोनों नही हैं।

३) अनर्थानुबन्ध = जिससे अनर्थ उत्पन्न होते हैं।

अनर्थ के तीन अनुबंध = अर्थानुबंध, निरनुबंध, अनर्थानुबंध। (१२७) (१२८)

अर्थकारणिक = रकम जमा करने वाला। (२८)

अर्थकृच्छ्र = आर्थिक संकट। (९२)

अर्थदूषण = (४ प्रकार) अदान, आदान, विनाश, परित्याग। (११९)

अर्थशास्त्र = मनुष्यानां वृत्तिः अर्थः। मनुष्यवती भूमिः इत्यर्थः = अर्थ शब्द का अर्थ है मनुष्यों के जीवित का उपाय, यह उपाय याने जिस पर मनुष्य रहते हैं ऐसी भूमि। उस भूमि के लाभ और पालन का उपाय प्रतिपादन करने वाला शास्त्र। (१५०)

अर्थसमुदय = द्रव्यसंचय। (३०)

अर्धसीतिक = आधे हिस्से की बोली पर खेती करने वाला (६८)

अवक्रय = किराया। (६५)

अवक्रयी = किरायेदार। (५७)

अवक्रीतक = बेचे गये माल की रकम। (६९)

अवस्राव (अवस्रावयति) = परदेश में धन जमा रखना। (३०)

अस्वामिविक्रय = दूसरे की वस्तु का लेनादेना (३)

आकरकर्मान्त = खनि से संबंधित उद्योग (३३)

आकरकर्मान्त प्रवर्तन = खदान का उत्पन्न। (२)

आकरिक = खदान के कामगार। (२३)

अतिवाहिक = चुंगी। माल का आयातनिर्यात कर। (५६)

आत्माधाता = अपने आप का आधान (गिरवी) रखने वाला। (७०)

आढक = वजन का एक प्रकार (७९)

आदान = कर की वसूली। (२७)

आधान = गिरवी रखंना। (२२)

आपमित्यक = उधार धान्य। (३६)

आय = तीन प्रकार - वर्तमान, पर्युषित (गत बचत), अन्यजात (आकस्मिक)। (२७)

आय = (गांवो से) हिरण्य, विष्टि, शुल्क, (चुंगी और कर), दण्ड। कुल ४ प्रकार (६)

आयमुख = राज्य के उत्पन्न के प्रकार। इसमें मूल (विक्री का मूल्य), भाग (लगान), व्याज, परिघ (किराया, भाडेपट्टी), क्लृप्त (ठेका), रुपिक (नाणक या सिक्के बनाने पर कर), अत्यय (दण्ड) – इन सात प्रकारों की गणना होती है। (२७)

आयति = वेतन (३०)। भावी उत्पन्न। (४८)

आयशरीर = आवक के विषय। इसमें दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु, वन, व्रज और वणिक्पथ - इन सात विभागों का अन्तर्भाव होता है। इन सात विभागों से राज्य की आमदनी होती है। (२७)

आस्थिक = जुए में हारी गयी रकम। (७३)

उदय = लाभ, नफा। (३०) (६८)

उन्मान-अवामान = आकार मूल की कीमत (२८)

उपकण्ठी = पोले दंडे वाला तराजू।

ऋणवृद्धि से मुक्त = दीर्घसत्रस्थ, व्याधित, गुरुकुलोपरुद्ध, बाल, असार, (अकिंचन), (कुल ५)। (६८)

एक मुख व्यवहार = एक मनुष्य को ठेका देना। (३७) (४६)

उत्कर = कमिशन। (३६)

उद्धारक = रकम लेने वाला। (२८)

उन्मान-अवामान = मूल कीमत। (२८)

उपनिधि = परोक्ष या गुप्त जमा, न्यास। (५८) (६९)

उपस्थान = तुलामानान्तर, हस्तपूरणक, उत्कर (कमिशन) व्याजी, पर्युषित (पुरानी बचत) और प्रार्जित (बयाना) (इन ६ प्रकारों की आय) (३६)

औपनिधिक = गिरवी और न्यास (धरोहर) का व्यवहार। (३)

कदर्य = स्वतः को तथा भृत्यों को पीड़ा देकर धनसंचय करने वाला कंजूस। (३०)

कर = धन के रूप में शासनद्वारा वसूली।

कर्मच्छेद = काम में हुआ नुकसान। (२८)

कर्मदिवस = काम की कालमर्यादा। (३०)

कर्मच्छेदवहन = काम के नुकसान की भरपाई करना। (२८)

कर्मनिषद्या = ग्रामोद्योग का स्थान, कारखाना। (२५)

कर्मनिर्दिष्ट = विशिष्ट काम में नियुक्त नौकर वर्ग। (४६)

कर्मफल = लाभांश। (१८)

कर्मफलविनिपात = उत्पादन के लाभ में हानि। (४५)

कर्मसंबंध = मजदूरी के करार, सेवा के संकेत या प्रस्ताव। (७०)

कर्मान्त = कारखाना। धातु का कारखाना। (३३)

कर्मान्तिक = कारखाना। (२५)

कर्ष = वजन का एक प्रकार। (७९)

काकणिक = दो रत्ती। दो रत्ती का वजन। (३५)

कारणिक = हिसाब की जांच करने वाला। (२८)

कालिक = उधारी से मिलने वाला माल। (१३९)

किष्कु = १।। या २ हाथ लंबा अंतर। (६५)

कुप्य = जंगल में प्राप्य कच्चा माल। (४, ३२, ४६, ५६, १३६)

कुप्य पुण्य = जंगल में उत्पन्न होने वाली नैसर्गिक संपत्ति (१६)

कुसीद = ब्याज सहित मुद्दल (मूलराशि), सूदखोरी। (६८)

कुशिक्या = असमान तराजू।

कूटमुद्रा = खोटा सिक्का। (४२)

कूटरूप = खोटा सिक्का (७८)

कूटरूपकारक = खोटे सिक्के बनाने वाला (८१)

कूटसुवर्णकारी = झूठे सोने के पैसे बनाने वाला। (८१)

कोश-अवस्तार = वसूली का दिन बदलना। खोटा जमाखर्च। (२९)

कोश क्षय के ८ **कारण** = प्रतिबंध प्रयोग (ब्याज के हेतु द्रव्य देना), व्यवहार (लेवान-देवान), अवस्तार (खोटे हिसाब), परिहापण (वसूली न करना) उपभोग परिवर्तन (हेराफेरी, अपहार)

कोशगृह = ख़ज़ाना (बैंक)। (२६)

कोशनिर्हार = कोश के धन से खरीदा धान्य। (३६)

कोशपरिवर्तन = सरकारी माल के स्थान में दूसरा माल जमा करना। (२९)

कोशपरिहापण = आय कम करना और व्यय बढ़ाना। (२९)

कोशप्रतिबंध (तीन प्रकार) = असाधन (वसूली न करना), अनवतारण (दी हुई वसूली न लेना), अप्रवेशन (मिली हुई वसूली जमा न करना) (२९)

कोशप्रयोग = कोश का द्रव्य ब्याज से देना। (२९)

कोशसंग = कर न देने का अपराध। (८)

कोशव्यवहार = शासकीय भांडार के माल की विक्री करना। (२९)

कोशापहार = तीन प्रकार- आय जमा न करना, अवैध व्यय वापस न लौटाना, प्राप्त हुई बाकी रकम अमान्य करना। (८९)

कोशाभिसंहरण = कोशसंग्रह (५), कोश की व्यवस्था। (९२)

कोशावच्छेद = कोश का नाश। (६२)

कोशोपभाग = राजस्व का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उपभोग। (२९)

क्रयसंघर्ष = नीलाम। (२७)

क्रयिम = धान्य मूल्य, कोशनिर्हार (कोश के व्यय से खरीदा धान्य)।

प्रयोग प्रत्यादान = अल्प धान्य लेकर अधिक धान्य लौटाना। (३६)

क्रियाभारिक = जहां भारी श्रम करने पडते है ऐसे काम (जैसे खदान)। (३३)

क्षेत्रिक = किसान। (६७)

खनि विभाग के अन्तर्गत = सुवर्ण, वज्र (हीरा), मणि, मुक्ता, प्रवाल, शंख, लोह, लवण, भूमि, प्रस्तर, रस (पारद) और धातु इन १३ का अन्तर्भाव होता है। (२७)

खनि (खदान) के १२ प्रकार की आवक = मूल्य, विभाग, व्याजी (कसर), परिघ (मुद्रा परीक्षक का शुल्क), अप्तय, शुल्क, वैधरणदण्ड, रूप (मुद्रा), रूपिक धातु और पण्य।

गण्यपण्य = संख्या की गिनती में बेचने योग्य माल। (३७)

गुल्यतर-देय = मार्ग पर देने योग्य चुंगी। (३७)

गृहपतिक = खेती में नुकसान आने के कारण बेकार बना हुआ किसान। (१-११)

गो = गाय व्यक्ति की आर्थिक परिस्थिति का प्रमाण माना गया था। "शतगु" (सौ गाय का धनी) होने पर आहिताग्नि न होना और "सहस्रगु"- होने पर "यज्वा" यज्ञकर्ता न होना निंद्य ब्राह्मण का लक्षण माना जाता था। (७१)

गोवाणिजक = गाय बैलों के व्यापारी। (१३९)

गौरव = वस्तु का वजन। (१-२१)

ग्रामिक = गांव का कामगार। (६७)

ग्रासाच्छादन = अन्नवस्त्र। (६०)

जात्य = असली माल।

अजात्य = खोटा, नकली माल। (७९)

तर = (१) जहाज, (२) जहाज़ से आने वाला माल। (३) इस प्रकार के माल का केन्द्र। (२७), (४९)

तादात्विक = आय के समप्रमाण में व्यय करने वाला (३०)

तुन्नवाय = दर्जी। (७८)

तुला का प्रकार = समवृत्ता और परिमाणी। (४१)

तुलामान पौतव = वजन तथा नाम की परीक्षा। (२)

दक्षिणा = पुरोहित वर्ग के ब्राह्मणों का धर्मविधिनिमित्त प्रदेय द्रव्य। यह "वेतन" के समान निर्धारित नहीं होता किन्तु आवश्यक होता है। (७१)

दण्ड-प्रतिकारिणी = दण्ड लौटाने निमित्त मजदूरी करने वाली स्त्री। (४४)

दाय = पूर्वक्रमागत संपत्ति। (४८) (६२)

दाय के ६ अनधिकारी = पतित, पतितजात, जड, उन्मत्त, अन्ध, कुष्ठी। (६२)

दायधर्म = (प्रकार) देश, जाति, संघ (व्यापारी संस्था),

और ग्राम - इन चारों की परंपरा दायविभाग के प्रमाण होती हैं। (६४)

दुष्टतुला = (खोटे तराजू के ७ प्रकार) = **सन्नामिनी** (झटका देने योग्य), **उत्कीर्णिका** = नीचे सीसा भरी हुई, **भिन्नमस्तका** = (टूटे कांटेवाली), **उपकण्ठी** = (पोले डंडी वाली), **कुशिक्या** = (विषम पात्र वाली), **सकटुकक्ष्या** = (डोरी में गांठ वाली), **परिवेल्ययस्कान्ता** (लोहचुंबक युक्त)। (३५)

द्रव्य = जंगम संपत्ति (६२)

द्रव्यवन = उत्पादक वन या उत्पन्न देने वाला वन। (३८)

द्रव्यवन कर्मान्त = जंगल के कच्चे माल से पक्का माल तयार करने का कारखाना। (२३)

द्रोण = ४ आढक का नाप। (३६)

द्वारादेय = सीमा के अंदर माल लाने पर लगाया गया कर। (४३)

धनिक = साहुकार। (६८)

धनिक-धारणिक = धनको और ऋणको। (६८)

धरक = वजन करने वाला, कांटावाला।

धरण = वजन। धरण प्रकार = माष, गुंजा, सुवर्णमाष, सुवर्णकर्ष, पल, रूप्यमाप, धरण = १६ मासे का वजन)। (४१)

धान्यवृद्धि = धान्य के रूप में व्याज। (६८)

धारणिक = ऋण लेने वाला। (६८)

ध्रुवनिधि = गंगाजली, स्थायी निधि। (२६)

निक्षेप = भूमि में गाड़कर रखा हुआ धन। (७३)

निक्षेपभाजन = तिजोरी। (२८)

निक्षेपोपनिधि = गिरवी माल। (४६)

निचय = कोशस्थान, संग्रहस्थान। (२६)

नित्यव्यय = दैनंदिन खर्च। (२७)

नित्योत्पादिक (व्यय) = नित्य व्यय के साथ किसी कारण होने वाला आनुषंगिक व्यय। (२७)

निबन्धपुस्तक = बही खाता, हिसाब के कागजात। (२८)

निविष्टपण्य = भारी कीमत का माल। (४२)

नीवी = आवश्यक खर्चा होने के पश्चात् बची हुईं रकम। (२७) दो प्रकार १) प्राप्ता (रोख बचत), २) अनुवृत्ता। हिसाब होने पर रही बचत)।

नीविभक्षण = बचत के पैसे खाना। (२८)

पण = एक प्रकार की मुद्रा (सिक्के का एक प्रकार)

पणन व्यवहार = क्रयविक्रय, जो पण (मुद्रा) के माध्यम से होता था। (३३)

पणयात्रा = मुद्रा व्यवहार के नियम। (३३)

पण्य = बिक्री का माल। (२५)

पण्यगृह = किराने का गोदाम। (२६)

पण्यनिचय = बिकाऊ माल का गोदाम (२५)

पण्यपत्तन = व्यापार के केन्द्र का नगर, बाजारपेठ। (२२)

पण्यपत्तनचरित्र = व्यापारी बंदरगाह की पद्धति। (३७) (४९)

पण्यपुट = अन्यान्य प्रकार के बाजार मालों की मंडियां।) (२४)

पण्यसंपात = बिक्री का माल एकत्रित करना।

पण्यसंस्था = व्यापार का केंद्र (७९)

पण्यागार = विक्रेय माल का संग्रहस्थान, गोदाम। वखार (मराठी में)। (५६)

पत्रोर्णा = नागवृक्ष, बकुल और वटवृक्षों के पत्तों पर पोसे गए कीडों द्वारा निर्मित रेशम।

पत्रोर्णा = (३ प्रकार का रेशम) मागधिका, पौण्ड्रीका, सौवर्यकुड्यका। (३२)

पथिभक्त = प्रवासभोजन का व्यय। (५८)

परदेशोपवाहन = परकीय प्रदेश से लोगों का लाना। (२२)

परविषय = शत्रुराज्य। (१४)

परिकर्मिक = सेवा - शुश्रूषा करने में कुशल। (२३)

परिघ = सब्बल। (१४०)

परित्याज्य सेवक = भीरु, निरुद्योगी, और अमर्षशील (असहिष्णु या निष्ठुर)। तीन दोषों से युक्त)। (१०४)

परिदान लेख = (शासन पत्रक का प्रकार) गुणीजनों को पारितोषिक या संकटनिमित्त सहाय का आदेश (३१)

परिदेश = लंबाई का एक नाप (२ रज्जू = १ परिवेश)।

परिपणित सन्धि = देश विभाजन की बोली पर शत्रु से सन्धि। (७)

परिभाण्ड और वास्तुक = अशुद्ध और शुद्ध सोना। (३४)

परिभाण्ड = हीन सुवर्ण, हलका सोना (३४)

परिमाणी = वजन का एक प्रकार (७९)

परिरय = १४ अंगुलियों का नाप।

परिवर्तक = एक धान्य देकर दूसरा धान्य लेने वाला। (३६)

परिवाय = आर्थिक परिस्थिति। (६०)

परिवाह = (या परीवाह) पानी बाहर जाने का मार्ग। (२४)

परिस्तोम = कंबल का एक प्रकार।

परिहापण = उत्पन्न घटाना और व्यय बढाना।

परिहारोपहत = सहूलियत के कारण क्षीण।

परिहार = किसान को फसल न आने पर कर में दी गई सहूलियत। (२२)

परिहार लेख = (शासन पत्रक का एक प्रकार) = विशिष्ट जाति, नगर, ग्राम और प्रदेश को सहूलियत देने का आदेश (३१)

परिहार लाभ = कर माफी। (२८)

परोक्त = न्यायालय की जबानी में एक अपराध। (नौ प्रकार के अपराध) = संक्रमण, नभिसंधान, अभिग्रहण, अनिर्देश, निर्देश, उपस्थापन, अर्थवचन, अपव्यय, अनवधारण। (५८)

पर्युषित आय = परम सांवत्सरिक (गतवार्षिक) परप्रचार, जो निवृत्त अधिकारी के द्वारा समर्पित की जाती है। (२७)

पशु के ४ उपकार = लोम (ऊन), दोह (दुग्ध), वाहन, प्रजनन। (९०)

पश्चाद्वाय = वर्षा के अन्त में बोने योग्य धान्य। (कुष्कुम्भ - मसूर, कुलुत्थ, याव, गोधूम (गेहूं) कलाय (द्विदल धान्य), अतसी (अलसी), सर्षप (राई)। (४५)

पष्ठौही = (तरुण) गर्भधारण योग्य गाय। (५०)

प्रक्रय = राजस्व या सरकारी हिस्सा। (३३)

प्रक्रय = रोख रकम देकर खरीदना। (६६)

प्रक्षेप =(१) जमा रखा हुआ माल (६८) (२) स्थावर गिरवी। (६९)

प्रतिक्रुष्ट = नीलाम की घोषणा करने वाला। (६९)

प्रतिक्रोश = नीलाम की घोषणा। (६६)

प्रतिदेय वस्तु = वापस लौटाने योग्य वस्तु (चार प्रकार) = याचितक, अवक्रीतक (किराये की), आहितक (गिऱ्वी), निक्षेपक (न्यास)। (७७)

प्रतिपण्यार्थ =अन्य वस्तु के रूप में मूल्य। (३७)

प्रतिभू =जामानतदार। (२८)

प्रतिमान-मान =वजन और माप। (२८, ४१)

प्रतिवर्णक =मुआवज़ा। (२८)

प्रदेशभोग = जमीनदारी, मालगुजारी इ.। (२८)

प्रयाम = महंगाई, धान्य या अनाज के भाव में तेज़ीमंदी। (२८)

प्रयोगापहृत = नई वस्तु बनाने अर्थात् रूपांतरित करने के निमित्त दिया हुआ (चांदी सोना इ.) माल। (४६)

प्रवहणिक निकाय = प्रवासी व्यापारी संघ (२५)

प्रशोध्य = कठिनाई से वसूल होने वाली रकम।

प्रसार वीवध = धान्य आदि की निर्यात और आयात। (१४४)

प्रस्थ = एक पाव का नाप (३६)

प्रामित्यक = मांग कर लाया हुआ धान्य। (जिसे वापस नहीं लौटायां जाता (३६)

पादिक =चतुर्थांश। (५०)

पानागार = मद्यपान का स्थान, गुत्ता अड्डा। (४६)

पानानुबन्ध = मद्यपान का चस्का।

पारग्रामिक = शत्रु के ग्राम पर कब्ज़ा करने का उपाय। (१२४)

पारग्रामिक योग = शत्रुओं के गावों में धूम मचाना (१८)

पारंचिक =तोड़ना, शिथिल करना।

पारतल्पिक = व्यभिचारी. (८२)

पारदारिक = व्यभिचार चेष्टा। (६७)

पारविषयिक = परदेश के लोग। (४९)

पारिकर्मिक = हाथी की सेवा में कुशल सेवक।

पारीक्षिक = मुद्रा आदि की परीक्षा का शुल्क (३३)

पारिपतन्तक = व्यूह का एक प्रकार।

पारिवेल्ली = टेढ़ी डंडी का तराजू।

पारिहीणिक = राजमार्गस्थ वृक्षों की आय। (३६)

पारिहीणिक = (आय) नुकसान भरपाई। (२७)

पारुष्य = मारपीट। (६५)

पार्श्व (आय) = धनस्वामी की विस्मृति के कारण प्राप्त। (२७)

पालि = बगीचे की सागपत्ती, (शाकसब्ज़ी)। (६७)

पाषंडावास = पाखंडी लोगों का निवासस्थान या विधर्मियों के निवास का भाग। (५७)

पांसुधावक = झाड़ूपोछा करने वाला सेवक (34)

पिंक अपसारण = जड़ाव के अलंकार से सोना निकालकर दूसरी धातु डालना। (३५)

पिण्ड-कर = गांव की वसूली या लगान। (३६)

पिंडारक = महिषपाल।

पिण्याक = जानवरों के खाने की तिल की ढेप। (३६) (५०)

पीठिका = राजासन। (४८)

पीडन = प्रजा के उपद्रव के कारण = दैवपीडन, क्षुद्रक क्षय, मुख्य क्षय, स्वचक्र (अन्तर्गत कलह), परचक्र, प्रकृति विवाद, राजविवाद, देशविहार (क्रीडा), राजविहार, राजपुत्र, राजकन्या, श्रेणी, मुख्य, सन्निधाता, समाहर्ता, अन्तपाल, वैदेहक, (१२०), प्रतिरोधक (डाकू), आटविक। कुल (९१) (१२०)

पुद्गल = अलंकार बनाने योग्य सोना।

पुनरुक्ति (लेखदोष) = आवश्यकता न होने पर भी उक्त विषय का पुनः कथन। (३१)

पुराणचोर = शातीर चोर, या पक्का चोर (५६)

पुरुषभृति पंथिभक्त = दैनिक भोजनव्यय तथा प्रवास भोजन का व्यय। (५८) (डेली अलाऊन्स, ट्रॅव्हलिंग अलाऊन्स)।

पुरुषभोग (मित्र) = जिसके पास शूर मनुष्यों का संग्रह अधिंक है ऐसा मित्र। (१०७)

पुरुषविप्रकार = पतिद्वारा स्त्री को उपद्रव या पीड़ा। (६०)

पुरुषवेतन = श्रमिक की दैनिक मजदूरी। (३०)

पुरुषसन्धि = सैनिक देने की बोली पर संधि। (१३५)

पुरुषोपस्थापन = सामूहिक मजदूरों में कोई अस्वस्थ होने पर उसने अपने लिए दूसरे को उपस्थापित करना। (७१)

पुलक = बीच में काला हुआ रत्न।

पुलाक = पुलाव, पक्व खाद्य। (५१)

पुष्पका-सीस = आयर्न सल्फेट।

पुष्पाछिद्र = मणि का एक दोष, बीच बीच में दाग का होना। (३२)

पुस्तकस्थकरण = दर्ज़ करना, नमूद करना, लेखाजोखा रखना। (२८)

पुस्तभाण्ड = पुस्तकों की पेटी। (२८)

पूग = संघ, समुदाय। (१-१३)

पूजावेतन = सत्कार धन, धनस्वरूप उपहार (९२)

न्यायालय में पूज्य व्यक्ति के ५ गुण = विद्या, बुद्धि, पौरुष, अभिजन, कर्मातिशय। (७७)

पूतिकिट्ट = धातु को शुद्ध करने में निकाला गया माल। (३५)

पूर्णवधदण्ड (तीन प्रकार) = ४८ से ९६ पण। **मध्यमवधदण्ड** = २०० से ५०० पण। **उत्तमवध** = ५०० से १००० पण। **वध** – दो प्रकार देखिये)

पूर्ववाप = वर्षाऋतु के आरंभ में बोने योग्य धान्य (शालि, व्रीहि, कोद्रव, तिल, प्रियंगु, दारक, वरक। (४५)
पूर्वसाहस दण्ड = ४८ से ९६ तक पण का दण्ड।
पूर्वसाहस दण्ड = २५० पण का दण्ड।
पृषतकारु = जड़ाव का काम करने वाले कारीगर। (३४)
पृषित = सोने के मणि। (३४)
पौतन = वजन और नाप (२७)
पौरजानपद = समस्त प्रजानन। (१३)
फल्गुकुप्य = जंगल का हलका सस्ता माल। (२८)
फल्गुभाण्ड = हलका माल। (४२)
बहुमुख = अनेक लोगों को ठेका देना।
बाह्यम् आभ्यन्तरम् = व्यय-आय। (२६)
भक्त भाटक = माल के रक्षकों का वेतन। (३७)
भक्त वेतन = १) चांवल के रूप में वेतन या चांवल और वेतन। २) भत्ता। ३) जीविका के लिये पर्याप्त वेतन।
भक्त लवण = भोजनार्थ आवश्यक नमक। (३३)
भाग = खेती का कर। (२७)
भागधेय = राजा का हिस्सा। राजा को देय अंश, (जैसे धान्य का षष्ठांश, व्यापार का दशांश और सुवर्ण)। (१३)
भाग प्रक्रम = हिस्से की राशि और ठेका (३३)
भाजनी = १) एक प्रकार का तराजू। २) नाप, या वजन
भांड = बाजारू माल। (२८)
भांडवाहिनी = कोश संरक्षण दल। (२६)
भाण्डागार = कोश स्थान। (२५)
भारिक = भार उठाने वाला, हमाल। (३३)
भूमिपरिग्रह = स्थावर संपत्ति। (५६)
भृतक = १) मजदूर, कामगार (२ प्रकार)- **संघभृत** = (सामूहिक) और **संभूयसमुत्थाता** (सहकारी) (२) सरकारी नौकर (२९)।
भृत्यभरणीय = नौकर वर्ग के वेतन की व्यवस्था। (५)
भोग = वस्तु के दर भाव। (४८)
भ्रेष = विक्रेय माल में खराबी होना। (६९)
महाभाण्ड = भारी (वजनदार) माल। (४९)
मान (माप) ११ प्रकार = माष, द्रोण, व्यावहारिक द्रोण, भाजनी द्रोण, अन्तःपुर भाजनी द्रोण, आढक, प्रस्थ, कुडुव, खारी, कुंभ, वहवारक, घटिका। (४१)
मानोन्मान = नापने में कम ज्यादा, कमी-अधिकता।
मायक = नाप डालने वाला।
मासवृद्धि = मासिक ब्याज का प्रमाण (६८)
मुख = व्यय का विषय। (२८)
मुखोत्पत्ति = निवृत्ति (वसूली) और मुआवज़ा। (२८)
ताम्र मुद्राएँ = माष, अर्धमाष, काकणी, अर्धकाकणी (४ प्रकार) ।, (इस में १/४ हलकी धातु मिलाई जाती थी। (३३)
रूप्य-मुद्राएँ = पण, अर्धपण, पावपण, अष्टांश पण, (लोहा, सीसा, **कथित जैसे धातु के साथ** १/११ चांदी मिलाकर ये मुद्राएं बनाई जाती थीं)। (३३)
याचितक = १) बिक्री के लिए मांगा हुआ दूसरे का माल। (६९), २) उधारी का सामान। (७०)
यानभाटक = गाड़ीभाड़ा। (३७)
योगस्थान = माल के उत्पादन का स्थान। (२८)
राजपण्य = राजा के अधिकार का विक्रेय माल। (३३), (३७)
रिक्थहर = १) संपत्ति के विभाग ग्रहण करने का अधिकारी (पुत्र आदि) २) भागीदार। (६८), (७३)
रूपदर्शक = 1) सिक्कों या मुद्राओं की परीक्षा करने वाला अधिकारी (२६) (३३) २) सराफ (३०)
रूपलक्षण = सिक्कों की शुद्धता- अशुद्धता (२८)
लाभव्यय = जिस व्यय के कारण कुछ समय के बाद लाभ होता है। (२७).
लाभोत्पादिक व्यय = लाभव्यय के साथ होने वाला आनुषंगिक व्यय। (२७)
लेख्यनीविक = जमा करने की लिखित रकम। (२८)
वणिक्पथ = वारिपथ, स्थलपथ, चक्रपथ (गाड़ी का मार्ग) पादपथ, खरोष्ट्र पथ, अंसपथ (डोली से जाने का मार्ग)। (कुल ६) (२७, ११०)
वर्तमानाय = चालू जमा रकम।
वानकर्मान्त = बुनकरी का कारखाना (कपड़े की मिल या पुतलीधर) (४४)
वारक = ४।। कुडव।
वारिपथ भोग = जलमार्ग से होने वाली यातायात।
वार्ता = गोरक्ष, वाणिज्य और कृषिकर्म (अर्थात् व्यापार और कृषिकर्म)। (१३५) (२)
वार्ताकर्म-प्रदिष्टाभूमि = जानवरों के बाजार का स्थान, मवेशी बाज़ार। (११)
विक्षेप = (आय) उद्योग में लगाई राशि के लाभांश की किस्त। (२५)
विशिखा = सराफ कट्टा। (२, ३५)
विष्टि = कारीगर (४) मजदूर वर्ग। (३३)।
विष्टि = बिगार काम का दर। (२८)
विष्टिबन्धक = मजदूर लाने वाला अधिकारी। (९३)
वृद्धि = नफा, फायदा, लाभ (२०) ब्याज (६८)
वृद्धिक्षय = नफा नुकसान, लाभ-अलाभ। (२८)
वृद्धिमूल्य = ब्याज की रकम (६९)
वृद्ध्यारोपण = ब्याज पर ब्याज लगाना। (चक्रवाढ व्याज – मराठी में। (६८)
वेणिका = तराफ़ा। (१३०)
वेतन = मजदूरी, रोजी, तनख्वाह। (२८)
वेतननाश = वेतन में कटौती। (३५)
वैदेहक = वणिक् और केवट। (१-४)

वैदेहक = व्यापारी वर्ग। (३७) १) दिवालिया ब्यापारी (११) २) व्यापारी वर्ग। (३७) (४२)

वैधरण = २) माल न बिकने या उठने कारण नुकसान का दण्ड। (३३)

वैधरण = नुकसान भरपाई की रकम। (३७) (४६)

वैय्यापृत्य विक्रय = मूल्य वापिस लौटाने की बोली पर बिक्री करना। (६९)

वैश्यधर्म = अध्ययन, यजन, दान, कृषि, पशुपाल्य (पशुपालन), वाणिज्य। (व्यापार)। (३)

व्यय (चार प्रकार) = नित्य, नित्योत्पादिक (नित्यानुषंगी) लाभ, लाभोत्पादिक।

व्ययप्रत्यय = निर्धारित व्यय से अल्प व्यय होने पर बची हुई रकम। (२७) (३६)

व्ययशेष = जमा रकम। (२६)

व्यय-समानयन = खर्चे का तालमेल रखना (२८)

व्याजी = १) वजन और नाप के भेद से वृद्धि (२८) २) कर, राजस्व (३३) ३) लभ्यांश, नफा (४६) ४), माल की कीमत पर कसर। (३७)

व्याधित (आय) = दिवाला निकालने पर शेष बचत। (२७)

व्यावहारिक = व्यापारी वर्ग। (९२)

व्यावहारिकाध्यक्ष = व्यापार प्रमुख।

व्युपरत = नौकरी के लिये अपात्र, या सेवानिवृत्त। (४४)

शुल्कवर्तनी = माल की मूल कीमत। (३७)

शुल्कस्थान = जकात नाका। (७३)

श्रेणीनिकाय = स्थानिक व्यापारी संघ। (२५)

सकटुकक्षा = ऐसा तराजू जिसकी रस्सी में गांठ हो।

संघभृत = सामूहिक मजदूर वर्ग। (७१)

समय = व्यवहार, संकेत, करार। (३१)

समयस्य अनपाकर्म = करार और हिस्सेदारी का पालन न करना। (३)

समयाचार = संघिपत्रक का अनुपालन। (५)

समयाचारिक = करार के अनुसार सेवा करने वाला सेवक। (११३)

समवायानुबन्ध = विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित संगठन या समिति। (२२)

समुदयस्थान (स्थानीय) = व्यापार केन्द्र का नगर। (२४)

संभाषितवेतन = जिसके वेतन के संबंध में बातचीत द्वारा निर्णय हुआ है। (७०)

संभूय समुत्थान = सहकारी संस्था। (३) (७१)

सभ्योपकारी = भागीदारी, साझेदारी। (३७)

संयानीय = बाजार (२५) (जहां माल उतारा जाता है)। (३५)

संस्थान = चालू व्यवहार। (२७)

सस्य पण्य = बिकाऊ धान्य। (१६)

सहग्राही = सहायक सहकारी। (२८)

स्थल (वणिक्) पथ (४ गुण) = बहुखनि, सारपण्य, प्रसिद्धगति, अल्पव्यायाम।

सामुत्थायिक = सहकारी संस्था। (२२)

सार = बहुमूल्य वस्तु। (२६)

सारकुप्य = जंगल का भारी या कीमती माल। (२८)

सारच्छिद्र = मूल्यवान पदार्थों के संग्रह का स्थान। (१६)

सारभाण्ड = भारी माल। (४२)

सार्थ = व्यापारी मंडल, व्यापारी समूह। (४२)

सार्थवाह = दूसरे प्रदेश से माल लाने वाले या दूसरे प्रदेश में बेचने वाले। (३७)

सार्थातिवाह्य = माल वाले व्यापारी समुदाय को संकटयुक्त मार्ग से सुरक्षित पहुचाना। (५५) (विवीताध्यक्ष का कर्तव्य)।

सिंहनिका = दारु, तेल, पिष्ट, गुड इत्यादि तैयार करवाने की मजदूरी। (३६)

सीता = धान्य उत्पादक क्षेत्रभूमि। (२०) (३६)

सुवर्ण = सोने का सिक्का। (७८)

सुवर्ण हरण के चार उपाय = **परिकुट्ट** (ठोक पीट), **अवच्छेदन** (तोड़ना) **उल्लेखन** = (खरोंचना), **परिमर्दन** = घिसना। (३५)

सोपानक = सोने की तार वाली एकावली (एक लड़ी की मोतीमाला)।

मणिसोपानक = बीच में मणि वाला सोपानक। (३२)

सौवर्णिक = १) सोने के व्यापारी (२७)

सोवर्णिक के ५ अपराध = सोने में वर्णहीनता, प्रमाणहीनता, तुलोपधा (खोटा तराजू), प्रतिमानोपधा (खोटा वजन), भांडोपधा (धातु में मिलावट) (३५)

स्ववित्तकारु = निजी पूंजी पर धंदा करने वाले (७८)

स्ववीर्योपजीवी = शरीरश्रम पर जीवन बिताने वाले। (४५)

स्वाजीव = स्वावलंबी जीविका वाला।

हरणोपाय = (सोना चांदी चुराने के उपाय) = तुलाविषम, अपसारण, विस्रायण, पेटक, पिंगक। (३५)

हरितपण्य = घास पत्ते आदि विक्रेय वस्तु। (२९)

हिरण्य = मुद्रा (२६) सुवर्ण- नाणक, द्रव्य, धन। (९३)

हीनप्रतिवर्णक = हलकी कीमतवाला नमूना। (४२)

* * *

वर्ग - ४ – कौटिलीय अर्थशास्त्र

युद्धविषयक की परिभाषा

अधिकरणी = हथियार, औजार।

अनवसित सन्धि = जिस सन्धि में समाप्ति की कोई कालमर्यादा नहीं होती। (१०९)

अनिभृतसन्धि = अनिश्चित सन्धि, जिसमें बलवान् राजा को दी गई भूमि वापिस लेने की 'संभावना' होती है। (१०९)

अनीकस्थ = हाथी की परीक्षा करने वाला। (२३)

अनीकस्थान = सैन्य-शिविर (छावनी)।

अनुपात = शत्रु का पीछा करना।

अन्तर्वंशिक सैन्य = अन्तःपुर का सैन्य। (१२९)

अपरिपणित सन्धि = धन देकर सान्धि। (७)

अपसार भूमि = युद्ध संकट में आश्रय का स्थान। (१-१६)

अभियान में दोष = क्षय (मनुष्यनाश), व्यय (द्रव्यनाश), प्रवास, प्रत्यवाय (पाप), परापकार, शरीरबाधा। (कुल ६) (१०६)

अभियास्यत् कर्म = शत्रु पर आक्रमण। (१२२)

अभियोक्ता = आक्रमण का प्रकार = धर्मविजयी, लोभविजयी, असुरविजयी। (कुल ३) (१३६)

अभिहितसन्धि = अपरिवर्तनीय सन्धि। (१०९)

अभेद्य सैन्य = जिस के देश, जाति, शिल्प (कला) समान होते हैं और जिसमें संगठन अच्छा होता है। (१२३)

अमित्र (शत्रु) = समान सीमा वाले राज्य का स्वामी; (दो प्रकार) सहज, कृत्रिम, अथवा चल और स्थित। (११)

अमित्रभावी = (प्रकार) अनात्मवान् (दुष्ट), नित्यापकारी, शत्रुसहित पार्ष्णिग्राह, व्यसने यातव्य, व्यसने (संकटे) अभियोक्ता (कुल ५)· (११६)

अरिप्रकृति = विजिगीषु की सीमा में संलग्न भूमि का स्वामी। (९८)

अरिविशेष= बलवान् सामन्त, व्यसनी, अनपाश्रय, दुर्बलाश्रय (आक्रमण करके इनका नाश करना इष्ट होता है)। (९८)

अर्थसंप्राप्ति के उपाय = पार्ष्णिग्राह और आसार का प्रतिघात, मनुष्यक्षय, धनव्यय, प्रवास की व्यवस्था, प्रत्यादेय (ऋण का ·समर्पण), मूलरक्षण। (राजधानी का रक्षण) (कुल ६)। (१२८)

अर्धबाहु = युद्धोपयोगी स्थितयंत्र, आक्रमक पर गिराने योग्य दो स्तम्भ। (३९)

अवमर्द = किले पर कब्ज़ा करना। (१३)

अश्वदमक = घुड़सवार सिपाही। (२२)

अश्वयुद्ध = (प्रकार)= अभिसृत, परिसृत. अतिसृत, उन्मथ्यावधान, वलय, गोमूत्रिका, मंडल; प्रकीर्णिका, व्यावृत्तपृष्ठ, अनवंश, भग्नरक्षा, भग्नानुपात। (१३३) (कुल १२)

अश्ववाह = घुड़सवार या घोड़े की देखरेख करने वाला सईस। (५१)

अश्वविभाग = क्रयोपगत, आहव (युद्ध)- लब्ध, आजात, (अश्वशाला में जन्म पाए हुये), साहाय्यकागत, पणस्थित (गिरवी रखे हुए), यावत्कालिक (किंचित् काल के लिए रखे हुए) (कुल ६)। (५१)।

अश्वशाला का प्रमाण = अश्वायाम-द्विगुणविस्तार, अर्थात् घोड़े की लंबाई से दुगुनी चौड़ाई होनी चाहिये। (५१)

आक्रन्द = विजिगीषु राजा का पिछाड़ी का मित्र राजा। (पार्ष्णिग्राह की सीमा से संलग्न राज्य का स्वामी) अर्थात् पिंछाड़ी के शत्रु का शत्रु) (९८) (१११)

आक्रान्दासार = विजिगीषु राजा की पिछाड़ी के मित्र का मित्र (अर्थात् परोक्ष मित्र)। (९८)

आक्रमण करने योग्य शत्रु = क्षीणपुराणभक्त (जिसका पुराना धान्य समाप्त हो चुका है), अगृहीत (नवभक्त) जिसने नये धान्य का संग्रह नहीं किया है) असंस्कृतदुर्ग, क्षीण तृणकाष्ठोदक। कुल ४ (१२२)

आक्रमण करणे योग्य शत्रु सैन्य = अभूमिष्ठ, विभूतिप्राप्त, संहतानीक, भिन्न, प्रचल, विमुख, दूष्य फल्गुवल, विषम, श्रान्त, विश्वस्त, प्रमत्त, आकृष्ट, अवसुप्त, अकृतहस्त्यश्व, प्रतिनिवृत्त, प्रतिसूर्यवात। (१३९)

आचरणहस्ती = सब प्रकार की गति जानने वाला ओपवाह्य हाथी। (५३)

आधानगतिक हस्ती = नाना प्रकार की गति से चलने वाला औपवाह्य हाथी। (५३)

आपत्ति के चार कारण = अभ्यन्तर उत्पत्ति और बाह्य प्रतिजाप। वाह्योत्पत्ति - अभ्यन्तर प्रतिजाप। वाह्योत्पत्ति, बाह्य प्रतिजाप। अभ्यन्तरोत्पत्ति - अभ्यन्तर प्रतिजाप (१२६) (उपजाप = विरोधी षड़यंत्र)

आपत्ति = (३ प्रकार) शुद्धा, आमिश्रा और परमिश्रा। शुद्धा (दो प्रकार) = दूष्यशुद्धा और शत्रुशुद्धा।

आमिश्रा = दूष्य और अदूष्य के संगम से। परमिश्रा = मित्र और शत्रु के संयोग से। (१२७)

आपत्ति = (तीन प्रकार) = अर्थयुक्त, अनर्थयुक्त, संशययुक्त। (१२८)

आपद = (के तीन मार्ग) = पुत्र भ्राता आदि बांधव। पौर, जानपद, दण्डमुख्य। सामन्त-आटविक। इनके प्रतिकार के उपाय = पुत्रादि द्वारा सामदान से। **पौरादिद्वारा** = दान भेद से। **सामन्तादि द्वारा** = भेद दण्ड से। (१२८)

आयुधवर्ग = यंत्र, गोष्पण, मुष्टि, पाषाण, रोचनी, दृषद्। (३१)

आयुधीय ग्राम = सैनिक देने वाला गांव।

आवरणक = १) संरक्षक हथियार (२५), २) कवच। (३९)

आवरण प्रकार = **शिरस्त्राण, कण्ठत्राण,** कूर्पास, कंचुक (घुटने तक) वारबाण, पट्ट (जाकीट के समान) नागोदरिका (अंगुलित्राण)। पेटी-चर्म, हस्तिकर्ण, तालमूल (लकड़ी की ढाल), धमनिका; कवाट, किटिका, अप्रतिहत, बलाहकांत। (३९)

आवाप = अधिक सेना या अवशिष्ट सेना। (प्रकार) – **प्रत्यावाप** = अधिक पदाति। **अन्वावाप** = सेना के तीन अंगों में किसी अंग का आधिक्य। **अत्यावाप** = सेवक सैनिकों का आधिक्य। (१३३)

आसार = सहायक सैन्य। (१४०)

आस्फोटिम = युद्धोपयोगी चलयंत्र जिस के चार स्तम्भ चर्माच्छादित होते हैं। (३९)

इन्द्रकोश = दुर्ग के तट पर आरक्षियों के बैठने के लिये बनाई हुई खिड़की। (२४)

इषु (बाण) प्रकार = वेणु, शर, शलाका, दण्ड, आसन, नाराच। (३९)

उत्तम काल = जब अपने सैन्य के व्यायाम के लिए भरपूर समय मिलता है (इसके विपरीत अधम काल होता है)। (१२२)

उत्तम देश = जहां अपने सैन्य को व्यायाम के लिये पर्याप्त भूखंड होते है और शत्रु को स्थान नहीं होता। (इसके विपरित अधम देश होता है।) (१२२)

उत्साह = शौर्य, अमर्ष (शत्रु का उत्कर्ष सहन न होना) शीघ्रता, दाक्ष्य। (कुल ४ गुण)। (९७)

उत्साहहीन द्वारा संग्राह्य लोग = श्रेणी, प्रवीरपुरुष, चोरगण, आटविक, म्लेच्छजाति, परापकारी, गूढपुरुष (कुल ७)। उत्साहहीन = सैन्यहीन, उत्थानशक्तिहीन। (११२)

उत्सेध = बुरुज।

उत्सेध-समावक्षेप सोपान = चढ़ने और उतरने की सीढ़ी। (२४)

उदासीन = विजिगीषु, शत्रु और मध्यस्थ तीनों से अलग किन्तु सभी से बलाढ्य होने के कारण संकट में साहाय्य तथा विरोध करने में समर्थ राजा। (७) (९८)

उपाय प्रयोग स्थान –

साम = शंकित अमात्य पर। **दान** = दूष्य अमात्य पर, **भेद** = सांघिक विरोघ होने पर। **दण्ड** = प्रबलों का विरोघ होने पर। (१२८)

उपायों के त्रिविध प्रयोग = **नियोग** (निश्चित किसी एक उपाय का) **विकल्प** एक या दो उपायों का **समुच्चय** = दो, तीन या चार उपायों का मिलाकर। (१२०)

उरस्य = सेनाव्यूह का मध्यभाग। (१३४)

ऊर्ध्वबाहु = युद्धोपयोगी स्थितयंत्र, ऊँचे स्थान से आक्रमक पर फेंकने योग्य स्तम्भ। (३९)

औत्साहिक सैन्य = अनेक जातीय तथा शत्रु-देश की लूट करने नित्य सिद्ध। (१२३)

औपवाह्य अश्वगति के प्रकार = वल्गन, नीचैर्गत, लंघन, धोरण, नारोष्ट (या नारोष्ट्र)। सवारी के घोड़े की चाल के प्रकार हैं। (५१)

औपवाह्य = अंबारी का हाथी। (३६)

औपवाह्य हस्ती = (आठ प्रकार) = **आचरण,** (सब प्रकार की गति जानने वाला)। **कुंजरोपवाह्य** (दूसरे हाथी के साथ चलने वाला)। **धोरण** (दौड़ने वाला)। **आधानगतिक** यष्ट्युपवाह्य (दण्डा मारने पर चलने वाला)। **तोत्रोपवाह्य** (तोत्र = अंकुश), **मार्गायुक** - स्वेच्छा से चलने वाला। (५३)

औपवाह्यक कर्म = आरूढ सवार होना। (४१)

औपवेणुक = घोड़े की मंडलाकार चाल।

कंकट-कर्मान्त = कवच बनाने का कारखाना। (४४)

कक्षौ = व्यूह की पिछाड़ी के दो अग्रभाग।

कणय = १) एक हलमुखीशस्त्र - २० से २४ अंगुलि लंबा। २) त्रिकोणाकृति नोंक वाला लोहदण्ड। (३९)

कपालसन्धि = सर्वथा घातक संधि।

कर्पण = हाथ से फेंकने योग्य बाण। (३९)

कर्म (युद्धोपयोगी – २ प्रकार) = ऐन्द्र जालिक और औनिषदिक। (३९)

कर्मसन्धि = दोनों ने मिलकर दुर्ग आदि कार्य करने के हेतु संधि। (११०)

कुंजरोपवाह्य हस्ती = (दूसरे हाथी की साथ संगत मिलने पर चलने वाला औपवाह्य हाथी। (५३)

कुंत = एक हलमुखी शस्त्र (५ से ७ हाथ लंबा दण्ड)। (३९)

कृत्रिम मित्र = शत्रु की सीमा के पार का राजा अथवा माता पिता से संबंधित राजा। (९८)

कोशसन्धि = धन के बोली पर सन्धि। (१३६)

कृत्रिम शत्रु = स्वयं विरोध करने वाला या दूसरे के द्वारा विरोध करवाने वाला। (९८)

क्षुरवर्ग = सात प्रकार के शस्त्र – परशु, कुठार, पट्टस, खनित्र (फावड़ा), कुद्दाल, क्रकच, (आरी), काण्डच्छेदन। (कुल सात)। (३९)

खड्ग के प्रकार = निस्त्रिंश, मंडलाग्र, असियष्टि। (३९)

खनकयोधी = खंदक से लढने वाले।

खात-साल = खंदक और तट। (१४४)

गूढदण्डातिसारण = शत्रु के गुप्त सैन्य का निवारण या नाश करना। (१६)

चक्रान्त = सेना की पिछाड़ी।

चक्रयुक्तनाश = अन्तर्गत मारपीट के कारण हानि। (६९)

चलयन्त्र = पंचालिक, देवदण्ड, सूकरिका, मुसल, यष्टि, हस्तिवारक, तालवृन्त, मुद्गर, गदा, स्पृक्तला, कुद्दाल, आस्फोटिम,

औद्घाटिम, सप्तदिन, त्रिशूल, चक्र, (कुल १६ प्रकार) (युद्धोपयोगी शस्त्रसमूह)। (३९)

चापकुक्षि और चापपक्ष = धनुष्याकार व्यूह की बाजू।

चार्या = तट के अन्तरंग में बनाई हुई सीढ़ी। (२४)

चित्रघात = अतिशय क्लेश या पीड़ा देकर मारना। (६८)

चित्रदण्ड =विचित्र पद्धति से देहान्त शासन। (४)

छन्नपथ = भूमिगत गुप्त मार्ग (२५)

जघनाभिघात = पिछाड़ी से हमला। (१४२)

जानुमंजनी = एक शस्त्र।

जामदग्न्य = युद्धोपयोगी स्थितयंत्र, जिसके मध्य रन्ध्र से शत्रु पर बाण-वर्षण किया जाता हैं। (३९)

झषास्य = मत्स्यमुख के आकार का व्यूह।

डमर = दंगा, मारपीट।

डमरगत = (आय) = युद्ध में लूट से प्राप्त धन। (२७)

तीक्ष्ण = विष और शस्त्र के प्रयोग से शत्रु का नाश करने वाले गुप्तचर। (१२६)

तीर्थाभिग्रह = उतार का रास्ता रोकना।

तोत्र = अंकुश, तुतारी। (५३)

तोत्रोपवाह्य = अंकुश के आघात होने पर चलने वाला हाथी। (५३)

त्रासिक = एक हलमुखी शस्त्र जो प्रास के समान होता हैं। (३९)

त्रिक = तीन रथों का गुट। (१३३)

(सेना के व्यूह में १५ त्रिक अर्थात् ४५ रथ होते हैं)

दण्डमण्डल व्यूह = दण्डाकार एवं वर्तुलाकार व्यूह की रचना।

दण्डव्यासंग = सेना का अभ्यास या प्रशिक्षण। (१०६)

दण्डसन्धि = हाथी, घोड़े जैसे सेनांगों की प्राप्ति की बोली पर सन्धि। (१३६)

दण्डातिसंधान = सेना के बल से शत्रु को त्रस्त करना। (१२)

दम्य कर्म = असंस्कारित बैल,, घोड़े या हाथी को शिक्षा देना। (५२)

दम्य हस्ती = (५ प्रकार) = स्कन्धगत, स्तंभगत, वारिगत, अवपातगत, यूथगत। (५३)

दण्डकर्मिक = शत्रुओं को गुप्तता से दण्ड देना। (५)

दुर्ग = (आठ प्रकार) १) स्थल. २) नदीदुर्ग, औदक. ३) प्रास्तर. ४) पार्वत. ५) इरिण. ६) धान्वन. (रुक्षभूमिस्थित.) ७) स्तंबगहन. ८) वन. (२४)।

दुर्ग = अष्टभेद= १) अन्तर्द्वीप (स्थल), २) निम्नावरुद्ध (औदक), ३) प्रांतर (जलप्राय भूमि में स्थित), ४) गुहा (या पार्वत), ५) इरिण, ६) धान्वनः, ७) खंजनोदक, ८) स्तंबगहन (वन.)। (१०८)

दुर्ग से संबंधित शब्द = मत्तवारण, प्रतिमंच, आणि, हर्म्य, स्थूणावबन्ध, उत्तमागार, तोरणशिरः, इन्द्रकील, अरत्नि, मणिद्वार, हस्तिपरिघ, निवेश, हस्तिनख। इनके अर्थ अज्ञात से हैं।

दुर्गनिवेश = किलों की स्थापना। (२)

दुर्गवध = किले पर चढाई करना (२)

दृढक = व्यूह का एक प्रकार।

देवदण्ड = युद्धोपयोगी चलयंत्र, लम्बी कीलों से युक्त, महान् दण्ड जो किले के बुर्ज पर रखा जाता है। (३९)

देवपथ = भूमिगत मार्ग या गुप्त मार्ग। (२४)

देशोपनत सन्धि = भूमि का उत्पन्न देने की बोली पर की सन्धि।

द्रोणमुख = चार सौ गावों का केन्द्रस्थान, या एक प्रकार की व्यूहरचना। (२२)

व्द्यंग बल विभाग = पदाति आगे की दोनों ओर, दोनों बगलों में अश्व, हाथी पिछाड़ी में और रथ अग्रभाग में। (इसी प्रकार त्र्यंग बलविभाग भी होता है। (१३३)

धनुष प्रकार = चाप, ताल, दारव, शाङ्र्ग, कार्मुक, कोदण्ड। (३९)

धारा (औपवाह्य अश्व का वेग), धारा के ५ प्रकार = विक्रम, वल्गित, उपकंठ उपजन, जव। (५१)

धोरण = (औपवाह्य अश्व की एक गति।) (८ प्रकार) = कांक, वारिकांक, मायूर, अर्धमायूर, नाकुल, अर्धनाकुल, वाराह, अर्धवाराह। (५१)

धोरण = दौड़ लगाने वाला औपवाह्य हाथी। (५३)

ध्वजहत = युद्धबंदी। (७०)

नागरायण = सीमा पर ललकार मारना।

नाकरोष्ट्र (या नारोष्ट्र) = औपवाह्य अश्व की गति जिस में वह इशारे के अनुसार दौड़ता है। (५१)

नारोष्ट्र कर्म = हाथी की जठराग्नि प्रदीप्त करना। (५३)

निम्नयोधी = पर्वत की घाटी में लड़ने वाला सैन्य।

निष्कर = दुर्धर आघात, जोरदार हमला। (१४४)

नीचैर्गत = औपवाह्य अश्व की एक चाल १६ प्रकार = प्रकीर्णक, अप्राकीर्णोत्तिर, निषण्ण, पार्श्वानुवृत्त, ऊर्मिमार्ग, शरभक्रीडित, शरभप्लुत, त्रिताल, बाह्यानुवृत्त, पंचपाणि, सिंहायत, स्वाधूत, क्लिष्ट, श्लाघित, बृहित, पुष्पाभिकीर्ण। (५१)

नीराजनाविधि = या वाजिनीराजनाविधि = अश्वपूजन की विधि। (५१)

नेता = विजिगीषु राजा (१०३)

नैत्र = नेतृत्व। राजनीति की चाल।

पक्ष = व्यूह की अघाड़ी के दो अग्रभाग।

पंचसंस्था = कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक और तापस नामक पांच प्रकार के गुप्तचर। (११)

पंचालिक = युद्धोपयोगी एक चलयंत्र। आक्रमकों के मार्ग में जल के अन्तर्गत रखा हुआ कीलयुक्त फलक। (३९)

प्रकाश युद्ध का अवसर = बल= विशिष्ट और उपजाप की सिद्धता ऋतुमान की व्यवस्था (अन्यथा कूटयुद्ध करना उचित)। (१३१)

प्रकीर्णिका = सैन्य की मिश्र हलचल।

प्रकृति = विजिगीषु और उसका शत्रु इनके अतिरिक्त, मित्र, अरिमित्र, मित्रामित्र, अरिमित्रामित्र, पार्ष्णिग्राह, आक्रंद, पार्ष्णिग्राहसार, आक्रंदासार; इनके अतिरिक्त उदासीन और मध्यम (कुल १२ राजाओं का गुट)। (९८)

प्रकृति (दो प्रकार) = मित्रप्रकृति और अरिप्रकृति। (११६)

प्रकृतिप्रकोप = सामाजिक अशांतता। (९)

प्रकृति - विकृति = मित्र और शत्रु। (११६)

प्रकृतिव्यसन = राष्ट्रीय संकट (८)

प्रताप = शत्रु को पीड़ा देना। (१६)

प्रतिग्रह = पिछाड़ी का अवशिष्ट सैन्य। (१३३)

प्रतिजाप = शत्रु के कपट प्रयोग निष्फल करने का प्रयत्न। (१२४)

प्रतिबलकर्म = शत्रुसेना का प्रतिकार। (९)

प्रत्यन्तस्कन्ध = सीमास्थित सैन्य।

प्रत्यपसृत = शत्रु पक्ष से आया हुआ और बाद में भेद के लिए वापिस भेजा हुआ।

प्रत्यावाप = अलग रखा हुआ पदाति सैन्य।

प्रत्यासारवती = पीछे हटने योग्य भूमि।

प्रदर = सेनाव्यूह का एक प्रकार।

प्रधावितिका = दुर्ग के बाहर भागने योग्य अस्थायी सेतु, सीढी का रास्ता। (२४)

प्रलम्भन = औषधि, मंत्र आदि की शत्रुनाश के लिए योजना। (१४)

प्रवीर पुरुष = साहसी लोग। (५६)

प्रसार = सेना का विस्तार। फालतू सैन्य।

प्रसारवृद्धि = फालतू सेना।

प्राश्यप्राशं = अन्नजल का भरपूर संग्रह।

प्रास = एक हलमुखी शस्त्र या दो मूठ वाला २४ अंगुल लंबा शस्त्र, भाला। (३९)

प्रासपाणि = भाले से लढने वाला सैनिक। (२१)

बल (सैन्य) ६ प्रकार = मूल, भृतक, श्रेणी, मित्र, अमित्र, अटवी। (१२३)

फल्गुबल = फल्गु = तुच्छ सैन्य। (१-२०)

बल = सैन्य (पांच प्रकार) – मौल, (पीढ़ीजात, वंशपरंपरागत), भृतक, श्रेणी (सामूहिक), मित्र, अटवी (वनवासी लोगों का दल)। (५४)

बलव्यसन = सैनिकों का विद्रोह (८)।

बलव्यसन = दीर्घकान्तार, अनुदक, यवस, इन्धन, हीन, कृच्छ्रध्वा, अभियोग प्रस्कन्न (शत्रु के आक्रमण से त्रस्त), क्षुत्पिपासाध्वक्लान्त), दुर्गममार्ग, पहाड़ में रुकावट, विसत्राह (कवचहीन), भोजनव्यासक्त, परिश्रान्त, अवसुप्त, व्याधि-मरक-दुर्भिक्षपीडित, व्याधिग्रस्त (इस अवस्था में परसैन्य पर आघात करना चाहिये। (१३०)

बलव्यायोग = सेना की व्हूहरचना। (९)

बलावाप = रक्षित सेना का साहाय्य।

बहुकुण्ठवन = शौर्यहीन हाथियों की बहुसंख्या वाला वन। (११०)

बहुमुख = १) किले पर का ऐसा एक स्थान, जहां से सभी ओर बाणों की वर्षा करने की व्यवस्था हो । (३९)

बाहूत्सार = १) शरीररक्षक (१३०)
२) सेना की आजूबाजू के शत्रुओं को खदेड़ना।

बाह्यकोप = राष्ट्र (प्रांत) का मुख्य, अन्तपाल, आटविक, दंडोपनत (विजित) राजा इन चारों का प्रत्येकशः या संमिलित प्रक्षोभ। (१२४)

भग्नानुपात = पराभूत सेना का पीछा करना।

भंगप्रदान = पराजय का बहाना करना।

भूमिसन्धि = भूमि देने की बोली पर सन्धि। (१३६)

भृत्यभावी सामन्त (६ प्रकार) = बलवान् से भयभीत, अन्तर्धि (विजिगीषु और अरि के मध्यवर्ती), बलवान् का पार्ष्णिग्राह (पिछाड़ी का शत्रु), स्वयम् उपनत, प्रतापोपनत, दण्डोपनत। (११६)

भेद्य सैन्य = (३ प्रकार) – **भक्तवेतन, विलोप प्रतापकर** (लूट के लिए पराक्रम करने वाला), **विष्टि प्रतापकर**। (१२३)।

भोगव्यूह = सर्पमंडलाकार व्यूहरचना।

भ्रेषण = धमकी (७७)

मध्यभेदी = (सैन्य रचना) मध्य में हाथी, दोनों कक्षाओं में रथ और दोनों पक्ष (आगे पीछे) भाग में घोड़े इस प्रकार की रचना। इससे उलटी रचना को **अन्तर्भेदी** रचना कहते हैं। (१३३)

मध्यम = तटस्थ राज्य। (७)

मध्यस्थ = विजिगीषु और उसका शत्रु - इन दोनों के राज्यों से संलग्न राज्य का स्वामी, जो सहायविरोध कर सकता है। (९८)

मंत्रयुद्ध = दांव पेंच। पेच और प्रतिपेंच (कोल्ड वॉर)। (१२)

मार्ग = (घोड़े के चलने योग्य) ३ प्रकार) = **विक्रम, भद्राश्वास** और **भारवाह्य** ।

मार्गायुक = १) स्वेच्छा से चलने वाला औपवाह्य हाथी (५३)
२) आखेट के काम का हाथी। (२३)

मित्र उभयतोभोगी = शत्रु और शत्रुमित्र (आसार) राजाओं का बंदोबस्त करने वाला। (११४)

मित्र एकतोभोगी = शत्रु को एक ओर से रुद्ध करने वाला (११४)

मित्र (तीन प्रकार) = नित्य, अवश्य (वश में न रहने वाला), अनित्य। इनके प्रत्येकशः महाभोग, अल्पभोग, गुरुसमुत्थ, लघुसमुत्थ, महत्, लघु, विक्षिप्त सैन्य, अवश्य सैन्य, पुरुषभोग, हिरण्यभोग, भूमिभोग (कुल ११) प्रकार होते है। (१०७)

मित्र (महाभोग) = द्रव्य और सैन्य का साहाय्य देने वाले। (११४)

मित्रव्यसन = मित्र राज्य से संकट (९)

मुंडानीक = कुशल सैन्य।

मूलहर = राज्य का अपहरण करने वाला (१००)

मृत्युकूट = मृत्यु का गुप्त स्थान।

यंत्रयुक्त सोपान = कील से खुलने वाला गुप्त सीढ़ी का मार्ग। (२६)

यमक = घोड़े की एक चाल।

यष्ट्युपवाह्य = डंडा मारने पर चलने वाला औपवाह्य हाथी। (५३)

यातव्य = आक्रमण करने योग्य शत्रु। **प्रकार**- गुरुव्यसन – न्यायवृत्ति, लघुव्यसन – अन्यायवृत्ति, विरक्तप्रकृति, क्षीणलुब्ध प्रकृति, अपचरित प्रकृति, वलवान् अन्यायी, दुर्वलन्यायी। (१०३)

यात्रा = (आक्रमण) के योग्य ३ काल – चैत्र, ज्येष्ठ, मार्गशीर्ष। अनुकूलता होने पर ग्रीष्म, वर्षा जैसे ऋतुओं में भी आक्रमण करना योग्य होता है। (९) (१२२)

यान = युद्ध की सिद्धता।

यान = (आक्रमण) के दो प्रकार) = **व्यसनाभियान** शत्रु का संकट देख कर यान), १) **विगृह्ययान** (युद्ध उद्घोषित होने पर यान)।

यानक = युद्धोपयोगी स्थितयंत्र जिसमें चक्के पर डंडा बांधा होता है। (३९)

युग्मोरस्य = व्यूह की द्विकेन्द्रक रचना।

युद्ध के ८ प्रकार = निम्न (दरी), स्थल, प्रकाश (मैदानी) कूट, खनक (खंदक), आकाश, दिवा, रात्रि। (कुल ८)। (५४) (१०८)

युद्ध भूमि के ५ प्रकार = स्वभूमि (चतुरंग सेनां के योग्य) रथभूमि, अश्वभूमि, पदातिभूमि, हस्तिभूमि। (१३२)

युद्धप्रतिग्रह = युद्धानुकूल स्थान। (१६)

युद्धविचार = युद्धदेश, युद्धकाल और युद्धलाभ इन तीनों का विचार आवश्यक। (११७)

यूथ = दस व्यक्तियों का समूह। (८८)

योगधूम = शत्रु सेना पर छोड़ने योग्य विषैला धुंआ।

योगवामन = कपट प्रयोग द्वारा शत्रु का उच्चाटन। (१३) (१४२)

योगाग्नि = कपट से शत्रुसेना में भड़काई आग।

योगातिसंधान = कपटप्रयोग से शत्रु को त्रस्त करना। (१२)

योगापसर्प = कपटबुद्धि से शत्रु के राज्य में निवास करने वाला।

योगोपनिषद् = गुप्तचर (११२)

योध के १६ प्रकार = पदाति, अश्व, रथ, हस्ति. धान्वन, वन, निम्न, स्थल, खनक, आकाश, दिवा, रात्रि नादेय. पार्वत, अनूप, सारसं। (१३२)

रथ = ऊंचाई तथा आकारमान से होते हैं। उत्तम रथ १० पुरुष ऊंचा और १२ पुरुष लंबा चौड़ा होता है। (५४)

रथ के ६ प्रकार = देवरथ (देवयात्रार्थ), पुष्परथ (विवाहयात्रार्थ), सांग्रामिक, पारियाणिक (प्रवासार्थ), परपुराभियानिक, वैनयिक (शिक्षानिमित्त)। (५४)

रथचर्यासंचार = रथ चलाने योग्य मार्ग (२४)

रथयुद्ध = के १७ प्रकार अश्वयुद्ध के उन्मथ्यावधान (विध्वंस और निरोध), के अतिरिक्त १४ प्रकार और अभियान, अपयान (पीछेहाट), और स्थितयुद्ध। (१३४)

रथोपस्थ = रथ के अन्तर्गत बैठने का स्थान। (११५)

रथ्य = रथ को जोतने योग्य घोड़ा।

राज्यविभ्रम = राज्यक्रान्ति या राज्य में अराजकता। (६८)

लक्षण्य = कृत्रिम किन्तु सुंदर।

लक्ष्यलंभाधिकार = लक्ष्य पर बाण मारने में कुशल।

लग्नक = उद्दाम, उन्मत्त (हाथी)।

लघुसमुत्थ = (मित्र) कर्तव्य के समय शीघ्र उत्थान करनेवाला। (१०७)

लंघन = (औपबाह्य अश्व की एक गति) = कपिप्लुत, भेकप्लुत, एणप्लुत, एकपादप्लुत, कोकिल संचारी, उरस्य, वकचारी - ये सात गति के अन्य प्रकार है। (५१)

वडवा = घोडी (५१)

वप्र = तट। (२४) (तीन प्रकार) (१) ऊर्ध्वचय (नीचे अधिक चौड़ा और उपर कम, २) मंचपृष्ठ = नीचे ऊपर समान चौंडाई वाला। ३) कुम्भकुक्षिक = कुंभ के समान वीच में वडे आकार वाला। (२४) (१४४)

वराहकर्ण = एक हलमुखी अस्त्र जिसे वराह के कान समान पाता होता है। (३९)

वर्म = (कवच) प्रकार – लोहजाल, जालिकापट, कवच, सूत्र (कार्पासादि सूत्रमय कवच), कंकट, शिशुमार (एक जलचर) खड्गि (गेंडा), धेनुक, हस्ति, गो, इनके चर्म खुर, शृंगों से वनाये हुए। (३९)

वल्गन = औपवाह्य अश्व की मंडलाकार गति के ६ प्रकार) = औपवेणुक, वर्धमानक, यमक, आलीढ, प्लुत, पृगक, त्रिकचाली।

वातग्रहण = वायु के अनुकूल रणस्थान प्राप्त करना।

वासविचय = छावनी के स्थान से शत्रु को खदेड़ना।

विक्क = हाथी का बछड़ा, कलथ, स्तनंधय (५२)

विक्रम = (आक्रमण) के तीन प्रकार- प्रकाशयुद्ध, कूट युद्ध, तृष्णींयुद्ध। (१०४)

विक्षिप्तसैन्य = जिसका सैन्य यत्र तत्र बिखरा हुआ रहता है। (१०७)

विगृह्ययान = शत्रु पर स्वयम् आक्रमण करना। (७)

विगृह्यासन = शत्रु के प्रदेश में लूट करना। (७)

विजय पाने के पांच उपाय = १) उपजाप, अपसर्प, वामन, पर्युपासन, अवमर्द। (१४४) इन उपायों से शत्रु का प्रदेश जीता जाता है।

विजिगीषु = आत्मगुण, द्रव्यगुण, तथा प्रकृतिगुण से संपन्न नीतिनिष्ठ राजा। (९८)

विजिगीषु के सामने वाले पांच राजा (अनुक्रम से) =

प्रकृत्यमित्र, मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र, अरिमित्र- मित्र। (९८) विजिगीषु के पिछाड़ी की ओर अनुक्रम से चार राजा – पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्दासार। (९८)

विधाप्रमाण = हाथी के खाने का प्रमाण। (३६)

विधायोग = हाथी या घोड़े की आहार की योजना। (५१)

विधाविधि = हाथी या घोड़े का आहारप्रमाण। (५२)

विशालविजय = व्यूह का एक प्रकार।

विश्वासघाती = युद्धोपयोगी स्थित यंत्र, खंदक पर डाला हुआ एक सेतु। (३९)

वीवधासार-प्रसारवध = शत्रु के गोदाम या कोशागार का नाश। (१२)

वैजयन्ती = गजपताका, हाथी का एक भूषण। (५३)

व्यसन = (संकट) तीन प्रकार के = युद्ध, अवस्कन्द, (मारपीट दंगा), अवरोध।

व्यसन = (आपत्ति) बलव्यसन और मित्रव्यसन। बलव्यसन (सैन्यशेष) (प्रकार) = अमानित, विमानित, अभृत, व्याधित, नवागत, दूरायात, परिश्रान्त, परिक्षीण, प्रतिहत, हताग्रवेग, अनृतुप्राप्त, अभूमिप्राप्त, आशानिर्वेदि, परिसृप्त, कलमगर्दि, अन्तःशल्य, कुपितमूल, भिन्नगर्भ, (व्यसन), अपसृत अतिक्षिप्त, उपनिविष्ट, समाप्त, उपरुद्ध, परिक्षिप्त, छिन्नधान्यपुरुषवीवध, स्वविक्षिप्त, मित्रविक्षिप्त, दूष्ययुक्त, दुष्टपार्ष्णिग्राह, शून्यमूल, अरिस्वामिसंहत, भिन्नकूट, अन्ध (ज्ञानहीन) (कुल ३३)। (१२१)

व्यायाम = आरब्ध कार्यो को सफल करने के लिए प्रयत्न (९८) उद्योग, उद्यम।

व्यायाम युद्ध = आमने सामने किया गया युद्ध।

व्यायोग = सैन्यरचना, व्यूह। (१३२)

व्याल = उन्मत्त हाथी जिसे किसी भी उपाय से प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता। (२३), (५२), (५३)

व्याल = (दुष्ट हस्ति प्रकार) = शुद्ध (१८ दोष युक्त), **सुव्रत** १५ दोष युक्त), **विषम** (१८ + १५ = ३३ दोष युक्त), **दोषप्रदुष्ट** = (३३ + २९ = ६२ दोष युक्त) (५३)

व्याबंधन = शत्रुसैन्य में घुसकर उसे पीड़ा देना।

व्यावेशन = शत्रु सैन्य में घुसकर उसे भयाकुल करना।

व्यूह की संज्ञा के साधन = तूर्य, घोष, ध्वज, पताका। इन्हीं संज्ञाओं से सेना की अंगविभाग, संघात, स्थान, गमन, व्यावर्तन और प्रहरण ये पाच क्रियाएं होती हैं।

व्यूह-प्रकार = दण्डमण्डल व्यूह, भोग संहत व्यूह, विषम व्यूह (अन्यान्य प्रकार युक्त)।

अचलव्यूह = पदाति, घोड़े, रथ और हाथी इस क्रम से सेनाविभागों की रचना। (१३४)

अप्रतिहत व्यूह = हाथी, अश्व, रथ और पदाति इस क्रम से सेना की रचना। (१३४)

अरिष्ट व्यूह = मध्य में रथ, बाजू में हाथी और पिछाड़ी में घोड़े - ऐसी सैन्य रचना। (१३४)

असंहत व्यूह = पृथग् विभागों में सैनिक खड़े होना। प्रकार = **वज्र** (या गोधा), **उद्यानक** (काकपदी), **अर्धचंद्रक** (या कर्काटक शृंगी)। (१३४)

दण्डव्यूह = सैनिकों की तिर्यक् रचना (१३२) (१७ प्रकार) प्रदर, दृढक, असह्य, श्येन (चाप), चापकुक्षि, प्रतिष्ठ, (प्रदशादि के विपरित) संजय, विजय, स्थूलकर्ण, विशालविजय, चमूमुख, इषास्य, सूची, वलय, दुर्जय। (१३४)

प्रकृतिव्यूह = ४ विभाग – **दण्डाकार, सर्पाकार, मण्डलाकार, और असंहत** (पृथग् विभाग) (१३४)

मण्डलव्यूह = सभी दिशाओं की ओर मुख करके मण्डलाकार रचना। **(प्रकार)** = सर्वतोमुख, सर्वतोभद्र, अष्टानीक, दुर्जय।

भोगव्यूह = एक के पीछे दूसरी तति इस प्रकार सैनिकों की वर्तुलाकार रचना। ४ प्रकार = सर्पसारी (या गोमूत्रक), शकट, मकर, परिपतंतक। (१३४)

व्यूहरचना = मकर, शकट, वज्र, सर्वतोभद्र, सूची (कुल ५ प्रकार) (१३०)

विषम व्यूह = पक्ष, कक्ष और उरस्य (अर्थात् अग्रिम बाजू का और मध्य का भाग जिस व्यूह में समव्यूह रचना के विपरीत संख्या के रथ, अश्व तथा पदाति दल से सिद्ध किया जाता है। (१३३)

शक्ति = एक हलमुखी शस्त्र जो चार हाथ लंबा होता है। (३९)

मध्यम शत्रु = (दो प्रकार) कर्शनीय और उच्छेदनीय। (११६)

शत्रु = १) अन्तः शत्रु २) पर-बाह्य शत्रु। (१७)

शत्रु = (दो प्रकार) १) नित्य और २) अनित्य तथा पीडनीय और उच्छेदनीय। (१०८)

स्थिर शत्रुराज्य = (के नाश में प्रयोजनीय लोग = सामन्त (पड़ोसी राजा) आटविक (वन्य राजा), तत्कुलीन अवरुद्ध (बंदिस्थ राजपुत्र), सार्थव्रज (व्यापारी वर्ग), अटवी (वन्य समाज)। (१२७)

शत्रुसेना के ज्ञातव्य ९ विषय = चार, ग्रास, आहार, शय्या, प्रस्तार (सामग्री), अग्नियंत्र, निधान (कोश), ध्वज, आयुध (१३०)। (स्वसेना के ये विषय गुप्त रखने चाहिये।)

शत्रु को उद्विग्न करने के ११ उपाय = गुप्तयंत्र, व्यासक्तघाती, तीक्ष्ण (गुप्तचर) हाथी, रथ, दूष्यप्रकोप, गोयूथ (अपनी सेना के सामने गायों का झुंड रखना), स्कन्धावार प्रदीप्त, कोटीघात, जघनघात, दूतव्यंजन भेदन, असत्यप्रचार इ.। (१३४)

शरावाप = बाणों का भाता। (५३)

शारदकर्म = पुष्ट हाथी को कृश करना। (५३)

शक्ति = (तीन प्रकार) मन्त्रशक्ति (ज्ञानबल), प्रभुशक्ति (कोश दण्डबल) और उत्साहशक्ति (विक्रम बल) (देखिये सिद्धि). (९८)

शक्तिमान् = आक्रमण के समय सहायता देने या पिछाड़ी

के शत्रु को रोकने की शक्ति से युक्त। (१०३)

शक्यसामन्त = सामन्तों को काबू में रखने वाला (राजा का एक गुण)। (९७)

शुद्धव्यूह = केवल हाथी या घोड़े या पदातियों की व्यूह रचना। (१३३)

शूर (के दो गुण) = स्थैर्यप्रतिपत्ति (दृढनिश्चय) और असंमोष (स्वीकृत कार्य को न छोड़ना) (११५)

शृंगाटक = त्रिशूल के समान एक शस्त्र।

संकट = ऐसा प्रदेश जहां प्रवेश करना असंभव हो।

संग्राम = उभय पक्षों द्वारा देश और काल का निश्चय होने पर युद्ध। या धर्मयुद्ध। (१३१)

संघाटी = १) युद्धोपयोगी स्थित यंत्र, शत्रु के किलेपर आग भड़काने योग्य एक काष्ठ दण्ड। (३९)

सत्रस्थान = शत्रु पर आघात करने के लिए छिपकर रहने का स्थान। (१२१)

सत्रस्थान (छिपने के स्थान) = धान्वन (रेगिस्तान), वन, संकट, पंक, शैल, निम्न-विषमनौका, शकटव्यूह, नीहार (कुहरा) रात्रि। (कुल ९) (१३१)

सत्रि = गुप्तचर (२-१०)

सन्धाययान = मित्रों के सहायता से शत्रु पर आक्रमण। (१-७)

सन्धायासन = शत्रु से संधि करने पर उसके प्रदेश में रहना। (१-७)

संधि, शम, समाधि = (तीनों राजनीति शास्त्र में समानार्थक शब्द हैं) = राजाओं के परस्पर विश्वास का हेतु। (११५)

सन्धि = दो प्रकार = परिपणित, अपरिपणित। (१०४)

सन्धि (दो प्रकार) = चल और स्थावर। चलसन्धि = शपथ ग्रहण से होने वाली।

स्थावरसन्धि = जमानत या न्यास के द्वारा होने वाली यह आचार्य मत है। कौटिल्य का मत इस के विपरीत है।

सन्धि (प्रकार) = दण्डसंधि, पुरुषसंधि, कोशसंधि, भूमिसंधि (कुल ४) (१३६)

सन्धि = (के चार प्रकार) अकृतचिकीर्षा, कृतश्लेषण, कृतविदूषण, अवशीर्णक्रिया। (१०४)

सन्धि = (अकृत चिकीर्षा) = जब सामादि उपायों का प्रयोग होने पर समान, कनिष्ठ और वरिष्ठ राजाओं के अधिकारों का निश्चय होता है। (१०४)

अदृष्टपुरुषसन्धि= किसी एक अधिकारी ने अथवा कुछ सेनाप्रमुखों ने किसी स्थान पर युद्ध में साहाय्य देने की बोली पर की हुई सन्धि। (१०१)

अपक्रयसन्धि = भूमि का उत्पन्न मात्र देने की बोली पर की गई सन्धि। (१०१)

सन्धि (अवशीर्णक्रिया) = अपने दोष के कारण विभक्त हुए मित्र यां भृत्य को अपने अनुकूल करना।

अवशीर्ण क्रिया के चार प्रकार = सकारण जाना आना। अकारण जाना आना। सकारण जाना। अकारण आना। अकारण जाना- सकारण आना। (१०४)

आत्मामिष सन्धि = अपना सारा सैन्य लेकर आपका साहाय्य करूंगा इस अभिवचन से की गई सन्धि। (१०१)

आदिष्टसन्धि = राज्य का कोई प्रदेश देने की बोली पर हुई सन्धि। (१०१)

उच्छिन्न सन्धि = राजधानी व्यतिरिक्त सारा प्रदेश देने की बोली पर की गई सन्धि। (१०१)

सन्धि उपग्रह = किश्तों में द्रव्य देने के बोली पर की गई सन्धि। (१०१)

सन्धि कृतविदूषण = पुराने संधिनियमों का उल्लंघन सिद्ध करते हुए सन्धि को तोड़ना। (१०४)

सन्धि (कृतश्लेषण) = पुराने संबंध कायम रखने के लिए पुराने करारमदारों का पालन और परिस्थित्यनुरूप नये निर्बंधों की योजना करना। (१०४)

सन्धिकर्म = तहनामा, सन्धिनिमित्त लिखित पत्रक। (७)

परदूषणसन्धि =-उत्पन्न से अधिक द्रव्य देने की बोली पर की ग़ई संधि। (१०१)

संधिपरिक्रय = केवल द्रव्य देने की बोली पर की गई सन्धि। (१०१)

पुरुषान्तरसन्धि = सेनापति और राजकुमार को उपस्थित करने की बोली पर की गई संधी। (१०१)

परिपणित सन्धि (७ प्रकार) = परिपणित देश, परिपणित काल, परिपणितार्थ। तीन प्रमुख प्रकार और देश-काल, काल-कार्य, देश-कार्य, देश-काल कार्य इनका विचार करने पर अवांतर ४ प्रकार होते हैं। (१०४)

परिपणितार्थ सन्धि = जब विजिगीषु और सामन्त आक्रमण के कार्य का विभाजन करते हुए सन्धि करते हैं। (१०४)

परिपणितकाल सन्धि = जब विजिगीषु और सामन्त आक्रमण का समय बांट लेते हैं। (जैसे तुम अश्विन महीने में आक्रमण करो, मैं कार्तिक में करूंगा। (१०४)

परिपणित देशसन्धि = जब विजिगीषु और सामन्त आक्रमण योग्य देश के विभाग बांटकर आक्रमण करने उद्युक्त होते हैं। (१०४)

सुवर्णसन्धि = परस्पर विश्वास से की गई सन्धि। (१०१)

सन्धि (हीन) = तीन प्रमुख प्रकार- १) दण्डोपनत। २) कोशोपनत। ३) देशोपनत सन्धि। (१०१)

हीनसन्धि (प्रकार) = दण्डोपनतसंधि, आत्मामिष संधि, पुरुषान्तर सन्धि, अदृष्टपुरुष संधि, मुख्यस्त्री बन्धन। कोशोपनत संधि। परिक्रय। उपग्रह सन्धि, सुवर्णसंधि, कपालसंधि। देशोपनत सन्धि, आदिष्ट सन्धि, उच्छिन्नसंधि, अपक्रय संधि, परदूषण संधि (कुल १२ प्रकार) (१०१)

सन्नाह = सेना की सिद्धता। (९)

समव्यूहप्रकृति = ४५ रथ, २२५ अश्व, ६७५ पदाति और

पादगोप सैनिक से व्यूह रचना। (१३३)

समसन्धि = वरिष्ठ, समान, और निकृष्ट राजा से सन्धि जिसमें लूट का माल क्रमशः अधिक, समान और न्यून देने का वादा होता है। इसके उलटा क्रम होने से विषम सन्धि होती हैं। (१०५) अन्य दोनों को अधिक देने पर अतिसन्धि (वंचना) होती है।

समाधिमोक्ष = न्यासरूप में रखे हुए शत्रु पक्षीय राजपुत्रादि की मुक्तता। (१६)

समुत्थान (के दो प्रयोजन) = १) अटवी इत्यादी भाग स्वायत्त करना। २) ग्रामनगरादि स्वायत्त करना। (१४५)

संश्रय = शक्तिहीन राजा ने आपत्काल में दूसरे बलवान राजा को सर्वस्वार्पण करना। (९९)

संश्रयवृत्ति = स्नेहसंपादन। (७)

संहतभेदन = संधि के कारण एकत्रित आयी सेनाओं में भेद निर्माण करना। (५४)

सर्पसारी = व्यूह का एक प्रकार।

सर्वतोभद्र = युद्धोपयोगी स्थितयंत्र, जिसे घुमाकर शत्रुपर पथराव किया जाता है। (३९)

सान्नाह्य हस्ती (लड़ाई का हाथी) = प्रशिक्षण के सात प्रकार) = उपस्थान, संवर्तन, संयान, वधावध, हस्तियुद्ध, नागरायण, सांग्रामिक। (५३)

सान्नाह्य = लड़ाई का हाथी (३६) (५१)

सान्नाह्य = युद्ध में उपयुक्त रणयोग्य्। (५१)

सामप्रयोग साध्यराजा (के ८ प्रकार) = निवृतोत्साह, विग्रह (युद्ध) से श्रान्त, प्रतिहतोपाय, ५४ तप्त (त्रस्त), सन्मित्र का इच्छुक, अन्य सहकारियों से शंकित, मैत्री का महत्त्व जानने वाला, कल्याण बुधि। (१२७)

सामवायित परामर्श = मित्र राजाओं का परामर्श। (७)

सामन्त = पड़ोसी राजा। (६५)

सांपरायिक (दुर्ग) = युद्धोपयोगी। (२-२४)

सारबल = विशिष्ट बलसंपन्न सेना। (९)

सुरुंगा = भूमिगृह से बाहर निकलने का मार्ग, गुप्तमार्ग। (२०)

सूकरिका = युद्धोपयोगी पसोड़ी, जिसमे कपास या ऊन भरा हुआ होने के कारण शत्रुओं के पथराव़ का प्रतिकार किया जाता था। (३९)

सेनापति के ज्ञातव्य विषय = स्वभूमि, युद्धकाल, प्रत्यनीक (शत्रुसेना), अभिन्नभेदन, भिन्नसंधान, संहतभेदन (जिन अनेक सेनाओं में संधि हो उनमें भेद करना), भिन्नवध, दुर्गवध, यात्राकाल। (५४)

सेनापतिप्रचार = सेनापति के कर्तव्य। (५४)

सेनाभक्त = सेना का अन्नभाग। (३८)

सैन्यविका = सैन्धव का पिष्ट। (३४)

सैन्य (पांच प्रकार) = मौल, भृत, श्रेणी, मित्र, अटवी (वनवासी वीर) (१०६)

सैन्य के चार गुण = शूर, कृतास्त्र, दुःखसह, अनुरक्त। (१०६)

सैन्य में आवश्यक ८ पदार्थ = गुणवत्ता, धान्य, कुप्य (कच्चा माल), यंत्र, शास्त्र, आवरण (कवच आदि), विष्टि, रश्मि। (१४४)

सैन्य के ६ संकट = व्याधि, दुर्भिक्ष, निचय (अधूरा बंदोबस्तं आवश्यक पदार्थों का अभाव), **रक्षाक्षय क्रीतबल निर्वेद, मित्रबल निर्वेद। (१४४)**

सैन्य विनय = सैनिक अनुशासन। (शिस्त- मराठी में)। (५४)

सौप्तिक = सुप्त शत्रु पर आघात करना। (१३१)

सौभित्तिक = हाथी की झूल।

स्कन्धावार = छावनी, सेनानिवेश। (२३) (४६)

स्कन्धावार का स्वरूप = चतुर्द्वार, षट्पथ, नवसंस्थान) (विभाग), खात, वप्रसक्त (बुर्ज़), साल (तट), द्वार, अट्टालक, संपन्न। (१२९)

स्कन्धावार में निषिद्ध ३ विषय = विवाद, सौरिक समाज (शराबी लोग), द्यूत। (१२९)

स्कन्धावार प्रयाण = सेना का अभियान। (१०)

स्कन्धावार निवेश = सेना की छावनी। (१०)

स्तंभसंक्रम = खंभों पर निर्मित तात्कालिक सेतु।

स्थावर = अचल संधि।

स्थितयन्त्र = सर्वतोभद्र, जामदग्न्य, बहुमुख, विश्वासघाति, संघाटी, यानक, पर्जन्यक, अर्धबाहु, ऊर्ध्वबाहु (कुल ९) (युद्धोपयोगी विविध शास्त्रास्त्र)

स्थूल कर्ण = एक प्रकार का व्यूह।

स्पृक्तला = एक युद्धोपयोगी यंत्र। नोंकदार गदा। (३९)

स्वकरण = स्वामित्व सिद्ध करना। (७३)

स्वबलोपघात प्रतीकार = शत्रु के गुप्त प्रयोगों से अपनी सेना की सुरक्षा करना। (१४)

हलमुख शस्त्र = शक्ति, प्रास, कुंत, हाटक, भिंडिवाल, शूल, तोमर, वराहकर्ण, कणय, कर्पण, त्रासिक (कुल ११) (३९)

सेना के हस्ति-अश्व के १३ गुण = कुल, जाति, सत्त्व (सामर्थ्य), वयःस्थता, प्राणशक्ति, वर्ष्म (शरीर), जव, तेज, शिल्प, कौशल्य), स्थैर्य, उदग्रता (भव्यता), विधेयता (आज्ञापालन), सुव्यंजनापारता। (१३३)

हस्तिदोष = कर्मशंकित, अवरुद्ध, विषम, प्रभिन्न, प्रभिन्नविनिश्चय, मदहेतुविनिश्चय (कुल दोष ६२ माने जाते हैं)। (५३)

हस्तिबन्धकी = हाथी को वश में लाने में कुशल हाथिनी। (२३)

हस्तियुद्ध = (प्रकार) = अश्वयुद्ध प्रकार के प्रकीर्णिका व्यतिरिक्त ११ प्रकार और चतुरंग बल का घात, पक्ष-कक्ष-उरस्य विभाग को जर्जर करना, और सौप्तिक (सुप्त शत्रु पर आघात) (कुल ११) (१३३)

हस्तिवारक = युद्धपयोगी चलयंत्र हाथी का प्रतिकार करने वाला तीक्ष्ण नोंक वाला दण्ड। (३९)

हस्ती = (दो प्रकार) = नदीज, पर्वतौकस (नदीज हाथी

के दांत २।। वर्षों के बाद और पर्वतीय हाथी के ५ वर्षों के बाद काटे जाते हैं)। (५३)

हाटक = हलमुखी शस्त्र, ३ या ४ पातों वाला दंड। (३९)

हास्तिपक = पीलवान, माहत। (२३)

हीनकर्म = कृश हाथी को दुष्ट करना। (५३)

हीनसन्धि = शत्रु को धन देकर संधि करना। (७)

हीनानुसरण = पराजित सेना के पीछा करना।

* * *

वर्ग - ५

कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित

अधिकारी वर्ग।

अधिकरण = विभाग प्रमुख (२८)।

अधिष्ठाता = कार्यकारी अधिकारी। (१८)

अध्यक्ष = विभाग प्रमुख। ३०,९३

अध्यक्ष पुरुष = विभाग प्रमुख के सहायक निकृष्ट अधिकारी। (८६)

अन्तपाल = गांव या देश की सीमा की देखरेख करने वाला अधिकारी। (१२), (२२), (४२)

अभ्यागारिक = अन्तःपुर का सेवक वर्ग। (२१)

अमात्य = मंत्रिमंडल/ मुख्यमंत्री। (९७)

अश्वाध्यक्ष = अश्व विभाग का प्रमुख अधिकारी। (५१)

आटविक = वन विभाग का प्रमुख। (१०)

(अटवि = अरण्य, वन)

आयुक्त पुरुष = राज्य की मंत्रणा में अन्तर्भूत अधिकारी। (१५)

आस्तरक = राजा का बिस्तर बिछोने वाला। (१२)

उपयुक्त = नियोजित अधिकारी वर्ग। (३०)

उभयवेतन = दो राज्यों से वेतन पाने वाला गुप्तचर। (१२)

एकैश्वर्य = एक पुरुष के अधीन सर्वाधिकार। (९६)

ऐश्वर्य = एकच्छत्री आधिपत्य। (५)

औपस्थायिक वर्ग (गजशाला का सेवक वर्ग) = **चिकित्सक** (गजवैद्य), **अनीकस्थ, आरोहक, आधोरण** (महावत), **हस्तिपक, औपचारिक, विधापाचक, यावसिक** (घास खिलाने वाला), **पादपाशिक, कुटीरक्षक, औपशायिक** (साथ में सोने वाला) (कुल ११)

औपस्थायुक = हाथी को सम्हालने वाला (महावत)। (१२)

ईश्वर = राजा, सर्वाधिपति। (३१)

उत्तराध्यक्ष = वरिष्ठ अधिकारी। (३०)

कर्मकर वर्ग = नौकर, चाकर, मजदूर। (३), (३६), (७०)

कार्यान्तिक = खनिज का अधिकारी। (१२)

कार्मिक = अधिकारी। (२८)

कार्वटिक (या खार्वटिक) = २०० गावों का प्रमुख।

कुप्याध्यक्ष = जंगल का अधिकारी। (२) (३८)

कुप्योपजीवी = कुप्याध्यक्ष या वनसंपत्ति पर जीविका करने वाला।

खन्यध्यक्ष = खनि विभाग का प्रमुख। (३३)

गणिकाध्यक्ष = राजप्रासाद में सवेतन सेवा करने वाली स्त्रियों का प्रमुख। (४८)

गाणनिक्य = हिसाब रखने वाला। (२८)

गाणनिक्य = दर्ज़ करने वाला, (रिकार्डकिपर)

गूढ पुरुष = गुप्तचर खुफिया। (१), (११)

गोध्यक्ष = बैल, गाय, भैस आदि पशुओं का प्रमुख। (५०)

गोप = पांच या दस गांवों का प्रमुख।

गोप = १०, २०, या ४० कुलों पर निगरानी रखने वाला नगर का अधिकारी। (५७)

गोपायक = पहरेदार, चौकीदार। (२८)

गोप के प्रमुख कर्तव्य = ग्रामसीमा क्षेत्र – वनमर्यादा, पथप्रमाण, सप्रदान (दान), विक्रय, अनुग्रह (इनाम), परिहार (करमाफी), करद, अकरद, गृहसंस्थान, (मनुष्य – पशुगणना), गांव की प्राप्ति- इनका हिसाब रखना। (कुल १०)। (५६)

ग्रामकूट = गांव का प्रमुख (८१)।

चातुरन्त = समुद्रवलयांकित पृथ्वी का अधिपति।

चाररक्ष = गुप्तचरों पर निगरानी रखने वाला। (१२९)

चोररज्जुक = एक सामान्य ग्रामाधिकारी। (९०)

दण्डवृद्ध = वृद्ध सेनाधिकारी। (९३)

दशवर्गाधिपति = दस दस सैनिकों के प्रमुख।

दशवर्गिक = पुरोहित आदि दस वर्गों के नेता गण। (२१)

दूतप्रणिधि = राजसभा की यंत्रणा का ज्ञान रखने वाला दूत। (१६)

देवताध्यक्ष = देवस्थान का प्रमुख। पुजारी। (२७)

दौवारिक = द्वारपाल, द्वाररक्षक। (२१)

धर्मस्थ = (१) न्यायाधीश, (५८) (६०)

(२) सामान्य कैदी। (२६)

धर्मावसथी = धर्मस्थान का व्यवस्थापक। (५७)

नदीपाल = तीर्थरक्षक अधिकारी। (२०)

नागरक (या नागरिक) = नगर प्रमुख। (२७), (५७)

नागवनाध्यक्ष = हाथी वाले जंगल का प्रमुख। (२३)

नागवन के चार प्रकार = पार्वत, नादेय, सारस, आनूप।

नायक = १० सेनापतियों का प्रमुख। अर्थात् सेना के १ हजार अंगों का प्रमुख। (१२, (१३४)

नावध्यक्ष = नौकाविभाग प्रमुख। (४९)

निगूढोपहित = गुप्तता से रहने वाला जासूसी अधिकारी। (४६)

नित्याधिकार = एक ही अधिकार पर सदा के लिये नियुक्त व्यक्ति। (३०)

निधातृ निधातृक = विधायक – कोषप्रमुख, खजांची (२८)

निबन्धक = हिसाब लिखने वाला, मुनीम। (२८)

निसृष्टार्थ = पूर्ण अधिकार प्राप्त गुणसंपत्र दूत।

नीवीग्राहक = खजांची, कोशप्रमुख (३०)

प्रकृत = किसी विभाग का अधिकारी। (२८)

प्रकृति = अमात्यादि उच्च अधिकारी वर्ग। (११४)

प्रणिधि = अधिकारी (१०)।

प्रतिग्राहक = वसूली जमा करने वाला (२८)

प्रदेष्टा = १) पुलीस अधिकारी (१२) २) विभागाधिकारी (७८) ३) गोप तथा स्थानिक के कर्तव्यों का पर्यवेक्षक अधिकारी। (५६), (९३)
प्रशास्ता = सेना का एक नियामक अधिकारी।
प्रसाधक = राजा को सजाने वाला।
प्रावरक = राजा की वेशभूषा करने वाला।
प्रावादक = राजा को कथा सुनाने वाला।
प्रशास्तु = छावनी का अधिकारी।
पण्याधिष्ठाता = माल की विक्री करने वाला। (३७)
पण्याध्यक्ष = विकाऊ माल का प्रमुख (७९)
पत्तनाध्यक्ष = बंदरगाह का प्रमुख। (४९)
पत्त्यध्यक्ष = पैदल सैन्यविभाग का प्रमुख। (२) (पत्ति = पैदल सेना।)
परिकर्मी = सेवा में कुशल नौकर वर्ग। (४५)
पादगोप = सेना में अश्वरथ तथा हाथी के रक्षक पदाति वीर। (१३३)
पादपारिक = हाथी जैसे पशुओं के पैरों में पाश बांधने वाला। (२३)
पौतवाध्यक्ष = वजन और नाप का अधिकारी। (३४) (३५)
पौरव्यावहारिक = नगराध्यक्ष। (१२)
बन्धकीपोषक = वेश्यागृह का संचालक। (९२)
बन्धनागाराध्यक्ष = कारालय प्रमुख। (८६)
बाहूत्सार = राजा का शरीररक्षक।
भृत्य (या भृत) = वेतन पर नियुक्त कायम नौकर। (५४)
महामात्र = अमात्य या उच्चाधिकारी। (१०), (२६), (२८)
माहानसिक = पाकशाला का अधिकारी। (१९)
मुद्राध्यक्ष = टकसाल का प्रमुख। (२७)
मुद्राध्यक्ष = अनुमती देने वाला अधिकारी।(५५)
योगपुरुष = गुप्तचर। (२१)(९२)
योगोपनिषत्प्रणिधि = गुप्तचर। (९९)
योग्याचार्य = अश्वशिक्षक। (५१)
रक्षी = आरक्षक (पुलीस)। इनके दो प्रकार १) दृश्य २) अदृश्य। (१६)
रथाध्यक्ष = रथ सेना का अधिकारी (५४)
राजव्यंजन = राजा के समान दिखने वाला व्यक्ति। (तोतया – मराठी में)। (९६)
राष्ट्रपाल = प्रान्त का प्रमुख अधिकारी। राज्यपाल। (९३)
रूपदासी = राजा को हार, पुष्पगुच्छ आदि भोग देने वाली गणिका। (४८)
लक्षणाध्यक्ष = टकसाल का प्रमुख। (३३)
लुब्धवर्ग = अधिकारी वर्ग, जिसका आय से व्यय अधिक हैं, जो अपनी पात्रता से अधिक काम करते हैं। (१४)
लेखक = कारकून, बाबू (क्लर्क), मुनीम (३०)
लोहाध्यक्ष = धातुखदानों का अधिकारी (३३)
विवीताध्यक्ष = गोचर भूमिका प्रमुख। (२) (५५)
वैदेहक व्यंजन = व्यापारी का वेषधारण करने वाला गुप्तचर (४२)
व्यावहारिकाध्यक्ष = व्यापार प्रमुख। (२४)
शुल्काध्यक्ष = कर या चुंगी वसूली करने वाला अधिकारी। (२) (४२)
शून्यपाल = राजा की अनुपस्थिति में व्यवहार सम्हालने वाला अधिकारी। (१३७)
संनिधाता = कोशपाल, भांडार प्रमुख। (१०)(२६)
संख्यायक = गांव का हिसाब रखने वाला अधिकारी। (२२)(३०)
सत्री = कपटवेशधारी गुप्तचर। (८१)
समाहर्तृ = करवसूली करने वाला, जमाबंदी विभाग का प्रमुख। (२, १०, २७, ५६)
संस्थाध्यक्ष = व्यापार विभाग का प्रमुख। (७९)
सीताध्यक्ष = कृषि विभाग का प्रमुख (२)(४५)
सूत्राध्यक्ष = सूतकाम का अधिकारी (४४)
सुराध्यक्ष = आबकारी या मदिरा विभाग का प्रमुख। (२), (४६)
सुवर्णाध्यक्ष = कोशाधिकारी। (२)(३४)
सूत्राध्यक्ष = बुनकरों के काम की देखरेख करने वाला प्रमुख अधिकारी। (२)
सूनाध्यक्ष = कसाईखाने का प्रमुख। (२) (४७)
सेनापति = दस पदिकों का प्रमुख (अर्थात् १०० सेनांगों का प्रमुख। (१३४)
सैमिक = सीमारक्षक। (२३)
सौवर्णिक = (२) अधिकारी द्वारा नियुक्त सुनार। (३४) (३५)
सौस्नातिक = राजा का स्नान होनेपर कुशलता पूछने वाला। (२१)
स्थानिक = नगर के किसी एक विभाग का अधिकारी।
स्थानिक = (३) देश के चतुर्थ भाग का प्रमुख (प्रांत प्रमुख)
हस्त्यध्यक्ष = पीलखाने का प्रमुख।(५२)(५३)

* * *

वर्ग - ६

कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित नर-नारी जीवन संबंधी परिभाषा

अधिवेदनिक = पतिद्वारा दूसरा विवाह करने के कारण प्राप्त नुकसान भरपाई। (६०)

अनिष्कासिनी = बुर्के वाली स्त्री। (५८)

अनुलोमपुत्र = उच्चवर्णियों से अवरवर्णीय स्त्री द्वारा उत्पन्न पुत्र। (६४)

अन्तर्वेदी = विवाहार्थ यज्ञवेदी (वोहले - मराठी में)। (५९)

अन्यंगा = पंगु स्त्री। (४४)

अन्वाधि = नियमानुसार पालक (स्त्री का)। (६०)

अन्वाधेय = विवाहनिमित्त स्त्री को मिलने वाला उपहार। (५९)

अन्वायन = विवाह के वाद पिता के घर से पति के घर जाने वाला स्त्री का सामान। (४२)

अपविद्ध पुत्र = अपरियुक्त पुत्र। इस पर जो संस्कार करता है उसी का यह धर्मतः पुत्र माना जाता है। (६४) (आजकल के अनाथालयों में इसी प्रकार के पुत्र कन्या पाले जाते हैं।)

अपुत्रा = जिसके पुत्र अल्पजीवी होते हैं ऐसी स्त्री। (५९)

अभिजन = ज्ञातिसंबंध, उत्तम कुल। (१२)

असवर्णपुत्र = (प्रकार) ब्राह्मणपुरुष + क्षत्रिय स्त्री, **अंबष्ठ** = (ब्राह्मण पु. + वैश्य स्त्री), निषाद (या पाराशव (ब्राह्मण पु. - शूद्र स्त्री)। उग्र- क्षत्रिय पु. + शूद्र स्त्री), शूद्र (वैश्य पु. + शूद्र स्त्री) क्षत्रिय पु. + वैश्य स्त्री = असवर्ण। वैश्य पु. + शूद्र स्त्री = असवर्ण। (६४)

आयोगव = प्रतिलोम पुत्र, (शूद्रपुरुष द्वारा ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न)। (६४)

आर्ष विवाह = वर पक्ष द्वारा गोमिथुन (दो गाय), या (बैल जोड़ी), या एक गाय और बैल लेकर योजित विवाह। (५९)

आसुर विवाह = वधूपक्ष से शुल्क (दहेज) लेकर आयोजित विवाह। (५९)

आहितिका = गिरवी रखी हुई स्त्री। (८६)

उपगत पुत्र = पुत्रभाव से किसी के पास रहने वाला। (६४)

औरस पुत्र = यथाविधि विवाहित स्त्री से स्वयं पतिद्वारा उत्पादित। अथवा पुत्रिका (कृतक कन्या) का पुत्र। (६४)

कटवानक = पड़दा।

कन्या प्रकर्म = बलात्कार पूर्वक अविवाहिता से संभोग। (४)

कानीन पुत्र = कन्या का विवाह पूर्व संभोग से उत्पन्न। यह प्रायः "अपविद्ध" होता है। उदा. महाभारत का कर्ण।

कामोपधा = स्त्री विषयक प्रलोभन द्वारा गूढ परीक्षा। (१०)

कुटुम्बकामा = वैधव्य आने पर श्वशुर की अनुमति से दूसरा विवाह करने वाली (इसे पूर्व पति और श्वशुर द्वारा प्रदत्त धन पाने का अधिकार था। (५९)

कुल्या = (१) कुलीन स्त्री। (२०)

कुशीलव = वहुरूपी (४८) वैदेहिक जातीय पुरुषद्वारा, अंबष्ठ जातीय स्त्री में उत्पन्न। (देखिये वैण) (६४)

कृतक पुत्र = जिसे पुत्र के स्वधा-रिक्थादि अधिकार दिये जाते हैं। (६४)

कौमारभृत्य = सूतिकाशास्त्रज्ञ। (१७)

क्रीतपुत्र = मूल्य देकर प्राप्त किया हुआ पुत्र। (६४)

क्षत्ता = शूद्र पुरुष द्वारा क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न प्रतिलोम पुत्र। (६४)

क्षेत्रज पुत्र = (क्षेत्र = स्त्री) = नियोग विधि के अनुसार क्षेत्र में उत्पन्न (जैसे धृतराष्ट्र, पंडु, विदुर)।

गणिका = (प्रकार) = दासी, रूपदासी, रूपाजीवा, गूढजीवा, रंगोपजीविनी, मातृका। (४८)

गर्भभर्म = गर्भपोषण। (१-१७)

गर्भव्याधिवैद्य = गर्भरोग के विशेषज्ञ वैद्य। (१-२०)

गांधर्व विवाह = वधूवर के परस्पर प्रेम या अनुमति (मिथःसमवाय) से योजित विवाह। (५९)

गूढज पुत्र = बांधवों के घर में गूढ संभोग के कारण उत्पन्न। नियोगज पुत्र के समान इसे द्विपितृकता से प्राप्त अधिकार नहीं होते। (६४)

चण्डाल = शूद्र पुरुष को वैश्य स्त्री से उत्पन्न हुआ प्रतिलोम पुत्र। (६४)

छन्दवासिनी = स्वतंत्र रहने वाली (विधवा आदि)। (७७)

ज्ञातिकुल = (स्त्री के लिए) मातृ-पितृगृह, मायका। (६०)

तीर्थाकांक्षा = मासिक रजोदर्शन तक पति की प्रतीक्षा। (पंच-तीर्थाकांक्षा, सप्त-तीर्थाकांक्षा इ.) (६०)

तीर्थोपरोध = ऋतुस्नात स्त्री से समागम न करना। (६०) (तीर्थोपरोधो हि धर्मवधः इति कौटिल्यः। **धर्मवध** = धर्म का उल्लंघन।

दत्त = (या दत्तक पुत्र) मातापिता द्वारा तथाविधि समर्पित। (६४)

दारकर्म = विवाह संस्कार। (५)

दैव विवाह = अन्तर्वेदी (विवाह वेदी) पर ऋत्विक् को कन्या का दान। (५९)

द्विपितृक पुत्र = क्षेत्रज पुत्र। जन्मदाता और माता का पति धर्मतः दोनों इसके पिता होते है। यह "द्विगोत्र" भी होता है। दोनों की संपत्ति का उत्तराधिकारी तथा दोनों का पिण्डदान करता है।

निन्दु = मृतपुत्रा या जिसके पुत्र जन्मतः मरते हैं ऐसी स्त्री। (५९)

नियुक्त = नियोग पद्धति से पुत्र उत्पन्न करने वाला। (६३)

निवेशकाल = विधवा द्वारा पुनर्विवाह किये जाने पर, दूसरे पति के घर में प्रवेश करने का काल। (५९)

नैवेशनिक = विवाह पर हुआ व्यय। (६२)

प्रतिलोमपुत्र = निकृष्ठ वर्णीय पुरुष द्वारा उच्चवर्णीय स्त्री से उत्पन्न। (६४)

प्राजापत्य विवाह = "दोनो मिल कर धर्माचरण करो" इस आदेश से संपन्न विधियुक्त विवाह। (५९)

प्रादानिक = कन्या विवाह के निमित्त (पिता की संपत्ति का) देय अंश। (६२)

बन्धकी = वेश्या।(१३५)

ब्राह्म विवाह = अलंकृत कन्या का विधियुक्त दान। (५९)

भर्म समर्थ = भरण पोषण करने में समर्थ। (६०)

भर्मणी = अन्नवस्त्रादि जीविका का अधिकार वाली स्त्री। (६०)

मागध = वैश्य पुरुष को ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न हुआ प्रतिलोम पुत्र। (६४)

मातृका = उपमाता, धाय, दाई। (४८)

मानुषोपेत = पौरुषयुक्त, अक्लीब। (६३)

राक्षस विवाह = बलात्कार से (कन्या का) अपहरण द्वारा विवाह। (५९)

रूपाजीवा = (१) सुरूप पर जीविका करने वाली (नटी, नर्तकी जैसी कलाकार स्त्री। (४८) (२) वेश्या। (२०)

विन्दमाना = पुनर्विवाह करने वाली। (५९)

विवाह (आठ प्रकार) = **ब्राह्म** - (सालंकृत कन्यादान), **प्राजापत्य** = (ज्येष्ठ पुरुषों द्वारा तय या निश्चित), **आर्ष** (वर पक्ष की ओर से दो गायें (या बैलजोड़ी) देने पर निश्चित), **दैव** वेदी पर ऋत्विक को कन्या का दान), **गांधर्व** = वधूवर के प्रेम संबंध के कारण), **आसुर** – (बंधु या वरपक्ष से शुल्क लेकर), **राक्षस** – (बलात्कार से वरपक्ष द्वारा अपहरण). **पैशाच** –(सुप्त कन्या-अपहरण)। (५९)

वृषली = शूद्र स्त्री।

वेशशौण्डिका = वेश्यागृह का मद्यपान कक्ष।

वैण = अंबष्ठ जातीय पुरुष द्वारा वैदेहिक जाती की स्त्री में उत्पन्न। (देखिये कुशीलव) (६४)

वैदेहक = वैश्य को क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न पुत्र। (६४)

शिल्पकारिका = स्त्रियों की केशरचना करने वाली। (१२)

शुल्कावरुद्धा = धन आदि देकर जिसका विवाह निश्चित किया गया हो ऐसी कुमारी। (८९)

शूद्र-प्रकर्म = विधियुक्त विवाहादि कर्म करने वाले शूद्र। (७२)

श्वपाक = उग्रजातीय पुरुष द्वारा क्षत्ता जातीय स्त्री में उत्पन्न। (६४)

सहोद पुत्र = गर्भवती अवस्था में विवाह होने पर उत्पन्न। (६४)

सूत = क्षत्रिय पुरुष को ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न प्रतिलोम पुत्र। (६४)

स्तेय = राक्षस और पैशाच विवाह होने पर स्त्रीधन का उपयोग करना। (यह चोरी है और चोरी के समान व्यवहार में दण्ड होता है।) (५९)

स्त्रीधन = २ हजार से अधिक पण धनराशि या आबध्य (अलंकार)।

स्वापतेय = पतिद्वारा ससुराल से प्राप्त ,संपत्ति। (४८)

★ ★ ★

वर्ग - ७ (परिशिष्ट)

कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रयुक्त - संकीर्ण शब्दावली

(वर्गीकृत पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त शब्दों का संग्रह)

अकान्ति (लेख दोष) =अचारु, विषम और विराग (फीके अस्पष्ट) अक्षर, (३१)

अक्षीब = समुद्री नमक।

अग्निधारण करनेवाले पदार्थ = सरल, देवदारु, पूतितृष्ण, गुग्गुल, श्रीवेष्टकक, सर्ज - इन वृक्षोंसे रस तथा खर, उष्ट्र, अवी इन प्राणियों की विष्टा (कुल ८) (१४४)

अग्निरस = विष (१२)

अग्निष्ठ = राख, भस्म (३५)

अग्न्याधान = सौ गायों का स्वामित्व होने पर गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण का कर्तव्य। अग्न्याधान करने वाले को "आहिताग्नि" कहते हैं। इतना पर्याप्त गोधन होने पर अनाहिताग्नि रहने वाला निंद्य ब्राह्मण माना जाता है। (देखिये यज्वा)

अंगविद्या = सामुद्रिक लक्षणोंका शास्त्र। (१-११)

अंगार = कोयला। (३३)

अधिमास (अधिकमास) = २।। वर्षों के बाद आने वाला महीना (पहला अधिक मास आषाढ में और दूसरा २।। वर्षों के बाद पौष मास में आता हैं। (४५)

अनपाकर्म = (नकारना)। (७३)

अपराजिता = लक्ष्मीदेवी, दुर्गादेवी। (२५)

अपरान्त = कोंकण। (४५)

अपशब्द = (लेखदोष)- लिंग, वचन, काल, और कारक (विभक्ति) का अयोग्य प्रयोग। (३१)

अपाश्रयवान् = परावलंबी। (५८)

अप्रतिहत = विष्णुदेवता। (२५)

अप्सारक = नेपाली कंबल जो वर्षा से संरक्षण करता हैं। (३२)

अभ्रपटल = अभ्रक के टुकड़े (३५)

अय = (सुदैव) दैव और योग से इष्ट फल की प्राप्ति। (अनिष्ट फल की प्राप्ति **अनय** अर्थात् दुर्दैव। (९८)

अरिष्ट = औषधोपयोगी मदिरा। (४६)

अर्थ त्रिवर्ग = अर्थ, धर्म, काम।

अनर्थ त्रिवर्ग = अनर्थ, अधर्म, शोक।

संशय त्रिवर्ग = अर्थ-अनर्थ, धर्म-अधर्म, काम-शोक। (१२८)

अवक्षार = म्लान, क्षीण। (१२२)

अवक्षिप्त = अपमानित। (१०)

अवरवर्ण = लोगों के ३ गुण= सर्वभोगसहत्व, बहुत्व, ध्रुवत्व। (१०९)

अश्मक = पश्चिम महाराष्ट्र। (४५)

अष्टक = मोम। (३५)

अस्थितुल्थ = हड्डी के चुर्ण का लेप। (३४)

अहोरात्रोत्तर = अधिक कालमर्यादा। (१३६)

आगन्तुलवण = विदेश से आया हुआ नमक। (३३)

आतोद्य = वाद्य। (२१)

अन्वीक्षिकी = १) सांख्य, योग, तर्कवाद तीनों विद्याओं की संज्ञा।

२) त्रयी वार्ता और दण्डनीति के वलाबल की परीक्षा करने वाली विद्या। (२)

आपूपिक = मिष्टान्न बनाने वाला, हलवाई। (११५)

आरकूट = पीतल (३३)

आरालिक = हलवाई, मिठाई बनाने वाला। (१२) (११५)

आर्यप्राण शूद्र = आर्यवंशीय शूद्र। (७०)

आर्यभक्त = एक भले मनुष्य का सरल व्यवहार। (३६)

आवेशनिक = अतिथि, मेहमान। (९१)

आसुरीवृत्ति = कामादि विकारों का उत्सेक (अतिरेक) और अपनय। (१२८)

आसुरी सृष्टि = शलभ, मूषक आदि उपद्रवकारक जीव। (१२८)

अशीतिक पुरुष = ८० वर्षो की आयु वाला पुरुष।

आशुग्रन्थ = शब्द-वाक्यों की शीघ्र रचना करने वाला। (३१)

अहितुण्डिक = सांप पकड़ने वाला, सपेरा।

इतिहास = पुराण, इतिवृत्त (बखर), आख्यायिका, उदाहरण (पुराने वृतान्त), धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र- इनका इतिहास विषय में अन्तर्भाव होता है। (५)

इंगितभेद = नित्य आचरण में अंतर। (१५)

इन्द्रिय जय = श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों को उनके शब्दादि विषयों की प्राप्ति न होना।

२) शास्त्रोक्त कर्तव्यों का पालन करना। (शास्त्रानुष्ठान)

३) कामादि षड्रिपुओं का त्याग करने से उत्पन्न योग्यता। (६)

उत्क्रम = निश्चित क्रम से अलग क्रम। (२८)

उत्सेचक = नाव के अंदर का पानी फेंकने वाला।

उदास्थित = संन्यास मार्ग से भ्रष्ट (प्रव्रज्या प्रत्यवसित), (११) ऐसे लोग गुप्तचर होते है।

उपवास = गांव वाला पड़ोसी या सहकारी। (६७)

उपशाल = धर्मशाला। (६७)

ऋतुमान = दो मास का काल।

वर्षा = श्रावण भाद्रपद **शरत्** = आश्विन कार्तिक, **हेमन्त** = मार्गशीर्ष पौष। **शिशिर** = माघ, फाल्गुन, **वसन्त** = चैत्र वैशाख। **ग्रीष्म** = ज्येष्ठ, आषाढ। **उत्तरायण** = शिशिरादि।

दक्षिणायन = वर्षादि। (४१)

सूर्यमान = दो ऋतु= ६१ दिन। चंद्रमान, दो ऋतु (५९ दिन) (४१)

औदनिक = चावल पकाने वाले, लाही-फुटाने वाले भडभुंजे। (५७)

औद्र = जलचर की चमड़ी।

आपूपिक = रोटी बनाने वाले। (३६)

कटव्रज= जलपूर्ण घट (जो ग्रीष्मकाल में मार्ग पर रखे जाते थे। (५७)

कटशर्करा = मिश्री।

कटुकवर्ग = पिपली, कालीमिर्च, सोंठ, जीरा, राई, आदि तीखे पदार्थ। (३६)

कटुशर्करा = वालु के कण। (३५)

कपिशीर्षक = रास्ते के किनारे लगाये हुए सीमा के पत्थर।

करट = कृमियुक्त।

करटक मुख = कैंची का जोड। (३५)

कर्मगुह्य = खराब वस्तु को सुंदर दिखाने का उपचार। (३२)

कर्मव्यापद् = मंत्र-तंत्र के कर्म में दोष। (९१)

कलभित्तिका = हाथी की झूल।

काक्षीब = गोपीचन्दन, फिटकरी।

काच = ठगना, वंचना।

काणलिंग = अंध, पंगु इत्यादि विकलांग। (६३)

कापिशायन = मधु (द्राक्षासव) का एक प्रदेशानुसारी नाम। (४६)

कार्तान्तिक = ज्योतिषी, भविष्यवेत्ता। (१३)

कार्पासिक = सूती वस्त्र। (३२)

कालिका = उत्तम मदिरा। (४६)

काष्ठकोष्ठ = स्निग्धपदार्थ रखने योग्य लकड़ी का पात्र। (३६)

काष्टद्रोणी = पैसे रखने योग्य लकड़े की पेटी।

कासीस = नीला थोथा, हिराकस।

किट्ट = धातु का माल। (३३)

किलाट = तक्र, छाछ।

किण्व = उड़द और चावल के पिष्ट से निर्मित मद्य। (४६)

कीलाट = दूषित दूध या फटा दूध। (५०)

कुहक = खलबत्ता। (३६)

कुहनी = ओखली। (६५)

कुहाक = बढ़ई (४५)

कुहक = जादू टोना करने वाला। (२०) चापलूसी, खुशामद।

कूलग्राम = बंदरगाह। (४९)

कोपमूलक = (तीन व्यसन) = वाक्पारुष्य, अर्थदूषण, दण्डपारुष्य। (११९)

क्रम = (या अनुक्रम) (लेखगुण) - क्रियाओं का उचित क्रम रखते हुए महत्त्व के विषय का प्रथम निर्देश करने पर अन्य कार्यों का पश्चात् निर्देश करना। (३१)

क्रमावहीन = निश्चित क्रम रहित। (२८)

क्रमुक = सुपारी। (४६)

क्षत्रिय धर्म = अध्ययन, यजन, दान, शास्त्राजीव (शस्त्रविद्या पर उपजीविका), भूतरक्षण (प्राणिमात्र का रक्षण)। (३)

क्षुद्रिका = छोटी नौका या छोटी नदी। (४९)

क्वाथन = उबालना। (३५)

क्षौम (रेशम) (नौ प्रकार) = वांगक (बंगाल का), पौंड्रक, सौवर्णकुडयक, सूर्यवर्ण, मणिस्निग्ध, उदवान, चतुरश्रवान, व्यामिश्रवान, काशिक। (३२)

क्षारवर्ण = फाणित (पक्व इक्षुरस), गुड, मत्स्यण्डिका (गुड की शक्कर), खंडशर्करा (मिश्री) (३६)

खंजन = जलमय भूमि।

खंड संघात्य = अनेक टुकडे एकत्र जोड़कर वनाया वस्त्र।

खण्डफुल्ल = दरवाजा बंद करना और खोलना। (६५)

खनकयोधी = खंदक से लढने वाले।

गण्डिका = (या गांडिका) लकड़े के टुकड़े।

गण्डिका = कूटने का पात्र, खल। (३४)

गृहपति = कुटुंबी (किसान)। (५६)

गृहपरिवाद = घरेलू बर्तन। (६३)

गृहस्थधर्म = स्वकर्माजीव (स्वकर्म से उपजीविका) समान किन्तु भिन्न गोत्रज (असमान ऋषि), परिवार में विवाह संबंध, ऋतुगामित्व (योग्य समय पर संयोग) देव, पितर, अतिथि तथा भृत्यों को अन्नादि दान और अवशिष्ट भोजन। (अ-३, अधि-१)

गोरुतपरभूमि = जहां एक स्थान से दूसरे स्थान तक गाय का रंभाना सुनाई देता है इतनी मर्यादा वाली भूमि। (२-२३)

ग्रामदेववृष = देवता के निमित्त अर्पित नंदी (६७) (इनका कोई स्वामी नहीं होता)।

ग्राम सीमावृक्ष = शाल्मली (सेमल का झाड़) शमी, क्षीर वृक्ष (वट, पीपल इ.)।

घटिका = (नालिका या नाडिका) - ४ मासा सोने की अंगुली लंबी तार की चौडाई के बराबर छिद्र वाले पात्र से १ आढक (१/४ द्रोण) पानी गलने के लिए लगने वाला समय। दिन का १/६० वा विभाग। (४१)

चक्रधर = गाड़ियों में सामुदायिक प्रवास करने वाले। (११५)

चक्षुष्मान् = दूरदर्शी। (९)

चतुरस्त्रिका = ऊन का चौकोनी (चार कोनों वाला) आसन।

चंद्रचित्रा = चमड़े का एक प्रकार (या चंद्रोत्तरा)।

चर्म = कान्तनावक, पैयक, बिसी, महाबिसी, श्यामिका, कालिका, कदली, चंद्रोत्तरा, [illegible]कुला, सामूर, चीनसी, सामूली, सातिना, नलतूला, वृत्तपुच्छा (कुल १५ प्रकार)। (इनमें वनचर और जलचर प्राणियों के चर्म अन्तर्भूत हैं। (३२)

चर्मकाण्ड = चमड़े का टोकरी। (१३०)

चरित्रसंस्थान = १) स्वाभाविक बर्ताव (२८), २) काम

का स्वरूप।

चीनसी = चमड़े की एक जात।

चुंचुवालुका = बारिक रेती।

चेल्लंबोल्लनं = कपड़े या चोटी की हलचल, बकवास। (३५)

चोररज्जू = १) चोर पकड़नेवाले सिपाही। (२७)
२) चोर पकड़ने वाले का इनाम।

चौलकर्म = जन्मजात बालक के बाल काटना यह विधि वचपन में होती हैं। और इसके बाद बालक को अक्षर और संख्या का ज्ञान दिया जाता है। (४)

छायाप्रमाण = समय बोध के लिए छाया को नापना। (१९)

जांगलीविद् = विषविद्या के विशेषज्ञ। (२१) (५१)

जीवक = जैन भिक्षु। (२०)

जोंगक = चन्दन का एक प्रकार।

जोंगनी = सांडस। (३५)

झरकपांसुधावक = रास्ते साफ करने वाला, झाडू वाला। (७८)

झषास्य- = मत्स्यमुखाकार सेना व्यूह।

डामरिक = किसी रोग की महामारी से भरा हुआ। (८६)

डिम्ब = नपुंसक बालक। (१७)

तल्पतल = पृष्ठवंश का भाग। (५२)

तार-चांदी। तार्णस = चंदन का एक प्रकार।

तार्याबाध = नांव मे बैठकर टालने, योग्य।

तालावचर = नट नर्तक तथा अन्य तमासगीर। (२५) (६०)

तीक्ष्णमूत्र = मनुष्य का या विशिष्ट पशु का मूत्र। (३३)

तीक्ष्णरस = विष, जहर। (११)

तुत्थ =लेपन क्रिया। (३४)

तूर्यभाण्डफेला = वाद्य और अलंकार की पेटी। (११५)

तूर्यकर = बाजे वाले। (९३)

तुलोत्सेध = १) खंभे की उंचाई, २) मयाल की लंबाई। (२८)

त्रयी = वेदविद्या जिससे धर्म और अधर्म का यथार्थ ज्ञान होता है। (२)

त्रयी = सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद इन तीनों की संज्ञा। (३)

त्रयीधर्म = चार वर्णो और चार आश्रमों के कर्म स्थापन करने वाला। (३)

त्रस्नु = भयग्रस्त जानवर। (५०)

त्रिवर्ग = धर्म, अर्थ, काम नामक तीन पुरुषार्थ।

त्रिशूल प्रकर = एक प्रकार का शस्त्र।

त्रैविद्य = तीन वेदों का ज्ञानी (६२)

त्रैविद्य = तीन वेदों का अंध्ययन करने वाला। (१९)

दम्य = अप्रशिक्षित किन्तु प्रशिक्षणयोग्य। (५२)

दायाद = संपत्ति का उत्तराधिकारी, वारिस। (६२)

दार = प्राचीर में प्रवेशनिमित्त विच्छेद।

दृतिप्लवग = तैरने लिए चमड़े के ड्रम। (१३०)

दृषद् = पीसने की चक्की। (३६)

देवरात्रिकरण = रातभर भजन करना। (८०)

दैव (कर्म) = जिसका ज्ञान घटना के पूर्व नहीं होता। (९८)

दैवकृत दुर्ग = १) नैसर्गिक भूरचना के अनुरूप। (२८) या निसगर्तः सुरक्षित दुर्ग। (११०)

दौरात्मिक व्याधि = दुराचार के कारण उत्पन्न होने वाला रोग। (९१)

द्रोणी = मजबूत पेटी। (३७)

द्विपटान = चौड़े पन्हे वाला कपड़ा। (७८)

धन्वन = अश्वत्थ या बांस।

धरक = वजन करने वाला।

धर्मसंस्थान = धार्मिक आचार की पद्धति। (२८)

धारयिष्णु = उत्तम धारणाशक्ति से युक्त। (९)

ध्मायक = भाता फूंकने वाले (३४)

नालिका = समयबोधक घटिका पात्र। (१९)

नाली = नली, पन्हाल, मूस। (३५)

निक्षेप और उपनिधि = बंद और खुला न्यास। (अमानत)। (६९)

निन्दा के ३ विषय = कुल, शील और शरीर दोष का कथन।

निबन्ध = विविध चिन्ह या लक्षण। (२३)

निमित्त = शकुनशास्त्र। (९)

निम्नयोधी = पर्वत की घाटी में लड़ने वाले।

निम्नारण्य = पर्वत की घाटी में बढ़ा हुआ अरण्य। (४४)

नियोगसंपद् = संसिद्ध कार्य को अधिक फलदायक करने की उपाय योजना। (१५)

नैमित्तिक = शकुन – अपशकुन जानने वाले (१३)

नैषेचनिक = मृत्युनिमित्त मद्य का वितरण। (१३५)

पंचक शतं शुल्कम् = सैकड़ा पांच दण्ड। (४६)

पंचबंध = पांचगुना। (दशबन्ध) = दसगुना। (७०)

पंचाशत्क = ५० वर्षों की उमरवाला (२०)

पट्टन = गांव (२७)।

पण = एक प्रकार की मुद्रा।

प्रग्रहलाभ = आदरसत्कार। (२८)

प्रचार = नया कार्य। (२७)

प्रच्छन्दक = स्वैर संचारी।

प्रतिरागी = यथास्थित रंग बताने वाला।

प्रतिसंसर्ग = भेंट, उपहार (३६)

प्रत्यक्ष = स्वयंदृष्ट (१९)

प्रमार = सर्वत्र फैलने वाला रोग।

प्रयोगोपलब्धि = प्रयोगद्वारा अनुभव पाना। (३१)

प्रयोग्य = औलाद उत्पन्न करने योग्य घोड़ा। (51)

प्रसन्नायोग = मद्य का एक प्रकार का मसाला।

प्रेक्षा = नाटक, तमाशा आदि।

प्लवक या प्लवक सैनिक = खेल कूद का तमाशा करने वाला, रस्सेपर नाचने वाला। (१३५) (४८)

प्रस्तीत = कड़ा, कठोर। (३५)

प्रशंसा = के तीन विषय - कुल, शील और शरीर –इन तीन विषयों की स्तुति होती है। (३१)

फलाम्ल = फलों की मदिरा। (४६)

फेला = पेटी, डब्बा।

बदराम्ल = बेर से बनाया अम्ल (ॲसिड)। (३४)

बाहिरिक = बौद्धविहार।

बीजोत्तरा = आमरस की विशिष्ट मदिरा। इसीको महासुरा कहते हैं। (४६)

बृहस्पतिस्तवन = स्तुत्य (सवनात्मक) यज्ञ के अंतर्भूत एक सवन। इसकी दक्षिणा नहीं दी जाती। (७१)

ब्रह्मचारि धर्म = स्वाध्याय, अग्निकार्य, अभिषेक (स्नान) भैक्षव्रत (भिक्षाटन), आचार्य तथा उनकी अनुपस्थिती में गुरुपुत्र तथा सब्रह्मचारी (गुरुकुल निवासी सहपाठी) की सेवा (प्राणान्तिकी वृत्ति)। (३)

ब्रह्मारण्य = अध्यापन तथा यज्ञादि ब्रह्मकर्म करने योग्य वन। (२३)

ब्राह्मणधर्म = अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, यज्ञ करवाना। दान प्रतिग्रह (दान का स्वीकार)। (३)

ब्राह्मण महानसावलेही = ब्राह्मण के रसोई घर में घुसकर खाने वाला अपराधी। (इस अपराध के लिये जिह्वा उखाड़ने की सजा कही गई है।) (८८)

भडिकाधिकरणी = ऐरण। (३५)

भिंगिसी = काले रंग के ८ टुकडे जोडकर बनायी नेपाली कंबल। ये वर्षासे संरक्षण करती है। (३२)

मदनवृक्ष = धतूर। (१४६)

मदिरा = चामुंडा देवी।

मद्य के ६ प्रकार = मेदक (मदक), प्रसन्न, आसव, अरिष्ट, मैरेय, मधु। (४६)

मद्य = तीन प्रकार – शुद्ध मद्य, रससिद्ध (विषयुक्त)। (१३९)

मद्यध्वज = शराब के दूकान की निशानी। (८५) (ब्राह्मण ने सुरापान का अपराध करने पर उसके मस्तक पर यह चिन्ह अंकित किया जाता था।)

मधु = मृद्वीका (द्राक्षा) रस से, निर्मित मद्य। (कापिशायन और हारहूरक = मधु के दो नाम उत्पत्ति स्थान के कारण हुए हैं। (४६)

मधु (२ प्रकार) = क्षौद्र, मार्द्वीक (द्राक्षा से निर्मित)

मधुक = ज्येष्ठमध। (४६)

मधूच्छिष्ट = मोम।

मलमास = (देखिये अधिमास) = सौरमास ३०।। दिन और चांद्रमास २९।। दिन। इन दिन मान के इस भेद से मास गणना में जो अंतर उत्पन्न होता है उसका परिहार २।। वर्षों के बाद आषाढ या पौष मांस में होता है। (४१)

महाकच्छवर्धन = सागर की पूजा।

मण्डल = शत्रु मित्र समूह। (७)

मत्स्याण्डिका = गुड़ या शक्कर या गुड़ की मदिरा। (३३)

मदनयोग = मदन वृक्ष (धतूरे) का रस पिलाना। (विष प्रयोग का एक प्रकार) (११५) (१४६)

मदनयोग व्यवहारी = गूढाजीवी, अपराधी का एक प्रकार जो मदनवृक्ष के रस का प्रयोग करता है। (८१)

मदनरस = बेहोष करनेवाली औषधि, या विष। (१८) (१३५)

माणवक = जादूगर। (९३)

माधुर्य = (लेख गुण) = मधुर अर्थ व्यक्त करने वाले सहज सुंदर शब्दों का प्रयोग। (३१)

मानुष = (कर्म) = जिसका ज्ञान घटना के पहले तर्क से हो सकता है। दैव अचिन्त्य होता है। (९८)

मानुषाग्नि = प्रेत-दहन का अग्नि।

मायायोगविद् = जादूगर, ऐन्द्रजालिक। (१९)

मार्द्वीका = मृद्वीका अर्थात् द्राक्षा से निर्मित मधु। (३६)

मुण्डा = बौद्ध भिक्षुणी (१२) जो गुप्तचर का काम करने निमित्त प्रवास करती है।

मुद्रांकवस्त्र = धोबी ने पहनने का कपड़ा। (७८)

मुस्ता = नागरमोथा (४६) **मूकमूषा** = पोली मूस।

मूढवात = तूफान (४९)

मेदक योग = मेदक नामक मद्य का मसाला।

मैत्र = निर्मत्सरी। (९)

मोषक = अन्न परोसने वाला। (२१)

मौख = गुरू-शिष्यों का संबंध।

यज्ञ के महत्त्वपूर्ण कर्म = सोमविक्रय, मध्यमोपसद्, प्रवर्ग्योद्वासन, प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन, **सावन** इन कर्मों की पूर्तता पर याजकों की दक्षिणा का प्रमाण अवलंबित होता है।

यज्वा = (सहस्र गायों का स्वामी होने पर वैदिक ब्राह्मण को यज्ञ करना आवश्यक माना गया है।) यज्वा का अर्थ है यज्ञ पूर्ण करने वाला। अयज्वा ब्राह्मण निंद्य माना जाता है। (७१) (देखिये अग्न्याधान)।

यन्त्रपत्र = सरौता। (अंडकित्ता मराठी में) (३६)

यामतूर्य = प्रहर समाप्ति सूचक नगारे या घंटा का निनाद। (५७)

युक्त = शासन द्वारा नियुक्त कर्मचारी।

योग = बुद्धिमत्ता के कारण उत्पन्न होने वाला गुण। श्रद्धा। (५)

योगदर्शन = अद्भुत दर्शन। (९२)

योगपान = घृणाजनक द्रव का प्राशन। (१७)

रसोत्तरा = आमरस की एक विशिष्ट मदिरा। (४६)

रांकव = रंकु नामक हिरन का ऊन (४४)

राढा = कान्ति, शोभा।

राढायुक्त = मिलावट किया हुआ। (७९)

रोचनी = १) चक्की २) हल्दी। (९५)

लाघविक = अल्पश्रम का काम। (३३)

लुब्धक = पशुपाल, या शिकारी। (५०) (५५)

वनस्पति विषवर्ग = कालकूट, वत्सनाभ (बचनाग), हालाहल,

मेषशृंग, मुस्त, कुष्ठ, महाविष, वेल्लितक, गौरार्द्र, बालार्द्र, मार्कट, हैमवत, कालिंगक, दारदक, अंकोलसारक, उष्ट्रक, (कुल १६ प्रकार)। (३८)

वर्धकी = बढ़ई (९२)।

वर्धमानक = घोड़े की एक चाल।

वल्लूर = १) सूखामांस (२५)
२) सूखी मछलियाँ। (९२)

वाक्य = संपूर्ण अर्थ व्यक्त करने वाला पदसमूह। (३१) (पदसमूहो वाक्यम् अर्थसमाप्तौ)।

वाक्यशक्ति = वक्तृत्व (११)

वाक्संग = अस्पष्ट बोलना, तुतलापन, तुरुलाहट।

वागुरिक = पाश की सहायता से शिकार करने वाला (वागुरा = पाश)। (२२)

वाग्ज़ीवन = भाट (१२) (१८) स्तुतिपाठक।

वानप्रस्थधर्म = ब्रह्मचर्य, भूमि पर शयन, जटा अजिन धारण, अग्निहोत्र, अभिषेक (स्नान) देवता, पितर और अतिथि की पूजा, वन्य पदार्थों का आहार। (३)

विच्छिन्नपिण्ड = चौथी पीढ़ी के अनन्तर वंशज। (६२)

वितंस = पक्षी का चित्र (जो पक्षियों को जाल में पकड़ने हेतु रखा जाता है।)

विद्रव = १) ज्वालामुखी का स्फोट, २) भागदौड़।

विलवण = नमक में मिलावट करने वाला।

विष्टादण्ड = अस्थान में मलोत्सर्ग निमित्त दण्ड। (५७)

विस्त्र = दुर्गंध युक्त। (३५)

वृक्षायुर्वेद = वनस्पतिशास्त्र। (४५)

वृश्चिकबन्ध = बिच्छूके समान बांध के रखना।

वेद = अथर्ववेद और इतिहास - इन दोनों की संज्ञा। (रामायण और महाभारत की संज्ञा इतिहास है।) (अ-३)

वेदांग = शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंदोविचिति (छंदःशास्त्र) और ज्योतिष - इन छह शास्त्रों की संज्ञा। (३)

व्यंजन = हाथी आदि के लक्षण। (२३)

व्याघात = (लेख दोष) = पहले और दूसरे वाक्य में असंबंधता या परस्पर विरोध। (३१)

व्युष्ट = उदय से उदय तक का समय। अर्थात् पूरा एक दिन। (२८)

शकल = मीठी बातें करने वाला।

शुक्तवर्ग = इसमे विविध प्रकार के आचार और मुरब्बे अन्तर्भूत होते हैं। (३६)

शूद्रधर्म = द्विजाति की सेवा, वार्ता (कृषि गोरक्षण), कारु (कारीगरी), कुशीलव कर्म। (कुशीलव = नटवर्ग) (३)

श्मशानवाट = श्मशानभूमि। (२५)

श्वगणि = शिकारी कुत्ते पालने वाले लोग। (५५)

श्वेतसुरा = पारिवारिक धार्मिक कृत्यों में उपयुक्त विशिष्ट मदिरा। एक उत्तम प्रकार की मदिरा। (४६)

संस्थान = गणित।

संख्याप्रचार = नाम आदि को दर्ज़ करना। (२८)

संघट्टन = लोगों की भीड़। (९०)

संघात = समूह, गुट। (११२)

संज्ञालिपि = सांकेतिक लिपि। (१२)

सन्निधात = घर में जमा कर रखना। (३०)

समानतीर्थ्य = सहाध्यायी। (७३)

समेधाशास्ति = भविष्यकथन (११)

सम्पत् = अनेक गुणों का एकत्र अस्तित्व। (९७)

संप्लव (एक लेख दोष) = अयोग्य वर्गीकरण। अयोग्य स्थान पर लेख का विभाजन करना। (३१)

संबन्ध (एक लेख गुण) = प्रारंभ में लिखे हुए अर्थ से अन्त तक कहीं विरोध न होना। (३१)

संभारिकी = आमरस की विशिष्ट मदिरा, जिसमें मसाले का प्रमाण अधिक होता है। (४६)

संवनन = वशीकरण। (८१)

संवाहक = अंगमर्दन करने वाला। (१२) (२१)

संवीत = मिश्रित रंगवाला। (३४)

सर्वसामान्य धर्म = अहिंसा, सत्य, शुचिता, आनृशंस्य (सदयता) और क्षमा। (३)

सामेधिक = वैभव प्राप्ति की साधना जानने वाला (११) (१४२)

सांवनिकी = वशीकरण करने वाली औषधि, या मादक औषधि। (९१) (१३५)

सीधू = गुड़ की मदिरा। (४६)

सुराकिण्वविजय = दारु करने की क्रिया।

सुराकिण्वव्यवहार = मदिरा बनाना और बेचना (४६)

सुवर्चिका = क्षार का एक प्रकार (३६)

सूद = रसोईवाला। (१२)

सूद-आरालिक व्यंजन प्रणिहित = मांसान्न और पक्वान्न बेचने वाले के वेश में गुप्तचर। (९१)

सूपकार = दाल, शाक पकाने वाला।

सोमारण्य = सोम याग करने योग्य अरण्यस्थल (२३)

सौभिक = गारुडी, ऐन्द्रजालिक, जादूवाला। (१३५)

स्कन्धोपनेय = हप्ते हप्ते से प्रदान करने योग्य।

स्तवन के ४ विषय = जाति, कुल, श्रुत (ज्ञान) और वृत्त। (१२७)

स्तेय = क्षुद्रक, द्रव्य, स्थूलक द्रव्य (इस के प्रकार = अवर, मध्यम, वर) (७४)

स्नापक = हजाम या स्नान करने वाला। (१२) (२१)

स्नेह = तेल घी इ. (२५)

स्पष्टत्व = (लेखगुण) सर्वत्र परिचित शब्दों का प्रयोग करना। (३१)

स्वधादान = श्राद्ध क्रिया में अर्पित पिंडोदक। (६३)

स्वधापाश = मृत पिता से संबंधित ज्येष्ठ पुत्र के कर्तव्य। (६३)

स्वप्न = अकाल निद्रा। (५२)

हारहूरक = हरहूरनामक नगर का मधु (द्राक्षामद्य) (४६)

हेड = अवकृपा। (९७)

★ ★ ★

वर्ग - ८

कौटिलीय अर्थशास्त्र के अतिरिक्त अन्य ग्रंथोंसे संकलित

अर्थशास्त्रीय शब्दावली (संकीर्ण)

अक्षपटलिक = एक अधिकारी जो शासकीय आय-व्यय का हिसाब सम्हालता था।

अक्षौहिणी = सेना की इकाई। इसमें २१८७० रथ तथा हाथी, ६५,६१० घोड़े, १,०९,३५० पदाति सैनिक होते हैं। कुलसंख्या = २ लक्ष, १८ हजार, ७ सौ। अथवा ७२९० सेनाप्रमुख। अथवा १० अनीकिनी।

अग्निकुल = राजस्थान में चौहान, चालुक्य, परमार और परिहार नामक चार क्षत्रिय कुलों को अग्नि से उत्पन्न माना जाता है। छत्तीस राजकुलों में चार अग्निकुल क्षेष्ठ माने गये हैं।

अंगदेश = वैद्यनाथ से भुवनेश्वर तक का भू-भाग। (शक्तिसंगम तंत्र)। यह भूभाग दुर्योधन ने कर्ण को समर्पण किया था। प्राचीन भारत के १६ महाजनपदों में इसकी गणना होती थी।

अंगदीप = जम्बूद्वीप के अन्तर्गत म्लेच्छों का प्रदेश। (वायु.पु. ४८, १४-१८)

अंधक-वृष्णि = एक प्राचीन संघराज्य। महाभारत काल में अक्रूर अंधकों के और श्रीकृष्ण वृष्णियों के नेता थे।

अंध्र = दक्षिणापथ में राज्यशासन करने वाली एक प्राचीन जाति का नाम। इसने भगवान् विष्णु की आराधना से अपना उद्धार किया था। (भागवत पु. २-४-१८)

अंजलि = कौटिल्य के मतानुसार इसीको कुडव कहते हैं। जो १२½ तोले के बराबर होता है। चरक मतानुसार १६ कर्ष = १ अंजलि परिणाम।

अतिरथ = एक योद्धा जो अपने रथ में बैठकर ही युद्ध करता है।

अदेवमातृक (नदीमातृक) = जिस प्रदेश में खेती के लिये वर्षारूप माता जलवर्षण नहीं करती, अतः नदी ही खेतों के फसल की माता के समान पोषण करती है। (देवमातृक = वर्षा के जल से खेती होती है।)

अधिकरण = भोजक या अधिकरणिक न्यायाधीश।

अधिकरण मंडप = न्यायभवन।

अधिकरणिक = एक प्राचीन अधिकार पद जो कायस्थ जातीय व्यक्ति को दिया जाता था।

अधिकर्मकर = कर्मचारियों का प्रमुख निरीक्षक अधिकारी।

अध्यावहनिक = स्त्रीधन, जो वधू को पिता के घर से पतिगृह में जाते समय प्राप्त होता है। स्त्रीधन के छह प्रकारों में से एक। (मिताक्षरा-२-१४३)

अग्निदिव्य = आरोपी स्त्री-पुरुष को अपना निरपराधत्व सिद्ध करने के लिये, उबालते तेल में हाथ डालकर या हाथ में तप्त लोहपिंड पकडने का प्रयोग। इस दिव्य में निरपराधी व्यक्ति को अग्निदिव्य से क्लेश नही होता। रामायण में सीता का अग्निदिव्य प्रसिद्ध है। याज्ञवल्क्य तथा कात्यायन स्मृति में अग्निदिव्य की विधि का सविस्तर वर्णन है। (याज्ञ. स्मृ. २-१०७)

अनीक = (१) हाथी का प्रतिरक्षक। (२) सेना की एक टुकड़ी।

अनीकिनी = पूर्ण अर्थात् अक्षौहिणी सेना का दशम भाग। इसमें ७२९ सेनामुख अन्तर्भूत होते थे।

अनुग्रह = सेना के पृष्ठभाग की रक्षा करने वाला दल।

अनुबल = मुख्य सेना की रक्षा के लिये पीछे आती हुई सहायक सेना।

अनुभाव = कोष की समृद्धता तथा दण्डशक्ति की प्रखरता के कारण राजा में व्यक्त होने वाला विशेष तेज या सामर्थ्य।

अनुभोग = सेवा करने पर दी गयी मुफ्त जमीन। भूमिदान।

अनुसौख्य = सेना का पिछला भाग। या अनुरक्षक सेना।

अंतपाल = राज्य की सीमा का संरक्षक।

अन्तःप्रकृति = राजा का मंत्रिमंडल या मंत्रालय।

अन्तरीय = समुद्र के भीतर घुसा हुआ भूभाग। भूनासिका।

अंदु = हाथी के पैर बांधने की शृंखला।

अन्न (चार अवस्थाएँ) = (१) सस्य = खेत में उत्पन्न; (२) धान्य = तुषसहित सस्य; (३) आम = तुष निकाला हुआ धान्य, (४) अन्न = अग्निपर पकाया हुआ आमधान्य।

अन्वाधि = दोनों के व्यवहार में किसी तीसरे विश्वसनीय व्यक्ति के पास धरोहर (या प्रतिभूति) जमा करना।

अन्वाधेय (क) = एक प्रकार का स्त्रीधन, जो विवाह विधि के पाश्चात् संबंधियों की ओर से स्त्री को उपहार स्वरूप दिया जाता है।

अन्वाहित = एक व्यक्ति के पास आहित = रखा हुआ द्रव्य, जब किसी कारणवश उसके द्वारा, वह द्रव्य स्वामी को देने के निमित्त दूसरे व्यक्ति को दिया जाता है, तब उस द्रव्य को अनु + आहित) अन्वाहित कहते हैं। (मिताक्षरा- २-६०)

अपकर्म = ऋण चुकाना। ऋणपरिशोध।

अपलापदण्ड = न्यायालय में दोष सिद्ध होने पर भी अपने दोष को अस्वीकृत करने के कारण दण्ड।

अप्रतिरथ = ऐसा योद्धा जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं हो सकता।

अप्राप्तव्यवहार = १६ वर्ष से कम आयु होने के कारण लौकिक व्यवहार के लिए अपात्र।

अभियान = युद्ध के लिये प्रयाण। आक्रमण।

अभियुक्त = जिस पर न्यायालय में दोषारोपण किया गया हो। प्रतिवादी।

अभियोग = किसी के अपराध का शासन के प्रति निवेदन। (फिरियाद)। दो प्रकार - (१) शंकाभियोग, (२) तत्त्वाभियोग।

अभ्यमित्रीय = वह योद्धा जो वीरतापूर्वक शत्रु का सामना

करता है।

अमात्य = राजा का सहचर या अनुयायी (मंत्री) जो देशकाल परिस्थिति के अनुसार राज्य की नीति निर्धारित करता है और राजा का व्यवहार सम्हालता है। राजा के सात अंगों में आमात्य दूसरा अंग माना जाता है। आठ प्रकार – (१) **प्रधान** = सभी कार्यों को यथोचित जानने वाला। (२) **प्रतिनिधि** = कार्य-अकार्य का विवेक रखने वाला। (३) **सचिव** = सैन्य के व्यवहार जानने वाला। (४) **मंत्री** = नीतिकुशल (५) **पंडित** = धर्मतत्त्व का ज्ञानी। (६) **प्राड्विवाक** = लौकिक तथा शास्त्रोक्त नीति जानने वाला, (७) **अमात्य** = देश और काल के अनुसार कार्य की दिशा निश्चित करने वाला। (८) **सुमंत्र** = आर्थिक व्यवहार सम्हालने वाला।

अर्घसंख्यान (संस्थान) = वस्तुओं का मूल्य निर्धारण करना।

अर्जुनायन = आधुनिक आगरा-जयपुर विभाग के एक प्राचीन गणराज्य का नाम।

अर्थशास्त्र = मानव जिन (अन्न-वस्त्र, भूमि आदि) विषयों की अपेक्षा रखता है उसे 'अर्थ' कहा जाता है। चतुर्विध पुरुषार्थों में एक पुरुषार्थ का नाम है अर्थ। इसी को नीतिशास्त्र भी कहते हैं। यह धर्मशास्त्र से गौण माना जाता है। (याज्ञवल्क्य २-२१)। पृथ्वी का लाभ और पालन करने का उपाय कथन करने वाला शास्त्र (कौटिलीय अर्थशास्त्र -१-१७)

अर्थशौच = रुपये-पैसे के व्यवहार में विशुद्धता या प्रामाणिकता। (मनु. ५-१०६)

अर्धरथ = दूसरे वीर के साथ रथ में बैठकर युद्ध करने वाला वीर।

अर्धसीरी (या अर्धिक) = अपने परिश्रम के बदले में आधी फसल लेने वाला किसान। (याज्ञवल्क्य स्मृति १-१६६)

अवचूड (ल) = रथ के ऊपर लहराता हुआ वस्त्र।

अवक्रय = कर या राजस्व (राजग्राह्यं द्रव्यम्)

अवक्षयण = आग बुझाने का साधन।

अश्मयुग = आधुनिक वैज्ञानिक संशोधकों द्वारा कल्पित एक प्राचीन तम कालखंड, जब मानव अश्म (पत्थर) से अपने शस्त्र आदि बनाता था। ईसापूर्व ५० वें शतक में इसकी समाप्ति मानी जाती है। प्रारंभ ५-६ लक्ष वर्ष पूर्व।

अश्वक्रान्ता = शाक्तमतानुसार विध्याद्रि से समुद्रतट की भरतभूमि।

अश्व-महिषिका = घोड़े और भैंसे के बीच रहने वाली स्वाभाविक शत्रुता।

अष्टगतिक = आठ गतियां (कर्तव्य) पूर्ण करना जिसका धर्म है अर्थात् राजा। राजा के आठ कर्तव्य – आदान, प्रदान, आदेश देना, निषेध करना, अर्थव्यवहार, न्यायदान, दण्ड देना, बंधमुक्त करना।

अष्टधा प्रकृति = राजनीति शास्त्र के अनुसार – राजा, अमात्य, मित्र, कोश, राष्ट्र, दुर्ग, वल (सैन्य), प्रजा।

अष्टनिधि = पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुंद, नंदक, नील और शंख।

अष्टाधिकार = (अधिकार = शासन का विभाग) – जलाधिकार, स्थलाधिकार, ग्रामाधिकार, कुललेखन, ब्रह्मासन, दण्डविधिनियोग, पौरोहित्य और ज्योतिष।

असाक्षिक व्यवहार = जिसमें कोई गवाह न हो ऐसा विवाद। उदा. राम के जन्मस्थान का विवाद। (मनु ८-१०९)

असाक्षी = जिसकी साक्ष्य (गवाही) कानूनी दृष्टि से ग्राह्य हो। जो किसी कानूनी दस्तावेज को प्रमाणित करने का अधिकारी न हो।

असिक्नी = अन्तःपुर की युवति- परिचारिका।

अस्त्रविद्या = शस्त्र केवल समीपस्थ शत्रु का नाश करता है किंतु अस्त्र समीपस्थ और दूरस्थ शत्रु को भी नष्ट करता है। अस्त्र के दो भेद – (१) दिव्य और (२) अदिव्य। दिव्य अस्त्र मंत्रशक्ति से प्रयुक्त होते थे। दिव्य अस्त्रों को मायिक और अदिव्यों को निर्माण (मायारहित) कहते है। इन्हीं के तंत्रास्त्र (पाणिमुक्त), यंत्रास्त्र (यंत्रयुक्त), और मंत्रास्त्र (मंत्रयुक्त) नाम तीन प्रकार माने जाते है। मंत्रयुक्त अस्त्र के प्रयोग की चार अवस्थाएँ – मंत्र, उपचार, प्रयोग और संहार। मंत्रास्त्रों की साधना का अधिकार विशुद्ध शीलसंपन्न अधिकारी पुरुष को था।

आकाशरक्षी = किले की बाहरी दीवारों की रक्षा करने वाला।

आक्रन्द = वह राजा जो अपने मित्र राजा को दूसरे की सहायता करने से रोके।

आक्षपाटिक = द्यूतक्रीडा का निर्णायक। द्यूतगृह का अधीक्षक।

आक्षार (आक्षारण) = व्यभिचार जैसे दोष का आरोप लगाना।

आगम = साक्षिपूर्वक लिखित पत्र (दस्तावेज़)

आढक = द्रव पदार्थ का एक नाम। एक आढक में १०२४ तोले द्रव पदार्थ समाता है। अन्य मापों के नाम – कर्ष, पल, प्रसृति, कुडव, प्रस्थ, और द्रोण। (एक द्रोण = चार आढक)

आढक = अनाज का माप।
(**अन्य माप** = मुष्टि। **कुंचि** = (अष्टमुष्टि)। **पुष्कल** = (अष्ट कुंचि)। **आढक** = चार पुष्कल अर्थात २५६ मुष्टियां)।

आततायी = (छह प्रकार) = आग लगाने वाला, विष देने वाला, शस्त्रधारी उन्मत्त, डाकू, क्षेत्रहर, और स्त्रियों का अपहरण करने वाला।

आधिकरणिक = न्यायाधीश।

आधिभोग = धरोहर की वस्तु का उपभोग।

अधिस्तेन = स्वामी की अनुमति बिना धरोहर की राशि खर्च करने वाला।

आधिवेदनिक = दूसरा विवाह करने पर पहली पत्नी को सन्तोषार्थ दिया जाने वाला धन आदि उपहार। (याज्ञ. २-१४३)

आनर्त = वर्तमान गुजरात के अन्तर्गत एक प्राचीन प्रदेश

का नाम। सौराष्ट्र देश।

आनुवेश्य = पड़ोसी के बाद के घर का निवासी (निरन्तर गृहवासी प्रतिवेश्यः तद्नन्तर गृहवासी आनुवेश्यः (मनु. ८-३९२. पर कुल्लूटभट्टी)

आंध्र देश = अपरनाम – त्रिलिंग, त्रिकलिंग, वज्रदेश, मंजीर देश, नागभूमि।

आपमित्यक = विनिमय द्वारा प्राप्त वस्तु या सम्पत्ति।

आयःशूलिक = अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये प्रखर उपायों का अवलंब करने वाला। (अयःशूलेन अन्विच्छति।)

आर्य = वैदिक भारतीय समाज, यूरोभारतीय समाज; यूरो-भारतीय भाषा बोलने वाला समाज। श्रेष्ठ कुलीन कृषीवल। कर्तव्य पालन करने वाला और अकर्तव्य न करने वाला। (इस शब्द के अर्थ के विषय में आधुनिक विद्वानों ने अनेक मत व्यक्त किये हैं।

आर्यमिश्र = परम आदरणीय व्यक्ति।

आर्यावर्त = (१) गंगा-यमुना के दुआब का याज्ञिय प्रदेश जहां कृष्णमृग संचार करते हैं। (वसिष्ट धर्मसूत्र १-११-१३) (२) हिमालय और विंध्य पर्वतों के तथा पूर्व-पश्चिम समुद्र के बीच का प्रदेश (मनु. २-२२)

आर्यावर्त = आर्य (अर्थात् श्रेष्ठ) लोगों के निवास का प्रदेश। मनु के अनुसार पूर्व-पश्चिम समुद्र के तथा हिमालय - विंध्य के बीच का प्रदेश (अर्थात संपूर्ण भारत वर्ष) (मनु. २-२२)

आसेध (निषेध) = कानूनी प्रतिबंध। किसी अपराधी व्यक्ति को मनाई करने निमित्त राजाज्ञा। चार प्रकार – स्थानबद्धता, विशिष्ट समय पर उपस्थिति, प्रवास की मनाई, व्याख्यान, लेखन आदि कार्यों की मनाई (मिताक्षरा)।

आस्थानमंडप = राजसभा के निमित्त स्थापित एक सुंदर पटमंडप। (अपरनाम – दुकूलवितान)

आहरणम् = विवाह के समय वधू को दिया जाने वाला धन।

इलावृत्त = जम्बुद्वीप के अन्तर्गत ९ वर्षों (देशों) में से एक। (भागवत पु. ५-१६-७)

ईति = महासंकट। छह प्रकार – अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टिड्डीदल, तोते, परकीय आक्रमक।

उत्तम साहस दण्ड = वध, सर्वस्व हरण, निर्वासन, अंकन, और अंगच्छेद। (मिताक्षरा २-२६)

उत्तर = न्यायालय में वादी के विधान का खंडन करने वाला वाक्य। इसमें ५ गुण अपेक्षित होते हैं। पक्षव्यापक, सारभूत, असंदिग्ध, अनाकुल, व्याख्या की अपेक्षा न होना। (मिताक्षरा -२-७)

उत्तरापथ = (या उदीचीपथ) = भारत वर्ष के उत्तर भाग की प्राचीन संज्ञा।

उत्सवसंकेत = एक प्राचीन लोकगण जिसका निर्देश कालिदास ने किन्नरों के साथ किया है।

उपराजा = गणराज्य की नियामक सभा के सदस्यों के पुत्र। सदस्यों को राजा कहा जाता था।

उपरिक = एक प्राचीन अधिकार पद जो कायस्थ व्यक्ति को दिया जाता था।

उपाय चतुष्टय = साम, दान, दण्ड और भेद।

उपाय सप्तक = साम, दान, दण्ड, भेद, उपेक्षा, माया और इन्द्रजाल। (मत्स्य पु. २२२-१-३)

कच्छपनिधि = नव या अष्ट निधियों में से भूमि में गुप्त रखी हुई उपभोगहीन निधि।

कथावकाश = कथाओं के माध्यम से गुप्तचरों का काम करने वाले।

कला = मुद्दल पर लगाया गया ब्याज।

कलिस्थान चतुष्टय = द्यूत, मद्यपान, स्त्रीसंग, और सूना (कसाईखाना)। (भागवत स्कं १-१७-३८)

कात्यायन = खड्ग का एक प्रकार। (जंबिया) देखिए मंडलाग्र।

कापोलक = खड्गयुद्ध के वीर की एक सिद्ध अवस्था। अन्य प्रकार – शिखरक, ग्रीवास्थान, भूमण्डल, तीक्ष्णाग्र, मुनय और पंचघात।

कारिता वृद्धि = ऋणको ने स्वतः सूचित किया हुआ ब्याज।

कार्मुक = ताड़ की लकड़ी से बनाया गया धनुष। (क्रमुका = सुपारी)

कालका-वृद्धि = प्रतिमास देय ब्याज।

किंपुरुषवर्ष = पुराणों के अनुसार जम्बुद्वीप के अंतर्गत वर्ष संज्ञक नौ विभागों में से एक। अपरनाम-हैमवतवर्ष। यह किन्नरों का निवास स्थान माना गया है।

कुडव = द्रव पदार्थ या धान्य का एक माप (१ कुडव = १६ तोले) (अपर नाम अंजलि)।

कुंभ = २० द्रोणों का एक नाम। (अर्वाचीन पांच मन)

कुल = एक परिवार का पोषण करने के लिए पर्याप्त भूमि। (मनु ७-११९)

कुलपर्वत = देश के अन्तर्गत विभागों की सीमा निर्धारित करने वाले पर्वत। महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र ये सात कुलपर्वत कहे जाते हैं।

कुलपुत्र = राजकुल में पुत्रवत् पालित सत्कुलीन कुमार।

कुसीद = ऋण के व्याज पर उपजीविका।

कृष्णल = रत्ती। यही सुवर्ण तोलने का परिमाण था।

कृष्यन्न (या ग्राम्यान्न = दस प्रकार) व्रीहि (चावल), गोधूम (गेहूं) यव, तिल, माष (उड़द), अणु, प्रियंगु, मसूर, खल और कुल। (शतपथ ब्राह्मण – १४-९-३-२२)।

केतुमाल = जम्बुद्वीप के नव खंडों में से एक।

कोदण्ड = वेतस् के दण्ड से बनाया धनुष्य।

कोश = राज्य के मूलभूत सात अंगों में से एक। प्रजा से प्राप्त करभार तथा कृषि, खनि, और वन ही इस के आधार हैं।

क्रौंचद्वीप = पृथ्वीस्थित सप्त द्वीपों में से एक। यहां सात पर्वतों और सात नदियों का अस्तित्व पुराणों में कहा है।

क्रौंचव्यूह = युद्ध में क्रौंच पक्षी के समान सेना की रचना। (क्रौंच = बगुला)

क्षत्र = देवों तथा मनुष्यों द्वारा प्रयुक्त किए जाने वाला राज्य या शासन।

क्षुद्रक = एक प्राचीन गणराज्य।

खंड = पुराणों के अनुसार भारत वर्ष के नौ भाग। नामावली – कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ, कीकट।

खारी = धान्य या अनाज का सबसे बडे परिमाण की संज्ञा। १ खारी = १०२४ कुडव।

गण = सेना की इकाई जिसमे ९ सेनामुख (देखिये) अन्तर्भूत होते थे।

गण (सेनागण) = २७ रथ, २७ हाथी, ८१ घोडे और १३५ पदाति (कुल २७० सैनिकों का एक गण माना जाता है। (महाभारत – आदिपर्व २-११)

गणपूरक = गणराज्य के कार्यकारी मंडल की सभा में सदस्यों को उपस्थित करवाने वाला विशिष्ट अधिकारी।

गणराज्य = यौधेय, मालव, अर्जुनायन, शाक्य, लिच्छवी, कोलिय, इत्यादि प्राचीन गणों के राज्य। **दो प्रकार** – राजक और राजन्यक।

गरुडव्यूह = गरुड के समान सेना की संरचना, (भारतीय युद्ध में भीष्म ने इस व्यूह की रचना की थी)

गर्त = रथी योद्धा के लिए रथ में बैठने का स्थान।

गुण = संधिविग्रह यान, द्वैध, आसन, द्वैधीभाव, (राजनीतिशास्त्र)।

गोकर्ण = अंगुष्ठाग्र से अनामिका के अग्र तक का अन्तर

गोचर्म = एक वर्ष तक एक मनुष्य के निर्वाह के लिये पर्याप्त धान्य देने वाला भूखण्ड।

ग्राम्य धान्य = व्रीहि, यव, तिल, माण, अणु, प्रियंगु, गोधूम, मसूर, खल्व, खलकुल (या कुलित्थ) - (शतपथ ब्राह्मण १४-९-३-२२)

ग्रीवास्थान = खड्योधी वीर की एक सिद्धस्थिति। देखिए – कापोलक।

चक्रवर्ती = (१) संपूर्ण भारतवर्ष का अधिपति (२) चक्र (सामुद्रिक चिह्न) से युक्त हाथ वाला भाग्यशाली पुरुष। (३) जैनमतानुसरा चक्र (याने रत्नांकित आयुध विशेष) धारण करने वाला महापुरुष।

चक्रवृद्धि = ब्याज समय पर न देने पर ब्याज पर भी ब्याज चढाना।

चर-पंचक = (चर = गुप्त सिपाही) कापटिक (कपटी विद्यार्थी), उदास्थित (भ्रष्ट संन्यासी), गृहपतिक (निर्धन किसान), वैदेहिक (दिवालिया व्यापारी), तापस (व्यवहारी साधु)। (कौटिलीय अर्थशास्त्र १-१)

छंद = गणराज्य के कार्यकारी मण्डल के सदस्य का मत।

छंदप्रदान = शलाका द्वारा मतदान

जनपद = समान संस्कृति की जनता के निवास का प्रदेश। सात विभागों में सारे भारतीय जनपदों को वर्गीकरण – मध्य, प्राच्य, उदीच्य, दक्षिणपथ, अपरान्त, विन्ध्यपृष्ठ और पर्वत।

१६ महाजनपद = (अंगुत्तर निकाय में निर्दिष्ट) – अंग, मगध, काशी, कोसल, वृजी, मल्ल, चेदी, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवंती, गंधार, कंबोज।

जम्बुद्वीप = पुराणोक्त सात द्वीपों में से एक। भारत वर्ष जम्बुद्वीप के अन्तर्गत नौ वर्षों में से एक वर्ष है।

ताल = अंगष्ठाग्र से मध्यमा के अग्र तक का अंतर (लगभग ८ इंच)।

तीक्ष्णाग्र = खड्गयोधी वीर की एक सिद्धस्थिति। देखिए कापोलक।

तीर्थ = राजनीति शास्त्र में राजा, युवराज, पुरोहित, मंत्री, सेनापति, समाहर्ता, धर्माध्यक्ष, दुर्गपाल इत्यादि १८ अधिकारों की संज्ञा। महामात्य को कौटिल्य मुख्यतीर्थ मानते हैं।

त्रसरेणु = खिड़की से घर में आने वाले सूर्यकिरणों में दिखने वाले सूक्ष्म धूलिकण। यह सूक्ष्मतम सुवर्ण परिमाण माना जाता है। १२९६ त्रसरेणु = १ कृष्णल (अर्थात् रत्ती) यह सुवर्ण का लघुप्रमाण होता है। ४०० रत्ती = १ पल।

दाक्षिणापथ = नर्मदा से सेतुबंध तक का भारत का दक्षिण भाग।

दण्डनीति = राजनीति की अपरसंज्ञा। दण्ड = राष्ट्र का नियमन तथा अपराधी को शासन करने का राजा का अधिकार। दण्ड के प्रकार - वाग्दण्ड, धिग्दण्ड, अर्थदण्ड, देहदण्ड और मृत्युदण्ड।

दण्डपंचक = अर्थदण्ड, कारावास, निर्वासन, अंगविच्छेद और वध।

दण्डयात्रा = दिग्विजय के लिए राजा का प्रस्थान।

दुर्गपंचक = जलदुर्ग, गिरिदुर्ग, वृक्षदुर्ग, ईरिणदुर्ग (रुक्ष प्रदेश) धन्वदुर्ग (वालुकामय प्रदेश)।

दूत (तीन प्रकार) = निःसृष्टार्थ, (२) परिमितार्थ, और (३) शासन हर।

देवक्षेत्र = उत्तरगुरु प्रदेश का विशेषण।

देवप्रस्थ = असम, वंग, आदि भारत के पूर्वांचल में अन्तर्भूत होने वाले विभागों की प्राचीन संज्ञा। अन्य चार विभागों के नाम थे इन्द्रप्रस्थ, यमप्रस्थ, वरुणप्रस्थ और कूर्मप्रस्थ।

देवमातृक = ऐसा प्रदेश जहां की कृषि वर्षा पर अवलंबित होती है।

देशमुख = महाराष्ट्र की मध्ययुगीन राज्यव्यवस्था में एक अधिकार पद। अपने प्रदेश के वे सर्वाधिकारी होते थे।

द्रविड देश = विन्ध्य पर्वत के दक्षिण का भारत। इसे दक्षिणापथ भी कहते हैं।

द्रुण = चन्दनादि काष्ठ से बनाया धनुष्य। (कोदण्डमण्डन नामक ग्रंथ में धनुष्य के १८ प्रकार माने हैं।

द्रोण = एक परिमाण। ८०० तोले = १ द्रोण।

द्रोण = एक प्राचीन नाप (अर्वाचीन २० सेर), (२० द्रोण = एक कुंभ – अर्थशास्त्र)।

द्रोणीमुख = नगर के आठ प्रकारों में से एक। नदी-समुद्र के संगम पर स्थित व्यापारी केंद्र।

धन = तीन प्रकार **(१) शबल धन** = कृषि, वाणिज्य, कारीगरी, साहुकारी, नौकरी जैसे उपायों से प्राप्त। **(२) शुक्लधन** = देवता की आराधना के कारण या आनुवंशिकता के कारण प्राप्त। (३) **कृष्ण धन** = चौर्य, द्यूत, चक्रवृद्धि, लूटपाट, आदि नीच उपायों से प्राप्त। मनुस्मृति में (१०-११५) धनार्जन के सात उपायं बताए है।

धनुष (चार प्रकार) = कार्मुक, कोदण्ड, द्रुण, और धनुस्।

धनुस् = सींग या अस्थि से बनाया धनुष।

धनुर्दण्ड = भूमि का एक परिमाण। ९६ अंगुलियाँ = १ धनुर्दण्ड।

धनुर्मह (धनुर्मख). = धनुर्विद्या का कौशल्य प्रदर्शित करने हेतु प्राचीन काल में यह उत्सव होता था। रामायण में सीता स्वयंवर, महाभारत में द्रौपदी स्वयंवर, भागवत में कृष्ण का मथुरा-गमन, धनुर्मह निमित्त हुए थे। (मह = उत्सव)। (मख = यज्ञ)

धर्मारण्य = गया और उत्कल के भूभाग का प्राचीन नाम।

नगर के आठ प्रकार = राजधानी, पत्तन, (समुद्रतट स्थित व्यापार केंन्द्र), द्रोणीमुख (नदी-समुद्रसंगम पर स्थित व्यापार केंद्र), पुटभेदन (व्यापार केंद्र), निगम (कारीगरों का निवासस्थान), स्थानीय (८०० ग्रामों का केंद्रस्थान), खर्वट (दो सौ ग्रामों का केंद्र स्थान)।

नदीमातृक = ऐसा प्रदेश जहां की खेती नदी के जलपर अवलंबित होती है।

नंदकनिधि = नव या अष्ट निधियों में परिगणित उपभोगी, परोपकारी धनिक का भांडागार।

नवखण्ड (पृथ्वी के नौ विभाग) = इन्द्रद्वीप, कसेरू, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान् नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण और भारत। (मत्स्य पुराण १४७-७-८)

नाराच = पांच अग्र और पांच पिच्छ वाला बाण।

निक्षेप = अपना द्रव्य किसी विश्वासपात्र व्यक्ति के पास कुछ समय तक रखना। निक्षेप वापस न देना, चौर्य माना गया है।

निगम (या नैगम) = (१) व्यापारी या कारीगर लोगों का संघ। अपर संज्ञा – श्रेणी, पूग, गण, व्रात, संघ) (२) विशिष्ट कारीगर समाज का निवासग्राम।

नियोग = न्यायालय में वादी या प्रतिवादी का प्रतिनिधित्व करने वाला (अर्थात् वकील)। (शुक्रनीति)।

निष्क = एक सुवर्ण परिमाण। २०४८० कौडियां = १ निष्क। अथवा १०२४ काकिणी = १ निष्क।

निष्क = (१) १०८ सुवर्ण नाणक। (२) सुवर्ण हार। (३) एक पल सुवर्ण। (४) एक दीनार।

निसृष्टार्थ = देखिए राजदूत।

नीलनिधि = नव या अष्टनिधियों में परिगणित, धान्य-वस्त्रादि उपभोग्य वस्तुओं का भांडागार।

पंचघात = खड्‌युद्ध में वीर की एक सिद्ध अवस्था। देखिए – कापोलक।

पंचनद = जिस प्रदेश में वितस्ता, इरावती (असिक्नी), चंद्रभागा (परुष्णी), शतद्रु (सतलज), और विपाशा नामक पांच नदियाँ बहती हैं। इनके आधुनिक नाम हैं। झेलम्, चिनाब, रावी, बियास और सतलज।

पंचसम्राट = यौवनाश्व (मांधाता), भगीरथ, कार्तवीर्य, भरत, और मरुत् (महाभारत-सभापर्व १५-१६)

पंडित = राजा के आठ अमात्यों में धर्मतत्त्व जानने वाला।

पद्मनिधि = नव या अष्टनिधियों में से सुवर्ण, रजत, आदि धातुओं की निधि।

परिकारक = हाथी के साथ युद्धक्रीडा करने वाला।

परिमाण (या मान) = त्रसरेणु, लिक्षा, राजसर्षप, (सरसों का दाना), सुवर्ण और पल। **सोने का वजन** इस मानों से होता था। इन में कृष्णल (रत्ती) मूल प्रमाण माना जाता था। इनके अतिरिक्त वल्ल, धरण, कर्ष, निष्क, वीशी, भार, रूप्यमाषक, निष्पाव, काकिणी (कौडी), पण, द्रम्म, आदि धातुद्रव्य के परिमाण थे। **धान्य परिमाण** – में मुष्ठि, पल, प्रसृत, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण, खारी, कुंभ, (या शूर्प) वाह, कुंची, पुष्कल, आदि थे।

भूमिमापन = अंगुल, वितस्ति, प्रादेश, ताल, गोकर्ण, रत्नी, हस्त, किष्कु, धनुर्दण्ड, नाली, नल्व, गव्यूती, और गोचर्म, नामक परिमाणों से होता था।

परिमितार्थ = देखिए राजदूत।

परिवृक्ता (वृक्ती, वित्ती) = राजा की चार प्रमुख रानियों में से एक, जो परित्यक्ता सी होती है।

परिष्कन्द = रथ के साथ पैदल दौड़ने वाला।

पालागल = राजा का सन्देश वाहक।

पालागली = राजा की चार पत्नियों में चौथी। इसका सम्मान अन्य पत्नियों से कम था।

पूग = (१) व्यापारी समाज का राजमान्य का संघ। (२) विविध वर्ण तथा व्यवसाय के लोगों का संघ।

पुटभेदन = व्यापार के केंद्र का नगर। इन केंद्रों में मुहरबंद माल का पुट (गठ्ठा, पिटारा आदि) खोला जाता था।

पुरुष = पांच अरत्नी (अर्थात् ७।। फीट) का एक नाप। इसके दो प्रकार **(१) पौरुष** – (९६ अंगुल = ६ फीट) और (२) **खातपौरुष** = (८४ अंगुल = ५। फीट।) (३) **अग्निचित्यपौरुष** = १०८ अंगुल = ६।।। फीट। इसी नाप से अग्निचयन की बेदी बनायी जाती है।

पौगण्ड = १६ वर्षों की आयु तक बालक की अवस्था।

लौकिक व्यवहार में पौगण्ड-अवस्था का बालक अज्ञान माना जाता है।

पौर-जानपद = नगरवासी और ग्रामवासी लोक-प्रतिनिधियों की समिति। इस की संमति से ही राजाज्ञा का पालन होता था।

पौर = एक प्राचीन राजकीय संस्था। इसमें सभी जातियों के सदस्य होते थे जो पुर या राजधानी की व्यवस्था रखते थे। अन्य संस्था थी नैगम या निगम।

प्रकृति = राजा, मंत्री, देश, दुर्ग, कोश, सैन्य, और सामंत - इन सात राज्यांगों की संज्ञा।

प्रतिज्ञा = गणराज्य की नियामक समिति के सामने चर्चा के लिए रखा गया प्रस्ताव।

प्रतिनिधि = राजा के आठ अमात्यों में एक।

प्रधान = राजा के आठ अमात्यों में एक।

प्रस्थ = द्रव पदार्थ का एक माप। ४ कुडव = १ प्रस्थ।

प्रादेश = अंगुष्ठ के अग्र से तर्जनी के अग्र तक का अंतर।

बाण के पांच प्रकार = शर, दण्डशर, वेणु, शलाका और नाराच।

ब्रह्मावर्त = सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच का प्रदेश।

भयत्रय = अग्निभय, चोरभय और राजभय।

भागदुध = करसंग्रह करने वाला या भोजन बांटने वाला अधिकारी पुरुष।

भागहार = गांव से करभार जमा करने वाला ग्रामाधिकारी (शुक्रनीतिसार)।

भूमंडल = खड्गयोधी वीर की एक सिद्ध स्थिति। देखिए कापोलक।

भूमि = २ प्रकार – कर्मभूमि (भारतवर्ष) और भोगभूमि (भारत के अतिरिक्त प्रदेश)

भोगलाभ = व्याज के रूप में ऋणको के घर खेती आदि का उपभोग।

भौज्य = एक वेदमंत्रोक्त शासनव्यवस्था।

मकर निधि = नव या अष्टनिधियों में से शस्त्रों की निधि।

मंडलाग्र = खड्ग के प्रकारों में से एक। अन्य प्रकार – असियष्टि, निस्त्रिंश, दीर्घक, नारसिंहक (कटार), कात्यायन (जंबिया), इत्यादि।

मत्स्ययंत्र = नौकानयन में दिशाज्ञान के लिए उपयुक्त प्राचीन होकायंत्र। लोहमत्स्य ही इस यंत्र का स्वरूप था।

मंत्री = राजा के आठ अमात्यों में एक।

मल्ल = (प्रकार) (१) ज्येष्ठी (६४ गुणों से संपन्न) (२) अंतर ज्येष्ठी (३० गुणों से युक्त) (३) गोपकुल (४) विभष्य (५) अस्थिसार, (६) मांससार, (७) मेदसार, (८) अस्थिमेदःसार (९) अस्थिमांससार। (१०) गजवर्णीय, (११) सिंहवर्गीय (१२) वृषभवर्गीय, (१३) मृगवर्गीय।

महापद्मनिधि = नव या अष्टनिधियों में से माणिक्य मौक्तिक आदि रत्नों की निधि।

महिष = शक्तिशाली पशु। (भैंसे के अर्थ में यह शब्द रूढ हुआ है।) इसी अर्थ में राजा की पटरानी को महिषी (अर्थात् शक्तिशालिनी) कहते हैं।

महिषी = राजा की प्रथम विवाहिता और पट्टाभिषिक्ता प्रधान रानी।

मागधमान = पर्जन्य का मापन करने में उपयुक्त एक विशिष्ट कुण्ड या पात्र।

मालव = एक प्राचीन गणराज्य।

मुकुंद निधि = नव या अष्ट निधियों में परिगणित पैतृक दायभाग से प्राप्त निधि।

मुनय = खड्योधी वीर की एक सिद्ध अवस्था। देखिए– कापोलक।

मूषकजनपद = उत्तर सिंध प्रान्त का प्राचीन नाम।

मेघ (चार प्रकार) = (१) आवर्त (विशिष्ट स्थान में वृष्टि करने वाले)। (२) संवर्त (सर्वत्र वृष्टि करने वाले) (३) पुष्कर (अल्पवृष्टि करनेवाले) (४) द्रोण (भरपूर वृष्टि करनेवाले)।

यंत्रायुध = यंत्रस्वरूप शस्त्र। (कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित विविध यंत्रायुध) सर्वतोभद्र (पाषाण फेंकने वाला यंत्र), जमदग्नीय (शरवर्षण करने वाला यंत्र), विश्वासघाती, बाहुयंत्र, पांचालिका, देवदंड (तोप के समान यंत्र), शूकरिका, तालवृन्त, आस्फोटिक, उद्घाटिम, शतघ्नी (तोप)

युद्ध (पांच प्रकार) = तंत्रयुद्ध, दण्डयुद्ध, पाषाणयुद्ध, पाशयुद्ध और क्षेपणयुद्ध।

युवराज = पटरानी का ज्येष्ठपुत्र। अपर संज्ञा – उपराज या आर्यकुमार।

योजन = एक भूमिमान। ८००० धनुर्दण्ड = १ योजन।

यौधेय = एक प्राचीन गण जिस में गणराज्य की पद्धति थी।

रत्नी = १२० अंगुलों का अंतर।

रथक्रान्ता = शाक्त मतानुसार भारत के उत्तरपश्चिम भाग की संज्ञा।

राजक = गणराज्य एक प्रकार जहां राज्य संस्थापक क्षत्रिय वीर के वंशजों का आधिपत्य माना जाता था।

राजचिह्न = (पांच) छत्र, चामर, सिंहासन, मुकुट और राजदंड। राजा के अतिरिक्त अन्य किसी अधिकारी को इनका अधिकार नहीं होता।

राजदूत (तीन प्रकार) = **निसृष्टार्थ** = (आंतर राष्ट्रीय व्यवहार में अंतिम निर्णय लेने का अधिकार रखने वाला)। **परिमितार्थ** = (केवल विचार विनिमय का अधिकार रखने वाला)। **सन्देशहर** = (केवल अपने राजा का संदेश अन्य राजा को पहुचाने वाला।

राजन्य = (१) राजवंशीय व्यक्ति जो प्रशासन में राजा को सहाय करता था।

राजन्यक = गणराज्य का एक प्रकार, जिसमें सभी क्षत्रिय सत्ताधारी होते थे और 'राजा' उपाधि लगाते थे।

राजन्यबन्धु = राजवंशीय निन्द्य व्यक्ति।

राजबल = राजा का त्रिविध बल (१) मंत्र (२) कोश (३) सैन्य

राजा = गणराज्य की नियामक सभा के सदस्य की उपाधि। इसके पुत्र **उपराजा** कहलाते थे।

राष्ट्र = ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार सार्वभौम राजा के आधिपत्य का भूभाग।

वर्षपर्वत = प्रदेशों की सीमा निर्धारित करने वाले पर्वत। (वर्ष = प्रदेश)।

वार्ता = (आण्वीक्षिकी, त्रयी और दण्डनीति के समान) कृषि, व्यापार और पशुपालन विषयक विद्या की एक संज्ञा।

वावाता = राजा की प्रिय पत्नी। इसका स्थान महिषी (पटरानी) से नीचा माना जाता था। अन्य मतानुसार यही पटरानी मानी गयी है।

वाहिनी =८१ सेनामुख (देखिये)। युक्त सैन्य की इकाई।

वितस्ति = अंगुष्ठाग्र से कनिष्ठिका के अग्र तक का अंतर।

विदर्भ = मत्स्य पुराण के अनुसार भारतवर्ष के नौ खण्डों में से एक। (वर्तमान महाराष्ट्र के एक भाग का नाम)

विराज् = सार्वभौम शक्तिसम्पन्न राजा, या ऐसे राजा की विशिष्ट सत्ता।

विराट् = ऐतरेय ब्राह्मण (८-१४) के अनुसार उत्तर मद्र और उत्तर कुरु प्रदेशों के अधिपति की संज्ञा।

विषकन्या = विष खिलाकर बढाई हुई तरुणी। कौटिलीय राजनीति में इस प्रकार की तरुणी के संभोग से शत्रु का नाश करने का प्रयोग बताया है।

विष्णुक्रान्ता = शाक्त मतानुसार भारत के उत्तर-पूर्वभाग की संज्ञा।

वृत्ति = जीविका का साधन। पारिश्रमिक।

वृद्धि ब्याज के चार प्रकार = चक्रवृद्धि, कालवृद्धि, कारिता० और कायिका०

वैराज्य = वेदों में उल्लिखित एक राज्यपद्धति। राजा-रहित शासनव्यवस्था इसका वैशिष्ट्य माना जाता है।

व्यूह = रणांगण में सेना की रचना का प्रकार। प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित, विविध व्यूह = प्रदर. दृढक. असत्य, येन, चाप, प्रतिष्ठ, सुप्रतिष्ठ, संजय, विजय, स्थूलकर्ण, विशालविजय, पारिपतंतक, सर्वतोभद्र, गरुड, मकर, क्रौंच, मंडल, कूर्म, अर्धचंद्र, कर्क, वज्र, शृगाल, अचल, अजगर, सर्वशत्रुंजय दण्ड, शकट, वराह, पद्म, सूची इत्यादि। (इन व्यूहों का विभाजन चार प्रकारों में किया जाता है। – (१) दण्डाकार (२) सर्पाकार, (३) मंडलाकार और (४) असंहत।

शंखनिधि = नव या अष्टनिधियों में परिगणित एक निधि। इसका व्यय स्वामी द्वारा केवल अपने ही उपभोग में होता है।

शपथ = न्यायालय में साक्षीदार (गवाह) द्वारा अपने कथन की सत्यता के लिए हाथ में पवित्र वस्तु लेकर देवता आदि का पूर्वनिर्देश करते हुए सत्य भाषण की प्रतिज्ञा करना। शपथ के साथ 'अग्निदिव्य, जलदिव्य, तुलादिव्य आदि 'दिव्य' भी किये जाते थे।

शल = वेदकालीन लंबाई का एक माप।

शलाकाग्राहक = गणराज्य की कार्यकारी सभा में गुप्त मतदान की शलाकाओं (एक रंगीन पट्टी) का संग्रह तथा गणना करने वाला विशिष्ट अधिकारी।

शस्त्र = हाथ से चलाया जाने वाला आयुध (अस्त्र का प्रयोग मंत्रद्वारा होता था)। प्रधान शस्त्र = बाण, शक्ति, पट्टिश, भृशुंडी, शतघ्नी, भिण्दिपाल, कुलिश, खण्ड, शूल, चक्र, गदा, परशु, त्रिशूल।

शस्त्र (चार प्रकार) = मुक्त, अमुक्त, यंत्रमुक्त और यंत्रयुक्त।

शस्त्र (या आयुध) = के विविध प्रकार – खड्ग, वज्र, पट्टिश, परशु, गोशिरस्, असियष्टि, अस्तार, लवित्र, कुन्त, स्थूण, प्रास, पिनाक, गदा, मुद्गर, शिर, मुसल, मुष्टिका, शतघ्नी, त्रिशूल, शूल, भिंदिपाल, शक्ति, द्रुघण, तोमर, नलिका, लगुड, पाश, चक्र, दंतकान्त, भुशुंदी, भल्ल, कुन्त, शाबल, अंकुश, कृपाण, क्षेपणी, मंगद।

शाक्य = एक प्राचीन गणराज्य।

शासनपल्लव = राजमुद्रा से अंकित कंकण।

शिखरक = खड्योधी वीर की एक सिद्ध स्थिति। देखिए-कापोलक।

शिखावृद्धि = शिखा के समान प्रतिदिन ब्याज में बढत।

शुल्कग्राह = चुंगी की वसूली करने वाला ग्रामाधिकारी। (शुक्रनीतिसार)

श्रीगर्भ = खड्ग का एक नाम।

श्रेणी = एक ही उद्योग पर उपजीविका करने वाले विभिन्न जातीय लोगों की राजमान्य व्यावसायिक संघटना। इसमें पूग, गण, व्रात, आदि प्रकार होते थे।

षड्द्वीप = प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक और जम्बू इन पौराणिक द्वीपों की संज्ञा (इनमें जम्बूद्वीप के अतिरिक्त पांच द्वीप भारत के बाहर के हैं।

सन्देशहर = देखिए राजदूत।

संभूय समुत्थान = सामूहिक भागीदारी का उद्योग। अपर संज्ञा – सहक्रिया। (आजकल सहकार कहते हैं।)

साधनिक = एक प्राचीन अधिकारपद जो कायस्थ व्यक्ति को दिया जाता था।

साम्राज्य = वेदमंत्रोक्त एक शासन व्यवस्था।

साहसाधिपति = मारपीट, झगडे आदि की देखरेख करने वाला एक क्षत्रिय ग्रामाधिकारी। (शुक्रनीतिसार)

सिंहासन = अभिषिक्त राजा तथा देवता का सिंहाकार आसन। **विविध प्रकार** – नित्यार्चन सिंहासन, नित्योत्सव० विशेषोत्सव० प्रथम, मंगल, वीर, विजय, पद्मासन, पद्मकेसर पद्मबन्ध, पद्मभद्र, श्रीभद्र, श्रीविशाल, श्रीमुख, भद्रासन, (भद्रपीठ) पादबन्ध। (२) योगासन का एक प्रकार।

सीमापंचक = गाव या खेत आदि की सीमा के पांच प्रकार – ध्वजिनी (ध्वज से सूचित), मत्सिनी (जलाशय, नदी प्रवाह आदि से सूचित), नैधानी (भूमि में गाड़कर रखे हुए पदार्थों से सूचित), भयवर्जिता (उभय पक्ष द्वारा सम्मत) और राजशासननीता (राजादेश से निर्धारित)।

सुमंत्र = राजा के आठ अमात्यों में आर्थिक विभाग सम्हालने वाला अमात्य।

सुवर्णद्वीप = आधुनिक मलाया, सुमात्रा आदि द्वीपसमूह की प्राचीन संज्ञा।

सेना के विभाग = पदाति (पत्ति), सेनामुख, गुल्म, गण, वाहिनी, पृतना, चमू, अनीकिनी, अक्षौहिणी।

सेना के विभाग = पत्ति = १ रथ + १ गज + ३ अश्व + ५ पदाति। ३ पत्ति = १ सेनामुख। ३ सेनामुख = १ गुल्म। ३ गुल्म = १ गण। ३ गण = १ वाहिनी। ३ वाहिनी = १ पृतना। ३ पृतना = १ चमू। ३ चमू = १ अनीकिनी। १० अनीकिनी = १ अक्षौहिणी। (महाभारत के अनुसार)

सेनाधिकारी (कौटिल्य के अनुसार) = १० सैनिकों पर = १ पदिक, १० पदिकों पर = १ सेनापति। १० सेनापतियों पर = १ नायक।

सेनामुख = १ रथ, १ हाथी, ३ घोडे, और ५ पदाति। (कुल १०)।। ३ सेनामुख = १ गुल्म। ९ सेनामुख = गण। २७ सेनामुख = वाहिनी। ८१ सेना वाहिनी = २४३ सेना चमू। ७२९ सेना अनीकिनी। ७२९० सेनामुख = एक अक्षौहिणी।

स्त्रीधन = विवाह के अवसर पर अग्नि को साक्षी करके स्त्री को दिया जाने वाला धन।

स्वराट् = ऐतरेय ब्राह्मण (८-१४) के अनुसार पश्चिम भारत के नीच्य और अपाच्य गणों के अधिपति की संज्ञा।

सचिव = राजा के आठ अमात्यों में एक।

सभ्य = (१) मुख्य न्यायाधीश के सहायक उपन्यायाधीश। इनकी संख्या ३ से ७ तक होती थी। (२) यज्ञशाला में स्थापित चार अग्नियों में से एक।

समय-संविद् = पौर-जानपद नामक लोकसमिति का नियंत्रण करने वाले नियमों की 'समय' और उनके द्वारा जनता के लिए बनाए गये नियमों की 'संविद्' संज्ञा है।

सम्राट = ऐतरेय ब्राह्मण (८-१४) के अनुसार प्राच्य देशों के अधिपति की संज्ञा।

सलिलवात = संभवतः दक्षिण – पश्चिमी मानसून।

* * *

वर्ग - ९

कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित

रत्न-धातु-अलंकार

अक्षशाला = सोने-चांदी के अलंकार बनाने का स्थान (३४)।

शासकीय कार्यालय। (८६)

अगरु = (कोश प्रवेश्य रत्नों में अन्तर्भूत) विविध प्रकार = जोंगक, दोंगक, पारसमुद्रक, तैलपर्णिक, सौवर्णकुथक, पूर्णद्वीपक। (३२)

अग्निजीवी = लुहार इत्यादि अग्नि पर उपजीविका करनेवाले (५७)

अपसारित = (मिलावट से सोना चोरना), त्रिपुटकापसारित, शुल्बापसारित, वेल्लकापसारित, हेमापसारित। (कुल चार प्रकार)।

अपवर्तक = जिसमें मोती और सुवर्णमणि अनुक्रम से होते है ऐसी एकावली। (३२)

अर्धगुच्छ = २४ यष्टियों वाला मोतियों का हार। (३२)

अर्धमाणवक = मध्यमणियुक्त १, ३, ५ या १० यष्टि (लड़ी) वाला मोतियों का हार। (फलकहार, त्रिफलक, पंचफलक)।

अर्धहार = ६४ यष्टियों वाला मोतियों का हार। (३२)

अलंकारभूमि = वेश-भूषा का स्थान। (२०)

अवघाटक यष्टि = मोतियों के लड़ी का एक प्रकार। (३२)

अवध्वंसन = धातु की ठोकपीट। (३५)

अवलेपन = मुलामा चढ़ाना। (३४) (३५)।

अहिच्छत्रक = एक जाति का हीरा।

आबध्य = स्त्रीधन के अलंकार (या अलंकाररूप स्त्रीधन। (५९)

आवेशनी = सोने के कारीगर। (३५)

इन्द्रच्छंद = १००८ यष्टियों वाला मोतियों का हार। (३२)

इन्द्रवानक = एक जाति का हीरा।

इन्द्रनील = गहरे नीलवर्ण का मणि (३२)

इन्द्रनील मणि के गुणानुसार प्रकार = नीलावलीय, कलायपुष्पक, महानील, जाम्बवाभ, जीमूत (मेघ) प्रभ, नन्दक, स्रवन्मध्य। (कुल ७)। (३२)

इन्द्रवानक = एक जाति का हीरा।

उदकपेषण = पानी से अनेक बार धातु को घिसना (३५)

अवशीर्षक = (यष्टि) मोतियों के हार का एक प्रंकार। (३२)

एकावली = केवल मोतियों का एकमात्र सूत्र। (३२)

कर्मार = लुहार। (४५)

कल्पना = हाथी के अलंकार

कलापक = सिर, हाथ, पाव और कमर के विशिष्ट मौक्तिकालंकार। (३२)

काचमणि = सर्वसामान्य मणि। (३२)

कांचनकारु = सुवर्णालंकार बनाने वाले कारीगर। (३४)

काम्बुक = चांदी का एक प्रकार (कंबु पर्वत में प्राप्य)

कारु = कारीगर। (४)

कारुकर्म = (सोनार के काम) घन, घनसुषिर (लोटे जैसे पत्र), संयूह्य मोटा पत्रा मढाना, अवलेप्य - पतला पत्रा मढाना) **संघात्य** (तार के अलंकार बनाना, वासितक- मुलामा देना। (३५)

कालायस = लोहा। (३४)

किट्ट = धातु पर चढ़ी हुई गन्दगी मल (३३)

कृतशिल्प = कलाकुशल। (९)

कोट = एक रत्नप्रकार।

क्षीरपक = सफेद रंग का एक रत्न।

क्षुरप्रमाला = नक्षत्रमाला (हाथी का एक भूषण)। (५३)

क्षुद्रक = सोने के मणि।

खनि के ३ गुण = प्रभूतसारा, अदुर्गमार्गा, अल्पव्ययारम्भा। (११०)

गांधारपंक = गांधार देश की लाख या लाख जैसी माटी। (३५)

गुच्छ = ३२ यष्टियों वाला मोतियों का हार। (३२)

गोमेदक = गोमेद।

चन्दन के ११ गुण = लघु (हलकापन), स्निग्ध, अश्यान (आर्द्रता), सर्पिः, स्नेहलेपि, गंधसुख, त्वगनुसारी (त्वचा में मिलना) अनुल्बण (चिकना न होना) अविरागी, उष्णसह, दाहग्राही, सुखस्पर्श। (३२)

चन्दन (वर्ण और गंध के अनुसार १६ भेद) = सातन, गोशीर्षक, हरिचंदन, तार्णस, ग्रोमेरुक, दैवसभेय, जावक, जांगक, कुचंदन, कालप्रवर्तक, सौरूप, कोशाकार पर्वतक, शीतोदकीय, नागपर्वतक मलियक शाकल, (इनमें चंदनों का मत्स्य, गोमूत्र, अजमूत्र, आम्र जैसी गंध होती है। (३२)

चरक = मूस तयार करने वाले। (३४)

चाक्रवालिक = चांदी का एक प्रकार।

चिमिचिमायित = चमकदार (३४)।

चीनपट्ट (चीनांशुक) = चीन में निर्मित वस्त्र। (३२)

चूलिका = गुठली।

उद्गतचूलिक रूप्य = जिसके उपरिभाग में गुठली होती है ऐसी चांदी (३४)

चौर्णेय = मोती की एक जाति।

जावक = चंदन का एक प्रकार

जालक = मस्तक, हाथ, पांव और कटिप्रदेश के विशिष्ट मौक्तिकालंकार। (३२)

ज्योतीरसक = एक प्रकार का रत्न।

तन्माणवक = मध्यमणि युक्त मोतियों का हार। इसके

इन्द्रच्छन्द, देवच्छन्द आदि १० प्रकार होते हैं। (तन्मणि – मराठी में)।

तपनीय = सोना सुवर्णालंकार।(३४)

तपनीय = (सुवर्णालंकार के १३ गुण) समराग, समद्वंद्व, असक्तपृषत, स्थिर, सुप्रमृष्ट, असंवीत, विभक्त, धारणसुख, अभिनीत, प्रभायुक्त, संस्थानमधुर, सम, मनोनेत्राभिराम (कुल १३)। (३४)

तप्त कलधौत = सोना चांदी। (३५)

तरल यष्टि = मोतियों की लड़ी का एक प्रकार। (३२)

तर्कुभ्रमि = किरण परावर्तन करने वाला हीरा।

ताम्ररुप्यवेधन (धातु) = जो तांवा और चांदी में मिलाने योग्य होता है। (३३)

ताम्ररूप्यवेद्धार (रसा) = तांवा और चांदी में मिलने वाला रस। (३३)

तार = चांदी।

तार्णस = चंदन का एक प्रकार।

तीक्ष्ण धातु = लोहा। (३३)

तेजनोदक = तेजाव। (१४६)

तेजनाग्नि = अग्नि के समान चमकने वाले पदार्थ।

त्रपु या त्रपुस = कथिल, जस्ता। (३३)

त्रिपुटक = दो भाग चांदी और एक भाग तांबे का मिश्रण।(३५)

त्रिपुटकापसारित = शुद्ध सोने में त्रिपुटक (२ भाग चांदी + १ भाग तांवा) मिलाकर उतना सोने का अंश निकाल लेना। (३५)

त्वष्ट्रकर्म = सोने के तार के अलंकार बनाना। (३४)

दृति = भाता (३५)।

दृढवास्तुक = जड़ाव का अलंकार।

देवच्छन्द = १०० यष्टियों का मोतियों का हार। (३२)

द्विगुणवास्तुक = दो पत्रों वाला अलंकार। (३५)

धातु = (तीन प्रकार) भूमिजन्य, प्रस्तरजन्य, रसजन्य। (३२)

धातुप्रकार = कांचन, शिलाजतु, ताम्र, रूप्य, सीस, त्रपु (कथिल), तीक्ष्ण धातु (लोह) वैकृन्तक (पोलाद), मणिधातु। (३३)

नक्षत्रमाला = २७ यष्टियों वाला मोतियों का हार। (३२)

निकष = कसौटी का पत्थर (३४ **तीन प्रकार** = क्रयहित, विक्रयहित, क्रयविक्रयहित।

प्रकांडक यष्टि = मोतियों की लड़ी का एक प्रकार (३२)

प्रतिबंधक यष्टि = मोतियों की लड़ी का एक प्रकार (३२)

प्रतिवर्णिक = कसौटी।

प्रतिवर्णिका ग्रहण = कसौटी पर सोना परखना। (३४)

प्रतिवाप = संमिश्रण।

प्रभानुलेपी = मणि का एक गुण (३२)

प्रवाल (दो प्रकार) = आलकंदक, वैवर्णिक। मणि का एक प्रकार।

प्रैयक = नीले-पीले रंग वाला एक रत्न का प्रकार।

पिंडातक = मरवा।

पुलक = रत्न जो बीच में कृष्णवर्ण होता है।

प्रैयक = नीलछटायुक्त पीला रत्न।

फणिज्जक = मरवा, जंबीर।

फलकहार = अनेक तार वालां हार।

बालसूर्यक = वालसूर्य के रंग का रत्न।

भांडफेला = अलंकारों की पेटी। (२८)

भृंगार = सुवर्णपात्र, सोने की एक जाति। (१२)(४८)

मणिमंतक = हीरे की एक जात।

मुष्कक = मारवा।

मणिकारु = जवाहरात के अलंकार बनाने वाले कलाकार। (२५)

मणि के गुण = ११ और दोष ६ माने गये हैं। (३२)

मणिधातु = तेजस्वी धातु। (३३)

मणिमंतक = एक प्रकार का हीरा।

मणिसोपान = एक प्रकार का रत्नालंकार।

माणवक = २० यष्टियों वाला मोतियों का हार। (३२)

मूकमूषा = पोलीमूस।

मूषा = मूस (३३)

मृगाश्मक = किंचित् कृष्णवर्ण धवल रत्न।

मौक्तिक = उत्पत्ति स्थान के भेद के अनुसार १० प्रकार (ताम्रपर्णी, पाशिका, आदि नदियां तथा सरोवर हिमालय आदि १० स्थान मोती की उत्पत्ति के माने गये हैं। (३२)

अप्रशस्त जाति के मोतियों के दस प्रकार और प्रशस्त जाति के सात प्रकार माने हैं। (३२)

मौक्तिक हार (११ प्रकार) = इंद्रच्छंद, विजयच्छंद, देवच्छंद, अर्धहार, रश्मिकलाप, गुच्छ, नक्षत्रमाला, अर्धगुच्छ, माणवक, अर्धमाणवक, शुद्ध। (३२)

यष्टि = मध्यमणियुक्त एकावली। (३२)

(**एकावली** = एक मात्र मोतियों की लड़ी।)

यष्टि = मोतियों की लड़ी। इस में शीर्षक, उपशीर्षक, प्रकांडक, अवघाटक, तरल और प्रतिबंधक नामक यष्टिप्रकार माने जाते हैं। (३२)

रत्न (तीन प्रकार) = कौट, मालेयक, पारसमुद्रक। (३२)

रत्नों के गुणानुसार १० प्रकार = षडस्र, चतुरस्र, वृत्त, तीव्रराग, संस्थानवान्, अच्छस्निग्ध गुरु, अर्चिष्मान्, अन्तर्गतप्रभ, प्रभानुलेपी। (३२)

रत्नदोष = (६ प्रकार) मंदरागप्रभ, सशर्कर, पुष्पच्छिद्र, खण्ड, दुर्विध, लेखाकीर्ण। (३२)

रत्न = (अवांतर १८ प्रकार) - विमलक, सस्यक, अजतमूलक, पित्तक, सुलभक, लोहितक, अमृतांशु, ज्योतिरसक, मैलेयक, अहिच्छत्रकं, कूर्प, प्रतिकूर्प, सुगंधिकूप, क्षीरपक, शुक्तिचूर्णक, शिलाप्रवालक, पुलक, शुक्रपुलक। (३२)

कोशप्रवेश्य रत्न = (१२ प्रकार) मौंक्तिक, माणिक, वैडूर्य, इन्द्रनील, हीरक, प्रवाल, चंदन, अगरु, चर्म, ऊन, क्षौम (रेशम), कार्पासिक (सूती वस्त्र)। (३२)

रत्नावली = सोने के मध्यमणियों से युक्त मोतियों का हार। (३२)

रत्नोपधा = रत्न की परीक्षा। (२६)

रश्मिकलाप = ५४ लड़ियों का मोतियों का हार। (३२)

रसपाक = पारे की कृति (पारद-कर्म) या रसायनशास्त्र। (३३)

रूप्य = चांदी के प्रकार = **तुत्थोद्गत, गौडिक, काममल, कांबुक, चाक्रवालिक।**

रूप्यधातु = अशोधित चांदी। चांदी धारण करने वाला पत्थर या मृत्तिका।

लोहकारु = लोहे का कारीगर, लुहार। (२५)

लोहवर्ग = कालायस (लोहा), ताम्रवृत्त, कांस्य, सीस, त्रपु (कथिल), वैकृन्तक (जस्ता), आरकूट (पीतल) = (कुल ८) (इसमें सोना चांदी अन्तर्भूत नहीं)।

लोह = सामान्य धातु।

लोहिताक्ष = लाल छटा वाला रत्न।

वज्र या (हीरक) = ६ प्रकार – सभाराष्ट्रक, मध्यराष्ट्रक, काश्मक (कान्तीर) राष्ट्रक, श्रीकटनक, मणिमन्तक, इन्द्रवानक। (३२)

वज्र = (अशुभ तीन प्रकार) - नष्टकोण, निरश्रि (नष्टप्रभ), पार्श्वपवृत्त (एक ओर झुका हुआ)। (३२)

वज्र (शुभ) = स्थूल, स्निग्ध, गुरु, प्रहारसह, समकोटिक, भाजन लेखी (बर्तनों पर लिखने योग्य), तर्कुभ्रमि (परावर्तनशील), भ्राजिष्णु (अतितेजस्वी)। (शुभ हीरे के कुल गुण ८) (३२)

वज्रभेद = हीरे के विविध वर्णों के अनुसार ६ भेद - मार्जारक्षक, शिरीषपुष्पक, गौमूत्रक, गोमेदक, शुद्धस्फटिक, मूलाटी पुष्पकवर्ण (मालती पुष्पवर्ण)। (३२)

वासितक = मुलामा चढाना।

वास्तु = शुद्ध सोना (३४)

विजयच्छन्द = ५०४ यष्टियों वाला मोतियों का हार (३२)

विशद = चमकीला। (३३)

विस्रावण (अपसारण) = सोना चुराने का कूट उपाय। (३५)

विमल वर्ण = स्फटिक।

वेल्लक = लोहे और चांदी का समप्रमाण मिश्रण। (३५)

वेल्लकापसारित = शुद्ध सोने में वेल्लक (लोहा + चांदी का मिश्रण) मिला कर उतना सोना निकाल लेना। (३५)

वेल्लन = बेलना।

वैकृन्तक = एक धातु प्रकार। (७८)

वैंकृन्तक धातु = पोलाद को काटनेवाला **धातु**। (३३)

वैडूर्यमणि के गुणानुसार ८ प्रकार = उत्पलवर्ण, शिरीषपुष्पक, उदकवर्ण, वंशराग, शुकपत्रवर्ण, पुष्पराग, गोमूत्रक, गोमेदक। (३२)

वैडूर्य (मणि) = जल, गोमूत्र, वंश आदि आठ प्रकार की छटाओं वाला मणि। (३२)

शीर्षक यष्टि = मोतियों के हार का एक प्रकार। (३२)

शुद्धस्फटिक = गुणानुसार ३ प्रकार। मूलाट वर्ण (दधिवर्ण), शीतवृष्टि, सूर्यकान्त। (३२)

शुद्ध हार = एकमात्र लड़ी वाली मोतियों की माला। (३२)।

शुल्ब = तांबा (३३), (३४), (३५)

शुल्बशास्त्र = धातुशास्त्र।

शुल्बापसारित = शुद्ध सोने में जितना तांबा मिलाया उतना सोना निकाल लेना। (३५)

शुष्कतुत्थ = नीले थोथे का लेप (३४)

शृंगिशुक्तिज = सोने का एक प्रकार।

शीतवृष्टि = चन्द्रकांत मणि।

श्रीकटनक = हीरे की एक जाति।

संघास = तार का गहना बनाना। (३५)

सत्तलिका = गलीचा।

सन्देश = चिमटा। (३५)

सुगन्धिकूर्प= रत्न की एक जाति।

सुलभक = शुभ्र वर्ण का रत्न।

सुवर्ण के ८ प्रकार = जाम्बूनद, हाटक, शांतकुंभ, वैणव, शृंगीशुक्तिज, रसविध, आकरोद्भव और जातरूप। (३४)

सुवर्ण पुद्गल = सोने के अलंकार। (३५)

सुवर्ण मालुका = धातु का प्रकार।

सुवर्णालंकार = धातु का प्रकार।

सुवर्णालंकार के काम = (३ प्रकार) = क्षेपण (जडाव काम), गुण (तार गोफ आदि बनाना), क्षुद्रक (सोने के मणि तथा पोले अलंकार बनाना) (३४)

सौगन्धिक = लाल रंग का मणि, माणिक। (३२)

सौवर्णकुड्यक = एक श्रेष्ठ जाति का क्षौम (रेशम)। (३२)

सौवर्णिक प्रचार = सुनार के व्यवहार। (३४)

स्फटिक = फिटकरी। (३३)

स्रवन्मध्य = रत्न का एक प्रकार।

हिरण्य-सुवर्ण = सोना और सोने की मुद्रा। (७३)

हेमापसारित = १ भाग सोना और आधा भाग तांबे का मिश्रण शुद्ध सोने में मिलाकर शुद्ध सोने का अंश निकाल लेना। (३५)

★ ★ ★

वर्ग - १०

कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित

कृषिविषयक परिभाषा

अकृष्या भूमि = खेती के लिए अयोग्य भूमि। (२३)

अंबरीषोदपानक = रोगोत्पादक जल के कुंड (२४)

अदेवमातृक = उत्तम देश का एक लक्षण। जहां की खेती वर्षा पर निर्भर नहीं होती। (९७)

अवस्कर = कचरे का ढेर। (६५)

अश्वतर = खच्चर। (५०)

आहार्योदक सेतु = वर्षाकालीन प्रवाह पर बांधा हुआ तात्कालिक सेतु। (२)

आहितिक = ठेके पर काम करने वाले।

उक्षा = बूढ़ा बैल (६७)

उञ्छ = जमीन से चुनकर उठाया अन्नधान्य। (१३)

उद्वाप = फसल निकालना। (९२)

कडंगर = घास आदि पशु खाद्य। (५२)

कणकुणुक = जानवरों का खाद्य, भूसा। (३६)

कण्डोली = धान्य धोने का सच्छिद्र पात्र (रोळी मराठी)।

कर्मोदक = खेती के काम का जल। (६७)

कुल्यावाय = जहां नहर के पानी से खेती होती है। (४५)

कृतक्षेत्र = कसने या फसल निकालने योग्य खेत। (२२)

कृषियोग्य भूमि के ७ प्रकार = फेनाघात (जहां पानी में फेस आता है। परीवाहान्त (प्रवाह के पास वाली), कूपपर्यंत, हरणीपर्यंत (जलप्रचुर) पाल्य (खेत के किनारे की), स्थली, अनूप। (४५)

कृसर = तिल (३३) गोपालक की कंबल के चलक।

क्षीरवृक्ष = गांव की सीमा पर लगाने योग्य वृक्ष (वट, वड़, पीपल, शाल्मली इ.)। (२२)

क्षेत्रपथहिंसा = खेती का नुकसान। (६७)

क्षौद्र = मधुमक्खियों द्वारा निर्मित मधु या मोम। (३६)

गृष्टि = जंगल। (२-२२)

चोच = दालचीनी। (४६)

जांगल =रूक्ष प्रदेश (४५)

देवसर = विशाल नैसर्गिक सरोवर (जो कभी शुष्क नहीं होता)। (४९)

धान्य के तीन प्रकार = पूर्ववाप, मध्यवाप, पश्चाद्वाप। (४५)

धान्यनिचय = धान्य का कोठार या गोदाम। (२५)

धेनु = दुहती गाय। (५०)

पंचकशत वेतनम् = प्रतिशत पांच मजदूरी (७८)

प्रावर्तिम (सिंचाई) के चार प्रकार = हस्तप्रावर्तिम, स्कन्धप्रावर्तिम, स्तोतोयंत्र प्रावर्तिम, नदीसरतटाककूपोद्घाट। (४५)

प्रस्त्रवणप्रपात = नाली का उतार। (६५)

फलवाट = फल या सब्ज़ी के वगीचे की जमीन।

फाणित = पकाया हुआ ईख का रस (काकवी – मराठी में)। (३६)

मध्यवाप = वर्षा ऋतु के मध्य में वोने योग्य धान्य (मुद्ग, माष, शैष्य)। (४५)

मर्यादा = खेत या अरण्य की हद या सीमा। (देखिये सीमा) (५६)

मालवन = जंगल का मैदानी भाग (६७)

मेथीप्रतति = कंटकमय लताएं। (१२९)।

यवस = सतु। (२५)

योनिपोषक = पशु, पक्षी वेश्या आदि के समूहों का पालन करने वाला (९२)

राशिमूल = धान्य की राशि का भूमि पर बचा हुआ अंश। (९२)

वत्स = जिसका दूध पीना बंद हो गया ऐसा वछड़ा।

वत्सर = दूध पीने वाला गाय का बछडा (५०)

वर्तनकाल = बैल को जोतने का समय।

वर्तनी = रहदारी का मार्ग। (२७) (५५)

विवीत = गोचर भूमि। (२३) (२५)

विसर = शुष्क होने वाला सरोवर। (४९)

वृक्षविषयक ५ अपराध = प्ररोहच्छेदन, क्षुद्रशाखाछेदन, पीनशाखाछेदन, स्कन्धवध, समुच्छित्ति। (७६)

वृष = सांड, या गर्भाधान करने वाला।

यूथवृष = गो-समूह में संचार करने वाला सांड। (५०)

व्रज = इस शब्द से गो, महिष, अज, अविक (भेड), खर (गधा), उष्ट्र, अश्व, अश्वतर (खच्चर), इनका ग्रहण होता है। (२७)

शण = ताग।

शमक्षौम = ताग का वस्त्र। (४४)

शिंशुप = अशोक वृक्ष। (३८)

शुष्कपटल = जंगल में प्राप्त गोबर (३४)

संस्थावृक्ष = गमले में लगाए पौधे (२०)

स्कन्धप्रावर्तिम = (१) कंधे पर पानी लाकर खेत में सिंचाई करना। २) उक्त प्रकार की खेती पर कर। (४५)

स्थल-औदक भूमि = जिराईत, बागाईत, शाक, सब्जी के बगीचे की ज़मीन। (१०९)

स्त्रोतोयंत्र प्रावर्तिम = मोट चलाकर सिंचाई करना। (४५)

स्त्रौव = याज्य-याजक संबंध।

हस्तप्रावर्तिम = खेत में हाथों से सिंचाई करना। (४५)

हस्तिकर्ण = एरंड। (१४६)

वर्ग - ११

कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित वनस्पतियाँ

अरिष्ट = नीम।
कण्टकार = शाल्मली वृक्ष।
कशेरूक = एक जाति की घास।
काक्षीब = गोपीचंदन या फिटकरी।
काम्लशारिबा = काले रंग की भद्रानामक वनस्पति।
कैडर्य = करंज का एक प्रकार। मीठा नीम, कढी पत्ता।
कोल = निंबू, बेर।
गृष्टि = वेर का वृक्ष।
गोजी = गोजिह्वा नामक वनस्पति।
ग्रामेरुक = चंदन की एक जाति।
चिमिय = वेतस की एक जाति।
जोगक = एक प्रकार का चंदन।
तगर = एक पुष्पवृक्ष।
तौरूप = कृष्णवर्ण रक्तचंदन।
दन्तश = इमली या कपित्थ।
दोंगक = चंदन की एक जात।
द्रवन्ती = मराठी में – उंदीरकानी
धामार्गव = आघाडा।
नक्तमाल = करंज।
नड = देवनल
पुनर्नवा = एक औषधि वनस्पति। (मराठी में– घेंटुली)।
पृश्निपर्णी = मराठी में – पिठवण।
प्लक्ष = वटवृक्ष।
बल = चिकना, (मराठी में – चिकणा)
भद्रश्रीय = चंदन की एक जाति।
मदन = धोत्रा, धत्तूर।
मालेयक = चंदन की एक जाति। (मलय पर्वतोत्पन्न)
मोरटा = खैर, ईख का मूल।
राजवृक्ष = बाहवा वृक्ष।
रोचनी = हलदी।
लांगली = पृथक्पर्णी।
वंजुल = बोरु, बेत।
वत्सनाभ = बचनाग।
वल्लूर = चंदन की एक जाति।
वारणवल्ली = गजपीपली।
वारुणी = दूर्वा।
वाशी = वासक वृक्ष।
विदल = दाडिम।
विदारी = सफेद कद्दू, (मराठी में भुई कोहळा, या सालवण)।
विलंग = वावडिंग।
वृक्षाम्ल = ईमली।
शण = ताग, ज्यूट।
शतपर्वा = दूर्वा, बांस।
शिग्रु = मुनगा (मराठी में – शेवगा या मुंगणा)।
शीकवल्ली = शिकाकाई।
शृंगी = वटवृक्ष, प्लक्ष।
श्रीवेष्टक = बेल, पीपल।
सरल = देवदारु वृक्ष।
सातन = सातन प्रदेश का चंदन।
सातीव = बांस का एक प्रकार।
सिन्दुवारित = सिन्धुवार वृक्ष। (?)
सृगालविभा = एक औषधि।
सौवर्ण कुडयक = आसाम के सुवर्णकुड्य गाव का चंदन।
सौवीरक = संतरा।
स्नुही = नागफण।
हस्तिकर्ण = एरंड

वर्ग - ११ - अ (परिशिष्ट)

अमरकोश में उल्लिखित वनस्पतियाँ

(कोष्टक में (म) = मराठी नाम)

अंकोट (या निकोचक) = पिस्ता।
अग्निमंथ = नरवेल (म)।
अजमोदा, उग्रगंधा = ओणवा।
अजशृंगी = मेंढशिंगी (म)।
अतिमुक्त = माधवी लता (जो आम की प्रिया के रूप में आम्रवृक्ष पर लिपटी रहती है)।
अधिरूढक = अंकुरित बीज।
अपराजिता = गोकर्णी (म)।
अपामार्ग = किणीही, खस, खर, मंजरी, केटपर्णी, आघाडा (म)।
अम्लान (महासह) = अबोली (म)।
अरिष्ट = रीठा (म)।
अर्क = रूई (म)।
अर्जुन, वीरतरु = अर्जुन साद्द, कहुआ (म)।
अर्शोधुवा = सूरण।
अलाम्बू = काला कुम्हड़ा। (म)
अवकेशी = निष्फल वृक्ष।
अवरोह = नीचे की ओर बढ़ने वाला वृक्षमूल।
अशोक, वंजुल = अशोक।
अश्वस्थ या पिप्पल = पीपल का वृक्ष।
अश्मपुष्प = शिलाजित, शिलाजतु।

आटरूशा, वाशिका, वैद्यमाता, सिंहास्या, वज्रदन्तक = आडुलसा। (म)

आमलक = आंवला। (आजकल विटामिन 'सी' के लिये सर्वोत्तम फल माना जाता हैं)।

आम्र, रसाल, चूत, माकंद, सहकार = आम का वृक्ष

आम्रटाक = अंबाडा (म)।

आम्रातक = अमवट या अमरं का वृक्ष।

आम्रलोनिका = चुक्रिक = चूक (म)।

आलर्क = रुई- मंदार।

आसन = असना (म)।

आस्फोटा = रान मोगरी (म)।

इक्षु पनुद्रक = ऊंस, ईख, गन्ना।

इंगुदी, तामसतरू = हिंगनबेट।

उत्पल, शारीव, गोपवल्ली = उपलसरी (म)।

उदुंबर या हेमदुग्धक = उंबर, औदुंबर।

उद्वेगा = सुपारी।

ऊर्णाख्य, दद्रुघ्न = टाकला।

उशीर, जलशयनी = खस।

ऋद्धि = कवनी, मुरुंडशेंग (म)।

एरंड = (अन्य नाम पंचांगुल, गंधर्वहस्तक, वर्धमान = एरंडी, एरंड।

एला = इलायची, वेलची (म)।

एलापर्णी = कोलिदन।

ओषधि = फल देंने वाले वृक्ष।

औषधि = पत्र, फल युक्त औषधि वनस्पति।

कटभी, पारावतांघ्रि = मालकंगोणी (म)।

कटंभरी = कडू रोहणी (म), (मछलियों के विषनिमित्त इसका उपयोग होता है।)

कडूर = केदार कुटकी (म) = केवल वर्षा ऋतु में ही उगती है।

कत्तृण, सौगन्धिका = रोहित, रोहितघास (गवत - म)।

कदली, रम्भा = केला। (केळी- म)

कदर, सोवल्क = कडार।

कदम्ब (नीव) = कालंब, नीव (म)।

कदराल, गर्भभांड = लाखी पिंपरी, गजदंड (म)।

कदराल = (या अक्षोट, अक्षोटु) = पहाड़ी अक्रोड (म)।

कपित्थ या दन्तशठ = कवीठ, कवठ (म)।

कपिल, भस्मगंर्भा = काला शिसवा (म)।

करमर्दक कृष्ण पाक फल = करौंदा, करवंद (म)।

करवीर, प्रतिहास = कनेर, कण्हेर (म)।

करीर, ग्रंथिल = नेवाली (म)।

करीराग्र = वृक्षशाखा का अंतिम प्ररोह।

कर्कटी = ककडी। काकडी (म)।

कर्कन्धु (बदरी, कोली) = बेर (बोर- म)।

कर्चुर, गंधमूली, शती = आंबेहळद (म)।

कर्चुरक = काचर (म) वालों का तेल सुगन्धित करने में उपयुक्त।

कर्मार = वांस। वेळू (म)।

कलंबी, उपादिका, मूलक, हिलमोचक, वस्तुक = शाक के विविध प्रकार।

काम्पिल्ल, रोचनी = शुंडरोचनी (म)।

कर्णिकार, द्रुमोत्पल = पांगारा (म)।

काकमाची = कावळी (म)।

काकमुद्ग =जंगली मूंग, रानमूग (म)।

काकांगी = खळी। (म)

काकेन्दु = कुचला या काटेतेंदु (म)।

कान्तार = दुर्गम वन।

कारवल्ला = वरळे।(म)

कार्पासी, तुंदिकेरी, समुकान्त = कपास, कापूस (म)।

कालस्कन्ध, तमाल, तापिच्छ = तमाल।

काश =कांस।

क्षीरवी =दुर्धी।

कुटज, गिरिमल्लिका, इन्द्रजव = कुडा (म)।

कुंद = नेवाली (म)।

कुमारी = लाल शेवंती (म)।

कुमारी = कोरफड (म)।

कुम्ब, गुग्गुल = गुगूळ (म)।

कुम्भी = कायफळ (म)।

कुरंटक = पीत कोरांटी।

कुरबक = लाल कोरांटी (म)।

कुरुविंद, मुस्ता = मोथा।

कुश = दर्भ।

क्रुष्ट, पाकल = कडु कोष्ट (म)।

कूष्माण्ड = कुम्हड़ा, कद्दू। कोहळा (म)।

क्रमुक (लाक्षा, प्रसाध्नु, पट्टिका) = सुपारी।

किराततिक्ता = किराईत।

कीचक = वेणू, वांस। (जिसके छिद्रों से स्वर निकलते हैं।)

कृष्णात्रिवृता, मसूर विदला = तिधरे (म)।

केटपर्णी = देखिये अपामार्ग।

केसर, बकुल = बेल, ओनवळ (म)।

कोकिलाक्षा = कोळसुंदा (म)।

कोरंगी = (देखिये त्रिपुट)।

कोविदार, कंचनर या युगपत्रक = कांचन (म)।

खदिर, दन्तधावन = खदिर खैर (म)।

खर = (देखिये अपामार्ग)।

खीर विदारी = कुम्हड़ा, कद्दू।

गणहासक = अजवाईन। चोर ओवा। किरमणि ओवा। (म)

गण्डाली = श्वेत दूर्वा।

गण्डीर = कडू सूरण।

गंधमूली शीती, कर्चूर = आंबेहळद (म)।
गंभारी काश्मरी मधुपर्णिका = शिवणी (म)।
गडूची, सोमवल्ली = गुळवेल (म)।
गुल्मिनी = अधिक प्रमाण में बढ़ने वाली लता।
गृष्टि, वाराही = डुकरकंद।
गोक्षुरक, स्वादुकण्टक = गोखरू।
गोडुंब = कवनदळ, चिवूड (म)।
गोधापदी = रक्त लाजाळू। (म)
गोलिध (घंटा पाटली) = मोरवा (म)।
गोलोमी = वेखंड।
गोशाटक, धमार्गव = घोसाळी, दोडकी (म)।
गोस्तनी = द्राक्षा।
ग्रंथि, परुशपर्व = पेरु (बांस का एक प्रकार)।
ग्रन्थिपर्ण = गंथीवन, या भटोर (म)।
घंटारवा = लघुतग (म।)
घास = घास।
घोंट = सौवीर।
चक्रवर्तिनी = चाकवत (म)।
चम्पक, हेमपुष्क = सोनचांफा (म)।
चविका = चवक (म)।
चित्रक = चीता (म)।
चित्रोपचित्र, मूषकपर्णी = उंदीरकानी (म)।
चिरबिल्व (चिरिबिल्व?) = करंजक।
नक्तमाल = करंज।
चुक्रिक, आम्ललोनिका = चूक।
चुडाला = फुरडी।
चूत = आम का वृक्ष।
छत्रा = (देखिये मधुरिका) = बड़ी सौंफ।
जपापुष्पा = जबाकुसुम, जास्वंद।
जम्बीर = बड़ा नींबू, इडलिंबू (म)।
जया, जयन्ती, तरकरी = थोर ऐरण (म)।
जलशयनी, उशीर = खस।
जाती, मालती, चमेली = चमेली, जाई (म)।
जुंगी, अजगंधिका = तिलवणी, कानफोडी (म)।
जीवन्तिका वंदा = बांडगूळ।
जीवन्ती, मधुश्रवा = हरणवेल।
झिंटी = नील कोरांटी।
तण्डुलीय = तांदुळजा (म.)।
तमाल = कालस्कन्ध, तापिच्छ, तमाल।
तापसतरु = (इंगुदी) हिंगनबेट (म.)।
तामलकी, वितुन्नक = भुई आवळ।
ताल, तृणराज = ताड़।
तिंतिडी, आम्लिका = इमली, चिंच (म.)।
तिनिश, वंजुल = तिवस (म)। (इसके लकड़े का उपयोग रथ बनाने में होता है।)
तिन्दुक, कालस्कन्ध = तेंदू, टेभुर्णी (म.)।
तिलक = तिल्वा (म.)।
तूद (यूप) = परशुपिपळ (म)। (यज्ञक्रिया में उपयुक्त वृक्ष)।
तृण = घास।
तृण द्रुम = इस में ताल, नालिकेर, पूग, हिंताल (सुपारी) खर्जूर, केतकी, ताली तालीपोत, जैसी वनस्पतियों का अन्तर्भाव होता हैं।
तोय-पिप्पली = कंचरा (म)।
तुंडिकेरी, बिंबिका = कुन्द्रू, तोंडली (म.)।
तुंबी = सफेद कद्दू, दुधिया।
तुवरिका = तूबरी। तुवर (म)
त्वक्सार (देखिये वंश) = बांस।
त्रिपुट कोरंगी = इलायची, वेलची।
त्रिवृता, सर्वानुभूति = तिवड़ी (म)।
त्वक्पत्र = दालचीनी।
दर्भ = कुश।
दार्विका = ढवळी, पाथरी (म)।
दाडिम, करक = अनार, डाळिंब (म)।
दारुहरिद्रा = दारुहळद (म)।
दूर्वा = दूर्वा, दूब।
देवातड, गर्गरी = देवडंगिरी। इसीसे चूहे मारने का विष निकाला जाता है।
देवदार, द्रुकिलिम, पीतदारु = देवदार।
द्राक्षा, गोस्तनी, मृद्वीका = द्राक्षा।
धत्तूर = धतूरा। धोत्रा (म)
धन्वायस, सुस्पर्श = धमासा (म)।
धातकी = धायती (म)।
निकोचक = पिस्ता।
निचुल, हिज्जल = बेंत।
निदिग्धिका (कंटकारिका) = रिंगणी (म)।
निंब, पिचमुन्द = नीम।
निर्गुण्डी, सिन्धुवार = निगडी (म)।
निष्कुट = कृत्रिम वन, उपवन।
नकुलेष्ट, रास्ता = मुंगुसवेल (म)।
नक्तमाल, चिरबिल्व, करंजक = करंज (म)।
नड, धमन = देवमाळ (म)।
नद्या = नदी में उगने वाली वनस्पति।
नन्दिवृक्ष, तुणी = नांद्रुखी।
नमस्कारी = लाजाळू (म)।
नवमल्लिका = बटमोगरा।
नागकेसर = नागचाफा। (म)
नागरंग = नारिग (म) संतरा।
नागवल्ली, ताम्बूलवल्ली = पानवेल (म)।

नादेयी, भूमिजम्बुक = नदी के किनारे उगने वाली वनस्पति।

नादेयी =पानी में उगने वाला बेंत।

नादेयी = भुई जांभळी (म)।

नालीकेर, नारिकेल, लांगली = नरियल।

नीप = कदंब = कालंब नीव (म)।

नीली रंजनी = नील। (म)

न्यग्रोध, वट, बहुपाद = वड (म) बड़।

पुनर्नवा, शोधघ्नी = घेटुळी (म)।

पलांडु = प्याज। कांदा (म)।

पद्मचारिणी, अतिचर = स्थलकमलिनी।

पुष्कर, पद्मपत्र = कमल का एक प्रकार।

पालक्की, कुंद्द = पोई साग, पालक। (म)

पिचुमन्द, निंब = नीम।

पनस, कंटकफल = फणस (म), कटहल।

प्रियंगु, श्यामा, फलिनी = वाचाटी (म)।

पाटल, कचस्थली, कृष्णवृन्त = पाडळी (म)।

पूतिका = घाणोरा करंज (म.), **षड्ग्रन्थि, मर्कटी।**

अंगारवल्लरी = करंज के प्रकार।

पिच्छिल (शाल्मली) सावरी (म.) = (माचिस की लकड़ी इसीसे आजकल बनायी जाती है।) 'षष्टिवर्षसहस्राणि वने जीवति शाल्मलिः'। शाल्मलीवृक्ष ६० हजार वर्षों तक जीता है।

पलाश (या किंशुक) = पलाश। पळस (म)

पीलु (गुदफल) = अक्रोड।

पारिभद्र = (या निंब तरु) = कडुनिंब (म), नीम।

पुन्नाग = उंदी (म)।

प्रमदवन = स्त्रियों के लिये आरक्षित बगीचा।

पिचुल, धवुक = कुम्भा (म) तिलक का एक प्रकार।

प्रियाल, राजादन = चार, चारोळी (म)।

प्लक्ष = पिंपरी (म)।

पाठा, पपचेली = पाडळी (म)।

पटोलिका = पडवळ (म)।

पिप्पली, कोटा = पिंपळी (म)।

पृश्निपर्णी, सिंहपुच्छी = ढवळा पिठवण (म)।

पूग, क्रमुक = पोफळी, सुपारी।

पालघ्न = शेत गवत, खेत की घास।

पटोल= पडवळ (म)।

प्रसरिणी, कंटभरा = चांदवेल (म.)।

ब्राह्मी, सोमवल्लरी = सोमलता (इसके पत्ते शुक्ल पक्ष में उगते हैं और कृष्णपक्ष में गल जाते हैं।)

बन्धूक सेवांत्रिका = शेवंती।

बकुल, केसर = बाऊल ओनवळ (म)।

बिल्व (मालूर) = बेल।

बाकुची = बवंची (म)।

बल्वज = लव्हाळे।

भस्मगन्धिनी, रेणुका = रेणुक बीजा (म)।

मुरुण्डी, श्रीहस्तिनी = थोर कुरडु (म)।

मुरुण्डी, श्रीहस्तिनी = थोर कुरडु (म)।

भूर्ज = जिसकी खाल लेखन पत्र के हेतु उपयोग में लायी जाती थी।

भल्लातक (वीरवृक्ष अग्निमुख) = बिबवा, बिब्बा (म)।

भरद्वाजी = जंगली कपास

भंतगी = (देखिये हिंगुली)।

भाग्री (हांजिका, बालेय शाक) = भारंगी।

मकुलक, दन्तिक = दांती, जेपाळ।

मंजरी = (देखियें अपामार्ग)।

मंजिष्ठा, जिंगी, मण्डूकपर्णी, मंदिरी = मंजिष्ठा।

मधुश्रवा, जीवन्ती = हरणवेल (म)।

मधूक = मोह (म), मघुवा।

मधुयष्टिका = जेष्ठीमध, ज्येष्ठमध।

मधुरिका, = छत्रा = बड़ी सौंफ

मधुलक = मधूक का एक प्रकार जो पानी में बढ़ता है।

मधु शिग्रु = शिग्रु का लालरंग वाला एक प्रकार।

मरुन्माल = पिंडक (म)।

मरुबक = महालुंगू (म)।

मलयू = (जघने फल) बोडका खर्वट (म)।

मल्लिका = मोगरा।

महाजाति = घासाळई (पीत पुष्प वाली)।

महासह, अम्लान = अबोली।

मस्कर = (देखिये वंश), बांस

मातुलिंग = महालुंग।

मार्कव = माका (म)।

मालूर (बिल्व) = बेल।

माषपर्णी = जंगली उड़द। रानउडीद (म)

मुरा = मोरा मौसी।

मुसळी = मुसळकंद (म), मूसल कन्द।

मुस्तक = मोथी (म)।

तूर्व, गोकर्णी = मोरवेलं (म)।

मूषकपर्णी = देखिये चित्रोपचित्र।

मृद्वीका = द्राक्षा।

यूथिका = जुई (म), जूही।

रंजनी, नीली = नीळ (म), नील।

रम्भा, कदली = केळी, केला।

रसाल = (आम्र चूत माकंद सहकार) = आम का वृक्ष।

राजवृक्ष = आरग्वध, शम्याक, चतुरंगुल, आखेट, व्याघिघट, कृतमाल, स्वर्णक।

रेणुका, हरेणु, भस्मगन्धिनी = रेणुकबीजा।

रोचन =काली सावंरी (म)।

रोहितक, प्लीहशत्रु = रक्त हिर्डा (म)।

लकुच, लिकुच, दहु = बहहर का वृक्ष।
लतार्क, दुद्रुम = हरा प्याज। हिरवा कांदा (म)
लशुन, महासुधा = लहसुन। लसूण (म)।
लांगलिका = कळलावी (वाक्चावक) (म)।
लोचमस्तक, काखी = मोरशेंडा (म)।
लोध्र = (गालव) लाल या सफेद पुष्प वाला वृक्ष।
वचा = वेखंड (म)।
वचा, हैमवती = पांढरी वेखंड (म)।
वज्र, सिंहुड = शेर निवडुंग।
वंजुल = अशोक।
वंजुल = वेंत।
वंदा, जीवन्तिका = बांडगूळ (म)।
वंश, त्वकसार, कर्मा, मस्कर, = बांस।
वनस्पति = अप्रगट फूलोंवाला वृक्ष।
वन्या = वनों का समूह।
वरण = बारना वायवर्ण (म)।
वातक, अपराजिता = गोकर्णी।
वानस्पत्य = जिसके फूल प्रकट दिखते हैं ऐसा वृक्ष
वानीर = वेत।
वायसोली = काकोली, लहान कवळी।
वाराही, गृष्टि = डुकरकंद।
वार्ताकी, हिंगुली, भंतगी = जंगली बैंगन।, रानवांगी (म)
बालुक = वाळुक, काकडी, ककड़ी।
विंककटार = (सवादु कंटका) बेहळी (म)।
कन्नड में हनुमणिका) (यज्ञ क्रिया में उपयुक्त वृक्ष).
विटप = वृक्ष स्तंभ के ऊपर का विस्तार।
विंडग = वावडिंग (म)।
वितुन्न = कुर्डू (म)
वितुन्नक, तामलकी = भुई आवळा (म)।
विदारी = कोहळे (म)।
विदारी गंधा = डवला, सालवण।
विदुल या नादेयी = पानी में उगने वाला बेत।
विभीतक = बेहडा (त्रिफला चूर्ण में आवश्यक।)
विशाल = मोठी कवंदळ (म)।
विश्वा, महाशधाम, अतिविष = विषनिरोधक औषधि।
वीरण = काळा वाल (म)।
वीरुध = अधिक प्रमाण में बढ़ने वाली लता।
वृन्द्धदारिका = वर्धरा जीर्णपुंजी (म)।
वेतस वानीर वंजुल = वेंत।
व्याकोश = प्रफुल्लवृक्ष।
व्याघ्रनख = वघैय्या, बाघनख। वाघनख (म)
शकु = वृक्ष का मूल स्तम्भ।
पुष्पिका, विशल्या = कळलावी (म)।
शंखिनी, चोरपुष्पी = शंखवेल।
शतमूली, बहुसूता = शतावरी।
शतला, भूरिकेना = आंबट वेत (म)।
शमी = शमीं।
शमीर = शमी का छोटा प्रकार।
शष्प = हिरवळ (म), हरियाली।
शाला = वृक्ष की प्रमुख शाखा
शाल्मली, पिच्छिल = सांवरी, इसी वृक्ष से गोंद निकाला जाता है।
पिच्छ = गोंद।
शिग्रु = शेवगा (म) (सौभाजन या सोथंजन)।
शिशैष, कपिलान = शिरस (म), सीरस, सरेस।
शिंशव = शिसवा (म)।
शुकशिंबी, मर्कटी = कुहिरी (म)।
शृंगी, ऋषभा = बैलघंटी।
शेफालिका = रान निर्गुडी।
श्याम, प्रियंगु = वाघाटी (म)।
श्वेत सुरसा = कातरी निर्गुडी।
सप्तपर्ण = सातवन।
सल्लकी = सालाई (म), सलई।
सहकार, रसाल, माकंद = आम का वृक्ष।
साल, सायसांबर, अश्वकर्णक = सलई।
सितच्छत्रा = मधुर कारवी, बडीशेप, बड़ी सौंफ।
सिंहपुच्छी, पृश्निपर्णी = ढवळा पिठवण (म)।
सुषीर, विद्रुमलता = पवारी।
सुस्पर्श = देखिये धन्वायस।
सूरण, अर्शोध्रुवा = सूरण, सुरन।
सोभांजन, शिग्रु या शोभंजन = शेवगा (म)।
सोमवल्ली, गुडूची = सोमवेल।
सेलु (उद्याल) = भोकरी शेला (म)।
सौगन्धिका = देखिये कतृण।
स्थाणु = वृक्ष का मूल स्तंभ।
स्वर्णक्षीरी = पिसोला (औषधोपयोगी)।
हरीतकी = हरडा (त्रिफला चूर्ण में आवश्यक)।
हरेणु = देखिये रेणुका।
हिंगुली, वार्ताकी, भतंगी = रानवांगी (म), जंगली बैंगन।
हिज्जल, निचुल = बेंत।

* * *

वर्ग - १२

धातु और रत्न

पर्याय शब्द

[क्रमांक धन्वन्तरि निघण्टु (संपादक- डॉ. झारखण्डे ओझा और डॉ. उमापति मिश्र प्र. आदर्श विद्यानिकेतन, वाराणसी-५) के अनुसार]

३९५ कांस्य (हिंदी- कांसा) = लोह, निज, घोष, प्रकाश, कांस्यक, बल और घोषपुष्प।

३९६ गारुत्मत (एक रत्न - पन्ना) = मरकत, रौहिणेय, हरिन्मणि, सौपर्ण्य, गरुडोद्गीर्ण, बुधरत्न, अश्मगर्भज, गरलारि, वायवाल, गारुड और रुद्रसम्मित।

३९७ ताम्र (हिंदी- तांबा) = म्लेच्छमुख, शुल्व, रक्तक, रक्तधातुक, उदुंवर, त्र्यंवक और त्वाष्ट्र।

३९८ त्रपु (हिंदी- रांगा) = त्रपुक, आनील, रंग, वंग, पिच्चट, गुरु, श्रेष्ट, सलवण, सुरटी, नीलिका और घन।

३९९ पारद (हिंदी- पारा) = रुद्रेतस्, रसलोह, महारस, रसेन्द्र, चपल, सूत, पारदीय, और रसोत्तम।

४०० प्रवाल (हिंदी- मूंगा) = विद्रुम, रक्त, भूषणार्ह, सुवल्लिज, समुद्रज, महारक्त, वल्लीपाषाण-संभव।

४०१ राजावर्त = देखिये हीरक।

४०२ रीतिका (हिंदी- पीतल) = दो प्रकार – (१) रीति = लोहक, पिंग, कपिलोह, आदि सुवर्णक, सैहलक, निष्ठुर और दारुकण्टक। (२) काकतुण्डी = राज्ञी, राजपुत्री, महेश्वरी, ब्राह्माणि, ब्रह्मरीति, कपिला और पिंगला।

४०३ रौप्य (हिंदी- चांदी) = सौध, सित, तार, रजत, तप्तरूप, शुभ्र, कुप्य, वसुश्रेष्ठ, रुचिर, श्वेतक, चन्द्रहास, चन्द्रवपु, चन्द्रभूति, महावपु और वाक्यल।

४०४ लोह (हिंदी- लोहा) = शस्त्र, घन, पिण्ड, तीक्ष्ण, पारशव, शिव, अयस, कृष्णायस, वीर, भ्रमर, और कृष्णलोह। तीन प्रकार- **(१) मुण्डलोह** (इसके तीन प्रकार होते हैं – मृदु, कण्ट, कडार) **(२) तीक्ष्णलोह** – (प्रकार - खरसार, हरताल, ताल, वल्ल, वज्र, और काललोह। **(३) कान्तलोह** (प्रकार - भ्रामर, चुंबक, रंजक, आलोचक और रोमकान्त।

४०५ वर्तलोह (एक लोह प्रकार) = वट्टलोह, वर्तकलोह, वर्तुलोह, पंचलोह और नीलिका। **लोहोच्छिष्ट** = मण्डूर, किट्ट, मलोद्भव, लोहोत्थ, लोहनिर्यास, और अयःशिष्ट।

४०६ वैक्रान्तक – एक रत्न (हिंदी- तुरमली) = वज्र, क्रान्त, गोनस, भूमिरज, क्षुद्रकुलिश, जीर्णवज्र, और वज्रक.

४०७ सीसक (हिंदी- शीशा) = नाग, उरग, कृष्णोरग, भुजंगम, यवनेष्ट, विशिष्ट, योगीष्ट और चीरपिष्टक।

४०८ सुवर्ण (हिंदी- सोना) = कनक, रुक्म, शांतकुम्भ, कांचन, जाम्बूनद, जातरूप, हिरण्य, हेम, हाटक, चामीकर, चारुरत्न, तपनीय, पीतक, श्रीकेतन, भूषणार्ह, और चारुरूप।

वर्ग - १२ - अ

(परिशिष्ट)

धान्यादी भोज्य पंदार्थ

४१० अतसी (हिंदी- अलस, तीसी) = रुद्रपत्नी, सुनीलपुष्पा, वसुतर्का, क्षुमा, शीता, तैलफला, पालिका, और पूतिपूरक।

४११ अफूक (हिंदी- अफीम) = अहिफेन और अफेनक (यह खसखस का निर्यास है।)

४१२ आढकी (हिंदी- अरहर) = तुवरी, करवीरभुजा, वृत्तवीजा, पीतपुष्पा, (तीन प्रकार – श्वेत, रक्त और कृष्ण)।

४१३ करट (हिंदी- खेरारी, लतरी) = कराल, त्रिपुट और खण्डिक।

४१४ कलाय (हिंदी- मटर) = मुण्डचणक, हरेणुक, सतीनक, त्रासन, नलक, कण्ठी और वर्तुल।

४१५ कांजीक = कुल्माषाभिषुत, सौवीर, अवन्तिसोम, धान्याम्ल, आरनाल और महारस। अन्य प्रकार – सौवीरक और

४१६ तुषोदक = सुवीराम्ल, यव, गोधूमसंभव, यवोत्थ, यवाग्र।

४१७ कुलत्थ (हिंदी- कुलथी) = ताम्रपर्ण, कलावृत्त, अनिलापह, कर्षण, पीतमुद्ग, अलिस्कन्ध, और सुराष्ट्रक।

४१८ कुसुम्भ (हिंदी- कुसुम, बर्रे) = पावक, पीत, अलक्त, वस्त्ररंजन, कौसुम्भ, वह्निशिख। **कुसुम्भबीज** = कीलता, कट्वा, शुद्धा। और पद्मोत्तरा।

४१९ कोद्रव (हिंदी- कोदो) = कोरदूष, कुद्दाल और वनकोद्रव।

४२० खस्तिल (हिंदी- खसखस, पोस्ता) = तिलभेद, शुभ्रपुष्प और लसत्फल।

४२१ गोधूम (हिंदी- गेहूँ) = यवक, हुडुम्ब, म्लेच्छभोजन, गिरिज, सत्यभामा और रसिक।

४२२ घृत (घी) = आज्य, हविस्, सर्पिस्, पवित्र, नवनीत, अमृत, अभिधार और जीवनीय। विविध प्रकार –१ गोघृत. (२) महिषीघृत, (३) आजाघृत, (४) आविक (भेडी) घृत (५) उष्ट्री० (६) अश्वा० (७) गर्दभी० (८) हस्तिनी० (९) स्त्रीघृत० (१०) पुराणघृत० (११) घृतमण्ड।

४२३ चणेक (हिंदी- चना, बूंट) = हरिमन्थ, सुगन्ध, और कृष्णकंचुक।

४२४ जल = पानीय, आप, कीलाल, क, नीर, सलिल, अमृत, वारुण, तोय, वारि, अम्भस्, जीवन, अम्बु, उदक और पयस्। **विविध प्रकार** – गगनाम्बु, चन्द्रकान्तोद्भव, नादेय, ताडाग, सारस, वाप्य, (वापी = बावडी), चौण्ड्य (चुण्डी = गड्ढा), औद्भिद, कैदार (केदार = खेत), सामुद्रक, पर्वतीय, भौम, आनूप, (अनूप = जलमय प्रदेश) जांगल, क्वथित, नारिकेलोदक।

४२५ तक्र = छच्छिका और सात्म्य। (दुगना जल मिलाया हुआ दही); **उदश्वित** आधा जल मिलाया हुआ दही), **मथित**

(बिना जल के मंथन किया हुआ दही। तक्र के उपर आने वाले जल को उदश्वित कहते हैं।

४२६ तिल = होमधान्य, पवित्र, पितृतर्पण, पापघ्न और पूतधान्य। अन्य प्रकार जर्तिल = वन में उत्पन्न होने वाले तिल।

४२७ तैल = स्नेहोत्तम, तिलज, तिलसंभव, अभ्यंजन, म्रक्षण और मर्दनक।

विविध प्रकार= १) तिलतैल, २) अतसीतैल, ३)सर्षपतैल, ४) एरण्डतैल, ५) कुसुम्भतैल, ६)'कोशाग्रतैल, ७) आम्रगुप्ता, ८) निम्ब., ९) अक्ष., १०) करंज, ११) नीम, १२) भल्लातक, १३) विभीतक, १४) अतिमुक्तक., १५) अखरोल, १६) नारियल., १७) महुआ, १८) खीरा, १९) ककड़ी, २०) पेठा, (कूष्माण्डं) २१) लिसोड, २२) प्रियाल (चिरौंजी) २३) दन्ती, २४) मूलक, २५) सहिजन, २६) सुवर्चला. २७) इंगुदी २८) पीलु, २९) शंखिनी, ३०) सरल ३१) अगरु, ३२) देवदारु ३३) शिंशप. ३४) तुवरक, ३५) यवतिक्ता.।

४२८ दुग्ध = क्षीर, पयस्, स्वादु, रसायन, समाश्रय, सौम्य, प्रस्रवण, स्तन्य, बालसात्म्य और जीवित। आठ प्रकार – गाय, बकरी, भेड़ी, भैंस, ऊंटनी, घोड़ी, हस्तिनी और मानुषी - इनके दूधों में औषधिगुण होते हैं। इन आठ प्रकार के दूधों से आठ प्रकार का दही भी औषधिगुणों से युक्त होता है।

४२९ धान्यमाष (हिंदी- उडद) = कुरुविन्द, वृषाकर, मांसल, बलाढ्य, पित्र्य और पितृजोत्तम।

४३० नवनीत (मक्खन- माखन) = दधिभव, घृतहेतु, शिशुप्रिय, दधिमण्डोद्भव और मन्थनोद्भव।

४३१ निष्पाव (हिंदी- सेम, भटवासु) = श्वेतशिम्ब, पालकाख्य, और मुखप्रिय।

४३२ नीवार (हिंदी- तिन्नी) = तापस, मुनिभक्त, प्रसादक, अरण्यधान और रसिक।

४३३ प्रियंगु (हिंदी- कंगुनी) = कंगुक, चीनक, पीततण्डुल, अस्थिसंबंधन, और कङ्गुनी।

४३४ मकुष्ठ (हिंदी- मोट, मोठ) = वनमुद्ग, मकुष्टक, निरूढ और कृमीलक।

४३५ मद्य (विविध जातियाँ) = सुरा, प्रसन्ना, मदिरा, वारुणी, रसा, वरा, मण्डा, मदकरी, माधवी, वरुणात्मजा, इरा, कादम्बरी, हाला, जगल, और मेदक। महासुरा, मैरेय, (मैरेयी, सौरेयी। नवमद्य और जीर्णमद्य।

४३६ मधु = क्षौद्र, माक्षीक, माक्षिक, कुसुमासव, पुष्पासव, सारघ और पुष्परस।

आठ प्रकार – माक्षिक (तैलसमान वर्ण), क्षौद्र (कपिल वर्ण का), पौत्तिक (घी के वर्ण का), भ्रामर (श्वेतवर्ण का) छात्र (हल्के पीत वर्ण का), आर्घ्य, (पिगल वर्ण का) औद्दालक (स्वर्णवर्ण का) और दालमधु (हलके लाल वर्ण का)। इन आठ मधु प्रकारों में माक्षिक मधु सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

४३७ मसूर (हिंदी- मसूरी) = मधुर, सूप्य, पृथव और पित्तभेषज।

४३८ मस्तु = दही में उत्पन्न जल।

४३९ माध्वी सिता (हिंदी-) = मधुनिर्मित शर्करा। श्रीद शर्करा, माक्षिक शर्करा।

४४० मार्द्वीक = मृद्वीका अर्थात् द्राक्षा से निर्मित मद्य। = मधु, मद्योत्तम, हृद्य, सर, अभिषवक्रान्त, कामिकान्त और मदोत्कट।

४४१ मुद्ग (हिंदी- मूंग) = दो प्रकार (१) कृष्णमुद्ग = वासन्त, पित्तप्रसेक, वरक वसुक और माधव। (२) हरितमुद्ग = शारद , किलाट और मांगल्य। (३) राजमुद्ग = खण्डक।

४४२ मेथिका (हिंदी- मेथी) = दीपनी, उग्रा, कुंजिका, वहुपत्रिका, मल्लिका, शीतवीर्या, ज्योतिष्का, वल्लरी और शिखी। अन्य प्रकार - वनमेथिका = वास्तिका, सेलु, हिस्फिथ

४४३ यव (हिंदी- जौ) = अक्षत, और तीक्ष्णशूक।

४४४ राजमाष (हिंदी- लोबिया) = बीजवर, घारी, चवल, राजमाषक, नीलमाष, नृपमाष और नृपोचित।

४४५ व्रीहि (हिंदी- चांवल) विविध प्रकार = महाव्रीहि और कृष्णव्रीहि।

४४६ शालि (हिंदी- धान) विविध प्रकार = रक्तशालि, महाशालि, सुगन्धप्रसव, वृन्दारक और मुष्टिक। शाबर, कृष्णशालि, हास, वृन्दक, कृष्णव्रीहि और गौर। आरण्यधान्य, जलज धान्य, प्रसादक धान्य।

४४७ शुक्त (या अम्ल) = सहस्रवेध, रसाम्ल, चुक्र, मुक्तसार, दहन, नीलकारक, चण्ड, और भेदन। दो प्रकार = मधुशुक्त और गौड शुक्त।

४४८ श्यामाक (हिंदी- साँवा) = तृणबीज, मुनिभक्ष्य, गवांप्रिय, सुकुमार, राजधान्य और तृणबीजोत्तम।

४४९ सीधु (एक मद्य प्रकार) = भेद - आमण्डवास, शीतरस और पक्वरस, मधूक सीधु, गौडसीधु, माक्षीकसीधु, जाम्बसीधु

४५० सुरा के प्रकार = यवसुरा, मधूलिका, आक्षिकी, मार्द्वीक, खार्जूर

★ ★ ★

अर्थशास्त्र परिभाषा (संकीर्ण)

(अवशिष्ट अंश)

अंककार = सर्वोत्तम योद्धा।

अक्षदृक्कर्म = अक्षांश ज्ञान के लिए गणित की प्रक्रिया।

अक्षयनीवी = स्थायी धर्मादाय निधि।

अंगियनीवी = स्थायी धर्मादाय निधि।

अंगिकरणिक = पंजीयन करने वाला अधिकारी।

अष्टताल = मानव की ऊंचाई का एक सामान्य नाप (८४ इंच)। नवताल पुरुष सामुद्रिक दृष्टि से उत्तम माना जाता है।

अतल = गणित शास्त्र में क ट प य आदि वर्ग प्रसिद्ध हैं। इस वर्गव्यवस्था में वर्णाक्षर की जो संख्या होती वह उस वर्ण का संख्यावाचक अर्थ माना जाता है। अतल शब्द का इस व्यवस्था के अनुसार अर्थ = अ = शून्य। त् = छह (टकार से यह छठा वर्ण है) ल = तीन (यकार से तीसरा वर्ण) इस क्रम से सिद्ध हुई ६३ संख्या, 'अंकानां वामतो गतिः'' इस गणित न्याय के अनुसार ३६० होती है।

अत्यर्थवेदन = हाथियों का एक प्रकार। इस प्रकार का हाथी अत्यंत संवेदनशील होता है।

अनिलभद्रक = सात प्रकारों में से रथ का एक प्रकार। सात प्रकार – नभस्वत्, प्रभंजन, निवात, पवन, परिषद, इन्द्रक और अनिलभद्रक।

अन्वाधेय = विवाह के पश्चात् वधू को पिता के कुल से तथा पति के कुल से प्राप्त होने वाला द्रव्य। (मिताक्षरा- २-१४४)

अभ्यन्तर दोष = राजा के शरीर से संबंधित या अन्तःपुर से संबंधित अपराध। ये अपराध अक्षम्य माने जाते हैं।

अवधा = किसी त्रिकोण की आधार रेषा का अंश।

आक्षपटलिक = लेखाधिकारी।

आखण्डशाला = शिल्पी का कारखाना।

आंजलिक = अर्धचन्द्राकार बाण।

आर्यघोटक = बारात के अग्रभाग में चलाया जाने वाला अलंकृत घोड़ा

आलान = हाथी को बांधने योग्य खंभा तथा रस्सा।

आलीढ = निशाना लगाते समय दाहिने घुटने को आगे रखकर बांये पैर को मोड़ देकर बैठना। यह एक प्रकार का वीरासन है।

आस्कन्दित (आस्कन्द) = घोड़े की एक प्रकार की चाल।

उत्कोचक = रिश्वतखोर। घूस लेने वाला। (मनु. ९-२५८)

उत्तमर्ण (उत्तमर्णिक) = उधार देने वाला। साहुकार। (इस के विपरीत होता है अधमर्ण)।

उत्तम साहस = उच्चतम आर्थिक दण्ड। १ हजार से ८० हजार पणों का दण्ड।

उत्थान = युद्ध के लिए सेना की सिद्धता।

उद्धार = पैतृक सम्पत्ति से केवल श्रेष्ठ पुत्र को ही धर्मतः प्राप्त होने वाला अंश। इस पर छोटे भाइयों का अधिकार नहीं होता।

उद्धारकविधि = भुगतान करने की रीति।

उपकारी (उपकार्या) = राजकीय तंबू। धर्मशाला।

उपग्राह्य = राजा या तत्सम श्रेष्ठ व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट।

उपजाप = शत्रु के मित्रों के साथ गुप्त बातचीत, फूट के वीज बो कर विद्रोह के लिए भड़काना। (हिंदुस्थान के समाज में यह प्रयोग अंग्रेज शासकों ने किया था।

उपदा = राजा को दिया जाने वाला उपहार।

उपनिक्षेप = रूप, संख्या, परिणाम आदि दिखाकर दूसरे के पास सम्हालने के लिए दी जाने वाली मूल्यवान वस्तु।

उपनिधि = मुद्रांकित धरोहर।

उपनिर्हार = शत्रु पर हमला।

उपस्थान = न्यायालय का कक्ष।

ऋणदास = वह क्रीतदास जिसको ऋणमुक्त करने के पश्चात् दास के रूप में स्वीकृत किया जाता है।

ऋणार्ण = एक ऋण चुकाने के लिए दूसरा ऋण।

एकच्छत्र = वह राज्य जहां एक ही राजा का आधिपत्य होता है।

औपवेशिक = पूरी लगन के साथ काम करके अपनी उपजीविका कमाने वाला।

औपस्थिक = व्यभिचार द्वारा उपजीविका चलाने वाला।

कटफल = घूस, रिश्वत।

कपोलताडन = अपने अपराध का स्वीकार करते हुए. अपने ही गालों को थपथपाना।

कर्णयोनी = बाण की अपर संज्ञा। कर्ण (कान) तक खींची गयी प्रत्यंचा से वह निकल पड़ता है, इस कारण यह संज्ञा रूढ हुई।

कलत्र = राजकीय दुर्ग।

कला = मूलधन पर ब्याज।

कलापक = (१) वह ऋण जिसका परिशोध मोर की पूंछ फैलाने के समय होता है। (२) मस्तक पर लगाया हुआ संप्रदायद्योतक तिलक विशेष।

काकयव = फलहीन तृणधान्य।

कायकवृद्धि = धरोधर रखे हुए पशु आदि के उपयोग के बदले बयाने के रूप में दिया गया ब्याज। धरोहर रखे हुए पशु को उपयोग में लाना।

कारणोत्तर = अभियोग के कारण को स्वीकार न करना।

कालवृद्धि = निश्चित समय पर देय ब्याज।

कार = घुड़दौड़ का पुरस्कार। (वा.सं. ३०-६-२०)

कार्ष्मन् = रथ के दौड़ की एक सीमा जिस तक पहुंचकर

प्रतिद्वन्द्वी अपने स्थान पर लौट आते थे। (ऋ १-११६-१७)

काहारक = पालकी में बैठनेवालों को ढोनेवाला।

कुग्राम = नदी से दूर छोटा गांव जहां राजाधिकारी, वैद्य या पुरोहित आदि नहीं रहते।

कुसूल = अन्न-धान्य का भण्डार।

कौटतक्ष = स्वेच्छा से काम करने वाला बढ़ई। अन्य प्रकार है **ग्रामतक्ष** वह गावं वालों का काम करता है।

कौस्तुभ = घोड़े की अयाल, गर्दन के बाल।।

कोट्टार = (१) किलेबन्दी वाला नगर। (२) तालाब की सीढ़ियाँ।

क्रियाद्वेषी = पक्षपाती साक्ष्य (गवाही) देने वाला।

क्रीतानुशय = खरीदी हुई वस्तु को वापिस करना।

क्रोडपत्र= वसीयतनामे का उत्तराधिकार पत्र।

क्षेत्रगणित = रेखागणित, या ज्यामिति

क्षेत्रफल = आकृति की लम्बई और चौड़ाई का गुणन फल।

क्षेत्रराशि = ज्यामितीय आकृतियों द्वारा प्रकट किया गया परिणाम।

खटकामुख = बाण चलाते समय हाथ की विशेष स्थिति।

खलूरिका = सैनिकों की कवायत का प्रांगण।

खुरली = कृत्रिम युद्ध का अभ्यास।

खुरलीकेलि = सैनिकों का अभ्यास।

गणद्रव्य = सार्वजनिक सम्पत्ति। पंचायती माल।

गणराज्य = राज्यव्यवस्था का एक प्रकार। इसमें राष्ट्र के विशिष्ट गण का आधिपत्य होता है।

गणित = एक विज्ञान। तीन प्रकार = अंकगणित, बीज गणित और रेखागणित।

गरूडव्यूह = युद्ध में एक विशिष्ट प्रकार की सैनिक रचना।

गर्भपाकी = साठ दिनों में पक्व होने वाला धान, चांवल।

गुल्म = सैनिकों का एक दल, जिसमें ४५ पदाति, २७ अश्वारोही, ९ रथारोही, और ९ गजारोही होते हैं।

ग्रामतक्ष = देखिये कौटतक्ष।

घनगोलक = चांदी सोने की मिलावट।

घनफल = किसी वस्तु की लंबाई-चौड़ाई और मुटाई या उंचाई का गुणन फल।

चतुष्पाद = न्यायालय में अभियोग की जाँच पड़ताल, जिस में तर्क, पक्षसमर्थन, प्रत्युक्ति और निर्णय ये चार प्रक्रियाएँ होती हैं।

चन्द्रलौह (लौहक) = चांदी।

जयन्ति = तराजू की डंडी।

जित्य = खेत को समतल करने का एक उपकरण।

ज्येष्ठांश = केवल ज्येष्ठत्व के कारण बड़े भाई को मिलने वाला पैतृक संपत्ति का विशिष्ट भाग।

तंडुलपरीक्षा = चोरी के अपराधी व्यक्ति की सत्यासत्यता की परीक्षा करने की एक प्राचीन न्यायालयीन पद्धति। इसे दिव्य कहते हैं। अपराधी को खिलाए गए भीगे तडुलों में वमन करते समय रक्तांश दिखने पर वह चोर माना जाता था।

तद्विद्यसंभाषा = तज्ञ व्यक्तियों की सभा में होने वाला संवाद तथा वादविवाद।

तन्त्रिक = प्रशासन वाणिज्य आदि व्यवहारों में कुशल।

त्रसरेणु = लंबाई का सूक्ष्मतम परिमाण।

त्रैराशिक = तीन ज्ञात राशियों द्वारा चौथी अज्ञात राशि निकालने की गणितशास्त्र की एक रीति।

दक्षिणाप्रष्टि (या दक्षिणायुग्य) = रथ के दाहिने ओर का अश्व। **युग्य** = रथ के बाइ ओर का अश्व।

दण्डदास = दास के सात प्रकारों में से एक। दण्ड की राशि देने में असमर्थ होने के कारण दास्य का स्वीकार करने वाला।

दण्डनायक = सेना या आरक्षी दल का मुख्याधिकारी।

दण्डयात्रा = दिग्विजय के हेतु सेना का प्रयाण।

दण्डवारित = दण्ड के भय से अपने कार्य से निवृत्त होनेवाला।

दण्डव्यूह = सैनिकों की विशिष्ट रचना।

दत्तानपकर्म = दान में समर्पित वस्तु को न देना या वापिस लेना। धर्मशास्त्र में वर्णित १८ स्वाधिकारों में से एक।

दत्रिम दास = दास के सात प्रकारों में से एक। गिरवी रखा गया सेवक।

दशावर = दश + अवर। दस श्रेष्ठ पुरुष। इन्हींके समुदाय को **परिषद** कहते हैं। (देखिये – परिषद)।

दाय = उत्तराधिकार में प्राप्त होंने वाली संपत्ति।

दायभाग = उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति का विभाजन।

दास = आज्ञाधारक सेवक। सात प्रकार- ध्वजाहत (युद्ध का कैदी), भक्तदास (उदर- भरण के लिए सेवा करने वाला), गृहज (दासी से उत्पन्न पुत्र), पैत्रिक (कुलपरंपरा से प्राप्त), दण्डदास (दण्ड भरने की असमर्थता के कारण दास्यवृत्ति का स्वीकार करने वाला। (मनु. ८-४१५)

दासी = स्मृतिचंद्रिका (२-२९०-५) के अनुसार संभोग के लिए खरीदी गयी स्त्री। अर्थात् दासी संज्ञा का अर्थ दास की पत्नी नहीं माना जाता। चार प्रकार – देवदासी, ब्रह्मदासी, स्वतंत्रदासी (वेश्या) और शूद्र दासी (घर का काम करने वाली नौकरानी)।

दासीभार = दासी की प्रसूति का तथा उसकी संतति का दायित्व।

दिव्य = धर्मपरीक्षा। अग्निदिव्य जलदिव्य आदि इसके प्रकार होते हैं।

दुहिलितिका = बहुत बालों वाले जानवर की खाल।

देवस्व = यज्ञ याग करने वाले की सम्पत्ति। (मनु. ११-०) मन्दिर की सम्पत्ति।

देवी = पति के राज्याभिषेक के समय अभिषेकादि संस्कार पायी हुई ज्येष्ठ रानी। अग्रमहिषी।

द्विबिस्ता = ८० रत्ती सोना गलाने वाली मूस।

द्यूतधर्म = द्यूत खेलने के नियम।

द्वैधीभाव = विदेशनीति के छह गुणों में से एक। बलवान

शत्रु की सेना में फूट डालना और दो सेनाओं से अलग अलग युद्ध करके शत्रु को परास्त करना अथवा अपनी सेना के दो विभाग करते हुए शत्रु को परास्त करना।

धनधानी = धन का कोष, खजाना। (तैत्तिरीय आरण्यक - १०-६९)

धर्मपीडा = शासकीय तथा धर्मशास्त्रीय नियमों का भंग।

धर्मयुद्ध = न्याय, नीति, भूतदया, इत्यादि का अवधान रखते हुए किये जाने वाले युद्ध का एक प्रकार। प्राचीन भारतीय संस्कृति में इसी प्रकार का युद्ध होता था। धर्मजुद्ध की पद्धति भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता का एक प्रमाण है।

धर्माधिकरण = न्यायालय।

धर्माधिकरणिक = न्यायाधीश।

धर्माध्यक्ष = न्यायाधीश।

धर्मराज परीक्षा = धर्म-अधर्म परक आचरण का निश्चय करने निमित्त एक दिव्य विधि। भूर्जपत्र या वस्त्र पर धर्म और अधर्म अक्षर लिख कर वे टुकडे घट में रखे जाते है। दिव्य करने वाला एक टुकड़ा बाहर निकालता है। उस पर जो अक्षर लिखे होते हैं वेही प्रमाण माने जाते हैं।

ध्वजाहत = दास के सात प्रकारों में से एक। युद्ध में शत्रु द्वारा पकड़ा गया सैनिक।

नामापराध = किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को नाम लेकर गाली देना।

धान्यवर्धन = ब्याज के निमित्त धान्य देना।

नारायणास्त्र = एक विश्वसंहारक दिव्य अस्त्र, जिसका प्रतिकार केवल प्रणाम करने से ही हो सकता है।

पक्षनिक्षेप (पात) = विवाद में एक ही पक्ष के प्रति अनुकूलता।

पक्षवध = शरीर का आधा भाग ढीला या लूला पड़ना। (पक्षवायु, पक्षवात या पक्षाघात)।

पंचरत्न = माणिक, मोती, हीरा, प्रवाल और इन्द्रनील। (२) सोना, चांदी, मोती, माणिक और प्रवाल। ये देवताओं को प्रिय माने गए हैं।

पंचराशिक = गणित की एक पद्धति। इसमें चार ज्ञात राशियों के द्वारा पांचवी राशि निकाली जाती है। (देखिए त्रैराशिक)।

पंचिका = अभिलेख पुस्तक। रजिस्टर।

पट्टकील = भूखण्ड को किराये पर जोतने वाला पट्टेदार।

पणबन्ध = प्रतिपक्ष से सन्धि या सुलह करना।

परिपन्थिक = मार्ग में लूटपाट करने वाला, डाकू।

परिमाण = ५ रत्ती = १ माष। १६ माष = १ सुवर्ण (या अक्ष)। ४ या ५ सुवर्ण = १ पल। २ पल = १ प्रसृत। १० पल = १ कुडव। ४ कुडव = १ प्रस्थ। ४ प्रस्थ = १ आढक।

पारीणह्य या पारिणाह्य = घर के उपयोगी पात्र जिनका रक्षण गृहणी करती है। (मनु. ९-११)

पार्ष्णिविग्रह = सेना की पिछाड़ी में युद्ध करना।

पिक्क = २० वर्ष की आयु का हाथी।

पुष्कल = ६४ मुष्टियों के बराबर एक विशेष माप। (२) चार ग्रास की भिक्षा।

पुस्तपाल = भूमिविषयक अभिलेखों को सुरक्षित रखने वाला अधिकारी।

पूर्णपात्र = आनन्ददायक समाचार प्रथम लाने वाले व्यक्ति को देने योग्य उपहार।

पृतना = सेना का एक विभाग जिसमें २४३ हाथी, २४३ रथ, ७२९ घोडे, और १२१५ पदाति होते है।

पृष्ठभंग = युद्ध में लड़ने की एक रीति।

पौरुषेय = दैनिक वेतन पर काम करने वाला श्रमिक।

पौरोगव = राजभवन का अधीक्षक। राजा के रसोई का अधीक्षक।

प्रउग = अक्ष से समकोण पर रथ की भार-यष्टि, जिसके दोनो ओर घोडे जाते थे। (अपर शब्द = ईषा)

प्रतिशीर्षक = बन्धन या सजा से मुक्तता पाने के निमित्त दिया जाने वाला धन।

प्रतिसर = सेना का पृष्ठभाग। (२) विवाह कंकण।

प्रतिहस्त (हस्तक) = प्रतिनिधि।

प्रत्यवस्कन्द = प्रतिवादी का वह उत्तर, जिसमें वह वादी के अभियोग का खण्डन करता है।

प्रत्यालीढ = लक्ष्यवेध करते समय धनुर्धारी की विशेष स्थिति। (अन्य स्थिति है आलीढ)

प्रथम साहस = न्यूनतम दण्ड।

प्रस्थ = एक विशिष्ट माप। यह ३२ पलों के बराबर होता है।

प्राड्न्याय = पहले से निर्णीत मुकदमा जो केवल बाद में लेखनिविष्ट होता है।

प्राप्तव्यवहार = कानून की दृष्टि से अपने आर्थिक व्यवहार संभालने का अधिकारी युवा।

प्राभृतक = राजा या देवता को देने योग्य उपहार।

प्रीतिदत्त = विवाह के समय सास या ससुर द्वारा वधू को दी गयी सम्पत्ति।

बलिषड्भाग = आय का छठा अंश जो राजा को करभार के रूप में दिया जाता है।

बस्तिक = एक प्रकार का बाण। शरीर में घुसने पर इसका अग्र बाहर निकालना असंम्भव होता है।

बालक = पांच वर्ष की आयु का हाथी।

बाहु = सम-त्रिकोण की आधार रेखा।

बीजगणित = भारतीय गणित शास्त्र की एक शाखा। इसमें अव्यक्त संख्या का निर्देश अ, ब, य, क्ष इत्यादि प्रतीक अक्षरों से होता है। इसमें समीकरण, बहुपद, विततभिन्न, श्रेणी संख्यानुक्रम, सारणिक, समघात आदि विषयों का समावेश होता है।

ब्रह्मकिल्विष = ब्राह्मणों के प्रति किया गया अपराध।

भद्रगणित = ऐन्द्रजालिक द्वारा खींची गई रेखाकृति।

भद्रपीठ या भद्रासन = राजा का सिंहासन।

भाजन = ६४ पलों का माप।

भाषापत्र = आवेदन पत्र।

भुजा = ज्यामिति की आकृति का पार्श्व।

भूमि = ज्यामिति की आकृतियों की आधाररेखा।

मकरव्यूह = युद्धभूमि में सैनिकों की मकराकार रचना।

मकुति = शूद्रों के लिए राजा का आदेश।

मंजील = वह गांव जिस में धोबियों का निवास हो।

माण्डलिक = प्रान्त का प्रशासक। राज्यपाल।

मानयोग = माप तोल करने की निश्चित पद्धति।

माहिषिक = पत्नी की वेश्यावृत्ति से धन कमाने वाला। (महिपी = व्यभिचारिणी स्त्री)

यव = सामान्यतः कोई भी धान्य। संहिताओं में विशेषतः जौ के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है।

याजक = राजकीय हाथी।

याष्टीक = लाठी से युद्ध करने वाला।

युवराज = राजा का उत्तराधिकारी पुत्र।

योगवामन = कपटपूर्ण योजना।

रत्नपंचक (पंचरत्न) = इन्द्रनील (नीलम), मरकत (पन्ना), पुष्पराग (पुखराज) और वज्र (हीरा)। नव रत्नों में ये श्रेष्ठ माने जाते हैं।

राष्ट्रिक = राज्य का नियुक्त प्रशासक राज्यपाल।

रिक्थ = किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसकी अदत्त या अवशिष्ट सम्पत्ति।

रुरुशीर्ष्णी = बाण का एक विशेषण। सींग की नोंक वाला बाण।

रेखागणित = ज्यामिति। गणितशास्त्र का एक अंग।

लावण्यार्जित = विवाहिता स्त्री की निजी सम्पत्ति जो विवाह के अवसर पर उसे पिता या सास से प्राप्त होती है।

लोहाभिहार = एक सैनिक संस्कार।

वणिक्पथ = व्यापार, क्रयविक्रय।

वराहकर्ण = एक प्रकार का बाण।

वराहकर्णिका = एक प्रकार का अस्त्र।

वर्धमान = वह भवन जिसके दक्षिण की ओर कोई द्वार न हो।

वाक्यसारथि = किसी का प्रतिनिधि होकर वक्तव्य करने वाला। अधिवक्ता।

वार्ता = वैश्य का उद्यम।

वाहिनी = अक्षौहिणी सेना। इसमें ८१ गजारोही, ८१ रथी, २४३ अश्वारोही, और ४०५ पदाति सैनिक होते हैं।

विचारस्थल = न्यायालय। न्यायाधिकरण।

विष्टिकर = बेगार में पकड़े मजदूरों का स्वामी।

व्यवहार = न्यायालयीन कार्यविधि।

व्यवहारविषय = कानूनी कार्यवाही के योग्य विपय। मनुस्मृति के अनुसार इनकी संख्या १८ है। (मनुस्मृति- ८/४-७)

व्यवहारासन = न्यायासन।

व्यूहन = युद्ध के समय किसी विशेष व्यूह के अनुसार सेना की रचना।

व्रातम् = शारीरिक श्रम की मजदूरी। इस प्रकार मजदूरी करने वाले को **'व्रातीन'** कहते हैं।

शक्ति = तीन प्रकार (१) क्रियाशक्ति, इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति। (२) प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साहशक्ति।

शक्रकुमारी (या इन्द्रकुमारी) = विजिगीपु राजा के इन्द्रध्वज की यात्रा में छोटी-बड़ी काष्ठमय पुतलिया। शक्रकुमारी सप्तक = नन्दा, उपनन्दा, जया, विजया, वसुन्धरा नामक दो, तथा शक्रजनित्री। (शक्रजनित्री का स्थान बीचं में होता है)।

शासनपत्र = भूमिदान आदि के संबंध में ताम्र पत्र या अन्य पत्र पर लिखित राजाज्ञा।

संख्यावाचक संज्ञाएँ = एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, प्रयुक्त, कोटि, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, शंकु, जलधि, अन्त्य, मध्य, परार्ध। ये क्रमशः दशगुणित संख्याओं की वाचक संज्ञाएँ हैं।

संविदा = करार, ठेका।

सत्यंकार = अभिवचन की पूर्ति के निमित्त बयाने के रूप में दिया गया धन आदि। जमानत।

सन्नाह = युद्ध की सिद्धता।

सभिक = द्यूतसभा का प्रमुख।

समक्रिया = करार करना।

समयव्यभिचार = करार तोड़ना।

सम्मतिपत्रक = न्यायालय के निर्णय का पत्रक।

सम्राट् = राजसूय यज्ञ करने वाला तथा राजमण्डल का प्रमुख राजा।

सामन्त = चक्रवर्ती राजा को करभार देने वाला दुर्बल राजा।

साम्राज्य = सार्वभौम अधिपत्य।

सांयात्रिक = समुद्री व्यापार करने वाला।

सार्थवाह = व्यापारियों के दल का प्रमुख। (सार्थ = व्यापारियों का दल या समूह)

सुरंग (या सुरुंग) = भवन के नीचे से जाने वाला गुप्त मार्ग। (सुरंगा या सुरुंगा)

सुवर्ण = एक परिमाण। १ सुवर्ण = ८० रत्ती। (५ रत्ती = १ माष)

सुवर्णगणित = गणित शास्त्र की एक रीति।

सेनाप्रमुख = सेना का वह भाग जिसमें ३ हाथी, ३ रथ, ९ घोड़े और १५ पदाति होते हैं।

सौखशायनिक (सौखशायिक या सौखसौप्तिक) = प्रातःकाल में सुखपूर्ण निद्रा की पृच्छा करने वाला राजा का निकटवर्ती सेवक।

स्कन्धावार = सेना का शिबिर। युद्ध काल में राजा का निवास स्थान।

स्थपति = वास्तुरचना करने वाला कुशल कारीगर।

स्थानेपतित = दूसरे के स्थान पर अधिकार करने वाला।
स्थापत्य = भवन निर्माण की कला।
स्थूणाकर्ण = एक प्रकार का सैन्य व्यूह।
स्फुटफल = त्रिकोण का क्षेत्रफल।
स्वर्णबन्ध = सोना गिरवी रखना।
हंसोदक = मदिरा का एक पौष्टिक प्रकार।
हस्ती (चार प्रकार) = (१) भद्र, (२) मन्द (३) मृग और (४) संकीर्ण।

(मृग जातीय हाथी की ऊँचाई पांच हाथ, पूँछ से कुम्भ तक लंबाई सात हाथ और मध्य की मोटाई आठ हाथ होती है। इन प्रमाणों में एक एक हाथ बढ़ाने से मन्द का, दो दो हाथ बढ़ाने से भद्र का प्रमाण होता है। संकीर्ण जातीय का प्रमाण अनिश्चित होता है। ये हाथी शुभ माने जाते हैं।
हस्ती (पांच प्रकार) = कुब्ज, मत्कुण, षण्ढ, वामन और विकट। इन जातियों के हाथी अशुभ माने जाते हैं।
हेडाबुक्क = घोडों का व्यापारी।

★★★

वर्ग - १३

पशु-पक्षी-वर्ग।पर्याय शब्द

४५१ अश्व = घोटक, तुरग, तुरंग, तुरंगम, हरि, हंस, शालिहोत्र, जवी, सप्ति, ययु और हय।

४५२ अश्वतर (हिंदी- खच्चर) = द्युगामी, शीघ्रग और वेगपूजित

४५३ अस्थि = हड्डु, वलकर, सन्धान, देहधारण, सकल, मांसलिप्त, सर्वभंदसमुद्भव।

४५४ उलूक = नक्तधारी, दिवान्ध, कौशिक, कौशी, घर्घरक, भीरु, कोकशत्रु और निशाचर। अन्यप्रकार- क्षुद्रोलूक = शाकुनेय, पिङ्गल, डुडुल, वृक्षाश्रयी, वृहद्राव, पिंगलाक्ष और भयंकर।

४५५ उष्ट्र (हिंदी- ऊंट) = क्रमेलक, धूम्र, करभ, दीर्घमार्गय, ग्रीवांकुश, कुनास, दीर्घग्रीव, धूसर, वक्रग्रीव, दीर्घजङ्घ, धूम्र, दासेरक, और मय।

४५६ कच्छप (हिंदी- कछुवा) = कमठ, कूर्म, गूढांग, धरणीधर, कच्छेष्ट, पल्वलावास, वृत्त, और कठिनपृष्ठ। अन्य प्रकार – महामत्स्य, कूर्मराज, गुप्तांग, चित्रपृष्ठ, और धरणीधरक्षम।

४५७ कर्कट = कर्कटक, कुलीर, कुलीरक, संदंशक, पंकवास, तिर्यग्गामी, ऊर्ध्वदृक्।

४५८ काक = वायस, ध्वांक्ष, काण, अरिष्ट, उलूकजित्, वलिभुक्, चिरजीवी, धूलिजंघ और निमित्तकृत्। अन्य प्रकार – द्रोणकाक (या काकद्रोण)।

४५९ कुक्कुट = ताम्रचूड, दक्ष, शौण्ड, विष्किर, कालज्ञ, कृकवाकु, नियोद्धा और चरणायुध।

४६० कोकिल = परपुष्ट, परभृत, कृष्ण, असित, वसन्तदूत, ताम्राक्ष, गन्धर्व, और वनभूषण। (कोकिला= धूर्ता)

४६१ क्षुद्रमत्स्य = शफर (शफरी) और प्रोष्ठी

४६२ गर्दभ (हिंदी- गदहा) = शंकुकर्ण, बालेय, रासभ, खर, भारवाह, भूमिगम, धूसर और रेणुभूषित।

४६३ गोमूत्र = गोजल, गोपानीय, गोस्रव, गोकीलाल, गोनीर, सुरभिजल।

४६४ गौ = शृंगिणी, सौरभेयी, दोग्ध्री, धेनु तथा पयस्विनी

४६५ चक्रवाक = चक्री, चक्राह्व, चक्ररथ, रथी, चक्र, रथांगनामा, रथिक और कामी।

४६६ छाग (हिंदी- बकरा) = छगल, बर्कर, बस्त, पयस्वल, अज, बृकडक, मेध्य, लम्बकर्ण, और पशु।

४६७ त्वक् (त्वचा) = चर्म, असृग्धरा, कृत्ति, अजिन, देहचर्म, रक्ताधार, रोमभूमि और शरीरावरण।

४६८ दीर्घतुंडी (चूहे का एक प्रकार) = नखी, आमूषिका, छुछुंदरी।

४६९ पित्त = तेजोमय, तिक्त, शिखी, वैश्वानर, अनल, ज्वर, पक्ता, तृषाकर्ता और शोष।

४७० बलीवर्द (हिंदी- सांड) = दान्त, उग्र, गोरक्ष, धूर्वह, और स्थिर। अन्य प्रकार- वृषभ।

४७१ बिडाल = मूषकद्वेषी, वृषदंश, विडालक, शालावृक, मार्जार, मायावी और दीप्त-लोचन। अन्य प्रकार (१) पूतिक, पूतिकेशर, सुगन्धिमूत्रपतन (गन्धमार्जार। (२) उग्र, पिंगल, उग्रविडालक, सुगन्धिमूत्रवृषण, कस्तूरी।

४७२ भास = शिव, गृध्राकार और रजःप्रभ। अन्य प्रकार – जलकाक (दात्यूह, कालकण्टक)।

४७३ भ्रमर = षट्पद, भृंग, शिलीमुख, द्विरेफ, अलि, मधुकर, मधुप, मधुलिट्, षट्चरण, झंकारी, पुष्पलोलुप, नील, घुमघुमाराव, मधुकृत् और मधुरस्वर। अन्य प्रकार – क्षुद्र भृंगार, पूतिभृंग, और कुभृंगक।

४७४ मज्जा = अस्थिसार, बीज, तेजस् और अस्थिसम्भव।

४७५ मण्डूक = दर्दूर, मण्ड, हरि, भेक, सूचक। अन्य प्रकार – (१) राजमण्डूक = महावित्त, और मण्डव्य।

४७६ मत्स्य = मीन, शकुनि, कष्ठी, मांगल्यदर्शन, रोहित, कष्ठकाल, पाणिन और शकुल। प्रमुख प्रकार = रोहित, शकल, नन्दिकावर्त, कण्टकी (प्रकार- रणजित्, शतशंख, गोमत्स्य अलिमत्स्य और त्रिकंटक); शृंगी, मुद्गरमुखमत्स्य, इरस, पुलंग।

अन्य प्रकार – राजीव, शकुली, वागूश, शल्य, चुल्लक, कुलिश, तिमि, शिशुमार, समुद्र। सरोवर, नदी आदि जलाशयों में मत्स्य भिन्नजातीय होते हैं।'

४७७ मयूर = नर्तक, वर्ही, शिखी, ध्वनी, नीलकण्ठ, मेघाराव, कलापी, शिखण्डी, और चित्रपिच्छक।

४७८ मल = विष्ठा, पुरीष, विट्, किट्ट और पूतिक।

४७९ महामत्स्य = प्रकार- तिर्मिंगिल, तिमिगिलगिल, और मकर, चिलमिल।

४८० महिष (हिंदी- भैंसा) = कासर, शृंगी, श्याम, कृष्ण लुलायक, विषाणी, कलुष, दंशी, पीनस्कन्ध और रजस्वल। **महिषी** = महाक्षीर, मन्दगमना, पयस्विनी, लुलायकान्ता, कलुषा और तुरंगद्वेषिणी।

४८१ मानुष = पुरुष, शतायु, नर, कान्त, मर्त्य, पुमान्, वक्ता, दीर्घपिशी और मानव।

४८२ मांस = आमिष, लोमन, रस्य, शोणितसंभव, अंगज, पिशित, कीर, क्रव्य तथा राक्षसभोजन।

४८३ मूषक (हिंदी- चूहा) = खनक, पिंग, आखु, नखी, उन्दुरुक। अन्य प्रकार – **महामूषक** = मोषी, विघ्नेशवाहन, सस्यमारी, भूफल और भित्तिपातन।

४८४ मृग = हरिण, न्यूंङ्कु, सारंग, पृषात, रुरु, एण, श्यामलपृष्ठ, कुरंग और चारुलोचन।

४८५ मेद = मांससार, मांसज, एवं शुभ्र।

४८६ **मेष** (हिंदी- भेड़) = भेड्र, हुड, मेड्र, उरभ्र, उरण, अविक, अवि. पशु, एड, एडक, पृष्ठशृंगक, ऊर्णायु, रोमश, वृष्णि, मदपुच्छ और वर्वुक।

४८७ **रक्त** = शोणित, विस्र, असृग्, लोहित, आग्नेय, आमिषकर, प्राणद, रसमंभव, अशुद्ध और रुधिर।

४८८ **रस** = प्राणप्रद, पथ्य, षड्रस, अन्नसम्भव, रक्तधातुकर्ता, और रक्तपिता।

४८९ **रोम** = लोम, त्वगज्, चर्मज और तनूरुह। (पक्ष्म = नेत्र के रोम) (श्मश्रु = मुख के रोम)

४९० **लाव** = लावक, चित्रदेह। चार प्रकार = पांशुल, गौरक, पौण्ड्रक और दर्भर।

४९१ **वसा** = पीतधरा, मेदमांससमुद्भवा, सर्वस्नेहप्रधाना और अस्थिजननी।

४९२ **वाचा** = वाक्, वाणी, सरस्वती, गौरी, वचनी, गिरा, भारती, ब्राह्मी, भाषा।

४९३ **वानर** = मर्कट, हरि, शाखामृग, कपि, वनौकस्, प्लवग, प्लवंग, प्लवंगम।

४९४ **वायु** = प्रभंजन, कर्ता, मारुत, श्वसन, अनिल, समीरण, मातरिश्वा, पवन, सदागति, गन्धवह, गन्धावह, स्पर्शन। दस प्रकार – प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। तथा, कृकर, देवदत्त, नाग, कूर्म, और धनंजय।

४९५ **वृक** (हिंदी- भेड़िया) = ईहामृग, कोक, वत्सादन और अविभुक्।

४९६ **वृषभ** (हिंदी- बैल) = अनड्वान्, दम्य, ककुद्मान और वृष। अन्य प्रकार- बलीवर्द।

४९७ **व्याघ्र** = पंचनख, द्वीपी, शार्दूल, गुहाशय, पुण्डरीक, तीक्ष्णदंष्ट, तरस्वी, और घोरदर्शन।

४९८ **शरभ** (हिंदी- चीता) = चित्रकाय, उपव्याघ्र, मृगान्तक, शूर, क्षुद्रशार्दूल और चित्रव्याघ्र।

४९९ **शरीर** = देह, काय, पुर, शकट, कलेवर, वपुस्, अवयवस्थान, आत्मा और दशरथ।

५०० **शुक** = कीर, रक्तमुख, मेधावी, और प्रियदर्शन। अन्य प्रकार- राजशुक और शतपत्र।

५०१ **शुक्र** = तेज, बल, पुंस्त्व, पौरुष, हर्षसम्भव। रेतस्, वीर्य, वृद्धिकर, शिरःस्थ, और सप्तधातुज।

५०२ **शृगाल** = जम्बुक, गोमायु, क्रोष्टुक, शिव, भल्लूक, मृगधूर्त, शालावृक, फेरु (फेरव) अन्य प्रकार (१) तरक्षु, (तरस्वी, मृगभक्ष, और घोरदर्शन)। २) कुक्कुर = भषक सारमेय, श्वानक, शुन, वक्रलांगूल, भल्लूक, और रात्रिजागर।

५०३ **श्लेष्मा** (कफ) = बलास, सतत, बलवान्, समकृत्, समयोनि, अनिर्वाण, सुनिद्राजनक

५०४ **सर्प** = भुजग, भुजंग, भुजंगम, द्रंष्टी, फणी, कुण्डली, भोगी, अहि, सरीसृप, उरग, कंचुकी, व्याल, द्विजिह्व, नाग, विषधर, चक्षुःश्रवस्, दन्दशूक, बिलेशय, जिह्मग, पवनाशन, आशीविष। अन्य प्रकार – जलसर्प, राजिल, विरुल, श्वेत, नाग, अरुण, व्यन्तर, चित्रवर्णक, गोनस, मण्डलीपात, कुलंग, कृष्णडुंडुभ, दर्वीकर और , कृष्णसर्प।

५०५ **सारिका** = गोराटिका, गोकिरींटी, गोरका, कलहाकुला, और मेधाविनी। अन्य प्रकार – प्रियवादिनी।

५०६ **सिंह** = पंचमुख, दृप्त, पंचानन, क्रव्याद्, हरि, केशरी, मृगराज, विक्रान्त और श्वेतपिंगल।

५०७ **सूकर** = वराह, वज्रदंष्ट्र, रोमश, किरि, दंष्ट्री, दंष्ट्रायुध, क्रोड, पीनस्कन्ध और बहुप्रज।

५०८ **स्त्री** = योषित्, योषा, वनिता, वासिता, वामलोचना, प्रतीपदर्शिनी, श्यामा, कान्ता, नारी, अंगना, अबला, रामा, कामिनी, भीरू, सुन्दरी, कामुका, महिला, ललना, गौरी, प्रमदा, सीमन्तिनी, युवती और एकवासा।

५०९ **हंस** = श्वेत, धार्तराष्ट्र, राजहंस और मनोरम। अन्य प्रकार - कलहंस = जलपाद, बन्धुर।

५१० **हस्तिनी** = करेणु, करिणी, धेनुका, गजस्त्री

५११ **हस्ती** (हिंदी- हाथी) = द्वीप, गज, नाग, इभ, द्विरद, करी, वारण, कुंजर, दन्ती, मातङ्ग, षष्टिहायन, कुम्भी, स्तम्बेरम, पद्मी, सिन्धु और मतंगज।

* * *

वर्ग - १४

कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित वास्तुकर्म विषयक परिभाषा

अगार = संग्रह का स्थान।

अग्निशाला = स्नानगृह । (६५)

अणिद्वार = वाहर का दरवाजा। (६७)

अनेकस्थानतल (पण्यगृह) = अनेक मंजिलें (२६)

अन्तरिका = दरवाजे की पाटियां (पॅनल) (६५)

अरत्नि = २४ अंगुलियों का अंतर, मुंड़ा हाथ (यही एक धनुष्य का अन्तर होता है। (२५) (२६) (१३३)

अवयर्शभित्ति = छप्पर की आधार भित्ति (दीवाल) । (६५)

अवस्कन्द = शौचकूप। (१०)

अवस्करभ्रम = पैखाने के गंदेपानी की नाली। (६५)

अंसपथ = स्थलमार्ग।

अट्टाल = चबूतरा। (२४)

आचामोदकमार्ग = मुखमार्जन का स्थान। (६५)

कक्ष्य = कोना। (२६)

कक्षापरिगत = कमरों से सभी ओर से सीमित घर का भाग।

कक्षाविभाग = महल, प्रासाद। (२०)

कुट्टनशाला = कूटने-पीसने का कमरा। (६५)

कुड्य = दीवाल। (२६)

कुप्यगृह = वन्य वस्तुओं का आगर। (२५) (२६)

कुप्यागार = अन्न धान्यादिकी कोठी। (१२९)

कोष्ठक = आलय = देव मंदिर। (२५)

कोष्ठागार = धान्य, भुसार माल आदि के संग्रह का स्थान। (२) (२५) (२६)

चैत्य = पूजास्थान, समाधिस्थान। (२०)

दण्डान्तर = चार हाथों का अंतर। (२४)

देवगृह = देवमंदिर।(२५)

देवता कोष्ठक = देवता का मंदिर। (२५)

निश्रेणी = सीढ़ी। (६५)

निष्कुहद्वार = गुप्त दरवाजा। (२४)

नीप्रा = घर का छप्पर। (६५)

प्रग्रीव = कठड़ा (लकड़े का) (५१)

प्रतिलोमद्वार = सामने वाले पड़ोसी के मकान का दरवाजा। (६५)

प्रतिवेश = पड़ोसी।

प्रतिसंस्कार= दुरुस्ती। (३२)

भित्तिलेप्य = ईंटे बनाने वाले या दीवाल की लीपा पोती करनेवाले। (३६)

भेषज्यगृह = औषधिशाला (२५)

भैषज्यागार = औषधियों का संग्रहस्थान (२५)

मण्डपक = कमान। (२४)

मुण्डकद्वार = कमान का दरवाजा।

मुण्डहर्म्य = शिखररहीन प्रसाद।

मोहन गृह = शत्रु को वंचित करने के लिए रचित घर। (२०)

वनस्पति के विविध वर्ग = सारदारु वर्ग (वांधकाम की लकडी), वेणुवर्ग, वल्लीवर्ग, पत्रवर्ग, पुष्पवर्ग, औषधिवर्ग। (३८)

वरत्रा = वेंत या वास की रज्जू, रस्सी। (४४)

वातायन = वायु संचार का मार्ग, खिड़की। (६५)

वानलटी = घर का छप्पर (६५)

वास्तु (या वास्तुक) - ६ प्रकार = गृह, क्षेत्र, आराम (वगीचा) सेतुवन्ध, तटाक (तालावर), आधार (कूप आदि जलाशय) - इन छह की सामान्य संज्ञा।

२) स्थावर संपत्ति। (६५)

वास्तुक = (१) वास्तुविद्या का ज्ञानी। (२०)

वास्तुछिद्र = भवन निर्माण के निमित्त भूमि का विभाजन।

वाहिरिक = विहार स्थापन करने वाले। (२५)

वितर्दि (या वितर्दिक) = स्थंडिल, ओटा, चौका। (८०)

विष्कम्भ = चौड़ाई (२४)

विहारार्था शाला = नाट्यगृहादि भवन। (२२)

शम या शल = १४ अंगुलि अंतर। (१३३)

शाला= भवन के अंदर का चौक। (२६)

सारदारु = भवन निर्माण में उपयोगी लकड़ी। (२) मजबूत लकडी। (२५)

सारदारु = इमारती लकड़े के योग्य वृक्ष- साग, तिनिश, धन्वन (अश्वत्थ या बांस), अर्जुन, मधुक, तिलक, साल, शिंशुप (अशोक), अरिभेद, राजादन, शिरीश, खादिर, सरल (देवदार) ताल, सर्ज (सालई), अश्वकर्ण, सोमवल्क, (सफेद खैर), कश, आम्र, प्रियक, धव। (कुल २० प्रकार)

सालपरिक्षेप = लकड़े का प्रकार।

सेतु = गृह रचना के लिए लंवे खंबों पर आड़े खंभों को रखने पर बनने वाली चौखट। (६५)

सेतु = के अन्तर्गत पुष्प, फल, वाट (वाडी) षण्ड, केदार, मूल, वाद (वाफा) इन ७ विषयों का ग्रहण होता है। (२७)

* * *

वर्ग - १५

वास्तु शास्त्र एवं गणित परिभाषा

अंक = चिह्न, संख्यावाचक शब्द।

अंक गणित = गणित शास्त्र की एक सुगम एवं उपयुक्त शाखा। इसीको भास्कराचार्य 'पाटीगणित' कहते हैं। इसको 'व्यक्त गणित' भी कहते हैं।

अंकगणित की २० प्रक्रियाएँ = संकलित (जोड़), व्युत्कलित (घटाना), गुणाकार, भागाकार, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, अपूर्णांक, त्रैराशिक, पंचराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, एकादशराशिक, भांड-प्रतिभांड (अदल-बदल और विनिमय) इत्यादि (ब्राह्म स्फुट सिद्धांत- ब्रह्मगुप्तकृत)

अक्षरांक पद्धति = देखिये क-ट-प यादि पद्धति। अंकानां वामतो गतिः' इस नियम का पालन प्रस्तुत पद्धति में प्रारंभ में नहीं होता था। उत्तरकालीन लेखकों ने उस नियम का अनुसरण किया है।

अंगुल = प्रतिमा का एक प्रभाण। ८ यव = अंगुल। ८ यूक = १ यव। ८ लिक्षा = १ यूक। ८ बालाग्र = एक लिक्षा। ८ रज = १ बालाग्र। ८ परमाणु = १ रज। परमाणु पहला प्रमाण है। जालान्तरगत सूर्यकिरण में दिखाई देने वाला रजःकरण (या धूलिकण) परमाणु माना जाता है।

अब्ज = शत कोटी या एक अरव की संख्या।

अय = ४ संख्यावाचक सांकेतिक शब्द (वेदांग ज्योतिष)।

अर्बुद = एक कोटी संख्या का वाचक

अलिन्द = गृह के आभ्यन्तर भाग (शाला) के वाहर का सोपानमार्ग।

उत्क्रमपद्धति = अंकगणित में जोड़ करने की एक पद्धति जिसमें क्रम पद्धति के विपरीत जोड़ किया जाता है। क्रम-पद्धति में एकम् से प्रारंभ होता है।

कटपयादि = संगीत, ज्योतिष आदि शास्त्रों में उपयुक्त शब्दानुक्रम के निर्धारण की पद्धति। यह कादि नव, टादि नव, पादि पंच, यादि-अष्ट नामक चार विभागों पर आधारित होती है। 'न वर्ण' शून्य का वाचक है। इस पद्धति में वर्णानुक्रम से प्राप्त संख्या उलटे क्रम से लिखने पर निश्चित संख्या का ज्ञान होता है।

क- ट- प यादि पद्धति = अंकगणित शास्त्र में १ से ९ अंक और शून्य संख्याओं का निर्देश। क वर्ग = १ से ५। च वर्ग = ६ से १०। ट वर्ग = १ से ५। त वर्ग = ६ से १०। प वर्ग = १ से ५। य...ह = १ से ८ इसमें स्वरों का कोई अर्थ नहीं होता। इस पद्धति में 'अंकानां वामतो गतिः' इस नियम से उलटा क्रम होता है। उदा. क, ण, ध, झ, झु, झि, ला = १५९९९९३ (आर्यसिद्धांत)।

क ट प यादि पद्धति = (प्रथम आर्यभट्ट के अनुसार) क से म तक अक्षरों से यथाक्रम १ से २५ का बोध माना है। य से ह तक वर्ण क्रमशः ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९० और १०० के वाचक माने हैं। अ स्वर एक का और इ से औ तक के स्वर १ सौ से ८ सौ तक का बोध करते हैं। व्यंजनसहित स्वर उस व्यंजन मे सौगुनी संख्या का बोध करता है। उदा. = महायुग में भूभ्रमणों की संख्या = ङिशिबुण लखृ = १५,८२,२३,७५,२००/- इस प्रकार आर्यभट्ट ने निर्दिष्ट की है।

कादि नव = कटपयादि संख्या पद्धति में क वर्ग के पांच और च वर्ग से झ वर्ण तक यथाक्रम एक से नौ संख्याओं का संकेत।

कुंजर = प्रासाद के २० प्रकारों में से एक। इसका आकार हाथी की पीठ के समान और मूल से चारों और १६ हाथ विस्तार होता है।

कुट्टक = अंकगणित के अन्तर्गत अत्यंत व्यापक स्वरूप का दृढभाजक।

कृत = चार संख्या का वाचक सांकेतिक शब्द।

कैलास = प्रासाद के २० प्रकारों में से एक। इसमें २८ हाथ विस्तार, आठ भूमियाँ, छह कोण और शिखर होते हैं।

क्रमपद्धति = अंकगणित में जोड़ करने की एक पद्धति जिसमें जोड़ का आरंभ एकम् से होता है। सम्प्रति यही पद्धति प्रचलित है।

गणित शास्त्र = यह वेदांग ज्योतिष का एक भाग माना जाता था।

गणित के अष्ट प्रकार = संकलन, वेवकलन, गुणन. भाजन, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल। इसीको **परिकर्माष्टक** कहते हैं।

गणितपाश = अधिक से अधिक संख्याभेद करना (परम्यूटेशन और कॉंबिनेशन)।

गरुड = प्रासाद के २० प्रकारों में से एक। यह गरुडाकार, सप्त भूमियों तथा २४ शिखरों से युक्त होता है। इसका विस्तार २४ हाथ होता है।

गायत्री = २४ संख्यावाचक सांकेतिक शब्द (श्रौत सूत्र)।

गुण = ८ संख्यावाचक सांकेतिक शब्द (वेदांग ज्योतिष)।

गोमूत्रिका पद्धति = अंक गणित में गुणाकार करने की पद्धतियों में एक पद्धति जो संप्रति प्रचलित है।

घट = प्रासाद के २० प्रकारों में से एक। इस में घट (या कलश) के समान आकार, एक भूमि और एक शृंग होते हैं।

जगती = ४८ संख्या का वाचक सांकेतिक शब्द (श्रौत सूत्र)।

त्रिशाल वास्तु के प्रकार = (१) हिरण्य (इसकी उत्तर दिशा में दीवार (दी वाल) नहीं होती)। (२) सुक्षेत्र (इसकी पूर्व दिशा में दीवार नहीं होती)। (३) चुल्ली (इसकी दक्षिण दिशा मे दीवार नहीं होती)। (४) पक्षघ्न (इसकी पश्चिम दिशा

में दीवार नहीं होती। इनमें चुल्ली और पक्षघ्न नामक वास्तुएं अशुभ होती है।

दशमान पद्धति = भारतीय अंकगणित शास्त्र की महत्त्वपूर्ण पद्धति।

दशांकपद्धति = काल तथा अक्षर की गणना करने की प्राचीन भारतीय पद्धति।

दशांश अपूर्णांक पद्धति = अपूर्ण अंकों का निर्देश करने की भारतीय गणित शास्त्र की पद्धति।

द्विशाल वास्तु के प्रकार = (१) सिद्धार्थ (पश्चिम और दक्षिण में शालायुक्त। (२) यमसूर्य (पश्चिम और उत्तर में शालायुक्त) (३) दण्ड (उत्तर और पूर्व में शालायुक्त)। (४) वात (पूर्व और दक्षिण में शालायुक्त। (५) गृहचुंल्ली (पूर्व और पश्चिम में शालायुक्त)। (६) काघ (दक्षिण और उत्तर में शालायुक्त)। इनमें केवल सिद्धार्थ वास्तु शुभ होती है।

नन्दन = प्रासाद के २० प्रकारों में एक। इसमें छह कोण, छह भूमियाँ, ३२ हाथ विस्तार और १६ अण्ड (अंडाकार शिखर)· होते है।

नन्दिवर्धन = प्रासाद के २० प्रकारों में एक। इसकी आकृति पंख-पूँछ रहित गरुड के समान होती है। इसका विस्तार २४ हाथ होता है और इसमें सात भूमियाँ तथा २४ शिखर होते हैं।

नन्द्यावर्त वास्तु = शाला की दीवार से आरंभ करके प्रदक्षिणा क्रम से अलिन्द वाला भवन। इसमें पश्चिम दिशा में द्वार नहीं होता।

नियुत = एक लक्ष संख्या का वाचक

पद्म = प्रासाद के २० प्रकारों में एक। यह पद्माकृति होता है। इसमें एक भूमि और एक शृंग होते हैं।

परमाणु = देखिए अंगुल।

परार्ध = अंतिम संख्यावाचक शब्द।

परिकर्माष्टक = देखिए गणित अष्ट प्रकार) अंकगणित शास्त्र के अन्तर्गत जोड़, घटाना, गुणाकार, भागाकार आदि प्रक्रियाएं।

पाटीगणित (अंकगणित) के आठ विभाग = परिभाषा, (विविध परिमाण), परिकर्माष्टक (आठ प्रकार के जोड़ घटाना, गुणाकार इत्यादि कर्म), व्यक्तविधि, (इष्टकर्म, विषयकर्म, त्रैराशिक, इ. संकीर्ण विषय), मिश्रक व्यवहार - (व्याज, हौद, नलिका, क्रयविक्रय, वर्णज्ञान (सोने की शुद्धता), छन्दश्चिति, शिल्प इ.) श्रेढीव्यवहार, क्षेत्रव्यवहार (क्षेत्रफल, घनफल, चिति, राशि छाया इ.); कुट्टक (व्यापक स्वरूप का दृढभाजक), गणितपाश (यावच्छक्य भेदों की संख्या निकालना = परम्यूटेशन और काँबिनेशन); (इन आठ प्रकारों का विवरण भास्कराचार्य ने किया है।

प्रासाद के २० प्रकार = मेरु, मन्दर, कैलास, विमानच्छन्द, नन्दन, समुद्ग, पद्म, गरुड, नन्दिवर्धन, कुंजर, गुहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृत्त, चतुष्कोण, षोडशाश्रि और अष्टाश्रि।

भ-समूह = (भ = नक्षत्र) २७ संख्या का वाचक (वेदांग ज्योतिष)।

मंदर = प्रासाद के २० प्रकारों में एक। इसमें छह कोण, ३० हाथ विस्तार, १० भूमियाँ, और शिखर होते हैं।

मर्मस्थान (वास्तु के) = वास्तु के पदों के ठीक मध्यस्थान में वंशों या कोण से कोणगत सूत्रों का परस्पर संपात होने का स्थान। वास्तु के मर्मस्थानों का खम्भा, पाषाण, कील-आदि से पीड़ित होना अशुभ माना जाता है।

मानपद्धति = चतुर्मान, पंचमान, दशमान इत्यादि संख्याओं की गणना करने की गणितज्ञों की पद्धतियाँ।

मिश्रक व्यवहार = अंकगणित शास्त्र के अंतर्गत व्याज, हौद, नलिका, क्रय-विक्रय, वर्णज्ञान (सोने की शुद्धता), छन्दश्चिति, शिल्प आदि विषय।

मेरु = प्रसाद के २० प्रकारों में से एक। इसमें छह कोण, १२ भूमियाँ, अनेक प्रकार की खिड़कियाँ, चारों दिशाओं में चार द्वार और ३२ हाथ विस्तार होता है।

युग = १२ संख्या का वाचक (वेदांग ज्योतिष)।

युति = मेल, जोड।

रुचक वास्तु = इसमें पूर्व और पश्चिम का अलिन्द दक्षिणोत्तर शाला से संलग्न तथा उन दोनों के मध्य में स्थित होता है। इसमें उत्तर दिशा में द्वार अशुभ होता है।

रूप = एक संख्यावाचक सांकेतिक शब्द। (वेदांग ज्योतिष)।

वज्रलेप = देवप्रासाद, वलभी, शिवलिंग, देवप्रतिमा, कूप आदि में दृढता निर्माण करने वाला एक विशिष्ट कल्क या 'उबाला हुआ द्रव पदार्थ'। वज्रतल और वज्रसंघात नामक इसके दो अन्य प्रकार होते हैं।

वज्रसंघात = आठ भाग सीसा, दो भाग कांसा, एक भाग पीतल - इनको एकत्र गलाकर होने वाला वज्रलेप।

वर्धमान वास्तु = प्रधान भवन के द्वार के अन्तर्गत द्वारालिन्द, उसके प्रदक्षिण क्रम से द्वितीय अलिन्द तथा उसके प्रदक्षिण क्रम से तृतीय अलिन्द वाली वास्तु। इसके दक्षिण में द्वार नहीं होता।

वास्तुशास्त्र के दो मत = (१) मयमत और (२) विश्वकर्मा मत।

वास्तु प्रकार = सर्वतोभद्र, नन्द्यावर्त, वर्धमान, स्वस्तिक। और रुचक। ये पांच प्रकार आलिन्द के आधारपर माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त हिरण्य, सुक्षेत्र, चुल्ली, पक्षघ्न नामक चार प्रकार **त्रिशाल वास्तु** के और सिद्धार्थ, यमसूर्य, दण्ड, वात, गृहचुल्ली और काच नामक छह प्रकार **द्विशाल वास्तु** के होते है। इनके अतिरिक्त क्षेत्रमान के अनुसार, चतुष्षष्टि, पदक्षेत्र, चतुरस्र वास्तु, एकाशितीपद त्रिभुजवास्तु, इत्यादि वास्तु प्रकार देवतान्यास की दृष्टि से माने गये हैं।

वास्तु के चार प्रकार = **(१) सोष्णीष** = (जिस भवन के पूर्व में वीथिका (या स्थला) होती है। **(२) सायाश्रय** = जिसके पश्चिम में वीथिका होती है। **(३) सावष्टम्भ**

= जिसके उत्तर में वीथिका होती है। (४) **सुस्थित** = जिसके चारो ओर वीथिकाएं होती हैं। ये चारों उत्तम वास्तु के प्रकार माने जाते हैं।

विमान = प्रासाद के २० प्रकारों में एक। इसमें जालगवाक्ष (जालीदार खिडकियाँ), २१ हाथ विस्तार, आठ भूमियाँ, छह कोण होते हैं।

वीथिका = भवन के तृतियांश में निर्मित कृत्रिम भूमि। इसी को स्थला (अंगन) कहते हैं।

वृष = प्रासाद के २० प्रकारों में एक। इसमें एक भूमि, एक शृंग, वर्तुलाकार, और १२ हाथ विस्तार होता हैं।

व्यक्त गणित = अंकगणित या पाटीगणित की एक संज्ञा।

व्यक्तविधि = अंकगणित शास्त्र के अंतर्गत इष्टकर्म, विषयकर्म, त्रैराशिक इत्यादि संकीर्ण विषय।

व्युत्कलित = अंकगणित की एक पद्धति, (घटाना)

संकलित = अंकगणित की एक पद्धति अर्थात् जोड़।

समुद्ग = प्रासाद के २० प्रकारों में एक। यह वृत्ताकार होता है। इसमें एक भूमि और एक शृंग होते हैं।

सर्वतोभद्र = प्रासाद के २० प्रकारों में एक। इसमें चारों दिशाओं में चार द्वार, अनेक चन्द्रशालाएँ, पांच भूमियाँ, अनेक शिखर होते हैं। विस्तार २६ हाथ।

सर्वतोभद्र वास्तु = चारों तरफ अलिंद (बरामदा) और द्वार वाला भवन। यह राजा तथा देवताओं के लिए प्रशस्त माना जाता है।

संख्या = एक, दश, शत, सहस्र, नियुत (एक लाख), प्रयुत (दस लाख), अर्बुद (एक करोड़), न्यर्बुद (दस करोड़), समुद्र (एक अरब), मध्य (दस अरब) अन्त (खरब), परार्ध (दस अरब),। निखर्वक, बद्व, अक्षि और गो = (दश खरब)।

सिंह = प्रासाद के २० प्रकारों में एक। विस्तार आठ हाथ। यह सिंह की प्रतिमाओं से सुशोभित होता है।

स्तम्भ के पांच प्रकार = (१) **रुचक** (समान चतुष्कोण वाला स्तंभ। (२) वज्र-(समान आठ कोण वाला स्तंभ। (३) प्रलीनक (बत्तीस कोण वाला। (४) वृत्त (वर्तुलाकार स्तम्भ)। ये पांच प्रकार शुभ होते हैं।

स्तम्भ के भाग = (१) वहन (नीचे का प्रथम भाग जिससे वह भूमि पर स्थित होता (२) घट (घटाकार द्वितीय भाग)। (३) पद्म (पद्माकार तृतीय भाग) (४) उत्तरोष्ठ (उपर का चतुर्थ भाग, जहां शोभा के लिये विशिष्ट आकृतियाँ बनायी जाती है। (५) भारतुला (पंचम भाग)। (६) तुला। (७) उपतुला।

स्वस्तिक वास्तु = इसमें पश्चिम का अलिन्द दक्षिणोत्तर शाला से संलग्न, तथा इस अलिन्द से निकले हुए अन्य दो अलिन्द पूर्व दिशा की शाला से संलग्न और उन दोनों के मध्य में पूर्व का अलिन्द होता है। इसमें केवल पूर्व दिशा में ही द्वार होता है।

शतगुणोत्तर पद्धति = अंक गणना करने की प्राचीन पद्धति। इस पद्धति के अनुसार तल्लक्षण = $१०^{५३}$ अंतिम संख्या कही जाती है।

शाला = गृह का अभ्यन्तर भाग।

शून्य = संख्या वाचक एक शब्द। शून्य का कोई मूल्य नहीं होता किन्तु इसका किसी भी संख्या से गुणाकार करने पर फल शून्य ही होता है किन्तु भागाकार अनंत होता है।

हंस = प्रासाद के २० प्रकारों में एक। इसमें हंस का आकार, १२ हाथ विस्तार एक भूमि और एक शृंग होते हैं।

संख्यावाचक

संख्यावाचक सांकेतिक शब्द = यहां निर्दिष्ट किये संख्यावाचक सांकेतिक शब्दों के पर्याय वाचक शब्द भी उसी अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। उदा. – लोचन के पर्यायवाचक नयन, नेत्र अक्षि, चक्षु इत्यादि सभी शब्द २ संख्या के वाचक होते हैं।

० = (सांकेतिक शब्द) ख, गगन, इत्यादि आकाशवाचक शब्द, पूर्ण, रन्ध्र, शून्य।

२ = कर, लोचन, कुच, यम और अश्विन् वाचक शब्द

३ = राम, गुण, लोक, अग्नि।

४ = वेद, वर्ण, समुद्र,कृत, अय, युग के वाचक शब्द।

५ = इंद्रिय, विषय, वाण, भूत, प्राण, पांडव, पर्व, के वाचक शब्द।

६ = रस, ऋतु, रिपु, दर्शन के वाचक शब्द।

७ = ऋषि, पर्वत, स्वर, धातु, छंद के वाचक शब्द।

८ = वसु, गज, सिध्दि, भूति, मंगल, अहि – के वाचक शब्द।

९ = अंक, नंद, निधि, ग्रह, द्वार, गो, पवन।

१० = अंगुलि, अवतार, दिशा।

११ = रुद्र, भर्ग।

१२ = आदित्य, मास, राशि, व्यय इ.।

१३ = विश्वेदेव, काम, अतिजगती, अघोष।

१४ = विद्या, मनु, इन्द्र, लोक इ.।

१५ = तिथि, पक्ष।

१६ = नृप, अष्टि, कला।

१७ = अत्यष्टि।

१८ = धृति।

१९ = अतिधृति।

२० = नख, कृति।

२१ = उत्कृति, प्रकृति, स्वर्ग।

२२ = कृति, जाति।

२३ = विकृति।

२४ = गायत्री, जिन, अर्हत्, सिध्द।

२५ = तत्व।

२७ = नक्षत्र-वाचक शब्द।

३२ = दंत-वाचक शब्द
३३ = देव-वाचक शब्द।
४० = नरक।
४८ = जगती।
४९ = तान।

* * *

Acc. 302६४ / 30365

(अर्थविभाग परिशिष्ट)

अर्थशास्त्र में कथित १२ राजमण्डल

परिशिष्ट

		१२ अरिमित्रमित्र नृप. १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड		
		९ मित्रमित्र नृप. १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड		
		८ अरिमित्र नृप. १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड		
		५ मित्र नृप. १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड		
४ उदासीन नृप. १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड	**३ मध्यम नृप** १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड	**२ अरिनृप** १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड **१ विजिगीषु नृप** १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड	**३ मध्यम नृप** १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड	**४ उदासीन नृप** १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड
		६ पार्ष्णिग्राह नृप. १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड		
		७ आक्रंद नृप. १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड		
		१० पार्ष्णिग्राहासार नृप. १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड		
		११ आक्रंदासार नृप. १ अमात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ कोश ५ दंड		